मार्कण्डेय पुराण ।

[प्रथम खण्ड]

श्री ५ मान् महाराजाधिराज कामेश्वर सिंह बहादुर, दरभंगा।

श्रीजगन्मात्रे नमः ।

समर्पण

(रोला छन्द)

स्वस्ति श्रीमत्-श्रोत्रिय-शुचि-कुल-कमल-दिवाकर ।
वैभव-शील-सनेह-सुयश-मति-गुणगण-आकर ॥
राज-समाज उभय शासनके चिर-अधिकारी ।
भारतधर्ममहामण्डलके ध्रुव-पद-धारी ॥

महाराज-अधिराज विविध-विरुदावलि-मण्डित ।
श्रीकामेश्वरसिंह बहादुर प्रतिभा-पण्डित ॥
के० सी० आई० ई० पद शोभित राज-धुरन्धर ।
चिर जीवें मिथिलेश द्वारवङ्गेश्वर नृपवर ॥

गूँथत होत मुदित कौतुकसों आरज-बाला ।
सरस पुराण-सुमनकी सुरभित सुन्दर माला ॥
ललित ज्ञान-विज्ञान मधुर गाथा-मधु-सानी ।
रुचिर कल्पना-भाव-पराग-पुञ्जकी खानी ॥

मार्कण्डेयपुराण-पुहुपकी प्रथम पाँखुरी ।
जीव-ब्रह्मके गँठबन्धनकी दिव्य साँखुरी ॥
धारत उर साधककी सत्वर हरे अविद्या ।
सो अरपत सप्रेम 'मङ्गलाकाङ्क्षिणि विद्या ॥

श्रीः।

मार्कण्डेय पुराण।

——:०:——

[प्रथम खण्ड]

——:०:——

श्रीभारत-धर्म-महामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक
पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी
हुई 'रहस्योद्धाटिनी' टीका सहित।

——:०:——

सम्पादकः—
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर।

——:०:——

प्रकाशकः—
आर्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद,
बनारस।

——:०:——

द्वितीय संस्करण] सन् १९३१ [मूल्य एक रुपया

श्रीगोपालचन्द्रचक्रवर्ती द्वारा
भारतधर्म प्रेस बनारसमें मुद्रित ।

प्रस्तावना।

ब्रह्मा दक्षः कुबेरो यमवरुणमरुद्वह्निचन्द्रेन्द्ररुद्राः।
शैला नद्यः समुद्रा ग्रहगणमनुजा दैत्यगन्धर्वनागाः॥
द्वीपा नक्षत्रताराऱविवसुमुनयो व्योम भूरश्विनौ च।
संलीना यस्य सर्वे वपुषि स भगवान्पातु वो विश्वरूपः॥

पूर्णावतार भगवान् श्रीकृष्णने दिव्य-चक्षु देकर अर्जुनको जिस विश्वरूपका दर्शन कराया था, वह विश्वरूप भगवान् श्रीवेदव्यासने पुराणोंके रूपमें आबालवृद्ध स्त्री-पुरुषोंके लिये सुलभ कर दिया है। क्योंकि विश्वरूप पुराणके शरीरमें ब्रह्मा, दक्ष, कुबेर, यम, वरुण, वायु, अग्नि, चन्द्र, इन्द्र, रुद्र, शैल, सरिता, समुद्र, ग्रहगण, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, नाग, सप्त द्वीप, नक्षत्रगण, तारागण, रवि,वसु, मुनिगण, आकाश, पृथ्वी, अश्विनीकुमार, आदि सभी कुछ विलीन हो रहा है। संसारमें ऐसा कोई तत्त्वज्ञान नहीं है, जो श्रीवेद-व्यास रचित पुराणोंमें न हो। इसीसे विचारशील महापुरुष कहा करते हैं कि,—"व्यासोच्छिष्टं जगत् सर्वम्।"

पुराणोंमें देवी-देवताओंकी लीला-कथाएँ हैं, ऋषि-मुनियोंके उपाख्यान हैं, पुण्यश्लोक महापुरुषोंके जीवन-चरित हैं, इतिहास है, काव्य है, राजनीति है, अध्यात्म-ज्ञान है, व्यवहार-ज्ञान है, सब तरहकी विद्याये हैं और ऐसा भरपूर वाङ्मय (साहित्य) है, जिससे साधारण कोटिसे लेकर उच्चतर कोटितकके लोग अपने अपने अधिकारानुसार लाभ उठा सकते हैं।

पुराणोंकी भाषा अत्यन्त सुबोध है, उनमें वर्णित तत्त्वज्ञान अत्यन्त सुगम है और उनमें चित्रित नायक-नायिकाओंके स्वभाव अत्यन्त उदात्त हैं। पुराणोंके प्रसाद गुणकी सबसे बढ़कर कसौटी यह है कि, इनके पढ़नेसे चित्त कभी नहीं ऊबता। इस समय जगत्में जितनी भाषाएँ प्रचलित हैं, सबमें नाटक, उपन्यास, किस्से, कहानियां आदिके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। चिन्ताशील पाठकोंको यह एकवाक्य होकर मानना पड़ेगा कि, उन सब रोचक ग्रंथोंके एक दो बार पढ़ लेनेपर फिर पढ़नेकी इच्छा नहीं होती; परन्तु पुराणोंमें क्या जाने क्या अलौकिकता है कि, जितने ही बार इनका पाठ करिये, उतनी ही अधिक इनकी माधुरी वृद्धिगत होकर पाठकोंके मनको मुग्ध कर देती है। सहस्रों वर्षोंसे लोग पुराणपाठ करते आ रहे हैं और एक ही व्यक्ति सैंकड़ों बार पुराण पढ़ता और सुनता है; परन्तु उनकी नवीनता बनी हुई है। 'सदा हरी' लताकी तरह पुराण पुराण होनेपर भी पुराना होना नहीं जानते।

पुराणोंकी सर्वग्राहकता और सर्वव्यापकता अतुलनीय है। सनातनधर्मके श्रुति, स्मृति और पुराण, इस प्रकार तीन श्रेणीके प्रामाणिक ग्रन्थ हैं। श्रुति-वेद-साक्षात् परब्रह्मके निःश्वसित होनेके कारण उनका रहस्य सब किसीको समझ लेना असम्भव है। वेदपुरुष ही वेदोंका साक्षात्कार कर सकते हैं और जिन महात्माओंके हृदयोंमें सर्वज्ञानमय

भगवान् वेद पुरुषरूपसे विराजमान रहते हैं, वे ही वेदार्थका यथार्थज्ञान लाभ कर सकते हैं। वेदोंके आधारपर धर्माज्ञाओंका प्राचीन पूज्यपाद महर्षियोंको जो स्मरण हुआ, वे स्मृतियां हैं। प्रायः वे सभी विधिनिषेधात्मक होनेसे उन्होंने जटिल शास्त्रका रूप धारण कर लिया है और उनका रहस्य भी वे ही अधिकारसम्पन्न महापुरुष समझ पाते हैं, जिन्होंने धर्मका यथार्थ स्वरूप भलीभांति समझ लिया है। पुराणोंकी यह बात नहीं है। तत्त्वज्ञानके साथ ही पुराणोंमें मनोरञ्जक कथाओं और उपाख्यानोंकी रोचकता होनेसे सब प्रकारके अधिकारियोंके लिये ये ग्रन्थ चित्ताकर्षक हो रहे हैं।

पुराणपाठ यदि बालकगण करें, तो उनकी शीलवृद्धि होकर उन्हें भावी जीवनका पुण्यपथ स्पष्टरूपसे सूझने लगता है। यदि पुराणपाठ पुरुष करें, तो उनका पौरुष उत्स्फूर्त होकर वे कर्तव्यपरायण हो जाते हैं और यदि स्त्रियां पुराणपाठ करें, तो उनके हृदयोंमें गृहिणीधर्मका उदय होकर पातिव्रत्यका बीज दृढ़मूल हो जाता है। राजनीति प्रायः समय समयपर बदला करती है। इसका वर्णन एक कविने इस प्रकार ठीक ही किया है कि,—

"पण्याङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा।"

परन्तु पुराणोंमें राजनीतिके जो सर्वसाधारण सिद्धान्त कहे गये हैं, वे त्रिकालाबाधित हैं। संसारके समस्त देशोंकी भूत और वर्तमान राजनीतिक परिस्थितिका यदि परिशीलन किया जाय, तो उसका कार्य-कारण-रहस्य पुराणोंमें दृग्गोचर हो सकेगा। इसी तरह सामाजिक विज्ञानके सब मूल सिद्धान्त पुराणोंमें ग्रथित हैं। आदर्श समाजव्यवस्थाका विवेचन पुराणोंके अतिरिक्त अन्यत्र दुर्लभ है।

आध्यात्मिकता तो पुराणोंमें कूटकूटकर भरी हुई है; क्योंकि पूर्णज्ञानमय वेदोंके तो पुराणग्रंथ भाष्यरूप हैं। मानवजातिका अन्तिम लक्ष्य मुक्ति होना चाहिये, यह त्रिकालदर्शी महर्षियोंने संसारके दुःखोंको देखकर निश्चित कर लिया है। मुक्तिके बिना आत्यन्तिक सुखका लाभ नहीं हो सकता और सारा संसार सुखके लिये लालायित हो रहा है। भारतवासियोंने स्वाभाविक रूपसे ही जो मुक्तिको अन्तिम लक्ष्य मान लिया है, यह पुराणोंकी ही महिमा है। पृथ्वीकी अन्य मनुष्य-जातियाँ लौकिक-अभ्युदयको प्राप्त करके मद-गर्वित और उन्मत्त होकर नष्ट भ्रष्ट हो जाया करती हैं; परन्तु भारतवर्षकी आर्यजाति चिरकालसे अपने स्वरूपकी रक्षा कर रही है, इसका प्रमाण प्राचीन इतिहाससे लेकर नवीन इतिहास तक हाथ उठाकर दे रहा है। आर्यजातिमें यह जीवनिका शक्ति संचरित करनेका काम पुराणोंने ही किया है। सारांश, क्या ऐहलौकिक और क्या पारलौकिक अभ्युदय तथा अन्तमें निःश्रेयस प्राप्तिका यदि कोई सुलभ साधन हो, तो वह पुराण शास्त्रका अवलम्ब ही है।

पुराणका सर्वाधिकार, पुराणकी विचित्रता और अपने हृदयके यथार्थ भक्तिसम्बन्धी उद्गार प्रकट करते हुए श्रीभगवान् वेदव्यासने कहा है:—

रूपं रूपविवर्जितस्य भवतो ध्यानेन यत्कल्पितम्।
स्तुत्याऽनिर्वचनीयताऽखिलगुरो! दूरीकृता यन्मया॥
व्यापित्वं च निराकृतं भगवतो यत्तीर्थयात्रादिना।
क्षन्तव्यं जगदीश! तद्विकलतादोषत्रयं मत्कृतम्॥

अर्थ—हे जगदीश ! आप रूपरहित हैं, परन्तु पुराणोंमें ध्यानके द्वारा आपके रूपकी मैंने कल्पना की है। हे अखिल संसारके गुरुवर ! उसमें स्तुतिके द्वारा मैंने आपकी अनिर्वचनीयताको मिटा दिया है और हे भगवन् ! तीर्थयात्रा आदि वर्णनके द्वारा मैंने आपकी व्यापकताका निरादर किया है। इस प्रकार विकलता रूपी जो मैंने आपके तीन अपराध किये हैं, उन्हें आप क्षमा करें।

पुराणको जैसी हमने विश्वरूपकी उपमा दी है, वैसी लौकिक रीतिपर समुद्रकी भी उपमा दे सकते हैं। पुराण महोदधिका मन्थन कर हालाहल विष भी निकल सकता है और अमर करनेवाला अमृत भी। सुरा निकल सकती है और सुधांशु भी। लक्ष्मी निकल सकती है और कोरा शङ्ख भी। पुराणोंके पढ़ते समय एक विशेष दृष्टि रखनी पड़ती है; क्योंकि विषयप्रतिपादन करते समय श्रीवेदव्यासको समाधि, लौकिकी और परकीया तीनों भाषाओंका उपयोग करना पड़ा है। इस रहस्यको न जानकर मोटी दृष्टिसे पुराणोंको पढ़नेवाले लोग जो उनपर नाना प्रकारके आक्षेप करते हैं, खेदके साथ कहना पड़ता है कि, पुराणसागरमन्थनमें उनके हाथ हालाहल, सुरा या कोरा घोंघा ही लगा है; सुधा, सुधांशु या लक्ष्मीकी छटा उनसे बहुत दूर है।

इस विषयमें आक्षेपकोंको भी हम अधिक दोष नहीं दे सकते; क्योंकि अज्ञानियोंके अज्ञानका नाश करनेकी जिनमें शक्ति है, उन्होंने अब तक अपनी शक्तिका उचित उपयोग नहीं किया है। सभी आक्षेपक हठी नहीं होते, उनमें अधिकांश जिज्ञासु भी होते हैं; किन्तु उनकी जिज्ञासा तृप्त न होनेसे पुराणोंके सम्बन्धमें उनका भ्रम और अज्ञान ज्यों का त्यों बना रहता है और इससे सर्वमङ्गलमय पुराणशास्त्रप्रचारमें बहुत क्षति होती है।

यह बात श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सञ्चालकोंको बहुत दिनोंसे खटक रही थी। वे चाहते थे कि, समस्त पुराणोंके विशुद्ध हिन्दी अनुवाद शङ्का-समाधानसहित प्रकाशित किये जायं और वे सर्वसाधारणको अत्यन्त स्वल्प मूल्यमें मिला करें, जिससे पुराण शास्त्रकी महिमा बढ़े और सर्वसाधारण उसकी सहायतासे अपने जीवन आदर्श-स्वरूप और सफल बनानेमें समर्थ हों। परन्तु यह कार्य बहुत व्ययसाध्य था और इस समय सनातनधर्मावलम्बियोंकी स्वधर्मके प्रति कैसी उपेक्षा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। फिर भी साधनाभाव होनेपर भी पुरुषार्थसे मुंह न मोड़नेका श्रीमहामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजका स्वभाव ही बन गया है। इसी स्वभावानुसार उन्होंने प्रथम "मार्कण्डेय पुराण" का अनुवाद करनेकी आज्ञा देकर उसपर टिप्पणियाँ स्वयं लिखाना आरम्भ कर दिया और "आर्यमहिला" में गत जनवरीसे उसे प्रकाशित करनेका भी प्रबन्ध करदिया। उक्त पत्रिकामें एक खण्डके लिये जितना आवश्यक है, उतना अंश प्रकाशित होते ही पृथक् पुस्तकाकार खण्डशः "पुराणमाला" निकालनेकी व्यवस्था की गयी है और उसी व्यवस्थाके अनुसार "मार्कण्डेय पुराण" का यह प्रथम खण्ड पुस्तक रूपमें प्रकाशित किया जा रहा है। सम्भवतः ऐसे ही तीन खण्डोंमें यह ग्रन्थ समाप्त हो जायगा और तदुपरान्त दूसरे पुराणमें हाथ लगाया जायगा।

हिन्दी तथा देशकी अन्य भाषाओंमें कुछ पुराणोंके अनुवाद प्रकाशित हुए हैं। उनमेंसे अधिकांश अनुवाद अस्तव्यस्त हैं; यह बात उन लोगोंकी समझमें सहज ही आ

जायगी, जो उन अनुवादोंको मूलसे मिलाकर देखेंगे। कुछ अनुवाद अवश्य ही उत्तम हुए हैं; परन्तु उनके पढ़नेसे पुराणोंके प्रति किये हुए आक्षेपों और शङ्काओंका निरसन नहीं होता। हमने यथासम्भव विशुद्ध अनुवाद करनेमें पूरा ध्यान दिया है और जहांतक हो सका है, ऐसा यत्न किया है कि, अनुवाद पढ़ते हुए भी पाठकोंको यह न प्रतीत हो कि, हम अनुवाद पढ़ रहे हैं। भाषाकी मौलिकताका विचार हमने दृष्टिकी ओट नहीं होने दिया है। अनुवाद जैसा कुछ हुआ हो, उसकी परीक्षा पाठक करें। इतना हम अवश्य कहेंगे कि, उसके साथ प्रकाशित होनेवाली पूज्यपाद श्रीजीमहाराजकी टिप्पणियोंमें ही इस "पुराणमाला" का प्राण है। इस एक पुराणकी ही सब टिप्पणियोंका यदि पाठकगण मनोयोगके साथ अध्ययन करलें, तो इस पुराणमें वर्णित विषयोंमें तो कोई सन्देह रहना सम्भव ही नहीं है; किन्तु अन्य पुराणोंका पाठ करते समय ये टिप्पणियां पुराणोंके रहस्यो-द्घाटनमें कुञ्जीका काम देंगी। विशेषतः यह "रहस्योद्घाटिनी" टीका संस्कृत और हिन्दीके विद्वानों, सनातनधर्मरक्षक गुरुओं, पुरोहित-सम्प्रदायों, पुराण-व्यवसायियों और सब श्रेणीके शिक्षित नर-नारियोंके लिये अति उपयोगी है।

सर्व प्रथम हमने "मार्कण्डेय पुराण" में हाथ लगाया, इसका कारण यह है कि, यह पुराण अन्य महापुराणोंसे छोटा है और अन्य पुराणोंमें जो महत्त्वपूर्ण विषय विस्तारसे वर्णन किये गये हैं, वे सब इसमें संक्षेपमें आ गये हैं। यह पुराण सब उपासक-सम्प्रदायोंसे अविरुद्ध है। इसकी भाषा अति मधुर और अति हृदयग्राही होनेपर भी इसमें वेदोंके अति निगूढ़ रहस्य बताये गये हैं और इहलोक तथा परलोकसम्बन्धी ज्ञानराशिसे यह पुराण पूर्ण है। इसमें जो टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं, वे सब पुराणोंके पढ़ते समय काम आवेंगी और थोड़े समय और परिश्रममें पाठक अधिकसे अधिक ज्ञान लाभ कर सकेंगे।

काम बड़ा है और साधन अल्प हैं; तो भी हमने काम प्रारम्भ कर दिया है। इसे पूरा करना सहृदय हिन्दी पाठकों और सनातनधर्मावलम्बी धनिकोंके उत्साह और उदारतापर निर्भर है। यदि हमें देशके धर्मप्रेमियोंसे अच्छी सहायता मिली, तो इस "पुराणमाला" को हम तीव्रगतिसे अग्रसर कर सकेंगे। यदि भारतमें यथोचित रीतिसे पुराणप्रचार हो जाय, तो केवल भारतवर्षकी ही सर्वविध उन्नति नहीं होगी, किन्तु परम्परासे समस्त संसारका कल्याणसाधन होगा। अस्तु, जिस सर्वशक्तिमयी जगदम्बाने इस कार्यके करनेमें हमें प्रेरणा की है, वह सबको सुबुद्धि दें और निरन्तर हमारे हृदयमें निवास करें, यही उनके चरणकमलोंमें हमारी विनीत प्रार्थना है।

तमोगुणविनाशिनी सकलकालमुद्योतिनी।
धरातलविहारिणी जड़समाजविद्वेषिणी ॥
कलानिधिसहायिनी लसदलोलसौदामिनी।
मदन्तरवलम्बिनी भवतु काऽपि कादम्बिनी ॥

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी,
संवत् १९८८

विनीत—
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर, काशी।

मार्कण्डेय पुराण

के

प्रथम-खण्डकी विषयसूची ।

——:०*०:——

प्रथम खण्ड समाप्त ।

श्रीगणेशाय नमः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

प्रथम अध्याय ।

अति प्रशान्तचेता योगिगण जिनको प्राप्त करके वन्दना करते हैं और क्रमविकाश द्वारा भूः भुवः स्वः का अतिक्रमण करके जो आविर्भूत हुए, वे संसारके भय और दुःखोंके नाश करनेवाले श्रीभगवानके चरण कमल आप लोगोंको पवित्र करें ॥ १ ॥

टीका :— पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षि वेदव्यास प्रणीत मङ्गलाचरणके ये तीन श्लोक असीम विज्ञान और अध्यात्मभाव-राशिसे पूर्ण हैं। योगशास्त्रका सिद्धान्त यह है कि, समाधि द्वारा चित्तवृत्ति निरोध होता है और तब अपने आपही सर्वद्रष्टा परमात्मा अपने स्वस्वरूपमें योगीके अन्तःकरणमें प्रकट हो जाते हैं। इसी कारण योगिगणको उस पदकी उपलब्धि होना स्वाभाविक है। इस महापुराणमें सबसे पहिले श्रीभगवानके चिन्मय विष्णुभावकी स्तुतिकी गयी है। वह ज्ञानमय चित्स्वरूप सृष्टिके उत्तमाङ्गमें क्रमविकाश द्वारा क्रमशः प्रकट होता है। ऊद्र्ध्व सप्तलोक और अधः सप्तलोककी कल्पना श्रीभगवान्‌के नाभिके ऊद्र्ध्व और अधोभागमें की जाती है। श्रीभगवानके विराट् देहमें सप्त अधोलोक तमोमय हैं और जहां केवल असुरगण वास करते हैं और सप्त ऊद्र्ध्वलोक सत्वमय होनेके कारण वहां देवतागण वास करते हैं। उक्त सप्त ऊद्र्ध्वलोकमें भी श्रीभगवानकी चित् कलाका उत्तरोत्तर क्रमविकाश होनेके कारण उन ऊद्र्ध्व लोकोंमें क्रमशः ज्ञान, आनन्द और भगवानकी चित्कलाका विकाश होकर सप्तम ऊद्र्ध्व लोकमें वह पूर्णताको प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि, षष्ठ और सप्तम लोकोंके मध्यमें उपासनालोक-समूह माने गये हैं। जहांसे कदाचित् पुनरावृत्ति भी होती है। परन्तु सप्तम अन्तिम लोकसे पुनरावृत्ति नहीं होती। यही सूर्य-गतिका अन्तिम स्थान है। अतः प्रथम तो भूः भुवः स्वः इन तीनों व्याहृतियोंके नाम इस स्तुतिमें आनेसे सातों ऊद्र्ध्व लोकोंमें श्रीभगवान्‌के चिन्मय पदका क्रम-विकाश समझा जा सकता है। दूसरी ओर आवागमन चक्रके गुरुत्वके विचारसें केवल भूः भुवः और स्वः इस लोकत्रयकी प्रधानता मानी गयी है। यही कारण है कि, वर्णाश्रमके तुरीयाश्रम (सन्यासाश्रम) में इन्हीं भूः भुवः स्वः तीनों लोकोंके त्यागसे ही ज्ञानीका सर्वस्व त्याग होना स्वीकार किया जाता है। आवागमन चक्रके स्थायी रखनेके लिये हमारा यह मृत्युलोक ही प्रधान केन्द्र है। हमारा यह मृत्युलोक सात ऊद्र्ध्वलोक और सात अधोलोकके बीचमें मध्याकर्षण शक्तिरूपसे स्थित है। यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा है। क्योंकि भूर्लोकके चार हिस्से माने गये हैं। यथा— पितृलोक, जहां यम धर्मराजकी राजधानी है, नरकलोक, प्रेतलोक और मृत्युलोक। इस मृत्युलोकमें ही केवल मातृ-गर्भसे जीवका जन्म होता है, अन्य लोकोंमें नहीं होता। यह मृत्युलोक आवागमन चक्रका

जो क्षीराद् सागरकी कुक्षिमें विराजमान अनन्त नागके फणा समूहोंमें स्थित हैं और जिनकी सत्ताके कारण अनन्त नागके श्वाससे क्षुब्ध होकर क्षीरोद सागर कराल मूर्ति धारण कर मानो नृत्य किया करता है, और जो सब पापोंका नाश करनेमें दक्ष हैं, वे आप लोगोंकी रक्षा करें ॥ २ ॥

नारायण, नर, नरोत्तम, देवी सरस्वती और व्यासजीको प्रणाम कर "जय" उच्चारण करना चाहिये ॥ ३ ॥

केन्द्रस्थल होनेके कारण पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, दारैषणा आदिमें फँसकर जीव ऊपर कथित अन्य तीनों लोकोंमें बार बार घूमकर फिर मृत्युलोकमें जन्म लेता है। यही आवागमन चक्रकी गतिका रहस्य है। जबतक जीवमें इन एषणाओंकी तीव्रता रहती है, तबतक भूर्लोकके अन्तर्गत जो सुख-प्रद स्वर्गरूपी पितृलोक है, वहीं तक वह जाता आता रहता है। पार्थिव एषणाओंमें जकड़ा हुआ जीव यदि उन्नत भी हो जाय, तो भूः भुवः स्वः से आगे नहीं जा सकता। लौकिक वासनाओंको जय करनेवाले महात्मा ही आगेके लोकोंमें जाते हैं। यही कारण है कि, संन्यासियोंके मन्त्रमें प्रथम तीन लोकोंके त्यागका ही उल्लेख है। और यही कारण है कि, इस मङ्गलाचरणमें तीन ही पद आये हैं। उत्तरोत्तर चित्कलाकी अभिवृद्धि द्वारा इन तीनों लोकोंकी दशाके उल्लंघन करनेसे प्रशान्त दशा प्राप्त होती है। अथवा यदि सातों व्याहृतियोंको मान लिया जाय, तो सातवीं प्रशान्त दशा मानी जा सकती है। इस प्रकारसे उस चिन्मय पदका लक्ष्य पूज्यपाद महर्षियोंने कराया है ॥ १ ॥

मङ्गलाचरणके दूसरे श्लोकमें श्रीभगवान् विष्णुके मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर चिन्मय स्वरूपका लोकातीत रहस्य अन्य प्रकारसे दरसाया गया है। जगदीश्वर परमात्माका योगिजनके अन्तकरणमें जो स्वानुभव होता है, वह पञ्चतत्त्वोंमेंसे अन्तिम तत्त्वरूपी आकाशतत्त्वके परे होता है। अनन्त शब्द-वाच्य आकाशतत्त्व है। इसी कारण श्रीभगवान् विष्णुका पर्यङ्क अनन्त माना गया है। आकाशतत्त्वकी अनन्त सत्ताका यदि योगी यथार्थरूपसे अनुभव कर सके, तो उसका अन्तःकरण अनादि-अनन्त भगवत्सत्ताका अनुभव करनेमें योग्यता प्राप्त कर सकता है। सृष्टिके आदि स्वरूपका वर्णन करते हुए शास्त्रोंमें जो क्षीरोदसागर, कारणवारि आदिका वर्णन आया है, वह चिदाकाशस्थित समष्टि कर्मबीजरूपी संस्कार राशिसे तात्पर्य रखता है। साधारण जलतत्त्व, जो अनुलोमक्रमसे चतुर्थ तत्त्व है, उसके साथ कदापि इस कारणार्णवका सम्बन्ध हो नहीं सकता। अतः "यथापूर्वमकल्पयत्"—श्रुति प्रतिपाद्य समष्टि संस्काररूपी कारणार्णवमें अनन्त शय्यापर स्थित चिन्मय विष्णुस्वरूपका दर्शन करना योगिगणके लिये सम्भव ही है। परमपुरुषके अस्तित्वसे ही "अहं ममेति" वत् "मैं" और "मेरी शक्ति" के अनुभवके समान ब्रह्म-प्रकृति महामायाका सम्बन्ध दर्शनशास्त्रोंमें माना गया है। परमपुरुष विष्णु भगवान्के अस्तित्वके कारण ही अनन्तरूपी आकाशतत्त्वका अस्तित्व है। और आकाशतत्त्वमें क्षोभ होनेसे ही अन्यान्य तत्त्वोंकी क्रमशः उत्पत्ति होकर सृष्टि लीलाका विस्तार होता है। इसी कारण इस मङ्गलाचरणमें श्रीभगवान्की सत्ताके अस्तित्वके साथ ही साथ सम्बन्ध दिखाकर आकाशतत्त्वकी प्रधानता दिखाते हुए कारण-समुद्रका प्रक्षुब्ध होना बताकर सृष्टिके समुद्र तरंगके समान विस्तार पर ज्ञानी उपासकका चित्त आकृष्ट किया गया है ॥ २ ॥

तीसरा मङ्गलाचरण सर्वव्यापक है। जो प्रायः सब पुराणोंमें आता है। जो

एक समय महर्षि वेदव्यासके शिष्य महातेजा जैमिनिने परम तपस्वी वेदादि पाठ निरत महामुनि मार्कण्डेयसे पूछा, हे भगवन्! महात्मा वेदव्यासके द्वारा जो भारत नामक

जीव इन्द्रिय परतन्त्र है, जिस मनुष्यकी अन्तःकरणकी गति केवल इन्द्रिय-सेवाके आधार पर ही परिचालित होती है, वह मनुष्य नर शब्दवाच्य नहीं हो सकता। वह साधारण जीव है अथवा पशुवत् है। जिस भाग्यवान पुरुषसिंहका अन्तःकरण भगवद्भावोन्मुख है, वही मनुष्यलोकमें धन्य है और वही नर शब्दवाच्य है। पूर्णावयव स्वरूप स्थित महापुरुष अवतारादि जिनका अन्तःकरण सब समय भगवद्भावापन्न रहता है, वे ही नरोत्तम नामसे अभिहित होते हैं। सर्व शक्तिमान अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक सर्वान्तर्यामी भगवान् ही नारायण नामसे लक्षित हैं। श्रीभगवान्की भगवच्छक्ति "अहं ममेति" वत् उनसे अभिन्न रहनेपर भी उस महाशक्ति भगवतीके भावको शास्त्रकारोंने दो श्रेणियोंमें विभक्त किया है। एक अविद्या और दूसरी विद्या। एक अज्ञान-जननी और दूसरी ज्ञान-जननी है। अविद्या जीवको मोहरूपी अज्ञानजालमें फंसाकर आवागमन चक्रको स्थायी रखती है और विद्या आत्मज्ञान प्रदान करके उस जालसे छुड़ाकर मुक्त करानेमें कारण बनती है। ज्ञान-प्रसविनी मुक्ति-दात्री विद्या ही देवी सरस्वती शब्दसे इस मङ्गलाचरणमें अभिहित हुई है। धर्म ही सृष्टिका धारक है। और धर्म ही क्रमोन्नति द्वारा मनुष्यको प्रथमदशामें अभ्युदय और अन्तिम दशामें निःश्रेयस प्रदान करता है। इस कारण धर्म और अधर्मकी फलदात्री जगद्धात्री धर्मरूपिणी भी वही सरस्वती देवी है। इस मङ्गलाचरणमें "व्यास" शब्दका स्वारस्य अधिदैव विज्ञानसे पूर्ण होनेके कारण किसी किसी पुराणकी प्रतिमें लेखक यथार्थ शब्दार्थके रहस्यको न समझकर "व्यास" शब्दके बदले "चैव" शब्द लिख गये हैं। वास्तवमें "व्यासं" यह पाठ ही ठीक है। जिस प्रकार एक राज्यकी रक्षा करनेके लिये अनेक राजकीय विभाग होते हैं उसी प्रकार एक ब्रह्माण्डके सञ्चालनके लिये तीन मुख्य विभाग हैं। यथा:—अध्यात्म विभाग, अधि-दैव विभाग और अधिभूत विभाग। प्रथम ज्ञानविभागके सञ्चालक व्यास वशिष्ठ आदि ऋषिगण, द्वितीय कर्मरूपी अधिदैव विभागके संचालक वसु रुद्रादि देवतागण और तृतीय स्थूल शरीररूपी आधिभौतिक विभागके संचालक अर्यमा, अग्निष्वात्ता आदि पितृगण हैं। अतः पूज्यपाद कृष्णद्वैपायन वेदव्यासका अवतार इस मृत्युलोकमें होनेपर भी नित्य ऋषिरूपी व्यासका देवपद चिरस्थायी होना स्वभावसिद्ध है। इस कारण इस अलौकिक मङ्गलाचरणमें भगवान, उनकी शक्ति और उनकी सब प्रधान विभूतियोंका स्मरण करके ही जय उच्चारण करनेकी आज्ञा दी गयी है। हमारे वेद और शास्त्रसमूह सब त्रिविध अर्थके पक्षपाती हैं। इस कारण सर्व धर्माश्रय भगवान विश्वधारक धर्म और सर्व धर्म प्रकाशक महाभारत आदि इतिहास पुराण समूहकी जयघोषणा ही जय शब्दसे ध्वनित होती है ॥ २ ॥

महाभारत सब पुराण-इतिहासोंका शिरोमणि, सर्वमान्य और पंचम वेदरूप है। पुराणशास्त्रके पांच भेद हैं। यथा:—महापुराण, पुराण, उपपुराण, पुराण संहिता और इतिहास। महाभारत इति-हास लक्षणयुक्त है और कर्म, उपासना तथा ज्ञान इस वेदके काण्डत्रयके रहस्यसे पूर्ण होनेके कारण सर्वाङ्ग-पूर्ण पुराण समझा गया है। पुराण शास्त्र न लौकिक इतिहास ग्रंथ हैं और न कल्पित गाथाओं से पूर्ण हैं। वस्तुतः पुराण पूर्ण ज्ञानमय त्रिकालदर्शी वेदके भाष्य ग्रन्थ हैं। यदि पुराण लौकिक इतिहास से पूर्ण होते तो उनमें एकही नाम धारी व्यक्तिके एकही महापुरुषके लिखे चरित्र विभिन्न पुराणोंमें विभिन्न प्रकारसे नहीं पाये जाते। देवी भागवतमें प्रकाशित शुकदेव चरित्र और विष्णु भागवतमें प्रकाशित शुकदेव चरित्रमें रात और दिन जैसा अन्तर कदापि नहीं हो सकता था। अतः पुराणमें वर्णन किये हुए

ग्रन्थ वर्णित हुआ है, वह नाना शास्त्रोंके मर्मार्थसे युक्त, विशुद्ध शब्दोंसे परिपूर्ण, छन्द और अलङ्कारादि विशिष्ट श्रुतिमधुर वर्णावली युक्त है और उसमें जो जो प्रश्न हैं, उनका यथायथ रूपसे उत्तर भी सन्निवेशित है, अतएव देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण, अलङ्कारोंमें

जीवन चरित्र आदि लौकिक गाथाएँ नहीं हैं, और न उनका उपयोग लौकिक ढंगपर होनाही चाहिये। योग युक्त अन्त करण द्वारा महर्षि व्यासने नाना कल्पोंकी विभिन्न कथाएं अपनी योग युक्त स्मृतिसे स्मरण करके लोक हितार्थ और वेदका रहस्य प्रकाशित करनेके लिये कही हैं। इसीसे पुराण वचन भी स्मृति वचन कहाते हैं। पुराणोंमें वेदकी रीतिपर त्रिविध भाषा, त्रिविध भाव, त्रिविध गुणाधिकार आदिके रहनेसे जिस प्रकार वेदार्थके रहस्यको समझनेमें कठिनता पड़ती है, उसी प्रकार पुराणार्थके रहस्यको समझनेमें भी कठिनता पड़ती है। जहां केवल समाधिगम्य विषयोंका वर्णन है, उसको समाधि भाषा कहते हैं। यथा—आत्माका स्वरूप, ब्रह्म प्रकृतिका स्वरूप. दुर्ज्ञेय कर्म रहस्य आदि। समाधि भाषा सब पुराणोंकी एक सी ही होती है। उसमें मतभेद नहीं होता। जिस वर्णन शैलीके द्वारा समाधिगम्य विषयोंको लौकिक रीतिपर वर्णन किया जाय, उसको लौकिकी भाषा कहते हैं। यथा, ब्रह्म और ब्रह्म प्रकृति रूपी शिवपार्वतीका विवाह वर्णन, अनादि अनन्त चिन्मय शिवलिंग वर्णन, रासलीला वर्णन इत्यादि। और किसी समाधिगम्य विषयकी पुष्टिके लिये नाना कल्पोंमें हुई जो घटनावली है, वह समाधि बलसे स्मरण करके वर्णन की जाय, उसको परकीया भाषा कहते हैं। इसके उदाहरण पुराणोंमें अनेक हैं और भ्रम-प्रमादके कारण इन्हीं वर्णन शैलियोंको प्राकृतिक जन लौकिक इतिहास रूपसे मानने लगते हैं, जैसा कि, ऊपर कहा गया है। अतः इन तीनों प्रकारकी भाषा शैलियोंको बिना जाने जैसा वेदार्थका रहस्य समझमें नहीं आसकता वैसा पुराणार्थका रहस्य भी समझमें नहीं आ सकता। इसी तरह जैसे श्रीभगवान ब्रह्म, ईश और विराट् रूपसे त्रिभावात्मक हैं, वैसे वेद और पुराण शास्त्र अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावत्रय बोधक हैं। यही कारण है कि, वेदके प्रत्येक मन्त्र और पुराणशास्त्रके प्रत्येक विषय त्रिभावात्मक हैं। इस रहस्यको समझानेके लिये दो प्रकारके उदाहरण दिये जाते हैं। श्रीभगवान विष्णुके त्रिभावात्मक तीन स्वरूपोंको समझनेके लिये प्रथम भगवान विष्णुका अध्यात्म स्वरूप आकाशतत्त्वसे परे होनेसे आकाश बोधक अनन्त शय्याशायी अर्थात् सकलतत्त्वातीत है। काम, अर्थ, धर्म और मोक्षके प्रदाता होनेसे गदा, शंख, चक्र और पद्म रूपी चार आयुधधारी हैं। माया उनके अधीन है, इस कारण लक्ष्मी उनकी पादसेवामें रत हैं। अर्थात् उनके अधीन उनकी प्रकृति सदा रहती है। विष्णु भगवानकी गोलोक पीठसे लेकर यावत्सत्त्वगुण व्यापी जो अधिष्ठात्री सत्ता है, वह उनका अधिदैव स्वरूप है और जिस सगुणमूर्तिसे वे भक्तोंको दर्शन देते हैं, वह उनका अधिभूत स्वरूप है। दूसरा उदाहरण प्रत्येक पदार्थमें यह दिया जा सकता है कि, जैसे नेत्रेन्द्रियका अध्यात्म रूप तन्मात्रा है, अधिदैव विश्वचक्षुरूपी सूर्य हैं और अधिभूत स्थूल शरीरकी नेत्रेन्द्रिय है। अतः वेद और वेद सदृश पुराणोंमें कहीं अध्यात्म व्यक्ति और अध्यात्म विषयका वर्णन, कहीं अधिदैव व्यक्ति और अधिदैव विषयका वर्णन और कहीं अधिभूत व्यक्ति और अधिभूत विषयका वर्णन आता है। जिसके समझनेके लिये त्रिभावात्मक विचारशक्तिकी आवश्यकता है। यदि पुराण व्याख्यातामें इस प्रकारकी योग्यता न हो, तो पुराणमें अनेक सन्देह रह जाते हैं और कहीं कहीं पुराणशास्त्र असम्बन्ध प्रतीत होता है। इसी शैली पर पुराण शास्त्रमें सत्त्व, रज, तम रूपी त्रिगुणात्मक अधिकारकी भी कई प्रकारकी वर्णन शैलियां पायी जाती हैं।

चूड़ामणि, अस्त्रोंमें वज्र और इन्द्रियोंमें मन जैसे प्रधान है उसी प्रकार सब शास्त्रोंमें महाभारत ही एकमात्र प्रधान शास्त्र है। इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सभी परस्पर संघटित रूपसे और पृथक्‌रूपसे वर्णित हैं। इस कारण यही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-साधन शास्त्र है ॥ ४—१० ॥

हे महाभाग! इसमें बुद्धिमान महर्षि वेदव्यासने ब्रह्मचर्यादि चारों आश्रमोंके आचार, स्थिति और साधनोंका वर्णन किया है। हे तात! उदारकर्मा वेदव्यासने इस व्यापक महाशास्त्रकी ऐसी रचना की है कि, इसमें कहीं परस्पर विरोध नहीं देख पड़ता। व्यासदेवके इस वाक्यरूपी सलिल प्रवाहने वेदरूपी पर्वतसे गिरकर कुतर्क रूपी वृक्षोंका उन्मूलन करते हुए पृथ्वीको धूलि रहित अर्थात् सन्देह रहित कर दिया है ॥ ११—१३ ॥

कृष्ण द्वैपायनका यह वेदरूपी महाह्रद सुमधुर शब्दरूपी महाहंसों, महाख्यान रूपी कमलोंसे युक्त तथा विस्तीर्ण कथाओंके जलसे पूर्ण है। हे भगवन्! उसी अनेकार्थ प्रतिपादक और वेदोंके मर्मके प्रकाशक महाभारत रूपी शास्त्रको यथार्थ रूपसे जाननेके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ। जो जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहारके कारण हैं, जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकर भी मनुष्यत्वको क्यों प्राप्त हुए? इसी तरह यह

जिनका विचार करके पुराणशास्त्रकी व्याख्या करना अत्यन्त आवश्यक है। नित्य ऋषि व्यासके अवतार महर्षि कृष्ण द्वैपायन वेदव्यासने अनेक पुराण-इतिहास आदि की रचनाके अनन्तर सर्वशक्तिमान भगवानकी स्तुति इन शब्दोंमें की है कि, हे भगवन् आप रूपरहित हो, तौ भी मैं पुराणोंमें नाना ध्यानोंके द्वारा आपके अनेक रूपोंकी कल्पना करके अपराधी हुआ हूं। इसी प्रकार हे प्रभो! आप अनिर्वचनीय हो। परन्तु मैंने धृष्टतासे नाना स्तुति द्वारा आपके अनिर्वचनीयताका निराकरण कर दिया है। यह मेरा दूसरा अपराध है। और हे नाथ! आप सर्वव्यापक हो। परन्तु मैंने पुराण शास्त्रमे तीर्थादिकी महिमा द्वारा आपकी सर्वव्यापकताका निरादर किया है। यह मेरा तीसरा अपराध है। मेरे इन तीनों अपराधोंको आप कृपापूर्वक क्षमा करें। अतः पुराण वेदार्थ और वेद-रहस्य प्रकाशक भाष्यग्रन्थ हैं। जैसे सूत्र और भाष्यमें भेद होता है। वैसे वेद और पुराणमें भी भेद है। और गाथा आदिके बाहुल्यसे वह अधिकतर रुचिकर बनाया गया है ॥ ४-१० ॥

टीका :—मनुष्य अथवा देवतागण असत्कर्मके प्रभावसे वृक्षादि उद्भिज योनि, पक्षि आदि अण्डज योनि और मृग आदि जरायुज योनिको प्राप्तकर सकते हैं। ऐसे उपाख्यान पुराणोंमें बहुधा आते हैं। दूसरी ओर अवैदिक दार्शनिक व्यक्तियोंका मत कहीं कहीं ऐसा पाया जाता है कि, उन्नत जीव मनुष्य पिंड, देवपिंडके अधिकारी पुनः नीचे गिरकर उद्भिज्जादि योनियोंको प्राप्त नहीं हो सकते। क्योंकि जब जीव अपने पांचों कोषोंकी पूर्णता प्राप्त करके पूर्णावयव मनुष्य अथवा देवता हो जाता है, तो पुनः उसका नीचेकी ओर गिरकर तिर्यगादि योनिमें जाना सम्भव नहीं है। परन्तु यह शङ्का निर्मूल है। वस्तुतः जब उग्र पाप कर्मोंके फलसे जीव मनुष्य अथवा देवयोनिसे तिर्यगादि योनियोंमें गिरता है, तो वह दण्डार्ह होकर सजा पानेके लिये गिरता है। पूर्णावयव जीव यदि अपनी ब्रह्मधारणा द्वारा अलौकिक मुक्ति-

बड़ी शंका है कि अकेली द्रुपदनन्दिनी कृष्णा पांच पाण्डवोंकी महिषी (पटरानी) कैसे हुई ? महाबली हलधर बलरामने तीर्थयात्रा कर ब्रह्महत्याका प्रायश्चित कैसे किया ? जिनके पाण्डव सहायक थे, वे महारथी द्रौपदी-पुत्र बिना ब्याहे अनाथकी तरह कैसे मारे गये ? इन्हीं सब विषयोंको विस्तारपूर्वक हमें समझाइये । क्योंकि आप निरन्तर ही अज्ञानोंको ज्ञानदान दिया करते हैं । जैमिनिके ये वचन सुनकर अठारह दोषोंसे रहित* महामुनि मार्कण्डेयने इस प्रकार समझाना आरम्भ किया ॥ १४—२० ॥

मार्कण्डेयने कहा, हे मुनि श्रेष्ठ ! अब हमारे नित्यकर्म सन्ध्यावन्दनादिका समय हो गया है । अतः तुम्हारे प्रश्नोंका उत्तर देनेके लिये यह समय उपयुक्त नहीं हैं । हे जैमिनि ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनको मैं बताता हूँ । पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख ये चारों पक्षिश्रेष्ठ द्रोणके पुत्र हैं और तत्त्वज्ञानी तथा शास्त्रोंके मर्मज्ञ हैं । वेद शास्त्रार्थके विज्ञानमें उनकी बुद्धि अकुण्ठ है । वे चारों विन्ध्याचलकी कन्दरामें निवास करते हैं । उन्हें प्रसन्न करो और उनसे पूछो वेही तुम्हारा सब सन्देह दूर कर देंगे ॥ २१-२५ ॥

बुद्धिमान मार्कण्डेयके इस प्रकार कहने पर विस्मयसे जिनके नेत्र उत्फुल्ल हो गये थे, उन ऋषिश्रेष्ठ जैमिनिने फिर पूछा । जैमिनि बोले,—हे ब्रह्मन् ! यह एक बड़े आश्चर्यकी बात है कि, पक्षिगण मनुष्यकी बोली बोलते हैं । इससे अधिक आश्चर्य इस बातका है कि, पक्षी होकर उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ विज्ञानको जान लिया । जब कि, तिर्यक् योनिमें

पदको प्राप्त कर सकता है तो अपने अन्तःकरणकी धारणाशक्तिके बलसे पापकर्मनिरत अन्तःकरण मृगादि धारणा द्वारा अथवा पक्षि आदि योनिकी अन्तिम स्मृति द्वारा इस प्रकारकी योनियोंको अवश्य ही प्राप्त करेगा, इसमें सन्देह नहीं । परन्तु ऐसे आरूढ़ पतित जीवोंका नीचे गिरना केवल थोड़े ही समयके लिये दंडरूपसे पापविमुक्तिके लिये ही होता है । पुनः उसको चौरासी लक्ष योनिके क्रमके अनुसार घूमना नहीं पड़ता है । जिस योनिमें वह गिराया जाता है । वहांसे फिर पूर्व अवस्थामें प्राप्त हो जाता है जैसे यमलार्जुन वृक्षयोनि छोड़ते ही पुनः देवता हो गये थे । दूसरी ओर कर्म ही सृष्टिका कारण है ।

---

* प्रमाण—मृगयाऽक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो मदः ।
तौर्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशकोगणः ॥

अर्थ—मृगया करना, जूआ, दिनमें सोना, दूसरोंके दोषका वर्णन, स्त्रियोंका अधिक सहवास, शराब पीना, नाचना, गाना, तथा वृथा घूमना, ये कामसे उत्पन्न होने वाले दश व्यसन कहे गये हैं ।

पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्ष्यासूयार्थदूषणम् ।
वाग् दण्डजश्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः ॥

अर्थ—चुगलखोरी करना, साहस (चोरी आदि), द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण (अर्थात् साक्षी देकर धनकी हानि, अथवा ठगना) कठोर वचन, क्रूर ताड़न । (यह सब मिलकर अठारह होते हैं ।) मनुस्मृति—सप्तमअध्याय—श्लोक-४७-४८,

उनका जन्म हुआ है, तो उन्हें ज्ञान कैसे प्राप्त हुआ, वे पक्षी द्रोणके पुत्र कैसे कहाये ? जिसके वे चारों पुत्र हैं, वह द्रोण कौन है ? और उन गुणी महात्माओंको धर्मज्ञान हुआ, इसका कारण क्या है ॥ २६—२९ ॥

मार्कण्डेयने कहा,—हे जैमिनि ! पूर्वकालमें नन्दन वनमें इन्द्र, अप्सरागण और नारदके एकत्र होने पर जो कुछ हुआ, उसे सावधान होकर सुनो ॥ ३० ॥

एक दिन नारदने नन्दन वनमें एकाएक जाकर क्या देखा कि, सुरपति इन्द्र अनेक वेश्याओंसे घिरा हुआ उनके मुखोंको दृष्टि गड़ाकर देख रहा है। देवर्षि नारदको देखते

कर्मका बल सर्वोपरि है। उग्र सत्कर्म जब जीवको मनुष्यसे देवता बना सकता है, तो उग्र असत्कर्म उसे तिर्यगादि योनिमें गिरा देगा, इसमें आश्चर्य क्या है ? ऐसे आरूढ़-पतित जीव केवल थोड़े समयके लिये गिराये जानेके कारण उनके पिंडकी असम्पूर्णता तो रहती ही है, परन्तु कभी कभी उनके अन्तःकरणकी योग्यताके अनुसार उनमें पूर्व- स्मृतिका उदय होना भी सम्भव है ॥ २६—२९ ॥

टीका :—इन्द्र देवताओंका एक स्थायी पद है। देवलोकका राजा इन्द्रदेव कहाता है। जैसे काल प्रमापक देवता मनु, धर्माधर्मका न्याय करनेवाले देवता भगवान यम धर्मराज आदि स्थायी पद हैं, वैसे इन्द्रका भी स्थायी पद है। प्रत्येककी आयु अलग अलग है। आयुके अनन्तर पदधारी बदल जाते हैं। इन्द्रकी राजधानी स्वर्गलोक अर्थात् तृतीय ऊर्द्ध्वलोकमें है। क्योंकि उससे ऊपरके अन्यान्य लोकोंमें राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती, जैसे इस संसारमें पुण्यात्मा मनुष्योंके लिये राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती। देवर्षि नारदकी गति सब लोकोंमें अव्याहत है। यह देव शरीर विशिष्ट व्यक्ति ही महर्षि नारदका अधिदैव स्वरूप है। दूसरी ओर पुण्यात्मा मनुष्योंके अन्तःकरणकी ईश्वरोन्मुख वृत्ति विशेष तथा तदधिष्ठात्री देवताके सम्बन्धसे ही नारदका अध्यात्म स्वरूप प्रकट हो सकता है। जब वे भक्तके सम्मुख स्थूलरूपमें प्रकट होते हैं, वही उनका अधिभूत स्वरूप है। यही कारण है कि पुराण शास्त्रमें प्रायः देवर्षि नारदका नाम आता है। अप्सराओंके विषयमें अनेक जिज्ञासुओंकी अनेक शङ्काएं हो सकती हैं। सो अवश्य ही समाधान करने योग्य हैं। जैसे इस मृत्युलोकमें वेश्याओंका होना स्वाभाविक है। जैसे स्त्रियोंमें यह अधिकार पाया जाता है, पुरुषोंमें नहीं। इसी स्वाभाविक रीतिके अनुसार इन्द्रिय सुखभोग मूलक जो भूः भुवः स्वः ये तीन लोक हैं, इनमें स्वर्गवेश्या रूपी अप्सराओं का रहना स्वाभाविक है। क्योंकि, स्त्रीसम्बन्धीय विषय सब विषयोंसे अतिशक्तिशाली है। दूसरी ओर पुरुष विकर्षण शक्ति विशिष्ट और स्त्री आकर्षण शक्ति विशिष्ट है। इस कारण पुरुषशक्ति परास्त होती है, स्त्री शक्ति परास्त नहीं होती। यही कारण है कि, स्त्रियोंमें एक ओर जिस प्रकार त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्व की लोकातीत तपस्या विद्यमान है, उसी प्रकार दूसरी ओर वेश्या वृत्तिका नारकीय अधिकार भी विद्यमान है। तृतीयतः स्वर्गादि इन्द्रियसुखमूलक लोकोंमें स्त्री और पुरुष जो इन्द्रिय सुखकी इच्छासे पहुंचते हैं, उनमेंसे इन्द्रिय सुखाकांक्षिणी स्त्रियोंके निमित्त देवताओं तथा देवलोकवासी जीवोंका समागम सम्भव होनेपर भी निरतिशय इन्द्रीय सुखेच्छु पुरुषोंके निमित्त स्वर्वेश्याओंके अतिरिक्त कोई गति नहीं है। इस कारण मनुष्यलोकके सादृश देवलोकोंमें भी स्वर्वेश्याओं का होना स्वाभाविक है ॥ ३० ॥

ही शचीपति इन्द्रने उठकर बड़े आदरसे उन्हें अपना आसन दिया। इन्द्रको खड़े होते देखकर अप्सराएँ भी उठ खड़ी हुईं और देवर्षिको प्रणाम कर विनयसे नतमस्तक कर ठहर गया। उनसे अभ्यर्चित होकर देवर्षि और इन्द्रके बैठने पर दोनोंमें यथोचित कुशल प्रश्न हुए और नाना मनोरम कथाएँ छिड़ गयीं। बातचीतमें ही इन्द्रने महामुनि नारदसे कहा—हे महाभाग! रम्भा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची या मेनका इनमेंसे जिसे चाहें, उसे नाचनेकी आज्ञा दीजिये ॥ ३१—३४ ॥

द्विजश्रेष्ठ नारदने देवराजके इन वचनोंको सुनकर थोड़ा विचार कर विनयसे विनम्र होकर खड़ी हुई अप्सराओंसे कहा,—देखो, तुममेंसे जो अपनेको सबसे अधिक रूपवती और उदारता आदि गुणोंसे युक्त समझे, वह मेरे आगे नृत्य करे। क्योंकि रूपवती और गुणवती रमणीके सिवाय किसीको नाट्य-शास्त्रोंमें सिद्धि नहीं होती। नृत्य उसीको कहते हैं, जिसमें हाव, भाव, कटाक्ष, विक्षेप आदिकी पूर्णता हो। नहीं तो नृत्य एक विडम्बना मात्र है ॥ ३५—३८ ॥

मार्कण्डेय बोले,—फिर नारदका यह वाक्य सुनते ही सभी विनीत अप्सराएँ आपसमें कहने लगीं कि, "मैं ही सबसे अधिक गुणवती हूं; तू नहीं है"। उनमें इस प्रकार कलह छिड़ गया। देखकर भगवान् इन्द्रने कहा कि, तुम इन मुनि महाराजसे ही पूछो कि, तुममें सबसे अधिक गुणवती कौन है? मुनिवरही इसका निपटारा कर सकते हैं। हे जैमिनि! इन्द्रकी आज्ञा पालन करनेवाली उन अप्सराओंके पूछनेपर नारदने जो उत्तर दिया वह मैं तुममेंसे कहता हूँ, सुनो। नारदने कहा देखो, दुर्वासा मुनि हिमालय पर तपस्या कर रहे हैं। तुममेंसे उनको जो रिझाले, उसीको मैं सबसे गुणवती समझूंगा ॥३६—४२॥

नारदका वचन सुनकर सभी अप्सराओंने सिर हिलाकर कहा कि, यह काम हमारी शक्तिसे परे है। उनमें वपु नाम्नी एक अप्सरा थी, जिसने अनेक वार अनेक

टीकाः—यह मनोरूपी बागडोरी, इन्द्रिय रूप घोड़े आदिका जो मधुर रूपक है, यह कठोपनिषदकी छायासे यहां वर्णित हुआ है। यह रहस्य उक्त उपनिषदमें विस्तारपूर्वक कहा गया है। पुराणोंमें प्रायः अप्सराओंके द्वारा मुनि और तपस्वियोंके तपोभंगका वर्णन पाया जाता है। अतः शङ्का समाधानके लिये कहा जाता है कि, प्रथम तो स्त्री जाति आकर्षण रूपा है। द्वितीयतः स्त्री रूपी विषयके दुर्दमनीय प्रभावसे ही सृष्टिका प्रवाह प्रवाहित होता है। इस कारण सृष्टिके यावत् विषयोंसे स्त्रीरूपी विषयका बल सबसे अधिक है। जितने ज्ञानेन्द्रिय हैं, उनमेंसे रसना तथा जननेन्द्रियका प्राबल्य सबसे अधिक है। इसका कारण यह है कि, रसना तथा जननेन्द्रिय दोनोंमें ही ग्यारह इन्द्रियों जैसा...बल है। रसनामें रस ग्रहण रूपी ज्ञानेन्द्रिय और वाक्निःसरणरूपी कर्मेन्द्रिय दोनों एकाधारमें रहते हैं। इसी तरह

मुनियोंका तपोभङ्ग किया था और इसका उसे बड़ा गर्व था। उसने कहा आज्ञा कीजिये। अभी मैं वहां जाती हूं, जहां दुर्वासा तप कर रहे हैं। मैं आज कामबाणके आघातसे उनके मनोरूपी बागडोरको तोड़कर, इन्द्रियरूपी घोड़ोंको तितर बितर कर, देहरूपी रथको बुद्धि रूपी सारथीसे विहीन कर दूंगी। आज ब्रह्मा विष्णु या महेश ही क्यों न हों, उनके भी हृदयोंको कामबाणोंसे विक्षत किये बिना न रहूँगी। वपु नामकी अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वत पर चली गयी। वहां मुनिके तपस्या प्रभावसे आश्रमके श्वापद अत्यन्त प्रशान्त थे। जहाँ महामुनि दुर्वासा तप कर रहे थे, वहाँसे एक कोस दूर ठहरकर वपुने कोकिल कण्ठसे मधुर गानालाप करना आरम्भ किया। मुनिवर दुर्वासा उस गीतध्वनिको सुनकर जहाँ वह कलकण्ठी थी, वहाँ आश्चर्य चकित होकर पहुंचे ॥ ४३—४९ ॥

महान् तपस्वी दुर्वासाने उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको अवलोकनकर मनःसंयम पूर्वक यह जानकर कि यह मेरी तपस्याका भङ्ग करनेके लिये आयी है अत्यन्त क्रुद्ध होकर उससे कहा—अरी उन्मत्त खचरी! तू मेरी इस अत्यन्त कष्टसे उपार्जित तपस्यामें विघ्न डालनेके लिये आयी है। इस कारण हे बुद्धिहीने! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर पक्षीके कुलमें जन्म ग्रहण करेगी और उसी अवस्थामें सोलह वर्ष तक रहेगी यह तेरा रूप नष्ट होकर तुझे पक्षीका रूप मिलेगा और उसी रूपमें तुझे चार बच्चे होंगे। पुत्रलाभसे जो सुख होता है उससे तू वञ्चित रहेगी और शस्त्रके आघातसे तेरे पाप मिटकर फिर तू स्वर्गमें गमन करेगी। बस, अब तू कुछ भी उत्तर न दे। ब्राह्मण श्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोधसे लाल आँखेंकर, चञ्चल और मनोहर कङ्कणोंको धारण किये, मानवती वपुको इस प्रकार शाप देकर पृथ्वीको छोड़कर प्रसिद्ध गुणगणविशिष्ट और जिसके तरङ्ग अत्यन्त तरल हैं, उस आकाशगङ्गाकी ओर चल दिये ॥ ५०—५५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका वपु-शाप नामक प्रथम अध्याय समाप्त हुआ ॥

जननेन्द्रियमें स्पर्शेन्द्रियका माध्याकर्षण और दूसरी ओर कर्मेन्द्रियकी भी स्थिति विद्यमान है। इसलिये जिह्वा और उपस्थकी इतनी प्रबलता पायी गयी है। इन दोनोंमेंसे पुनः जननेन्द्रियकी ही प्रधानता सर्वोपरि है। क्योंकि वह प्रकृति माताकी सृष्टिकारिणी महाशक्तिके द्वारा अतिशय बलवती है। यही कारण है कि, उग्रकर्मा तपस्वीगण धैर्य और आत्मज्ञानकी न्यूनता होनेपर इसीके द्वारा गिराये जा सकते हैं ॥ ४३—४९ ॥

टीकाः—देवता भी अनेक श्रेणीके होते हैं, ऋषि भी अनेक श्रेणीके होते हैं। असुरगण भी कई श्रेणीके होते हैं। सब असुर, सब असुर-लोकोंमें नहीं जा सकते हैं। और असुरगण केवल ऊपरके तीन लोक तक जा सकते हैं। उसी प्रकार चारण, गन्धर्व आदि साधारण देवता ऊपरके सब लोकोंमें

द्वितीय अध्याय ।

मार्कण्डेयने कहा, समस्त पक्षियोंके राजा गरुड़ अरिष्टनेमिके पुत्र थे। गरुड़के पुत्रका नाम सम्पाति था। सम्पातिका पुत्र सुपार्श्व हुआ, जो अत्यन्त बलिष्ठ और वायुके समान पराक्रमशाली था। सुपार्श्वका पुत्र कुम्भी और कुम्भीका पुत्र प्रलोलुप था। प्रलोलुपके दो पुत्र थे। एकका नाम कङ्क और दूसरेका नाम कन्धर था ॥ १—३ ॥

कङ्कने एक दिन कैलास पर्वत पर जाकर पद्मपत्रके समान जिसके विशाल नेत्र थे और जो कुबेरका अनुचर था, उस विद्युद्रूप नामक राक्षसको देखा। वह राक्षस उस समय निर्मल मालाओं और वस्त्रोंको धारणकर स्वच्छ और सुन्दर पत्थरकी चौकी पर स्त्री सहित बैठकर मद्यपान कर रहा था। कङ्कको देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रुद्ध होकर

नहीं जा सकते हैं। ऋषिगण चतुर्दश भुवनमें रहते हैं और जा सकते हैं। परन्तु सब ऋषियोंकी भी जाने-आनेकी समान शक्ति नहीं होती है। केवल देवर्षि और महर्षि सब लोकोंमें जा सकते हैं। जैसे सिद्ध महात्मा भगवान् हनुमानजी आदि देवपदको प्राप्त करके नाना सूक्ष्मलोकोंके उपयोगी शरीर धारण करके जहां-तहाँ विचरण कर सकते हैं, वैसे ही इस मृत्युलोकमें उत्पन्न कोई-कोई ऋषि भी अपनी योगशक्ति द्वारा अपने शरीरके परमाणुओंको अन्य सूक्ष्म लोकोंके उपयोगी बनाकर वहां पहुंच सकते हैं। पुनः पार्थिव शरीर बनाकर इस मृत्युलोकमें भी प्रकट हो सकते हैं। योगशास्त्रमें ऐसी सिद्धिप्राप्तिके उपाय वर्णित हैं ॥ ५०—५५ ॥

॥ प्रथम अध्याय समाप्त ॥

टीका :—पुराणवक्ताओं तथा पुराणके पाठकोंको सदा स्मरण रखने योग्य है कि, यह संसार नाम रूपात्मक होनेसे वेदके भाष्य स्वरूप पुराणशास्त्रमें जहां-जहां कोई नाम अथवा किसी रूपका वर्णन है, वहां उसके साथ त्रिभावका अवश्य ही सम्बन्ध है। चाहे पक्षीका नाम-रूप हो चाहे पशुका, चाहे मनुष्यका नाम-रूप हो चाहे देवताका, चाहे स्त्रीका नाम-रूप हो, चाहे पुरुषका, चाहे स्थान-विशेषका नाम-रूप हो चाहे तीर्थका, जहां-जहां नाम-रूपका उल्लेख है, जानना चाहिये कि वहां अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत भावत्रयका सम्बन्ध अवश्य है। और साथ ही साथ यह भी निश्चय रखना चाहिये कि तीनों भावोंमेंसे किसी एकका यह वर्णन है ॥ १—३ ॥

टीका :—मनुष्य और देवताओंका पिण्ड पूर्णावयव है। अतः मनुष्यपिण्ड और देवपिण्ड, दोनोंमें ही पञ्चकोषोंकी पूर्णता है। इस कारण चाहे मनुष्य हों, चाहे देवता, वे सब प्रकृतिके अनुसार तीन भागमें विभक्त किए जाते हैं। प्रथम देवाधिकार, द्वितीय असुराधिकार और तृतीय राक्षसाधिकार। जो मनुष्यपिण्ड अथवा देवपिण्डका जीव परार्थी हो, आत्मनिरत हो, और सात्विक हो, वह देवाधिकारका पिण्ड माना जायगा। जो पिण्ड स्वार्थी हो इन्द्रिय परायण हो और रजोगुणसे पूर्ण हो वह असुर अधि-

बोला,—अरे पक्षियोंमें अधम ! तू यहाँ क्यों आया है ? मैं स्त्री सहित यहाँ बैठा हूँ, तू क्यों मेरे पास आया ? जहाँ एकान्तमें रहस्य कार्य होते हों, वहाँ बुद्धिमानोंको ऐसा आचरण करना धर्म नहीं है ॥ ४—७ ॥

कङ्कने कहा,—इस पर्वत पर सबका समान अधिकार है। जैसा तुम्हारा, वैसा मेरा और अन्यान्य जीवोंका भी अधिकार है। फिर तुम ही इसपर इतना अधिकार क्यों जताते हो ? ॥ ८ ॥

मार्कण्डयने कहाः—कङ्कके इस प्रकार कहने पर अत्यन्त क्रोधित होकर उस राक्षसने कङ्कका शिर खड्गसे काट डाला, शिर कटने पर रक्तस्रावके कारण वीभत्स और चेतना रहित हो कङ्क छटपटाने लगा। पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने कङ्ककी मृत्यु सुन अत्यन्त क्रुद्ध हो विद्युद्रूप राक्षसको मार डालनेका निश्चय किया ॥ ९—१० ॥

तदनन्तर कन्धरने कैलास शिखरके उसी स्थान पर जहाँ कङ्क मरा पड़ा था, जाकर अपने बड़े भाईका अन्तिम संस्कार किया, और क्रोधसे विस्फारित नेत्र हो, सर्पराजकी तरह श्वास लेता हुआ वहाँ गया, जहां उसके भ्राताको मारनेवाला वह राक्षस रहता था। पंखोंके पवनसे बड़े २ पर्वतोंको कँपाता हुआ, अपने वेगसे समुद्रके जलराशिको उछालता हुआ क्षणमात्रमें शत्रुको नाश करनेवाला वह कन्धर अपने पंखोंके सहारे शीघ्र ही पर्वत पर जा पहुंचा। वहां पहुंचकर कन्धरने देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सोनेके पलंग पर बैठा हुआ मदिरा पान कर रहा है, उसके मुखमण्डल और दोनों नेत्र रक्तवर्ण हो रहे हैं, मस्तक मालासे विभूषित है और शरीर हरिचन्दनसे चर्चित है। एवं केतकी पुष्पके गर्भपत्रके समान श्वेत दन्तपँक्तियोंसे उसकी चर्या भयावनी होरही है ॥ ११—१५ ॥

और भी देखा कि, विशाल नेत्रवाली एवं कोकिलके समान सुन्दर स्वरवाली मदनिका उसकी स्त्री उसकी बाईं ओर बैठी है। अनन्तर अत्यन्त क्रुद्ध हो कन्धरने कन्दरामें बैठे हुए उस राक्षसको ललकार कर कहा कि, रे दुरात्मन्! शीघ्र आकर मेरे साथ युद्ध कर। तूने मनोन्मत्त होकर मेरे बड़े भाई कङ्कको मारा है, अतः आज तुझे अवश्य यमके

कारका पिण्ड कहाता है। इसी प्रकार जो पिण्ड तमोगुणसे भरा हुआ हो, जिसमें केवल पर-पीड़न बुद्धि अधिक हो और जो प्रमादी हो, वह राक्षस अधिकारका पिण्ड माना जाता है। चाहे मृत्युलोकरूपी मनुष्यलोक हो और चाहे सूक्ष्म देवलोक हो, सबमें ही इन तीनों अधिकारोंके पिण्ड अवश्य ही पाए जाएंगे। भेद इतना ही है कि मनुष्यलोकमें तीनों तरहकी पिण्डोंकी अधिकता है, देवलोकमें देवाधिकारके पिण्डोंकी अधिकता रहती है और असुरलोकोंमें आसुरी अधिकारके पिण्डोंकी अधिकता रहती है। अतः कुबेरकी देवपुरीमें राक्षसका होना भी सम्भव है ॥ ४—७ ॥

यहाँ भेजूँगा । विश्वासघाती और स्त्री-बालककी हत्या करनेवाले जिन नरकोंमें जाते हैं, तू भी आज मेरे हाथसे हत होकर उन्हीं नरकोंमें जाएगा ॥ १७—१६ ॥

मार्कण्डेयने कहा :—पक्षिराज कन्धरके इस प्रकार कहनेपर स्त्रीके समीप बैठा हुआ वह राक्षस क्रुद्ध होकर बोला, रे खेचर ! तेरे भ्राताके मारे जानेसे मेरा ही पौरुष सिद्ध हुआ है, अतः आज इसी खड्गके द्वारा तुझको भी मारूँगा । रे पक्षियोंमें अधम ! क्षणमात्र ठहर, मेरे पाससे जीता नहीं जायगा । ऐसा कहकर उसने अञ्जन पुञ्जके समान चमकता हुआ निर्मल खड्ग ग्रहण किया । अनन्तर, इन्द्रके साथ गरुड़का जिस प्रकार घोर संग्राम हुआ था, उसी प्रकार पक्षिराज कन्धर और राक्षसमें तुमुल युद्ध हुआ । तत्पश्चात् उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधित होकर कोयलेके समान कृष्णवर्ण खड्गको वेगके साथ पक्षीके ऊपर फेंका। पक्षीने भी तत्क्षणात् जमीनसे कुछ कूदकर गरुड़ जिस प्रकार साँपोंको अपने चोंचसे पकड़ता है, उसी प्रकार उस खड्गको चोंचसे पकड़ लिया । और बहुत क्रोधसे चोंच द्वारा पकड़कर और पैरसे दबाकर उसे तोड़ डाला । उस खड्गके टूट जानेपर दोनोंमें बाहु युद्ध प्रारम्भ हुआ ॥ २०—२६ ॥

तब पक्षिश्रेष्ठ कन्धरने उस राक्षसके छातीपर आक्रमण करके उसकी अँतड़ी, हाथ पैर और शिर विच्छिन्न कर डाला । उसके मारे जानेपर उसकी स्त्री मदनिका भयातुर हो कन्धरके शरणापन्न हुई और बोली कि, मैं तुम्हारी स्त्री हुई । पक्षिराज कन्धर विद्युद्रूप राक्षसके वध द्वारा अपने भाईके वधका बदला ले शान्त हो मदनिकाको साथ लेकर अपने घर आया । मेनकाकी मदनिका इच्छानुसार रूप धारण कर सकती थी । अतः कन्धरके घर आकर उसने पक्षिणीका रूप धारण किया । इसीके गर्भसे दुर्वासा मुनिके शापानलसे भस्म हुई वपु नामकी अप्सरा कन्धरकी कन्यारूपसे उत्पन्न हुई । उसका नाम कन्धरने 'तार्क्षी' रक्खा ॥ २७—३१ ॥

टीकाः—अति बलशाली असाधारण पक्षी जातिका होना पदार्थ-विद्यासे भी सिद्ध है । पदार्थ विद्यासे यह सिद्ध है कि, ऐसी-ऐसी हस्ती जातिके जीव थे, जिनके तीन सूंड़ होते थे और वर्त्तमान हस्तीसे कई गुण बड़े होते थे । इसी प्रकार बड़ी बड़ी पक्षी जातिका भूतकालमें जगत्‌में होनेका प्रमाण भी मिलता है । जो सब जीव, जातियां अब लुप्त हो गई हैं । दूसरी ओर आरूढ़-पतित होकर जीवका जन्म होना भी स्वतःसिद्ध है ॥ २०—२६ ॥

टीकाः—दैवजगत्‌का होना निश्चित है । दैवपिण्डका भी स्वतन्त्र होना निश्चित है । दैवपिण्ड-धारी अप्सरा आदि जीव नानारूप और शरीर धारण कर सकते हैं, यह भी निश्चित है । कर्मकी गति अदमनीय है । कर्मफल भोगके निमित्त जीव चाहे देवयोनिका हो, चाहे अन्य योनिका, निज कर्मके प्रभावसे लोकान्तरमें जाना, पिण्डान्तरको प्राप्त होना और यदि आरूढ़ पतित हो तो पूर्वशक्तिको प्राप्त

मन्दपाल नामक ब्राह्मणके चार पुत्र थे। उनमें सबसे बड़ेका नाम जरितारि और छोटेका नाम द्रोण था। वे सभी अति प्रतिभावान् थे। उनमें वेद-वेदाङ्गके ज्ञाता धर्मात्मा द्रोणने कन्धरकी आज्ञानुसार उस सुन्दरी तार्क्षीसे विवाह किया था। कुछ दिनों बाद तार्क्षी गर्भवती हुई। गर्भधारणके साढ़े तीन महीने बाद वह कुरुक्षेत्रको गई, उस समय कुरु-पाण्डवोंका भयंकर संग्राम हो रहा था। भवितव्यता ही उस समय उसको वहाँ ले गई ॥ ३२—३५ ॥

वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त और अर्जुनमें युद्ध हो रहा था। दोनोंके निरन्तर शर छोड़नेसे नभोमण्ड। बाणोंसे ऐसा छा गया था जैसा कि टिड्डीदलसे आकाश छा जाया करता है। इसी समय अर्जुनके धनुष द्वारा चलाए हुये अहिके समान श्याम वर्ण बाणके फलने उस पक्षिणीके उदरकी त्वचाको फाड़ डाला। पक्षिणीकी कुक्षी बाणसे

करते रहना अवश्य ही सम्भव है। अतः पुराणके ऐसे वर्णन वर्त्तमान समयमें असम्भवसे प्रतीत होनेपर भी तत्वतः असम्भव नहीं हो सकते हैं ॥ २७—३१ ॥

टीकाः—भवितव्यता अवश्यम्भाविनी होती है। वैदिक-विज्ञानका कर्म रहस्य ऐसा अकाट्य और प्रबल है कि, जिसको पृथिवीके न कोई अन्य धर्मसिद्धान्त और न कोई दार्शनिक सिद्धान्त ही खण्डन करनेमें समर्थ हो सकते हैं। वैदिक कर्ममीमांसा दर्शनके अनुसार ब्रह्माण्डसृष्टि और पिण्डसृष्टि सभी कर्मके अधीन मानी गई है। एक ब्रह्माण्डकी उत्पत्ति, स्थिति और लय अथवा एक पिण्डकी उत्पत्ति, स्थिति, लय सभी उसके पूर्व कर्मके फलानुसार हुआ करता है। कर्म सहज, ऐश और जैवरूपसे तीन प्रकारका माना गया है। येही तीनों प्रकारके कर्म्म ब्रह्माण्ड और पिण्ड दोनोंकी उत्पत्ति, स्थिति और लयके कारण बनते हैं। जीव पिण्ड तीन प्रकारके होते हैं। यथा—सहजपिण्ड उद्भिज पशु आदिके, देवपिण्ड देवता असुरादिके और मानवपिण्ड मनुष्य के। ये सब पिण्ड कर्माधीन होते हैं। जीवपिण्डके जाति-आयु-भोग आदि सब उसके पूर्व प्रारब्धके अनुसार हुआ करते हैं। आरूढ़-पतित जीव जो दण्डभोगके लिये मनुष्य, देवता आदिकी योनियोंसे गिरा कर पशु आदिके सहज पिण्डमें भेजे जाते हैं, उनका भी जाति-आयु-भोग इसी प्रकारसे पूर्व किये हुए कर्मोंके द्वारा जो प्रारब्ध निश्चित हो जाता है, उसीके द्वारा हुआ करता है। साधारणरूपसे उद्भिज, स्वेदज, अण्डज, और जरायुजरूप चतुर्विध भूतसंघ सहज कर्मके द्वारा चालित होनेसे उनके लिये प्रारब्ध कर्म बननेकी आवश्यकता नहीं है। परन्तु इन योनियोंमें जो जीव आरूढ़-पतित हो दण्डित होकर गिरते हैं, वे सब प्रारब्ध कर्मके अनुसार ही चालित होते हैं। पूर्णावयव मानवपिण्ड अथवा देवपिंड-धारी जीवके पूर्व जन्मोंके किये हुये कर्मोंके सञ्चित संस्काररूपी कर्म-बीजोंमेंसे जो थोड़ेसे कर्मबीज अङ्कुरित होकर नया भोगपिण्ड बना देते हैं, उन कर्मबीजोंको प्रारब्ध कहते हैं। कर्मबीजको संस्कार कहते हैं। जैसे बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति होती है, वैसे ही संस्कारसे जाति-आयु-भोग प्राप्त करनेवाले पिण्ड उत्पन्न होते हैं। संस्काररूपी कर्मबीज तीन श्रेणीका होता है। बीजके बड़े कोषको संचित संस्कार कहते हैं, जो नये संस्कार होते हैं उनको क्रियमाण कहते हैं, और जिनसे शरीर बनता है उनको ही प्रारब्ध कहते हैं। वही प्रबल प्रारब्ध संस्कार ही भवितव्यता कहाती है। जो अनिवार्य्य है। यही कारणरूपी संस्कारसे कर्मरूपी कार्य्यका प्रकट होना कहा गया है ॥ ३५ ॥

कट जानेपर उसमेंसे चन्द्रमाके समान श्वेतवर्ण चार अण्डे निकलकर पृथ्वीपर गिरे। इतने ऊपरसे गिरनेपर भी (अण्डगत जीवोंके प्रारब्ध वश) उनकी आयु शेष रहनेके कारण वे ऐसी भूमिपर गिरे, मानो वहाँ उनके लिये रुई बिछा रक्खी हो। (वहाँकी भूमिपर हत वीरोंका माँस इतना रौंदा गया था कि, उसका कीमा बनकर उससे भूमि मृदु हो गयी थी।) ठीक इसी समय (ऐसी देवी सहाय हुई कि) भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका बृहत् घण्टा भी बाणके द्वारा छिन्न होकर पृथिवी पर गिरा। यद्यपि चारों अण्डों और घण्टाका पृथिवी पर एक साथ ही गिरना हुआ किन्तु (भवितव्यता प्रबल होनेसे) घन्टा इस प्रकारसे गिरा कि जिससे कीमेके ऊपर स्थित अण्डे सब ओरसे अच्छी तरह ढँक गये॥ ३६—४०॥

राजा भगदत्तके उसी युद्धमें मारे जानेपर भी कुरु-पाण्डवकी सेनाओंका बहुत दिन तक युद्ध होता रहा। तत्पश्चात् युद्ध समाप्त होनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्म सम्बन्धीय सब विषयोंका उपदेश सुननेके लिये शान्तनु तनय महात्मा भीष्मके समीप गये। अनन्तर हे द्विजश्रेष्ठ! घण्टेसे ढके हुए अण्डे जहाँपर थे, ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ संयतमना शमीक मुनि अकस्मात् वहाँ उपस्थित हुये। वहाँ उनको घण्टेके अन्दरसे पक्षिशावकोंका "चिची-कुची" शब्द सुनाई दिया। उन सबोंको उस समय पूरा ज्ञान हो चुका था तौ भी बाल्या-वस्था होनेके कारण शब्द अस्पष्ट थे। तदनन्तर शिष्य सहित महर्षिने पक्षीके बच्चोंका शब्द सुन आश्चर्य्य चकित हो, घण्टेको उठाया और मातृ-पितृविहीन एवं पक्षरहित पक्षि-शावकोंको देखा। भगवान् शमीक मुनि वहाँ उस प्रकार भूमिपर स्थित बच्चोंको देखकर साथके ब्राह्मणोंसे विस्मयके साथ कहने लगे :—प्राचीनकालमें देवताओंके द्वारा विताड़ित होकर जब दैत्यसेना भागने लगी, उस समय ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्यने उन लोगोंको ठीक ही कहा था, कि हे दैत्यगण! मत भागो, लौट आओ, इस प्रकार कातर हो क्यों भागे जा रहे हो? शूरता और यशको परित्याग करके कहाँ जानेसे नहीं मरोगे?॥ ४१—४८॥

चाहे युद्ध करो या भागते रहो, पूर्वकालमें जब तुम्हें विधाताने उत्पन्न किया, तब जितनी आयु दे रक्खी है, उतनी समाप्त हुए बिना अथवा उसकी इच्छाके बिना तुम्हारी मृत्यु हो नहीं सकती। कोई घरमें ही पड़े पड़े मर जाते और कोई भागते हुए मारे जाते हैं। कोई खाते खाते मरते हैं, तो कोई पेय वस्तुओंका पान करते करते मर जाते हैं। कोई विलासी पुरुष इच्छागामी और निरोग होते हुए शस्त्रादिसे बिना आहत हुए ही मृत्युके वशीभूत हो जाते हैं। कितने ही तपस्यामें निरत रहते हैं, किन्तु उन्हें भी यमदूत खींच ले जाते हैं। कितने ही योगाभ्यासमें पारङ्गत होते हैं, किन्तु उनको भी देह छोड़ना पड़ता है। उन्हें भी अमरता नहीं प्राप्त हुई। पूर्वकालमें शम्बर नामक असुर हुआ, उसकी

छातीमें कुलिशपाणि इन्द्रने वज्रका आघात किया, किन्तु उससे वह नहीं मरा। परन्तु उसी वज्रसे उसी इन्द्रने अनेक दानवोंपर प्रहार किया, जिससे वे तत्क्षण मर गये। क्योंकि उनका काल आगया था, (उनकी आयुकी अवधि समाप्त होगई थी) इन सब बातोंका विचारकर घबड़ाओ नहीं और लौट आओ ॥ ४६—५४ ॥

हे ब्राह्मणों! शुक्राचार्यका यह आश्वासन युक्त उपदेश सुनकर मरणका भय त्यागकर सब दैत्य (जो भाग रहे थे) लौट आये। हे विप्रो! वह शुक्राचार्यका वचन इन पक्षि-श्रेष्ठोंने सत्यकर दिखाया है, जो उस अति-मानुष-युद्धमें भी मरणको प्राप्त नहीं हुए। अण्डोंका ऊपरसे गिरना, साथ ही घण्टेका गिरना और इससे पहिले ही रक्त, वसा और मांससे पृथ्वीका आच्छन्न हो जाना, यह सब आश्चर्यमय दैवी घटना है। हे विप्रो! ये सब कौन हैं? सर्वथा ये सामान्य पक्षी नहीं जान पड़ते। संसारमें दैवकी अनुकूलता बड़े भाग्यकी द्योतक होती है। इस प्रकार सम्भाषण कर और उन पक्षियोंको फिर देखकर महर्षिने कहा, अब इन पक्षियोंके बच्चोंको लेकर लौटकर आश्रममें चले जाओ और इन्हें ऐसे स्थानमें रक्खो, जहाँ बिल्ली, चूहा, नेउला, बाज आदिका भय न हो। हे ब्राह्मणो! अधिक यत्नका क्या प्रयोजन है? सम्पूर्ण जीव अपने-अपने कर्मके अनुसार ही जीते-मरते हैं। जैसे कि, ये पक्षी जी गये। तथापि मनुष्यको सब कामोंमें यत्न अवश्य करना चाहिये। पुरुषार्थ करते रहनेपर मनुष्य सज्जनोंके निकट निन्दाका पात्र नहीं होता। इस प्रकार मुनिवरकी आज्ञा पाकर वे मुनिकुमार, तापसी लोगोंके निवाससे जो रमणीय हो रहा था और भँवरोंसे घिरे हुए सघन वृक्षादिसे युक्त था, उस अपने आश्रममें उन पक्षिशावकोंको लेकर चले गये। फिर द्विजश्रेष्ठ महर्षि शमीक भी इच्छानुसार वन्य फल, मूल, फूल और कुश ले आये, तथा उन्होंने ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इन्द्र, यम, अग्नि, वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और विधाताके उपदेशसे वेदोक्त वैश्वदेव आदि अनेक सत्कर्मोंका अनुष्ठान किया ॥ ५५—८५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चटकोत्पत्ति नामक द्वितीय अध्याय समाप्त हुआ।

तृतीय अध्याय ।

मार्कण्डेयने कहा—हे ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ ! महामुनि शमीक प्रतिदिन आहार-जल देकर हिंसक जीवोंसे रक्षा करते हुये उनका पालन पोषण करने लगे। इस प्रकारसे एक मासके भीतर ही पक्षिगण आकाश मार्गमें उड़ने लगे, जिनको मुनिकुमारगण अति कौतूहलसे चंचल नेत्रों द्वारा देखते रहते। पक्षियोनि प्राप्त वे महात्मागण नद-नदी, नगर-सागरमयी रथ चक्राकार पृथिवीको देखते और क्लान्त हो जाते तो पुनः आश्रममें लौट आते। महर्षिके प्रभावसे वहां उनको ज्ञानका भी उदय हुआ। एक दिन जब महर्षि शमीक शिष्यों पर कृपा करके उनको धर्मोपदेश दे रहे थे, ऐसे समयमें पक्षिगण उनकी प्रदक्षिणा करके चरणोंमें प्रणाम करके कहने लगेः—हे मुने ! घोर मृत्युसे आपहीके द्वारा हम रक्षित हुये हैं, आपहीने हमलोगोंको आश्रय, भोजन और जल दिया है। अतः आप ही हमारे पिता और गुरु हैं ॥ १—५॥

गर्भमें वासके समय ही हमारी माताका वियोग हुआ, पिताने भी हमारा पालन नहीं किया, आपहीने हमें जीवन दान देकर बाल्यकालमें रक्षा की है। जब हमलोग भूमिपर गिर, कृमिके समान सूख रहे थे, तब आपहीने हस्तीके घण्टेको उठाकर हमारा दुःख दूर किया था। ये पक्षिशावक कैसे बढ़ेंगे, कब मैं इनको आकाशमें उड़ते हुये देखूंगा, कब ये भूमिसे वृक्षोंपर उड़ते फिरेंगे, कब मैं इनको एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर उड़ते हुये देखूंगा, मेरे पाससे विचरते हुये इनके पंखोंकी वायुसे उड़ी हुई धूलिसे कब मेरी स्वाभाविक कान्ति नष्ट होगी, इस प्रकार चिन्ता करते हुए हे तात ! आपहीने हमारा प्रतिपालन किया है। अब हम सबने बड़े होकर ज्ञान लाभ किया है। अब हम क्या करें, (सो आज्ञा देवें) ॥ ६—११ ॥

टीकाः—पृथिवी गोलाकार होनेसे ऊपर उड़नेवाले जीव अथवा आकाशयानसे उड़कर चलनेवाले पथिक पृथिवीको रथचक्राकार देखते हैं। पृथिवीका जो अंश ऊपरसे दिखाई देता है, वह गोल दिखाई देता है। पुराणके इस वर्णनसे सिद्ध होता है कि, उस समयके विद्वानगण भूविद्या (जियग्राफी) शास्त्र के ज्ञाता थे। और यह भी सिद्ध होता है कि उस समय वर्त्तमान एरोप्लेन (वायुयान) का कोई न कोई प्रकार आविष्कृत था ॥ १—६ ॥

टीकाः—दैव जगत्‌के जितने बड़े-बड़े पद हैं, उनमेंसे सबसे बड़ा राजसिकपद इन्द्रपद है, वस्तुतः इन्द्र देवलोकके राजा हैं। मृत्युलोक आदिसे सम्बन्धयुक्त भूलोकका जो देवताओंके सम्बन्धका अंश है, और इसमें जितना दैवकार्य्य होता है, उसके शासक इन्द्र हैं। भूलोकमें और इसके अन्तर्गत

शिष्योंसे परिवेष्टित महर्षि शमीक पक्षियोंके इस प्रकार सुसंस्कृत और स्पष्ट वचन सुन अपने पुत्र श्रृङ्गी सहित बहुत विस्मित हुए और कौतूहलसे रोमाञ्चित होकर उनसे कहने लगेः—ठीक-ठीक बोलो कि तुम लोगोंने इस प्रकार स्पष्ट वाक्य कैसे उच्चारण किया और किसके शापसे तुमलोगोंके रूप और वाक्यमें इस प्रकारकी विकृति हुई है, सो भी बताओ। पक्षियोंने कहाः—प्राचीन कालमें विपुलस्वान् नामसे प्रसिद्ध एक मुनि थे। उनके दो पुत्र थे। जिनमें एकका नाम सुकृत और दूसरेका नाम तुम्बुरु था। हम चारों उन्हीं संयतात्मा सुकृतके पुत्र थे। तपश्चर्य्या-निरत जितेन्द्रिय उन ऋषिके निकट हमलोग सर्वदा ही विनय आचार और भक्तिसे युक्त हो नम्रतासे रहते और उनकी इच्छानुसार समिधा, फूल आदि तथा भोजन सामग्री एकत्रित करते थे। इस प्रकार वे हमलोगोंके साथ कानन (तपोवनमें) वास करते थे ॥ १२—१८ ॥

सुरेश्वर इन्द्र एक दिन विशाल वृद्ध पक्षीका रूप धारण करके आये। इनके शरीर शिथिल और ताम्बाके समान लाल नेत्र थे। वे सत्य, शौच, क्षमा और आचारसम्पन्न उदारचेता ऋषिके निकट कुछ पूछनेको आये अथवा हमलोगोंको शाप दिलानेके लिए ही आये। पक्षीने कहा, हे द्विजेन्द्र! मैं अत्यन्त क्षुधासे पीड़ित हूँ, मेरी रक्षा करें। हे महाभाग! मैं भक्षणार्थी हूँ आप मेरी गति स्वरूप हों। हे महाभाग! मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरपर रहता था। अकस्मात् पक्षिराज गरुड़के पङ्खोंकी अति प्रबल वायुसे यहाँ गिरकर मूर्च्छित हो गया। इस प्रकार सात दिन व्यतीत होनेपर आठवे दिन मुझे चैतन्य हुआ। मुझे जब चेतना आगयी, तब क्षुधासे व्याकुल होकर आपकी शरणमें आगया हूं। हे विशुद्धमते! मैं कुछ आहार्य्य-पदार्थ चाहता हूँ और मेरा चित्त अत्यन्त कातर हो रहा है। कहीं चैन नहीं है। तो हे ब्रह्मर्षे! मुझे बचानेका स्थिर विचार कीजिये और जिससे मेरा प्राण बचे, ऐसा कुछ भोजन दीजिये ॥ १९—२५ ॥

इस प्रकार उसके कहने पर पक्षिरूपी इन्द्रसे महर्षिने कहा,—तुम जैसा चाहते हो, वैसा भोजन तुम्हारी प्राण रक्षाके लिये मैं दूँगा। यह कहकर द्विजश्रेष्ठने उससे फिर

मृत्युलोक आदिमें जितने देवता अपने देवपदों पर नियुक्त है, उनका निरीक्षण करना भी इन्द्रका कार्य्य है। उनका अधिकार भूर्लोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक इन तीन लोकोंमें अक्षुण्ण है। असुरगण इन लोकोंमें आधिपत्य करके आसुरीशक्तिको बढ़ाने न पावें, इसको देखना भी उन्हींका कार्य्य है। वे राजसिक देवता होनेसे पदच्युत होनेका भय उनको अवश्य रहता है। उग्र तपस्या करनेवाले महात्मा लोकान्तरमें आकर देवपदवीरूप इन्द्रपदके अधिकारी हो सकते हैं, इस कारण ऐसे पुण्यात्मा बड़े तपस्वीकी परीक्षा लेना अथवा चारसे छिवाना उनका स्वाभाविक कार्य्य है। जब इन्द्र देख लेते हैं कि तपस्वीकी इच्छा इन्द्रपदको छीननेके लिये नहीं है, तब वे निश्चिन्त हो जाते हैं ॥ १९—२५ ॥

पूछा,—तुम्हारे लिए मुझे कौनसा आहार जुटाना होगा? उसने कहा,—नर माँससे मेरी भलीभाँति तृप्ति हो जायगी। ऋषि बोले,—हे अण्डज! तुम्हारी बाल्यावस्था बीत गयी; यौवनावस्था भी बीत गयी। जिस अवस्थामें मनुष्यकी वासनाएँ नष्ट हो जाती हैं, वह वृद्धावस्था भी तुम्हें इस समय प्राप्त हुई है। फिर इस ढलती अवस्थामें ऐसी निन्दनीय (हिंसात्मक) बुद्धिवाले तुम कैसे हो गये हो? कहाँ तो मनुष्यका मांस और कहाँ तुम्हारी अन्तिम अवस्था? यह देखकर तो यही कहना पड़ता है कि, दुष्ट बुद्धिके लोगोंकी दुराशाकी निवृत्ति कदापि नहीं होती। अथवा मुझे इन सब बातोंकी आलोचना करनेका क्या प्रयोजन है? मुझे यही सोचना चाहिये कि, जो स्वीकार किया है, उसे दे दिया जाय। यह कहकर और 'बस, ऐसा ही करना चाहिये' ऐसा निश्चय कर उस श्रेष्ठ ब्राह्मणने हमलोगोंको बुलाया। हम भी पिताके पास उपस्थित होकर विनयावनत और भक्तिभावसे हाथ जोड़ कर खड़े हो गये। मुनि-हृदय क्षुब्ध हो रहा था। फिर भी हम लोगोंकी प्रशंसा करते हुए वे अत्यन्त निष्ठुर वचन बोले कि,—देखो, तुम लोगोंने आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया है। तुम श्रेष्ठ ब्राह्मण हो और मेरे साथ ही तुम भी पितृ ऋणसे मुक्त हो गये हो। सुसन्तान उत्पन्न करनेसे धर्मशास्त्रानुसार मनुष्य पितृ ऋणसे उद्धार पा जाता है। हे विप्रो! जिस प्रकार तुम मेरी सन्तान हो, उसी प्रकार तुम्हें भी उत्तम सन्तान हुई हैं। मैं तुम्हारा पिता हूँ। यदि तुम मुझे परम पूज्य और अपना गुरु समझते हो, तो निष्कपट चित्तसे मेरा कहा करो। पिताका वाक्य समाप्त भी न होने पाया था कि, हम लोगोंने आदर पूर्वक कहा कि, पिताजी! आप जो कुछ कहेंगे, वह हमलोगोंके द्वारा सम्पादित हुआ ही समझिये ॥ २६—३६ ॥

ऋषि बोले,—यह भूखा प्यासा पक्षी मेरी शरणमें आया है। इसकी क्षुधाकी तृप्ति तुम्हारे माँससे क्षणमात्रमें हो जायगी और तुम्हारे रक्तसे इसकी प्यास भी बुझ जायगी। अतः शीघ्र ही अपना माँस-रक्त देकर इसकी भूख-प्यास शान्त कर दो। यह आज्ञा सुन कर अत्यन्त व्यथित हृदय होकर भयसे काँपते हुए हम बोले,—यह तो अत्यन्त कष्टकर कार्य है। यह कहकर हमने कहा,—यह हमलोगोंका काम नहीं है। कोई भी बुद्धिमान् पुरुष दूसरेके शरीरके लिये अपने शरीरको कैसे काट सकता या नष्ट कर सकता है? जैसा आत्मा वैसा पुत्र होता है। श्रुतिमें भी "आत्मा वै पुत्र नामासि" कहकर वर्णन किया है। पितृऋण, देवऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्रोंमें कहे हैं, उन्हें पुत्र चुका देता है, किन्तु कोई पुत्र शरीर ही नहीं दे डालता। अतः यह काम हमसे नहीं होगा। पूर्वकालमें भी ऐसा काम किसीने नहीं किया है। जीवित रहकर मनुष्य कल्याणकी प्राप्ति करता है और जीवित रहकर पुण्यकार्य भी करता है। मृत होनेपर देहका नाश हो जाता है और

सब धर्मकार्य रुक जाते हैं। इसीसे धर्मको जाननेवाले सत्पुरुषोंने कहा है कि, सब प्रकार से सदा अपनी रक्षा करनी चाहिये ॥ ३७—४२ ॥

मुनि हमारा यह वचन सुनकर मानो क्रोधसे जलने लगे और फिर मानो अपने नेत्रोंसे हमें जला रहे हों, बोले,—मैंने इससे प्रतिज्ञा की है; कि तुम्हें तुम्हारा इच्छित भोजन मैं दूंगा। परन्तु जब तुम मेरा कहा नहीं कर रहे हो, तब मैं तुम्हें शाप देता हूं। तुम मेरे शापसे दग्ध होकर तिर्यक (पक्षि) योनिको प्राप्त होगे। हे ब्राह्मण श्रेष्ठ! हमसे यह कहकर पिताजीने शास्त्रानुसार अपनी और्द्ध्वदेहिक अन्त्येष्टि क्रिया की और उस पक्षीसे कहा,—मुझे अब तुम निर्भय होकर भक्षण करो। मैंने अपना यह देह तुम्हारे लिये आहार कर दिया है। हे पक्षिराज ब्राह्मणका तभी तक ब्राह्मणत्व कहा गया है, जब तक वह अपने सत्य पालनमें अटल हो। दक्षिणायुक्त यज्ञानुष्ठानसे या अन्य कर्मानुष्ठानसे ब्राह्मण वह महान् पुण्य नहीं प्राप्त कर सकता, जो सत्यके परिपालनसे करता है ॥ ४३—४७ ॥

टीकाः—जब कोई गृहस्थ यह समझ लेता है कि मुझे लोकान्तरमें श्राद्धादिसे सहायता पहुंचानेवाला पुत्रादि कोई नहीं है तो ऐसे धार्मिक व्यक्ति अपना श्राद्ध अपने जीवित अवस्थामें ही कर लेते हैं। ऐसी शास्त्रकी विधि भी है। द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्ति, इन तीनोंके द्वारा प्राणमय कोष, और मनोमयकोषकी सहायतासे श्राद्धकी क्रिया लोकान्तरमें होती है। जैसे विना तारकी सहायतासे पदार्थविद्या (सायन्स) की क्रिया द्वारा आकाशके वैद्युतिक तरङ्गोंकी सहायतासे हजारों कोसके अन्य व्यक्तियोंसे मनुष्य बात चीत कर सकता और गाना सुन सकता है, उसी प्रकार प्राणमय तरङ्गोंकी सहायतासे एक मनोमय कोषका सम्बन्ध दूसरे लोकके मनोमय कोषके साथ होकर वहाँ तृप्तिके द्रव्य और सुख-शान्ति तथा आधिदैविक सहायता श्राद्ध क्रिया द्वारा श्राद्धकर्त्ता पहुँचा सकता है। यही श्राद्धतत्त्वका विज्ञान है। प्रेतलोकमें तथा नरकलोकमें दुःख दूर करना और सहायता पहुँचाना, दुःखप्रद लोकोंमें जाते समय रास्तेमें सहायता पहुँचाना, इस प्रकारसे दुःख पूर्णलोकोंमें आत्मीय स्वजनोंका यहींसे यथासम्भव सहायता करना श्राद्ध द्वारा प्रसिद्ध होता है। सुख पूर्ण लोकोंमें स्वजनोंकी इस प्रकार क्रिया द्वारा शान्ति और सुखकी अभिवृद्धि होती है। परलोक गामी आत्माकी जो-जो रुकावटें और बाधाएं परलोक गमनके स्थान-स्थानपर होती हैं, उनमें भी श्राद्धक्रिया सहायता पहुँचाती है। इसी कारण भविष्यत्में कोई श्राद्ध करनेवाला नहीं रहनेसे विचारशील व्यक्ति जीवित अवस्थामें ही अपना श्राद्ध कर लेते हैं। श्राद्धक्रिया द्वारा परलोकगामी आत्मा और नैमित्तिक पितर आदि ही केवल तृप्त नहीं होते बल्कि नित्यपितर अर्य्यमा अग्निष्वात्ता आदि भी प्रसन्न और सम्वर्द्धित होते हैं। नित्यपितृगणके पद इन्द्र, वरुण, मनु आदि देवपदोंकी तरह नित्य देवपद हैं। वे नित्यपितर धर्माधर्मके फलभोगमें सहायता देते हैं। उनको प्रसन्न करना भी मनुष्यमात्रका कर्त्तव्य है। यही कारण है कि संन्यासआश्रम ग्रहण करते समय महात्मागण अपना श्राद्ध अपने आपही करके पितृऋणसे अपनेको मुक्त कर लेते हैं। इसी कारण श्राद्ध करना सबका कर्त्तव्य है ॥ ४३—४७ ॥

ऋषिका यह वाक्य सुनकर पक्षिरूपधारी इन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर मुनिसे कहने लगा,—हे द्विज श्रेष्ठ ! तुम योगके सहारेसे इस कलेवरको छोड़ दो। क्योंकि हे विप्रेन्द्र ! मैं जीवित प्राणीका मांस कभी भक्षण नहीं करता ॥ ४८—५० ॥

उसका यह वचन सुनकर (देह त्यागके विचारसे) मुनिने समाधि चढ़ा ली। मुनिवरका देह त्यागका निश्चय जान कर इन्द्रने पक्षीका रूप त्याग और अपने रूपमें प्रकट होकर मुनिसे कहा,—हे बुद्धिमान् ब्राह्मण श्रेष्ठ ! अपनी बुद्धिसे इस समय जो ज्ञातव्य विषय है, उसे तुम जान लो। हे निष्पाप ! जिज्ञासा बुद्धिसे (अर्थात् तुम्हारी परीक्षा लेनेके लिए) ही मैंने यह अपराध किया है। इसके लिये हे निर्मलचेता मुने ! तुम मुझे क्षमा करो और कहो कि, मैं तुम्हारी कौन सी इच्छा पूर्ण करूँ ? तुम्हारे सत्य वचनके परिपालनसे तुमपर मुझे बड़ी प्रीति हुई है। आजसे तुमको ऐन्द्रज्ञान प्राप्त होगा और तुम्हारे तपश्चरणमें कोई विघ्न न होगा ॥ ५१—५४ ॥

यह कहकर इन्द्रके चले जानेपर क्रोधयुक्त महामुनिको हमलोगोंने झुककर प्रणाम किया और कहा,—हे तात ! मरणके भयसे अत्यन्त भीत होनेवाले और जीवित रहनेकी प्रीतिपूर्वक अभिलाषा करनेवाले हम दीनोंपर आप क्षमा करनेमें समर्थ हैं। त्वचा, हड्डियाँ और माँससे मिले हुए इस देह पिण्डपर जिसमें पीब और रक्त भरा हुआ है, इतनी आसक्ति नहीं रखनी चाहिये; परन्तु हे महामते ! हम लोगोंकी उसीपर इतनी प्रीति है। हे महाभाग ! सुनते हैं कि, प्रबल शत्रु स्वरूप काम क्रोधादि शत्रुओंके वशीभूत होकर सब लोग मोहको प्राप्त होते हैं। हे पिताजी ! प्रज्ञा रूपी चहारदीवारीसे घिरी हुई यह देहरूपी विशाल नगरी है। अस्थियाँ इसके खम्भे हैं। चर्म रूपी दीवारोंसे यह सुदृढ़ है। माँस और रक्तसे लिपी-पुती है। स्नायुओं द्वारा सब ओरसे परिवेष्टित है। और इसके बड़े-बड़े नौ दरवाजे हैं। इस नगरीमें चेतनावान् पुरुष नृपरूपसे अवस्थित है ॥ ५५—६० ॥

उस राजाके मन और बुद्धि नामक दो मन्त्री हैं। वे परस्पर विरोधी हैं। अतः एक दूसरेका नाश करनेमें सदा लगे रहते हैं। राजाके काम, क्रोध, लोभ और मोह

टीकाः—भगवान् गणपतिदेवकी शक्ति सिद्धि देवी है। इसी कारण गणपति सिद्धिदाता कहलाते हैं। दैवीसिद्धिके तीन भेद हैं। प्रथम आधिभौतिकसिद्धि-यथा लौकिक ऐश्वर्य्य और लोकमें दिखानेवाली सिद्धियाँ प्राप्त करना, द्वितीय आधिदैविकसिद्धि अर्थात् अणिमा, लघिमा, महिमा आदि ऐसी सिद्धि जिनका लक्षण योगदर्शन आदि शास्त्रोंमें पाया जाता है। और तृतीय अध्यात्मसिद्धि, यथा वेदका सुनाई देना। अध्यात्म शास्त्र प्रकाशन करना और ज्ञान सम्बन्धीय सब सिद्धि। ऐन्द्रज्ञान इसी अध्यात्म सिद्धिके अन्तर्गत है, जो दैवी कृपासे ही प्राप्त होता है ॥ ५१—५४ ॥

नामक चार शत्रु हैं। वे सदा ही राजाका नाश करनेकी चेष्टा किया करते हैं। वह राजा जब तक पूर्वोक्त नवों द्वार बन्द किये रहता है, तब तक वह अत्यन्त स्वस्थ (स्वास्थ्य-सम्पन्न) नीरोग और प्रेमपूर्ण (उल्लसित) रहता है। तबतक शत्रुगण उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। उसपर आक्रमण नहीं कर सकते। जब वह सब द्वार खुले छोड़ देता है, तब राग (आसक्ति) नामक शत्रु नेत्रादि द्वारोंपर आक्रमण करता है। यह शत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है। यह जब नेत्र आदि पञ्च द्वारोंमें प्रवेश करता है, तब इसके पीछे-पीछे और तीन घोर शत्रु भी उस नगरीमें घुस जाते हैं ॥ ६१—६६ ॥

इन्द्रिय संज्ञक द्वारोंसे पुरीमें प्रवेश कर लेनेपर राग मन संयुक्त होनेका अभिलाष करता है। यही राग रूपी दुष्ट शत्रु मन और इन्द्रिय रूपी द्वारोंपर अधिकार कर प्रज्ञारूपी चहारदीवारको तोड़ गिराता है। उसके वशमें मन चला गया है, यह देखकर बुद्धि भी उसी क्षण नष्ट हो जाती है। फिर उस नगरीमें अमात्य रहित और प्रजा वर्गसे परित्यक्त होनेके कारण तथा शत्रुओंका प्रवेश हो जानेके कारण राजा नाशको प्राप्त होता है। इस प्रकार काम, क्रोध, लोभ और मोह ये मनुष्यकी स्मृतिको नाश करनेवाले दुरात्मा उस पुरीको नाश करनेमें प्रवृत होते हैं। कामसे क्रोध और क्रोधसे लोभ उत्पन्न होता है। लोभसे मोह उत्पन्न होता है और मोहसे स्मृति भ्रम होने लगती है। स्मृति भ्रंशसे बुद्धि नाश होती है और बुद्धि नाशसे सर्व नाश हो जाता है। इस प्रकार हमारी बुद्धि राग, लोभ आदिके वशीभूत हो जानेसे नष्ट हो गयी है। इसीसे जीवनके प्रति हमें लोभ हुआ है। अतः हे विप्र! हमपर प्रसन्न होइये, और हे भगवन्! आपने जो हमें शाप दिया है, वह प्रतिफलित न हो, और हे मुनिश्रेष्ठ! जिससे हम कष्टमयी तामसी गतिको प्राप्त न हों, ऐसा कीजिये ॥ ६७—७३ ॥

ऋषि बोले,—हे पुत्रो! जो कुछ मैंने कहा है, वह कदापि मिथ्या नहीं हो सकता और आजतक मेरे मुखसे एक भी बात मिथ्या नहीं निकली है। दैव ही इसमें मैं प्रधान मानता हूँ और वृथा पौरुषको धिक्कार करता हूँ। उसी दैवने जो मैंने सोचा भी नहीं था, वह मुझसे बलपूर्वक करा डाला। अस्तु, जबकि, तुमने विनयसे मुझे प्रसन्न किया है, तब तुम तिर्यक् योनिमें जानेपर भी श्रेष्ठ ज्ञानको प्राप्त करोगे। तुम ज्ञानके द्वारा सत्पथका अवलोकन करनेमें समर्थ होगे, तुम्हारे क्लेश और पाप धो जायँगे और मेरे प्रसादसे सन्देह रहित होकर श्रेष्ठ सिद्धिको प्राप्त करोगे। हे पुत्रों! जब तुम जैमिनीके प्रश्नोंके सन्देहोंको मिटा दोगे, तब मेरे शापसे छूट जाओगे। यही मैंने तुमपर अनुग्रह किया है। हे भगवन्! पूर्वकालमें दैव वशात् इस प्रकार हम पिताके द्वारा अभिशप्त हुए थे। तदनन्तर बहुत समय बीतने पर हम दूसरी योनिमें

पहुंचे । रण हो रहा था, उस समय हमारा जन्म हुआ और आपने परिपालन किया । हे द्विज श्रेष्ठ ! हम लोग अब (उड़ने योग्य) पक्षी हो गये हैं । इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो भाग्यके चक्रमें न फँसा हो । सभी प्राणियोंके सब काम दैवके अधीन रहकर ही होते हैं ॥ ७४—८० ॥

मार्कण्डेय बोले,—इस प्रकार उन पक्षियोंका वचन श्रवण कर षड्गुणैश्वर्य सम्पन्न मुनि श्रेष्ठ महाभाग शमीकने पासमें बैठे हुये ब्राह्मणोंसे कहा कि, आप लोगोंसे मैंने पहिले ही कहा था कि, ये तो साधारण पक्षी नहीं जान पड़ते । ये कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं, जो उस अतिमानुष युद्धमें भी मृत्युको प्राप्त नहीं हुए । फिर उन चारों पक्षियोंने सुप्रसन्न महात्मा शमीककी आज्ञाके अनुसार वृक्ष लतादिसे पूर्ण श्रेष्ठ विन्ध्यपर्वतपर गमन किया । वे धार्मिक पक्षी आजतक उसी पर्वतशिखर पर निवास करते हैं । वे तप और स्वाध्यायमें निरत हैं तथा समाधि लगानेका उन्होंने निश्चय कर लिया है । इस प्रकार मुनिवर (शमीक) से प्रतिष्ठा पाये हुए वे मुनिकुमार पक्षि योनिको प्राप्त हुए हैं और जहाँ पवित्र जल भरपूर है, उस पर्वत श्रेष्ठ गहन विन्ध्याचल पर संयतचित्त होकर निवास करते हैं ॥ ८१—८६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका विन्ध्यप्राप्ति नामक तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

चतुर्थ अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले—इस प्रकार वे द्रोणके पुत्र पक्षि होकर भी ज्ञानी हुए । वे विन्ध्यपर्वतपर रहते हैं । उनके पास जाकर उन्हींसे तुम पूछो । मार्कण्डेयका वचन श्रवणकर जहाँ वे धर्मात्मा पक्षी रहते थे, उस विन्ध्याचलके शिखरपर जैमिनि पहुँचे । पर्वतके निकट पहुँचते ही जैमिनिने पक्षियोंके वेदपाठकी ध्वनि सुनी । उसे सुनकर वे विस्मित हुए और सोचने लगे कि, ये मुनिकुमार यद्यपि पक्षियोनिको प्राप्त हुए हैं, तथापि ब्राह्मणोंकी तरह सुस्पष्ट और दोष रहित वेदपाठ कर रहे हैं । इसका मुझे बड़ा आश्चर्य

---

* साधारणतः ऐसी शङ्का हो सकती है कि, आरूढ़-पतित जीव पक्षियोनिमें आकर ऐसी पूर्व-स्मृति और पूर्वशक्तिको जब लाभ कर सकते हैं, तब वर्तमान समयमें ऐसा उदाहरण क्यों नहीं देख पड़ता ? इस श्रेणीकी शङ्काओंका सरल समाधान यह है कि, सृष्टिमें जीवोंकी उत्पत्ति, कालके अनुरूप होती है । जीवकी उत्पत्तिके साथ देश और काल दोनोंका ही समान सम्बन्ध है । गरमदेशके उद्भिज आदि जीव शीत देशमें न हो सकते न जीवित रह सकते हैं । प्रेतलोकके जीव स्वर्ग लोकमें नहीं पहुंच

होता है कि, इस योनिमें भी इनको सरस्वतीने परित्याग नहीं किया है। इससे प्रतीत होता है कि, बन्धुवर्ग, मित्रगण और घरमें अन्य जो कुछ प्रिय हो, वह सब प्राणीको त्याग देते हैं, किन्तु सरस्वती उसे नहीं त्यागतीं ॥ १—६ ॥ *

यह सोचते हुए वे गिरि कन्दरामें गये। वहाँ वे क्या देखते हैं कि, पक्षिरूपी ब्राह्मण कुमार पाषाणकी चौकीपर बैठे हुए हैं। मुखदोषविवर्जित होकर वेदपाठ करते हुए उन्हें देखकर शोक और हर्षसे युक्त जैमिनि उन सबसे बोले,—हे द्विज श्रेष्ठो! तुम्हारा कल्याण हो। मुझे व्यासशिष्य जैमिनि जानो। तुम्हारे दर्शनोंके लिये उत्कण्ठित होकर मैं यहाँ आया हूं। अत्यन्त क्रुद्ध होकर तुम्हारे पिताने तुम्हे शाप दिया, जिससे तुम पक्षियोनिको प्राप्त हुए हो; इसके लिए विषाद न करो, क्योंकि ये सब भाग्यके खेल हैं ॥ ७—१० ॥

देखो, धनसम्पन्न कुलमें कोई सत्पुरुष उत्पन्न होते हैं और वे ही हे द्विजश्रेष्ठो! धन नाश होनेपर भीलोंसे आश्रय पाकर सान्त्वना पाते हैं। कोई पुरुष दान करके अवस्थान्तर होनेसे भिक्षा माँगते फिरते हैं, कोई दूसरोंको मारकर घटनाचक्रसे स्वयं मारे जाते हैं, कोई दूसरोंको गिराकर प्रारब्धवश स्वयं गिरते हैं, यह सब तपक्षय होनेसे ही होता है।

सकते। इन उदाहरणोंसे जीव सृष्टिके साथ देशका घनिष्ठ सम्बन्ध देखनेमें आता है। परन्तु यह केवल आधिभौतिक सम्बन्ध है। शीत और उष्णके साथ तत्तत्प्रधानता रखनेवाले देशोंका घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेसे और उनके साथ जीवोंके स्थूल शरीरका सम्बन्ध रहनेसे न शीत देशका उद्भिज ग्रीष्म प्रधान देशमें उत्पन्न हो सकता है और न ग्रीष्म प्रधान देशका जीव शीत प्रधान देशमें जी सकता है। इसी प्रकार वायुतत्त्व-प्रधान प्रेत शरीर अग्नितत्त्व प्रधान स्वर्गलोकमें नहीं पहुंच सकता। इससे मानना ही पड़ेगा कि, आधिभौतिक सम्बन्ध युक्त देशके साथ केवल आधिभौतिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। परन्तु कालके साथ आध्यात्मिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। काल अनादि अनन्त है। केवल विशेष विशेष कालमें जन्म लेनेवाले जीवोंके समष्टि प्रारब्धसे विशेष कालका स्वरूप निर्दिष्ट होता है। नहीं तो काल निर्लिप्त है। संस्कारके समष्टि पुञ्जके साथ प्रत्येक कालका साक्षात् सम्बन्ध रखनेके कारण कालके साथ आध्यात्मिक सम्बन्धकी प्रधानता रहती है। अन्ततः वर्त्तमान समयमें जब जीव जगत्की दृष्टि आधिभौतिकता प्रधान होगई है, वर्त्तमान समयमें उन्नतसे उन्नत विद्वानोंकी भी दार्शनिक दृष्टि नष्ट हो गयी है, अतिशय चिन्ताशील व्यक्ति भी दैवी जगत्को नहीं मानते हैं, परलोकका विचार तक शिक्षित लोगोंमेंसे जाता रहा है। प्रजा केवल जिह्वा और उपस्थ परायण हो गयी है, ऐसे कालमें जो जीव उत्पन्न होंगे, वे आध्यात्मिक शक्ति सम्पन्न नहीं हो सकते। यही कारण है कि इस समय देवताओंका साक्षात् दर्शन होना अति विरल हो गया है। यद्यपि विरले योगीजन दैवीजगत्से अपना सम्बन्ध स्थापन कर सकते हैं, परन्तु उसकी क्रिया प्रायः लुप्त होगयी है। मन्त्रादिकी शक्ति भी हीनबल हो गयी है, और यही कारण है कि, ऐसे समयमें उन्नत श्रेणीके आरूढ़-पतित भी प्रकट नहीं होते हैं ॥ १—६ ॥

ऐसा वैपरीत्य मैंने बहुत देखा है। भावाभावकी परम्परासे समस्त जगत् बड़ा ही व्याकुल हो रहा है। यही सोचकर तुम्हें खेद नहीं करना चाहिये। शोक और हर्षमें अलिप्त रहना ही ज्ञानका फल है॥ ११—१४॥ †

फिर उन सबोंने पाद्य-अर्घ्यसे जैमिनिकी पूजा की और प्रणामकर मुनिवरसे निःसङ्कोच भावसे जिज्ञासा की। पक्षियोंके पङ्खोंकी वायुसे जब जैमिनिकी थकावट दूर हुई और वे स्वस्थ चित्तसे सुखपूर्वक बैठ गये, तब उन तपोनिधि व्यास शिष्यसे सब पक्षी कहने लगे,—आज हमारा जन्म सफल हुआ और जीवन सार्थक हुआ, जो देवताओंसे पूजित आपके दोनों चरणारविन्दोंके हमें दर्शन होगये। पितृदेवकी जो कोपाग्नि उत्पन्न हुई थी और हमारे देहोंमें विद्यमान थी, वह हे विप्र! आपके दर्शनरूपी जलसे शान्त होगई है। हे ब्रह्मन्! आपके आश्रमके पशु-पक्षी, वृक्षलता और कन्दमूल तृणादि सब अच्छी तरह तो हैं? अथवा इस प्रकारके प्रश्न करना ही हमें अनुचित है। क्योंकि जिन्हें आपका सान्निध्य प्राप्त है, उनके अमङ्गलकी सम्भावना ही नहीं हो सकती। इस समय यहाँ आपका आगमन किस कारण हुआ है, यह कृपाकर आप कहिये। आपका संसर्ग देवताओंके संसर्गके समान है। हम नहीं जानते कि, हमारे किस बड़े भाग्यसे हमारा यह महान् अभ्युदय होगया है, जो आपके हमें दर्शन होगये। जैमिनिने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ! सुनो, कि मैं इस रेवा नदीके जल कणोंसे परिषिक्त विन्ध्यपर्वतकी सुन्दर कन्दरामें क्यों आया हूं। महाभारत शास्त्रमें मुझे कुछ शंकाएँ होगयी हैं। उनका निवारण करनेके विचारसे भृगुकुलतिलक महात्मा मार्कण्डेयके पास मैं गया था। उनसे महाभारतके मैंने अपने सन्देह कह सुनाये। मेरे पूछनेपर उन्होंने मुझसे कहा कि, महान् विन्ध्य पर्वतपर महात्मा द्रोणपुत्र रहते हैं, वे ही विस्तारपूर्वक तुम्हारी शङ्काओंका समाधान

---

† पूर्वसञ्चित तपके फलसे ही मनुष्य पुण्यफल भोग करता है और भोग अथवा कुकर्मके द्वारा तपःक्षय हो जानेसे मनुष्य गिर जाता है। यह क्रिया भी प्रारब्धसे ही सम्बन्ध रखती है।

यद्यपि भाव और अभावका दार्शनिक रहस्य बहुत ही उच्च विचारोंसे पूर्ण है, परन्तु साधारणतः सुख अथवा आनन्दकी प्राप्ति अथवा उसकी अप्राप्तिसे ही यहाँ सम्बन्ध है। जीव जिस पदार्थको अपने सुखका हेतु समझ कर चाहता है, वह भाव शब्द वाच्य है और चाहने तथा प्रबल यत्न करनेपर भी जब वह नहीं प्राप्त कर सकता, उसको अभाव कहते हैं।

इच्छित विषयकी प्राप्तिसे साधारण जीवोंको हर्ष होता है और उसकी अप्राप्ति अथवा अभावसे शोक होता है। यही साधारण जीवोंके सुख दुःखका हेतु है। परन्तु आत्मज्ञानी व्यक्ति इस प्रकारके भाव अभाव और तज्जनित सुख दुःखको केवल प्राकृतिक पदार्थ रूपसे तत्त्वज्ञानके द्वारा समझ लेते हैं और आत्मज्ञानके द्वारा स्वस्वरूपकी उपलब्धि कर लेते हैं। तब वे महात्मा हर्ष और शोकसे रहित हो जाते हैं। अर्थात् हर्ष और शोक उन महापुरुषोंको विचलित नहीं कर सकते॥ ११—१४॥

करेंगे । उनके वचनसे प्रेरित होकर ही मैं इस गिरिवर पर आया हूँ । अब मेरे सब प्रश्न सुनलो और सुनकर उनकी व्याख्या कर दो ॥ १५—२५ ॥ पक्षियोंने कहा,—यदि हमारे अधिकारका विषय हो, तो हम कहेंगे । आप निश्चिन्त होकर सुनिये । जो विषय हमारे बुद्धिगोचर हो, वह क्यों नहीं कहेंगे ? हे ब्राह्मण-सत्तम ! चारों वेदोंमें, धर्मशास्त्रमें, समस्त वेदाङ्गोंमें और वेद-सम्मत जितने शास्त्र हैं, उनमें जो विषय हैं, वे हमारे बुद्धिगोचर हैं । तथापि हम उनके समझानेकी प्रतिज्ञा नहीं कर सकते । अतः निःसङ्कोच होकर भारतमें जो सन्देह हों, वे आप कहिये । हे धर्मज्ञ ! हम उनके सम्बन्धमें कथन करेंगे; नहीं तो हमारा अज्ञान प्रकट होगा ॥ २६—२९ ॥ जैमिनि बोले,—हे निर्मलचित्त पक्षिगण ! महाभारतमें जो सन्देह-स्थल मुझे जान पड़े, उनको सुनें, और उनको सुनकर उनकी व्याख्या करें । जो सब कारणोंके कारण हैं, अखिल ब्रह्माण्डके आधार हैं, जगव्यापक हैं, वासुदेव हैं और निर्गुण हैं, उन्होंने मनुष्य देह कैसे धारण किया ? अकेली द्रौपदी पाँचों पाण्डवोंकी पटरानी कैसे हुई ? महाबली हलधर बलराम तीर्थयात्रा प्रसङ्गसे ब्रह्महत्याके पातकसे कैसे मुक्त हो गये ? और महारथी महात्मा पाण्डव जिनके पृष्ठपोषक थे, वे द्रौपदीके पुत्र विना व्याहे अनाथकी तरह कैसे मारे गये ? भारतके ये ही मेरे सन्देह-स्थल हैं । इनका समाधान करदें जिससे मैं कृतार्थ होकर सुखपूर्वक अपने आश्रममें लौट जाऊँ ॥ ३०—३५ ॥ पक्षिगणने कहा,—जो सब देवोंके अधीश्वर हैं, सर्व समर्थ हैं, सर्वव्यापी हैं, पुरुष अर्थात् आत्मा स्वरूप हैं, अप्रमेय हैं, शाश्वत (सनातन) हैं, अव्यक्त हैं, चतुर्व्यूहात्मक हैं, त्रिगुणात्मक हैं और गुणरहित भी हैं, जो वरिष्ठ हैं, गरिष्ठ हैं, वरेण्य हैं और अमृत हैं, जिनसे कुछ छोटा नहीं और बड़ा भी नहीं, जिनसे समस्त जगत् व्याप्त है, जो जगत्के आदि हैं और अजन्मा हैं, आविर्भाव, तिरोभाव और दृष्टादृष्टादि कार्योंसे जो विलक्षण हैं, लोग कहा करते हैं कि, इन्होंने यह सब ब्रह्माण्ड रचा है और जो अन्तमें इसका संहरण कर लेते हैं, उन विष्णु भगवान्‌को नमस्कार करके और फिर आदि देव ब्रह्माजीको, जो अपने चारों मुखोंसे ऋग्, यजु आदि वेदोंका उच्चारण कर तीनों लोकोंको पवित्र करते

टीका—अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमें प्रत्येक ब्रह्माण्डकी सृष्टि, स्थिति और लयक्रियाके निमित्तसे जो सगुण ब्रह्मरूपसे तीन देवता होते हैं, वे ही सृष्टि करनेवाले ब्रह्मा, स्थिति करनेवाले विष्णु, और लय करनेवाले शिव कहलाते हैं । ये देवता शब्द वाच्य होनेपर भी साधारण देवयोनिके पुरुष नहीं हैं । निर्गुण भगवान्‌की ही ये तीनों सगुण मूर्तियाँ हैं । भगवान् विष्णुके साथ सृष्टिकी रक्षाका सम्बन्ध होनेसे इस स्तुतिमें उनकी प्रधानता दिखायी गयी है और उनके ही सम्बन्धसे विष्णु भावको सम्मुख रखकर सगुण ब्रह्मके स्वरूपका परिचय यथासम्भव दिया गया है । इस स्तुतिमें जितने विशेषण हैं, वे सब प्रायः निर्गुण

हैं, समाधिके द्वारा प्रणाम कर तथा जिनके एकही बाणसे असुरगण हार जाते और याज्ञिकोंके यज्ञकर्म लुप्त नहीं होने पाते, उन शङ्करजीको प्रणाम कर, अद्भुतकर्मा महर्षि व्यासका सब मत हम कथन करते हैं; जिन्होंने महाभारतके बहानेसे समस्त धर्मादिका रहस्य प्रकट किया है ॥३६–४२॥ तत्त्वदर्शी मुनियोंने "नारा" शब्दका अर्थ "जल" कहा है। सृष्टिके आरम्भमें वही अर्थात् जलही श्रीभगवान्‌का "अयन" अर्थात् स्थान होनेसे श्रीभगवान् "नारायण" नामसे अभिहित होते हैं। हे ब्रह्मन्! वही भगवान् विभु नारायण चराचरको व्याप्त कर सगुण और निर्गुण रूपसे चार प्रकारसे स्थित हैं। उनकी एक मूर्ति तो वह है, जिसका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञानी लोग उसे शुक्ल वर्णमें देखते हैं। उस मूर्तिके सब अंग (तेजोमयी) ज्वाला मालाओंसे व्याप्त हैं और वही योगियोंकी एकमात्र आश्रयस्वरूपा है। वह दूर है ओर निकट भी अवस्थित है। उसे त्रिगुणसे परे जानना चाहिये। वह ममता रहित होनेसे ही देख पड़ती है, और उसकी संज्ञा "वासुदेव" है। उसमें रूप, वर्ण आदि कोई भाव नहीं है। केवल उनकी कल्पना कर ली जाती है। परन्तु उसका अस्तित्व

प्रधान हैं। भावातीत जो परमात्माका निर्गुण पद है, उसको सगुण भावमें उपासनाके अभिप्रायसे लानेके लिये पाँच सगुण रूपोंके ध्यान शास्त्रोंमें पाये जाते हैं। यथा—विष्णु, सूर्य, भगवती, गणपति और शिव। ये पाँचों मूर्तियां निर्गुण परमात्माके भावातीत भावको सगुण भाव द्वारा धारणामें लानेके लिये सगुणाश्रयीभूत हैं। इसीसे इस स्तुतिमें भगवान् विष्णुको त्रिगुणात्मक और गुण रहित भी कहा है ॥ ३६—४२ ॥

वेद और शास्त्रके अनुसार परमात्माको सृष्टिसे परे, त्रिगुणसे अतीत, एक, अद्वितीय, जीवके मन-बुद्धि आदिसे अगोचर कहकर वर्णन किया है। परन्तु जिज्ञासुओंकी तृप्तिके अर्थ उनको तीन भावोंमें लक्षित कराया है। यथा,—ब्रह्म, ईश, विराट् और चतुर्थ अवतार जिसको लीला विग्रह भी कहते हैं। भगवान्‌के निर्गुण, निष्क्रिय, सृष्टिसे अतीत अध्यात्म रूपका नाम ब्रह्म है। उनका सगुणरूप सृष्टिका द्रष्टा मात्र है। जिसको योगशास्त्रमें पुरुष विशेष कहा है। वह अधिदैव रूप ईश्वर कहाता है। अनन्त कोटि-ब्रह्माण्ड सहित जो उनका महत् स्थूल आधिभौतिक स्वरूप है, उसको विराट् कहते हैं। और जीव शरीरके आश्रयसे जो भगवान्‌की विशेष शक्ति कला रूपसे प्रकट होती है, वह उनका स्वरूप अवतार कहाता है। यही भगवान्‌के स्वरूपको चतुर्व्यूह सम्बन्धी भावोंका रहस्य है। इसी विज्ञानके आधारपर ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सबके स्वरूपोंका अनुभव प्राप्त हो सकता है ॥ ३६-४२ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन त्रिमूर्तियोंमेंसे पञ्चोपासनामें केवल शिव और विष्णुका ही नाम पाया जाता है। इसका कारण यह है कि, ब्रह्मा रजोगुणके अधिष्ठातृदेवता होनेसे यद्यपि रजोगुणके सम्बन्धसे वे ईश्वर हैं, परन्तु उपासनाके सम्बन्धसे उनकी प्रधानता नहीं रक्खी गयी है। साधारणतः गीतोपनिषद् आदिमें ज्ञानयोग और कर्मयोग दो प्रकारकी साधन-शैली पायी जाती है। श्रीभगवान्‌की चिन्द्भावके सम्बन्धसे सांख्ययोग और सद्भावके सम्बन्धसे कर्मयोग इन दो निष्ठाओंका होना स्वतः सिद्ध है। यही कारण है कि, केवल विष्णु और शिवकी ही सगुण उपासना विहित है। दूसरी ओर पञ्चोपासनारूपसे जो सगुण उपासनाकी आज्ञा वेद और वेद-सम्मत शास्त्रोंमें पायी जाती है, उसमें जो पाँचों सगुणब्रह्मके भाव

अवश्य है। वह निष्कलङ्क है, सर्वदा विराजमान है और निरन्तर एक रूप है ॥ ४३-४७ ॥ दूसरी "शेष" संज्ञक मूर्ति है; जो पातालमें रहकर सिरपर पृथ्वीको धारण किये हुए है। यह तामसी मूर्ति कही गई है और इसने तिर्यक्-योनिका आश्रय किया है। भगवान्‌की तीसरी मूर्ति सत्वगुणात्मिका है। यही सब प्रकारके कर्म करती है, प्रजापालनमें तत्पर रहती है, और इसीको धर्मकी स्थितिकारिणी जानना चाहिये। चौथी मूर्ति जलमें रहकर पन्नगशय्या पर सोती है। वह रजोगुणात्मिका है और निरन्तर उत्पत्तिका कार्य किया करती है ॥ ४८—५० ॥ हरि अर्थात् भगवान्‌की तीसरी मूर्ति, जो प्रजा-पालनमें तत्पर रहती है, वही पृथ्वीमें नियमित रूपसे धर्मकी स्थितिका कार्य किया करती है। वही धर्म-विध्वंसक उन्मत्त असुरोंको मार डालती और देवों, सन्तों तथा अन्य धर्मरक्षामें जो परायण हैं, उनकी रक्षाकरती है। हे जैमिने! जब जब धर्मकी ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है, तब तब वही मूर्ति अपनेको प्रकट करती है ॥ ५१—५३ ॥ इसी मूर्तिने पूर्वकालमें वराहरूप धारण कर समस्त जल-राशिको दूर कर एक ही डाढ़ पर कमलकी तरह वसुन्धराको उठाकर उसका उद्धार किया था। इसीने नृसिंहरूप धारणकर हिरण्यकशिपुको मारा था और इसीके द्वारा विप्रचित्ति आदि अन्य दानव मारे गये थे। इसके इसी तरहके वामनादि तथा कितने ही अन्य अवतारोंकी गिनती करनेको जी नहीं चाहता। उसीका इस समय यहां यह माथुर (श्रीकृष्ण) के रूपमें अवतार हुआ है। इसी तरह वह सात्विकी मूर्ति, अवतारोंको धारण किया करती है। वह मूर्ति "प्रद्युम्न" नामसे प्रसिद्ध है और रक्षा कार्यमें निरत रहती है। वह देवता रूपमें, मनुष्य रूपमें और

निर्णीत हुए हैं, उनकी तुलनात्मक पर्यालोचना करने और उनके विज्ञानका अन्वेषण करनेसे तथा योगशास्त्र और तन्त्रशास्त्रमें इन पाँचोंका रहस्य अन्वेषण करनेसे यही पाया जाता है कि, विष्णु उपासनामें भगवान्‌का चिद्भाव, शिवउपासनामें भगवान्‌का सद्भाव, देवीउपासनामें भगवान्‌का शक्तिभाव, गणपतिउपासनामें भगवान्‌का ज्ञानमय प्रधानभाव और सूर्यउपासनामें भगवान्‌का स्वाकर्षणरूपी तेजोभाव, इस प्रकारसे पांच स्वतन्त्र स्वतन्त्र भावोंके, अवलम्बनसे पांच स्वतन्त्र स्वतन्त्र सगुणब्रह्मोपासना-शैली शास्त्रोंमें वर्णित हुई है। उन पाँचों उपासनाओंके दार्शनिक रहस्य अलग अलग कहे गये हैं और उनमें चतुर्व्यूहकी कल्पना भी पूर्वकथित आधारके अनुरूप अलग अलग की गयी है। जब मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर ब्रह्मसत्ता भगवान् विष्णुके रूपमें अनुभव करनेका विचार हो, तो उस समय जिस प्रकारसे चतुर्व्यूहकी कल्पना करनी चाहिये, वह ऊपर वर्णित हुआ है। शास्त्रोंमें अनेक स्थलोंपर वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इस प्रकार चतुर्व्यूहके नाम-करण भी किये गये हैं। शक्तिकी सुरक्षाकी जो शैली है, उसको व्यूह कहते हैं। उपासना-शैली अथवा ज्ञान-शैलीकी सुरक्षाके विचारसे उपासना-शास्त्र और ज्ञान-शास्त्रमें चतुर्व्यूहकी कल्पनाकी गयी है। इसी कारण पुराण-शास्त्रों और दर्शनशास्त्रमें व्यूह शब्दका प्रयोग आता है। निर्गुणब्रह्मको लक्ष्यमें रखकर जब चतुर्व्यूह की कल्पनाकी जाय, उस दशामें ब्रह्म, ईश, विराट् और लीला विग्रह ये चार भावमय स्वरूप ग्रहणीय हैं। इसी प्रकार जब भगवान् विष्णुके भावको सम्मुख रखकर

तिर्यक्रूपमें रहकर निरन्तर वासुदेवकी इच्छासे तत्तत्स्वभावोंका अवलम्बन करती है। यह सब श्रीभगवान्का मूर्ति-अवतार-तत्त्व हमने आपको निवेदन किया है। अब व्यापक विष्णु भगवान्ने कृतकृत्य होने पर भी (उनके करने योग्य सब काम कर लेने पर भी) मनुष्यरूपमें क्यों अवतार धारण किया है, इसका हम उत्तर देते हैं, उसे सुनिये ॥ ५४-५६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चतुर्व्यूहावतार नामक चतुर्थ अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चम अध्याय।

पक्षी बोले—पुरा कालमें त्वष्टा नामक प्रजापति (देवता विशेष) का पुत्र त्रिशिरा नीचे मुख और ऊपर पाँव कर तपस्या कर रहा था। इन्द्रको आशङ्का हुई कि, कदाचित् इन्द्रपद पानेके लिये वह तप करता हो, इस कारण उसने उसे मार डाला। परन्तु हे ब्रह्मन्! पूर्वकालमें इस प्रकार त्वष्टाके पुत्रके मारे जाने पर ब्रह्महत्यासे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रके तेजकी बड़ी हानि हुई। इस अधर्माचरणके कारण वह इन्द्रका तेज धर्ममें (अर्थात् भगवान् यम धर्मराजमें) प्रवेश कर गया और धर्ममें तेजके चले जानेसे इन्द्र तेजोहीन हो गया। फिर त्वष्टा प्रजापति पुत्रका माराजाना सुनकर बड़े क्रुद्ध हुए और अपने सिरकी एक जटाको नोचकर यह बचन बोले कि, आज मेरे पराक्रमको समस्त देवताओं सहित तीनों लोकोंके प्राणी देखें और वह ब्रह्महत्याकारी दुर्बुद्धि इन्द्र भी अवलोकन करे, जिसने स्वकर्ममें निरत मेरे पुत्रको मारडाला है, यह कहकर क्रोधसे जिनकी आँखें लाल हो गयी थीं, उन त्वष्टा प्रजापतिने उस जटाकी अग्निमें आहुति दे दी, आहुति देते ही उस अग्निकुण्डसे वृत्र नामक प्रचण्ड असुर निकल पड़ा। उसका वर्ण काजलके समान काला था और उसके शरीरसे अग्निकी लपटें निकल रही थीं। उसका शरीर विशाल था और डाढ़ें भी बड़ी

चतुर्व्यूहका विचार किया जाय, तो ऊपर कहे हुए ये चारों भाव ग्रहणीय हैं। श्रीभगवान् विष्णुके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतस्वरूपका लक्षण इस टीकामें पहिले भली भाँति हो चुका है। भगवान् विष्णु जब सृष्टिरक्षाके अभिप्रायसे अपनी चिन्मय कला तथा अपनी शक्तिका विशेष विकाश किसी जीव पिण्डके आश्रयसे जगत्में प्रकाशित करते हैं, वही उनकी लीला-विग्रहधारी अवस्था अवतार कहाती है। जीव पिण्डमें एक कलासे लेकर आठ कला पर्यन्त जीवत्व कला है और ९ कलाओंसे १६ कलाओं पर्यन्त नाना श्रेणीके अवतारोंकी कला मानी गयी है। श्रीकृष्ण भगवान्में १६ कलाओंकी पूर्णता थी, इस कारण "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" ऐसा उनके लिये कहा गया है। उक्त चार मूर्तियोंके वर्णनका यही शास्त्र शुद्ध रहस्य है ॥ ४३—५४ ॥

बड़ी थीं । वह इन्द्रका शत्रु था और त्वष्टाके तेजसे युक्त होनेके कारण अप्रमेयात्मा था। वह महाबली छोड़े हुए बाणोंकी तरह प्रति दिन बढ़ने लगा । महान् असुर वृत्र अपनेको मारनेके वास्ते उत्पन्न हुआ है, यह देखकर इन्द्रने भयभीत हो, सप्तर्षियोंको उसके पास सन्धि करनेके लिये भेजा । सब प्राणियोंकी भलाई चाहनेवाले सप्तर्षियोंने प्रसन्न चित्तसे प्रतिज्ञा पूर्वक वृत्र और इन्द्रमें सन्धि करा दी । परन्तु उस प्रतिज्ञाको तोड़कर जब इन्द्रने वृत्रका वध कर डाला, तब उस हत्यासे अभिभूत होनेके कारण इन्द्रका बल विशीर्ण हो गया। इन्द्रके शरीरसे वह बल निकलकर वायुदेवमें प्रवेश कर गया । वे वायुदेव सर्वव्यापक, अव्यक्त और बलके अधिदेवता हैं। जब गौतमका रूप बनाकर इन्द्रने अहल्याका पातिव्रत भङ्ग किया, तब इन्द्रका रूप क्षीण हो गया । इन्द्रके अङ्ग प्रत्यङ्गका जो अत्यन्त मनोहर लावण्य था, वह उस दुष्ट देवेन्द्रको छोड़कर अश्विनी कुमारोंमें प्रवेश कर गया। धर्म और तेजने इन्द्रको छोड़ दिया है और वह विरूप तथा बलहीन हो गया है, यह जानकर दैत्यगण उसे जीतनेका उद्योग करने लगे। हे महामुने ! वे अतिवलशाली दैत्य देवेन्द्रपर विजय पानेकी अभिलाषासे अपने पराक्रमसे उन्मत्त हुए राजाओंके कुलमें उत्पन्न हुए। कुछ काल बीतने पर दैत्योंके भारसे पीड़ित होनेके कारण वसुन्धरा मेरुपर्वतके शिखरपर देवोंकी सभामें पहुंची। दैत्योंके भारसे अत्यन्त पीड़ित हुई पृथ्वीने, दनुजोंसे

टीका—इन्द्र देवराज हैं । जैसे यम धर्माधर्मके नियामक धर्मराज हैं, वैसे ही इन्द्र देवताओंके शासक देवराज हैं । ये सब स्थायी देवपद हैं । इन्द्रदेवका आध्यात्मिक स्वरूप, अधिदैव स्वरूप और अधिभूत स्वरूप अवश्य ही समझने योग्य है । पुराणोंमें जहां इन्द्रदेवके स्वरूपका वर्णन पाया जाता है, जिस रूपमें वे इन्द्रलोकमें विराजते हैं, वह उनका स्थूल अधिभूतरूप है । इन्द्रदेव अपनी जिस सर्वव्यापक शक्तिके द्वारा यावत् दैवीराज्यको सम्हालते हैं, वह उनका अधिदैवरूप है । जैसा कि, मनुष्यपिण्डमें दक्षिण हाथमें इन्द्रका विराजना । ब्रह्माण्डमें मेघ आदिमें वज्र रूपसे विराजना । इसी प्रकार उनके अध्यात्म स्वरूपका कुछ रहस्य समझानेके लिये यह ऊपर कथित लौकिक और परकीय भाषा है । वृत्रासुर-की उत्पत्तिकी जो गाथा है, वह परकीयभाषामें है । और इन्द्रके तेज, बल आदिके विभक्त होकर दूसरोंमें संक्रमित होनेका जो वर्णन है, वह लौकिकी भाषामें है और उसके द्वारा इन्द्रके आध्यात्मिक स्वरूपका दिग्दर्शन कराया गया है । दूसरी ओर पञ्च पाण्डवोंकी उत्पत्तिका जो वर्णन इस स्थलपर आया है, वह आधिदैविक वर्णन है और महाभारतमें जो पञ्चपाण्डवोंकी उत्पत्तिका वर्णन है, वह आधिभौतिक है । जैसे पिण्डमें स्थूल, सूक्ष्म, कारण रूपसे शरीरके तीन भेद हैं, जो पिण्डमात्रमें हुआ करते हैं, वैसे ही प्रत्येक पिण्डके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीन कारण भी हुआ करते हैं । यथा,—साधारण मनुष्योंमें स्थूल शरीर अधिभूत, उसके भीतरकी शक्ति अधिदैव, और उसके आत्मा सम्बन्धी अधिकार, कि वह किस श्रेणीका आत्मा है, अध्यात्म कहावेगा । ये तीनों अधिकार देवताओंमें (देव पिण्डोंमें) अधिक रूपसे स्पष्ट रहते हैं और मनुष्यमें अधिदैव और अध्यात्म इतने स्पष्ट नहीं दिखाई देते । इन तीनोंका विस्तार इतना अधिक है कि, उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डजादि जीवोंमें भी तीनों अधिकार रहते हैं । भेद इतना ही है

उत्पन्न हुए दैत्योंके अत्याचार ही अपने खेदका कारण है, यह देवताओंसे निवेदन किया। जिन सब अत्यन्त तेजस्वी असुरोंको आप लोगोंने मार डाला था, वे ही सब मनुष्यलोकमें राजाओंके घरोंमें जन्मे हैं। वे बहुत और अनगिनती हैं। उनके भारसे पीड़ित होकर मैं नीचे धँसी जा रही हूं। अतः हे देवो! आप ऐसा उपाय करें, जिससे मुझे शान्ति मिले ॥१-२०॥ पक्षी बोले,—तब अपने अपने तेजके अंशसे सभी देवता प्रजाके उपकार और भू-भार उतारनेके लिये स्वर्गसे पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए। जो इन्द्रका तेज धर्ममें चला गया था, स्वयं धर्मने उसे कुन्तीके गर्भमें गिराया। उससे बड़ेही तेजस्वी राजा युधिष्ठिर हुए। वायु-देवने इन्द्रके बलको कुन्तीके गर्भमें गिराया। उससे भीमसेन उत्पन्न हुए। इन्द्रके आधे-वीर्यसे धनञ्जय पार्थने जन्म पाया। इन्द्रका रूपांश माद्रीके गर्भमें चला गया, जिससे साक्षात् इन्द्रस्वरूप तेजः पुञ्ज जुड़वाँ बालक नकुल और सहदेव हुए। भगवान् इन्द्र इस प्रकार पाँच शरीरोंमें अवतीर्ण हुए। उन्हींकी पत्नी बड़ी भाग्यवती द्रौपदी अग्निसे उत्पन्न हुई। द्रौपदी अकेले इन्द्रकी ही पत्नी थी, और किसीकी नहीं थी। योगीश्वरगण ऐसे अनेक शरीर धारण कर लेते हैं। आपसे यह निवेदन किया गया, कि पाँच पुरुषोंकी एकही

कि, इन चतुर्विध भूतसङ्घके जीवोंका आधिभौतिक स्वरूप स्पष्ट रहता है और उनका आधिदैविक और आध्यात्मिक स्वरूप तत्तरक्षक देवताओंमें रहता है। यही कारण है कि, जितने उद्भिज्जादिके सहजपिण्ड हैं, उतने उन जातियोंके देवता भी उनके अलग अलग रक्षक होते हैं। यही कारण है कि, पञ्च पाण्डव अधि-भूत रूपसे पृथक् पृथक् होनेपर भी अधिदैव रूपसे एक ही थे और यही कारण है कि, द्रौपदी पञ्च पुरुषोंकी पत्नी होती हुई भी सतीत्व धर्मका असाधारण तपः साधन उससे हो सका था, द्रौपदीके सतीत्वके विषयकी शङ्काका समाधान यह है कि, मनुष्यधर्मके चार भेद हैं। यथा,—साधारणधर्म, विशेषधर्म, आपद्धर्म और असाधारणधर्म। जिसका वर्णन महर्षि भरद्वाज-कथित कर्ममीमांसादर्शनमें विस्तारपूर्वक किया गया है। असाधारण धर्मका लक्षण यह है कि, किसी पूर्वजन्मार्जित दैवी कारणसे कोई मनुष्य किसी असाधारण शक्तिको प्राप्त करता है, तभी वह असाधारण धर्मका अधिकारी हो सकता है। इसी पुराणमें कहे हुए आधिदैव कारणके बलसे द्रौपदीमें ऐसी दैवीशक्ति थी कि, जिस दैवीशक्तिके कारण वह योगिनी थी और उसका योग-जनित मनोबल इतना बढ़ा हुआ था कि, जिस नियमित कालमें उसका जो पति होता था, उसीको वह अपनी योगधारणासे पतिरूपसे मानती थी। औरोंको औरोंकी तरह मानती थी, जैसी कि प्रतिज्ञा थी। जैसे कि, वेश्या गण्डकी, वेश्या होनेपर भी अपने सतीत्वव्रतके प्रभावसे देवी बनी और शालग्राम-शिलाकी उत्पत्तिका क्षेत्र-नदीके रूपमें बनी हुई है, जिसका अधिदैव गण्डकी देवी है, उसी शैलीके अनुसार अपनी योगधारणा और सतीत्व रूपी तपके प्रभावसे द्रौपदी प्रातःस्मरणीया हुई है। सतीत्वधर्म तपःप्रधान है और उसकी भित्ति मनकी तीव्र और अविचलित धारणा है। जैसे कि, एक स्त्री एक जन्ममें बहिन, दूसरे जन्ममें माता और तीसरे जन्ममें स्त्री होकर सतीत्व धर्मका पालन करती है और अपने पूर्वजन्म वृत्तान्तको न जानकर अपनी मनोधारणाको बदल लेती है। यह घटना स्त्री जातिके जीवनमें नित्य हुआ करती है। परन्तु दैवीशक्तिसे युक्त योगिनी द्रौपदी यदि अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार और धर्मको निबाहनेके लिये एक वर्षमें कालके विभागके अनुसार अपनी पतिधारणाको मनके

पत्नी कैसे हुई ? अब बलदेव किस प्रकार सरस्वती पर गये, वह निवेदन करते हैं; आप सुनिये ॥ २१—२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका इन्द्रविक्रिया नामक पञ्चम अध्याय समाप्त हुआ।

षष्ठ अध्याय।

पक्षियोंने कहा,—हलधर बलराम यह जानकर कि, अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णका अत्यन्त प्रेम है, बड़े विचारमें पड़ गये कि, क्या करनेसे भलाई होगी। सोचने लगे कि, कृष्णके विना तो मैं दुर्योधनसे मिलूँगा नहीं, और पाण्डवोंका साथ देकर अपने ही जामाता तथा शिष्य, नरपति राजा दुर्योधनका घात कैसे करूँ ? अतः ऐसा ही करूँ कि, जब तक पाण्डव और कौरवोंका अस्त नहीं हो, तब तक न तो अर्जुनसे ही मिलूं, न राजा दुर्योधनसे ही। तीर्थयात्रा करता हुआ तब तक अपनी आत्माको पवित्र करता रहूंगा ॥ १—४ ॥ यह विचार बलरामने श्रीकृष्ण, अर्जुन और दुर्योधनसे भी कहा और वे अपनी सेना सहित प्रसन्न और सुखी प्रजाओंसे युक्त द्वारकामें पहुँचे। तीर्थयात्राको जानेके पूर्वदिन हलायुध बलरामने मद्यपान किया और अप्सराके समान सुन्दरी मदमाती रेवती (जो उनकी पत्नी थी) का हाथ अपने हाथमें लेकर झूमते हुए वे अत्यन्त समृद्धिशाली रैवत नामक उद्यानमें गये। स्त्रियोंसे घिरे हुए होने पर भी उनके पैर लटपटा रहे थे। वीरवर बलराम अत्युत्कृष्ट और रमणीय उस उद्यानकी शोभाको देखने लगे। वह उद्यान समस्त ऋतुओंके फल फूलोंसे शोभायमान हो रहा था। अनेक शाखामृगों (बन्दरों) से परिव्याप्त था। उसमें पवित्र पद्मवन और पुष्करिणियाँ थीं और वह चारों ओरके गहन वनसे सुशोभित था। वहां बलराम अनेक पक्षियोंके मुखसे निकलनेवाले उमङ्ग भरे, आह्लादजनक, कर्णप्रिय, शुभसूचक मधुर शब्दोंको सुनने लगे ॥ ५—१० ॥ बलरामने वहां सब ऋतुओंके फलों और सब ऋतुओंके फूलोंसे हरे भरे वृक्षोंको देखा, जिन पर नाना प्रकारके पक्षी चहचहा रहे थे। वहां यदुनन्दन बलरामने आम, अमड़ा, बड़े ऊँचे नारियल, तेंदू, बेल, जीरक (सफेद जीरा), अनार, कँधलानीबू (एक प्रकारका मीठा नीबू), कटहल, लकुच (बडहर), केला, अति मनोहर कदम्ब, अमरूद, कङ्कोल (अशोक), नलिन (कमल),

---

योगबलसे पञ्च पुरुषोंके लिये बदल सकती हो और इसी प्रकारसे पांचों पुरुषोंके साथ इसने अपना धर्म यथावत् निबाहा हो, तो वह योगिनी श्रेष्ठा है, परम तपस्विनी है, इन्द्राणीके साक्षात् तेजसे उत्पन्ना है और परम पूजनीया आदर्श सती है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १—२६ ॥

अम्लवेतस, भिलावा, आंवला, बड़े बड़े फलवाले तिन्दुक, रीठा, करमर्द (करंचा), हर्र, विभीतक (बहेरा), इन सब तथा अन्य अनेक वृक्षोंको देखा। इसी तरह अशोक, पुन्नाग (नागकेशर), केतकी, बकुल (मौलसरी), चम्पा, सप्तपर्ण (देववृक्ष), कर्णिकार (कुरण्टी), मालती, पारिजात (हरसिंगार), कोविदारक (कचनार), मन्दार, बैर, फूले हुए सुन्दर गुलाब, देवदार, साल, ताल, तमाल, पलास और अच्छी जातिके वञ्जुल (अशोक) के वृक्ष भी उन्होंने देखे। जिनकी डारों और घोसलोंमें कर्णप्रिय और मधुर कूजन करनेवाले चकोर, शातपत्र, भृङ्गराज (पक्षी विशेष), तोते, कोकिल, कलविङ्क (गरगैया), हारीत (हरेवा), जीव जीवक (जीवञ्जीव पक्षी), प्रियपुत्र, चातक, तथा अन्य अनेक प्रकारके पक्षी रहा करते थे। वहां बड़े मनोहर अनेक सरोवर स्वच्छ पानीसे भरे हुए थे। उनमें कुमुद (गँदूल या सफेद कमल), पुण्डरीक (श्वेत कमल), पवित्र नीलकमल, कह्लार (श्वेत कमल), और लाल कमल सब ओर खिले हुए थे। चारों ओर जो तालाब थे, उनमें बतक, पनडुब्बी, चक्रवाक (चकवा), जलमुर्ग, हंस, कारण्डव (हंस) आदि जलपक्षी और मगर, कछुआ, मछली तथा अनेक प्रकारके जलचर किलोलें कर रहे थे। इस प्रकार क्रमशः उस मनोरम रैवतोद्यानको देखते हुए बलराम स्त्रियों सहित एक उत्कृष्ट लताकुञ्जमें पहुँचे॥११–२३॥ वहाँ उन्होंने देखा कि, वेद-वेदाङ्गोंमें पारङ्गत कौशिक, भार्गव, भारद्वाज, गौतम तथा अनेक वंशोंमें उत्पन्न हुए श्रेष्ठ ब्राह्मणगण कथाश्रवण करनेके लिये बैठे हैं। कोई बड़े बड़े कृष्ण मृगोंके चर्मों पर, कोई कुशासनों पर, कोई कम्बलों पर और कोई दुपट्टा बिछाकर बैठे थे। उन सबके बीचमें सूतको देखा, जो आद्य सुरर्षियोंके चरितोंसे युक्त कल्याण-कारिणी कथा सुना रहे थे। उन सब ब्राह्मणोंने मद्पानसे जिनकी आंखें लाल हो रही थीं, उन बलरामको देखा और यह जानकर कि, ये मदमें छके हुए हैं, शीघ्रतासे वे सब उठ खड़े हुए। सूतवंशमें उत्पन्न हुए सूतके अतिरिक्त सभीने उनका सत्कार किया। सूतका यह बरताव देखकर जिन्होंने बड़े बड़े दानवोंको त्रस्त कर दिया था, उन महाबली हलधरने त्यौरी चढ़ाकर और अत्यन्त क्रुद्ध होकर सूतको मार डाला। सूतका देहपात होनेपर उन्हें ब्रह्मपदकी प्राप्ति हुई। परन्तु कृष्णमृगोंके चर्मोंको पहिने हुए सब ब्राह्मण यह घटना देखकर उस वनसे भाग निकले। इनके पश्चात् (कुछ सुधमें आने पर) हलधरने अपनी

टीका—ब्राह्मणगण स्वधर्मपालन करनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्त करते हैं। ऊर्द्ध्व सप्तलोकोंमेंसे सातवाँ ऊर्द्ध्वलोक तो ज्ञानलोक है और छठालोक उपासना लोक है। इसीके मध्यमें ब्रह्मलोक, गोलोक, मणिद्वीप आदि लोक स्थित हैं। सूतका आधिभौतिकरूपसे ब्राह्मणेतर छोटी जातिमें जन्म होने पर भी परम पुनीत वेदभाष्य रूपी पुराणशास्त्रोंके निरन्तर अनुशीलन द्वारा वे महात्मा होगये थे। और वे अन्यके द्वारा मारे जाने पर भी अपनी पवित्र धारणाके बलसे ब्रह्मलोकको प्राप्त कर सके थे। भगवदवतार बलराम घटनाचक्रसे मदके

अविचार पूर्ण उन्मतत्ता समझी और वे सोचने लगे कि, यह मैंने बड़ा पाप किया है। जिस सूतको मैंने मार डाला, उसे ब्रह्मपद मिला और ये सब ब्राह्मण मुझे देखकर भाग गये। मेरे शरीरसे भी कष्टकर सड़े रक्त जैसी गन्धि निकल रही है। और मैं अपनेको भी कुत्सित ब्रह्महत्याकारीरूपसे अनुभव करने लगा हूँ। मेरे क्रोधको धिक्कार है, मद्यको धिक्कार है, घमण्डको धिक्कार है और साहसको भी धिक्कार है! जिनके वशमें होकर मैंने यह महान् पातक कर डाला। अब इस पापके क्षयके लिये मैं बारह वर्षका व्रत करूँगा और अपने पापको स्पष्टरूपसे कहता हुआ उसका उत्कृष्ट प्रायश्चित्त करूँगा। जो मैंने इस समय तीर्थ यात्रा करनेका निश्चय किया है, बस, इसीके अनुसार अब मैं उलटी बहनेवाली सरस्वती पर जाऊँगा। इस प्रकार निश्चयकर बलराम प्रतिलोमा (उलटी बहनेवाली) सरस्वतीकी ओर चले गये। अब हे मुने! आप पाण्डव सम्बन्धी कथाको सुनिये ॥ ३४-३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका बलदेव ब्रह्महत्या कथन नामक षष्ठ अध्याय समाप्त हुआ।

सप्तम अध्याय।

पक्षी बोले—बड़ी पुरानी, त्रेता युगकी बात है। उस समय हरिश्चन्द्र नामक एक राजर्षि हुए। वे बड़े कीर्तिमान् और धर्मात्मा पृथ्वीपति थे। उनके शासन-कालमें न कभी दुर्भिक्ष हुआ, न रोग फैले, न प्रजाको अकालमें मरणका भय था और न किसीकी अधर्माचरणमें रुचि ही होती थी। धनमद, बलमद अथवा तपके मदसे कोई उन्मत्त नहीं थे और एक भी स्त्री ऐसी नहीं होती थी, जिसे युवती पद (मातृपद) प्राप्त न हुआ हो। एकवार वे आजानुबाहु राजा, अरण्यमें मृगया करते हुए एक हरिणको पछियाते जा रहे थे कि, एकाएक उनके कानमें स्त्रियोंका शब्द पड़ा कि, "हमारी रक्षा करिये, रक्षा करिये।"

प्रभावमें आकर उस क्षणमें उन्मत्त हो जानेपर भी दूसरे क्षणमें ज्ञानमें आनेपर उन्होंने सूतकी उत्तम गति और अपने कुत्सित आचरणको तुरन्त समझ लिया और वे अपने पापका प्रायश्चित्त करनेको प्रवृत्त होगये। पापके प्रायश्चित्तमें सबसे प्रथम अनुताप, उसके अनन्तर पापका सबके सामने प्रकट करना, इससे आधा पाप नष्ट हो जाता है। तत्पश्चात् प्रायश्चित करनेकी शैली है, इसीसे उन्होंने ऐसा किया। प्रायश्चित तीन प्रकारके होते हैं। दानात्मक, तपात्मक और यज्ञात्मक। बलरामने तपात्मक प्रायश्चित करनेको ही उचित समझा। तीर्थ दर्शन यह नैमित्तिक कर्मयज्ञ भी हो सकता है और तपोधर्ममूलक भी हो सकता है। उनका यह बारह वर्षका व्रत था, इस कारण वह तपोमूलक प्रायश्चित्त था ॥ २४-३७ ॥

वह शब्द सुनकर मृगका पीछा करना छोड़, वे नरेश "डरो मत, डरो मत" ऐसा उन स्त्रियोंको आश्वासन देकर, "मेरे शासनकालमें कौन दुर्बुद्धि ऐसा अन्यायका आचरण कर रहा है ? अर्थात् स्त्रियोंको सता रहा है।" यह कहते हुए उस ओर चले, जहांसे स्त्रियों-के रोनेका शब्द आ रहा था। इतनेमें सब कार्यों का विघात करनेवाला भयङ्कर रूपधारी विघ्न समूहोंका राजा मन ही मन सोचने लगा कि, यहां महापराक्रमी विश्वामित्र व्रती होकर क्षमा, मौन और संयमपूर्वक घोर तपाचरण कर रहे हैं और ये उन विद्याओंको सिद्ध करना चाहते हैं, जो पहिले शिवजी आदिको भी सिद्ध नहीं हो सकी थीं, वे विद्याएँ भय-

---

टीकाः—अन्तर्जगतमें दो शक्तियाँ हैं। एक दैवी शक्ति और दूसरी आसुरी शक्ति। दोनों शक्ति-योंके भिन्न भिन्न अधिष्ठाता होते हैं। दैवी शक्तियोंके अधिष्ठाता देवताओंमेंसे होते हैं जो सिद्धि औरर धर्मको प्राप्त करनेमें सहायक होते हैं। विरुद्ध शक्ति अर्थात् विघ्नकारिणी शक्तियोंके अधिष्ठाता असुर होते हैं, जो असुर लोकमें वास करते हैं। मनुष्यका अन्तःकरण उनकी कार्यभूमि है, जिसपर जैसा जिसका अवसर होता है, वे अधिकार करते हैं। देवासुर संग्रामका यह अध्यात्म रहस्य है। जैसे सिद्धिदाता देवता हैं, वैसे सिद्धिके विघ्नकर्ता असुर भी हैं।

अतः विघ्नसमूहोंके राजाका व्यक्ति-रूपसे मानना युक्ति विरुद्ध नहीं है। क्योंकि विघ्नकारीकी आसुरी वृत्तियाँ उनका अध्यात्म, उनकी चालक आसुरी शक्तियाँ अधिदैव और विघ्नकारी असुर, जो असुरलोकमें पदस्थ हैं, वह उस आसुरीवृत्तिका अधिभूत स्वरूप है। बुद्धिमानोंके निकट तीनों स्वरूप प्रामा-णिक ही हैं। अच्छे कर्ममें कैसी बाधाएँ होती हैं, इसका प्रायः लोग अनुभव करते हैं। पदार्थ विद्या (साइन्स) की सहायतासे काम, क्रोध, लोभ, हिंसा आदि वृत्ति-सम्पन्न व्यक्तिकी फोटोमें विभिन्न मनो-भावोंके अलग अलग रंग दिखायी पड़ते हैं। अतः ये दोनों तो प्रत्यक्ष सिद्ध ही हैं और प्रायः सब मनुष्य समाज, देवता और असुरोंके अस्तित्वको रूपान्तरसे मानते ही हैं। यथा,—सनातनधर्मी देवता और असुरोंके अस्तित्वको मानते हैं। इसी प्रकार पारसी लोग अहूर और देवा मानते हैं और ईसाई और मुसलमान फिरस्ता और शैतान मानते हैं। अतः सुर और असुरके चालक-रूपसे व्यक्तिको सभी अलग अलग रूपसे मानते हैं। सनातनधर्मके ग्रंथोंमें देवासुर-सृष्टिका रहस्य वर्णन सबसे अधिक और विस्तृत है।

जितने प्रकारकी सिद्धियाँ हैं, वे सब तीन भागोंमें विभक्त हैं। यथा, ज्ञान सम्बन्धीय अध्यात्म-सिद्धि कहाती है, कर्म सम्बन्धीय अधिदैव-सिद्धि कहाती है और स्थूल पदार्थ सम्बन्धीय अधिभूत-सिद्धि कहाती है। दैवी-राज्यमें इन तीनों श्रेणीकी सिद्धियोंकी जो अधिदैवरूपिणी देवियाँ हैं वे ही त्रिविद्या कहाती हैं। तन्त्रान्तरोंमें त्रिविद्याओंकी कृपा प्राप्त करने और उनको वशीभूत करके सिद्ध बननेके अनेक साधन वर्णित हैं। तीनों सिद्धियोंकी प्राप्ति एकत्रित हो जाना अति कठिन समझा गया है। इन सिद्धियोंको प्राप्त करनेमें जो साधन किया जाता है, वह साधन योगमूलक और तपोमूलक होता है। और उक्त साधनकी अवस्थामें क्षमा, मौन और संयम सब प्रकारसे अवलम्बनीय है। इन तीनोंके नष्ट होनेसे अथवा तीनोंमेंसे किसी एकके नष्ट होनेसे भी उक्त योग और तपका नाश हो जाता है। इन तीनों विद्याओंका महत्व इतना अधिक है कि, उच्च से उच्च देवतागण भी एकाधारमें तीनोंको प्राप्त नहीं कर सकते। उदाहरणार्थ, अध्यात्मशक्ति बड़े बड़े ऋषियोंमें होती है, परन्तु सब भगवदवतारोंमें उसका

भीत होकर रो रही हैं । ऐसे समयमें मैं क्या करूँ ? वे बहुत डर गयी हैं और रो रोकर कह रही हैं कि, यह कौशिक प्रवल तेजस्वी हैं और उसके आगे हम बड़ी दुर्बल हैं । यह समस्या मुझे बड़ी कठिन प्रतीत होती है । अथवा सोच-विचारमें पड़नेका क्या प्रयोजन है ? यह राजा बार बार "डरो मत, डरो मत" कहता हुआ यहाँ उपस्थित हो गया है । इसीमें शीघ्रतासे प्रविष्ट होकर अपना काम बना लूँ ॥ १—१० ॥ इस प्रकार विचार कर विघ्न समूहोंका राजा, हरिश्चन्द्रके शरीरमें प्रवेश कर गया । राजाके शरीरमें विघ्नराजके प्रविष्ट हो जानेसे वे क्रुद्ध होकर बोले,—कौन यह पापी मनुष्य अपने वस्त्रमें अङ्गारको बाँध रहा है ? बलरूपी प्रखर तेजसे देदीप्यमान पृथ्वीपतिके रूपमें मेरे उपस्थित रहते हुए, समस्त दिशाओंको प्रकाशित करनेवाले मेरे धनुषसे छूटे हुए, बाणोंसे छिन्न विछिन्न शरीर होकर कौन आज दीर्घनिद्रामें प्रवेश करना चाहता है ॥ ११—१३ ॥ यह राजाका बचन सुनकर विश्वामित्र क्रुद्ध हो उठे और ऋषिवरके क्रुद्ध होतेही क्षणमात्रमें विद्याएँ अन्तर्हित हो गयीं । तपोनिधि विश्वामित्रको जब राजाने देखा, तब वे सहसा अत्यन्त भयभीत होकर पीपलके पत्तेकी तरह काँपने लगे । जब विश्वामित्र मुनिने कहा कि, "हे दुरात्मन् ! ठहरजा," तब राजा उन्हें प्रणामकर विनयसे बोले,—भगवन् ! यही (दुर्बलोंकी रक्षा करना) मेरा धर्म है, और हे प्रभो ! यह मेरा अपराध नहीं है । हे मुने ! जब मैं अपने धर्मपालनमें निरत हूं, तब मुझपर क्रोध करना आपको उचित नहीं है । धर्मके तत्वोंको जाननेवाले राजाका यह कर्तव्य ही है कि, वह धर्मशास्त्रके अनुसार (योग्यपात्रमें) दान करे, (दुर्बलोंकी) रक्षा करे और धनुष तानकर (शत्रुओंसे) युद्ध करे ॥ १४—१८ ॥

अस्तित्व नहीं पाया जाता । इसी प्रकार नाना प्रकारकी अधिदैव सिद्धियाँ भगवदवतारोंमें पायी जाती हैं, परन्तु सब ऋषियोंमें नहीं पायी जातीं । इस कारण, इन तीनोंका एकाधारमें प्रकाश होना असम्भव सा ही है । अतः महर्षि विश्वामित्रके लिये भी इन तीनोंके प्राप्त करनेमें यह विघ्न हुआ था । तथापि महर्षि विश्वामित्रका तप असाधारण था । इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि, वे इसी शरीरमें क्षत्रियसे ब्राह्मण बन गये थे । उनके वशमें यदि सिद्धियाँ हो जायंगी तो जगदम्बाकी आज्ञाके विरुद्ध असम्भव कार्यसंभव हो जाते, इस भयसे और तपके प्रभावसे बलपूर्वक त्रिविद्याओंको तपस्वी विश्वामित्र अधीन कर लेंगे, इस भयसे त्रिविध सिद्धियोंकी अधिष्ठात्री देवियाँ दुखी हुई थीं । विश्वामित्रके चित्तमें क्रोध तथा अहङ्कार उत्पन्न होते ही और उनका मौन नष्ट होते ही उनकी प्रबल तपःशक्ति क्षीण हो गयी और जिस प्रबल तपःशक्ति और मनोयोग-शक्तिसे त्रिविद्याएँ आकर्षितकी गयी थीं, वह योग-शक्ति छिन्न-भिन्न हो गयी । तब त्रिविद्याओंको आप ही स्वाधीनतासे प्रसन्नचित होकर चले जानेका अवसर मिल गया । बलपूर्वक सिद्धि प्राप्त करनेमें साधकोंको ऐसे विघ्न होना स्वाभाविक है । अपने आप ही योगियोंको जो सिद्धि मिल जाय, वही उनके लिये उपादेय है । बलपूर्वक सिद्धियोंको प्राप्त करना शास्त्रोंमें हेय कहा गया है ॥ १—१० ॥

विश्वामित्रने कहा :—राजन्! यदि तुम्हें अधर्मका भय है, तो शीघ्र बताइये कि, किसे दान देना चाहिये? रक्षा करने योग्य कौन हैं? और किनके साथ युद्ध करना चाहिये? हरिश्चन्द्र बोले,—दान उन ब्राह्मणोंको करना चाहिये, जो तप और स्वाध्यायमें निरत हों और उन अन्य लोगोंको भी देना चाहिये, जिनकी जीविका सम्बन्धी आय थोड़ी हो, जो भयभीत हों, उनकी सदा रक्षा करनी चाहिये और जो उन्मार्गगामी (शत्रु) हों उनके साथ युद्ध करना चाहिये। विश्वामित्रने कहा, हे राजन्! यदि आप भली भाँति राजधर्मको जानते हैं, तो मैं मोक्षकी इच्छा करने वाला ब्राह्मण हूं, मुझे अभिलषित दक्षिणा दीजिये। पक्षी बोले,—यह बचन सुनकर राजा प्रसन्न चित्तसे, अपना मानो पुनः जन्म हुआ हो ऐसा जानकर, विश्वामित्रसे बोले,—भगवन्! मुझे आपको क्या देना चाहिये, वह निःसङ्कोच होकर आप कहिये। सोना, धन, पुत्र, पत्नी, शरीर, प्राण, राज्य, नगर, लक्ष्मी और जो कुछ मेरा प्रिय हो अथवा जो कुछ अप्राप्य हो, वह मैं आपको दे चुका, ऐसा ही आप जानिये ॥१६-२४॥ विश्वामित्रने कहा,—राजन्! जो आपने दान किया है, वह सब मैंने स्वीकार कर लिया है। अब सबसे पहिले मुझे राजसूय यज्ञकी जो दक्षिणा होती है, वह दीजिये। हरिश्चन्द्रने कहा,—ब्रह्मन्! आपको मैं वह दक्षिणा भी दूँगा। हे द्विजश्रेष्ठ! कहिये, आपकी अभीष्ट दक्षिणा क्या है? विश्वामित्र बोले,—हे वीर! हे सब धर्मोंको जानने वाले धर्मात्मन्! हे निष्पाप! पर्वतों, ग्रामों, नगरों और समुद्र सहित यह वसुन्धरा, रथ, अश्व, गज आदिसे युक्त समस्त राज्य, कोठार, राजकोष और अधिक क्या कहूं, अन्य जो कुछ तुम्हारा हो, और जो मेरे वशवर्ती रहे, वह सब मुझे दे डालो। केवल अपने शरीर, पत्नी और पुत्रको प्रदान न करो ॥२५-२६॥ पक्षी बोले,—इस प्रकार महर्षिका वचन सुनकर बिना मुँह बनाये प्रसन्न अन्तःकरणसे हाथ जोड़ कर राजाने कहा,—ठीक है। आपकी आज्ञा स्वीकार है। विश्वामित्र बोले, —हे राजर्षे! आपने मुझे राज्य, पृथ्वी, सेना, धन आदि सर्वस्व दे डाला है, परन्तु मुझ तापसीके राज्याधिकारी होनेपर प्रभुत्व (हुकूमत) किसका रहेगा? हरिश्चन्द्रने कहा,—पहिले जब मैंने यह राज्य सहित पृथ्वी अर्पण नहीं की थी, तब भी इसके स्वामी आपही थे। अब तो आप इसके अधिपति हो ही गये हैं, तब यह प्रश्न करनेका प्रयोजन ही क्या है? विश्वामित्र बोले, हे राजन्! यदि तुमने यह सब पृथ्वी मुझे दे डाली है और मेरा इसपर अधिकार हो गया है, तो आप अपने पुत्र और पत्नी सहित श्रोणी सूत्र (गहने) आदि समस्त आभूषणोंको

टीका :—प्राचीन कालके क्षत्रिय राजा किस प्रकारसे धर्मपरायण, उदार, तेजस्वी, दृढ़-प्रतिज्ञ, बातके धनी, दान-शील, लोभ-रहित, ब्राह्मण भक्त और वचनके लिये सर्वस्व त्याग देनेवाले हुआ करते थे, इसका थोड़ा सा दिग्दर्शन यह है ॥ १९—२४ ॥

त्यागकर और वृक्षोंकी छालसे बने हुए वल्कलोंको पहिन कर हमारे अधिकारके स्थानसे चले जाइये ॥३०-३४॥ पक्षियोंने कहा,—"ठीक है" ऐसा कहकर अपनी पत्नी शैव्या और बालक पुत्रके सहित सब अलंकारोंको त्यागकर और वल्कल परिधान कर राजा जानेको उद्यत हुए। उनको जाते देख, उनके मार्गमें आड़े आकर विश्वामित्रने कहा,—राजन्! राजसूय यज्ञकी दक्षिणा दिये बिना आप कहां जा रहे हैं? हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया,—भगवन्! मैंने यह सब निष्कण्टक राज्य आपको दे दिया है। अब हे ब्रह्मन्! मेरे पास केवल तीन देह बच रहे हैं। विश्वामित्र बोले,—यह ठीक है, परन्तु आपको यज्ञक दक्षिणा चुकानी ही पड़ेगी। विशेषतया ब्राह्मणोंको प्रतिज्ञा किया हुआ दान यदि न दिया जाय, तो सभी क्रिया कराया नष्ट हो जाता है, हे राजन्! राजसूय यज्ञमें जितनी दक्षिणासे ब्राह्मणोंको सन्तोष न हो जाय, उतनी राजसूय सम्बन्धी दक्षिणा देनी चाहिये। और आपने ही अभी स्वीकार किया है कि, प्रतिज्ञा किया हुआ दान दे देना चाहिये, आततायियोंके साथ युद्ध करना चाहिये और पीड़ित लोगोंकी रक्षा करनी चाहिये ॥३५-४०॥ हरिश्चन्द्रने निवेदन किया,—भगवन्! इस समय मेरे पास कुछ भी नहीं है। कुछ समयके पश्चात् मैं आपकी दक्षिणा चुका दूँगा। हे ब्रह्मर्षे! मेरे अच्छे भाव (नियत) का विचार कर मुझपर कृपा कीजिये। विश्वामित्र बोले,—हे प्रजानाथ! शीघ्र कहो कि, मुझे दक्षिणाके लिये कबतक प्रतीक्षा करनी होगी? नहीं तो मेरे शापका अग्नि आपको भस्म कर देगा। हरिश्चन्द्रने कहा,—हे ब्रह्मर्षे! दक्षिणाका धन मैं आपको एक मासमें चुका दूँगा। इस समय मेरे पास द्रव्य नहीं है। इसलिये ऐसा करनेकी मुझे आज्ञा दीजिये। विश्वामित्र बोले,—हे नृपवर! आप जाइये! जाइये! और अपने धर्मका पालन कीजिये। आपकी यात्रा शुभ हो, और आपके कोई शत्रु न रहें ॥४१-४४॥ पक्षियोंने कहा,—फिर वे राजर्षि प्रवर पृथ्वीपति (हरिश्चन्द्र) विस्मयसे युक्त होकर विश्वामित्रकी "जाइये" इस प्रकारकी अनुमति पानेपर चल पड़े। बिना वाहनके चलना जिसके लिये अनुचित था, वह उनकी प्रिया (शैव्या) भी उनके पीछे पीछे चली ॥४५॥ उस नृपवरको पत्नी और पुत्र सहित राजधानीसे जाते हुए देखकर नगरनिवासी और राजाके अनुचर-गण आक्रोश करने और कहने लगे,—हा नाथ! हमें, जो आपके चले जानेसे सदा ही दुःखसे पीड़ित होंगे,—क्यों छोड़ कर जा रहे हो? हे राजन्! आप धर्मपालनमें तत्पर हैं और प्रजाओं पर कृपा करनेवाले हैं। हे राजर्षे! यदि आप धर्मको जानते हैं, तो हमें भी साथ ले चलिये। हे राजेन्द्र! आप क्षणमात्र ठहर जाइये। आपके मुख कमलका आनन्द हमारे नेत्ररूपी भ्रमर लेलें। ज्ञात नहीं कि, हम आपको फिर कब देखेंगे। हां! जिनकी सवारीके साथ आगे-पीछे

राजन्यगण चला करते थे, उनके पीछे पीछे आज सुकुमार पुत्रको लेकर महाराणीजी जा रही हैं। जिनके चलते समय सेवकगण हाथियोंपर बैठकर आगे चलते थे, वे ही राजेन्द्र हरिश्चन्द्र आज नंगे पाँव जा रहे हैं, ॥ ४६—५० ॥ हे राजन्! आपका सुकुमार, सुन्दर भौंहों वाला, उन्नत-नासिका वाला और कोमल त्वचावाला यह मुखमण्डल मार्गमें धूलिसे व्याप्त होकर कैसा हो जायगा? (अर्थात् मलिन हो जायगा) अतः ठहरिये, ठहरिये और अपने धर्मका पालन कीजिये। निर्दय न होना ही धर्म हैं और क्षत्रियोंका तो यह प्रधान धर्म है। हे नाथ! क्या स्त्री, क्या पुत्र, धन, धान्य यह सब त्यागकर हम आपकी छायाके समान हो रहे हैं। हा नाथ! हा महाराज! हा स्वामिन्! हमें आप क्यों छोड़ रहे हैं? जहां आप हैं, वहीं हम हैं और जहां आप रहें, वहीं हमें सुख है। जहां आपका निवास है, वहीं हमारा नगर है। जहां हमारे नरेश विराजें, वहीं हमारा स्वर्ग है। इस प्रकार नागरिकोंकी बातें सुनकर राजा शोकाकुल हो गये और उनकी उन्हें दया आगयी। इस कारण वे मार्गमें थोड़े ठहर गये ॥ ५१-५५ ॥ नागरिकोंके वचनोंसे राजाको व्याकुल हुए देख, विश्वामित्रने वहां आकर और त्यौरी बदलकर, ताव भावसे कहा, अरे अदृढ़ प्रतिज्ञ! मिथ्यावादी! झूठे! तुझे धिःकार है। जो यह सब राज्य मुझे देकर फिर हथियाना चाहता है? इस प्रकारका कठोर वचन विश्वामित्रसे सुनकर कांपते और यह कहते हुए कि, "मैं जाता हूं" हरिश्चन्द्र महाराणीका हाथ पकड़कर उन्हें घसीटते हुए वहांसे चले गये। उस सुकुमारी और थकी हुई महारानीको राजा घसीटते हुए ले जा रहे थे, इतनेमें महारानीको सहसा विश्वामित्रने डण्डेसे पीट दिया। महारानी इस प्रकार पीटी जा रही है, यह देखकर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रने और कुछ न कहकर केवल इतना ही कहा कि "मुनिवर! मैं जाता हूं।" विश्वामित्रने नरपति हरिश्चन्द्रकी ऐसी दुर्दशा कर डाली है, यह देखकर पाँचों दयालु विश्वेदेवाओंने कहा कि, यह पापी विश्वामित्र किन लोकोंको प्राप्त करेगा, जिसने यज्ञकर्ताओंमें श्रेष्ठ हरिश्चन्द्रको उसके अपने राज्यसे निकाल दिया है? अब हम किसके महायज्ञमें समन्त्रक और श्रद्धासे पुनीत निकाला हुआ सोमरस पीकर आनन्दित होंगे ॥ ५६-६३ ॥ उनका यह वचन सुनकर विश्वामित्रने भी क्रोध युक्त होकर उन्हें शाप दिया कि, तुम सभी मनुष्यत्वको प्राप्त होगे। विश्वेदेवाओंने यह शाप वचन सुनकर कौशिककी बहुत विनती की और उन्हें मना लिया। तब मुनिवरने कहा कि,

टीका:—मनुष्य शरीरसे मृत्युके अनन्तर जीव सब ओर जा सकता है। वह अपने कर्मोंके अनुसार प्रेतलोक, नरक लोक, पितृलोक और ऊँचेसे ऊँचे देवलोक अथवा सब असुर लोकोंमें पहुंच सकता है। और इसी प्रकार क्षणिक दण्ड भोग करनेके लिये उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियोंके सहज

अस्तु, तुम मनुष्ययोनिमें तो जाओगे, किन्तु तुम्हें सन्तति नहीं होगी और न तुम्हारा विवाह ही होगा। तुम मत्सर, क्रोध, काम आदिसे रहित होगे और मनुष्य योनिसे छूटकर पुनः देवता हो जाओगे। फिर उन्हीं पाँचों देवोंने कुरुवंशमें अपने अपने अंशसे अवतार ग्रहण किया। वे ही द्रौपदीके गर्भसे उत्पन्न हुए, पाँच पाण्डव कुमार थे। उस महामुनिके शापके कारण ही महारथी होनेपर भी पाण्डव कुमार बिना व्याहे ही रहे। हे मुने! पाण्डवोंकी कथासे सम्बन्ध रखनेवाली ये सब बाते मैंने आपसे कहदीं और आपके चारों प्रश्नोंका भी उत्तर दे दिया। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? ॥ ६४-६९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका द्रौपदेयोत्पत्ति नामक सप्तम अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टम अध्याय।

जैमिनीने कहा,--हे द्विज श्रेष्ठो! आपने मेरे प्रश्नोंके यथाक्रम उत्तर दे दिये हैं। अब मुझे हरिश्चन्द्रकी कथाके सम्बन्धमें बड़ा कौतूहल हो रहा है कि उस महात्माने जैसा असाधारण दुःख भोगा, उसके अनुसार उसे कुछ सुख भी मिला या नहीं? पक्षी बोले,--वे पृथ्वीपति राजा विश्वामित्रका वचन सुनकर कोमल बच्चेवाली पत्नी शैव्याके साथ दुःखितान्तःकरणसे धीरे धीरे चले, और दिव्य वाराणसीपुरीमें पहुंचे। क्योंकि

पिण्डोंमें थोड़े समयके लिये गिराया जा सकता है। उसी रीतिपर देवतागण भी थोड़े समयके लिये इस मृत्युलोकरूपी मनुष्य लोकमें गिराये जा सकते हैं। तब उनका देव-पिण्ड थोड़े समयके लिये नष्ट हो जाता है और वे मानव-पिण्डको प्राप्त कर लेते हैं। पिण्ड तीन तरहके होते हैं। तिर्यक् योनियोंका सहज-पिण्ड, मनुष्योंका मानव-पिण्ड और नानाश्रेणियोंके देवताओंका देव-पिण्ड कहाता है। विश्वेदेवा-गण थोड़े समयके लिये मनुष्य-पिण्डको प्राप्त हुवे थे ॥ ६४–६९॥

टीका:—वेदकी रीतिपर पुराणशास्त्रोंमें जहाँ नाम अथवा रूप आया हो, वह सब त्रिभावसे पूर्ण है, ऐसा समझना चाहिये। इस सिद्धान्तके अनुसार इस परकीय भाषायुक्त गाथामें वाराणसी शब्द भी त्रिभावात्मक है। वाराणसी भगवान शिव द्वारा बसायी हुई दिव्य और मनुष्यके उपभोगसे अतीत मानी गयी है। इस लक्षणके अनुसार वाराणसीका स्वरूप त्रिभावात्मक कैसे सम्भव है, यह विचारणीय है। मनुष्य पिण्डमें इड़ा और पिंगला इन दो दिव्य नाड़ियोंके संगमस्थल पर सुषुम्ना नाड़ी रूपी दिव्य नदीके तीरपर वाराणसीका पीठ है, जो ज्ञानप्रदाता शिव द्वारा निर्मित है और सकल इन्द्रियोंके सम्बन्धसे रहित है। योगीगण ही केवल इस आध्यात्मिक काशीपुरीका दर्शन और सेवन करके स्वस्वरूपकी उपलब्धि करते हैं। यही वाराणसीके अध्यात्मरूपका रहस्य है और यही नित्य-काशी है। वाराणसीपुरीमें सकल देव-शक्तियोंकी पीठ विद्यमान है। भारतवर्षमें ऐसा और कोई दूसरा तीर्थ नहीं है कि, जहाँ सब दैव-पीठों और तीर्थोंकी प्रतिकृतिरूप स्वतन्त्र स्वतन्त्र सत्ताएँ हों। वाराणसीमें श्रीभगवान् भूतनाथ विश्वेश्वर-

यह पुरी शूलपाणि श्रीविश्वनाथकी बसाई हुई है और मनुष्योंके उपभोग योग्य नहीं है ॥१-४॥ दुःखसे व्याप्त होकर अनुकूल पत्नीके साथ वे पैदल काशी-पुरीमें पहुँचे सही, किन्तु पुरीमें पहुंचते ही वे क्या देखते हैं कि वहाँ विश्वामित्र बैठे हुये हैं। विश्वामित्रको उपस्थित हुए देख, विनयसे नम्र होकर और हाथ जोड़कर हरिश्चन्द्र उस महामुनिसे बोले,—हे मुने ! ये मेरे प्राण हैं, यह पुत्र है और यह मेरी पत्नी है; इनमेंसे जिससे आपका काम निकले, उसीको उत्तम अर्घ्य समझकर ग्रहण कीजिये। अथवा हमसे और कुछ जो आपका काम बन पड़ता हो, उसकी आज्ञा कीजिये ॥६-८॥ विश्वामित्रने कहा,—हे राजर्षे ! एक मास पूरा होता आया। यदि आपको अपने वचनका स्मरण हो, तो मुझे राजसूयकी दक्षिणा दे डालिये। हरिश्चन्द्र बोले,—हे तेजस्वी तपोधन ! हे ब्रह्मन् ! आजही एक मास समाप्त होता है, परन्तु अभी आधा दिन अवशिष्ट होता है, तब तक आप प्रतीक्षा कीजिये। इससे अधिक आपको प्रतीक्षा नहीं करनी होगी ॥९-१०॥ विश्वामित्रने कहा,—ठीक है, महाराज ! मैं फिर आऊँगा। परन्तु समझ रक्खो कि, यदि आज आपने दक्षिणा नहीं चुकायी, तो मैं आपको शाप दूँगा। पक्षी बोले,—यह कहकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्र चले गये और हरिश्चन्द्र सोचने लगे कि, इन्हें मैं प्रतिज्ञाकी हुई दक्षिणा कैसे दे सकूँगा ? इस समय वैभव सम्पन्न मेरे कोई मित्र नहीं हैं, न मेरे पास कुछ धन ही है। मेरी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेसे मेरा अधःपात न हो, इसके लिये मैं क्या करूँ ? मैं अकिञ्चन हूं। (मेरे पास कुछ नहीं है), तो क्या मैं प्राण त्याग दू ? या किस ओर जाऊँ ? यदि मैं प्रतिज्ञाकी हुई दक्षिणा दिये बिना आत्महत्या कर लूँ, तो ब्रह्मस्व-हरण करनेके कारण पातकी होकर अधमाधम कृमि बनूँगा। इससे तो यही अच्छा है कि, अपनेको बेंचकर किसीका प्रेष्य (गुलाम) बन जाऊँ ॥११-१५॥ महाराजको व्याकुल, दीन, चिन्तातुर और शिर झुकाये हुए देखकर महारानी शैव्या रुँधे हुए कण्ठसे बोली,—महाराज ! आप चिन्ताको छोड़ दें और अपने

की कृपासे पृथिवीके सब श्रेणियोंके तीर्थों और पीठोंके अधिदैव केन्द्र जब स्थापित हैं, तो वाराणसीका चिदाकाश सब प्रकारके पीठाभिमानी देवताओंसे साक्षात् सम्बन्ध युक्त है। इसी कारण मानना ही पड़ेगा कि, वाराणसी दिव्य-पुरी है और इन्द्रियासक्ति जनित भोगोंके उपयोगी नहीं है। यही वाराणसीका अधिदैव स्वरूप है। वाराणसीका तीसरा लक्षण अनुसन्धान करते समय यह वेद, पुराणादि शास्त्र और लौकिक इतिहासोंसे प्रमाणित है कि, वाराणसी सदासे विद्यापीठ, सर्व-प्रधान धर्म-पीठ और मुक्तिपुरी होनेसे वह गुणातीत-भूमि मानी गयी है। इसी कारण शास्त्रोंमें भी उल्लेख है कि, वाराणसी भगवान् शिवके त्रिगुणात्मक त्रिशूलके ऊपर विराजित है और यही कारण है कि, प्राचीन कालमें सब प्रकारके राजकीय आक्रमणसे यह पुरी स्वतन्त्र रक्खी गयी थी। अतः काशीका यह सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र होना ही उसका आधिभौतिक स्वरूप है और काशीका यह महत्व अब भी विचारशील मनुष्योंके लिये अनुभव करने योग्य है ॥ १—४ ॥

सत्य-धर्मका पालन करें। जो मनुष्य सत्यसे च्युत हो जाता है, वह स्मशानके समान त्याज्य है। हे पुरुषसिंह! मनुष्य अपने सत्यकी रक्षा करे, इससे बढ़कर कोई धर्म नहीं कहा गया है। जिसने सत्य वचनको नहीं निवाहा, उसकी अग्निहोत्र, वेदाध्ययन, दान आदि सब क्रियाएँ विफल हो जाती हैं। धर्मशास्त्रोंमें बुद्धिमानोंने कहा है कि, श्रेष्ठ-पुरुषोंके तरनेके लिये जैसा सत्यही आत्यन्तिक कारण है, वैसेही अज्ञानियोंके लिये असत्य पतनका कारण होता है। हे पृथ्वीनाथ! आपने सात अश्वमेध यज्ञकर राजसूय यज्ञ भी किया है। क्या अब एक ही बार असत्य वचन कहकर आप स्वर्गसे च्युत होंगे? राजन्! अब मुझे पुत्र-प्राप्ति भी हो गयी है,—इतना कहकर महारानीने रो दिया। उनकी आँखें आँसुओंसे डबडबायी हुई देखकर उनसे भूपतिने कहा,—हे भद्रे! सन्ताप न करो। यह तुम्हारा बालक विद्यमान है। हे गजगामिनी! तुम कुछ कहना चाहती हो, तो जो कहना है, कहो ॥ १६—२३ ॥ महारानी बोलीं,—राजन्! मुझे सन्तान हो गयी है। सज्जनोंकी स्त्रियाँ पुत्र-प्राप्तिके लिये ही हुआ करती हैं। अतः मुझे बेंच कर आप ब्राह्मणकी दक्षिणा चुका दीजिये। पक्षियोंने कहा,—महारानीका यह वाक्य सुनते ही राजा काठ हो गये। जब वे कुछ सम्हले तो दुःखित हो यह कहकर विलाप करने लगे कि, हे भद्रे! तुम जो कह रही हो, वह बड़ी ही कष्ट-कर बात है। क्या मैं पापी तुम्हारे वह स्मित-वदनसे किये हुए सम्भाषणोंको भूल गया हूं? हा! तुम्हारे न कहने योग्य यह वचन कह देना कैसे सम्भव हो गया? और इसके अनुसार आचरण ही मैं कैसे कर सकता हूं? इस प्रकार बार बार "धिक्कार है, धिक्कार है" कहते हुए वे नरश्रेष्ठ मूर्छासे अभिभूत होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रको यों पृथ्वीपर गिरे हुए देखकर महारानी अत्यन्त दुःखित हुईं और करुणासे युक्त होकर बोलीं,-हा! महाराज! यह कैसी अचिन्तनीय अवस्था प्राप्त हुई है कि, जो आप हरिणोंके रोमोंसे बने दुशालोंके बिछौनों पर सोने योग्य हैं, वे आज सूनी धरती पर गिर पड़े हैं। जिन्होंने करोड़ों गोधनका दान प्रसन्नतासे ब्राह्मणोंको दे डाला, वे ये पृथ्वीनाथ और मेरे पतिदेव पृथ्वीपर सोये हुए हैं। हा! बड़े कष्टकी बात है। हे दैव! तुम्हारा इन पृथ्वीनाथने क्या बिगाड़ा था, जो तुमने इनके इन्द्र-उपेन्द्र तुल्य होनेपर भी इन्हें मूर्छित अवस्थाको पहुंचा दिया? इतना कहते कहते वह सुश्रोणी महारानी भी पतिदेवके दुःखका महा-भार असह्य हो जानेके कारण अत्यन्त व्यथित होकर मूर्छित हो गयी और गिर पड़ी। उन दोनों, माता पिता, को अनाथकी तरह भूमिपर अचेत पड़े हुए देखकर बालक राजकुमार क्षुधासे अत्यन्त व्याकुल होनेके कारण बहुत दुःखित होकर कहने लगा, पिताजी! पिताजी! थोड़ा अन्न दो। मा! मा! कुछ भोजन दो। मुझे बड़ी भूख लगी है और मेरी जीभ सूख रही

है ॥ २४—३५ ॥ पक्षियोंने कहा,—इतने में महातपस्वी विश्वामित्र वहाँ उपस्थित हो गये। उन्होंने हरिश्चन्द्रको मूर्छित होकर पृथ्वीपर पड़े हुए देखा। तब जलका छींटा देकर राजासे वे बोले,—हे राजेन्द्र! उठो, उठो और वह मेरी अपेक्षित दक्षिणा चुका दो। ऋण परिशोध न करनेसे मनुष्यका दुःख दिन दिन बढ़ता ही जाता है। हिमके समान ठंढा-जल शरीर पर छिड़का जानेसे राजाको कुछ चेतना हुई; किन्तु जब उन्होंने सामने खड़े विश्वामित्रको देखा, तब वे फिर मूर्छित हो गये। इधर द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्र मुनि क्रुद्ध होकर राजाको समझाते हुए बोले,—यदि आपको धर्मका कुछ विचार है, तो मुझे मेरी दक्षिणा दे डालो। सत्यसे सूर्य भगवान् प्रकाशित होते हैं, सत्य पर ही पृथिवी ठहरी हुई है, सत्य ही श्रेष्ठ धर्म कहा गया है और सत्य पर ही स्वर्ग प्रतिष्ठित है। तराजू पर एक ओर सहस्रों अश्वमेध और दूसरी ओर यदि सत्यको रक्खा जाय, तो सहस्रों अश्वमेधोंसे सत्य ही श्रेष्ठ सिद्ध होगा ॥ ३६—४१ ॥ अथवा तेरे जैसे अनार्य, पातकी, कठोर और झूठे प्रभावशाली राजाके विषयमें इस प्रकार तुलनात्मक विचार करनेका प्रयोजन ही क्या है? राजन्! मेरा यह सद्भाव सुनिये। यदि आप आज मेरी दक्षिणा नहीं दे दोगे, तो निश्चय जानो कि, सूर्यास्त होनेपर मैं आपको शाप दे दूँगा। यह कह कर ब्राह्मण देवता तो चले गये, किन्तु राजा भयसे अभिभूत हो गये, और सोचने लगे कि, मैं कैसा अधम और धनहीन होकर क्रूर धनी (विश्वामित्र) से दबाया जा रहा हूँ। राजासे महारानी फिर कहने लगीं कि, नाथ! जैसा मैं कह रही हूं, वैसा ही कीजिये। (उपाय रहते हुए) शापरूपी अग्निमें जलकर आप पञ्चत्व (मरण) प्राप्त न हों, बार बार पत्नीके अनुरोध करनेपर राजाने कहा,—मैं ठीक निष्ठुर होकर अब तुम्हारा विक्रय कराता हूं। यदि मेरी वाणी ऐसा (स्त्रीको बेचनेका) दुर्वचन कहनेमें समर्थ हो, तो कठोर मनुष्य भी जो काम नहीं कर सकता, वह मैं करूँगा। यह कह कर राजा पत्नीको साथ लेकर बड़ी ही व्याकुलतासे नगरमें गये। उनकी आँखें आँसुओंसे भर आयी थीं। वे रुँधे हुए कण्ठसे कहने लगे ॥ ४२—४८ ॥ हे सब नागरिको! मेरी बात सुनो! क्या मुझसे पूछ रहे हो कि, तुम कौन हो? मैं क्रूरकर्मा हूं, मनुष्य नहीं—राक्षस हूं। अथवा उससे भी अतिकठोर हूँ और महापातकी हूं, जो प्राण रहते हुए अपनी पत्नीको बेंचनेके लिये आया हूँ। यदि आप लोगोंको मेरी प्रियतमाका दासी रूपसे कुछ प्रयोजन हो, तो जब तक मेरे शरीरमें प्राण हैं, तब तक शीघ्र कहो ॥ ४६—५१ ॥ पक्षियोंने कहा,—तदनन्तर किसी एक वृद्ध ब्राह्मणने वहाँ आकर नरेशसे कहा कि, अरे, मैं धन देकर इस दासीको मोल लूंगा। इसे मुझे सौंप दे। मेरे पास धन बहुत है, और मेरी लाड़ली स्त्री बड़ी सुकुमारी है। वह घरका काम काज नहीं कर सकती, इस कारण इसे मुझे दे डाल। तेरी स्त्रीकी काम

काजमें योग्यता, वयस, रूप, शील आदिके अनुरूप यह धन ले और इस अबलाको मेरे साथ कर दे। विप्रके इस प्रकार कहने पर राजा हरिश्चन्द्रका हृदय दुःखसे विदीर्ण हो गया। उन्होंने उस वृद्धको कुछ भी उत्तर नहीं दिया। फिर वह ब्राह्मण राजाके वल्कल-के पल्लेमें धन गठिया कर महारानीके जूड़ेको पकड़ कर उन्हें घसीटने लगा। मां, घसीटी जा रही हैं, यह देखकर, जिसके सिरपर काकपक्ष (चूड़ा (चौल) कर्म के समय कानके समीप रक्खे जानेवाले बाल) शोभा पा रहे थे, वह बालक राजकुमार रोहिताश्व माँका आँचल पकड़ पकड़ कर रोने लगा ॥ ५२—५७ ॥ महारानीने उन ब्राह्मणसे कहा,—हे आर्य! छोड़ो, छोड़ो, थोड़ी देर मैं इस अपने बच्चेको तो देख लूं। हे तात! फिर इसका दर्शन मेरे लिये दुर्लभ हो जायगा। पुनः पुत्रसे कहा, हे वत्स! देखो मैं तुम्हारी माता अब दूसरेकी दासी हो गयी हूँ। हे राज पुत्र! मुझे न छुओ; क्योंकि इस समय मैं अछूत हूं। फिर माताको घसीटी जाती देख, बालक आँसू बहाता और रोता हुआ "मां, मां, कहकर" सहसा माताके पीछे दौड़ने लगा। तब उस आये हुए ब्राह्मणने क्रोधसे बालक राजकुमारको एक लात जड़ दी। तौभी "मां, मां" कहते हुए उस बालकने माताको नहीं छोड़ा। तब महारानीने ब्राह्मणसे कहा,—हे प्रभो! कृपा कीजिये, और इस बालकको भी मोल ले लीजिये। यद्यपि मैं बिक चुकी हूँ, तथापि इसके बिना मैं आपका भली भाँति काम काज नहीं कर सकूंगी। मुझ अभागिनी पर आप अनुग्रह कीजिये और पयस्विनी (गौ) को जैसे बछड़ेके साथ मिला दिया जाता है, वैसे इस बालकको मुझसे मिला दीजिये। इसका बिछोह न होने दीजिये ॥ ५८–६३ ॥ ब्राह्मण बोला,—ठीक है, यह और धन लो और बालक मेरे हवाले करो। उत्तम धर्मशास्त्रज्ञोंने स्त्री और पुरुषका वेतन तथा मूल्य सौ, सहस्र, लक्ष और कोटि मुद्रा भी निर्धारित किया है। पक्षियोंने कहा,—पहिलेकी तरह वह ब्राह्मण हरिश्चन्द्रके दुपट्टेमें और धन गठिया कर और बालक तथा उसकी माताको एकत्र बाँध कर जब उन्हें ले चला, तब अपनी पत्नी और पुत्रको इस प्रकार ले जाते हुए देखकर राजा अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो, बार बार दीर्घ और उष्ण निश्वास करते हुए विलाप कर कहने लगे कि, जिसे पहिले वायुदेव, सूर्यदेव, चन्द्रमा या और अन्य व्यक्तिने नहीं देख पाया था, वह मेरी पत्नी, इस समय दूसरेकी दासी बन गयी है। जिसके हाथ अभी अत्यन्त कोमल हैं और जिसका जन्म सूर्यवंशमें हुआ है, वह मेरा बालक आज बिक चुका। हा! मुझे अत्यन्त दुर्बुद्धिको धिक्कार है। हा प्रिये! हा बच्चे! हा वत्स! मुझे अनार्यके बुरे और अन्यायके आचरणसे तुम इस दैव विडम्बनकी दशाको प्राप्त हुए हो; तौभी मैं मरा नहीं, इसलिये मुझे धिक्कार है। पक्षी बोले,—राजा इस प्रकार विलाप कर रहे थे कि, वह ब्राह्मण उन दोनोंको लेकर शीघ्रतासे वृक्षों और ऊँचे घरोंकी ओटमें

चला गया। फिर वहाँ विश्वामित्र उपस्थित होगये और राजासे धन माँगने लगे। हरिश्चन्द्रने भी जो धन प्राप्त हुआ था, वह उनको अर्पण कर दिया ॥ ६५-७१ ॥ स्त्री पुत्रका विक्रय कर प्राप्त हुआ धन थोड़ा है, यह जानकर शोकाकुल राजा पर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र बोले,—हे क्षत्रियाधम! यदि तू यही मेरे योग्य यज्ञ-दक्षिणा समझता है, तो अब इसी समय मेरी प्रखर-तपस्या, विशुद्ध-ब्रह्मतेज, उग्र-प्रभाव और शुद्ध-अध्ययनका बल देख। हरिश्चन्द्रने कहा,—भगवन्! मैं अभी पत्नी और पुत्रको बेचकर इतना धन संग्रह कर सका हूँ। इससे अधिक मेरे पास कुछ नहीं है। थोड़ी देर ठहरिये। आपकी शेष दक्षिणा भी चुका दूँगा। इस पर विश्वामित्रने कहा,—हे नरेश! देखा, अब दिनका चौथा पहर ही बच रहा है। बस, इतनी ही (अर्थात् सूर्यास्त तक) मैं और प्रतीक्षा करूँगा। इसके पश्चात् कुछ कहनेका तुम्हें अवसर नहीं रह जायगा। पक्षी बोले,—राजाको ऐसे निष्ठुर और निर्घृण वचन सुनाकर और वह धन लेकर विश्वामित्र वहाँसे झट्से चल दिये। विश्वामित्रके चले जाने पर राजा भय और शोकके सागरमें डूब गये। सब तरहसे सोच विचार कर निश्चय पूर्वक उच्चस्वरसे अधोमुख होकर वे कहने लगे,—यदि कोई मनुष्य धन देकर दासके रूपमें मुझे मोल लेना चाहे, जब तक सूर्य अस्त नहीं हुआ है, तो वह मुझसे आकर कहे। इतनेमें वहाँ चाण्डालका रूप धरकर स्वयं धर्म शीघ्रतासे आ पहुँचे। वे बड़े ही कुरूप थे, उनके सारे शरीरसे दुर्गन्धि निकल रही थी, डाढ़ी और शिरके बाल बढ़े हुए थे, बड़े बड़े टेढ़े दाँत थे, देखनेसे घृणा उत्पन्न होती थी, वर्ण काला और शरीर अति दुवला होने पर भी पेट लम्बा थ, आँखें पीली और रूखी थीं, भाषण कठोर था, गलेमें मुर्दोंकी चढ़ी मालाएँ थीं और बगलमें बहुतसे पक्षी थे। एक हाथमें नर-कपाल और दूसरे हाथमें लाठी थी। मुंह चौड़ा और विकराल था। बार-बार भयानक शब्द उच्चारण कर रहे थे। उनका स्वरूप बड़ाही विकट और रूखा था और वे कुत्तोंसे घिरे हुए थे। उन्होंने आकर राजासे कहा,--अजी, आपका मैं गाहक हूँ, अपना मूल्य शीघ्र कहो, जिसके देनेसे आप मुझें मिल जायँ। वह चाहे थोड़ा हो या अधिक, इसकी कोई चिन्ता नहीं। पक्षी बोले,--क्रूरदृष्टि और अत्यन्त कर्कश स्वभाववाले उस चाण्डालको इस तरह कहते हुए देखकर राजाने पूछा तुम कौन हो? चाण्डाल बोला,—मैं चाण्डाल (डोम) हूँ, और इस श्रेष्ठ नगरीमें 'प्रवीर' नामसे प्रसिद्ध हूं। जिनको प्राण दण्ड दिया जाता है, उन्हें फाँसी लटकाने, सूलीपर चढ़ाने या सिर काटनेमें मैं विख्यात हूं, और मुर्दोंका कफ़न लिया करता हूं ॥ ७२-८५ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा, चाण्डालका दास होना मैं नहीं चाहता। यह तो बड़ा ही निन्दनीय है। शापकी आगमें भलेही जलकर भस्म हो जाऊँ, किन्तु चाण्डालके वशीभूत

होकर नहीं रहूँगा। राजा यह कहही रहा था कि, वहां तपोनिधि विश्वामित्र आ धमके और क्रोधसे लाल हुई आँखोंको न टेरकर राजासे बोले,—यह चाण्डाल तुझे पर्याप्त धन देनेके लिये उपस्थित हो गया है। इससे धन लेकर मेरी पूरी दक्षिणा क्यों नहीं चुका देता ? हरिश्चन्द्रने कहा,—हे भगवन् कौशिक! मैं अपनेको सूर्यवंशी जानता हूँ; फिर धनकी कामनासे चाण्डालका दास कैसे बनूँ ? विश्वामित्र बोले-- यदि तू ठीक समय पर (सूर्यास्तसे पहिले) अपनेको बेंचकर इस चाण्डालसे प्राप्त हुआ धन मुझे न देगा, तो निःसन्देह मैं तुझे शाप दूँगा। पक्षियोंने कहा,—तब जो केवल चिन्ता (धर्म चिन्ता) के लिये ही जी रहे थे, उन राजा हरिश्चन्द्रने विह्वल होकर ऋषिके चरण पकड़ लिये और कहा,—भगवन्! प्रसन्न होइये (क्रोध न कीजिये) मैं आपका दास हूँ, पीड़ित हूं, डरा हुआ हूं और विशेषतया आपका भक्त हूं। हे ब्रह्मर्षे! मुझपर करुणा कीजिये। चाण्डालका सहवास मेरे लिये बड़ा ही कष्ट कर है। हे मुनिशार्दूल! मैं धन हीन हूँ, तो आपका ही दास होकर रहूंगा और आपकी इच्छानुसार आपके वशीभूत होकर आपका सब काम काज करूँगा। विश्वामित्रने कहा,—यदि तुम मेरे दास हो, तो मैंने तुमको एक अरब मुद्रामें इस चाण्डालके हाथ बेंच दिया है। अब तुम इसके दास हो चुके ॥ ८६-९४ ॥ पक्षी बोले,—तब हरिश्चन्द्रके मुखसे "जो आज्ञा" ये शब्द निकलते ही वह चाण्डाल प्रसन्न होकर और विश्वामित्रको उनका मांगा हुआ धन देकर राजाको बांधकर अपने नगरमें ले गया। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी, पुत्र, बन्धु, बान्धव आदिके वियोगसे दुःखी हो ही रहे थे; ऊपरसे उस चाण्डालने उन्हें डण्डेसे पीट डाला। इससे वे बड़े ही व्याकुल और त्रस्त हो गये। राजा हरिश्चन्द्र चाण्डालकी नगरीमें निवास करते हुए प्रातः सायं और मध्याह्न समयमें यही रटन लगाया करते थे कि, दीन-वदना-बाला मेरी (प्रिय पत्नी) दुःखोंसे व्याप्त होकर जब अपने सामने उदास बालक (रोहिताश्व) को देखती होगी, तब मेरा स्मरण कर यह सोचती होगी कि राजा बहुत धन उपार्जन कर, और जिस ब्राह्मणने हमें जितने मूल्यमें मोल लिया है, उसे उससे अधिक धन देकर हम माता-पुत्रको छुड़ा लेंगे। परन्तु वह भोली मृगलोचनी यह नहीं जानती कि, मैंने कितना घोर पातकीका काम कर डाला है। (अपने आपको चाण्डालके हाथ बेच डाला है) राज्यनाश, सुहृदोंका त्याग, स्त्री-पुत्रका विक्रय और अब यह चाण्डालत्वकी प्राप्ति! अहो! यह कैसी दुःख परम्परा है। जिनका सर्वस्व छिन गया था, वे राजा हरिश्चन्द्र व्याकुल होकर चाण्डालके घर रहते हुए इस प्रकार अपने प्रियतम पुत्र और अर्धाङ्गिनी पत्नीका निरन्तर ही स्मरण किया करते थे ॥ ९५-१०१ ॥ कुछ समय बीतने पर मुर्देका कफ़न लेनेवाले उस चाण्डालने उसके

वशवर्ती राजा हरिश्चन्द्रको स्मशानमें नौकरी बोली और आज्ञाकी कि, तुम दिन-रात यहां रहकर, कहांसे कौन मुर्दा आता है, देखा करो। मुर्देसे जो कुछ प्राप्त हो, उसमें छठा हिस्सा राजाका होता है बचे हुए धनमेंसे तीन भाग मेरे और दो भाग तुम अपनी वृत्तिके समझो। चाण्डालके द्वारा इस प्रकार नियुक्त होनेपर राजा हरिश्चन्द्र वाराणसीके दक्षिण दिशामें स्थित स्मशानमें पहुँचे। वह स्थान चारों ओरसे सियारोंके घोर शब्दोंसे निनादित हो रो रहा था, मुर्दोंके खोपड़ोंसे भरा था, बहुत ही दुर्गंधि-मय और धूएँसे आच्छन्न था। वहां पिचाश, भूत, वैताल, डाकिनी, गीध, गोमायु (सियार) और कुत्ते चिल्लाते थे। जहां तहां हड्डियोंके ढेर लगे थे, पीपकी दुर्गन्धि फैल रही थी, और मृत-व्यक्तियोंके कुटुम्बी भयानक आर्तनाद कर रहे थे। "हा पुत्र! हा मित्र! हा बन्धो! हा भाई! हा वत्स! हा प्रिय! हा स्वामिन्! हा बहिन! हा मां! हा मामा! हा दादा! हा नाना! हा पिता जी! हा पुत्र! हा बान्धव! आज तुम कहां गये, एक बार तो आ जाओ"—इसी तरहका कोलाहल चारों ओरसे सुनाई देता था। मांस, चर्बी, मेदा आदिके जलनेसे "छम् छम्" शब्द निकलता था। आधे जले हुए मुर्दे काले पड़ जाते, और उनके दांत बाहर निकल आते थे। मानो उपहाससे वे कह रहे हों कि, देह की यही दशा होती है। हड्डियोंके ढेरोंपर बैठे हुए पक्षियोंकी नाना प्रकारकी ध्वनियों, मृतोंके लिये होने वाले आर्तनादों, अग्निके "चट् चट्" शब्दों और चाण्डालोंकी आनन्द-सूचक किलकारियोंसे वह स्थान परिपूर्ण था। कहीं भूत, वैताल, पिशाच और राक्षसोंके गानके समय, कालके समान भयङ्कर स्वर सुनाई देते थे। कहीं भैंस और गायोंके गोबर और उसकी राखसे सनी हुई हड्डियाँ धरहरेके आकारमें परिणत हो गई थीं। कहीं काक-बलि छिटके पड़ थे, कहीं मुर्दोंपर चढ़े हुए फूल बिखरे हुए थे और कहीं (बुते हुए) दीपोंकी कालिख खिंची हुई थी। मुखसे अग्नि उगल कर कहीं सियार रोते और अमङ्गल तथा भयङ्कर शब्दोंसे गुफाओंको गुँजा देते थे। नाना प्रकारके मनुष्योंके नाना प्रकारके रोनेके शब्दों और नाना प्रकारकी प्रति ध्वनियोंसे अत्यन्त भयानक वह स्मशान नरकके समान हो रहा था और उसके देखनेसे बोध होता था कि, यहां साक्षात् यम राजको भी डर लगे बिना न रहेगा ॥ १०२-११७ ॥ राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण स्मशानमें पहुँचनेपर दुःखित होकर सोचने लगे—हा विधाता! मेरे नौकर-चाकर, मन्त्री, ब्राह्मण-गण और मेरा राज्य कहाँ गया? हा शैव्ये! हा पुत्र!

टीका :—इस अलौकिक गाथाको मनन करनेपर साधारणतः महर्षि विश्वामित्रकी कठोरता और महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रकी दुर्बलताका विचार होता है। अतः शास्त्रोक्त त्रिविध-भाषा और धर्माधर्म रहस्यके अनुसार विचार आवश्यक है। वेद और पुराणोंमें जो समाधिगम्य स्वानुभव प्रकाशक विषय हैं वह समाधि-भाषा कहाती है और उसकी दृढ़ताके अर्थ जो लौकिक रीतिपर रूपक-रूपसे वर्णन होता

हा बच्चे ! मुझ अभागेको छोड़कर तुम कहाँ चल दिये ? विश्वामित्रके रोषके कारण मेरा सभी कुछ, ज्ञात नहीं, कहां चला गया ? यही सब सोचते सोचते चाण्डालकी कही बातें भी उनको वारवार स्मरणमें आने लगीं ॥ ११८–१२० ॥ वे मैले कुचैले वस्त्र पहिने थे, सारा

है, वह लौकिक–भाषा कहाती है और धर्माधर्म अथवा उसके किसी अङ्गके यथार्थ रूपसे निर्णयार्थ जो गाथाएं आती हैं, वह परकीय–भाषा कहाती है। इसका दिग्दर्शन पहिले हो चुका है। यह पुण्यमयी हरिश्चन्द्र–गाथा परकीय–भाषामें है। और क्षत्रिय धर्मकी पूर्णताका स्वरूप चित्रित करके जगत्में फैलाना इस गाथाका उद्देश्य है। शूद्र-धर्म काम-प्रधान है, वैश्य-धर्म अर्थ-प्रधान है, क्षत्रिय–धर्म धर्म-प्रधान है और ब्राह्मण-धर्म मोक्ष प्रधान है। महर्षि विश्वामित्रकी चेष्टा बाहरसे अति कठोरता पूर्ण होनेपर भी वे महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके कृतज्ञ हुए थे। इसी कारण नरेश हरिश्चन्द्रको धर्मकी पराकाष्ठामें पहुंचाने के लिये उन्होंने यह कठोरताका व्रत धारण किया था और नरेश, उनकी रानी और राजकुमार तीनोंको अति दुर्दशामें पहुंचा दिया था। महर्षि विश्वामित्र सिद्धियोंके लोभसे पतनोन्मुख हो रहे थे, तभी वे त्रिविद्याके साधनमें रत हुए थे। महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रने उनको सिद्धियोंसे प्राप्त होनेके पतनसे बचाया था और उनका मुक्ति-मार्ग सरल कर दिया था, यह मानना ही पड़ेगा। महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रकी इस सहायतासे कृतज्ञ होकर महर्षि विश्वामित्रने महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रको स्वधर्म पालनकी पराकाष्ठामें पहुँचा कर कृतकृत्य करना विचार कर यह अलौकिक घटनाकी थी। दूसरी ओर महाराजाधिराज हरिश्चन्द्र भारतके सम्राट् होनेपर भी क्षत्रियधर्मसे, ऐसी दुर्गतिमें भी नहीं डिगेथे और प्रत्येक सन्धिमें अपने धर्मलक्ष्यको उन्होंने अक्षुण्ण रक्खा था। काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष इन चारोंमेंसे काम और अर्थ साधारणतः जीवके पतनका कारण बनते हैं। यही कारण है कि, कामसेवी और अर्थसेवी पुरुषगण स्वकामनाओंकी पूर्तिके निमित्त और अर्थ-संग्रहके निमित्त ऐसा कोई भी कुकर्म नहीं है, जो न कर सकते हों। इसका प्रत्यक्ष दृश्य इस मृत्युलोकमें प्रायः देखनेमें आता है। परन्तु धर्मके लिये सब कुछ करना कैसे सम्भव है, वह महाराज हरिश्चन्द्रके जीवन चरित्रमें दिखाया गया है। काम और अर्थ-जनित तृप्ति तो इन्द्रिय-जनित है। इस कारण उसके लिये मोहान्धजीवका अधिकसे अधिक लिप्त हो जाना स्वभावसिद्ध है। परन्तु धर्मके संग्रहमें प्रत्यक्ष रूपसे धर्म-प्रसादके अतिरिक्त और कोई आकर्षण जीवके सामने नहीं होता और क्लेश ही क्लेश भोगना पड़ता है। ऐसी दशामें धर्मसाधनकी परीक्षाकी पराकाष्ठामें पहुंचना राजाओंकी तो बात ही क्या है, योगियोंको भी दुर्लभ है। त्रिविद्याओंको अभय देकर तपस्वी ब्राह्मणके कोपको सिर लेना, यह राजधर्मके अभय-दानका चूडान्त दृष्टान्त है। धन और ऐश्वर्य संग्रह, भोगके निमित्त न कर दानके निमित्त करना, यह राजाका धर्म है। सुतरां महर्षि विश्वामित्रके दान-ग्रहणकी इच्छाको प्रकट करनेपर उन्हें मुंह मांगा दान देनेका अभिवचन देकर नरेश हरिश्चन्द्रने क्षत्रिय राजाके स्वभावसिद्ध धर्मका पालन कर दिखाया था और तदनन्तर सर्वस्वदान करके दानवीरका आदर्श स्थापन किया था। साम्राज्य और सकल ऐश्वर्योंका दान महर्षिको करके दानशीलता और उदारताकी पराकाष्ठा दिखायी थी। अन्तमें दानधर्मके निमित्त अपनी महारानी, राजकुमार और अपने शरीर तक बेच देनेसे सत्य-धर्म-पालनकी पराकाष्ठा उनके पुण्यमय चरित्रमें प्रतिफलित हुई थी। और क्षत्रिय नरपति को केवल धर्मके लिये अपना, सर्वस्व समर्पण कर देना कैसा सम्भव है, सो उनके अन्तिम चरित्रमें घोषित हो गया है। जहां धर्मकी पूर्णता है, वहां दैवी-जगत्की पूर्ण सहायता होगी, इसमें सन्देह ही क्या है ? क्योंकि असुरगण अधर्मके सहायक और देवतागण स्वभावसे ही धर्मके सहायक रहते हैं। और

शरीर रूखा हो रहा था, मुर्दोंके केश अंगोंमें लपटे थे और दुर्गन्धि निकल रही थी। एक हाथमें ध्वजा और दूसरे हाथमें दण्डा लेकर (मुर्देकी खोजमें) इधर उधर दौड़ रहे थे। मानो उस समय वे स्वयं कालके रूप हो रहे थे। "इस मुर्देसे यह रकम पायी है, उस मुर्देसे इतनी और मिलेगी। इसमेंसे इतनी राजाकी, इतनी मेरी और इतनी मुख्य चाण्डालकी है।" इस प्रकारकी चिंता करते करते, वे इधर उधर घूमते थे। प्रतीत होता था कि, इसी जन्ममें उन्होंने जन्मान्तर प्राप्त किया है। फटे-पुराने लत्तोंकी गांठे बांध बांध कर बनाई हुई कन्था पहिने थे, मुँह, हाथ, पेट, पांव आदिमें चिता-भस्म चढ़ा था; हाथकी अँगुलियाँ, मेदा, वसा, मज्जासे भरी थीं; निरन्तर दीर्घ-निःश्वास करते, नाना प्रेतोंके पिण्ड दानसे बचे हुए भातको खाकर क्षुधा शमन करते, शवोंपर चढ़ी हुई मालाओंसे शिरको सजाते और बारबार "हा! हा!" शब्द उच्चारण करते हुए, क्या दिन और क्या रात, किसी समय शयन नहीं करते थे ॥१२१-१२५॥ इसी प्रकार उन्होंने उस श्मशानमें बारहमास सौ वर्षोंकी तरह बिता दिये। एक दिन बन्धु-वियोगी, रुक्ष-शरीर वे नृप-श्रेष्ठ बहुत थक जानेसे निश्चेष्ट होकर सो गये। सो जानेपर उन्हें विश्रान्ति मिली हो, सो नहीं; उस अवस्थामें उन्होंने स्वप्नमें एक बड़ी ही अद्भुत घटना देखी। श्मशानमें सोनेका अभ्यास हो जानेसे (जिस परिस्थिति अथवा स्थानमें मनुष्य रहता है, उसीके अनुसार स्वप्न भी देखता है।) अथवा दैव ही बलवान् होनेके कारण, वे क्या देखते हैं कि, उन्होंने दूसरा देह धारण किया है और उसी देहमें गुरुको दक्षिणा देकर तथा बारह वर्ष दुःख भोगकर तब छुटकारा पायेंगे। फिर क्या देखते हैं कि, उन्होंने डोमिनके गर्भमें प्रवेश किया है। डोमिनके गर्भमें रहते हुए वे सोच रहे हैं कि इस डोमिनके गर्भसे बाहर आने (जन्म पाने) पर मैं बहुत दान धर्म करूंगा। फिर जब वे डोमिनके गर्भसे चांडाल बालकके रूपमें जन्मे, तो श्मशानमें मृत-संस्कार कार्य करनेमें निरन्तर रहने लगे। जब वे चाण्डाल बालकके रूपमें सात वर्षके हुए, तब एक दिन एक गुणवान गरीब ब्राह्मणका शव उसके बन्धु-बान्धव श्मशानमें ले आये। वे ब्राह्मण (बन्धु-बान्धव) शवदाहका कर देनेमें असमर्थ थे, अतः उन्हें इन्होंने बहुत फटकार बताई। तब ब्राह्मणोंने कहा कि,—हा! विश्वामित्रका कैसा पापमय कार्य है। अरे पापी! तू इसी प्रकार अशुभ कार्य करता रह। पूर्व जन्ममें तू राजा हरिश्चन्द्र था। ब्रह्मत्वका विनाश करनेसे तेरा पुण्य नाश होकर विश्वामित्रकी करनीसे तूने चाण्डालके

सात्विक सुखकी प्राप्तिके पथमें प्रथम दुःखका अनुभव और तत्पश्चात् सुखका अनुभव हुआ करता है। अतः महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रके पुण्यमय जीवनमें नाना प्रकारके असाधारण दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर भी तत्पश्चात् असाधारण पुण्य जनित असाधारण अभ्युदय हुआ था और उनको इस अलौकिक दानयज्ञ और तपोयज्ञका पूर्णफल मिलना निश्चित था ॥ ११८—१२० ॥

घरमें जन्म लिया है॥ १२६—१३४॥ (चाण्डाल बालकके द्वारा तिरस्कृत होनेपर भी) जब ब्राह्मणगण शवदाहका कर देनेमें समर्थ नहीं हो सके, तब उन्होंने अत्यन्त क्रुद्ध होकर राजाको शाप दिया कि, रे नराधम! तू इसी समय नरकमें जा। ब्राह्मणोंके मुखोंसे यह शाप वचन निकलते ही स्वप्न देखनेवाले राजा क्या देखते हैं कि, अत्यन्त भयङ्कर यमदूत हाथमें फाँसी लिये आ गये हैं और बलपूर्वक उनकी आत्माको ले जा रहे हैं। तब बड़े ही खेदके साथ वे विलाप करते हैं कि, हा माता! हा पिता! आज मेरी यह क्या दशा हो रही है। इस प्रकार वे चीत्कार कर ही रहे थे कि, यमदूतोंने उन्हें तेलकी कड़ाहीमें छोड़ दिया। फिर अन्धकूपमें, जहां घोर अन्धकार था, वे डाले जाकर छुरे जैसी पैनी धारवाले आरेसे काटे जाने लगे और उन्हें पीप और रक्तका भोजन कराया जाने लगा, जिससे वे बड़ेही दुःखित हुए। डोमके रूपमें सातवें वर्षमें मरी हुई उस आत्माको वे देखते हैं कि, प्रतिदिन कभी वह नरकमें जल रही है, कभी पकायी जा रही है, कभी खिन्न और क्षुब्ध हो रही है। कभी पीटी जाती, कभी काटी जाती, कभी खारमें डाली जाती, कभी प्रज्वलितकी जाती और कभी किसी स्थानमें शीत और वायुसे आहतकी जाती है। वहाँ एक-एक दिन उनके लिये मानो सौ-सौ वर्षोंके समान बीतने लगा। इसी तरह यन्त्रणा भोगते भोगते उन्होंने एक दिन नरकके रक्षकोंसे सुना कि, उनके सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं। तब यमदूतोंने उन्हें पृथ्वी पर गिरा दिया। फिर उन्होंने विष्ठाभोजी कुत्तेका जन्म ग्रहण किया और विष्ठा तथा वमनका भोजन करते हुए अत्यन्त शीतसे आक्रान्त होकर एक मासमें ही देह त्याग दिया॥ १३५–१४३॥ अनन्तर क्या देखा कि, वे गर्दभ-योनिमें उत्पन्न हुए हैं। फिर क्रमशः हाथी, बन्दर, छाग, बिल्ली, कौए, गौ, मेंढ़े, पक्षी, कृमि, मछली, कछुए, सूअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्ष, अजगर, सर्प आदि योनियोंमें प्रतिदिन ही जन्म पाते और अत्यन्त क्लेश भोगते हुए एक-एक दिनको सौ सौ वर्षके समान अनुभव करते थे। इस प्रकार नाना प्रकारकी कुयोनियोंमें जन्म लेते और दारुण यन्त्रणाओंको भोगते हुए पूरे सौ वर्ष बीत गये। फिर देखा कि, किसी समय पुनः अपने (सूर्य) वंशमें ही जन्म ग्रहण कर वे राजा हुए हैं। उस अवस्थामें भी एक बार उन्होंने जूवा खेला और उसमें राज्य, स्त्री तथा पुत्रको हार कर एकाकी अरण्यमें गमन किया, वनमें क्या देखते हैं कि, एक सिंह, शरभ (बड़ेसे बड़े मांसाशी पक्षी) के साथ मुंह फैलाकर उनको खानेके लिए दौड़ा आ रहा है। अनन्तर उन्होंने देखा कि, उनको सिंहने खा लिया। तब "हा शैब्ये! इस दुःखीको छोड़कर तुम आज कहां चली गयी?" इस प्रकार ज्योंहीं शोक करने लगे, त्योंहीं क्या देखते हैं कि, महारानी शैब्या पुत्रको लेकर "हा महाराज हरिश्चन्द्र! हमारी रक्षा करिए। हे प्रभो! आपको द्यूत

खेलनेसे क्या प्रयोजन है। देखिये, आपकी पत्नी शैव्या अपने पुत्रके साथ कैसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है।" इस प्रकार विलाप कर रही है। तव वे इधर-उधर वार-वार दौड़ते हैं, पर उन्हें वह दिखायी नहीं देती। राजा हरिश्चन्द्रने फिर देखा कि, वे स्वर्गमें विराजमान हो रहे हैं। वहां निवास करते हुए उन्होंने देखा कि, दीना, वस्त्रहीना, मुक्तकेशी, महारानी शैव्या किसीके द्वारा हरी जाकर "हा महाराज! रक्षा करिये" इस प्रकार लगातार चिल्ला रही है। फिर क्या देखा कि, यमराजकी आज्ञासे यमदूतगण आकाशमार्गमें खड़े हैं और गला फाड़कर कह रहे हैं, "महाराज! आप इधर आइये। आपको यमलोकमें बुलानेके लिये विश्वामित्रने यमराजसे प्रार्थना की है।" इसके पश्चात् यमदूत उनको नागपाशमें बांधकर यमराजके पास ले गये। वहां यमराजके यह कहने पर भी "कि, राजन्! जो तुम क्लेश पा रहे हो, यह सब विश्वामित्रकी करनी है।" उनके मनमें अधर्माचरणका विकार उत्पन्न नहीं हुआ।* ये सब दशाएं जो उन्होंने स्वप्नमें देखी, उनको वे स्वप्नमें ही बारह वर्षों तक भोगते रहे। बारह वर्ष बीतने पर उन्हें पकड़कर यमदूतगण यमराजके पास ले गये। आकारसे उन्होंने यमराजको पहिचान लिया। फिर यमराजने उनसे कहा,—हे महाराज! यह सब महात्मा विश्वामित्रके दुर्निवार कोपका फल है। और तो क्या, वे आप के पुत्रकी मृत्यु भी करावेंगे। अतः अब आप मृत्युलोकमें जाकर शेष दुःखोंका भोग कीजिये। हे राजन्! वहाँ बारह वर्ष दुःख भोग करने पर दुःखोंसे आपका छुटकारा होगा और आपका मङ्गल होगा। यमराजके इस प्रकार कहतेही यमदूतोंने उन्हें आकाशसे पृथ्वी पर फेंक दिया। यमलोकसे नीचे गिरतेही वे भय और भ्रमके वशीभूत हो, हठात् जाग गये और मनही मन चिन्ता करने लगे कि, हा! घावपर नमक छिड़के जानेकी तरह यह क्या हुआ? स्वप्नमें जैसे मैंने दुःख देखे, उनकी सीमा नहीं है। स्वप्नकी घटनानुसार क्या बारह वर्ष बीत गये? उन्होंने यह प्रश्न आसपासके अन्य डोमोंसे किया, तो कुछ

---

* यद्यपि स्वप्नके बहुत भेद हैं, और सात्विक स्वप्न भविष्यत् घटनाके द्योतक भी होते हैं. और इस प्रकार पारलौकिक भोग रूपी स्वप्न भी कभी-कभी देखपड़ते हैं और स्वप्न-विज्ञान भी अलौकिक रहस्यों से पूर्ण है तथापि इस परकीय भाषाकी गाथामें महाराजाधिराज परम धार्मिक हरिश्चन्द्रकी धर्मकी धृतिकी पराकाष्ठा बतायी है। उन्होंने स्वप्नमें भी धर्मकी सात्विक धृतिको नहीं छोड़ा, और ऐसे घोर और असहनीय क्लेशोंको बार-बार सहने पर भी उनकी स्वधर्मपालनकी सात्विक धृति नष्ट नहीं हुई। उन्होंने ऐसी दशामें भी महर्षि विश्वामित्रको दोषी नहीं समझा। वे सत्यसे भ्रष्ट नहीं हुए और त्याग तथा तपस्याकी पराकाष्ठामें पहुंच कर उन्होंने अपनी सात्विक धृतिकी रक्षा करके धर्मसाधनके अभ्युदय और निःश्रेयसका पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया।

डोमोंने उत्तर दिया कि; अभी नहीं वीते हैं और कुछ डोम बोले,—हो सकता है कि, बारह वर्ष बीत गये हों। डोमों के ऐसे दुबिधा का वचन श्रवण कर अत्यन्त दुःखित अन्तःकरण से देवताओंके वे शरणापन्न हुए। बोले,—हे देवगण ! आप मेरा, शैव्याका और बालक (रोहिताश्व) का मङ्गल करें॥ १४४—१६५॥ सर्वश्रेष्ठ धर्मको प्रणाम है। विधाता स्वरूप कृष्णको प्रणाम है। जो सबसे श्रेष्ठ, पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण-पुरुषको प्रणाम है। हे बृहस्पते ! आपको प्रणाम है। हे इन्द्र ! आपको प्रणाम है। इस प्रकार प्रार्थना कर और स्वप्नकी घटनावली को भुलाकर फिर मुर्दोंको निश्चित करने के चाण्डालके कार्य में लग गये। फिर मलीन वेषधारी, जटाधारी, कृष्णवर्ण और हाथमें लकुट लिये हुए उन व्यथित चित्त राजाके पत्नी, पुत्र आदि कोई भी स्मृति-गोचर नहीं हुए। क्योंकि उस समय वे राज्यविनाशके कारण उत्साह-हीन होकर स्मशानमें रहा करते थे॥ १६६–१६९॥ इसके अनन्तर राजा हरिश्चन्द्रकी पत्नी शैव्या, जो अत्यन्त कृश, मलीन और विमना हो गयी थी और जिसके केश धूलसे भरे थे, सर्पके काटनेसे मृत्यु पाये हुए अपने बालकके मृतकको लेकर "हा वत्स ! हा पुत्र! हा शिशो !" इत्यादि बार-बार विलाप करती हुई उस स्मशानमें आयी। महारानी कहने लगी,—हा महाराज ! पृथ्वीके चन्द्रमाके समान जिस अपने बालकको आप खेलते हुए देखते थे, आज देखिये कि, दुष्ट सर्पके काटने से उसने प्राण त्याग कर दिया है। राजा हरिश्चन्द्र महारानीका विलाप सुनतेही "जान पड़ता है कि, यहीं कफन मिलेगा" यह कहते हुए उसकी ओर दौड़े गये; परन्तु बहुत प्रवास करनेसे जो पीडित थीं, मानो जिसने नया जन्म ग्रहण किया हो, उस रोती हुई अबला पत्नीको पहिचान न सके। नृप-सुता शैव्याने भी पहिले जिन्हें मनोहर केशराजिसे सुशोभित देखा था, उन नरपतिको जटा बाँधे और सूखे काठके समान देखकर नहीं पहिचाना। तब राजा, सर्प-दष्ट और काले वस्त्रसे लपेटे हुए उस बालकको राज लक्षणोंसे युक्त देखकर सोचने लगे,—हा ! यह बालक किसी राजाके कुलमें जन्मा है, परन्तु दुष्ट कालने उसकी कैसी दशा कर डाली ? फिर माताकी गोदमें पड़े हुए उस बालकको भलीभाँति देखनेपर कमलके समान जिसकी आँखें थीं, उस अपने बालक रोहिताश्वका उन्हें स्मरण हो आया। वे विचारने लगे कि, यदि कराल कालने कवलित न किया हो, तो आज दिन अपना बालक रोहिताश्व भी इतना ही बड़ा हुआ होगा॥ १७०—१७९॥ महारानीने कहा,—हा वत्स ! किस पापका बुरा विचार मनमें उदित हुआ, जिससे यह घोर और महान् दुःख सिर पर घहरा गया है और जिसका अन्त नहीं देख पड़ता ? हे राजन् ! हे नाथ ! इस दुःखिनीको सान्त्वना न देकर आप निःसङ्कोच भावसे, कहाँ, कैसे विराज रहे हैं ? प्रथम तो राज्यनाश, फिर पत्नी और पुत्र

का विक्रय ! हा विधाता ! राजर्षि हरिश्चन्द्रकी कौन कौन दुर्दशा तुमने नहीं की ? राजाने महारानीका यह वचन सुन कर अच्छी तरह अवलोकन करनेपर पत्नी और अपने मृत पुत्रको पहिचान लिया और वे भूमिपर गिर कर "हा ! कैसा कष्ट है ! यही तो शैव्या है और यही मेरा बालक है" यह कहते कहते अत्यन्त दुःखसे सन्तप्त होकर रोदन करते हुए मूर्च्छित हो गये । महारानी शैव्या भी उस अवस्थामें प्राप्त हुए राजाको कुछ पहिचान कर आर्त होकर भूमिपर गिर पड़ी और मूर्छित होकर निश्चेष्ट हो गयी । कुछ समय बीतनेपर हरिश्चन्द्र और महारानी शैव्या दोनोंको जब कुछ सुध आयी, तो दोनों शोकभारसे परिपीड़ित होकर अत्यन्त सन्तप्त हृदयसे विलाप करने लगे ॥१८०–१८६॥ राजाने कहा,—हा वत्स ! तुम्हारे उस सुन्दर आँखों, भौहों, नासिका और अलकोंसे विभूषित सुकुमार मुखको इस प्रकार मलीन अवस्थामें देखकर मेरा हृदय क्यों नहीं विदीर्ण हो जाता ? हा ! मधुर स्वरसे "तात ! तात !" कहते हुए अब मेरे पास कौन दौड़ आवेगा ? और मैं भी किसको स्नेह पूर्वक गोदमें उठाकर "वत्स ! वत्स" कहकर पुकारूँगा ? अब किसकी जानुओंमें लगी हुई मैली धूलसे मेरा दुपट्टा, गोद और अङ्ग मलीन होगा ? हा वत्स ! मेरे अङ्ग-प्रत्यङ्गसे तुम्हारे अङ्ग-प्रत्यङ्ग बने हैं और तुम मेरे मन और हृदयको आनन्द देनेवाले होते हुए भी मुझ कु-पिताके द्वारा सामान्य वस्तुकी तरह बेचे गये ! हा ! दैवरूपी दुष्ट सर्पने मेरे विशाल राज्य, साधन, धन, आदि सबका ही अपहरण कर अन्तमें तुम जैसी सन्तानको भी डस लिया है । हा ! दैवरूपी साँपके डसे हुए इस पुत्रका मुख-कमल देखते देखते मैं भी भयङ्कर विषसे अन्धा हो रहा हूँ ! यह कहते कहते रुलाईसे राजाका गला भर आया । उन्होंने बालकको उठाकर ज्योंही गोदमें लिया, त्योंही वे मूर्च्छित और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीपर गिर पड़े ॥ १८७—१६३ ॥ महारानी बोलीं,—स्वरसे ज्ञात होता है कि, निःसन्देह ये ही वे पुरुष-सिंह और विद्वज्जन-मानस-चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं । उन्हींकी तरह इनकी नासिका उन्नत और अग्रभागमें नुकुली है । उन्हीं विख्यात-कीर्ति महात्माकी तरह इनकी भी दन्तावली कलियोंकी तरह है । परन्तु वे ही राजा हरिश्चन्द्र आज स्मशानमें कैसे आगये ? यह कहकर महारानी शैव्या पुत्र-शोकको त्यागकर मूर्च्छित होकर पड़े हुए पति-देवको भली-भाँति देखने लगी । कृशाङ्गा, हीन वदना, राजमहिषी शैव्या पति और पुत्र जनित मनः-पीड़ासे पीडित और विस्मित होकर इधर उधर देख रही थी कि, उनकी दृष्टि पतिके निन्दनीय चाण्डाल-दण्ड पर पड़ी । "हा ! मैं चाण्डाल पत्नी हुई" यह कहते कहते विशालाक्षी महारानी फिर मूर्च्छित हो गयीं, धीरे धीरे सुध आनेपर रुँधे कण्ठसे बोलीं,—अरे निर्दयी, निर्मर्याद, निन्दनीय, दैव ! तुझे धिक्कार है । तूनेही

इन देवता-तुल्य नरपतिको चाण्डाल बनाया है। राज्य-नाश, सुहृद्वियोग, पत्नि-विक्रय और पुत्र-विक्रय कराके भी तेरी तृप्ति नहीं हुई, जो अब इन्हें चाण्डालत्वको प्राप्त कराया है, हा राजन्! ऐसे दुःखमें पड़ी हुई मुझको आज भूमिसे उठाकर "आओ, पलङ्गपर बैठो" क्यों नहीं कहते? हा! आज आपका वह छत्र और शृंगार (एक राज चिन्ह) क्यों नहीं देख पड़ता? आज आपका वह चमर कहाँ है? वह पंखा कहाँ है? हा! कैसा दैव-दुर्विपाक है। जिनके गमन-कालमें राजन्यगण सेवकों की तरह अपने दुपट्टोंसे भूमि की धूल झाड़ते थे, वे ही ये नरपति हरिश्चन्द्र आज असह्य दुःख भारसे परिपीडित होकर ऐसे भयङ्कर और अपवित्र स्मशानमें अकेले विचरण कर रहे हैं। जहाँ कि, मुर्दोंके खोपड़ों से सटे हुए घड़े और हँड़िया-पुरवे चारों ओर भरे पड़े हैं; मुर्दोंपर चढ़ी हुई मालाओंके सूतोंमें मुर्दोंके केशोंके गुच्छे चिपटे पड़े रहनेसे जो स्थान अति दारुण हो रहा है; शवोंकी वसाके बहनेसे चारों ओर भूमिपर उसके सूखे पपड़े जम गये हैं; राख, अंगार, अधजली हड्डिया और आंतोंके ढेरोंसे जिसमें बड़ी भीषणता आगयी है; छोटे-छोटे पक्षी गिद्धों और गोमायुओं (गीदड़ों) के शब्दोंसे व्याकुल होकर जिस स्थानसे भाग निकले हैं; चिताओंसे उठे हुए धूएँके द्वारा जहाँका दिगदिगन्त कृष्णवर्ण हो गया है और निशाचर-गण मांस खानेकी लालचसे आनन्दित होकर जहाँ इधर उधर घूमरहे हैं, ऐसे स्मशानमें राजा एकाकी विचरण करते हैं ॥ १९४ -२०७॥ नृपसुता शैव्या जो असीम कष्ट और शोककी आधार स्वरूप हो रही थी, यह कहकर राजाके गले लगकर आर्त वचनोंसे शोक करने लगी कि, हे राजन्! जो मैं देख रही हूँ, वह स्वप्न है या सत्य है? आप जैसा कुछ समझते हों, कहिये। हे महाभाग! मैं तो विवेचनाशक्तिको खो वैठी हूँ। हे धर्मज्ञ! यदि यह सत्य है? तो धर्मकी सहायताका अब भरोसा नहीं रहा है, देवता और ब्राह्मणोंकी पूजाका कोई फल नहीं है और पृथ्वी-पालन भी निःसार है। अब धर्म नहीं रहा, सत्य उठ गया, सरलता मिट गयी और दयालुता कूच कर गयी। धर्मही आपका एक मात्र आधार होनेपरभी आप स्वराज्यसे भ्रष्ट हुए हैं। राजनन्दिनी शैव्याके ये वचन सुनकर नरपतिने दीर्घ-निःश्वास छोड़ते हुए अपना चाण्डालत्व प्राप्तिका समस्त वृत्तान्त गद्गद कण्ठसे कह सुनाया, महारानी शैव्या उनका वृत्तान्त श्रवणकर दुःखित अन्तःकरणसे बहुत समय तक रोती रही। फिर निःश्वास परित्याग करती हुई उसनेभी सर्पके काटनेसे रोहिताश्वकी कैसी मृत्यु हुई, उसका सिलसिलेवार सारा वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २०८—२१३ ॥ राजाने कहा,—प्रिये! दीर्घ कालतक क्लेश भोगते रहना मुझेभी अच्छा नहीं लगता, किन्तु हे तन्वङ्गि! मैं ऐसा अभागा हूँ कि, अपनी स्वाधीनता खो बैठा हूँ। यदि चाण्डालकी अनु-

मति लिये विना आगमें ही जल मरूं, तो पुनः अन्य जन्ममें चाण्डालका दासत्व करना होगा। अथवा कृमिभोजन करनेवाला कीटक बनकर नरकमें पड़ना होगा। किंवा वैतरणीमें या पीप, वसा, रक्त और स्नायुओंके कीचड़से युक्त नरकमें यन्त्रणाएं भोगनी होंगी। अथवा असिपत्रके वनमें जाकर चीरे जानेकी यन्त्रणाएं सहनी पड़ेंगी। किंवा महारौरव या रौरव नरकमें पड़कर असह्य ताप सहना होगा। जो दुःख सागरमें निमग्न हों, उनके लिये उससे पार होनेका एक मात्र उपाय प्राण त्याग ही है। देखो, अपना एकमात्र जो बालक वंश-विस्तार करनेवाला था, वह भी मेरे प्रबल भाग्यके प्रवाहमें डूब गया। पराधीनताकी दुर्गतिमें पड़ा हुआ मैं कैसे प्राण त्याग करूँ? पुत्र-वियोगसे जैसा दुःख होता है, वैसा तिर्यक् योनिमें जन्मग्रहण करने, असि-पत्र वनमें गमन करने या वैतरणीमें पड़नेसे भी नहीं होता। विपन्न व्यक्ति पापका ही विचार क्योंकर करे? मैं तो अब पुत्रकी जलती हुई चितामें प्रवेश कर प्राण त्याग करूँगा। हे सुकुमारी! मेरे इस कुकर्मके लिये क्षमा करना। मैं तुम्हें आदेश देता हूं, हे शुचिस्मिते! तुम उसी ब्राह्मणके घर चली जाओ, हे कृशाङ्गि! मैं जो कहता हूं, उसे आदरपूर्वक सुनो। मैंने यदि कुछ दान दिया है, कुछ होम किया है और गुरुजनको सन्तुष्ट किया है, तो परलोकमें मेरा तुमसे और पुत्रसे मिलना होगा। इस लोकमें मेरी यह कामना पूरी होनेकी अब कोई आशा नहीं बच रही है। अथवा मेरे साथ तुमको भी पुत्रकी खोजमें सहगमन करना श्रेयस्कर होगा, हे शुचिस्मिते! मैं यदि एकान्तमें हँसीमें भी कुछ अश्लील बोल गया होऊँ तो तुमसे प्रार्थना है कि, उस सबको तुम क्षमा करो। हे शुभे! तुम राज-पत्नी हो, इस गर्वमें आकर उस ब्राह्मणका निरादर न करो। स्वामी अथवा देवताकी तरह अतियत्नसे उसे प्रसन्न रखना। महारानीने कहा,—हे राजर्षे! अब मैं भी इस दुःखभारको नहीं सह सकती। अतः, आज मैं भी जलती हुई अग्निमें आपके साथ प्रवेश कर सहगमन करूँगी॥ २१४-२२७॥ पक्षी बोले,—अनन्तर राजाने चिता तैयार की और अपने हाथसे मृत पुत्रको उसपर सुला दिया। फिर (चितामें अग्नि लगाने और फिर उसमें प्रवेश करनेका निश्चय कर) पत्नी सहित हाथ जोड़कर, वे परमात्मा, ईश, नारायण, हरि, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्ण, अनादि-निधन, हृत्कोटरान्तर निवासी, पीताम्बर, शुभ मङ्गलमय, भगवान्का ज्योंही स्मरण करने लगे, त्योंही इन्द्र सहित सब देवता धर्मको आगे कर, शीघ्रतासे वहाँ उपस्थित हो गये और बोले,—हे राजन्! हे प्रभो! सुनिये। ये साक्षात् पितामह ब्रह्मा हैं, ये स्वयं भगवान् धर्म हैं, ये साध्यगण हैं, ये विश्वेदेवा हैं, ये मरुद्गण हैं, ये सब लोकपाल हैं, ये नारायण हैं, ये गन्धर्वों सहित सिद्धगण हैं, ये रुद्रगण हैं,

ये दोनों अश्विनी-कुमार हैं और ये अन्यान्य सभी देवता अपने वाहनों सहित यहाँ आये हुए हैं और जो तीनों विश्वोंसे भिन्नता स्थापन न कर सके, वे विश्वामित्र भी स्वयं उपस्थित हुए हैं, सभी आपसे भिन्नता करने, आपका मङ्गल साधनेके लिये पधारे हैं। फिर इन्द्र, धर्म और विश्वामित्र तीनों उठकर राजाके पास पहुँचे ॥ २२८-२३४ ॥ धर्म बोले,—हे राजन्! ऐसा साहस न कीजिये। मैं स्वयं धर्म हूं और आपके निकट आया हूँ। आपने तितिक्षा, दम, सत्य आदि अपने गुणोंसे मुझे संतुष्ट किया है। इन्द्रने कहा,-हे महाभाग हरिश्चन्द्र! मैं इन्द्र आपके निकट उपस्थित हुआ हूँ। आपने पत्नी और पुत्र सहित सनातन लोकोंको जीत लिया है। अतः जो अन्य मनुष्योंके लिये दुष्प्राप्य है और तुमने जिसे अपने (शुभ) कर्मोंसे जीत लिया है, उस स्वर्गलोकमें आप, पत्नी और पुत्र सहित पधारिये ॥ २३५—२३७ ॥ पक्षियोंने कहा,—फिर प्रभु इन्द्रने चितापर अपमृत्यु-विनाशक अमृतकी आकाशसे वर्षा की। जहाँ सब देव-समाज जुट गया था, वहाँ देवताओंने फूल बरसाये और (आनन्द सूचक) दुन्दुभि-ध्वनि होने लगी। (चितापर अमृत वर्षा होतेही) उस महात्मा नरपतिका कुमार रोहिताश्व, सुकुमार शरीरवाला, सुस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय-मानस होकर सहसा उठ बैठा। अनन्तर राजा हरिश्चन्द्र थोड़े समय तक कुमारको हृदयसे लगाये रहे। फिर दिव्य-वस्त्र और मालाओंको धारणकर पत्नी सहित शोभा पाने लगे और उसी क्षण सम्पूर्ण रूपसे सुस्थ तथा आनन्दित हो गये। तब उनसे इन्द्रने फिर कहा, हे राजन्! आप पत्नी और पुत्र सहित परम सद्गति लाभ करोगे। अतः अपने (शुभ) कर्मोंके फलका उपभोग करनेके लिये स्वर्गमें आरोहण करिये ॥ २३८—२४३ ॥ हरिश्चन्द्र बोले,—हे देवराज! मुझे मेरे चाण्डाल स्वामीने, जब अनुमति नहीं दी है, तब उससे छुटकारा पाये बिना मैं स्वर्गमें नहीं जा सकता, तब धर्मने कहा,—हे राजन्! मैंनेही आपका इस प्रकारका भावी क्लेश जानकर अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारणकर वैसा चाञ्चल्य प्रकट किया था। इन्द्रदेवने कहा,—पृथ्वीके सभी मनुष्य जिस उत्तम स्थान (स्वर्ग) में गमन करनेके लिये निरन्तर प्रार्थना करते रहते हैं, उस पुण्य-पुरुषोंके स्थानमें चलिये। हरिश्चन्द्र बोले,—हे देवराज! आपको मैं प्रणाम करता हूँ। आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मैं नम्र-भावसे जो निवेदन करता हूं, उसे सुनिये। कौशला नगरी (अयोध्या) के सभी लोग मेरे शोकमें निमग्न होकर वहाँ बसे हुए हैं, उन्हें छोड़कर मैं स्वर्गमें कैसे गमन करूँ? ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोवध और स्त्रीवध करनेसे जो महापाप लगता है, भक्तगणके त्यागसे भी वही पाप होता है, ऐसा (शास्त्रोंमें) कहा गया है। जो मेरे भक्त हैं, जो मेरी रटन लगाए हुये हैं जो सरल स्वभावके हैं, और त्यागने योग्य नहीं हैं, उनको

त्यागनेसे इहलोक या परलोकमें ही क्या सुख है? अतः हे शक्र! आप स्वर्ग जाइये। हे सुरेश्वर! यदि मेरे साथ वे भी स्वर्ग ले जाये जा सकें, तो मैं भी स्वर्गमें चलूँगा, नहीं तो उनके साथ नरकमें ही रहूँगा ॥ २४४–२५१ ॥ इन्द्रने कहा,—राजन्! उन्होंने पृथक् पृथक् अनेक विध पुण्य पाप किये हैं, अतः उनके सहित आप कैसे स्वर्ग जा सकते हैं? हरिश्चन्द्रने उत्तर दिया,—हे शक्र! राजन्यगण (प्रजा आदि) कुटुम्बियोंके प्रभावसे ही राजपदका उपभोग, बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान तथा इष्टापूर्त आदि कर्म करते हैं। मैंने जो कुछ धर्म कार्य किये हों, वे सब उन्हीं लोगोंके प्रभावसे किये हैं। सामान्य स्वर्गके लोभसे उन उपकारियोंका मैं त्याग नहीं कर सकता। अतः हे देवराज! ऐसा कीजिये कि, मैंने जो पुण्य, दान या जप किया है, उसका फल उन सबमें समान रूपसे बँट जाय और बहुत समय तक उपभोग करने योग्य जो मेरे कर्मका फल है, वह (सबमें बँट जानेसे) चाहे एक ही दिन क्यों न हो, उन सबके साथ ही उपभोग करूँ। पक्षियोंने कहा,—त्रिभुवनेश्वर इन्द्र, धर्म और गाधितनय विश्वामित्रने (राजाके उदार वचन सुनकर) प्रसन्न चित्तसे कहा,—ठीक है, ऐसा ही होगा। फिर उन्होंने स्वर्गसे करोड़ों विमान भूतल पर मँगाये और उन्हें वे अयोध्यामें लाकर समस्त अयोध्या नगर-निवासियोंसे कहने लगे कि, तुम सभी इन विमानोंमें बैठकर स्वर्ग चलो। फिर महान् तपस्वी विश्वामित्रने राजाको प्रसन्न करनेके लिये इन्द्रके कहनेसे राजपुत्र रोहिताश्वको रमणीय अयोध्यामें लाकर देवों, मुनियों और सिद्ध-गणके साथ राज्याभिषेक किया और उसे राजा बनाया। अनन्तर सब बन्धु बान्धव और अयोध्याके प्रजाजन, पत्नी, पुत्र, नौकर चाकरोंको लेकर हृष्ट पुष्ट हो, राजाके साथ विमानोंमें बैठकर स्वर्ग चले। वे लोग पद पद पर एक विमानसे दूसरे विमानमें कूदकर चले जाते थे, यह देखकर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्रको बड़ा ही आह्लाद हुआ। फिर नरपति हरिश्चन्द्र विमानारोहणका अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर उन्नत परकोटेसे घिरे हुए (स्वर्गीय) नगरमें पहुँच गये। राजाका यह वैभव देखकर सकल शास्त्रोंके तत्त्वोंके जाननेवाले, दैत्यगुरु, महाभाग, शुक्राचार्य राजाकी इस प्रकार प्रशंसा करने लगेः—अहो! हरिश्चन्द्र जैसा राजा न हुआ, न होगा। इसका चरित्र जो अपने दुःखसे दुःखित मनुष्य सुनेगा, वह महान् सुखको प्राप्त करेगा। जिसे स्वर्गकी इच्छा हो, उसे स्वर्ग मिलेगा, पुत्र चाहनेवालेको पुत्र प्राप्ति होगी, भार्याके इच्छुकको भार्या मिलेगी और राज्यकी अपेक्षा करनेवालेको राज्य लाभ होगा। अहो! तितिक्षाका क्या ही माहात्म्य है और दानका कैसा महान् फल है! जिसके प्रभावसे हरिश्चन्द्र इन्द्रपुरीमें पहुँचकर इन्द्रपदको प्राप्त हुए। पक्षियोंने कहा,—हे मुनिश्रेष्ठ! यह सब हरिश्चन्द्रका वृत्तान्त मैंने

आपको कह सुनाया । अब पृथ्वीके क्षयका जो कारणीभूत हुआ, उस राजसूय यज्ञके विपाक और उस विपाकके निमित्त हुए आडी और वगुलेके महान् युद्धकी कथा शेष रह गयी है, उसे हम सुनाते हैं, आप श्रवण कीजिये ॥ २५२-२६९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका हरिश्चन्द्रोपाख्यान नामक आठवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

टीका:—महाराजाधिराज हरिश्चन्द्रका उपाख्यान किन अलौकिक अधिदैव रहस्य, धर्मके लोकातीत प्रभाव, तितिक्षा, दम, सत्य और सात्विक धृतिके जाज्वल्यमान दृष्टान्त, उनके अलौकिक चरित्रकी अतुलनीय मनोहारिता, तीनों लोकोंके अमित्र महर्षि विश्वामित्र किस प्रकारसे मनुष्य-लोकमें अपनी मित्रता दिखाते थे, उसके उदाहरणसे और राजमहिषी होनेपर भी साध्वी धर्मपत्नीका लोकातीत त्रिलोक पवित्रकारी चरित्र कैसा होना चाहिये, उसके प्रत्यक्ष दृष्टान्तसे पूर्ण है । पृथ्वीपरमें ऐसा दृष्टान्त वेद और शास्त्रोंमें मिलना प्रायः असम्भव ही है । दूसरी ओर सनातनधर्मी नरपतिका आदर्श और प्रजावात्सल्य कैसा होना चाहिये और अपनी प्रजाके प्रति नरपतिको स्नेह दृष्टि रख कर कैसा कृतज्ञ रहना चाहिये, उसका जीवन्त उदाहरण इस मंगलमय राजचरित्रमें पाया जाता है । तीसरी ओर अति रहस्यमय अधिदैव चरित्रका भी दिग्दर्शन इस पुण्यमयी गाथामें हुआ है । धर्माधर्मके नियामक भगवान् यम धर्मराज जहाँ अग्रसर होते हैं, वहां उनका सब देवता अनुसरण करते हैं और विशुद्ध धर्माचरण करनेसे देवताओंकी तो बात ही क्या है, असुर गुरु भी उनकी महिमा कीर्त्तन करते हैं । इस परकीयभाषाके द्वारा इसी सब अध्यात्म रहस्यका दिग्दर्शन कराया गया है । इस सम्बन्धमें और भी बहुत सी बातें जिज्ञासुओंके समझने योग्य हैं । वे बातें इस प्रकार हैं कि, परकीय-भाषाकी गाथाओंको पढ़कर प्रायः चिन्ताशील पाठक विमोहित हुआ करते हैं और ऐसी गाथाओंको लौकिक इतिहास समझकर ऐतिहासिक तत्वोंके अनुसन्धानमें भ्रमसे लग जाया करते हैं । परन्तु यह पुराण पाठकोंको ध्यानमें रखना चाहिये कि, वेद और पुराणके साथ लौकिक इतिहासका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है । वेद अथवा पुराणशास्त्रमें जो ऐसी गाथाएँ आती हैं, परकीय भाषारूपसे जो अतिमनोमुग्धकारी, रोचक, भयानक आदि वर्णन-शैली देखनेमें आती है, वे सब गाथाएँ कल्प-कल्पान्तकी घटनावलीकी भित्तिपर स्थित हैं । इन गाथाओंको पाठ करके कोई ऐसा न समझे कि, ये सब गाथाएँ इसी कल्प अथवा इसी चतुर्युगीसे सम्बन्ध रखती हैं । वेदमें तो ऐसे विचार करनेका अवसर ही नहीं है; क्योंकि सृष्टिके आदिमें वेद-मन्त्र ज्योंके त्यों ऋषियोंके अन्तःकरणमें सुनायी देकर आविर्भूत होते हैं । और पुराणके लिखे जाते समय ये सब गाथाएँ ज्योंके त्यों नहीं, किन्तु भावरूपसे विचार समाधि (अर्थात् सविकल्प समाधिकी दूसरी अवस्था) द्वारा पुराण-कर्ताके स्मृतिपथमें उदित होती हैं । तत्पश्चात् पुराण-कर्ता महापुरुष उन गाथाओंको अपनी काव्य-प्रतिभा द्वारा अपने अपने ढंगपर और पुराणशास्त्रकी योजनाके अनुसार लिख लिया करते हैं । इस कारण यह मानना ही पड़ेगा कि, लौकिक इतिहासकी दृष्टिसे इन परकीय-भाषाकी गाथाओंको देखना नहीं चाहिये । दूसरा विचार करनेका विषय यह है कि, प्रत्येक ब्रह्माण्डके समष्टि-प्रारब्धसे सम्बन्धयुक्त जो अधिदैव लीलाएँ मृत्युलोकमें होती हैं, वे सब विशेष विशेष अवस्थामें नित्य भावसे गुम्फित रहती हैं । उदाहरण रूपसे कहा जाता है कि, त्रेतायुगमें जो रामावतार हुआ है, वह अनेक चतुर्युगोंमें हो सकता है । इसी प्रकार नाना भगवद् अवतारोंकी लीलाएँ भी अथवा नाना देवताओंके अवतारोंकी लीलाएँ भी नाना नित्य ऋषियोंके अवतारोंकी

नवम अध्याय ।

पक्षियोंने कहा,—हरिश्चन्द्रके राज्यच्युत होकर स्वर्ग गमन करने के पश्चात् उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठमुनि, जो बारह वर्ष से गंगाजीमें बैठकर तपश्चर्या कर रहे थे, जलवाससे बाहर निकले और उन्होंने विश्वामित्रकी सब करनी सुनी। महाभाग तेजस्वी वसिष्ठ मुनिका नरपतिपर अत्यन्त प्रेम होनेके कारण जब उन्होंने उदारकर्मा हरिश्चन्द्रके राज्यनाश, चाण्डालत्वप्राप्ति और पत्नी-पुत्रके विक्रयका समस्त वृत्तान्त सुना, तब वे विश्वामित्रपर बड़े ही क्रुद्ध हुए ॥ १-४ ॥ वसिष्ठने कहा,--आज महात्मा, महाभाग, देवब्राह्मणपूजक राजा हरिश्चन्द्र अपने राज्यसे भ्रष्ट किये गये, यह सुनकर जैसा क्रोध मुझे चढ़ा है, वैसा विश्वामित्रके द्वारा मेरे सौ पुत्र मारेजाने पर भी नहीं चढ़ा था। जिस दुरात्मा, ब्रह्मद्वेषी विश्वामित्रने मेरे आश्रित, सत्यवादी, शत्रुके साथ भी मत्सर न करने वाले, निरपराध, धर्मात्मा और अप्रमत्त नरपतिको पत्नी, पुत्र और भृत्यों सहित अन्तिम दशाको पहुंचा दिया, स्वराज्यसे च्युत किया और नाना प्रकारके दुःख दिये, उस प्राज्ञ-विगर्हित, मूढ़, विश्वामित्रको मेरे शापके प्रभाव से बगुले की योनि प्राप्त होगी ॥ ५-६ ॥ पक्षियोंने कहा,—इधर जब कुशिकनन्दन महातेजस्वी विश्वामित्रने वसिष्ठके शापका वृत्तान्त सुना, तब उन्होंने भी प्रतिशाप दिया कि, हे वसिष्ठ ! तुम भी आडी पक्षीकी योनिको प्राप्त होगे। वसिष्ठ और विश्वामित्र दोनों महातेजस्वी थे। दोनों परस्परके शापके प्रभावसे तिर्यक् (पक्षियोंकी) योनिको प्राप्त हुए, परन्तु दोनों की तेजस्विता ज्योंको त्यों बनी रही। वे अपरिमित तेज-बल पराक्रमशाली दोनों महर्षि पक्षियोंकी योनिको प्राप्त करते ही अत्यन्त क्रुद्ध होकर आपसमें युद्ध करने लगे। हे ब्रह्मन् ! आडी पक्षी दो सहस्र योजन ऊपर उड़ा, तो बगुला तीन सहस्र छयानवे योजन ऊँचा पहुंचा। जंघाओंमें पूरा बल रखनेवाले वे दोनों पक्षी जब एक दूसरे

लीलाएँ भी एक ही नामसे अभिहित होकर सृष्टिके विभिन्न विभिन्न कल्पों और चतुर्युगोंमें होती आयी हैं और होती रहेंगी। ऐसी दैवी घटनावलियोंका प्रत्येक ब्रह्माण्डके साथ समष्टि संस्कार युक्त रहनेका कारण हुआ करता है। अर्थात् जैसी अवस्थामें मत्स्यावतार अथवा जैसी अवस्थामें कृष्णावतारका होना सम्भव है, सृष्टिकी वैसी दशामें वे अवतार समूह पुनः पुनः होते रहते हैं। उनमें शरीर वैचित्र्य, व्यक्ति-वैचित्र्य और कुछ कुछ लीला वैचित्र्य रहनेपर भी वे सब घटनाएँ नित्य समझी जा सकती हैं। यही कारण है कि, इन गाथाओंकी स्मृति, पुराणान्तरोंमें विभिन्न प्रकारसे पायी जाती है। गाथाओंमें इस प्रकार वर्णन-वैचित्र्य होनेसे किसीको सन्देह नहीं करना चाहिये।

को पंखोंसे प्रहार करने लगे, तब लोगोंमें बड़ा आतङ्क फैला। बगुलेने लाल-लाल आंखें फाड़कर अपने पंखोंको कँपाकर जब आड़ीको आहत किया, तब आड़ीने भी ग्रीवा उन्नत कर पंजोंसे बगुलेको चोट पहुंचायी। उनके पंखोंकी झपेटमें आकर बड़े-बड़े पर्वत भूमिपर लेट गये। पर्वतोंके गिरनेसे पृथ्वी काँपने लगी और भूचालसे समुद्रका पानी उछलने लगा। पृथ्वी डोलती हुई टेढ़ी होकर पातालकी ओर धँसने लगी। तब पृथ्वीके सब प्राणी कोई पर्वतोंसे दबकर, कोई समुद्रमें डूबकर और कोई भूचालमें आकर क्षयको प्राप्त होने लगे। इस प्रकार सर्वत्र हाहाकार होने लगा, जगत् त्रस्त और चेतनाशून्य हो गया, सब लोग हक्का-बक्का होगये, पृथ्वीमें उथल-पुथल मच गयी। पृथ्वीके सभी लोग अत्यन्त भयभीत और व्याकुल होकर, हा वत्स ! हा कान्त ! हा शिशो ! भागो, भागो ! देखो, हमारी क्या दशा हुई है। हा प्रिये ! हा नाथ ! देखो, यह पर्वत घहरा रहा है, शीघ्र पलायन करो" इत्यादि कहकर रोने-चिल्लाने लगे। तब स्वयं पितामह ब्रह्मा सब देवताओंके साथ वहां उपस्थित हुए और अत्यन्त क्रुद्ध होकर दोनों पक्षियोंसे बोले कि, तुम्हारा युद्ध बन्द हो और पृथ्वीके सब प्राणी सुस्थ हों। अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके वचनको सुनकर भी उसकी उपेक्षाकर क्रोध और डाहके वशीभूत हुए दोनों पक्षी लड़ते ही जाते थे, किसी प्रकार शान्त नहीं होते थे। तब पितामह ब्रह्माने इस प्रकार प्रजाका क्षय होते देख, उनके हितसाधनके विचारसे दोनों पक्षियोंका पक्षित्व हरण कर लिया। दोनों महर्षियोंकी पूर्वदेह प्राप्तिके बाद उनका तामसभाव तिरोहित होनेपर दिव्य शक्तिमान् प्रजापति वसिष्ठ और कौशिकसे बोले,—हे वत्स वसिष्ठ ! हे बुद्धिमान् कौशिक ! तामस भावका अवलम्बनकर तुम जैसा युद्धकर कर रहे थे, उससे विरत हो जाओ। तुमने पृथ्वीक्षयकारक जो युद्ध आरम्भ किया था, वह राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञका विपाक (परिणाम) था। कौशिकने राजाका कोई अपराध नहीं किया है, उलटे हे ब्रह्मन् ! ये उसके स्वर्गप्राप्तिके कारण होनेसे उपकारकही हुए हैं। तुम कांम और क्रोधके वशीभूत होकर तपस्यामें विघ्नभूत हो रहेहो। अतः इस मनोवृत्ति को त्याग दो। तुम्हारा मङ्गल हो। देखो, ब्रह्मतेजसे बढ़कर कोई बल नहीं है ॥ १०-२९ ॥ प्रजापति ब्रह्माके द्वारा उक्त प्रकारसे कहे जानेपर वे दोनों अत्यन्त लज्जित हुए और प्रेमपूर्वक परस्परको आलिंगन कर एक दूसरे से क्षमा मांगने लगे, फिर लोकपितामह ब्रह्माको सब देवताओंने प्रणाम किया और वे ब्रह्मलोकको चले गये। वसिष्ठ और विश्वामित्रने भी अपने अपने आश्रममें गमन किया ॥३०-३१॥ जो मनुष्य इस आड़ी-बककी तथा हरिश्चन्द्रकी कथा

टीका :—पुराणशास्त्रमें कौन विषय है और कितना विषय परकीय-भाषाका है और कौन और कितना लौकिकी भाषाका है, यह निश्चय करना दार्शनिक-बुद्धि-गम्य है। अष्टाङ्ग-योगका समाधि रूपी अन्तिम साधन दो भागोंमें विभक्त है। यथा—सविकल्प समाधि और निर्विकल्प समाधि। निर्विकल्प

को पढ़ेंगे या जो भलीभांति सुनेंगे, कथा सुनतेही उनके समस्त पाप दूर होंगे और उनके किसी कार्यमें कभी विघ्न उपस्थित नहीं होगा ॥ ३२-३३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका आडी-बक युद्ध नामक नवम अध्याय समाप्त हुआ।

दशम अध्याय।

जैमिनी बोले,—हे द्विजशार्दूलो ! जहाँ प्राणिमात्रकी स्थिति है, वहाँ उनका आविर्भाव और तिरोभाव कैसे होता है, इस विषयमें मुझे संशय है। मैं जिज्ञासा करता हूँ, इस विषयको आप कथन करिये। प्राणी किस प्रकार उत्पन्न होता है, कैसे बढ़ता है और कैसे सिमटे हुए अंगोंसे गर्भमें रहता है? गर्भसे बाहर होनेपर कैसे बढ़ने लगता है? मृत्युके समय उसका चैतन्य कैसे नष्ट हो जाता है? प्राणियोंके काल कवलित होनेपर वे कैसे अपने शुभ कर्मों अथवा अशुभ कर्मोंको पाते और उनका फल भोगते हैं? स्त्रियोंके कोठे (पेट) में जब कि, अनेक गरिष्ठ पदार्थ पच जाते हैं, तब सामान्य पिण्डीकृत देह कैसे नहीं पचता? हे द्विजतनयो ! जिस तरह मेरा सन्देह दूर हो जाय, उसी तरह इस विषयको समझाइये। क्योंकि यह बड़ा गुह्य विषय है और प्राणी इसीमें विमोहित हो जाते हैं ॥ १—६ ॥ पक्षियोंने कहा,—आपने भावाभावसे युक्त और सब प्राणियोंके समझमें न आनेवाले इस बेजोड़ प्रश्नका भार हमपर डाला है। हे महाभाग ! प्राचीन कालमें परम धार्मिक सुमति नामक पुत्रने अपने पिताको इसी प्रकारके सन्देहों पर जैसा कुछ समझाया था, वह हम कथन करते हैं, आप सुनिये। किसी समय भार्गव वंशमें

समाधिका स्वरूप एक ही होता है, परन्तु सविकल्प समाधिकी चार अवस्थाएं रहती हैं। यथा,—वितर्कानुगत समाधि, विचारानुगत समाधि, आनन्दानुगत समाधि, और अस्मितानुगत समाधि। जिनका वर्णन इस टीकाकारके योगदर्शनभाष्यमें भलीभांति वर्णित है। वितर्कानुगत समाधिकी सहायतासे लौकिकी भाषाकी रचना और विचारानुगत समाधिकी सहायतासे परकीय-भाषाकी रचना होती है। इस गाथाका प्रथम परिशिष्टांश परकीय भाषामें ही है। यह लौकिकी भाषा है। यह शिष्य-वात्सल्यके आदर्श से पूर्ण, सूर्य-वंशके क्षत्रियोंके कुलगुरु, ब्रह्मतेजा महर्षि वसिष्ठकी करुणासे उत्पन्न मोह और दूसरी ओर तपके आदर्श मूर्ति, क्षत्रियजनित कठोर स्वभावापन्न, जगत्के अमित्र होनेपर भी तत्वतः जगत्के मित्र महर्षि विश्वामित्रके स्वाभाविक क्रोधके द्वारा जो अज्ञानजनित संघर्ष हुआ और उससे जो दोनों महापुरुषोंका क्षणिक पतन हुआ, उसी पतन तथा द्वन्द्व युद्धके आध्यात्मिक रहस्यका लौकिकी भाषामें मधुर कविता द्वारा प्रकट कर इस आख्यायिकाकी सौन्दर्य वृद्धि की गयी है। अतः पुराणपाठकोंको समझना चाहिये कि, इस गाथाका पूर्वार्ध परकीय भाषामें तथा उत्तरार्ध लौकिकी भाषामें लिखा गया है ॥

महामति नामक एक ब्राह्मण हुआ। उसको सुमति नामक एक पुत्र था, जो जड़की तरह देख पड़ता था, किन्तु शान्त प्रकृतिवाला था। जब उसका उपनयन होगया, तब उसके पिताने उससे कहा कि, हे सुमते ! गुरुसेवामें रत रहकर और भिक्षान्नसे उदर निर्वाह कर तुम यथाक्रम आरम्भसे समस्त वेदोंका अध्ययन करो। फिर गार्हस्थ्य-धर्मका अवलम्बन कर अनेक यज्ञानुष्ठान तथा अभिलषित सन्तान उत्पन्न करो। हे वत्स ! तत्पश्चात् वनमें गमन करो और वानप्रस्थके अनन्तर निष्परिग्रह परिव्राजक (संन्यासी) हो जाओ। उस अवस्थामें तुम्हें ब्रह्मज्ञान होगा और ब्रह्मज्ञान होनेपर शोक-दुःखसे तुम निवृत्त हो जाओगे ॥ ७--१२ ॥ पक्षी बोले,—पिताके इस प्रकार कई वार कहने समझाने पर भी जड़ताके कारण सुमतिने कभी कोई उत्तर नहीं दिया। पिता भी स्नेहके कारण बार-बार उसे वही बात कहने लगे। पिताके द्वारा बार-बार प्रीति पूर्वक प्रलोभन युक्त मधुर-वाक्योंसे समझाये जानेपर सुमतिने मन्द-हास्यकर पितासे कहा,--हे तात ! आज आप जिस विषयका मुझे उपदेश दे रहे हैं, उसका मैंने कई बार अभ्यास किया है और अन्यान्य नाना शास्त्रों और अनेक शिल्पशास्त्रोंमें भी मैं अभ्यस्त हो चुका हूँ। दस हज़ारसे कुछ अधिक जन्मोंका स्मरण मुझे है। मैंने अनेक बार दुःख पाया है और अनेक बार सन्तुष्ट भी हुआ हूं। अनेक बार क्षयवृद्धिके उदयमें रत रहा हूँ। मैं अनेक वार शत्रु, मित्र और कलत्रों (स्त्रियों) से मिला और विछुड़ा भी। मैंने अनेक माता-पिता देखे और सहस्रों सुख-दुःख सहे। अनेक तरहके कुटुम्बी और अनेक तरहके पिता देखे। विष्ठा और मूत्रके कीचड़से युक्त स्त्रियोंके गर्भोंमें मैंने अनेक बार वास किया है। हजारों रोगोंकी दारुण यन्त्रणाएं भोगी हैं। गर्भ, बाल्य, यौवन और वार्द्धक्य दशामें जितने बार जैसे जैसे कष्ट सहे हैं, वे सब मेरे स्मृतिगोचर हैं। कितनी ही वार मैंने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षियोंकी योनियोंमें जन्मग्रहण किया है। आपके घर जिस प्रकार मैं जन्मा हूँ, उस प्रकार कितनी ही बार कितने ही राजसेवकों और योधा राजाओं-के घर मैंने जन्मग्रहण किया है। मैं अनेक बार अनेक मनुष्योंका दास और चाकर बना हूँ। कई बार स्वामित्व, प्रधानत्व और दारिद्र्य का मैंने अनुभव किया है। कई बार कई लोगोंको मैंने मारा है और कई बार कितने ही लोगोंसे मैं और मेरे साथी मारे गये हैं। मैंने अनेक बार दान किया और अनेकोंसे अनेक बार दान प्राप्त किया है। पिता, माता, सुहृद और कलत्र आदिसे कई बार मैं परितुष्ट हुआ हूँ और कई बार दीन दशाको प्राप्त होकर आंसुओंसे अपना मुख धो चुका हूँ ॥ १३—२५ ॥ हे तात ! इस प्रकार मैं सङ्कटमय संसारचक्रमें निरन्तर परिभ्रमण कर मोक्ष प्राप्ति करानेवाले ज्ञानको सम्पादन कर चुका हूँ। जब मैं इस प्रकारका ज्ञान प्राप्त कर चुका हूँ, तो मेरे लिये ऋक्, यजु और साम

नामक क्रिया कलाप निःसार हैं। ये मुझे अच्छे नहीं लगते। मुझे ब्रह्मज्ञान हो गया है, मेरा आत्मा विशुद्ध है, मैं श्रेष्ठ-विज्ञानसे तृप्त हूँ और करने योग्य कोई बात मेरे लिये नहीं बच रही है। अब वेदोंसे मुझे क्या प्रयोजन है? मैं निःसन्देह छः प्रकारकी क्रियाओं और सुख, दुःख, हर्ष, रस तथा गुणोंसे रहित परम ब्रह्मपदको प्राप्त करूंगा। पिताजी! रस, हर्ष, भय, उद्वेग, क्रोध, डाह और जरासे तथा मृग, श्वान आदि जिसमें फँसते हैं, ऐसे सैकड़ों पाशोंसे युक्त इस जानी हुई दुःख सन्ततिको, एवं जिसका फल दुखदायीके समान है, उस अधर्मसे युक्त तीनों वेदोंके धर्मको, त्यागकर मैं ब्रह्मपद प्राप्त करूंगा ॥ २६--३१ ॥ पक्षी बोले,--उसका यह भाषण सुनकर महाभाग पिता प्रसन्न चित्तसे हर्ष और विस्मयसे गद्गद् होकर अपने पुत्रसे कहने लगे,--हे वत्स! तुम जैसा कह रहे हो, वह ज्ञान तुमको कैसे प्राप्त हुआ? अब तक तुम मूढ़ कैसे रहे और इसी समय तुम्हें ज्ञानोदय कैसे हो गया? तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान इस समय सहसा जाग गया, यह क्या किसी मुनि अथवा देवताके शापका विकार था? पूर्व कालमें जो-जो हुआ, हे वत्स! वह सब तुम मुझसे कहो, मुझे बड़ा ही कौतूहल हो रहा है, वह मैं सुनना चाहता हूं ॥ ३२--३५ ॥ पुत्र बोला,—हे तात! मैं पूर्व जन्मोंमें कौन-कौन था और क्या क्या हुआ, वह सब सुख दुःख कारक अपना प्राक्तन वृत्तान्त कथन करता हूँ, आप सुनिये। पूर्व जन्ममें मैं एक ब्राह्मण

टीका :—यह अध्याय परकीय-भाषा और समाधि भाषासे पूर्ण है। ऊपर लिखित वर्णनमें जो कथाका प्रसंग है, वह परकीय-भाषा है और जो आत्मज्ञान सम्बन्धका है, वह समाधि भाषा है। परकीय-भाषा जिस प्रकार विचारानुगत समाधि और लौकिकी भाषा जिस प्रकार वितर्कानुगत समाधिकी सहायतासे रचित होती है, उसी प्रकार समाधि भाषा योगशास्त्रोक्त संयम क्रियाकी सहायतासे अनुभव करके लिखी जाती है। एकाधारमें धारणा, ध्यान और समाधि इन तीनोंके करनेसे संयमकी सिद्धि होती है। उसी संयमकी सहायता से नाना सिद्धियां प्राप्त होती हैं। उसका विस्तृत वर्णन टीकाकारके योगदर्शन भाष्यके तीसरे पादमें द्रष्टव्य है। योग साधनोक्त संयम क्रिया द्वारा पिण्डसे लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्तका, एक लोकसे लेकर लोकान्तर पर्यन्तका सब देव तथा असुर लोकका तथा कर्मके सब रहस्यों और कर्म विपाकका तथा आत्मा और अनात्माका, सब रहस्य, आदि सभी समाधिगम्य विषय और भाव अच्छी तरह जाने जा सकते हैं। उसी संयमक्रियाकी सहायतासे, जो समाधिस्थ योगी ही कर सकता है, समाधि-भाषाका वर्णन किया जाता है। पुराणोंमें जहां जहां ऐसे वर्णन आते हैं, वह समाधि भाषा है। और वह सब संयम क्रियाके द्वारा ही उपलब्ध होते हैं।

ऊपर जो छः क्रियाओंका वर्णन है, वे क्रियाएं ये हैं :—अस्ति, जायते, वर्द्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, नश्यति। ये छहों क्रियाएं प्रकृतिमें होती हैं। इनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है।

वेद जो कुछ कहते हैं, वह जीवके कल्याणके लिये कहते हैं। सृष्टि जब त्रिगुणात्मक है, तो वेद भी त्रिगुणात्मक हैं। आत्मा प्रकृतिसे परे है इस कारण त्रिगुणसे रहित है। वेदमें धर्मका वर्णन है और अधर्मकी निवृत्तिका भी वर्णन है। इस कारण धर्माधर्मसे रहित और त्रिगुणसे अतीत पदका लक्ष्य करानेके लिये "अधर्मसे युक्त तीनों वेदोंका धर्म" ऐसा प्रयोग इस समाधि भाषामें हुआ है ॥ २६—३१ ॥

था। उस अवस्थामें मैंने आत्माको परमात्मामें रखकर आत्मविद्याके विचारोंमें परम-निष्ठा लाभ की थी। निरन्तर योगयुक्त रहने और साधुताके अभ्यास, सत्सङ्ग, सत्स्वभाव, विचार विधिशोधन तथा परमात्मामें युक्त रहनेसे उस जन्ममें बहुत आनन्दित था और शिष्योंके सन्देहोंके मिटानेमें कुशल होनेके कारण मैंने आचार्यत्व प्राप्त किया था। कुछ समय बीतनेपर मैं एकान्तिक हो गया। (अर्थात् मैंने पुरुषार्थ साधन आदि छोड़ दिया) अनन्तर अज्ञानजन्य आकृष्टसद्भाव होकर (अज्ञानसे सद्वृत्तियोंके आवृत होनेपर) प्रमादके कारण मैं विपन्न अवश्य हुआ, किन्तु मृत्युके समय तक मुझे स्मरण बना रहा। इस कारण जन्मसे लेकर जितने वर्ष बीते, उन सबकी मुझे स्मृति है। अतः हे तात! पूर्वाभ्यासके बलसे ही मैं जितेन्द्रिय होकर ऐसा यत्न करूंगा, जिससे मेरा पुनर्जन्म न हो। मैं जाति स्मर (जन्मसे ही पूर्व जन्मोंका स्मरण रखनेवाला) हुआ हूँ, यह मेरे पूर्वजन्मके ज्ञान और दानका फल है। हे पिता! त्रयीधर्म (वेदोक्त सकाम धर्म) का आश्रय करनेवाले इस प्रकार जातिस्मर हो नहीं सकते। मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा (आत्मनिष्ठा) धर्मका ही आश्रय कर ऐकान्तिकत्वको (स्वाभाविक ऐकान्तिकत्वको) प्राप्त करते हुए अपने मोक्षमें यत्नवान् होऊँगा। अतः हे महाभाग! आपके हृदयमें जो कुछ सन्देह हों, कहिये। मैं जिस किसी तरह हो, उनको दूर कर तथा आपको प्रसन्नकर आपके ऋणसे उऋण होऊँगा ॥ ३६-४५ ॥ पक्षियोंने कहा,—अनन्तर पुत्रका यह वचन सुनकर पिताने श्रद्धापूर्वक उससे संसार में जीवोंके जन्म और मृत्यु होनेके सम्बन्धमें वे ही प्रश्न किये, जो आपने मुझसे किये हैं। पुत्रने कहा,—हे तात! मैंने बार-बार जो अनुभव किया है, वह ठीक-ठीक कथन करता हूं, आप श्रवण कीजिये। यह संसारचक्र न कभी रुकता है, न बुड्ढा ही होता है। हे पिता! आपकी आज्ञासे मैं वह सब कहता हूं। दूसरा कोई मृत्युकाल तककी सब घटनाओं का वर्णन करनेमें समर्थन नहीं हो सकता। देहमें जो उष्मा (पित्त) है, वह कुपित होकर इन्धन विहीन होनेपर भी तीव्रवायुके संचालनसे धधक उठता है और सब मर्मस्थानों को भेद करता है। फिर शरीरस्थ उदान नामक वायु उसके ऊपर उठकर द्रवीभूत सब खाद्य पदार्थोंको निगलनेसे रोक देता है। उसी समय प्राणीकी मृत्यु हो जाती है। जिन्होंने जल अथवा अन्न रसका दान किया होता है, वे उस मृत्युरूपी आपत्कालमें आह्लाद प्राप्त करते हैं। जिन्होंने श्रद्धापूर्वक पवित्र मनसे अन्नदान किया होता है, वे बिना अन्नके भी उस समय तृप्तिलाभ करते हैं। जो कभी मिथ्या न बोले हों, किसीके प्रेमभंगमें प्रवृत्त न हुए हों, आस्तिक और श्रद्धवान् हों, उनकी सुखसे मृत्यु होती है। जो देवता और ब्राह्मणों की पूजामें परायण हों, असूया रहित हों, शुद्धचरित, वदान्य और लज्जावान् हों, वे सुख से प्राणविसर्जन करते हैं। जो काम, क्रोध अथवा द्वेषके वशीभूत होकर कभी धर्मका त्याग

नहीं करते, जो कुछ कहते हैं वही करते हैं और जो सौम्यमूर्ति हैं, वे सुखसे प्राणत्याग करते हैं ॥ ४६-५५ ॥ जिन्होंने कभी प्यासेको जल और भूखेको अन्न नहीं दिया है, वे मृत्युके समय दाह और क्षुधासे पीड़ित होते हैं । जो लकड़ीको दान करते हैं, उन्हें मृत्युकालमें शीतकी बाधा नहीं होती । जो चन्दन दान करते हैं, उन्हें ताप नहीं होता । जो निरन्तर प्राणियोंको सताते हैं, उन्हें मृत्युके समय कष्टप्रद प्राणान्त अनेक वेदनाएँ सहनी पड़ती हैं । जो अधम मनुष्य लोगोंको मोह और अज्ञानमें डालते हैं, उन्हें प्राण छूटते समय बड़ा भय लगेता है और तीव्र वेदनाओंसे पीड़ित होना पड़ता है । जो कूट (चालबाज़ीकी) साक्षी देते हैं, झूठ बोलते हैं, वेदोंकी निन्दा करते हैं, असत् मार्गका उपदेश देते हैं, उनकी मृत्यु अज्ञानावस्थामें (अचानक) हो जाती है और उनके मरते समय पीबकी दुर्गन्धिसे युक्त, अति भयङ्कर, दुरात्मा यमदूत गण हाथमें मुगरी और मुद्गर लिये पहुंच जाते हैं, यमदूतोंके दृष्टिगोचर होते ही वे कांपते हुए भाई, माता, पिता आदिको लगातार पुकारने, चिल्लाने लगते हैं । तब उनकी बात अस्पष्ट होती है, कोई कोई, एकाध अक्षर मुखसे निकलता है, दृष्टि घूम जाती और त्रास तथा श्वासके कारण मुँह सूख जाता है । अनन्तर श्वास उखड़ जाता है, दृष्टिकी शक्ति नष्ट हो जाती है और प्राणी अत्यन्त वेदनाओंसे आक्रान्त होकर शरीरको त्याग देता है । फिर वायुके आगे होकर जीव अपनी कर्मफल स्वरूप यातनाओंको भोगनेके लिये दूसरा शरीर धारण करता है । वह शरीर माता पिताके सम्बन्धसे नहीं होता, परन्तु वह पहिले शरीरकी तरह वयस्, अवस्था और स्थितिसे युक्त रहता है । फिर यमदूत गण कड़ी फाँसीमें उसे फँसाकर डण्डोंसे पीटते सताते हुए उसे दक्षिण दिशाकी ओर खींच ले जाते हैं ॥ ५६-६५ ॥ घोर अमंगल दिनाद करनेवाले यमदूतोंसे घसीटे और सैकड़ों भयानक गीदड़ोंसे नोचे जाते हुए पापी लोग जिस मार्गसे यम सदनमें ले जाये जाते हैं, वह बड़ा ही भयंकर और कुश, कंटक, टीलों, खूँटों तथा पत्थरोंसे आकीर्ण होता है । वह कहीं तो जलती हुई आगसे उत्तप्त, कहीं सैकड़ों गड़होंसे उत्कट, कहीं प्रखर सूर्यतापसे जलता हुआ और कहीं आदित्यकी किरणोंसे धधकता रहता है । जो मनुष्य छाता, जूता, वस्त्र और अन्नका दान किये होते हैं, वे ही बिना कष्टके उस मार्गसे जा सकते हैं ॥ ६६-६९ ॥ इस प्रकार पापी लोग विवश होकर कष्टोंका अनुभव करते हुए बारह दिनोंमें धर्मराजकी नगरीमें पहुँचते हैं । उनका कलेवर जब जलने लगता है, तब तीव्र दाहका और पीटे जाने, छेदे जाने अथवा जलमें डुबाये जाने पर तीक्ष्ण वेदनाओंका वे अनुभव करते हैं । देहान्तर प्राप्ति होने पर भी अपने कर्मोंके परिणाम स्वरूप दुःखोंको प्राणी दीर्घकाल तक भोगता रहता है । उसके कुटुम्बी उसके लिये तिल सहित जो जल अथवा पिण्ड देते हैं, वह उसके पास ले जाया जाता है और वही वह पीता खाता है ।

कुटुम्बी यदि शरीरमें तेल मलें या उबटन लगावें तो वही उसे खिलाया जाता है (अतः सूतकमें तेल या उबटन लगाना निषिद्ध है) और कुटुम्बी जो भोजन करते हैं, उससे वह तृप्त होता है । कुटुम्बी यदि (सूतकमें) भूमि पर शयन करें, तो मृत-व्यक्ति अधिक क्लेश नहीं पाता । कुटुम्बी (उसके उद्देश्यसे) दान करें, तो उससे वह तृप्त होता है ॥ ७०-७५ ॥ बारहवें दिन वह फिर घर लाया जाता है और उसके निमित्त भूमिपर जो जल या पिण्डादि अर्पण किये जाते हैं, उनका वह उपभोग करता है । बारह दिन बीतने पर फिर यमदूतों द्वारा घसीटा जाकर बहुत बड़े भीषणाकृति लोहमय यमपुरको देखता है । वहाँ जाने पर उसे मृत्यु, काल, अन्तक आदि सभासदोंसे घिरे हुए लाल लाल आँखोंवाले काले भुसुंड यमराज देख पड़ते हैं । बड़ी बड़ी खीसोंसे जिनका मुख विकराल है, टेढ़ी भौंहोंसे जिनकी आकृति अत्यन्त क्रूर हो रही है, सैकड़ों कुरूप, भयानक और टेढे मेढे रोगोंसे जो वेष्टित हैं, जिनकी लम्बी भुजाएँ हैं, एक हाथमें डण्डा और दूसरे हाथमें जो फाँसी लिये हुए हैं, जो बड़े ही भीषण और उस नगरके अधीश्वर हैं, उन यमराजके आदेशानुसार ही प्राणिमात्र अच्छी या बुरी गतिको प्राप्त करते हैं ॥ ७६-८० ॥ चालबाजीकी साक्षी देने और झूठ

टीकाः—इस परलोक वर्णनके अध्यायोंमें जहाँ कर्मविपाक वर्णन, प्रेतलोक वर्णन, नरक लोक वर्णन, स्वर्गलोक वर्णन आदि हैं अथवा सदसत् कर्म फलका वर्णन है, वह सब समाधि भाषा है । इसी सम्बन्धसे रोचक और भयानक वर्णन शैली भी स्थान स्थान पर आयी है । जिससे जीवोंकी धर्ममें प्रवृत्ति और अधर्मसे निवृत्ति हो जाय । परन्तु वह वर्णन भी कल्पनाप्रसूत नहीं है, कर्मविपाकके सिद्धान्तके अनुकूल है । ऊपर जो भगवान् यम धर्मराजके भयदायक रौद्र मूर्तिका वर्णन किया गया है, वह भी कर्म-विपाक विज्ञानसे गुम्फित है । भगवान् यम धर्मराज धर्माधर्मके फलदाता हैं । वे भूलोकके शासक हैं । मृत्युलोक, प्रेतलोक, पितृलोक, (पुत्रकलत्रादि धनैश्वर्यमें तीक्ष्ण इच्छा रखनेवालोंके लिये जो स्वर्गलोक है) और नरक लोक ये चारों भूलोकके विभाग हैं, ऐसे साक्षात् भगवान्‌की मूर्त्ति ऐसी विकट नहीं हो सकती । परन्तु रहस्य यह है कि, पापी गण अपने कर्मविपाकके कारण उनका ऐसे ही भयानक रूपमें दर्शन किया करते हैं । ऊपर जो जीवोंका वर्णन आया है, वह पापी जीवोंका वर्णन है । पापी जीव प्रेतलोकमें या नरक लोकमें भेजे जाते हैं । ये दोनों लोक अलग अलग हैं । दूसरी ओर पुण्यात्मा जीव जब यमराजधानीमें पहुंचते हैं, तो वे भगवान् यम धर्मराजका अति पवित्र मंगलमय रूपमें दर्शन करते हैं । जैसा कि, वेदोक्त महात्मा नचिकेताने किया था । भगवान् यम धर्मराजको ही पृथ्वीके अनेक अल्पज्ञ धर्मावलम्बी जगदीश्वर करके मानते हैं । उनके व्यक्तिगत ईश्वर यमराज हैं, जो जीव मात्रके धर्माधर्मके फलदाता हैं । और परलोकके शास्ता हैं । ऊपर लिखित वर्णनसे यह नहीं समझना चाहिये कि, सबकी एक सी ही गति होती है । इह लोकमें मोह रखनेवाले विषयासक्त जीवको प्रायः थोड़े या अधिक समयके लिये प्रेतलोकमें रहना होता है और तत्पश्चात् उसे नरकमें जाना पड़ता है, जिसके विभाग भी अनेक हैं । जिस जीवका पुण्य कम है, वह पहिले पितृलोकमें जाता है, जिसका पाप कम है, वह पहिले नरक लोकमें जाता है । उन्नत पुण्यात्मा उत्तरोत्तर उन्नत स्वर्गोंमें भेजे जाते हैं । पाप और पुण्यके अनुसार प्रेत, नरक और पितृलोकमें पहुंचाना और उन्नत स्वर्ग लोकोंका पथ सरल कर देना यह यम धर्मराजके शासनका कार्य है ॥ ७१-८० ॥

बोलनेवाला मनुष्य रौरव नरकमें जाता है। हे पिताजी! उस रौरव नरकका मैं वर्णन करता हूं, उसे सुनिये। उस रौरव नरककी परिधि दो सहस्र योजन है। उसमें जंघाके बराबर गहरा गढ़ा है। उसमें जलते हुए अंगार भूमिके समतल तक भरे हुए होते हैं और वे धधकते रहते हैं। पापी मनुष्योंको यमदूत गण उस आगमें छोड़ देते हैं, तब वे तीखी आँचमें जलते हुए इधर उधर दौड़ने लगते हैं। उनके दोनों पांव जल भुनकर इतने जीर्ण शीर्ण हो जाते हैं कि, दिन रातमें वे किसी प्रकार एक ही पग धर सकने या उठा सकनेमें समर्थ होते हैं। इसी गतिसे एक सहस्र योजन चलनेपर वहाँसे उनका छुटकारा होता है और पापशुद्धिके निमित्त फिर वे इसी तरहके दूसरे नरकमें जा गिरते हैं॥ ८१—८६॥ पापात्मा प्राणी इस प्रकार समस्त नरकोंको पार कर तिर्यक् योनिको प्राप्त करते हैं। अनन्तर सृष्टिधाराके क्रमानुसार कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु, मच्छड़, गौ, घोड़े, हाथी, वृक्ष, लता आदि नानाविध कष्टप्रद योनियोंसे होते हुए वे पुनः मानव जन्म ग्रहण करते हैं। मानव होने पर भी पहिले कुबड़े, ठूंठे, कुरूप, बौने होते हैं अथवा चाण्डाल, डोम आदि हीन कुलोंमें उत्पन्न होते हैं। फिर अवशिष्ट पाप और (संचित) पुण्यके मिलनसे क्रमशः उन्नत होते हुए आरोहिणी (चढ़ती) गतिसे शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय, ब्राह्मण और देवेन्द्र तक हो सकते हैं। और फिर अधर्माचरण करनेसे अवरोहिणी (उतरती) गतिको प्राप्त होकर नरकोंमें जा गिरते हैं॥ ८७—९१॥ अब जिस प्रकार पुण्यवान् मनुष्य गमन करते हैं, वह कहता हूँ; उसे सुनिये। पुण्यात्मा पुरुष भी यमराजकी निर्दिष्ट पुण्यमयी गतिको प्राप्त करते हैं। जब वे चलने लगते हैं, तो उनके साथ उन्हें चारों ओरसे घेरकर गन्धर्व गण गाते हुए चलते हैं अप्सरायें नाचती जाती हैं। हार, नूपुर आदि मधुरतासे सजाये हुए उनके लिये विमान आते हैं, और नाना दिव्य मालाओंको धारण कर उन विमानोंमें चढ़कर वे स्वर्गको गमन करते हैं। अनन्तर पुण्य शेष होनेपर स्वर्गसे गिरकर वे किसी महात्माके घर अथवा राजाके घर जन्म ग्रहण कर सद्वृत्तपरिपालक मनुष्य होते हैं और नाना प्रकारके भोगोंका उपभोग कर क्रमशः पुनः ऊर्द्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं। यदि वे (असत् कर्मोंके

टीका—यह साधारण कारणोंकी गतिका वर्णन है। इसमें जो जो शंकाएं हो सकती हैं, उनका समाधान किया जाता है। प्रबल पापी गण पहिले प्रेतलोकमें होकर नरकमें जाते हैं। असिपत्र, रौरव, कुम्भीपाक आदि नरकोंमें भोग करने पर यदि पाप कर्मों का विपाक शेष रहा, तो उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनिके पिण्डोंमें वे दण्ड देनेके लिये फेंके जाते हैं। और पुनः दुःखप्रद अथवा अज्ञानी मनुष्य-पिण्डको प्राप्त करते हैं। यही गुरुतर पाप भोगका क्रम है। पहिले नरक भोग होनेका कारण यह है, कि, नरकमें जीवको मालूम रहता है कि, मैंने किस पापका यह फल पाया है। पशु आदि योनिमें जीवको वह ज्ञान नहीं रहता। इस कारण पापीको पहिले नरक भोग करा दिया जाता है॥८७—९१॥

करनेसे) अवरोहिणी दशाको प्राप्त हुए, तो फिर पहिले कहे हुए दुःखोंको भोगते हैं। पिताजी ! प्राणी किस प्रकार विपन्न होते हैं, यह मैंने आपसे कहा । हे विप्रर्षे ! गर्भ धारण कैसे होता है, वह अब मैं कहता हूं, उसको श्रवण कीजिये ॥ ६२-६६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्रसंवाद नामक दशम अध्याय समाप्त हुआ ।

एकादश अध्याय ।

पुत्रने कहा,--स्त्री-पुरुष-प्रसङ्गमें स्त्रियोंके रजमें जब पुरुषोंका वीर्य गिरता है, तब स्वर्ग या नरकसे छूटते ही जीव उसका अवलम्बन कर उससे अभिभूत हो जाता है। रज और वीर्य स्थिर हो जाने पर वह कलल, बुद्बुद और पेशी भावको धारण करता है ॥ १--२ ॥ उन पेशियोंमें जो सूक्ष्म अण्डके समान बीज रहता है, उसे अंकुर कहते हैं। उसी अंकुरसे भाग्यक्रमानुसार पांच अंगोंकी उत्पत्ति होती है। फिर अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख, कान आदि उपाङ्ग बनते हैं और उनके बढ़नेपर नखआदि उत्पन्न होते हैं। अनन्तर त्वचाके ऊपर रोम और केश जमने लगते हैं। इस प्रकार जीवके अङ्ग-प्रत्यङ्ग और उद्भव कोष दोनों एक साथ वर्धित होते हैं। जिस प्रकार कोष (कवच=

टीकाः—स्त्री-पुरुष-सङ्गमसे पीठकी उत्पत्ति अपने आप होती है। प्राणके आकर्षण और विकर्षणके समन्वयसे पीठ बनता है। उपासना पीठ कई प्रकारके होते हैं, जिनमें देवपूजा की जाती है। और स्त्रीपुरुषके सम्बन्धसे जो पीठ उत्पन्न होता है, वह सहज पीठ कहाता है। पीठमें जैसा जहां सम्भव हो ऋषि देवता, पितृगणसे लेकर स्वर्ग और नरकके जीवगण तक यथाकर्म आकृष्ट होते हैं। पुरुषशक्ति परास्त होते ही पीठ नष्ट हो जाता है। और वीर्य और रजका सम्मेलन होकर स्त्रीगर्भमें जीव, जिसका जन्म उस गर्भमें होगा, उसका स्थूल शरीर रूपी घर बनना प्रारम्भ हो जाता है। जिस जीवका घर बनना प्रारम्भ हो जाता है, उसका सम्बन्ध उस घरसे हो जाता है। इस कारण उसके उसमें अभिभूत होनेकी बात कही गयी है। चाहे पापी जीव हो, चाहे पुण्यात्मा हो, चाहे आसुरी सम्पत्तिका जीव हो, चाहे दैवी सम्पत्तिका जीव हो, चाहे देवताओंके अंशसे उत्पन्न हो, चाहे ऋषियोंके अंशसे उत्पन्न हो, चाहे स्त्री हो, चाहे पुरुष हो, इसी समयसे उसका इस घरकी नींवकी ओर दृष्टि हो जाती है। अर्यमा आदि नित्य पितृगण उस घरके बनानेमें सहायक रहते हैं। और जब घर रहने योग्य हो जाता है, तब देवतागण उस जीवको वहां गर्भमें पहुंचा देते हैं। यही मृत्युलोकमें मातृगर्भमें जीवके जन्मके लेनेका दार्शनिक रहस्य है। वेद अथवा शास्त्रोंमें जीवके जन्म ग्रहण करनेके जो नाना प्रकारके वर्णन हैं, वे वर्णन भी त्रिभावात्मक हैं। अर्थात् कहीं तो वह वर्णन स्थूल शरीरकी प्राप्तिके लिये है, माता पिताके सम्बन्धसे संस्कारजन्य है और कहीं लोक लोकान्तरसे लौटे हुए जीवोंके सूक्ष्म शरीरोंसे सम्बन्धयुक्त है। इस कारण वर्णनवैचित्र्य होना स्वाभाविक है ॥ १—२ ॥

नरियली) के साथ ही नारियल बढ़ता है, उसी प्रकार प्राणी भी गर्भकोषके साथ ही साथ अधोमुख होकर बढ़ता जाता है ॥३-६॥ प्राणी जब गर्भमें अधोमुख होकर वास करते हैं, तब उनके पार्श्व और जानुओंके तले हाथ दबे रहते हैं। और वह बढ़ने लगते हैं। अँगूठे जानुके ऊपर और अँगुलियाँ जानुओंके अग्रभागमें रहती हैं। जानु पृष्ठमें आंखें और दोनों जानुओंके बीचमें नासिका रहती है। दोनों कूले पार्ष्णिके ऊपर और बाहु तथा जङ्घाएं बाहर निकली रहती हैं। इस प्रकार मनुष्य प्राणी स्त्रीके गर्भमें रहकर क्रमशः वृद्धिङ्गत होता है। अन्यान्य प्राणियोंकी भी जैसी आकृति हो, वैसा उनका गर्भ रहता है। उदरकी अग्निसे वह कठिन होता और स्त्री जो कुछ खाती पीती है, उसीके रससे जीवन धारण करता है। गर्भमें भी पुण्यपापके न्यूनाधिक्यके अनुसार ही प्राणीकी स्थिति होती है। गर्भस्थ पिण्डकी नाभिमें आप्यायनी नामक जो नाड़ी होती है, वह स्त्रीकी अंतडीके रन्ध्रसे सम्बन्ध रखती है। स्त्री जो कुछ खाती-पीती है, उसका रस उसी नाडीके द्वारा गर्भस्थ पिण्डमें पहुँचता है; जिससे वह तृप्त होकर बढ़ता रहता है ॥ ७-१७ ॥ गर्भावस्थामें जीवको संसारकी अनेक भूमियां स्मृति-गोचर होती और चारों ओरसे पीडित होकर वह बहुत दुःख पाता है। दैवजनित पूर्वानुभूत सैकड़ों जन्मोंके दुःखोंको स्मरण कर वह सोचने लगता है कि, मैं इस गर्भवाससे निवृत्त होनेपर ऐसे कार्य (जिनका फल दुःख हो) कभी नहीं करूँगा। अब ऐसा यत्न करूँगा, जिससे फिर गर्भवासका दुःख न भोगना पड़े। इस प्रकार वह अधोमुख प्राणी कालक्रमसे जब नौ या दस मासका हो जाता है, तब जन्म ग्रहण करता है। जन्मके समयमें प्राजापत्य वायुके द्वारा वह अत्यन्त पीड़ित होकर बाहर आने लगता है, हृदयके अत्यन्त दुःखसे विलाप करता हुआ बाहर आता है। गर्भसे बाहर आते ही वह असह्य पीड़ासे मूर्छित हो जाता है और फिर वायु लगनेसे चैतन्य लाभ करता है। फिर मोहिनी वैष्णवी माया उसे घेर लेती है। उसी मायासे विमोहित होनेके कारण उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है। ज्ञान नष्ट होनेसे वह क्रमशः बाल्य, कौमार, यौवन, वार्द्धक्य आदि नाना दशाओंको पाता और देहावसानके पश्चात् फिर वैसा ही

टीका:—परमात्मा तथा मायामें मैं और मेरी शक्तिके समान अभिन्न सम्बन्ध है। जैसे गायक और गायककी गानशक्तिमें अभिन्न सम्बन्ध है, उसी प्रकार ब्रह्म और ब्रह्मशक्ति महामायामें अभिन्न सम्बन्ध है। वह शक्ति पुनः त्रिगुण भेदसे तीन रूपोंमें कार्यकारिणी होती है। वह सृष्टिके सम्बन्धसे ब्राह्मी शक्ति प्रलयके सम्बन्धसे रौद्रीशक्ति और स्थितिके सम्बन्धसे वैष्णवी शक्तिके नामसे आभिहित होती है। यह वैष्णवी शक्तिका ही प्रभाव है कि, सृष्टिरक्षाके सम्बन्धसे वैष्णवी माया मनुष्यके गर्भसे निकलते ही उसकी पुरानी स्मृति भुला देती है। एक ओर गर्भसे निकलते समय निष्पेषणके क्लेशसे मूर्छा आना यह विस्मृतिका कारण है। दूसरी ओर यदि वह जीव अपनी पुरानी बातें भूल न जाय, तो अनन्त जन्मोंकी पूर्वस्मृतियां उसको

जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार घटीयन्त्रकी तरह यह संसारचक्र निरन्तर घूमता रहता है ॥ १३-२१ ॥ जीव कभी स्वर्गमें, कभी नरकमें और कभी दोनों स्थानोंमें जाता है। कभी यहीं फिर जन्म लेकर अपने कर्मफलोंका भोग करता है। कभी अपने कर्मफलोंको थोड़े ही समयमें भोगकर प्राण छोड़ देता है। हे द्विजसत्तम ! कभी कभी बहुत थोड़े शुभाशुभ कर्मोंके होनेसे अति अल्प समय तक स्वर्ग या नरकका भोग करता है। स्वर्गवासी लोग स्वर्गमें नाना प्रकारके आमोद प्रमोद करते हैं, यह देखकर नरकमें पड़े पापियोंके हृदयोंमे बड़ा दुःख होता है। इधर स्वर्गमें भी दुःखकी सीमा नहीं रहती। क्योंकि जीव जबसे स्वर्ग पहुंचते हैं, तभीसे उनको यह चिन्ता लगी रहती है कि, पुण्यक्षय होने पर हम भी इसी तरह नरकमें पड़ेंगे। हे तात ! नरकमें गिरे हुए जीवोंको देखकर स्वर्गवासियोंको बहुत दुःख होता हैं और हमारी भी यही गति होगी, यह सोचते हुए दिन रात वे अस्वस्थ रहा करते हैं। प्रथम तो गर्भवास ही दुःखकर है, फिर योनिरन्ध्रसे जन्म ग्रहण करना उससे भी अधिक कष्टप्रद होता है। जन्म पाने पर भी बाल्यावस्था और वृद्धावस्था दोनों अवस्थाएँ क्लेशमयी हैं। यौवनावस्था भी काम, क्रोध, ईर्ष्या आदिके कारण महान् कष्टोंसे खाली नहीं है। वृद्धावस्था तो दुःखकी खान है और मरणावस्थाका कहना ही क्या है। उसमें अत्युत्कट दुःख बना ही हुआ है ॥ २२-२९ ॥ मरणोपरान्त यमदूतगण जीवको घसीटते हुए जब नरकमें डालते हैं, तब तो दुःखकी सीमा ही नहीं रहती। इतना होने पर भी जीवको छुट्टी नहीं ; उसे फिर गर्भवास, जन्मग्रहण मरण और नरकवासका दुःख भोगना ही पड़ता है। इस प्रकार इस संसारचक्रमें सब प्राणी प्रकृत बन्धनसे आबद्ध होकर घटीयन्त्रकी तरह निरन्तर परिभ्रमण किया करते हैं और अत्यन्त बन्धन यन्त्रणा भोगते रहते हैं। हे पिताजी ! सैकड़ों दुखोंसे व्याप्त इस संसार में सुखका लेश भी नहीं है। अतः जब मैं मुक्ति लाभके निमित्त यत्न करता हूं, तब वैदिक धर्मका अभ्यास क्योंकर करू ? ॥ ३०-३२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका पितापुत्रसंवादात्मक एकादश अध्याय समाप्त हुआ।

पागल कर सकती हैं। यह वैष्णवी मायाकी कृपा ही है कि, जिससे जीव पूर्व स्मृतियोंको भूलकर सम्पूर्ण रूपसे नवीन जीवनका अनुसरण करता है। नहीं तो अगणितवार नरकवासका भय और अगणित वार स्वर्गवासका अभाव उसको हर समय विचलित कर देता। दूसरी ओर अपने माता पिता, पुत्र, कलत्र, कन्या आदिके पूर्वजन्म के सम्बन्धकी स्मृति बनी रहती, और माताको स्त्री और स्त्रीको माता, पिताको पुत्र और पुत्रको पिता और इसी प्रकार आत्मीयोंको पूर्व शत्रु आदि रूपसे जानता, तो उसका यह जीवन नरकसेभी अधिक दुखदायी और उसकी वृत्ति पागलसे भी बढ़कर हो जाय, इसमें संदेह नहीं। अतः भगवती वैष्णवी मायाके प्रभावसे ही एक ओर पूर्वस्मृतिको भूलकर दूसरी ओर असत्में सत् और दुखदायी पदार्थोंमें सुखका अनुभव करके जीव अपने जीवन पथमें अग्रसर होता रहता है ॥ १३-२१ ॥

द्वादश अध्याय ।

पिताने कहा,—हे वत्स ! तुमने ज्ञानदानके अर्थ संसारकी परम गहनताका महाफलप्रद विषय भली-भांति कह सुनाया और रौरव तथा अन्यान्य नरकोंका भी विषय कहा, यह ठीक किया । अब उसीको विस्तार पूर्वक समझाओ । पुत्रने कहा,—पिताजी ! प्रथम मैंने रौरव नरकका वर्णन किया है । अब महारौरव नरकका वर्णन करता हूं, आप श्रवण कीजिये । यह नरक बारह सहस्र योजन लम्बा चौड़ा है । इसकी भूमि तांबेकी है और उसके नीचे आग जलती रहती है । वह भूमि अग्निके तापसे परितप्त होनेके कारण नव उदित चन्द्रमाकी तरह चारों दिशाओंको प्रकाशित करती है । इसका देखना या स्पर्श करना बड़ा भयङ्कर है । यमदूतगण पापियोंको हाथ पैर बांधकर उसमें छोड़ देते हैं और पापी लोग उसपर लोटते-लोटते उसके भीतर प्रवेश कर जाते हैं । नीचे धँसते हुए उन्हें कौंवे, बगुले, सियार, उल्लू, बिच्छू, मशक, गीध आदि नोचते-काटते जाते हैं ॥ १-७ ॥ वहां दाह यन्त्रणासे पीडित होकर व्याकुलचित्तसे वे "हाय बप्पा, हाय मैया, हाय भैया" आदिकह कर चिल्लाते और अत्यन्त उद्विग्न होते हैं, किन्तु शान्ति नहीं पाते । जो दुष्ट मनुष्य निरन्तर पाप करते रहते हैं, उन्हें वहां दस सहस्र वर्ष इसी अवस्थामें बिताना पड़ता है, तब छुट्टी मिलती है । महारौरवके बाद घोर अन्धकारसे आच्छन्न तम नामक एक नरक है । वह भी महारौरवकी तरह दीर्घ और स्वाभाविक रूपसे अत्यन्त शीतमय है । जो उस नरक में गिराये जाते हैं, वे घोर अन्धकारमें शीतसे व्याकुल होकर इधर-उधर दौड़ते और अन्य नारकीय जीवोंमें मिलकर एक दूसरेसे चिपककर परस्परके आश्रयसे रहते हैं । शीतकी पीडासे वे कांपते और दांतसे दांत लगकर उनके दांत टूट जाते हैं । क्षुधा, तृषा और अन्यान्य प्रबल उपद्रवोंसे वे पीड़ित होते हैं । हिमखण्डोंके प्रवाहवाली वायु उनकी हड्डियोंको तोड़ डालती है । उससे जो मज्जा और रक्त शरीरसे बाहर होता है, उसीको वे क्षुधातुर होकर खाते, परस्पर मिलकर भूमिको चाटते हुए भटका करते हैं ॥८-१३॥ हे ब्राह्मण श्रेष्ठ ! जब तक भली-भाँति पापोंका क्षय नहीं होता, तब तक मनुष्य उस तम नामक नरकमें महाक्लेश भोगते हैं । तम नरकके बाद निकृन्तन नामक एक विख्यात और प्रधान नरक है । हे पिताजी ! वहां बहुतसे कुम्हारोंके चक्र निरन्तर घूमते रहते हैं । मानवोंको उन चक्रोंपर चढ़ाकर यमकिङ्करगण हाथमें लिये हुए काल सूत्रसे उन्हें सिरसे लेकर पैरतक चीरा करते हैं । किन्तु हे द्विजवर ! इससे वे मरते नहीं; उनके शरीरके टुकड़े टुकड़े होनेपर भी वे सब

फिर जुट जाते हैं। जब तक पापियोंका पाप पूरा न कट जाय, तब तक अर्थात् सहस्रों वर्षों तक इस नरकमें इसी प्रकार चीरे जाते हैं और वहाँ वे नरकवासी असह्य वेदनाओंका अनुभव करते हैं। अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरकका वर्णन सुनिये। इस नरकमें भी पूर्वकथित नरकके अनुसार बहुतसे चक्र और अन्यान्य घटीयन्त्र (रहट) पाप कर्म करनेवाले मनुष्योंको दुःख देनेके हेतु बने हुए हैं। कोई कोई पापी उन चक्रों पर बैठाकर घुमाये जाते हैं। इस दशामें उन्हें कमसे कम सहस्रवर्षों तक रहना पड़ता है। कोई पापी छोटे घड़ोंकी तरह घटीयन्त्रोंमें बाँधकर घुमाये जाते हैं, जिससे वे बार बार रक्त वमन किया करते हैं। प्राणिगण वहाँ मुखसे उगली जानेवाली रक्त धारा और आँखोंसे बहनेवाली रक्तधारासे अत्यन्त पीड़ित होकर असह्य दुःखोंका अनुभव करते हैं ॥ १४-२३ ॥ तदनन्तर असिपत्र नामक नरक है। उसका वर्णन करता हूं, आप सुनिये। यह नरक धधकती हुई अग्निके द्वारा पृथ्वीके सहस्र योजनोंको घेरे हुए है। नरकवासी प्राणी भयङ्कर प्रचण्ड सूर्य किरणोंसे प्रतप्त होकर इस नरकमें गिरते हैं। इस नरकमें एक मनोहर वन होता है। देखने पर उस वनके सब पत्ते स्निग्ध जान पड़ते हैं, किन्तु हे द्विजवर! उन सब पत्रोंके कोने तलवारकी धार जैसे पैने होते हैं। वहां व्याघ्रके समान मुख और तीखी दाढ़ोंवाले भयंकर कुत्ते जोर जोरसे भूका करते हैं। तब क्षुधा तृषासे व्याकुल प्राणी उस वनकी स्निग्ध छाया देखकर (विश्रामके हेतु) उसमें प्रवेश करते हैं। तब वहाँकी अग्निमयी भूमिमें उनके पैर जलने लगते और "हा पिता, हा माता!" कह कर क्रन्दन करने लगते हैं ॥ २४-२९ ॥ उस वनमें गमन करने पर असिपत्रोंको गिरानेवाली वायु बहती है और उससे उन पापियोंपर असंख्य तलवारें आ गिरती हैं। इसके अनन्तर उज्ज्वलन्त अग्निराशि उनको घेर लेती है और वे पृथ्वीको चाटते हुए गिर पड़ते हैं। तब अत्यन्त भीषण कुत्ते, जो वहां होते हैं, उनके शरीरके अङ्ग प्रत्यङ्गको छिन्न-विच्छिन्न करते हैं। तब तो वे बड़े ही जोरसे रोने चिल्लाने लगते हैं। हे तात! यह असिपत्र वनका विषय मैंने आपको सुनाया। अब उससे भी भयङ्कर तप्तकुम्भका वर्णन मैं करता हूं, उसे श्रवण कीजिये। इस नरकके चारों ओरसे आगकी लपटें निकला करती हैं। वहाँ अग्निके समान जलते हुए तेल और लोह चूर्णसे भरे हुए बड़े बड़े घड़े रक्खे रहते हैं। यमदूतगण दुराचारी मनुष्योंको उलटे कर उन घड़ोंमें भर देते हैं। फिर उनके अङ्गोंको तोड़कर और मज्जाको गलाकर काढ़ा पकाते हैं। उनके कपाल, नेत्र और अस्थिसमूह खण्ड खण्ड छिन्न भिन्न हो जाते और भयंकर वेगवान् गीध उन्हें उठा उठाकर फिर उन्हीं घड़ोंमें छोड़ देते हैं। फिर उनके मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वचा, अस्थि आदि 'छन् छन्' शब्द करते हुए द्रवीभूत होकर (तप्त) तैलमें एक रस हो जाते हैं। इसके पश्चात् यमदूत गण उन पापात्माओंको करछुलसे

घोंटते और तपे तैलसे भरे बड़े कड़ाहमें डालकर मथ डालते हैं। हे पिताजी ! इस प्रकार तप्तकुम्भ आदि नरकोंका विस्तृत वर्णन आपको सुना दिया है ॥ ३०-३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका महारौरवादि नरकाख्यान नामक द्वादश अध्याय समाप्त हुआ।

त्रयोदश अध्याय ।

पुत्रने कहाः—हे तात ! इस जन्मसे पहिलेके सातवें जन्ममें मैं वैश्य कुलमें जन्मा था। उस जन्ममें मैंने निपान (कुएंके निकटके जलाशय) में (पानी पीनेके लिये आयी हुई) गौओंको जानेसे रोका था और उस पाप कर्मके विपाक (फल) स्वरूप मैं भयंकर दारुण नरकमें गिराया गया था। जिस नरकमें मैं गिराया गया था, वह चारों ओरसे अग्निकी ज्वालाओंसे व्याप्त था और लोहेकी चोंचवाले पक्षियोंसे भरा था। यन्त्रोंमें पेरे जानेवाले प्राणियोंके शरीरोंसे बहे हुए रक्तका वहां कीचड़ हो रहा था और उसमें डाले गये दुराचारियोंके आर्तनादसे वह गूंज रहा था, मैंने वहां कड़ी धूपकी पीड़ासे उत्तप्त और प्यासकी दाहसे व्याकुल होकर सौ वर्षोंसे कुछ अधिक ही वर्ष काटे थे ॥ १-४ ॥ हठात् एक दिन करम्भ (जलती हुई) वालूके घड़ोंसे आह्लादकारक, सुखशीतल वायुका झकोरा आया। उस वायुके सम्पर्कसे मेरी और अन्यान्य नरकवासियोंकी यन्त्रणायें मिट गयीं। सभीको अनुभव होने लगा कि, हमने स्वर्गवासियोंकी तरह नरकसे निवृत्ति पायी है। हम यह कहते हुए कि, "एका एक यह क्या हुआ ?" आंखें लगाकर और आह्लादसे स्तिमित होकर इधर उधर देखने लगे, तो एक श्रेष्ठ नर रत्न पास ही खड़ा हुआ देख पड़ा और देखा कि, वज्रके समान दण्ड हाथमें लिये एक भयङ्कर यमदूत "इधरसे आइये" कहता हुआ उसे मार्ग दिखा रहा है। उस पुरुषने नरकमें सैंकड़ों यन्त्रणाओंको भोगते हुए जीवोंको देखकर दयासे पूर्ण हो यमदूतसे पूछा,—हे यमकिंकर ! शीघ्र कहो, मैंने कौनसा पाप किया है, जिस पापसे इस भयङ्कर यातनामय नरकमें ले आया गया हूं ? ॥ ५-१० ॥ देखो मैं राजा जनकके कुलमें उत्पन्न होकर विदेहनगरीके शासन सम्बन्धमें उत्तम प्रजा पालक तथा पण्डित रूपसे विख्यात था। मैंने अनेक यज्ञ किये और धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया। कभी रणमें पीठ नहीं दिखाई और मुझसे कभी कोई अथिति विमुख होकर नहीं गया। मैंने पितृ, देवता, ऋषि और सेवकोंका कभी निरादर नहीं किया। परस्त्री और परधनमें कभी मेरी स्पृहा नहीं रही। गौएँ जिस प्रकार पोसरेपर जाती हैं, उसी प्रकार पर्वकालमें पितृगण और तिथिकालमें देवतागण मेरे पाससे विमुख

होकर लौट जाते हैं, उसके इष्ट धर्म और पूर्त धर्म (जो श्रौतधर्म) दोनों नष्ट हो जाते हैं। पितृगणके निश्वाससे सात जन्मोंका और देवगणके निश्वाससे तीन जन्मोंका सञ्चित पुण्य नाशको प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। अतः मैं देवों और पितरोंके हितमें निरन्तर अत्यन्त तत्पर रहा करता था। फिर क्योंकर अत्यन्त दारुण इस नरकमें लाया गया हूं॥ ११-१७॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता पुत्रसे वादात्मक त्रयोदश अध्याय समाप्त हुआ।

चतुर्दश अध्याय।

पुत्रने कहा,--हम उस समय (उनकी बातचीत) सुन रहे थे। उस महात्माके इस प्रकार प्रश्न करने पर यमदूतने अति भयंकर होनेपर भी नम्रभावसे उत्तर दिया,--हे महाराज! आप कहते हैं, वह यथार्थ है। इसमें सन्देह नहीं, किन्तु आपने जो एक छोटा सा पाप किया है, उसका स्मरण दिला देता हूं। विदर्भ देशकी पीवरी नामक आपकी रानी थी, ऋतुमती होनेपर एक बार आपने उसके ऋतुको विफल कर दिया था। क्योंकि उस समय आप कैकय देशकी सुशोभना नामक रानी पर बहुत रीझे हुए थे। अग्नि जिस प्रकार होमके समय घृताहुतिकी अपेक्षा करता है, उसी प्रकार ऋतुकालमें प्रजापति भी बीजपातकी अपेक्षा करता है। ऋतुकालके व्यतिक्रम करनेसे ही आप इस घोर नरकमें लाये गये हैं। जो पुरुष ऋतुकालका व्यतिक्रम कर अन्यत्र कामासक्त होता है, वह पितरोंके ऋणके कारण पाप पङ्कमें निमग्न होकर नरकमें गिरता है। हे पृथ्वीनाथ! आपने केवल यही पाप किया है, और कोई आपका पाप नहीं है। अतः अब आइये और अपने समस्त पुण्यफलोंको भोगनेके लिये चलिये॥ १--७॥ राजाने कहा,--हे देवानुचर! तुम मुझे जहां ले जाओगे, वहीं मैं चलूँगा, किन्तु मैं जो पूछता हूँ, उसका ठीक ठीक उत्तर दो। यहां ये सब वज्रके समान चोंचवाले कौवे प्राणियोंकी आंखें निकाल लेते हैं और इनकी आंखें पुनः उत्पन्न हो जाती हैं। कहो, ऐसा इन्होंने कौनसा निन्दनीय कर्म किया है? देखो, इनकी जिह्वा उपाड़ लेने पर भी फिर नयी जिह्वा आ जाती है। ये अति दुःखी लोग करपत्रों (आरों) से चीरे जाकर क्योंकर जलती हुई बालू तथा खौलते हुए तेलमें गिराये जाते हैं? लोहेकी चोंचवाले पक्षी इन्हें पकड़ कर खींचते हैं और ये देहके जोड़ टूटनेसे पीडित होकर घोर चीत्कार करते हैं। पक्षियोंके लोहमय तुण्डाघातसे इनके सब अङ्ग क्षत विक्षत हो रहे हैं और ये दारुण यन्त्रणा भोग रहे हैं। इन्होंने ऐसा कौनसा

अनिष्ट कार्य किया है, जिससे ये इस प्रकार सताये जाते हैं ? उपरि कथित और ऐसी ही नाना प्रकारकी यातनाएँ पापी लोगोंको भोगते हुए जो देखा जाता है, यह उनके किन कर्मों का फल है, वह मुझसे आद्योपान्त कहो ॥ ८—१४ ॥ यमदूत बोला,—हे भूपाल ! पापकर्मों के फलोदयके सम्बन्धमें आपने जो जिज्ञासाकी, उसका संक्षेपमें मैं उत्तर देता हूँ। मनुष्य अपने पुण्य पापोंका यथाक्रम उपभोग करते हैं और भोग कर लेनेपर पुण्य अथवा पाप नष्ट हो जाते हैं। पुण्य वा पापका भोग हुए बिना मानवोंके शुद्धि विधानमें कोई कर्म समर्थ नहीं हो सकता। पाप पुण्यका क्षय उनके भोगसे ही होता है। कर्मबन्धनमें फंसकर ही प्राणियोंकी नाना प्रकारकी गति होती है। जो पापात्मा हैं, वे ही दरिद्री होकर दुर्भिक्षके बाद दुर्भिक्ष, क्लेशके बाद क्लेश, भयके बाद भय और मृत्युके बाद मृत्युके दुःखों को भोगा करते हैं। जो श्रद्धावान्, शान्तचित्त, दानी और शुभकर्म करनेवाले हैं, वे उत्सवके बाद उत्सव, स्वर्गके बाद स्वर्ग और सुखके बाद सुखका लाभ करते हैं ॥१५—२०॥ पापीगण पापके प्रभावसे मारे जाकर जहां सांप, चोर और मस्त हाथी आदिका भय है, वहां गमन करते हैं। इसके सिवा उनकी और क्या गति हो सकती है ? पुण्यात्मा अपने पुण्यके प्रभावसे सुगन्धि माला, अच्छे वस्त्र, उत्तम यान, उच्च आसन, मधुर भोजन आदिको प्राप्त कर (देवताओंसे) प्रशंसित होते हुए नन्दन काननमें विहार करते हैं। इस प्रकार सैकड़ों, सहस्रों जन्मोंमें प्राणिगण जो अनेक पाप-पुण्योंको बटोरते हैं, हे भूपाल ! वे ही उनके सुख-दुःखोंके अंकुर स्वरूप हो जाते हैं। राजन् ! बीज जिस प्रकार जलकी अपेक्षा करते हैं, उसी प्रकार पुण्य-पाप भी काल, देश और पात्रकी अपेक्षा करते हैं। यदि मनुष्य देशकालानुसार स्वल्पमात्र पाप करे, तो पैरमें कांटा चुभने जैसा उसे स्वल्प ही दुःख होता है। यदि वह प्रचुर पापाचरण करे, तो शूल, कीलकादि चुभनेवाले शिरो-रोग जैसे रोगोंके दारुण दुःखोंका उसे अनुभव करना पड़ता है ॥ २१—२६ ॥ फलोत्पत्तिके समय सब पाप परस्परकी अपेक्षा करते हैं। इसीसे अपथ्य भोजन, शीत, उष्ण, श्रम, ताप आदि भोगना पड़ता है। महापापोंका आचरण करनेसे ही राजरोगोंके विकार, शस्त्र अथवा अग्निजनित महापीडा और बन्धनादि होते हैं। थोड़ा ही पुण्य करनेसे मधुर गन्ध, सुखमय स्पर्श, मनोहर शब्द, सुमिष्ट रस और सुन्दर रूप थोड़े ही समयके लिये प्राप्त होता है। अत्यन्त पुण्य करनेसे इन्हीं सब बातोंका प्रचुर परिमाणमें लाभ होता है ॥ २७—३० ॥ जाति और देश आदि द्वारा अवरुद्ध ज्ञान तथा अज्ञानका फल आत्मापर अङ्कित (संस्कार रूपसे) हो जाता है। इसीसे प्राणी अनेक संसार जनित पाप पुण्योंके दुःख सुखमय सब फल यहीं (अर्थात् नरक स्वर्गादि भोग लोकोंमें) भोग करते हैं। प्राणी किसी समय, किसी स्थानमें काया, मन और वाणीके द्वारा किसी पुण्य या पापका अनु-

ध्यान न करके भी जो (पूर्व संस्कार रूपी कारणके बीजके अनुसार) सुख वा दुःख पाते हैं वह चाहे थोडा हो या अधिक, उससे मनमें विकार उत्पन्न होता है। वह विकार पुण्य-मय हो या पापमय, दोनोंका खाये हुए पदार्थोंकी तरह, भोग किये विना क्षय नहीं होता ॥ ३१—३५ ॥ हे राजन्! इस प्रकार ये नरकमें पड़े हुए मनुष्य अहर्निश यातना द्वारा घोर महापापोंका क्षय कर रहे हैं और स्वर्गस्थ मनुष्य देवताओंके साथ सिद्ध, गन्धर्व तथा अप्सरा आदिके गीत सुनते हुए अपने पुण्योंका उपभोग कर रहे हैं। देवत्व, मनुष्यत्व, अथवा तिर्यक योनिमें भी पुण्य पापसे उत्पन्न सुख दुःखात्मक शुभाशुभ कर्मोंका फल प्राणी भोगते हैं। राजन्! आप जो पूछते हैं कि, पापी लोग किन किन पापोंसे ऐसी यातना भोगते हैं, वही सब अब भली भांति निवेदन करता हूँ। जो नराधम बुरी दृष्टिसे पराई स्त्रीको निहारते अथवा दुष्ट चित्तसे पराया धन पानेकी इच्छा रखते हैं, उन्हींके नेत्र ये वज्रतुण्ड पक्षी निकाल लेते और पुनः वह उत्पन्न हो जाते हैं ॥ ३६—४१ ॥ राजन्! इन्होंने जितने निमेष तक पर-स्त्री और पर-धन पर कुदृष्टि डालनेका पाप किया है, उतने सहस्र वर्षों तक ऐसी ही नेत्र पीड़ाका ये अनुभव करते रहेंगे। जिन्होंने शत्रुको भी उसकी ज्ञान-दृष्टि नष्ट होनेके विचारसे अन्याय रूपसे शास्त्रोपदेश या असत् परामर्श दिया है, जिन्होंने शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या की है, जिन्होंने झूठी कथाएँ कही हैं, और जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनकी निन्दा की है, हे राजन्! उन्हींकी पुनः पुनः उत्पन्न होनेवाली जिह्वाओंको ये भयानक वज्रतुण्ड पक्षी कतर डालते हैं। इन्होंने जितनी वार यह पाप किया होगा, उतने ही वर्षों तक ये वज्रतुण्ड पक्षी इन्हें ऐसी यन्त्रणा देते रहेंगे। जिन नराधमोंने मित्रभेद पिता पुत्र भेद अथवा स्वजन भेद किया है, अर्थात् इनमें परस्पर वैमनस्य उत्पन्न किया है अथवा यजमान और उपाध्याय, माता और पुत्र, पति और पत्नी किंवा सहचरोंका विच्छेद कराया है, हे पृथ्वीनाथ! देखिये; वेही आरोंसे चीरकर उपाड़े जा रहे हैं। जो दूसरोंको सन्तप्त करते हैं, दूसरोंके आनन्दमें विघ्न करते हैं, ताड़का पंखा, चन्दन और उशीर (खस) हरण करते हैं और साधुजनको प्राणान्तिक ताप देते हैं, हे नृपाल! वेही पापभागी अधम इस उत्तप्त वालूके ढेरमें पड़े हुए अपने पापोंका फल भोग रहे हैं ॥ ४२-४८ ॥ हे भूपाल! जो मनुष्य देव अथवा पितृकार्यमें एककी आरसे निमन्त्रित होकर दूसरोंके यहां श्राद्ध भोजन करते हैं वेही इन पक्षियों द्वारा दोनों ओरसे नोचे-खसोटे जाते हैं। जिन्होंने दुर्वचनोंसे सत्पुरुषोंका मर्मभेद किया है, उन्हें ही बेरोक टोक] ये पक्षी व्यथित करते हैं। जो मनमें एक और बचनमें कुछ औरही रखकर बात बनाकर दूसरेकी चुगली करते हैं, उनकी जीभ इस तीक्ष्ण छुरेसे दो टूक करदी जाती है। हे राजन्! जो उन्मत्त होकर माता, पिता अथवा गुरुजनकी अवज्ञा करते हैं, ये इस पीप, विष्ठा और

मूत्रसे भरे हुए गढ़ेमें अधोमुख होकर निमग्न होते हैं ॥ ५०—५३ ॥ जो दुष्टात्मा, देवता, अतिथि, सेवक, अभ्यागत, पितृगण, अग्निगण और पक्षियोंको भूखा रखकर स्वयं भोजन कर लेते हैं, वेही सूचीमुख होकर इनकी तरह पर्वत तुल्य शरीर धारणकर पीप ओर गोंदका भोजन करते हैं ॥ ५४-५५ ॥ जो ब्राह्मणों और दूसरी जातियोंके लोगोंको एक पंक्ति में बैठाकर, विषम भोजन कराते अर्थात एकको एक वस्तु और दूसरे को दूसरी वस्तु परोसते हैं, वे इनकी तरह विष्ठा खाया करते हैं। हे राजन्! जो व्यापारके लिये एक साथ चलकर अपने धनहीन और वित्तेच्छु साथी को विना खिलाये स्वयं अन्न ग्रहण करते हैं, उन्हें कफका भोजन करना पड़ता है। हे नरेश्वर! जूठे हाथों से जो गौ ब्राह्मण और अग्निको स्पर्श करते हैं, उनके हाथ इन आगके घड़ोंमें जला करते हैं। जूठे मुंह जान बूझ कर जो सूर्य, चन्द्र या तारकाओंका अवलोकन करते हैं, यमदूतगण उनके नेत्रोंको आगमें डाल कर पवित्र करते हैं। जो गौ, अग्नि, मा, ब्राह्मण, बड़े भाई, पिता, बहिन, कुल स्त्री, गुरु अथवा वृद्ध विप्रको लात से छूते हैं, यमदूतों द्वारा आगमें तपायी हुई लोहेकी बेड़ियाँ उनके पैरोंमें डाली जाती हैं, वे अंगारोंमें झोंक दिये जाते और जानुपर्यंत आगमें जला करते हैं ॥ ५६-६१ ॥ जो पापी खीर, खिचड़ी, छाग या और कोई देवान्न बिना संस्कार किये खाते हैं, देखिये, उन पापियोंके नेत्र यहां पृथ्वीपर उखाड़ कर छींटे हुए हैं और डसनेवाले यमदूत उन्हें मुखोंसे खींच रहे हैं। जो नराधम गुरु, देवता, द्विज और वेदोंकी निन्दा सुन कर प्रसन्न होते हैं, उन विलाप करनेवाले पापियोंके कानोंमें यमदूत गण आगमें लाल किये हुए लोहेकी कीलें बार बार ठोक देते हैं ॥ ६२–६५ ॥ हे भूपाल! इधर देखिये, जो क्रोध अथवा लोभके वशीभूत होकर सुन्दर प्याऊ (पोसरा), देवमूर्ति, देवमन्दिर, ब्राह्मणके घर अथवा सभा-मण्डपको ढाह दिये हैं, उन पापात्माओंकी खाल दारुण यमदूतगण तीखे छुरोंसे खींच रहे हैं और पापी बिलख रहे हैं। जो गौ, ब्राह्मणोंके मार्गमें और सूर्याभिमुख होकर मलमूत्र त्याग करते हैं, उन पापियोंकी आंतें गुदाके मार्गसे कौवे खींचते हैं। जो व्यक्ति एकको कन्या दान कर फिर किसी दूसरेको उसी कन्याका दान करते हैं, वे टुकड़े टुकड़े करके इस तरह क्षारकी नदीमें बहा दिये जाते हैं। दुर्भिक्ष अथवा अन्य किसी विपत्तिके समयमें जो क्रोध वश होकर अकिञ्चन पुत्र, सेवक, स्त्री और बन्धुवर्गको त्याग देते हैं, यमदूतगण उनका मांस काट काट कर उन्हींको देते और वे भूखसे पीड़ित होकर उसीको खाते हैं ॥ ६६-७१ ॥ जो लोभके वशीभूत होकर वैतनिक सेवकों अथवा शरणागतोंको त्याग देते हैं, उन्हें यमदूत इस तरह यन्त्रमें डाल कर निचोड़ते हैं। जो अपने सम्पूर्ण-जीवनमें किये हुए पुण्यको दूसरेके हाथ बेच डालते हैं, वे पापी सिलपर रखकर इस

प्रकारसे पीसे जाते हैं। जो दूसरोंकी धरोहर हड़प लेते हैं, उनका सब शरीर बन्धनसे बांधा जाकर कृमि, विच्छू, कौवे और उल्लुओं द्वारा अहर्निश भक्षित होते हैं। जो पापी दिनमें स्त्री संभोग या पराई स्त्रीका उपभोग करते हैं, वे क्षुधासे व्याकुल होते हैं और प्याससे जिह्वा सूख कर तालूसे चिपक जानेके कारण बड़े कष्ट पाते हैं। हे पुरुषव्याघ्र! परस्त्रीगामी पापियों.को देखो, बड़े बड़े लोहेके कांटेसे युक्त शाल्मली (सेमर) वृक्षमें लटका कर उनके अंग अंग काटे जा रहे हैं। जिनसे रक्तस्राव होनेसे वे व्याकुल हो रहे हैं। परस्त्रीगमन करनेवालोंकी और भी कैसी दुर्दशा हो रही है, वह देखिये। यमदूत उन्हें मूस (धातुको ढालनेके साँचे) में उतार कर नष्ट कर रहे हैं। जो अध्यापकको नीचे बैठाकर और निरुत्तर करके अध्ययन करते या शिल्प सीखते हैं। उनके सिरपर भारी शिला रखकर उन्हें रास्तेसे घुमाया जाता है। भारी शिलाके भारसे सिर पिराने लगता है। दिनरात बोझा ढोनेसे बड़ा क्लेश होता है। ऐसी अवस्थामें कुछ खानेको भी नहीं मिलता। इससे वह पापी बड़ा दुबला हो जाता है। जिन्होंने जलमें मूत्र, विष्ठा या कफ उत्सर्ग किया हो, वे मूत्र, विष्ठा और कफसे भरे या ऐसे ही दूसरे दुर्गन्धिमय नरकमें जाते हैं। राजन्! देखो, इधर जो पापी क्षुधासे कातर होकर एक दूसरेका मांस नोच खा रहे हैं, उन्होंने परस्परके यहां आतिथ्यकी विधिसे पूर्व जन्ममें भोजन नहीं किया है। जिन अग्निहोत्री पुरुषोंने वेद और अग्निका अनादर किया है, वे पर्वतकी ऊँची ऊँची चोटियोंसे बार बार गिराये जा रहे हैं ॥ ७२-८२ ॥ जो पुनर्विवाहिता (विधवा विवाहिता) स्त्रीके पति होकर सारा जीवन बिताते हैं, वे कृमि होकर चिऊँटियों द्वारा भक्षित होते हैं। जो पतित व्यक्तियोंका दान लेते हैं, उनके कर्मकाण्डोक्त कर्म कराते या उनकी खुशामद करते हैं, वे पत्थरके कीड़ोंके रूपमें परिणत होते हैं। जो अतिथि, सेवक और भाइयोंको देखकर उनकी उपेक्षा करते और स्वयं मिष्टान्न भोजन करते हैं, उन्हें जलते हुए अंगारोंको भक्षण करना पड़ता है। हे नरनाथ! जिन्होंने जीवोंकी पीठका मांस भक्षण किया है, उनकी पीठका मांस भयंकर भेड़िये खा रहे हैं। हे राजन्! इन नराधमोंने उपकारियोंके प्रति कभी कृतज्ञता प्रकट नहीं की, इससे ये अन्धे, बहिरे, गूंगे और क्षुधासे कातर होकर भटक रहे हैं। ये दुष्टात्मा कृतघ्न हैं और बान्धवोंका अपकार किये हुए हैं; इससे तप्त कुम्भमें डाले जा रहे हैं। इसके बाद वे पीसे जाकर तपी हुई बालूमें भूने जायँगे, फिर यन्त्रोंमें डालकर पेरे जायंगे। फिर असिपत्र वनमें तलवारोंसे कटेंगे और आरेसे चीर कर उपाड़े जायंगे। अनन्तर काकसूत्रसे छेदे जायंगे और इस तरहकी अन्य यातनाएँ भोगेंगे। हे राजन्! इन यातनाओंसे इन्हें कब छुट्टी मिलेगी, यह मैं कह नहीं सकता ॥ ८३-९० ॥ इन दुष्ट ब्राह्मणने परस्पर गुट बांधकर श्राद्ध भोजन किया है

अर्थात् इससे इनके सब अंगोंसे फेन निकल रहा है और उसीको ये पी रहे हैं। राजन्! इन्होंने सोना चुराया है, इन्होंने ब्रह्महत्या की है और इन्होंने गुरुपत्नीका अपहरण किया है; इससे ये नीचे, ऊपर और चारों ओर जलती हुई आगमें सहस्र सहस्र वर्षोंसे जल रहे हैं। अब ये कुष्ठ और क्षयादि रोगोंसे युक्त मानवशरीर धारण करेंगे और मरने पर नरकमें डाले जायंगे। इसी तरह ये वार वार जन्म ग्रहण कर कल्पान्त तक नरकभोग और व्याधियोंको भोगते रहेंगे। गो-हत्या अथवा अन्य उपपातक करनेवालोंको तीन जन्मों तक क्रमशः नीचेके नरकोंके दुःखोंको भोगना पड़ता है। हे महाराज! नरकमें पड़े हुए जीव किन किन पापोंसे किस किस योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वह अब मैं निवेदन करता हूं, सुनिये ॥ ९१-९६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता पुत्र संवादात्मक जडोपाख्यान नामक चतुर्दश अध्याय समाप्त हुआ।

पञ्चदश अध्याय ।

यमदूतने कहा,—पतित व्यक्तिका दान लेनेवाला ब्राह्मण गधा होता है। पतितके यहां यज्ञ कराने वाला ब्राह्मण नरकमें जाता है और नरकसे छूटकर कृमिके रूपमें जन्मता है। उपाध्याय (गुरु) से छल करने अथवा उसकी स्त्री किंवा अन्य किसी वस्तुकी मनमें अभिलाषा करनेसे कुत्तेका जन्म मिलता है। माता पिताका अपमान करनेसे गदहा और उन्हें गाली देनेसे मनुष्य मैना होता है। भावजका अपमान करनेवाला कबूतर होता है। भावजको पीड़ा देनेवाला कछुवा होता है। जो स्वामीका अन्न खाकर उसकी भलाई की चेष्टा नहीं करता, वह मोहाच्छन्न होकर मरणके उपरान्त बन्दरका जन्म ग्रहण करता है। जो दूसरोंकी धरोहर डकार जाता है, वह नरक यन्त्रणा भोगनेके पश्चात् कृमि होता है और डाह रखनेवाला मनुष्य नरक भोगनेपर राक्षस योनिमें जन्म पाता है। विश्वासघाती मछली बनता है। जो धान्य अर्थात् यव, तिल, उर्द, कुलथी, सरसों,

---

टीकाः—पूज्यपाद महर्षियोंने शारीरिक, वाचनिक और मानसिक कर्मके अनुसार धर्म और अधर्मका निर्णय किया है। सत्वगुण वर्द्धक कर्मसे धर्म और तमोगुणवर्द्धक कर्मसे अधर्म होता है। ऊपर जो पापसमूहका वर्णन है, वह सब स्मृतिके अनुसार अधर्म है। उन सब पापोंका जो फलरूपी कर्म-विपाक वर्णन किया है, वह सब उक्त पापोंका पूर्ण मात्राका दण्ड है। भावके तारतम्यसे दण्डमें न्यूना-धिकता भी हुआ करती है ॥ ९१–९६ ॥

चना, कैता, मूंजी, मूंग, गेहूं, अलसी अथवा अन्य कोई धान्य चुराता है, वह मोहके कारण अचेतन होकर नेवलेके समान लम्बे मुंहवाला चूहा होता है। परदारासे सम्भोग करनेवाला भयङ्कर भेडिया होता है और फिर क्रमशः कुत्ता, सियार, बगुला, गीध, सांप और कंक पक्षीकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है। जो पापी दुष्टबुद्धिके कारण भौजाईसे भोग करता है, वह कोयल होता है ॥ १—१० ॥ जो पापी मित्रकी पत्नी, गुरुपत्नी अथवा राजपत्नीसे संभोग करता है, वह पुरुष सुअर होता है। यज्ञ, दान अथवा विवाहमें विघ्न करने वालेको कृमि होना पड़ता है और एकबार दानकी हुई कन्याका जो फिर दूसरेको दान करता है, वह भी कृमि होता है (जो मनुष्य देवता, पितृगण और ब्राह्मणको खिलाये विना अन्न ग्रहण करता है, वह नरक यन्त्रणाओं को भोगने पर कौवा होता है। जो पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है वह नरकान्तमें क्रौञ्चपक्षी होता है। शूद्र यदि ब्राह्मणीगमन करे, तो कृमि होता है) और यदि उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करे, तो काठका कीड़ा, सूअर, कृमि, मद्गु (मलका कीड़ा) होता है अथवा चाण्डाल योनिमें जन्म पाता है। जो पुरुष अकृतज्ञ और कृतघ्न है वह नरकसे छुटकारा पानेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, बिच्छू, मछली, कौवा, कछुआ अथवा डोम होता है ॥ ११—१७ ॥ निहत्थेका वध करनेवाला गदहा, स्त्री अथवा बालककी हत्या करने वाला कृमि और भोजन चुराने-वाला मक्खी होता है। भोजनके सम्बन्धमें जो विशेष बातें हैं, वे मैं कहता हूं, आप सुनिये। अन्न चुरानेसे नरक भोगनेके पश्चात् बिल्ली होना पड़ता है। तिल अथवा दाना मिला हुआ अन्न (चबेना) चुरानेसे चूहा होता है। घी चुरानेवाला नेवला और बकरेका मांस चुरानेवाला कौवा अथवा मलका कीड़ा होता है। मछलीका मांस चुरानेवाला कौवा और हरिणका मांस चुरानेवाला बाज होता है। नमक चुरानेवाला पनडुब्बी, दही चुरानेवाला कृमि, दूध चुरानेवाला बगुला, तैल चुरानेवाला नकतोड़ा, शहद चुरानेवाला बनमक्खी और आटा चुरानेवाला चिउंटी होता है ॥ १८-२३ ॥ हविष्यान्नको चुरानेवाला गोह, आसव (मद्य) चुरानेवाला तीतर, लोहा चुरानेवाला पापी कौवा, कांसा चुरानेवाला हरेवा, चांदी चुरानेवाला कबूतर, सोनेकी वस्तु चुरानेवाला कृमि, रेशमी वस्त्र चुरानेवाला चकवा, कोसा चुरानेवाला रेशमका कीड़ा, ऊनी अथवा बकरेके रोमसे बने हुए दुशाले या डुपट्टे को चुरानेवाला तोता, कपासका वस्त्र चुराने वाला क्रौञ्च पक्षी और बल्कल चुरानेवाला पापी बगुला होता है। जो उबटन (चंदन, चोवा आदि सुगन्धित द्रव्य) अथवा काजल आलता आदि चुराता है, वह मोर और लालवस्त्र चुराने वाला चकवा चकई होता है। सुन्दर गन्ध द्रव्य (इत्र आदि) चुरानेवाला छछून्दर, साधारण वस्त्र चुराने-वाला खरहा (खरगोश), फल चुरानेवाला घण्टपक्षी और लकड़ी चुरानेवाला घुणकीट

(कठफोड़ा) होता है। फूल चुरानेवाला दरिद्री और वाहन चुरानेवाला मनुष्य पँगु होता है। साग चुरानेवाला हारीत पक्षी, पानी चुरानेवाला चातक और भूमिहरण करनेवाला घोर रौरवादि नरकोंमें जाकर तत्पश्चात् क्रमशः तृण, गुल्म, लता, वल्ली, छाल, वृक्ष आदि रूपोंमें जन्म ग्रहण करता है। इस प्रकार यथा क्रम थोड़ा पापक्षय होनेपर कृमि, कीट, पतङ्ग, जलचर, पक्षी, पशु आदि योनियोंसे होता हुआ वह मनुष्य योनिमें प्राप्त होकर भी पंगु, अन्धा, बहिरा, कोढ़ी, क्षयरोगी, मुखरोगी, नेत्ररोगी और गुह्यरोगी होकर दुःख पाता है और फिर डोम आदिकी निन्दनीय जातियोंमें जन्म ग्रहण करता है। तत्पश्चात् अपस्मार रोगसे व्याप्त होकर शूद्र होता है ॥ २४-३५ ॥ बैलको अथवा अन्य पशुओंको जो बधिया करता है, वह नपुंसक होता है। महाराज! जो सोना अथवा गोरू चुराता है, (छलसे) विद्यापहरण करता है अथवा गुरुका धन मारता है, वह भी इसी प्रकारकी उग्र यन्त्रणाओंका भोग करता। जो मनुष्य एककी स्त्रीको लाकर दूसरेको देता है, वह नाना यन्त्रणाओंको पाकर अन्तमें नपुंसक होता है। जो अप्रज्वलित अग्निमें होम करता है, वह अजीर्ण रोग पीड़ित होकर मन्दाग्नि रोगग्रस्त हो जाता है। परनिन्दा, कृतघ्नता, परमर्मच्छेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, परदारसेवन, परधनापहरण, अपवित्रता, देवनिन्दा, ठगी, कृपणता, प्राणहिंसा और ऐसे ही अन्यान्य पाप जो करते हैं और उन्हीं पापोंमें निरन्तर संलग्न रहते हैं, जानना चाहिए कि, वे नरककी यन्त्रणाएँ भोग करके ही जन्मते हैं। सर्वभूतोंमें दया, मङ्गल सम्वादकथन, परलोक विश्वास, सत्यता, प्राणियोंके हितके लिये वाणीका उपयोग, वेद प्रामाण्य मानना, गुरु-देवता-ऋषि-सिद्धर्षि पूजा, साधु समागम, सत्कर्माभ्यास, मित्रता और अन्यान्य सत्कार्य, जो उत्तम धर्मके सम्बन्धमें कहे गये हैं, उनको सम्पादन करनेवाले जो मनुष्य देख पड़े, पण्डितोंको जानना चाहिये कि, वे निष्पाप पुरुष स्वर्गसे भ्रष्ट होकर जन्मे हैं ॥ ३६—४४ ॥ हे राजन्! अपने अपने कर्मोंका फल भोगनेवाले पुण्यात्माओं और पापियोंका सब विषय मैंने इसी उद्देश्यसे कहा है। आपने वह सब अभी देख लिया है और आपको नरकका दर्शन भी हो गया है। अतः आइये चलिये अब अन्यत्र चलें ॥ ४५—४६ ॥ पुत्रने कहा,—तदनन्तर वह राजा यमदूतको आगे करके ज्योंहीं चला, त्योंही सभी नरक यन्त्रणाओंको भोगनेवाले मनुष्य पुक्का फाड़कर रो उठे और कहने लगे,—हे पृथ्वीनाथ! आप हमपर प्रसन्न होइये और क्षणमात्र ठहर जाइये। आपके अङ्गसे स्पर्श करके आयी हुई पवन हमारे मनको अत्यन्त आह्लादित कर दे रही है। हे नरशार्दूल! यह वायु हमारे अब अङ्गोंकी दाह और सब प्रकारकी पीड़ाओंको दूर कर रही है। इस कारण हे महीपते! हमपर दया कीजिये। उन नारकियोंका यह आक्रोश सुनकर राजाने यमदूतसे पूछा,—यमदूत! मेरे यहां ठहरनेसे इतना आह्लाद

क्यों हुआ ? मृत्युलोकमें ऐसा कौनसा बड़ा पुण्यकार्य मैंने किया था, जिससे इनपर ऐसी आह्लाददायिनी वर्षा हो रही है ? ॥ ४७—५१ ॥ यमदूत बोला, महाराज ! पितृगण, देवता, अतिथि और सेवकोंको तृप्तकर जो अन्न बच गया, उससे आपका यह शरीर पोसा गया है और आपका चित्त सदा परमात्मामें रममाण था। इसीसे आपके शरीरकी आह्लाद-दायिनी वायुसे इन सब पापात्माओंकी यातनाएं मिट रही हैं। आपने अश्वमेध आदि यज्ञोंका यथाविधि अनुष्ठान किया हुआ होनेसे पीड़न, छेदन, दाह आदि सब महादुःखोंके हेतुभूत यमराजके यन्त्र, शस्त्र, अग्नि, कौवे आदि आपके दर्शन और तेजसे अभिभूत होनेके कारण ऐसी मृदुताको अवलम्बन कर रहे हैं। राजाने कहा,—मैं तो समझता हूं कि, मनुष्यको आर्त प्राणियोंकी रक्षा करनेसे जैसा सुख होता है, वैसा स्वर्ग या ब्रह्मलोकमें भी नहीं है। यदि मेरे ठहरनेसे इनकी सब यन्त्रणाएं मिटती हैं, तो हे भद्रमुख ! खम्भेकी तरह अचल होकर मैं यहीं खड़ा रहूँगा ॥ ५२—५७ ॥ यमदूत बोला,—राजन् ! आइये, चलें। अपने पुण्यपुञ्जसे प्राप्त उत्तम भोगोंको भोगिये। यह पापियोंके यन्त्रणाभोगका स्थान है। राजा बोला,--जब तक ये सब प्राणी दुःखी रहेंगे, तब तक मैं यहांसे नहीं डिगूंगा। क्योंकि ये सभी नरक निवासी मेरे यहां ठहरनेसे सुखी हो रहे हैं। शत्रु भी यदि आर्त और आतुर होकर शरणापन्न हो और उसपर यदि कोई व्यक्ति अनुग्रह न करे, तो उसे धिक्कार है। पीड़ित जीवोंकी रक्षा करनेमें जिसकी प्रवृत्ति न हो, उसका किया हुआ यज्ञ, दान, अथवा तप क्या इस लोक और क्या परलोकके सुखका कारण हो नहीं सकता। बालक, आतुर और वृद्ध आदिके प्रति जिसका हृदय कठोर है, मेरी समझमें वह मनुष्य नहीं, राक्षस है। इनके पास खड़े रहनेसे चाहे मुझे नारकीय अग्नितापजनित तीव्रदुर्गन्धिजनित अथवा क्षुत्पिपासाजनित चेतनाको हरण करनेवाला महादुःख ही क्यों न भोगना पड़े, किन्तु यह जानकर कि, इनकी मैंने रक्षा की है, उस महादुःखको मैं स्वर्ग-सुखसे भी बढ़कर समझूंगा। केवल मेरे दुःख पानेसे यदि बहुतसे दुःखी सुखी होते हैं, तो मैंने क्या नहीं लाभ किया ? अर्थात् सब सुख मैंने पा लिये, ऐसा ही मैं समझूंगा। अतः हे यमसहचर ! अब तुम विलम्ब न करो और चले जाओ ॥ ५८—६५ ॥ यमदूत बोला,—हे राजन् ! ये धर्म और इन्द्र हैं। आपको साथ ले जानेके लिये उपस्थित हुए हैं। आपको उनके साथ अवश्य जाना होगा। अतः आइये। धर्मने कहा,—राजन् ! आपने भली भांति मेरी उपासना की है। इस कारण आपको मैं स्वर्ग ले जाऊंगा। अब विलम्ब न करो और इस विमानमें चढ़कर स्वर्ग चलो। राजाने कहा,—हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरकमें पीड़ित हो रहे हैं, और हमारी रक्षा करो, ऐसा कहकर चिल्ला रहे हैं, अतः मैं इस स्थानसे हटकर स्वर्ग नहीं जाऊंगा ॥ ६६—६८ ॥ इन्द्र बोले,—अपने अपने कर्म-

फलोंके अनुसार ये सब पापी नरक यन्त्रणा भोग रहे हैं, अपने कर्मफलके अनुसार आपको स्वर्गमें गमन करना चाहिये। राजाने कहा,—हे धर्म, हे शचीपते इन्द्र! मैंने कितना पुण्य सञ्चय किया है, वह मैं जानना चाहता हूँ, यदि आप दोनों जानते हों, तो बता दीजिये। धर्मने कहा,—राजन्! समुद्रमें जितने जलविन्दु हैं, आकाशमें जितने तारे हैं, वृष्टिमें जितनी जलधाराएं हैं और गंगाजीके जितने वालुकण हैं, आपका उतना ही पुण्य है। महाराज! जिस प्रकार जलबिन्दु आदिकी संख्या गिनी नहीं जा सकती, उसी प्रकार आपका पुण्य भी संख्यासे परे है। आज तो इन नारकीयोंके प्रति दया दिखानेसे आपका पुण्य लाख गुना बढ़ गया है। अतः हे नृपश्रेष्ठ! उस पुण्य फलका भोग करनेके लिये अमरावतीमें चलिये और इन पापात्माओंको नरकमें रहकर अपने कर्मजनित पाप फलोंको भोगने दीजिये ॥ ६९—७४ ॥ राजाने कहा,—मेरे निकट रहते हुए यदि इन पापियोंका उद्धार न हुआ; तो मनुष्य मेरे सहवासकी इच्छा क्योंकर करने लगे? अतः सुरेश्वर! मेरा जो कुछ थोड़ा बहुत पुण्य हो, उसके बलसे ये पीडित पापात्मा नरकसे मुक्त हों। इन्द्र बोले,—हे महीपते! आपकी इस (सदिच्छा) से इस (स्वर्ग) से भी उन्नत (लोकोंमें) गति हुई है। देखिये, ये पापी नरकसे छूट गये हैं। पुत्रने कहा,—फिर उस राजा पर पुष्पवृष्टि होने लगी और इन्द्र उसे विमानमें चढ़ाकर स्वर्ग ले गये। इधर मैंने और अन्यान्य नरकनिवासियोंने यातनाओंसे मुक्त होकर अपने अपने कर्म फलानुसार

टीका:—नरक लोक भूलोकका एक चतुर्थांश है। वहाँकी श्रृङ्खला और वहांका अनुशासन भगवान् धर्मराजके हाथमें है। उनकी राजधानी पितृलोकमें है। वही भूलोकका एक उत्तमाङ्ग है। भगवान् इन्द्रकी राजधानी अमरावती तृतीय ऊर्द्ध्वलोक अर्थात् स्वर्गलोकमें है। उन्नत स्वर्गसुख भोगनेवाले जीव अमरावतीमें जाते हैं। यह पुण्यवान् राजा अतिपुण्यशाली होनेके कारण और इस पुण्यशाली पुरुष द्वारा असाधारण घटना होनेके कारण इन दोनों पदधारियोंका वहां उपस्थित रहना आवश्यक था। पूर्व-कथित सब अध्यायोंमें, जितने परलोक और नरकका वर्णन है, स्थान स्थान पर परकीय भाषा होनेपर भी तत्वतः अधिकांश समाधि भाषा है। जितने पाप कर्मोंका उल्लेख है, वे सब धर्माधर्म निर्णयकारी समाधिबुद्धिप्रसूत स्मृति शास्त्र ही है। उन सब कर्मोंका फल अवश्य ही पाप होगा। अब देशकाल पात्रानुसार उन सब पापोंकी शक्तिमें अवश्य तारतम्य हो सकता है। संसारमें भी ऐसा देखा जाता है कि, एक ही पापका देशकाल और पात्र भेदसे और भाव भेदसे राजदण्ड और सामाजिक दण्डमें न्यूनाधिकता की जाती है। इस कारण जिज्ञासुओंको शंका करनेका अवसर नहीं है। नरक लोककी विचित्रताके विषयमें साधारण जिज्ञासुओंकी शंकाका और भी समाधान किया जाता है। आजकालके भूत (प्रेत) तत्त्ववेत्ताओंने यह प्रत्यक्ष कर दिखाया है कि, बेतालगण जब दण्डों या शस्त्रोंसे दुष्ट प्रेतोंको मारते हैं, तो उनके शरीरोंके अंग फट या कट जाते हैं, किन्तु दूसरे ही क्षण वे जुट जाते हैं। इसका कारण यह है कि, हमारा शरीर पार्थिव होनेसे घावके आराम होनेमें विलंब लगता है, उनकेमें नहीं लगता। इसी कारण नरकके वर्णनमें है कि, कौए पापियोंकी आंखें निकाल निकाल कर खाते हैं और वे पुनः

भिन्न भिन्न योनियोंमें जन्म ग्रहण किया। हे द्विजश्रेष्ठ! यह सब नरक वृत्तान्त यथार्थ रूपसे मैंने कथन किया है। जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म लेना पड़ता है, वह सब मैंने पहिले देखा है और वही सब आपसे कहा है। जो जो मैंने आपसे कहा,

---

उत्पन्न हो जाती हैं, इत्यादि। आजकलकी प्रेत बुलानेकी नवीन विद्याके द्वारा पीठ स्थापन करके जो प्रेतोंका आवाहन किया जाता है, उसमें पीठको यदि पुण्यात्मा मनुष्य छुए, तो प्रेतगण आनन्द और शान्ति अनुभव करते हैं। उसी नियमके अनुसार यदि पुण्यात्मा पुरुष नरकमें पहुंचे तो नरकवासी जीवोंकी यन्त्रणाएं कम हो जाती हैं और उनको सुख और शान्ति मिलने लगती है, इसमें संदेह नहीं। पुराण शास्त्रोंमें जो प्रेतलोक, स्वर्गलोक और नरकलोकका वर्णन आया है, वह सब समाधि भाषा है और कर्म-विपाकका जो वर्णन है, वह भी समाधि भाषा है। इस कारण उन वर्णनोंमें कुछ सन्देहका अवसर नहीं है ॥ ७५–८१ ॥

टीकाः—भयदायक नरकका वर्णन सुनकर जिज्ञासुओंको अनेक प्रकारकी शंकाएं हो सकती हैं। यथा—प्रेत लोक और नरक लोकका सम्बन्ध क्या है। नरकमें कौए, सिंह, व्याघ्र आदि जो पशु-पक्षियोंका वर्णन है, वे नरकमें कहांसे आ जाते हैं? नरकके रक्षक देवताओंका नरकसे कैसा सम्बन्ध है? दैवीजगत्‌का अस्तित्व वस्तुतः है या नहीं? इनका अनुमान अथवा अनुभव कैसे सम्भव है? ये लोक कहां है? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान अवश्य होना उचित है। कर्म विपाकके पूर्वकथित वर्णन में यह सिद्ध हुआ है कि, विशेष विशेष पापसे नरक होता है, विशेष विशेष पापसे मनुष्य विकलाङ्ग होता है और विशेष विशेष पापसे पशुपक्षी आदि योनियोंको दण्ड स्वरूप प्राप्त करता है। अतः विशेष विशेष पापसे जब मनुष्य उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज योनियोंमें गिराया जा सकता है, तो यह भी सम्भव है कि, वे योनियाँ मृत्युलोककी, नरकलोककी और स्वर्गलोककी भी हो सकती है। पाप वैचित्र्यसे यह तीन प्रकारका भोग वैचित्र्य उनमें भी होता है। इसी तरह पापके भोग वैचित्र्यके अनुसार जीव प्रेत लोकमें पहुंच सकता है और नाना प्रकारके नरक लोकमें भी पहुंच सकता है। प्रेत लोकका भोग उतना तीव्र नहीं है, जितना नरक लोकका है। प्रेत लोकमें जो मनुष्य जाता है, उसका स्वरूप पूर्व जैसा ही होता है और वह पहिचानमें भी आता है। क्योंकि इस मृत्युलोकके गुरुतर आकर्षणसे ही प्रेतत्वकी प्राप्ति होती है और यहांके संस्कारके अनुसार ही उसका दुःख भोग वहां बना रहता है। इस कारण उसका दुःख अधिक वैचित्र्य पूर्ण नहीं होता और परिमित होता है। परन्तु नाना प्रकारके नरकोंका दुःख अति भयप्रद, अति वैचित्र्यपूर्ण और अति कठोर होता है; जिसका आभास ऊपर आया है। नरककी रक्षक जो देव योनियां होती हैं, वे नाना प्रकारके यमदूत होते हैं। जैसे मनुष्य लोकमें कारागारके रक्षक सिपाही बाहरसे लाये जाते हैं और कुछ रक्षक कारागार वासियोंसे बनाये जाते हैं, वैसे ही नरकके रक्षक देवता उसी श्रेणीके होते हैं कि, जिनका प्रारब्ध नरकके दर्शनके अनुकूल रहता हो। दैवी जगत्‌के अस्तित्वका विचार करना कुछ गुरुतर विषय है इसमें सन्देह नहीं और दैवी जगत् अवश्य है इसमें भी सन्देह नहीं किया जा सकता। ऐसे गुरुतर विषयोंका विचार करनेसे पहिले प्रमाण और अनुभव दोनोंका स्वरूप समझने योग्य है। आप्त प्रमाणसे प्रत्यक्ष प्रमाणकी योग्यता अधिक है और प्रत्यक्ष प्रमाणसे अनुमान प्रमाणकी उपयोगिता अधिक है। ये तीनों बुद्धितत्त्वके विषय हैं। इससे ऊपर अनुभव है। जो अनुभव भावतत्वका विषय है। प्रमाणके मूलभूतबुद्धितत्वसे भावतत्त्व सूक्ष्म है, यह मानना ही पड़ेगा। क्योंकि अन्तःकरणका बुद्धितत्त्व क्रियाविशेषसे सम्बन्ध रखता है और भाव अन्तःकरणके अवस्था विशेषसे

वह मैंने पहिले अनुभव किया है और वह सत्य है। हे महाभाग ! और मैं आपको क्या सुनाऊँ ॥ ७५--८१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्र संवादात्मक पञ्चदश अध्याय समाप्त हुआ ।

सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि, मनुष्य बुद्धि द्वारा नाना प्रकारके कार्य कर सकता है, परन्तु भावके अनुसार ही उसका भोग वैचित्र्य होता है। आप्त प्रमाणके द्वारा दैवी जगत् सिद्ध ही है। क्योंकि सनातनधर्मके वेदसे लेकर सभी शास्त्र उसका प्रमाण देते हैं। यहां तक कि, पृथ्वीके सब अवैदिक धर्म-मार्ग भी अपने अपने शास्त्रोंसे प्रमाण देते हैं। वर्तमान समयमें सभ्य जगत्की पदार्थ विद्या जब प्रेत-लोककी सिद्धि प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा बता रही है, तो यह मानता ही पड़ेगा कि, दैवी जगत् प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा भी सिद्ध होता है। अनुमानसे सिद्ध करनेके लिये जन्मान्तरवाद, संस्कारवाद और कर्मवाद इन तीनोंके परिशीलन द्वारा और कर्ममीमांसा और दैवीमीमांसा आदि शास्त्रोंके परिशीलन द्वारा अवश्य ही दैवी जगत्का अस्तित्व अनुमान सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं। दूसरी ओर दैवीजगत्का अनुभव यथा-सम्भव करनेके लिये इस समयमें उपलब्ध तडिद्विज्ञानके कुछ उदाहरण सम्मुख रखने योग्य हैं। एक तारकी सहायतासे अलक्षित तडिद्रुति एक स्थानसे कोसों तक जाकर ज्योति, नाना शब्द, नाना क्रियाएं और एक स्थानका रूप दूसरे स्थानमें प्रकट कर देती है। बिना तार आदिके अवलम्बनसे भी केवल एक दूर देशके प्रेरकयन्त्र और दूसरे दूर देशके ग्राहकयन्त्रकी केवल सहायतासे और केवल सर्वव्यापक आकाशके अवलम्बनसे एक स्थानका शब्द दूसरे स्थानमें और एक स्थानका रूप बहुदूरके दूसरे स्थानमें प्रकट हो जाता है, ऐसा पदार्थविद्याकी सहायतासे प्रतिदिन देखनेमें आता है। ऐसी दशामें मानना ही पड़ेगा कि जिस आकाशको हम शून्य समझते हैं, वह शून्य नहीं है, नाना प्रकारकी इन्द्रियातीत सूक्ष्मातिसूक्ष्म शक्तियों, पदार्थों और अवस्थाओंसे पूर्ण है। जैसे ये सब पदार्थ आकाशमें हमारे चारों ओर रहने पर भी हम उनका अनुभव नहीं करते, वैसा दैवी लोकोंका सम्बन्ध साधारणतः हम अनुभव नहीं कर सकते। इस विषयको और दार्शनिक युक्तिसे भी समझाया जा सकता है। हमारा शरीर और हमारी बहिरिन्द्रियां पृथ्वीतत्त्व प्रधान हैं, जो पृथ्वीतत्त्व—शरीर—मृत्युके अनन्तर यहीं पड़ा रहता है। और स्वर्गलोक, देव-लोक, प्रेतलोक या नरकलोक अन्य तत्त्व प्रधान हैं। इस कारण हम पार्थिव इन्द्रियों द्वारा उन लोकों या उन लोकोंके निवासी जीवोंको प्रत्यक्ष नहीं कर सकते। दैवी लोकोंका स्थान निर्णय करनेके विषयमें योग-युक्त अन्तःकरणके महापुरुषोंका अनुभव यह है कि, अनन्तकोटि ब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामायाकी लीला मन, वाणी और बुद्धिसे अगोचर होनेपर भी उसके सृष्टिक्रमका अनुमान किया जा सकता है। प्रत्येक ब्रह्माण्डका अनुमान प्रत्येक सूर्यलोकके द्वारा हो सकता है। जितने सूर्य हैं उन अलग अलग सूर्यगोलकोंकी आकर्षण विकर्षण शक्तिका जो आवर्त है, वही ब्रह्माण्ड शब्दवाच्य है। जैसे एक पिण्डकी धारक नाना अस्थियां होती हैं उसी प्रकार एक ब्रह्माण्ड का धारक नाना जीववासोपयोगी पृथ्वी आदि गोलक समझा जाता है। स्थूल मृत्युलोकके साथ ही ओत-प्रोत रूपसे प्रेतलोक अवस्थित है। क्योंकि उसका मृत्युलोकसे साक्षात् सम्बन्ध है। भूः भुवः स्वः अर्थात् नरक और पितृलोक, भुवर्लोक और इन्द्रपुरी युक्त स्वर्लोक यथाक्रम मृत्युलोककी एक ओर और सप्तपातालरूपी असुरलोक यथाक्रम दूसरी ओर अवस्थित हैं। शेष चारों ऊर्ध्वलोक उत्तरोत्तर उन्नत होते हुए सूर्यलोकके निकटव्यापी हैं। उनमेंसे अन्तिम दोनों ऊर्ध्वलोक उपा-सनाके और ज्ञानके अति उत्तम दिव्यलोक माने गये हैं। सूर्यलोक इनकी अन्तिम सीमा है। सविकल्प समाधिके अन्तर्गत जो विचार समाधि है, उसीके द्वारा ये सब दैवी विषय अनुभवगम्य हैं।

षोडश अध्याय।

पिताने कहा,—वत्स! घटीयन्त्रके समान व्यवस्थित अत्यन्त हेय इस संसारका अव्यय स्वरूप तुमने मुझसे कहा है। मुझे भी ज्ञान हो गया है कि, यह ऐसा ही है। जब संसारकी यह अवस्था है, तब तुम ही बताओ कि, मेरा क्या कर्तव्य है? पुत्र बोला,—हे तात! यदि निःशङ्क चित्तसे मेरी बातपर विश्वास करें, तो मैं यही कहूंगा कि, अब आप गृहस्थाश्रमका त्यागकर वानप्रस्थाश्रमको ग्रहण करें। यथाविधि वानप्रस्थाश्रमका अनुष्ठान करते हुए अग्निहोत्रादि त्यागकर, आत्माको आत्मामें रखकर, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होकर, अँतरे दिन भोजनके द्वारा आत्माको वशीभूत कर और आलस्यको छोड़कर आप संन्यासी हो जाइये। उस (चतुर्थ) आश्रममें जब योगपरायण और बाहिरी संसर्गसे रहित होंगे, तब आप मुक्तिके कारण स्वरूप, उपमाविहीन, वचनातीत, निःसङ्ग और दुःखसंयोगोंके औषधितुल्य उस योगको प्राप्त करेंगे, जिस योगके संयोगसे फिर आपका पञ्चमहाभूतोंसे संयोग नहीं होगा॥ १—६॥ पिताने कहा,—वत्स! अब मुक्तिके कारण स्वरूप उस योगका विषय वर्णन करो, जिसका अवलम्बन करनेसे भौतिक पदार्थोंसे मिलकर और पुनः जन्म ग्रहण कर मुझे इस प्रकारका दुःख प्राप्त न हो। आत्मा यद्यपि निर्लिप्त है, परन्तु मेरा आत्मा संसार बन्धनोंमें अत्यन्त आसक्त है। उस योगको जान लेनेपर आत्मा इन बन्धनोंमें लिप्त न होगा। अतः उस योगको कहो। वत्स! मेरा देह और मन संसाररूपी आदित्यके प्रखर तापकी पीड़ासे तप रहा है। तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतल जल मिश्रित वचनोंसे उसे सींचो। अविद्यारूपी काला सांप मुझे डस गया है। मैं उसके विषकी पीड़ासे अत्यन्त पीड़ित होकर मृतप्राय हो गया हूं। तुम अपने वचनामृतका पान कराकर मुझे जिला लो। मैं पुत्र, पत्नी, गृह, वित्त और ममतारूपी बेड़ियोंसे अत्यन्त आबद्ध हो रहा हूं, तुम अभिलषित सद्भाव और विज्ञानके रहस्यको कहकर मुझे मुक्त करो॥ ७—११॥ पुत्रने कहा,—हे तात! पूर्वकालमें अलर्कके अच्छी तरहसे पूछने पर परम बुद्धिमान् दत्तात्रेयने उससे विस्तारपूर्वक जो योग कहा था, वही मैं कहता हूं, सुनिये। पिता बोले,—वत्स! दत्तात्रेय किसके पुत्र थे? उन्होंने किस प्रकारका योग कहा था और जिसे योग कहा, वह अलर्क कौन था? पुत्रने कहा,—प्रतिष्ठान नगरमें कुशिक वंशमें उत्पन्न एक ब्राह्मण रहता था। वह पूर्वजन्मकृत पापोंके कारण कोढ़ी हो गया था। पतिके कोढ़ी होने पर भी उसकी स्त्री उसके पैरोंमें तेल मलती, शरीर दबाती, स्नान-भोजन थूक मूत्र विष्ठा, रक्त आदि धोती, ऐकान्तिक उपचार और मिष्ट सम्भाषण करती हुई उसे

देवताकी तरह पूजती थीं ॥ १२—१६ ॥ यद्यपि वह साध्वी अत्यन्त विनीत भावसे उसकी आराधनामें लगी रहती थी, तथापि वह निष्ठुर अत्यन्त कोपी होनेके कारण सदा ही उसे झिड़की सुनाया करता था। फिर भी वह नम्र पत्नी उस बीभत्स ब्राह्मणको आराध्य-देवकी तरह सर्वश्रेष्ठ समझती थी। ब्राह्मणको चलने-फिरनेकी शक्ति नहीं थी। एक दिन पतिने उसे आज्ञा दी कि, मैंने जिस वेश्याको देखा है, वह राजपथके बगलके घरमें रहती है। उसी वेश्याके घर मुझे ले चल। हे धर्मज्ञे! वह मेरे हृदयमें बस गयी है। अतः मैं उसके पास जाना चाहता हूं। मैंने उस सुन्दरीको प्रातःकाल देखा था, इस समय रात हो गयी है, परन्तु जबसे उसे देखा, तबसे उसकी मूर्ति हृदयसे नहीं हटती। यदि वह पीन-श्रोणि-पयोधरा, तन्वङ्गी, सर्वाङ्गसुन्दरी बाला मुझे आलिङ्गन नहीं देगी, तो देखना मेरे प्राण पखेरू उड़ जायंगे। प्रथम तो कामदेव मनुष्यके प्रतिकूल है (अर्थात् मनुष्यको सताया करता है), दूसरे उसे अनेक लोग रिझाया करते हैं और मुझमें हिलने-डोलनेकी शक्ति नहीं है, इससे मैं बड़े संकटमें पड़ा हूं ॥ १७—२३ ॥ कामातुर पतिका यह वचन श्रवण कर सत्कुलमें उत्पन्न हुई महाभागा वह पतिव्रता पत्नी कमर कसकर और बहुत-सा धन साथमें लेकर पतिको कन्धेपर उठाकर धीरे-धीरे चलने लगी। रातका समय था। आकाश मेघाच्छन्न था। ऐसे समयमें स्वामीका प्रिय करनेवाली वह द्विजांगना विजलीकी चमकसे सूझनेवाले राजमार्गसे चली। वहां चोर न होनेपर भी चोरके सन्देहसे माण्डव्य मुनि सूलीपर चढ़े हुए बड़ी यन्त्रणाएं भोग रहे थे। अंधियारेमें पत्नीके कन्धेपर चढ़े हुए कौशिकने पैर हिलाया, वह कहीं माण्डव्यके शरीरसे छू गया। इससे मुनि बड़े क्रुद्ध होकर बोले,—जिसने पैरसे हिलाकर मुझे अधिक पीड़ा दी है; वह पापी नराधम सूर्योदय होते ही असह्य यन्त्रणाओंको बेबस होकर सहन करता हुआ प्राणत्याग करेगा। सूर्य-दर्शन होते ही वह अवश्य मर जायगा। तब वह पतिव्रता मुनिवरका भयानक शाप सुनकर अत्यन्त व्यथित चित्तसे बोली,—यदि यही है, तो अब सूर्योदय ही नहीं होगा ॥ २४—३१ ॥ अनन्तर उस पतिपरायणा ब्राह्मणपत्नीके वचनानुसार सूर्योदय न होनेसे निरन्तर रात ही बनी रही। बहुत दिनों तक रात बनी रहनेसे देवता बड़े भयभीत हुए। वे सोचने लगे कि, जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहाकार लुप्त हो जायगा, तब इस समस्त जगत्की रक्षा कैसे हो सकेगी? दिन रातकी व्यवस्था हुए बिना मास और ऋतुका विभाग हो नहीं सकता। मास और ऋतुका विभाग न होनेसे उत्तरायण और दक्षिणायनका बोध नहीं होगा। अयनज्ञान न होनेसे संवत्सर कैसे निश्चित किया जायगा? और संवत्सर ज्ञान न होनेसे अन्यान्यकालका ज्ञान किस प्रकार होगा? ॥ ३२—३५ ॥ पतिव्रताके वचनानुसार अब सूर्योदय ही नहीं हो रहा है। सूर्योदय न होनेसे स्नान

दानादि सब काम रुक गये हैं। अग्निचयन अर्थात् होम बन्द हैं और सब यज्ञोंका भी अभाव देख पड़ता है। होमके बिना हमारी तृप्ति नहीं होती। मृत्युलोकके मनुष्य यथोचित होम भाग देकर हमें तृप्त करते हैं। हम भी शस्य (धान्य) आदिकी सिद्धिके लिये वर्षाके द्वारा उनपर अनुग्रह करते हैं। ओषधियोंके उत्पन्न होनेपर मर्त्यगण उनके द्वारा हमारे उद्देश्यसे यज्ञ करते हैं। हम भी यज्ञादि द्वारा पूजित होकर उनके सब अभिलषित पदार्थोंको जुटा देते हैं। हम अधोदिशामें वृष्टिके द्वारा पानी बरसाते हैं और मर्त्यगण ऊर्ध्वदिशामें घृतधारा बरसाते हैं। जो दुरात्मा हमारे उद्देश्यसे नित्य नैमित्तिक क्रियाओं द्वारा कुछ भी अर्पण नहीं करते और लोलुप होकर सब यज्ञ भाग स्वयं खा जाते हैं, हम उन अपकारी पापात्माओंके विनाशके निमित्त जल, अग्नि, सूर्य, वायु और पृथ्वीको दूषित कर देते हैं ॥ ३६-४२ ॥ जब वे हमारे दूषित किये हुए जल आदिका उपभोग करते हैं, तो उन दुष्कर्मियोंके विनाश सूचक अनेक उपसर्ग (महामारी आदि रोग) फैल जाते हैं। जो मनुष्य हमें तृप्त कर शेष भागका स्वयं उपभोग करते हैं, उन महात्माओंको हम समस्त पुण्यमय स्थान प्रदान करते हैं। परन्तु इस समय उनका कुछ भी उपाय नहीं रहा है। अब ध्वंसको प्राप्त होनेवाली सृष्टिकी रक्षा कैसे हो और फिर कैसे दिवसका उदय हो? इस प्रकार देवता आपसमें परामर्श करने लगे। यज्ञ विनाशकी आशंका करनेवाले समवेत देवताओंकी ये बातें सुनकर देवश्रेष्ठ प्रजापति बोले,—हे अमरगण! तेजके द्वारा तेज और तपके द्वारा तपका विनाश होता है। अतः हमारा बचन सुनिये। देखो, पातिव्रत्य की महिमासे दिवाकरका उदय नहीं हो रहा है। सूर्योदयके अभावसे आपलोगोंकी और मर्त्य मनुष्योंकी बड़ी हानि हो रही है। अतः यदि आपलोग सूर्योदयकी अपेक्षा करते हैं, तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रि मुनिकी पत्नी अनुसूयाको प्रसन्न करो ॥४३-४६॥ पुत्र बोला, —फिर देवताओंसे प्रसन्न की जानेपर अत्रिपत्नी अनुसूयाने कहा,—आपकी क्या अभिलाषा है, वह कहिये। देवताओंने प्रार्थना की,—पहिलेकी तरह दिवस हुआ करे। अनुसूया बोली—पतिव्रताकी महिमा कभी हीन नहीं हो सकती। अतः हे देवो! मैं उस साध्वीको सम्मानित कर दिनोदय कराऊँगी और जिससे पुनः दिन रातकी परम्परा आरम्भ हो और उस साध्वीके पतिकी भी मृत्यु न हो, ऐसा प्रयत्न करूंगी। पुत्रने कहा,—मङ्गलमयी अनुसूया देवगणसे इस प्रकार कहकर उस सतीके घर गयी और उसका तथा उसके पतिकी कुशल पूछकर धर्म विषयक इस प्रकार प्रश्न करने लगी कि, हे कल्याणि! तुम पतिका मुख देखकर आह्लादित तो होती हो? सब देवताओंकी अपेक्षा स्वामीको ही तो श्रेष्ठ समझती हो? मैंने केवल पति सेवाके द्वाराही महाफल प्राप्त किया है और उसीसे समस्त अभिलषित विषयोंकी सिद्धिमें उपस्थित होनेवाले विघ्न दूर हुए हैं। हे साध्वि! पुरुषोंको

निरन्तर पांच प्रकारके ऋणको चुकाना चाहिये। अपने वर्णधर्मानुसार धन सञ्चय कर विधिपूर्वक उपर्युक्त पात्रोंमें वितरण करना चाहिये। सर्वदा, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण होकर तथा प्रतिदिन श्रद्धा तथा प्रेमपूर्वक द्वेष विवर्जित होकर समस्त शास्त्रोक्त क्रियाओंका यथाशक्ति अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ५०–५८ ॥ हे पतिव्रते! पुरुष इस प्रकार अत्यन्त क्लेशसे स्वजातिविहित लोकोंको प्राप्तकर क्रमशः प्राजापत्यादि लोकोंमें गमन करनेमें समर्थ होते हैं। किन्तु स्त्रियां एकमात्र पतिसेवाके द्वारा पुरुषोंके दुःखसे उपार्जित इन सब पुण्योंका आधा भाग पा जाती हैं। स्त्रियोंके लिये पृथक् यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवासका विधान नहीं है। वे केवल पति शुश्रूषाके द्वारा अभिलषित लोकोंमें गमन करनेमें समर्थ होती हैं। अतः हे साध्वि! हे महाभागे! तुम स्वामिसेवामें सदा यत्नवती होना, क्योंकि पति ही स्त्रियोंकी परम गति है। देखो, पुरुष देवता, पितृगण और अतिथियोंकी सत् क्रियानुसार जो पूजा आदि करते हैं, अनन्यमनस्का स्त्रियां केवल पतिशुश्रूषा द्वारा उसका आधा अंश पा जाती हैं ॥ ५४–६३ ॥ पुत्रने कहा, अत्रिपत्नी अनुसूयाके ये वचन सुनकर द्विजपत्नीने उसकी बड़े आदरसे पूजा की और उससे कहा—हे स्वभाव शुभ-दायिनी! आज मैं धन्य और अनुगृहीत हुई। देवताओंने आज मुझपर कृपा की है, जिससे आपने आकर पुनः मेरी पतिके प्रति श्रद्धा बढ़ा दी है। मैं जानती हूं कि, स्त्रियों के लिये पतिसे बढ़कर कोई गति नहीं है। पतिके प्रसन्न रहनेसे ही स्त्रियोंका इहलोक और परलोकमें उपकार होता है। हे यशस्विनि! पतिके प्रसादसे ही स्त्रियां इहलोक और परलोकमें सुख भोग करती हैं। पति ही स्त्रियोंके लिये एकमात्र देवता है। हे महाभागे! हे शुभे! जब कि, आपने मेरे घर पधारनेके कष्ट उठाये हैं, तब हे माननीये! मुझे और मेरे स्वामीके लिये आपकी क्या आज्ञा है, वह कहिये ॥ ६४–६८ ॥ अनुसूया बोली, हे साध्वि! तुम्हारे वचनानुसार दिन रातका भेद लुप्त हो जानेसे सत् क्रियाएँ विनष्ट हो रही हैं। इस कारण सब देवता अत्यन्त दुःखित होकर देवराज इन्द्रसहित मेरे पास आये और प्रार्थना करने लगे कि, दिन रातकी अखण्ड व्यवस्था फिर प्रारम्भ हो। इसी कार्यके लिये मैं तुम्हारे पास आयी हूँ। हे तपस्विनि! दिनके उदय न होनेसे सब यागकर्मोंका अभाव हो गया है और यज्ञोंके अभावसे देवताओंका पुष्टिसाधन नहीं हो रहा। दिवसका ध्वंस होनेसे सब कर्मोंका उच्छेद हो गया है। सब कर्मोंका उच्छेद होनेसे अनावृष्टि होगी और अनावृष्टिसे समस्त जगत्का ध्वंस हो जायगा। इस आपत्तिसे जगत्की रक्षा करनेकी यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो हे साध्वि! सब लोगोंपर तुम प्रसन्न हो और पहिलेकी तरह पुनः सूर्योदय हुआ करे ॥ ६९–७३ ॥ ब्राह्मणीने कहा,—हे महाभागे! माण्डव्य मुनिने अत्यन्त क्रुद्ध होकर मेरे पतिको शाप दिया है कि, सूर्योदय होते ही उनकी मृत्यु हो जायगी।

अनुसूयाने कहा,—हे भद्रे! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो मैं तुम्हारे पतिको पुनः जिला दूंगी और उनका शरीर पुनः पहिलेकी तरह नया (रोग रहित) हो जायगा। हे वर-वर्णिनि! पतिव्रता स्त्रियोंकी महिमा सब प्रकारसे आराधनीय है; अतः मैं तुम्हारा अभि-नन्दन करती हूँ॥ ७४-७६॥ पुत्र बोला,—ब्राह्मणीने 'तथास्तु' कहा और तपस्विनी अनु-सूयाने हाथमें जल लेकर सूर्यदेवका आह्वान किया। उस समय दस रातदिन, रातके ही रूपमें बीत चुके थे। अस्तु, अनन्तर ज्योंही प्रफुल्ल-कमलको तरह अरुण वर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान् (सूर्यदेव) उदयाचल पर आरूढ़ हुए, त्योंही उस ब्राह्मणके प्राण पखेरू उड़ गये। उसके पृथ्वीपर गिरते गिरते ब्राह्मण पत्नीने उसे उसी क्षण हाथोंसे थाम लिया। अनुसूयाने कहा,—हे भद्रे! तुम विषण्ण न होना, मैंने केवल पतिसेवाके द्वारा जो तपोबल प्राप्त किया है, वह शीघ्र ही तुम्हारे दृष्टिगोचर होगा। रूप, शील, बुद्धि, वचन और मधुरता आदि गुणोंके द्वारा यदि किसी पुरुषको मैंने कभी पतिके रूपमें नहीं जाना है, तो उस सत्यके बलसे यह ब्राह्मण व्याधि-रहित और युवा होकर जी उठे और अपनी पत्नी सहित (आनन्दमें रहकर) सौ वर्षों तक जीवित रहे। मैंने यदि किसी देवताको भी स्वामीके रूपमें नहीं माना है, तो उस सत्यके द्वारा यह ब्राह्मण नीरोग होकर पुनः जी जाय और काया वाणी तथा मनसे यदि पतिदेवकी आराधनामें सचेष्ट रही होऊं, तो यह द्विजवर पुनर्जीवन लाभ करे॥ ७७-८४॥ पुत्रने कहा,—अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधि रहित और युवा होकर अजर अमरकी तरह अपनी देह-प्रभासे घरको समुज्ज्वल करता हुआ जी उठा और देवगण पुष्पवृष्टि करते हुए मङ्गल वाद्योंकी ध्वनि करने लगे। फिर देवतागण अत्यन्त आह्लादित होकर अनुसूयासे कहने लगे,—हे कल्याणि! देवताओंका तुमने बड़ा भारी कार्य किया है। अतः जो इच्छा हो; वर मांगो। हे तपस्विनि! सब देवता तुम्हें वर देनेके लिये उद्यत हैं॥ ८५-८७॥ अनुसूयाने कहा,—हे पितामह प्रभृति देवगण! आप यदि मुझपर प्रसन्न होकर मुझे वर प्रदान करना चाहते हैं और यदि मुझे वर देने योग्य समझते हैं, तो मुझे यही वर दीजिये कि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरी सन्तान रूपसे जन्म ग्रहण करें और स्वामी सहित मैं क्लेश निवृत्तिके लिये योग

टीका—इस अध्यायका विषय साधारणतः गाथारूपमें और परकीय भाषाके आवरणमें होनेपर भी इस अध्यायका वर्णन परकीय भाषामय नहीं है। इसका पूर्वार्ध समाधि भाषासे पूर्ण है। आश्रमधर्मके उत्तरोत्तर अधिकारका वर्णन, योगका अन्तिम लक्ष्य, धर्मका वैज्ञानिक स्वरूप, धर्मरूपी यज्ञके साथ दैवी जगत्की श्रृंखलाकी रक्षाका सम्बन्ध इत्यादिके जो वर्णन हैं, वह समाधि भाषा है। दूसरी ओर सतीत्व महिमा, सतीत्व व्रत द्वारा तपोधर्मकी पराकाष्ठाकी प्राप्ति सतीत्व-धर्मका गूढ़ सिद्धान्त, दैवी जगत्पर सतीत्व धर्मका गुरुतर प्रभाव, दैवी जगत्में सतीत्व-धर्मका आदर, तपोधर्मका सृष्टि-सामञ्जस्य-रक्षा आदिमें प्रभाव, सती

प्राप्ति करूं । अनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरने 'तथास्तु' कह कर और उस तपस्विनीका उचित सम्मान कर (अपने अपने लोकोंमें) गमन किया ॥ ८८-९० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके पितापुत्र संवादात्मक-अनुसूया वरप्राप्ति नामक षोड़श अध्याय समाप्त हुआ ।

सप्तदश अध्याय ।

—:०※०:—

पुत्रने कहा,—अनन्तर बहुत समय बीतने पर ब्रह्माके द्वितीय पुत्र भगवान् अत्रिने, जिसके सब अङ्ग सुडौल थे और जिसका सुन्दर रूप चित्तको भुला लेता था, उस निष्कलङ्क और ऋतुस्नाता अपनी पत्नी अनुसूयाको देखा, तो उसपर वे मोहित हो गये और उन्होंने उससे मन ही मन सम्भोग किया । इससे उनका जो तेज स्खलित हुआ, उसको लेकर वेगवान् पवन ऊँचे आकाश मार्गसे बहने लगा । उस ब्रह्मस्वरूप, शुक्लकान्ति-युक्त तेजका जो रजोगुण-विशिष्ट अंश था, उसने चन्द्ररूपसे दिशाओंका आश्रय किया। समस्त प्राणियोंका आधार स्वरूप वही सोम प्रजापति अत्रिका प्रथम मानस पुत्र है। महात्मा विष्णुने प्रसन्न होकर उस तेजके अपने सत्वगुणावलम्बी अंशसे ब्राह्मण दत्तात्रेयके रूपमें जन्मग्रहण किया। विष्णुने ही दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्ध होकर अनुसूयाका स्तन पान किया था । साक्षात् विष्णु ही अत्रिके द्वितीय पुत्र थे और क्रुद्ध होनेके कारण एक सप्ताहमें ही माताके उदरसे बाहर निकल आये थे । इनके क्रुद्ध होनेका कारण यह था कि, उन्मार्गगामी हैहयाधिपतिने उद्धत भावसे अत्रिका निरादर किया था । जिसे देखकर ये क्रोधवश हो गये और उसे दग्ध करनेका इन्होंने निश्चय कर लिया, दूसरा क्रोधका कारण उनके गर्भवासका महाक्लेश और दुःख था, उस तेजके तमोगुण युक्त रुद्रांशसे दुर्वासाकी उत्पत्ति हुई । इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और रुद्रके अंशोंसे अनुसूयाको तीन पुत्र उत्पन्न हुए । देवताओंके वरदानसे ब्रह्माने चन्द्रके रूपमें, विष्णुने दत्तात्रेयके रूपमें और शङ्करने दुर्वासाके रूपमें जन्मग्रहण किया ॥ १—११ ॥ वही प्रजापति-सोम प्रजापति-अपने शीतल किरणों द्वारा लता, औषधि और मनुष्योंको प्रसन्न करता हुआ सदा स्वर्गमें विराज-

---

धर्ममें त्रिलोक-पवित्रकारी निःस्वार्थभावकी रक्षा, सतीधर्ममें पतिके प्रति एक तत्त्वकी अधिकारमय अनन्यताका स्वरूप, सतीकी ऐसी उन्नत अवस्था होनेपर भी उसमें मातृभावकी सम्भावना इत्यादि धर्मसिद्धान्तोंको लौकिक भाषा द्वारा, वर्णन किया गया है । अतः इस वर्णनकी अलौकिकता पर किसीको विचलित नहीं होना चाहिये ॥ ८८–९० ॥

मान है । विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेय दुष्ट दैत्योंके विनाश और शिष्ट सज्जनों पर अनुग्रह करते हुए प्रजापालनमें तत्पर हुए और भगवान् अज दुर्वासा रुद्र-सम्बन्धीय शरीर धारण कर नेत्र, मन और वचनके द्वारा उद्धत होकर अपमान करनेवालोंको जलाने लगे। इस प्रकार भगवान् प्रजापति (ब्रह्मा) अत्रिके वंशमें जन्मग्रहण कर चन्द्रत्वको प्राप्त हुए, विष्णु भगवान् दत्तात्रेयके रूपमें योगावलम्बन करते हुए अनेक विषयोंका भोग करने लगे और भगवान् शिव दुर्वासा होकर माता पिताको छोड़ उन्मत्त नामक उत्तम व्रतको अवलम्बन करते हुए पृथ्वीमें विचरने लगे ॥ ११—१६ ॥ दत्तात्रेय परम योगी होनेसे मुनिकुमार सदा उन्हें घेरे रहते थे। उनसे पिण्ड छुड़ानेके लिये बहुत दिनों तक वे एक बड़े सरोवरमें डूबे रहे। वे सरोवरमें डूबे रहे सही, परन्तु उनके प्रिय दर्शन और महात्मा होनेके कारण मुनिकुमारोंने उनका पीछा नहीं छोड़ा। सभी मुनिकुमार सरोवरके तीर पर डटे रहने लगे। इस तरह देवताओंके सौ वर्ष बीत जानेपर भी जब मुनिकुमार उनके प्रेमके कारण सरोवरसे नहीं हटे, तब एक दिन दत्तात्रेय एक कल्याणी सुन्दरीको, जिसने दिव्य वस्त्र धारण किये थे, और जिसके नितम्ब पुष्ट और सुडौल थे, साथ लेकर सरोवरसे बाहर निकले। उन्होंने सोचा कि, मेरे साथ स्त्री है, यह देखकर मुनिकुमार मेरा साथ छोड़ देंगे और मैं भी निःसङ्ग तथा ध्यान-परायण होकर एकाकी रहूंगा। परन्तु फिर भी जब मुनिकुमारोंने उनका पीछा नहीं छोड़ा, तब उन्होंने यह सोचकर उस स्त्रीके साथ मद्यपान करना आरम्भ किया कि, जब ये देखेंगे कि, मैं स्त्रीको साथ लिये रहता हूं, मद्यपान करता हूँ, गाता बजाता और रमणी सम्भोग करता हूँ, तब मुझे इन संसर्गों से दूषित समझ कर मेरा परित्याग कर देंगें। परन्तु इतने पर भी उन मद्यपानसे वीभत्स हुए मुनिवरको महात्मा जानकर मुनिकुमारोंने नहीं छोड़ा। हे पिताजी! वे योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करते हुए भी चाण्डालके घरके वायुके समान दूषित नहीं हुए। अस्तु, योग-

---

टीका—भगवान् दत्तात्रेय त्रिमूर्तिके अवतार कहाते हैं। जैसे मनुष्यपिण्डमें नाना देवताओंके अवतार और ऋषियोंके अवतार आविर्भूत होते हैं, जैसे श्रीभगवान्के अवतार मनुष्य पिण्डमें उत्पन्न होते हैं, जैसे राम, बुद्ध आदि। और जैसे देवपिण्डमें उत्पन्न होते हैं, जैसे वाराह, नृसिंहादि। ये सब अवतार कलाभेदसे दशकलाके, द्वादश कलाके, चतुर्दश कलाके और पूर्ण षोडशकलाके कहाते हैं, जैसे कि, षोडश कलाके अवतार कृष्णको "कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्" कहा गया है, वैसे ही भगवान् दत्तात्रेय त्रिमूर्तिके अवतार हैं। अर्थात् इनमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंकी कलाएँ विद्यमान हैं, ऐसा पुराणान्तरमें वर्णन है। परन्तु उनका लीलाविग्रह भोग और योग उभय प्रधान होनेसे उनमें विष्णुअंशकी प्रधानता मानी गयी है। इस कारण यहां भगवान् विष्णुका ही सम्बन्ध बताया गया है। उनका विग्रह देवपिण्डसे सम्बन्ध रखता है। वे अब भी विद्यमान् हैं और रुद्रावतार भगवान् हनुमानकी तरह भक्तोंको अब भी दर्शन दिया करते हैं। उपर्युक्त वर्णनमें केवल दत्तात्रेयकी उत्पत्तिका जो वर्णन है वह परकीय भाषा है, परन्तु दैवी सृष्टिका जो वर्णन है, वह

वेत्ता योगीश्वर (दत्तात्रेय) पत्नी सहित मदिरा पान करते हुए तप करने लगे, जिनका ध्यान निरन्तर मुमुक्षु योगिगण किया करते हैं ॥ १७—२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्र-संवादात्मक दत्तात्रेयोत्पत्ति नामक सप्तदश अध्याय समाप्त हुआ।

अष्टादश अध्याय।

—:०*०:—

किसी समय कृतवीर्य नामक एक राजा हुआ। उसके स्वर्गवास हो जानेपर उसके पुत्र अर्जुनको मन्त्रियों, पुरोहितों और नागरिकोंने उसे राज्याभिषेकके लिये बुलाया। अर्जुनके इस प्रकार निमान्त्रत होकर आनेपर अर्जुनने कहा कि, हे मन्त्रिगण! मैं राज्य नहीं करूँगा। क्योंकि राज्यका परिणाम नरक भोग है। जिसके लिये राजा कर ग्रहण करता है, वह कार्य सम्पादन करना बड़ा ही कठिन है। वैश्यगण व्यापारकी वस्तुका बारहवां भाग राजाका देकर और रक्षकोंके द्वारा चोरोंके भयसे रक्षित होकर एक स्थानसे दूसरे स्थानमें आते जाते हैं। ग्वाला घी, मट्ठा आदिका और खेतिहर अन्नका छठां भाग राजाको देते हैं। यदि वे राजाको यह छठां भाग देकर और भी अधिक भाग दें तथा व्यापारीभी व्यापारकी समस्त वस्तुओंके निश्चित भागसे अधिक दें और राजा ग्रहण करे, तो वह राजा चौरधर्मी हो जाता है और उसके इष्ट और पूर्त दोनों कर्म विफल हो जाते हैं। (कूप, बावली, तालाव, देवस्थान, अन्न-सत्र आदि बनानेको पूर्त-कर्म और अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदाध्ययन, अतिथि सत्कार, वैश्वदेव आदि कर्म इष्ट कहाते हैं) और भी ध्यान देने योग्य बात यह है कि, किसी राजाके आश्रयमें रहने वाली प्रजा राजाको कर-दान करके भी यदि किसी अन्यके द्वारा रक्षित हो, तो छठाभाग कर के रूपमें लेने वाला वह राजा अवश्यही नरकको जाता है। पूर्वाचार्योंने प्रजाकी रक्षाके लिये यह (षष्ठांश ग्रहण) राजाका वेतन निश्चित किया है। यदि वह कर लेकर चोरोंसे प्रजाकी रक्षा न करे, तो वह चोरी कहावेगी और वह राजा चोरीके पापका भागी होगा। अतः यदि तपस्याकर इच्छानुसार योगित्व प्राप्त कर सकूं और पृथ्वी पालनमें सामर्थ्ययुक्त

समाधिगम्यभावसे सम्बन्धयुक्त लौकिक भाषा है। और भगवान् त्रिमूर्तिका तेज किस प्रकारसे समय समय पर अन्य पिण्डोंमें आविर्भूत होता है, उसीका रहस्य इस लौकिक भाषामें वर्णित है। जैसे भगवान् कृष्णकी लीलामें योग और भोगका अलौकिकत्व है, वैसा दत्तात्रेयके अवतारमें भी एकाधारमें योग और भोगका अलौकिकत्व है इस अध्यायका वर्णन दैवी सृष्टिका है, बैजी सृष्टिका नहीं है ॥ १—२५ ॥

एकमात्र महीपति हो सकूं तथा पृथ्वीमें मैंही अकेला शस्त्रधारी मान्य और ऋद्धिमान् हो सकूं, तो मैं राज्य करनेको प्रस्तुत हूँ: नहीं तो वृथा मैं अपनेको पाप भागी बनाना नहीं चाहता ॥ १—६ ॥ पुत्रने कहा,—इसका यह निश्चय जानकर मन्त्रियोंमें बैठे हुए महान् बुद्धिमान् वयोवृद्ध, मुनिवर गर्ग बोले,—हे राजपुत्र! यदि आप उत्तम रीतिसे राज्यशासन करनेके लिये ऐसा करना चाहते हैं, तो जो मैं कहता हूं, वह सुनो और उसके अनुसार आचरण करो। हे राजतनय! जो त्रिभुवनकी रक्षा करते हैं, जो परम योगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी हैं, जो जगत्की रक्षा करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण कर भूतलमें अवतीर्ण हुए हैं और जिनकी आराधना करनेसे सहस्र नयन इन्द्रने दैत्य गणका नाश कर दुष्ट दैत्यों द्वारा अपहृत अपने पदको प्राप्त किया था, आप उन्हीं सह्य पर्वतकी गुहामें बसे हुए महाभाग दत्तात्रेयकी आराधना करो ॥ १०-१४ ॥ अर्जुनने कहा,—देवताओंने प्रतापी दत्तात्रेयकी किस प्रकार

टीका—संसार भरमें जितने प्रकारकी राज-शासन-प्रणालियां है, उनके अनुसार वेद और शास्त्रोक्त आर्य-जातिकी जो प्राचीन राज्यशासन प्रणाली है, वह सबसे श्रेष्ठ और अग्रगण्य है। चिन्ताशील, दार्शनिक बुद्धिसम्पन्न; धर्मात्मा राजाके उपर्युक्त वचनोंसे ही इसका प्रमाण मिलता है। जैसे आकर्षण और विकर्षण शक्तिके समन्वयसे सूर्य और ग्रह-उपग्रहोंसे समन्वित ब्रह्माण्डकी स्थिति बनी रहती है और ये आपसमें टकराकर नष्ट नहीं होते, वैसेही प्रजाशक्ति और राजशक्तिके समन्वयसे ही यथार्थ रूपसे सर्वाङ्ग-सुन्दर राजशासन स्थापित होता है। उच्छृंखल प्रजातन्त्र तो मनुष्य-जातिको कालान्तरमें असभ्य और वर्बर बना देता है और स्वेच्छाचारी राजतन्त्र पापका घर बनकर राजा और प्रजा दोनोंका पतनकर देता है। दोनों ओरकी निरङ्कुशताको रोकनेके लिये वर्तमान सभ्यजगत्में नाना प्रकारकी राजशासन प्रणालियां बनायी गयी हैं। प्रजाके बहुमतसे दो राज-सभाओंका स्थापन करना; उन दोनोंके सहयोगसे निरङ्कुशताको बचाना, प्रजाके इच्छानुसार राजाको नियम-बद्ध करना अथवा थोड़े समयके लिये एक सभापति रूपसे राजाका चुनाव कर लेना इत्यादि रूपसे कई प्रकारकी राज-शासन-प्रणालियाँ सभ्य जगत्में राजशक्ति और प्रजाशक्ति दोनोंकी सामञ्जस्य रक्षाके लिये प्रचलितकी गयी हैं। उनमें सामयिक सफलता होनेपरभी नियमित परि-वर्तन, नियमित अशान्ति, धर्म और अध्यात्म-लक्ष्यका अभाव आदि अनेक दोष चिन्ता-शीलगण सदा अनुभव करते हैं। और इन सब राजशासन प्रणालियोंका शुभ परिणाम कदापि चिरस्थायी नहीं हो सकता। वैदिक प्राचीन आर्यशास्त्रोक्त राज-शासन-प्रणालीमें प्रजाके बहुमतसे कानूनका बनाना नियम विरुद्ध था। क्योंकि प्रजा कितनी ही शिक्षित हो, सब विषयी प्रजाकी बुद्धि समान नहीं होती। परन्तु प्राचीन प्रणालीमें कानून बनानेका भार न सार्वजनिक प्रजापर था, न राजा पर था। अतः उसमें दोनोंके पक्षपातकी सम्भावना नहीं थी। तपः स्वाध्याय निरत; विषय वासना रहित, विद्वान्, योगयुक्त अन्तः-करण, निःस्वार्थ व्रतको धारण करने वाले ऋषिगण उस समय कानून प्रकाशित करते थे। अतः उन कानूनोंमें इहलोक और परलोक सम्बन्धी पूर्ण दूरदर्शिता रहती थी और उनको काममें लानेवाले राजा कैसे विषय-राग-रहित धर्मभीरु, कर्तव्यनिष्ठ, प्रजावत्सल और योग-युक्त होते थे, उसका आदर्श ऊपरके वर्णनमें परकीय भाषामें किया गया है ॥ १—९ ॥

आराधना की थी और इन्द्रने दैत्योंसे छिने हुए अपने पदको किस प्रकार प्राप्त किया था? गर्ग बोले,—किसी समय देवों और असुरोंमें भयङ्कर युद्ध हुआ था, तब जम्भ नामक दैत्य सब असुरोंका अधिनायक और शचीपति इन्द्र देवताओंके अधिनायक थे। दोनोंमें देवताओंके एक वर्ष तक युद्ध चलता रहा। अन्तमें देवता पराजित हुए और असुरोंकी जीत हुई। विप्रचित्ति प्रभृति दैत्योंसे हार कर देवतागण इधर उधर भागने लगे। शत्रुओंपर विजय न पानेसे वे निरुत्साह होकर बृहस्पतिके पास गये और बालखिल्य ऋषियोंके साथ दैत्य सैन्य वधके लिये मन्त्रणा करने लगे। बृहस्पतिने कहा,—हे देवगण! आप लोग भक्ति पूर्वक तपोधन, महात्मा, विकृताचारी, अत्रितनय दत्तात्रेयको सन्तुष्ट करनेकी चेष्टा करें। वे वर देनेवाले हैं। उनको प्रसन्न करनेसे दैत्योंका विनाश जिससे हो, ऐसा वर वे आपको प्रदान करेंगे। उस वरसे हे देवगण! आप सब दैत्यों और दानवोंका वध कर सकेंगे॥ १५-२१॥ गर्गने कहा कि, बृहस्पतिके इस प्रकार परामर्श देनेपर देवतागण दत्तात्रेयके आश्रममें गये। वहां जाकर उन्होंने क्या देखा कि, वे महात्मा लक्ष्मीके साथ मद्यपान कर रहे हैं और उनके आगे गन्धर्वगण गा रहे हैं। देवता उनके निकट जाकर प्रणाम पूर्वक साध्यसाधन (जिससे साध्य सिद्ध हो जाय) करने लगे। नाना प्रकारसे वे उनकी स्तुति करते और उनके लिये भक्ष्य, भोज्य, माल्य आदि जुटा देते थे। उनके बैठनेपर आप बैठते और उनके गमन करनेपर आप भी गमन करते थे। इस प्रकार देवताओंने मुनिके आसनसे नीचे बैठकर उनकी आराधना की। इसी तरह बहुत काल बीतने पर दत्तात्रेयने शरणागत देवताओंसे पूछा कि, तुम लोग मेरे पास किस लिये आये हो? तुम्हारी क्या प्रार्थना है, जो तुम मेरी ऐसी सेवा कर रहे हो? देवोंने कहा,—हे मुनि शार्दूल! जम्भ प्रमुख दानवोंने हमपर आक्रमण कर भूर्भुवादि तीनों लोकोंपर अधिकार कर लिया है और हमारा सब यज्ञभाग वे ही अपहरण कर लेते हैं। हे निष्पाप! आप उनके विनाशके लिये कोई उपाय सोचकर हमारी रक्षा कीजिये। हमारी यही अभिलाषा है कि, आपके प्रसादसे हम फिर स्वर्गको प्राप्त कर लें। दत्तात्रेयने कहा,—मैं तो मद्यपानासक्त अजितेन्द्रिय और निरन्तर अपवित्र रहता हूँ। हे देवगण! मुझसे तुमने किस प्रकार शत्रुओंके पराभवकी आशा कर ली? देवोंने कहा,—हे जगन्नाथ! आपने विद्या प्रक्षालित पवित्र अन्तःकरणमें ज्ञानरूपी ज्योति जगा ली है। अतः आप निष्पाप हैं और किसी विषयमें लिप्त नहीं हैं। दत्तात्रेयने कहा,—हे सुरगण! वास्तवमें मुझमें विद्या

टीका—जैसे ऋषि, देवता, पितृ, किन्नर, गन्धर्व आदि देवताओंके अनेक भेद हैं, उसी प्रकार दैत्य, दानव, राक्षसादि असुरोंके अनेक भेद हैं। राजसिक और तामसिक भेदसे असुरोंकी यह श्रेणिकी कल्पना की गई है॥ १५-२१॥

होनेसे ही मैं समदर्शी हूं; परन्तु इस स्त्रीके संसर्गसे अशुचि हो रहा हूं। स्त्रीसे निरन्तर सेवित होकर उसका सम्भोग करनेसे मैं अत्यन्त दोषका आकर बन गया हूं। दत्तात्रेय-के ये बचन सुनकर देवोंने कहा,—हे द्विज श्रेष्ठ! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें ब्राह्मण अथवा चाण्डालके संसर्गसे पवित्र अथवा अपवित्र नहीं होतीं, उसी प्रकार यह अनघा जगन्माता आपके संसर्गसे दूषित नहीं हो सकती ॥ २२-२३ ॥ गर्गने कहा,—देवोंके इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेय सब देवताओंसे कुछ हंसकर बोले,—त्रिदशगण! यदि तुम्हारा यही मत है, तो हे सुरसत्तम! तुम समस्त असुरोंको युद्धके लिये ललकार कर यहां मेरी दृष्टिके सामने ले आओ, इसमें विलम्ब न करो। क्योंकि मेरे दृष्टिपातरूपी अग्निसे उनका बल और तेज क्षीण हो जायगा और फिर वे सभी मेरे दर्शनसे बिना विलम्ब नष्ट हो जायंगे ॥ ३३-३५ ॥ गर्ग बोले,—उनका वह वाक्य सुनकर देवोंने तुरन्त ही असुरोंको युद्धके लिये ललकारा। महाबली असुरगणने भी देवों द्वारा युद्धके लिये ललकारे जानेपर बड़े क्रोधसे देवोंपर आक्रमण कर दिया। तब दानवों द्वारा सब देवता पीटे जानेके कारण वे भयभीत होकर शरण पानेकी इच्छासे दत्तात्रेयके आश्रममें भाग आये। असुरगण भी उनके विनाशके विचारसे उस आश्रममें आये और उन्होंने महात्मा दत्तात्रेयका दर्शन किया। साथ ही उनके वामभागमें बैठी हुई, अशेष जगत्का इष्टसाधनकरनेवाली, कल्याणकारिणी, चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीका भी अवलोकन किया। तब उस नीलोत्पल नयना, पीन श्रोणिपयोधरा, मधुर भाषिणी, और योषिताओंके सब गुणोंसे युक्त ललनाको सामने देखकर असुरोंका जी ललचा गया। वे उद्धत कामपीड़ासे आतुर होकर मनही मन धैर्य धारण करनेमें असमर्थ हुए और देवताओंका पीछा छोड़कर उस कामिनीका हरण करनेके लिये आतुर हो गये। उस पापके संसर्गसे मुग्ध और हतवीर्य होकर वे कहने लगे कि, यह स्त्री रत्नही त्रैलोक्यका सार है। हम यदि इस ललनारत्नको पासकें, तभी कृतकार्य होंगे, हमारा चित्त यही कहता है कि, तभी हम कृतकृत्य होंगे। अतः हे असुरों! चलो हम सब इस कामिनीको पालकीमें चढ़ाकर अपने यहां ले चलें, यह निश्चय करलो ॥ ३६—४४ ॥ गर्गने कहा,—तदनन्तर प्रेमपगे दैत्यगणने परस्पर इस प्रकार मन्त्रणा करते हुए कन्दर्प बाणसे पीड़ित होकर साध्वी दत्तात्रेय पत्नीको उठाकर पालकीमें बैठा लिया और दैत्य तथा दानवोंने मिलकर उस पालकीको सिरपर उठा लिया तथा वे स्वस्थानकी ओर चल पड़े। तत्पश्चात् मुनिवर दत्तात्रेय किञ्चित् हंसकर देवता-ओंसे बोले,—हे देवगण! तुम्हारा भाग्य अब फिर गया है। देखो, यह लक्ष्मी दानवोंके

टीका—यह पहिले कहा गया है कि, भगवान् दत्तात्रेयकी उत्पत्ति दैवी सृष्टिका विषय है और उनकी लीला समाधि भाषाका विषय है। इस समय उनकी पूर्ण सत्वमयी शक्तिके सम्मुख आते ही रजस

सात स्थानोंको अतिक्रमणकर अब उनके सिरपर चढ़गयी हैं। अतः वे इनका परित्याग कर किसी अन्यके पास चली जायंगी ॥ ४५—४७ ॥ देवताओंने जिज्ञासा की,-हे जगन्नाथ! लक्ष्मीके किस किस स्थानपर अवस्थान करनेसे पुरुषको क्या क्या अच्छा फलप्रदान करती हैं और क्या क्या बिगाड़ती हैं? दत्तात्रेयने कहा,-लक्ष्मीका पुरुषके पदमें अवस्थान होनेसे वे उसे गृहप्रदान करती हैं, उरूमें अवस्थान करनेसे अच्छे वस्त्र और अनेक प्रकारका धन देती हैं, गुप्त स्थानमें अवस्थान करनेसे कलत्र लाभ होता है, गोदमें आनेसे पुत्रलाभ होता है, हृदयमें विराजनेसे पुरुषका मनोरथ पूर्ण होता है, कण्ठमें बिराजी हुई लक्ष्मी श्रेष्ठ होती है और ऐसे लक्ष्मीवानोंको, जिनके कण्ठमें लक्ष्मी बिराजी हो, कण्ठभूषण देती है तथा प्रवासी प्रियतम वन्धुओं और पत्नीसे भेंट कराती है। सागर तनया (लक्ष्मी) यदि मुखमें आ बैठें, तो सुन्दर वाक्य, लावण्य, अवितथ आज्ञा और कवित्वका लाभ होता है। और मस्तक पर आरोहण करनेसे उसे त्याग कर दूसरे निकट चली जाती हैं। इस समय ये दानवोंके मस्तकोंपर आरूढ़ हुई। अब ये इन्हें त्याग देंगी। ये दैत्य परदारा हरणके कारण हतपुण्य और हतवीर्य हुए हैं और मेरे दृष्टिपातसे निस्तेज हो गये हैं। अतः तुम लोग अस्त्रशस्त्र ग्रहण कर निर्भय होकर इनका वध करो ॥ ४८—५४ ॥ तदनन्तर देवोंने तीक्ष्ण अस्त्रोंसे समस्त असुरोंका वध कर डाला। हे राजनन्दन! मस्तकपर लक्ष्मीको उठा लेनेसे दैत्यगण किस प्रकार मार डाले गये, यह आपने श्रवण किया। इसके पश्चात् लक्ष्मी देवी उछल कर मुनिवर दत्तात्रेयके पास लौट आयीं और दैत्योंका नाश हो जानेसे सब देवता आह्लादित होकर उनकी स्तुति करने लगे। फिर देवोंने मनीषी दत्तात्रेयको प्रणाम कर पहिलेकी तरह निश्चिन्त होकर स्वर्गमें गमन किया। अतः हे राजेन्द्र! यदि आप मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य पानेकी इच्छा करते हैं, तो शीघ्र ही उन मुनिवर दत्तात्रेयकी आराधना करो ॥ ५५-५८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका गर्ग वाक्य नामक अष्टादश अध्याय समाप्त हुआ।

और तमोयुक्त असुरगण हतबुद्धि हो गये और फिर परस्त्रीहरणके पापसे उनका तपःक्षीण होकर वे हतवीर्य हो गये, जिसे देख भगवान् मुस्कराये ॥ ४५—४७ ॥

टीका—ब्रह्मशक्ति महामाया 'अहं ममेतिवत्' ब्रह्मसे अभिन्न रहनेपर भी जैसे महामायाके विद्या और अविद्या रूपसे दो अधिकार वर्णित हो चुके हैं, वैसे ही सर्वशक्तिमयी महामायाके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत शक्ति भेदसे महासरस्वती, महाकाली और महालक्ष्मी रूपी तीन स्वतन्त्र स्वरूप शास्त्रोंमें वर्णित हैं। पुनः सृष्टि स्थितिलय क्रियाके विचारसे ब्राह्मी, वैष्णवी और रौद्री इस प्रकार तीन प्रकारकी शक्तियोंकी लीलाएं शास्त्रोंमें पायी जाती हैं। पुनः इन तीनोंमेंसे प्रत्येककी तीन तीन वैभवमयी मूर्तियोंका वर्णन वेद और शास्त्रोंमें पाया जाता है। इस अध्यायमें वर्णित लक्ष्मी देवी भी वैष्णवीशक्तिके उन तीनों भेदोंसे एक भेद है। वे अध्यात्मरूपसे स्थितिकर्ता भगवान् विष्णुकी अर्धाङ्गिनी हैं। अधिदैव रूपसे अवतारोंकी संगिनी हैं और अधिभूत रूपसे भाग्यशाली पुरुषोंके कर्म विपाकके अनुसार फल प्रदायिनी होती हैं ॥ ५५—५८ ॥

एकोनविंश अध्याय ।

पुत्रने कहा,—नरपति कार्त्तवीर्य गर्गऋषिका यह बचन सुनकर दत्तात्रय मुनिके आश्रममें गये और भक्तिभावसे उन्होंने उनकी पूजाकी। वे दत्तात्रेयके पैर दबाते, मद्य आदि ला देते, माल्य चन्दन, गन्ध, जल, फल आदि जुटा देते, भोजन करादेते और उच्छिष्ट उठा देते थे। इस प्रकारकी सेवासे दत्तात्रेय प्रसन्न हुए और उन्होंने राजाको वेही मद्यपान और बगलमें बैठी रमणीके उपभोग आदिकी बातें सुनायी, जो पहिले देवताओंको सुनायी थीं। फिर बोले,—हे राजन्! मैं ऐसेही अनेक निन्दनीय कार्योंमें निरन्तर निमग्न रहता हूं। अतः मेरे जैसे परोपकारमें असमर्थ व्यक्तिको अनुरोध करनेसे क्या होना है? जो व्यक्ति समर्थ हो, उसकी आराधना करना उचित है ॥ १--५ ॥ जड़ (ब्राह्मण पुत्र) बोला,—मुनिकी ये बातें सुनकर कार्त्तवीर्यने गर्गमुनिके वाक्योंका स्मरण कर दत्तात्रेयको प्रणाम किया और कहा,—हे देव! इस प्रकार मुझे मोहमें क्यों डालते हैं? आप अपनी मायाके साथ सम्मिलित होते हैं, इस कारण आप पाप रहित हैं; और ये देवी समस्त संसारकी अरणि स्वरूप हैं; अर्थात् यज्ञकी अग्नि उत्पन्न करनेकी लकड़ीसे जिस प्रकार वह उत्पन्न होती है, उसी प्रकार इनसे चराचर विश्व उत्पन्न हुआ है; अतः ये भी पाप रहित हैं। राजाके इस प्रकार कहने पर मुनिवर अत्यन्त प्रसन्न होकर जिन्होंने महीतलको वश किया था, उन महाभाग कार्त्तवीर्यार्जुनसे बोले,—हे पार्थिव! वर माँगो। तुमने जिस गुह्य विषयको कहा, उससे मुझे अत्यन्त सन्तोष हुआ है ॥ ६-९ ॥ हे राजन्! जो मद्य मांस रूप उपहार और घृतयुक्त मिष्टान्न देकर, ब्राह्मणोंकी पूजा करते हुए गीत गाकर और वीणा, बाँसुरी, शङ्ख प्रभृति मनोरम वाद्य बजाकर गन्धमाल्यादि द्वारा लक्ष्मी सहित मेरी पूजा करते हैं, उनको मैं पुत्र और धनादि प्रदान कर परम सन्तुष्ट करता हूँ तथा अपमान तथा अपघात आदि सब विघ्नोंका विनाश करता हूँ। हे राजन्! मेरे गुह्य नामके कीर्तन करनेसे मैं तुम पर अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं। अतः जो शुभ वर पानेकी तुम्हारी इच्छा हो, वह मांगो ॥ १०-१३ ॥ कार्त्तवीर्यने कहा,-देव! जो आप मुझ पर प्रसन्न हुए हैं, तो मुझे ऐसी ऋद्धि प्रदान करें, जिससे मैं अनायास प्रजापालन कर सकूँ और कभी पापभागी न होऊँ। मैं चाहता हूं कि, कोई कहीं गया हो, उसे मैं जान जाऊँ; रणमें मेरे सामने कोई प्रतिद्वन्द्वी खड़ा न रह सके; मेरे सहस्रबाहु हों, पर उनका मुझे भार प्रतीत न हो; जल, स्थल, आकाश, पर्वत, पाताल आदि सभी स्थानोंमें मैं बेरोक टोक गमन कर सकूं और किसी श्रेष्ठ मनुष्यके हाथों मेरी मृत्यु हो। हे देव! जिससे मैं कुमार्गमें प्रवृत्त लोगोंको सन्मार्गमें ले जाऊँ, मुझे प्रशंसनीय अतिथि मिलते रहें और मैं अक्षय्य दान

करता रहूं; राज्यमें कोई मेरा नाम ले, ता नष्ट द्रव्य मिल जाया करे और आपके चरणकमलों-में मेरी निरन्तर अव्यभिचारिणी भक्ति बनी रहे ॥ १४-१८ ॥ दत्तात्रेयने कहा,—हे राजन्! तुमने जो जो कहा है, मेरे प्रसादसे वह सब तुम्हें प्राप्त होगा और तुम चक्रवर्ती राजा होगे। जड़ने कहा,—अनन्तर कार्त्तवीर्यार्जुनने मुनिवर दत्तात्रेयको प्रणाम किया और समन्त प्रजाको बुलाकर भलीभाँति अपना राज्याभिषेक करा लेना स्वीकार किया। राज्याभिषेकोत्सवमें समस्त गन्धर्व, अप्सरागण, वशिष्ठादि ऋषिगण, सुमेरु आदि पर्वत समूह, गङ्गा आदि नदियाँ, जल संवृत सातों समुद्र, प्लक्ष आदि सब वृक्ष, इन्द्रादि समस्त देव, वासुकि आदि सब नाग, गरुड़ादि पक्षिवृन्द और पुरवासी तथा नगरनिवासी सभी साज-बाज और दल-बल सहित प्रसन्न होकर दत्तात्रेयके प्रसादसे उपस्थित हुए और ब्रह्मादि देवता शान्ति मन्त्र पाठ करने लगे ॥ २०-२४ ॥ फिर अधर्म नाश और धर्म संस्थापनाके निमित्त समुद्र, नदी और ऋषियों सहित दत्तात्रेयरूपी नारायणके द्वारा वे अभिषिक्त हुए। मुनिवर दत्तात्रेयके प्रसादसे अतुल ऐश्वर्य पाकर और महान् बलवान होकर हैहय राज्यपद पर अधिरूढ़ होनेपर उन्होंने घोषणा की कि,—आजसे मेरे अतिरिक्त जो अस्त्र ग्रहण करेगा, वह परहिंसारत और चोर समझा जाकर मेरे हाथों मारा जायगा ॥२५-२८॥ राजाकी यह आज्ञा घोषित होनेपर उनके राज्यमें उनके अतिरिक्त कोई महापराक्रमशाली आयुधधारी मनुष्य विद्यमान न रहा। उस समय वे ही अकेले ग्रामपालक, पशुपालक, क्षेत्र रक्षक, ब्राह्मण रक्षक, तपस्विरक्षक और धन रक्षक थे। वे ही परवीरनाशक राजा अकेले चोरों, सांपों, अग्नि, लुटेरों और शस्त्रादि, भयरूपी समुद्र तथा अन्यान्य आपदाओंके संकटमें पड़े हुए मानवोंके रक्षा कर्ता थे। एकमात्र उनका नाम उच्चारण करनेसे ही मानवगण समस्त आपत्तियोंसे उद्धार पा जाते थे ॥ २९-३१ ॥ वे राजा जब राज्यशासन करने लगे, तब राज्यमें किसीका धन चुराया या खोया नहीं जाता था। उन्होंने नाना यज्ञकर दक्षिणाके विनिमयमें अनेक वर प्राप्त किये। उन्होंने उग्र तपस्याकी और अनेक संग्राम किये, उनका वह अत्यन्त ऐश्वर्य और सम्मान देखकर बृहस्पतिके मुखसे निकल पड़ा कि, अन्य कोई राजा, यज्ञ तपस्या, दान, संग्राम चेष्टा अथवा किसी विषयमें कार्त्तवीर्य की बराबरी नहीं कर सकता। वे राजा जिसदिन दत्तात्रेय मुनिसे अतुल ऐश्वर्य प्राप्त किये थे, उसी दिन उन्होंने दत्तात्रेय याग किया था और प्रजागणने भी भूपालकी परम ऋद्धिमत्ता

टीका:—सनातनधर्मके अनुसार राजाका शरीर राज्याभिषेक यज्ञ द्वारा देवताओंके पीठमें परिणत किया जाता है। उस समय विशेष विशेष देवताओंका आवाहन किया जाता है और वृक्षादि के पल्लव तथा समुद्रादिके जल आदिकी सहायतासे उनकी अधिदैव देवताओंका आहवान किया जाता है। राज्याभिषेक पद्धतिसे यह रहस्य प्रकट हो सकेगा ॥ २५-२८ ॥

देखकर भक्तिभावसे उस यज्ञमें योगदान किया था । यही उन चराचर गुरु, अन्तहीन, महात्मा, धीमान दत्तात्रेयरूपी विष्णुका माहात्म्य है । शार्ङ्गधन्वा, शङ्ख चक्र गदा धारी, अप्रमेय अनन्तदेवकी उत्पत्तिकी कथा नाना प्रकारसे नाना पुराणोंमें कही गयी है । जो व्यक्ति नारायणके परमरूपकी चिन्ता करता है, वह सुखी होकर तुरन्त ही संसारके बन्धनोंसे छूट जाता है । जो (भगवान्) सदा कहा करते हैं कि, वैष्णवगणकी भक्तिसे मैं सुलभ हूं ; फिर ज्ञात नहीं होता कि, साधारण जन उनका आश्रय क्यों नहीं ग्रहण करते । अधर्मके विनाश और धर्माचारोंके प्रवर्तनके लिये वे ही अनादिनिधन देव (जगतकी) स्थिति और रक्षा करते हैं। अब मैं पितृभक्त, राजर्षि, महात्मा अलर्कका जन्म कैसे हुआ और मुनिवर दत्तात्रेयने उसे योग विद्याकैसे सिखायी, यह विषय कथन करता हूं, आप सुनिये ॥ ३२-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दत्तात्रेय प्रकरण नामक एकोनविंश अध्याय समाप्त हुआ।

बीसवाँ अध्याय ।

जड़ने कहा,—प्राचीन कालमें शत्रुजित नामक एक राजा हुआ । वह बड़ा ही पराक्रमी था । उसके यज्ञमें सोमरस पान करके इन्द्रदेव बहुत प्रसन्न हुए थे । उस राजाके एक पुत्र था । वह भी उसीके समान शत्रुओंका नाश करनेवाला और महाबलशाली था । वह बुद्धिमें बृहस्पति, पराक्रममें इन्द्र और रूप लावण्यमें अश्विनीकुमारोंके समान था । राजपुत्रके साथ जो अन्य राजकुमार सदा रहते थे, वे भी वयस्, बुद्धि, बल, विक्रम और उद्योगमें उसके अनुरूप ही थे । कभी वे सब शास्त्रोक्त विषयोंकी विवेक पूर्ण विवेचना करते और कभी काव्यचर्चा, गीत श्रवण, तथा नाटकादिमें मन लगाते थे । राजपुत्र कभी पाँसा खेलते, कभी शास्त्रालाप करते, कभी अस्त्र विद्याका आनन्द लेते, कभी विनयमें रत रहते, कभी, योग्य व्यक्तिके साथ मल्लयुद्ध करते और कभी हाथी, घोड़े, रथ आदि विद्याओंका

टीकाः—जिस प्रकार मृत्युलोकमें भगवान् कृष्णचन्द्रका पूर्णावतार माना जाता है, उसी प्रकार देवलोकमें भगवान् दत्तात्रेयका पूर्णावतार समझने योग्य है । प्रवृत्ति और निवृत्तिके ऐश्वर्योंका एकाधारमें समावेश जहाँ हो, कर्मयोग और ज्ञान योगका एकाधारमें जहाँ समावेश हो, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्तिका एकाधारमें जहाँ समावेश हो और अध्यात्म सिद्धि अर्थात् ज्ञान सम्बन्धी सिद्धि, अधिदैव सिद्धि अर्थात् दैवी क्रिया निष्पन्न करनेकी सिद्धि (अष्टसिद्धि आदि) और अधिभूत सिद्धि अर्थात् लौकिक ऐश्वर्य समूह (बल आदि) इनका जिस अवतारमें एकाधारमें पूर्णता हो, वह पूर्णावतार कहाता है । यह पूर्णता जैसी भगवान् श्रीकृष्णमें पायी जाती है, वैसी भगवान दत्तात्रेयमें भी पायी जाती है । भेद इतना ही है कि, भगवान श्रीकृष्णका मानव विग्रह था और भगवान् दत्तात्रेयका देव विग्रह है ॥ ३२-४२ ॥

अभ्यास करते हुए अन्य राजपुत्रोंके साथ दिन रात खेला करते थे। उनको इस प्रकार निरन्तर खेलते हुए देखकर अनेक समानवयस्क ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्योंके बालक प्रसन्नतासे उनके साथ खेलनेके लिये आ जुटते थे। कुछ काल यों ही व्यतीत होनेपर एकबार नागराज अश्वतरके दो पुत्र नागलोकसे महीतलमें उपस्थित हुए। दोनों तरुण और मनोहर थे। दोनों ब्राह्मणका रूप धारण किये थे। वे उस राजकुमार और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बालकों के साथ नानाविधि मनोरञ्जन करते हुए इतने हिलमिल गये कि, वहीं रहने लगे। सब राजकुमार, ब्राह्मणकुमार, वैश्यकुमार और दोनों नागकुमार एक साथ नहाते धोते, वस्त्र पहिनते, चन्दन लगाते और यथा भाग भोजन करते थे॥ १-११ ॥ इस प्रकार राजपुत्रके प्रेमसे आह्लादयुक्त होकर वे नागकुमार प्रतिदिनही उसके यहां आने जाने लगे। राजपुत्रभी उनके साथ नानाप्रकारसे आमोद-प्रमोद और हँसी दिल्लगी करता हुआ बहुत सुख पाने लगा। अधिक क्या, उनके बिना राजपुत्र भोजन, स्नान, मधुपान क्रीडा, या अपनी गुण-वृद्धिके लिये शस्त्रास्त्र भी नहीं ग्रहण करता था। नागपुत्र भी उस राजपुत्रके विरहमें दीर्घनिःश्वास करते हुए किसी प्रकार पातालमें रात बिताते और दिन उगतेही उसके पास आजाते थे। इसी भांति कुछ काल वीतने पर नागराज अश्वतरने एक दिन अपने दोनों पुत्रोंसे पूछा,—हे प्रियदर्शन पुत्रो! तुम मर्त्यलोक पर इतने क्यों रीझ गये हो? बहुत दिनोंसे दिनमें मैं तुम्हें पातालमें नहीं देखता, रातमें देखता हूं, इसका कारण क्या है॥ १२-१७॥ जड़ने कहा,—नागराजके दोनों महाभाग पुत्रोंसे जब स्वयं पिताने ही इस प्रकारकी जिज्ञासा की, तब उन्होंने प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर निवेदन किया कि, हे तात! मृत्युलोकमें शत्रुजित् नामक राजाका एक पुत्र है, जिसका नाम ऋतुध्वज है। वह रूपवान्, सरलचित्त, शूर, मानी, मधुरभाषी, बिना पूछे उत्तर न देनेवाला, विद्वान्, मिलनसार और गुणोंका आकर स्वरूप है। वह माननीयोंका मान करता है वक्ता, स्वयं बुद्धिमान्, लज्जावान् और विनयसे विभूषित है। उसके आदरातिथ्य और प्रेम व्यवहारसे हमारा मन अत्यन्त आकृष्ट हो जानेसे वैसा प्रेम हम नागलोक हो या भूलोक, अन्य किसी स्थानमें नहीं पाते। पिताजी! उससे बिछुड़ जानेपर हमें पातालकी शीतल रात भी परितप्त करती है और उससे मिलनेपर रविकी किरणोंसे प्रखर दिन भी आह्लाद-जनक प्रतीत होता है॥ १८-२२॥ पिताने कहा,—वत्स! वह पुण्यशील पुत्र धन्य है, जिसकी तुम जैसे गुणवान् पुरुष उसके परोक्षमें प्रशंसा करते हो। अनेक विद्वान् बुरे स्वभावके होते हैं और अनेक मूर्ख सुशील होते हैं। परन्तु मैं समझता हूं कि शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्र धन्यसे भी धन्य है। जिसकी मित्रताके गुण मित्र द्वारा वर्णित होते हैं और शत्रु भी जिसके पराक्रमका वर्णन करते हैं, अनेक सन्तान होते हुए भी पिता उसी

पुत्रके कारण पुत्रवान् कहा जा सकता है। जो हो, वत्स! उस उपकारी मित्रके चित्त सन्तोषके निमित्त तुम्हारे द्वारा उसका कोई अभिवांछित सिद्ध हुआ है? देखो, जिसके पाससे याचक कभी विमुख होकर नहीं लौटते और मित्र भी कभी विफलमनोरथ नहीं होते, वह व्यक्ति ही धन्य है, उसीका जीवन यथार्थ जीवन है और उसीका जन्म शुभ जन्म है॥ २३-२७॥ अतः अपने यहाँ सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन आदि जो कुछ हैं, उसमेंसे जो चाहो, उस मित्रका प्रेम सम्पादन करनेमें निःसंकोच भावसे उसे प्रदान कर सकते हो। हे वत्स! जो व्यक्ति उपकारी मित्रके प्रति प्रीतिरूपी उपकार नहीं करता और जीवन धारण करता है, उसके जीवनको धिःकार है और जो मेघके समान पुरुष मित्रोंपर उपकार और शत्रुओंपर अपकाररूपी जलकी वर्षा करते हैं, देवतागण सदा ही उनकी उन्नति हो, ऐसी इच्छा करते हैं। दोनों पुत्रोंने कहा,—हे पिताजी! जिससे याचकगण समस्त अभिलषित पदार्थों द्वारा निरन्तर तृप्त होते हैं, उस कृतकृत्य राजपुत्रका उपकार करनेको किसीमें शक्ति नहीं है। उसके पास जो सब रत्न, वाहन, आसन, यान, भूषण और वस्त्र हैं, हमारे पातालमें कहांसे आवें? उसके पास जो विज्ञान है, वह अन्यत्र कहीं नहीं है। हे तात! वह प्राज्ञ पुरुषोंके सन्देहोंको दूर करनेमें अत्यन्त श्रेष्ठ है। उसका एक कार्य अवश्य है; किन्तु हम समझते हैं कि, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरके अतिरिक्त वह और किसीसे पूरा हो नहीं सकता॥२८-३४॥ पिताने कहा,—वत्स! बुद्धिमानोंके लिये संसारमें असाध्य कुछ भी नहीं है। फिर भी उसका साध्य अथवा असाध्य कैसा ही क्यों न हो, जो उत्तम कार्य है, उसको मैं सुनना चाहता हूं। जो मनुष्य दृढ़तर उद्योगी हैं, उनके लिये देवत्व, इन्द्रत्व अथवा उससे भी श्रेष्ठ पद पाना कोई कठिन नहीं है, जो मन, इन्द्रिय और आत्माको संयतकर किसी काममें दृढ़तासे लग जाते हैं, स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें उनके लिये कोई बात अज्ञात, अप्राप्य अथवा अगम्य नहीं रह जाती। देखो छोटीसी चिऊँटी अत्यन्त उद्योगी होनेसे चलते चलते सहस्रों कोसकी यात्रा कर लेती है; परन्तु पक्षिराज गरुड़ निरुद्योगी होनेपर एक पैर भी आगे बढ़नेमें असमर्थ रहता है। निरुद्योगी मनुष्यके लिये गम्य अथवा अगम्य कुछ भी नहीं है। देखो, उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुवने पृथ्वीपर रहते हुए दूसरोंके लिये दुर्लभ जो स्थान प्राप्त किया है, वह ध्रुवलोक कहां और पृथ्वी कहां? अतः हे पुत्रो! उस साधु महाभाग राजपुत्रका जिससे काम बने और तुम भी मित्र ऋणसे उऋण हो जाओ, वह कहो॥ ३५-४०॥ पुत्रोंने कहा,—पिताजी! उस उत्तम चरित्रवान् महात्मा राजकुमारकी कौमारावस्थामें जो एक घटना हुई थी, वह हमको उसने आद्योपान्त सुनायी थी। उसने कहा था,—किसी समय गालव नामक एक बुद्धिमान् द्विज श्रेष्ठ एक सुंदर घोड़ा लेकर शत्रुजित् राजाके निकट आकर कहने लगे कि,—महाराज! कोई पापी दैत्या-

धम मेरे आश्रममें आकर सब कुछ ध्वंस कर डालता है। वह अहर्निश सिंह, हाथी तथा अन्यान्य छोटे शरीर वाले वनचर जन्तुओंका रूप धारण कर ऐसा विघ्न करता है कि, मेरे समाधि ध्यान युक्त अथवा मौनव्रत धारण किये हुए रहनेपर मेरा चित्त विचलित हो जाता है। महाराज! आप उसे क्रोधाग्निसे दग्ध करनेमें समर्थ हैं। मैं इस विषयमें असमर्थ हूं। मानलिया जाय कि, मैं यह काम कर भी सकूँ, तो भी ऐसा अवैध कार्य करके चिरकालसे दुःखोपार्जित तपस्याका अपव्यय करना मैं नहीं चाहता। जो हो, राजन्! एक दिन मैं उस (दैत्य) से अत्यन्त क्लेश पानेके कारण उदास होकर दीर्घ निःश्वास परित्याग कर रहा था कि, उसी क्षण आकाशसे यह घोड़ा टपक पड़ा। साथ ही आकाशवाणी हुई, सो मैं कहता हूं, हे नरनाथ! आप सुनिये। दैव वाणी हुई कि,—हे द्विज श्रेष्ठ! तुम्हें यह जो घोड़ा मिला है, यह सूर्यकी तरह अश्रान्त भावसे सारे भूमण्डलमें घूम सकता है। पाताल, आकाश, जल अथवा पर्वत कहीं उसकी गति कुण्ठित नहीं होगी। यह समस्त दिशाओंमें भ्रमण करनेमें समर्थ होगा। यह अश्व अविश्रान्त रूपसे समस्त भूमंडलमें गमन करनेमें समर्थ होनेके कारण 'कु-वलय' के नामसे प्रसिद्ध होगा। हे द्विज श्रेष्ठ! शत्रुजित् नामक राजाका पुत्र ऋतुध्वज इस अश्वरत्न पर आरोहण कर जो पापी दानवाधम रातदिन तुम्हें क्लेश दिया करता है, उसे मार डालेगा और इस अश्वके द्वारा ख्यातिलाभ करेगा।" राजन्! इसी हेतुसे मैं इसे लेकर आपके पास उपस्थित हुआ हूं। आप मेरी तपस्याके पुण्यके भागी हों और उस तपोविघ्नकारी दैत्यका विनाश करें। हे भूपाल! मैं जो यह अश्वरत्न लाया हूं, उसे ग्रहण कर अपने पुत्रको ऐसी आज्ञा करिये, जिससे धर्मका लोप न हो ॥ ४१–५५ ॥ अनन्तर धर्मात्मा शत्रुजित् ब्राह्मणका वह वाक्य श्रवण कर बड़े ही विस्मित हुए। उन्होंने मङ्गलाचारादि सम्मानपूर्वक अपने पुत्र ऋतुध्वजको उस घोड़ेपर चढ़ाकर मुनिवर गालवके साथ विदा किया। मुनिने भी ऋतुध्वजको साथ लेकर अपने आश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ ५६–५७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका कुवलय प्राप्ति नामक
बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इक्कीसवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

पिताने कहा,—मुनिवर गालवके साथ जाकर उस राजपुत्रने क्या किया, वह कहो । वत्स ! तुम्हारी यह कथा बड़ी विचित्र है । दोनों पुत्र बोलेः—राजपुत्र ऋतुध्वजने गालव मुनिके मनोहर आश्रममें रहकर ब्रह्मवादियोंके समस्त विघ्नोंका नाश कर दिया । वीर कुवलयाश्व गालव मुनिके आश्रममें वास कर रहा है, यह मद और गर्वसे उन्मत्त दैत्याधमको विदित नहीं था । इसीसे वह सूअरका रूप धारण कर सन्ध्योपासनामें निमग्न गालवको सतानेके लिये उनके आश्रममें आया, शूकर मूर्ति धारण कर उसने ज्योंही दुष्टता करना आरम्भ किया, त्योंही मुनि शिष्य गण तार स्वरसे चीत्कार करने लगे । वह सुनते ही राजपुत्रने धनुष धारण कर अश्वपर शीघ्र आरोहण किया और वराहको लक्ष्यकर उस पर धावा बोल दिया । मनोहर चित्रकारी जिस पर की गयी थी, उस धनुषको उसने ताना और अर्धचन्द्राकार बाणसे शूकरको आहत कर दिया । वह दैत्य उसके बाणसे आहत होकर अपने प्राण बचानेके लिये पर्वतों और वृक्षोंसे व्याप्त महारण्यमें घूमने लगा । पिताकी आज्ञासे (ब्राह्मण रक्षामें) नियुक्त हुए राजपुत्रके संकेतसे मनके समान वेगवाला वह अश्व भी अत्यन्त वेग से उस दैत्यके पीछे दौड़ा । तब वह वेगवान दानव बड़े वेगसे सहस्रयोजन भागकर पृथ्वीके गर्भमें बने हुए एक गढ़ेमें कूद पड़ा ॥१-६॥ उसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्र भी उस अन्धकाराच्छन्न बड़े गढ़ेमें कूदा । परन्तु फिर वह सूअर राजपुत्रको कहीं दिखाई नहीं दिया । जब राजपुत्र प्रकाशमय पातालमें पहुंचा, तो वहां भी उसे वह दैत्य देख नहीं पड़ा । पातालमें पहुंचने पर राजपुत्रको वहां सैकड़ों सोने के महलोंसे भरी और सुन्दर आकार (चारदीवारी) से घिरी अमरावतीके समान एक नगरी दिखाई दी । उस नगरीमें प्रवेश करनेपर वहां एक भी मनुष्य नहीं देख पड़ा । अनन्तर इधर उधर घूमते हुए शीघ्रतासे जाती हुई एक रमणीको उसने देखा । राजपुत्रने उस कृशाङ्गीसे जिज्ञासाकी,–तुम किसकी ओरसे भेजी जाकर किसके पास जा रही हो ? उसके इस प्रकार पूछनेपर उस भामिनीने कोई उत्तर नहीं दिया । वह शीघ्र गतिसे एक अटारी पर चढ़ गयी । राजपुत्रने अश्वको वहीं एक स्थानमें बांध दिया और आश्चर्ययुक्त होकर निःशङ्क भावसे उस कामिनीका अनुसरण किया ॥१०-१५॥ महलके ऊपर चढ़कर राजपुत्रने देखा कि, सोनेके पलङ्गपर सकामा रतिके समान एक युवती बैठी हुई है । उसका मुख मेघ रहित चन्द्रमाके समान था, नितम्ब और स्तन पुष्ट थे, रूप मनको हर ले रहा था, ओठ बिम्बाफलके समान थे, शरीर न अति स्थूल न अति दुर्बल ही था, नील कमलके

समान आंखें थीं, अङ्ग अङ्गमें यौवन भरा था, नख कुछ उन्नत और आरक्तवर्ण थे, देह अति कोमल था, हथेली और पैरोंके तलवे लाल थे, हाथीकी सूँडकी तरह ऊरुयुगल सुडौल थे, दन्तपंक्ति सुन्दर थीं और केश काले महीन और लम्बे थे। राजपुत्रने अनङ्गलताकी तरह उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको पातालकी देवता ही समझा। उस कल्याणी रमणीने भी नीले और घुंघराले बालोंसे सुशोभित पीनवक्ष, पीनस्कन्ध और पीनबाहु राजकुमारको अवलोकन कर जाना कि, ये ही रतिपति कामदेव हैं। फिर उस कृशाङ्गी महाभागाको बड़ा चित्त-क्षोभ हुआ और वह सहसा उठ खड़ी हुई। ज्यों ही उसने आंख उठाई, त्यों ही वह लज्जा-विस्मय और दीनताके वशीभूत होगयी और सोचने लगी कि यह कौन है; देवता है, यक्ष है, गन्धर्व है, नाग है या विद्याधर है अथवा कोई पुण्यवान मनुष्य इस स्थानमें आया है। इस प्रकार वह मदिरेक्षणा पातालमें नाना प्रकारकी कल्पना करती हुई लम्बी उसासें भरने लगी और पलङ्ग पर बैठकर सहसा मूर्छित हो गयी। राजपुत्र भी उस समय काम बाणके आघातसे व्यथित हृदय होकर कोई भयकी बात नहीं, है डरोमत, यह कहते हुए उसे ढाढस बँधाने लगा और जो रमणी उसे पहिले देख पड़ी थी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर ताड़के पंखेसे उसे हवा करने लगी ॥ १६–२५ ॥ अनन्तर राजपुत्र बहुत आश्वासन देकर उसे जब सुधमें लाया, तब उससे उसकी मूर्छाका कारण पूछने लगा। किन्तु उस लज्जावती कामिनीने उससे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब निवेदन किया। उस भामिनी (सखी) ने भी उसके उपदेशानुसार राजपुत्रके देखनेसे ही उसे क्यों मूर्छा आगयी, इसका कारण और उस रमणीका समस्त वृत्तान्त विस्तृत रूपसे राजपुत्रको कह सुनाया। सखीने कहा,—हे प्रभो! स्वर्गमें विश्वावसु नामक जो गन्धर्वराज हैं, यह सुभ्रू (सुन्दर भौंहोंवाली) उन्हींकी कन्या है और इसका नाम मदालसा है। एक दिन यह अपने उद्यानमें खेल रही थी कि, अवसर देखकर वज्रकेतु नामक पातालवासी दानवका पुत्र, जो पातालकेतुके नामसे विख्यात है और जो बड़ा ही उग्रमूर्त्ति और शत्रुओंका नाश करनेमें समर्थ है, वह दुरात्मा अपनी तमोमयी मायाको फैलाकर इस असहाय बालाको उठा लाया। उस समय मैं वहाँ नहीं थी ॥ २६–३० ॥ आगामी त्रयोदशीको वह असुर इसके साथ विवाह करेगा। परन्तु शूद्र जिस प्रकार वेदोंकी श्रुतिका अधिकारी नहीं होता, उसी प्रकार वह असुर भी इस सुन्दरीके योग्य पात्र नहीं है। जो हो, कलकी बात है कि, जब यह आत्महत्या करने पर तुल गयी, तब सुरभिने कहा कि, बेटी! यह दानव तुम्हें प्राप्त नहीं करेगा। यह जब मृत्युलोकमें जायगा; तो जो व्यक्ति इसे बाणसे आहत करेगा, वही व्यक्ति शीघ्र ही तुम्हारा पति होगा। मैं इसकी सखी हूं और मेरा नाम कुण्डला है। मैं विन्ध्यवानकी मनस्विनी

कन्या और वीर पुष्कर मालीकी पत्नी हूं। मेरे पति देव शुम्भके हाथों मारे गये, तबसे मैं अपना परलोक बनानेका निश्चय कर दिव्य गतिसे (आकाश मार्गसे) नाना तीर्थोंमें भ्रमण करती रहती हूं। दुष्टात्मा पाताल केतुने आज वराहका रूप धारण किया था। मुनिगणकी रक्षा करनेके निमित्त किसीने आज उसे बाणसे विद्ध किया है। यह बात सच्ची है या नहीं, इसका पता लगानेके लिये मैं त्वरासे गयी थी, तो देखा कि, सचमुच किसीने उसे बाणसे आहत किया है। अब यह जो मूर्छित होगयी, इसका कारण सुनिये। हे मानद ! इसने जबसे आपको देखा, तभीसे यह आप पर अत्यन्त रीझ गयी है। क्योंकि आप देखनेमें देवपुत्रके सदृश हैं और मधुर भाषण आदि अनेक गुणोंसे युक्त हैं। परन्तु जिस व्यक्तिने उस दैत्यको विद्ध किया है, उसके सिवा अन्य किसीकी यह अर्धाङ्गिनी हो नहीं सकती। इसीसे इसको अत्यन्त मोह प्राप्त हुआ और इसे मूर्छा आगयी। क्यों न मूर्छा आवे ? (इच्छित वर न मिलनेसे) इसे आजीवन दुःख भोगना होगा। देखिये, इसका मन आप पर अनुरक्त है, किन्तु दूसरा ही कोई इसका पति होगा। क्योंकि सुरभिका वचन मिथ्या हो नहीं सकता। अतः अब इसे सारा जीवन दुखमें ही बिताना पड़ेगा ॥३१-४१॥ प्रभो ! मैं दुखिया इसके प्रेमके कारण इसके पास आयी हूं। क्योंकि सखीके देह और अपने देहमें कोई विशेषता नहीं है। अर्थात् दोनोंके सुख दुःख समान हैं। यह शोभना यदि अपने चित्तके अनुसार वीर पतिको पा जायगी, तो मैं भी निश्चिन्त होकर तपश्चरण कर सकूंगी। अस्तु, हे महाभाग ! आप कौन हैं और यहां किस हेतुसे आपका आगमन हुआ है ? क्या आप देवता हैं, दैत्य हैं, गन्धर्व हैं, पन्नग हैं या उरग हैं। क्योंकि यहां मनुष्य आ नहीं सकता और मनुष्यका देह भी आप जैसा नहीं होता। अतः मैंने जिस प्रकार सब सत्य बातें कहीं, उसी प्रकार आपभी अपना सब यथार्थ वृत्तान्त कहिये। कुवलयाश्व, (ऋतुध्वज) ने कहा हे धर्मज्ञे ! तुमने जो यह पूछा कि, आप कौन हैं और यहां आप किस लिये आये हैं, तो हे निर्मल चित्तशीले ! मैं आरम्भसे अपना सब वृत्तान्त कहता हूँ, तुम श्रवण करो। मैं राजा शत्रुजितका पुत्र हूं। हे शुभे ! मैं पिताकी आज्ञासे मुनिगणकी रक्षाके निमित्त गालवमुनिके आश्रममें आया था। वहां धर्मचारी मुनियोंकी रक्षा कर रहा था कि इतनेमें कोई सूअरका रूप धरकर मुनियोंको (तपस्यामें) विघ्न करनेके लिये आ पहुंचा ॥४२-४८॥ मैंने जब उसे अर्धचन्द्राकार बाणसे विद्ध किया, तो वह बड़े वेगसे भागा, मैंने भी घोड़ेपर चढ़कर उसका पीछा किया। अनन्तर वह एक गढ़ेमें कूदा, तो मैं भी घोड़े सहित उस गढ़ेमें कूद पड़ा फिर घोड़े पर चढ़ा हुवा मैं अकेला इधर उधर घूमता हुआ प्रकाशमें आया, तो तुम मुझे देख पड़ीं। तुमसे पूछने पर भी जब तुमने मुझे कोई उत्तर नहीं दिया, तब तुम्हारे पीछे पीछे मैं भी इस महलमें चला आया। यह सब मैंने अपना वृत्तान्त सत्य कहा है :

हे शुचिस्मिते ! देवता, दानव, पन्नग, गन्धर्व अथवा किन्नर इनमेंसे मैं कोई नहीं हूं, मैं मनुष्य हूं । हे कुण्डले ! समस्त देवता आदि मेरे पूज्य हैं । मेरे मनुष्य होनेमें तुम किसी प्रकारका सन्देह न करो ॥ ४६-५३ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—राजकुमारका वृत्तान्त सुनकर वह भामिनी कन्या (मदालसा) अत्यन्त आल्हादित होकर लज्जाके कारण जड़के समान हो, सखीका सुन्दर बदनमण्डल निहारने लगी और कुछ बोल नहीं सकी । तब सखी कुण्डला भी अत्यन्त प्रसन्न चित्तसे मदालसासे कहने लगी कि,—हे सुरभिवचनानुगे ! इन्होंने सब यथार्थ ही कहा है । फिर राजपुत्रसे बोली,—हे वीर ! आपने जो जो कहा, वह सब सत्य और असन्दिग्ध है । ऐसा न होता, तो आपको देखते ही इसका हृदय आपमें इस प्रकार स्थिर कैसे होता ? देखिये, उज्ज्वल कान्ति चन्द्रमामें, प्रभा रविमें, ऐश्वर्य धन्य पुरुषमें, धृति वीरमें और शान्ति उत्तम पुरुषमें ही रममाण होती है । अतः अपने उस दानवाधमको विद्ध किया है, इसमें सन्देह नहीं है । गोमाता सुरभि कभी झूठ कह नहीं सकती । आपसे सम्बन्ध प्राप्त कर मेरी यह सखी धन्य और सौभाग्यवती हुई है । अतः हे वीर ! अब यथाविधि जो कर्त्तव्य है, उसका आप अनुष्ठान कीजिये ॥ ५४—५६ ॥ नागकुमार बोले,—पिताजी ! राजपुत्रने कहा,—मैं पराधीन हूं । पिताकी आज्ञाके विना इस बालासे मैं कैसे विवाह कर सकूँगा ? कुण्डलाने कहा,—आप ऐसा न कहें । यह देवकन्या है, इसके साथ आप विवाह कीजिये । राजपुत्रने कुण्डलाकी बात मान ली । जब विवाहकी बात पक्की हो गई, तब कन्या मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बरुको स्मरण किया । स्मरण करते ही मन्त्रवेत्ता तुम्बरु उसी समय समिधा और कुश हाथमें लेकर वहां उपस्थित हो गये । उन्होंने मदालसाके प्रेम और कुण्डला के गौरवका विचार कर मदालसाको मङ्गल वस्त्राभूषण पहिनाकर और वैवाहिक होमकर सब विधि सम्पन्न किया और इस प्रकार मदालसा और ऋतुध्वजको वैवाहिक सूत्रमें बांध दिया । फिर जहांसे वे आये थे, वहीं अपने आश्रममें तपस्याके निमित्त चले गये ॥ ६०-६४॥ फिर सखी कुण्डलाने मदालसासे कहा हे वरानने ! तुम रूपवती हो । तुम्हारा इन (राजपुत्र के साथ मिलन हुआ देख मैं कृतार्थ हुई । अब मैं तीर्थोंमें जाकर वहांके जलसे अपना पाप धोऊंगी और विशुद्ध हृदयसे अतुल तपस्या करूंगी; जिससे मेरी फिर यह अवस्था न हो, अर्थात् जन्मान्तरमें मैं विधवा न होऊं । जब वह जानेको उद्यत हुई, तब सखी (मदालसा) के स्नेहके कारण उसका कण्ठ भर आया । रुक रुक कर बोलने लगी । मदालसाके आश्रयसे रहनेके कारण वह विनीत हुई और राजपुत्रसे बोली, हे अपरिमित बुद्धिमान् ! प्राज्ञ पुरुष भी आप जैसे व्यक्तिको उपदेश देनेमें समर्थ नहीं हो सकते । मैं स्त्री हूं, मेरी तो बात ही क्या है ? इसीसे मैं आपको उपदेश नहीं देती । किन्तु इस सखीके स्नेहमें मेरा मन अत्यन्त

आकृष्ट हुआ है और आपके द्वारा मैं आश्वसित (विश्रम्भित) हुई हूं। इस कारण हे अरि-सूदन! आपको कुछ स्मरण करा देती हूँ कि, पतिके द्वारा पत्नीका सर्वदा रक्षण और पालन होना चाहिये। पत्नी भर्तृसहायिनी (पतिको सहायता देनेवाली) होनेसे धर्म, अर्थ और काम तीनोंकी भलीभांति सिद्धिकी कारण होती है। भार्या और भर्ता दोनों जब परस्परके वशवर्ती होते हैं, तभी धर्म, अर्थ, और काम तीनोंकी सङ्गति होती है, धर्मादि त्रिवर्ग भार्यासे ही प्राप्त होनेके कारण जिस प्रकार पुरुष भार्याके विना धर्म, अर्थ और कामको प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते, इसी प्रकार स्त्रियां भी पतिके विना धर्मादि साधनमें सक्षम नहीं हो सकतीं। क्योंकि धर्म, अर्थ, और काम दाम्पत्यको ही भलीभांति आश्रय करके रहा करते हैं। हे राजनन्दन! भार्या न हो, तो अकेला पुरुष देवता, पितृ, सेवक और अतिथिका पूजा-रूपी धर्माचरण करनेमें समर्थ नहीं होता। पुरुष अनायास प्राप्त अर्थको अपने घर ले भी आवे, तो पत्नीके न रहने पर अथवा दुष्टा भार्या होनेपर वह सब नष्ट हो जाता है। भार्याके न रहनेसे कामकी चरितार्थता नहीं होती, यह तो प्रत्यक्ष ही जाना जा सकता है। अधिक क्या कहूं? स्त्री और पुरुष दोनों यदि समान धर्मका अवलम्बन करें, तभी वे त्रयीधर्मका लाभ करनेमें समर्थ होते हैं। पुरुषको यदि साध्वी पत्नीकी प्राप्ति हो तो उससे पुत्रोत्पादन करने पर पितृगणको, अन्नादि साधन द्वारा अतिथियोंको और पूजादि द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट किया जा सकता है। स्वामीके विना स्त्रियोंके धर्म, अर्थ, और कामका भी अच्छी तरह विस्तार नहीं हो सकता। क्योंकि यह त्रिवर्ग दाम्पत्यभाव पर ही समाश्रित है। जो हो, आप दोनोंके निकट मेरा यही निवेदन है कि, इस समय मुझे अनुमति दें, तो मैं अपने इच्छित स्थानमें चली जाऊं। मैं आशीर्वाद देती हूँ कि, आप दोनों परस्पर मिलकर धन, पुत्र, सुख और दीर्घायु प्राप्तकर फूलें और फलें॥ ६५-७८॥ नागराजके पुत्रोंने कहा,—कुण्डलाने इस प्रकार उपदेश देकर और अपनी सखीको आलिङ्गन तथा राजपुत्रको नमस्कार कर अपने इच्छित स्थानमें गमन किया। तब शत्रुजित् राजाके पुत्र ऋतुध्वजने मदालसाको अपने साथ उस (कुवलय) अश्वपर चढ़ाकर ज्योंही पातालसे निकलकर जाना चाहा, त्योंही दानवोंको इसका पता लग गया। "पातालकेतु जो कन्यारत्न स्वर्गसे लाया था, वह हरी जा रही है, हरी जा रही है" ऐसा कहकर सब दैत्य चिल्लाने लगे। अनन्तर पातालकेतु सहित दानव सैन्यपरिघ, खड्ग, गदा, शूल बाण आदि आयुध लेकर "ठहर ठहर" कहता हुआ राजपुत्रपर शर, शूल आदि अस्त्रोंकी वर्षा करने लगा। उस समय अतिबलशाली शत्रुजितके पुत्रने हंसते हंसते लीलामात्रसे अपने बाणोंके द्वारा दानवोंके सब अस्त्र छिन्नविच्छिन्न कर दिये। तब ऋतुध्वजके बाणोंके द्वारा दानवोंके खड्ग, शक्ति, ऋष्टि, बाण आदि टूक टूक होकर इतने गिरे कि, उनसे क्षणमात्रमें पाताल पटगया।

फिर राजपुत्रने 'त्वाष्ट्र' नामक अस्त्र ग्रहण कर दानवोंपर फेका। उस भयङ्कर अस्त्रसे आगकी लपटें निकल रही थीं। उस अस्त्रमें पातालकेतु सहित सब दानवोंकी हड्डियां चूर-चूर होगयीं। यही नहीं, कपिल मुनिके तपस्तेजसे सगर पुत्र जिस प्रकार भस्म हो गये थे, उसी प्रकार क्षणमात्रमें उन दानवोंकी वे टूटी-फूटी हड्डियां भस्म हो गयीं ॥ ८०—८८ ॥ इस प्रकार असुर कुलका नाशकर वह राजपुत्र (ऋतुध्वज) उस स्त्रीरत्न (मदालसा) को साथ लेकर घोड़ेपर सवार हो, अपने पिताकी राजधानीमें आ पहुँचा और उसने पिताको प्रणामकर पाताल गमन, कुण्डलासे भेंट, मदालसाप्राप्ति, दानवोंके साथ युद्ध, अस्त्रद्वारा उनका संहार, पुनः लौटआने आदिका सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस प्रकार उस सुन्दर चरित्रवाले पुत्रका चरित्र श्रवणकर उसके पिता परम प्रसन्न हुए। उन्होंने पुत्रको छातीसे लगा लिया और कहा, हे पुत्र! जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भयसे रक्षित हुए, उस महात्मा सत्पात्र [पुत्र] के द्वारा मैं भी तरगया। हे वत्स! मेरे पूर्व पुरुषोंद्वारा जिसकी प्रसिद्धि हुई और मैंने जिसका विस्तार किया, हे वीर! तुम्हारी पराक्रमशीलतासे वह यश बहुतही बढ़गया है ॥ ८९—९४ ॥ देखो, पिताके द्वारा जो यश, बल अथवा धन उपार्जित हुआ हो, उसे जो नष्ट नहीं होने देता और सुरक्षित रखता है, वह पुरुष 'मध्यम' कहाता है। औरजो व्यक्ति पितासे भी बढ़कर वीर्यशाली होकर अपनी शक्तिके द्वारा यश, बल और धनको बढ़ाता है, प्राज्ञ पुरुष उसको 'उत्तम' कहकर गौरव करते हैं। तथा जो व्यक्ति पिताके द्वारा उपार्जित यश, बल और धनको नष्ट कर देता है, वह पण्डितों के द्वारा 'अधम' कहकर वर्णित होता है। अस्तु, वत्स! मैं पहिले केवल ब्राह्मणोंकी ही रक्षा कर सका था, किन्तु तुमने ब्राह्मणोंकी रक्षाके साथ ही साथ पाताल गमन और असुर विनाश भी किया है। अन्ततः मुझसे अधिक कार्य करनेके कारण तुम्हारी गणना 'उत्तम' पुरुषोंमें की जा सकती है। हे बालक! तुम धन्य हो और मुझसे भी अधिक ऐसे गुणशाली तुम जैसे पुत्रको प्राप्त कर पुण्यवानोंमें मैं प्रशंसाके पात्र समझा गया हूं। हे वत्स! जो व्यक्ति पुत्र द्वारा और प्रज्ञा, दान, अथवा पराक्रमके द्वारा विशेषताको प्राप्त नहीं करता, मेरी समझमें वह व्यक्ति पुण्यका आनन्द नहीं पा सकता ॥ ९५—१०० ॥ जो मनुष्य पिताके द्वारा लोगोंमें प्रसिद्ध होता है, उसके जन्मको धिक्कार है। किन्तु जिस पुरुषकी पुत्रके द्वारा ख्याति होती है, उस सुपुत्रको जन्म देनेवाले पिताका जन्म सार्थक है। जो अपने नामसे विख्यात होता है, वह धन्य पुरुष उत्तम है। जो पिता-पितामहके नामसे प्रसिद्ध होता है, वह मध्यम है। और जो पुरुष मातृपक्षसे प्रसिद्धि पाता है, वह अधम है। हे वत्स! तुम्हारा धन, बल और सुख दिन दूना रात चौगुना बढ़े और इस गन्धर्वतनयाका तुमसे कभी विच्छेद न हो। पिताके इस प्रकार कहने

और आलिङ्गन करनेके उपरान्त राजपुत्र नयी पत्नी मदालसाके साथ अपने आवासमें विदा हुआ। फिर उस पत्नी मदालसाके साथ मिलकर वह पिताके घर तथा अन्यान्य उद्यान, वन और पार्वत्य प्रदेशोंमें क्रीड़ा करने लगा। शुभमयी, कृश कटिवाली मदालसा

टीकाः—ऋतुध्वज और मदालसाका सम्वाद नाना पुराणोंमें नाना प्रकारसे पाया जाता है और इस सम्वादमें विचित्रता भी अनेक प्रकारकी है। इस कारण पाठकोंके शंका समाधानके लिये, विचारकी आवश्यकता है। जिससे इस पवित्र गाथाके समझनेमें सुभीता हो और शंकाओंका अवसर न रहे। यह हम पहिले ही कह चुके हैं कि, वेद और पुराणशास्त्रमें समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीय-भाषा तीनोंके प्रयोग अलग अलग आते हैं और उनके लक्षण अलग अलग हैं। परन्तु किसी किसी विशेष लक्षणयुक्त गाथाओंमें इन तीनों भाषाओंका सम्मिलित प्रयोग पाया जाता है। उदाहरण रूपसे कहा जाता है कि, श्राद्धमें पिण्डभक्षण और तत्पश्चात् फलसे मदालसाकी पुनरुत्पत्ति जैसे विषय लौकिक भाषाके हैं। धर्म-शास्त्रीय उपदेश और अध्यात्म शास्त्रीय-उपदेशसमूह समाधि भाषाके विषय हैं और यह परकीय-भाषामयी गाथा नाना कल्पोंसे सम्बन्ध रखनेके कारण विभिन्न पुराणोंमें इसका रूपान्तर पाया जाता है। हम यह पहिले ही लिख चुके हैं कि, पुराणोंमें जहां नाम और रूपका सम्बन्ध है, उस विषयका वहां त्रिभावात्मक विज्ञान होना अवश्यसम्भावी है और हम यह भी दिग्दर्शन करा चुके हैं कि, समष्टि सृष्टिसे सम्बन्ध रखनेवाले जीवन चरित्रका आविर्भाव विभिन्न कल्पोंमें हुआ करता है और तत्तत्कल्पोंके देश, काल, पात्रानुसार उन गाथाओंमें भेद प्रतीति होना भी सम्भव है। जैसे कि, शुकदेवका जो चरित्र विष्णुभागवतमें है और जो चरित्र देवीभागवतमें है, उसके देखनेसे इस बातकी सत्यता जानी जायगी। शुकदेवका आविर्भाव सृष्टिके क्रमके नियमानुसार एक ही होनेपर भी विभिन्न कल्पोंके देश, काल और पात्रोंके अनुसार चरित्रभेदका वर्णन स्वाभाविक है। यह चरित्र भी उसी प्रकार विभिन्न कल्पोंमें आविर्भूत होनेवाला है और नाना कल्पोंके देश काल पात्र और शक्तिके अनुसार इन चरित्रोंमें भेद प्रतीति भी होगी। इस अलौकिक चरित्रमें और बहुत सी विचित्र घटनाओंका उल्लेख है। यथा,—गन्धर्वलोक, पाताललोक और मृत्युलोकका पारस्परिक सम्बन्ध ऐसा देखा जाता है, जैसा इस समय देख नहीं पड़ता। अश्व आदिमें ऐसी शक्तिका होना, जैसा इस समय देखनेमें नहीं आता। देवपिण्ड और मानवपिण्डके जीवोंमें परस्परमें विवाह होना और उससे मानवी सृष्टिका उत्पन्न होना, जो इस समय देखनेमें नहीं आता। पाताललोक असुरलोक होनेपर भी उसमें परोपकारी दैवी सम्पत्तिशाली जीवोंकी उत्पत्ति होना और आसुरी प्रजामें अथवा दैवी प्रजामें भी मनुष्यके सदृश तपस्याकी प्रवृत्ति होना, इत्यादि। इन सब वर्णनोंके पाठ करनेसे साधारण पाठकोंके हृदयोंमें पुराणकी असङ्गतता प्रतीत होती है। परन्तु उसका कारण असङ्गतता नहीं, आध्यात्मिक ज्ञानका अभाव ही है। लौकिक इतिहासके पाठ करनेसे जाना जा सकता है कि, दो चार हजार वर्षोंके अन्दर ही जीवसृष्टि, मनुष्य सृष्टि और आधिभौतिक सृष्टिमें कितने बड़े बड़े अन्तर दिखायी पड़ते हैं। सात सूंड़का हाथी अथवा तीन सूंड़का हाथी जो वर्त्तमान हाथीसे कई गुना बड़ा था; अथवा ऐसे ऐसे पक्षी जो शेरको उठा ले जा सकते थे, इत्यादि जीव पहिले थे, परन्तु अब उनका पता तक नहीं है और अभी उनके कंकाल भी मिलते हैं। इसी प्रकार भारतवर्षमें मिट्टीकी तरह सुवर्णको खोदकर निकालकर ढेर लगाया जाता था। इसका प्रमाण ग्रीस देशके इतिहासमें पाया जाता है। भारतवर्षकी भूमिकी वह शक्ति अब नष्ट हो गयी है। मनुष्योंके कंकाल अब भी इतने बड़े मिलते हैं, जैसे कि, सत्ययुगके मनुष्योंका वर्णन पाया जाता है। थोड़े ही दिनोंमें सृष्टिका जब यह परिवर्त्तन देखनेमें आता है, तो कल्पान्तरमें

भी प्रतिदिन प्रातःकाल सास-ससुरकी चरण वन्दना करतीं और पतिके साथ रममाण होने लगी ॥ १०१—१०६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके कुवलयाश्वीय-प्रकरणान्तर्गत मदालसा परिणयन नामक इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अलौकिक परिवर्त्तन और अलौकिक भेद प्रतीतिका होना सम्भव ही है। मनुष्यके ४३२०००० वर्षोंकी सत्य, द्वापरादि युगोंकी एक चौकड़ी होती है। इस प्रकारके ७१ महायुग अर्थात् चौकड़ी बीत जानेपर एक मन्वतर कहाता है। अर्थात् उस समय काल प्रमापक देवता मनु बदल जाते हैं और इस प्रकारके १४ मन्वन्तरोंका एक कल्प होता है। ऐसे प्रत्येक कल्पमें नवीन सृष्टिमें अनेक अलौकिक विचित्रता होगी, इसमें सन्देह नहीं है। अतः किसी किसी कल्प विशेषमें सृष्टिकी शक्ति और उसमें उत्पन्न जीवोंकी शक्ति अलौकिक अथवा नूतन भावोंको धारण किया करती है। सुतरां किसी किसी कल्पमें पाताललोक, स्वर्गलोक और मृत्युलोकका पारस्परिक सम्बन्ध हो सकता है. इसमें सन्देह करनेकी कोई बात नहीं है। अब भी इसी युगमें कहीं कहीं प्रमाण मिलता है कि, प्रेत योनि और मनुष्ययोनिका सम्बन्ध होता है। इतना अवश्य है कि, इस प्रकारकी मैथुनी क्रियासे सृष्टि नहीं होती। देवयोनि अथवा असुरयोनियोंमें दैवी सिद्धियोंका अवसर रहनेसे उनके द्वारा सृष्टि भी हो जाना वर्त्तमान उदाहरणानुसार असम्भव नहीं है और पाण्डवादिकी उत्पत्ति इसी दैवी शक्तिका फल है, ऐसा सुगमतासे मान सकते हैं। कल्पान्तरकी इसी दैवी शक्तिके आविर्भावके अनुसार हस्ती, अश्व, गोआदि पशुओंमें अलौकिक दैवी शक्तिका विकास होना असम्भव नहीं है। नागलोक आदि पाताललोकके अन्तर्गत हैं और गन्धर्वलोक आदि सप्तस्वर्गमेंसे भुवर्लोकके अन्तर्गत है। यद्यपि सप्तपातालमें असुरोंका और सप्तस्वर्गमें देवताओंका निवास है, परन्तु देवलोक और असुरलोक दोनों ही दैवी सृष्टिके अन्तर्गत हैं और असुर भी एक प्रकारके देवता ही हैं। क्योंकि दोनोंका पिण्ड देवपिण्ड कहाता है। ऐसा होनेपर भी जैसी मनुष्य पिण्डमें दैवी, आसुरी और राक्षसी इस प्रकार त्रिविध सृष्टि देखनेमें आती है, जैसा कि, हम पहिले कह चुके हैं, वैसी ही असुरलोकमें और देवलोकमें भी यह त्रिविध सृष्टि पायी जाती है। भेद इतना ही है कि, असुरलोकोंमें आसुरी सृष्टिका आधिक्य होता है, देवलोकोंमें दैवी प्रकृतिके पिण्ड अधिक मिलते हैं और मृत्युलोकमें तीनों तरहके पिण्ड मिलनेपर भी विभिन्न कालके समष्टि कर्मोंके अनुसार किसी समय दैवी, किसी समय आसुरी और किसी समय राक्षसी प्रजाका आधिक्य दिखायी देता है। अतः असुरलोकमें दैवी सम्पत्तिके जीवोंका होना सम्भव ही है। तपोधर्म जीवमें अलौकिक शक्तिका संचार कराता है और तपोधर्मके द्वारा साधक असम्भव सम्भव कर सकता है। स्वर्ग, पाताल और मृत्युलोकमें जो अलौकिक शक्तियां अथवा ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं वे तपके द्वारा ही प्राप्त होते हैं, अतः देवताओं और असुरोंमें तपकी प्रवृत्ति होना अस्वाभाविक नहीं है और एकमात्र मृत्युलोक कर्मभूमि होनेके कारण असुरों और देवताओंको भी तपः सिद्धिके लिये मृत्युलोकका आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

बाईसवां अध्याय ।

नागराजतनयोंने कहा,—तदनन्तर कुछ काल बीतने पर राजा शत्रुजितन अपन पुत्र ऋतुध्वजको फिर आज्ञा दी कि, हे वत्स ! तुम ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये शीघ्र यात्रा करो और पृथ्वीमें पर्यटन करो। प्रतिदिन प्रातःकाल इस घोड़े पर चढ़कर देखा करो कि, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको कहीं कोई कष्ट तो नहीं है। सैकड़ों पापी और दुराचारी दानव हैं, उनसे मुनिगणको किसी प्रकारकी बाधा न हो, ऐसा यत्न करो। पिताकी इस प्रकार आज्ञा पाकर राजपुत्र ऐसा ही करने लगा। वह प्रतिदिन प्रातःकाल ही पृथ्वी पर्यटन कर आता और लौट कर पिताके चरणोंकी वन्दना करता था। शेष समय उस क्षीण-कटि (मदालसा) के साथ मनोविनोद करते हुए विताता था। इसी तरह प्रतिदिन विचरण करते हुए एक बार उसने पातालकेतु दानवका छोटा भाई तालकेतु जो यमुना तटपर आश्रम बनाकर निवास कर रहा था और जिस मायावी दानवने मुनिका रूप अवलम्बन किया था, उसको देखा। उसने राजपुत्रके साथ पूर्व शत्रुताका स्मरण कर उससे कहा,-हे राजपुत्र मैं जो कहता हूं, यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो वह करो। हे सत्यप्रतिज्ञ ! तुमने कभी किसीकी प्रार्थना को विफल नहीं किया है। हे राजपुत्र ! मैं यज्ञ करना चाहता हूँ और अपनी अभिलषित इष्टियां (यज्ञाङ्गभूत विशेष हवन) तथा अग्निचयन भी करूंगा। परन्तु मुझमें दक्षिणा देनेकी शक्ति नहीं है। अतः हे वीर ! सुवर्णदानके लिये तुम अपना आभूषण यह गलेका हार मुझे दे दो। मैं प्रजाकी श्रीवृद्धि करने वाले वैदिक वारुण मन्त्रसे जलोंके अधिपति वरुणदेवकी जलमें बैठकर प्रार्थना करने जाता हूं। जब तक मैं लौट न आऊं तब तक तुम मेरे आश्रमकी रक्षा करो ! मैं शीघ्र ही लौट आऊंगा। इस प्रकार कहनेवाले उस मुनिको प्रणामकर राजपुत्रने अपने गलेका हार उतार दिया और कहा, हे महाभाग, निःसङ्कोच भावसे आप जाइये। आप जबतक लौट न आवें, तबतक आपकी आज्ञाके अनुसार आपके आश्रमके निकट ही मैं रहूंगा। मेरे रहते आपके आश्रमको कोई हानि नहीं पहुंचा सकता। हे ब्रह्मन् ! आप निश्चिन्त होकर शान्ति पूर्वक जाइये और अपना इच्छित कार्य साधन कीजिये ॥१-१४॥

नागतनयोंने कहा,—राजपुत्रके इस प्रकार कहने पर उस कपट मुनि तालकेतुने जलमें गोता लगाया और राजपुत्र उसके मायारचित आश्रमकी रक्षा करने लगा। अनन्तर तालकेतु (राजपुत्रकी दृष्टिसे अपनेको बचाकर जलसे) निकला और राजा शत्रुजितके नगरमें जा पहुंचा। वहां जाकर मदालसा और अन्यान्य लोगोंके सामने वह कहने लगा कि, जो वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके निकट तपस्वियोंकी रक्षा करता था, उसका किसी दुष्ट दानवसे बड़ा युद्ध

हुआ। उस युद्धमें उसने अनेक ब्रह्मद्वेष्टा असुरोंको मार गिराया। परन्तु उस पापी दानवने अपनी मायाका आश्रय कर उस राजपुत्रकी छातीमें ऐसा शूल मारा कि, जिससे उसका हृदय विदीर्ण हो गया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। प्राणोत्क्रमणके समय उसने यह गलेका हार मुझे दिया और शूद्र तापसियोंने वनमें उसका दाहसंस्कार कर दिया। उसका घोड़ा आंखोंसे आंसू बहाता और त्रस्त होकर आर्तभावसे हिनहिना रहा था। उसे वह दुरात्मा दानव पकड़ कर ले गया। मैं पापी, नृशंस यह सब देखता रहा। अब आप लोगोंको जो कुछ अकालिक विधि करना हो, वह करें और यह छातीको जुड़ानेवाला कण्ठभूषण ग्रहण करें। मैं तपस्वी हूँ, मुझे सुवर्णसे क्या काम है? ॥ १५—२२ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—इतना कहकर और कुवलयाश्वके गलेका हार वहां रखकर वह तालकेतु जहांसे आया था, वहां चला गया। उस समय वहां जो लोग उपस्थित थे, वे सब शोकसे पीड़ित हो, मूर्च्छित होकर गिर पड़े। अनन्तर जब लोगोंको कुछ चेत हुई, तो राजा, रानी और समस्त अन्तःपुरवासिनी स्त्रियां अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करने लगीं। मदालसाने पतिके गलेका हार देखकर और उसके निधनकी वार्ता सुनकर अत्यन्त कातर हो, तुरन्त अपने प्रियतर प्राणोंका परित्याग कर दिया। फिर राजभवनमें जिस प्रकार क्रन्दन ध्वनि उठी, उसी प्रकार प्रजाओंके भी घर घर रोदनका महाशब्द होने लगा। राजा शत्रुजित्ने जब देखा कि, पुत्रवधू मदालसाने पतिवियोगके कारण प्राणोंका परित्याग कर दिया है, तब शान्तचित्त होकर पासके लोगोंसे समझाते हुए कहा,—आप लोग रोदन न करें। क्योंकि आपके, हमारे और सभी प्राणियोंके सम्बन्धोंकी अनित्यता जब हम देखते हैं, तब क्या पुत्र और क्या पुत्रवधू, किसीके लिये हमें शोक नहीं करना चाहिये। दोनों कृतकृत्य हो गये हैं; अतः उनके लिये शोक करना उचित नहीं है। मेरा पुत्र मेरी सुश्रूषा करनेवाला था और मेरी ही आज्ञासे ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर होकर जब उसने प्राणत्याग किया है, तब उसके लिये शोक करना बुद्धिमानोंका कर्तव्य नहीं है ॥ २३—३० ॥ जो देह अवश्य ही अस्थायी है, मेरे पुत्रने उस देहको ब्राह्मणोंकी रक्षा करते हुए छोड़ा है, अतः वह शोक करने योग्य नहीं है, उसका देहत्याग उसके लिये अभ्युदयकारी ही हुआ है। इसी तरह सत्कुलमें उत्पन्न हुई इस ललनाने जब पतिका अनुसरण किया है, तब इसके लिये भी शोक करना वृथा है। क्योंकि स्वामीके अतिरिक्त स्त्रियोंके लिये अन्य कोई देवता नहीं है। पतिवियोग होनेपर भी यदि यह जीवित रहती, तो हमें तथा बान्धवों और अन्यान्य दयावान् व्यक्तियोंको दुःखका कारण होता। इसने जब पतिनिधनकी वार्ता सुनते ही उसी क्षण प्राणत्याग कर दिया है, तब पण्डितगणको इसके लिये शोक नहीं करना चाहिये। जो रमणी पतिका देहपात होनेके पश्चात् जीवन धारण

करती है, उसीके लिये दुःख करना उचित है। जो स्वामीके साथ गमन करती है, वह कभी शोक करने योग्य नहीं है। यह कृतज्ञ होनेसे ही पतिवियोग सहन करनेमें समर्थ नहीं हो सकी। इहलोक और परलोक दोनों लोकोंमें समस्त सुखोंको देनेवाले पतिदेवको भला कौन सती मनुष्य रूपसे मानेगी? मेरे पुत्रके लिये इसे, मुझे या उसकी माताको अथवा और किसीको शोक नहीं करना चाहिये; क्योंकि ब्राह्मणोंके लिये प्राण त्याग करनेवाले उस पुत्रके द्वारा हम सबका उद्धार हुआ है। मेरे उस परम बुद्धिमान पुत्रने अपने अर्द्धभुक्त (असमयमें) देहका परित्याग कर ब्राह्मणोंके, मेरे और धर्मके ऋणसे उद्धार पा लिया है। ब्राह्मण रक्षाके निमित्त संग्राममें प्राणत्याग करते हुए अपनी माताके सतीत्व, मेरे वंशकी विशुद्धता अथवा अपनी शूरता, इनमेंसे मेरे पुत्रने किसीका त्याग नहीं किया (माताकी पवित्रतासे ही सर्वगुणालंकृत पुत्रकी उत्पत्ति होती है। और सतीत्व पर ही क्षेत्रकी पवित्रता निर्भर करती है।) ॥ ३१—३९ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—कुवलयाश्व की माताने पुत्रके निधनकी वार्ता जब राजाके सुननेके पश्चात् सुनी, तब पतिकी ओर देखकर वह भी उन्हींकी तरह कहने लगी कि, नाथ! मुनिगणकी रक्षा करते हुए मेरा पुत्र निहत हुआ है, यह सुनकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई, उतनी प्रसन्नता मुझे माता, भगिनी अथवा और किसीके द्वारा नहीं हुई थी। जो अपने बन्धु-बान्धवोंकी चिन्तामें दुःख निःश्वास परित्याग करते हुए व्याधिसे पीड़ित होकर देह छोड़ते हैं, उनकी माता वृथा ही सन्तान प्रसव करती है। जो गौ अथवा ब्राह्मणको रक्षा करते हुए संग्राममें निर्भीक चित्तसे लड़कर शत्रुओं द्वारा वीरगतिको प्राप्त होते हैं, पृथ्वीमें उन्हींकी मनुष्योंमें गणनाको जा सकती है। याचक, मित्र और शत्रु जिससे पराङ्मुख नहीं होते, उसीके द्वारा पिता पुण्यवान् रूपसे ख्यात होता है और उसीकी माता वीर-प्रसविनी कहकर प्रसिद्ध होती है। पुत्र जब रणमें काम आता है अथवा शत्रुओंको हराकर घर लौटता है, तभी स्त्रियाँ गर्भक्लेशको सफल समझती हैं ॥ ४०—४५ ॥ नागपुत्रोंने कहा,—अनन्तर राजा शत्रुजितने पुत्रवधूका अन्तिम संस्कार किया और नगरके बाहर जाकर स्नान कर पुत्रके उद्देश्यसे जलाञ्जलि प्रदानकी। इधर वह दानवाधम तालकेतु (ऋतुध्वजके सामने) यमुनाजलसे बाहर निकल कर प्रीतिपूर्ण मधुर वचनोंसे राजपुत्रसे बोला,—हे राजनन्दन! मैं तुम्हारे द्वारा कृतार्थ हुआ। तुम इस स्थानमें अविचल भावसे बैठे थे, इसीसे महात्मा जलपति वरुण देवका यज्ञकार्य, जो मेरा अभिलषित था, मेरी मायाके द्वारा सम्पन्न हुआ है। अब हे राजपुत्र! तुम गमन करो। तब राजपुत्रने मुनिको प्रणाम कर गरुड़ अथवा वायुके समान विक्रमशाली उस श्रेष्ठ घोड़े पर सवार हो, अपनी पिताकी नगरीमें लौट गया ॥ ४६—५० ॥

मार्कण्डेय महापुराणका मदालसा वियोग नामक २२वाँ अध्याय समाप्त।

तेईसवां अध्याय ।

नागपुत्रोंने कहा,—राजपुत्र ऋतुध्वजने पिता माताके चरणबन्दन तथा मदालसाके अवलोकनकी अभिलाषासे शीघ्रतासे अपने नगरमें आकर क्या देखा कि, जो नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न और उदास हो रहे थे, वे उसे देखते ही उसी क्षण विस्मित और प्रसन्न हो गये और आनन्दभरी दृष्टिसे उसे निहार कर "अहोभाग्य, अहोभाग्य" कहने लगे। वे परस्परको आलिङ्गन करते हुए बड़े ही कौतुकसे उसके आगे पीछे चारों ओर एकत्र होगये और बोले,—हे ऊरुकल्याण ! (पराक्रम शील) तुम बहुत दिनों तक जियो। तुम्हारे शत्रुओंका नाश हो और माता पिता तथा हमारे अन्तःकरणोंको अत्यन्त आह्लादित करते रहो। राजपुत्रने पुरवासियों द्वारा घिर जानेपर उस समयके उनके आनन्दसे आनन्दित हो, पिताके महलमें प्रवेश किया ॥ १—५ ॥ वहां माता पिता और अन्यान्य कुटुम्बियोंने उसे छातीसे लगा लिया और कल्याणमय आशीर्वाद दिया कि हे वत्स ! चिरंजीवी होओ। राजपुत्रने उनको प्रणाम कर बड़े ही विस्मयसे पूछा,—पिताजी ! यह सब क्या बात है ? पिताने उसे जो घटना हुई थी, उसका सब वृत्तान्त साद्यन्त कह सुनाया। जब राजपुत्रने अपनी प्राणप्रिया पत्नी मदालसाके देहान्तकी बात सुनी, तब माता पिताके सामने देखकर वह लज्जा और शोक सागरमें निमग्न होकर चिन्ता करने लगा कि, हा ! जब कि उस साध्वी बालाने मेरे मरनेकी वार्ता सुनते ही प्राण त्याग कर दिया, तब निष्ठुर चित्तवाले मुझे धिःकार है। हा ! मेरे लिये जिसने प्राण त्याग दिये उस मृगलोचनीके बिना जब मैं जी रहा हूं, तब निश्चय ही मैं नृशंस, अनार्य और अत्यन्त निर्दय हूं। वह अत्यन्त कातर होकर दीर्घ निःश्वास और मोह भरे उच्छ्वासको त्यागता हुआ सब भांति मनको सम्हाल कर विचार करने लगा कि उस कामिनीने मेरे कारण देह छोड़ा है, यदि मैं भी उसके लिये देहत्याग कर दूँ, तो उसका क्या उपकार होगा ? परन्तु ऐसा करना स्त्रियोंके लिये उचित है। यदि बार बार "हा प्रिये ! हा प्रिये ! " कह कर मैं रोऊं, चिल्लाऊं, तो भी उचित नहीं होगा। क्योंकि क्या मैं पुरुष नहीं हूं। यदि शोक सन्तप्त होकर माल्यादि त्याग कर मलिन होकर रहूँ, तौभी विपक्षियोंकी निन्दाका पात्र बनूँगा। क्योंकि शत्रुदमन और पिताकी सेवा करना ही मेरा एक मात्र कर्तव्य है। जब कि मेरा जीवन उन्हींके आधीन है, तब जीवन त्याग करना भी कदापि उचित नहीं है। मेरे विचारमें अब अन्य स्त्रीसे संभोग करना मेरे लिये त्याज्य है। यद्यपि मेरे इस आचरणसे उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं होगा, तथापि मुझे यही करना उचित है। चाहे इससे उसका उपकार हो या

अपकार, मैं इसी तरहकी कठोरताका आचरण करूंगा, जिसनें मेरे लिये प्राण तक त्याग दिये, उसके निमित्त मेरा इस प्रकार व्रती हो जाना कोई बड़ी बात नहीं है ॥ ६-१७ ॥ नागपुत्रोंने कहा, ऋतुध्वजने इस प्रकार निश्चय कर जलाञ्जलि दान तथा अन्य और्द्ध्वदेहिक क्रियाओंका सम्पादन करनेके उपरान्त कहा,—जब कि, अब मेरी तन्वङ्गी भार्या मदालसा (इस संसारमें) नहीं है, तब इस जन्ममें अन्य कोई स्त्री मेरी सहधर्मिणी हो नहीं सकती । मैं सत्य कहता हूं कि, उस मृगलोचनी गन्धर्वतनयाके अतिरिक्त अन्य किसी स्त्रीसे मेरा समागम नहीं होगा । मैं यथार्थ कहता हूं कि, उस सद्धर्मका आचरण करनेवाली गजगामिनी पत्नीको छोड़कर अन्य किसी स्त्रीका मैं अङ्गीकार नहीं करूंगा । नागपुत्र बोले,—पिताजी ! वह राजपुत्र मदालसाके न होनेसे अन्य स्त्रीसे सम्भोग न कर स्वभाव और सम्पत्तिमें जो समान हैं, उन मित्रोंके साथ सदा क्रीड़ा करता रहता है । पिताजी ! उसका यही एक मात्र प्रधान कर्तव्य-कार्य है । हे तात ! यह किसीके द्वारा साध्य नहीं हो सकता । अर्थात् मरी हुई मदालसा फिर लौटायी नहीं जा सकती । ईश्वरके लियेभी यह असम्भव है, दूसरोंकी तो बातही क्या है ॥ १८-२३ ॥ जड़ने कहा,—उनका वह वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर गहरे विचारमें पड़गये और सोच विचार कर हँसते हुए पुत्रोंसे बोले,—साध्यातीत समझकर जो मनुष्य हाथ बांधकर बैठ जाते हैं, उनकी निरुद्योगितासे ही उनके कार्यकी हानि होती है । अपने पौरुषको नष्ट न कर मनुष्योंको कार्यारम्भ करदेना उचित है । क्योंकि दैव और पुरुषार्थ परही कर्मकी निष्पत्ति अवलम्बित रहती है । अतः हे पुत्रो ! मैं अब तपाचरणकर ऐसा प्रयत्न करूँगा, जिससे यह काम शीघ्र बन जाय । अर्थात् मृत मदालसा फिर जी जाय । जड़ने कहा,—यह कहकर नागराज अश्वतरने हिमालय पर्वतके प्लक्षावतरण नामक तीर्थमें जाकर अत्यन्त उग्र तपश्चर्या करना प्रारम्भ कर दिया । वे त्रिकाल स्नानकर नियताहार और तन्मन होकर देवी सरस्वतीका स्तवन करने लगे । अश्वतर बोले,—मैं शुभमयी, जगद्धात्री, ब्रह्मयोनि सरस्वती देवीकी आराधना करनेकी इच्छासे अवनत शिर होकर प्रणाम पूर्वक उनका स्तवन करता हूं ॥ २४-३० ॥ हे देवि ! (संसारमें) जो कुछ सत् अथवा असत् मोक्ष प्राप्त करनेवाला अथवा अर्थ प्राप्त करनेवाला पद है, वह सब तुममें असंयुक्त होकरभी संयुक्तकी तरह प्रतिष्ठित है । हे देवि ! जिसमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, वह श्रेष्ठ अक्षर (अविनाशी) तुमही हो । हे देवि ! तुममें परम अक्षर परमाणुके समान स्थित हैं । यह समस्त विश्व क्षर अर्थात् विनाशी है और केवल परमब्रह्म ही अक्षर अर्थात् अविनाशी है । काष्ठमें जैसा अग्नि स्थित है अथवा भूमिमें जैसे परमाणु होते हैं, वैसाही यह सब जगत् और ब्रह्म भी तुममें अवस्थित है । हे देवि ! ॐकार, अक्षरस्थान और जो कुछ अचल और

चल हैं, और हे देवि ! जिसका अस्तित्व है और नहीं भी है, वह सब मात्रात्रयस्वरूप है । अर्थात् तुम्हारा ही आश्रय किये हुए हैं। हे देवि ! तीनो लोक, तीनो वेद, तीन विद्याएँ, तीन अग्नि, तीन ज्योति, तीन वर्ण, तीन धर्मागम, तीन गुण, तीन शब्द, तीन देव, तीन आश्रम, तीन काल, तीन अवस्थाएं, और पितृगण तथा दिवारात्रि आदि जो कुछ है, हे सरस्वति ! वह सब मात्रात्रय है और तुम्हारा रूप है ॥ ३१-३७ ॥ विभिन्नदर्शियों-की अर्थात् विभिन्न मार्गोंसे तुम्हारा साक्षात्कार करने वालोंकी सोमसंस्था, हविःसंस्था और पाकसंस्था जो ब्रह्मको आदि और सनातन सात व्याहृतियां हैं, हे देवि ! ब्रह्मवादियों द्वारा वे तुम्हारे उच्चारणसे ही की जाती हैं । इसके अतिरिक्त तुम्हारा जो अर्धमात्रान्वित परम रूप है, वह अनिर्देश्य है, अविकारी है, अक्षय है, दिव्य है और परिणामविवर्जित है । उसका वर्णन करना मेरे लिये सम्भव नहीं है । क्योंकि वह मुख, जिह्वा, तालु, ओष्ठ, आदि द्वारा उच्चरित नहीं हो सकता । इन्द्र, वसुगण, ब्रह्मा, चन्द्र, सूर्य अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ उसीके (तुम्हारेही) स्वरूप हैं । वही तुम्हारा रूप विश्वका आवास है, विश्वका आकार है, विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है, जो सांख्य, वेदान्त और वेदोंमें कथित तथा (वेदोंकी) अनेक शाखाओंसे स्थिरीकृत है, जिसका आदि, मध्य और अन्त नहीं है, जो सत् है और असत् भी है, संसारके भेदोंका आश्रयकर एक है, अनेक है और नाना प्रकार का है । जिसकी आख्या नहीं है और जो षडगुणाख्य भी है, वर्गाख्य है और त्रिगुणाश्रय है, नाना शक्तिसम्पन्नोंका जो श्रेष्ठ और एक ही शक्तिवैभव है, जो सुख-दुःखात्मक है और महान् सुखस्वरूप है, मातः ! वह रूप तुममें देखा जाता है ॥ ३८-४४ ॥ हे देवि ! इस प्रकार सकल और निष्कल सब कुछ तुम्हारे द्वारा व्याप्त है । यही नहीं, द्वैतरूपमें स्थित जो ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा परिव्याप्त है । जो समस्त अर्थ नित्य अथवा अनित्य हैं, जो स्थूल अथवा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म हैं, जो पृथ्वीमें, अन्तरिक्षमें अथवा अन्यत्र कहीं विद्यमान हैं, हे देवि ! वे सब पदार्थ तुमसे ही प्राप्त हो सकते हैं । मातः ! जो कुछ मूर्तिमान् अथवा अमूर्त है, जो समस्त प्राणियोंमें एक-एक करके कुछ विद्यमान है, जो स्वर्ग, पृथ्वी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यान्य स्थानमें व मान है, हे देवि । उन सब पदार्थोंका ज्ञान तुम्हारे सम्बन्धसे तुम्हारे ही स्वर और व्यञ्जनोंसे प्राप्त होता है विष्णुकी जिह्वास्वरूपिणी सरस्वती देवीकी इस प्रकार स्तुति करने पर (प्रसन्न होकर) देवी सरस्वती नागराज महात्मा अश्वतरसे बोलीं—हे कम्बलभ्राता उरगाधिप ! तुम्हें मैं वर प्रदान करूंगी । अतः जो तुम्हारी इच्छा हो, वह कहो । मैं तुम्हें वही प्रदान करूंगी । अश्वतरने कहा—मातः ! पहिले मेरे सहायक कम्बलको और मुझको दोनोंको समस्त स्वर सम्बन्ध प्रदान करो ॥ ४५-५० ॥ सरस्वती बोली—हे पन्नगसत्तम । तुम और कम्बल दोनों आजसे मेरी कृपासे सप्तस्वर, सप्तग्राम-

राग, सप्त गीत, सप्त मूर्छना, उनचास (कूट) तान और तीनग्राम यह सब गा सकोगे । हे अनघ ! हे भुजङ्गराज ! इसके अतिरिक्त तुम चार प्रकारके पद (ध्रुवपद), तीन प्रकारके ताल, तीन प्रकारके लय, तीन प्रकारके यति और चार प्रकारके तोद्य मैंने तुमको प्रदान किये हैं । यह सब तुम मेरे प्रसादसे अवगत करलोगे । और इनके अन्तर्गत जो कुछ स्वर-व्यञ्जनोंसे आयत्त है, वह सब मैंने तुम्हें और कम्बलको प्रदान किया है । हे पन्नग ! यह सब तीनों लोकोंमें तुम्हारे लिये है, दूसरेके लिये नहीं । स्वर्ग-लोक, मृत्युलोक और पाताललोक तीनों लोकोंमें तुमहीं दोनों इस सब विषयके प्रणेता होगे ॥ ५१–५६ ॥ जड़ने कहा,—सबकी जिह्वारूपिणी पद्मनयना सरस्वती इतना कहकर नागराजकी आँखोंके ओट होगयीं । उनके बरदानसे दोनों भाई पूर्वकथित समस्त विषयोंके ज्ञाता हो गये । पद, ताल और स्वरादिका उनको श्रेष्ठ ज्ञान हो गया । फिर

टीका:—इस सङ्गीत-सम्बन्धी विषयका रहस्य यह है । सप्तस्वर अर्थात् जो षड्ज, ऋषभ, गन्धार, पञ्चम, धैवत और निषाद संज्ञक हैं और समष्टि ॐकारसे व्यष्टि रूपसे प्रकट होते हैं । तीव्र, कोमल आदि भेद इन्हीं स्वरोंके होते हैं । ग्राम श्रेणीवाचक भी है । राग-रागिनियोंकी जाति वा श्रेणीको मेल कहते हैं । ये प्रधान सात मेलके भेदही सप्तग्रामराग कहाते हैं । सप्तगीत—देशी-विद्याके अनुसार राग-रागिनियोंके ७२ जनकमेल कहे गये हैं । जैसे धर्माङ्गों के ७२ भेदमाने गये हैं वैसेही राग-रागिनियोंके ७२ मेल किये गये हैं । जिनके नाम भिन्न-भिन्न हैं । सप्त स्वरोंके अनुसार प्रत्येकका भिन्न-भिन्न ग्राम होता है । इसी कारण सप्त ग्रामराग यहां कहा गया है । ये सात तरहकी गानेकी शैलीके भेद हैं । ये सातों भेद मार्गी-विद्यामें हैं और देशी-विद्यामें भी हैं लौकिकी-विद्यामेंभी इनकी छाया पायी जाती है । जहां स्वरका स्थैर्य होता है, वहां मूर्छनाकी उत्पत्ति होती है । मूर्छनाही हृदयको मोहित करती है । मूर्छनाएं यद्यपि इक्कीस होती हैं, तथापि सात ही प्रधान हैं । राग-रागिनियोंके बनानेमें जो स्वरोंका खिंचाव होता है, उसको तान कहते हैं । उन तानोंके अनेक भेद होने पर भी शास्त्रोंमें उनचास कूटतानें प्रधान कही गयी हैं । इनके द्वारा रागोंको वस्त्रा-लङ्कारोंसे विभूषित किया जाता है । उदारा, मुदारा और तारा इस प्रकारसे संगीतके तीन ग्राम कहे गये हैं । गीतके विस्तारमें चार पदोंसे पूर्णता मानी गयी हैं । जैसे कि, ध्रुपदमें अस्थायी अन्तरा, संचारी और आभोग माने गये हैं । यद्यपि देशी-विद्यामें सैकड़ों ताल बजाये जाते थे, परन्तु मार्गी-विद्यामें तीन ही ताल प्रधान माने गये हैं । तालके नियमबद्ध करनेका जो सूक्ष्म विज्ञान है, उसको लय कहते हैं । उसके तीन भेद हैं, यथा—द्रुत, मध्य और विलम्बित । यति विरामको कहते हैं । इसके प्रधान तीन भेद हैं । प्रथम स्वरका यति जहां मूर्छना उत्पन्न होती है । दूसरा लयका यति, जहांसे लय घटाया या बढ़ाया जाकर लयकी शुद्धता रक्खी जाती है और तीसरा रागका यति, जहां रागका विराम कर सङ्गीतका रूपान्तर किया जाता है । तोद्य अर्थात् वाद्ययन्त्र चार प्रकारके होते हैं । यथा—प्रथम मिजराब या अंगुलीसे बजनेवाले यन्त्र, दूसरे छड़से बजनेवाले यन्त्र, तीसरे फूंकसे बजनेवाले यन्त्र, और चौथे चोटसे बजनेवाले यन्त्र । इसके उदाहरण वीणा, सारङ्गी, बांसरी और ढोल आदि यथाक्रम हैं । स्वरसे आयत्त नाद और स्वरमयी सृष्टि है, यह ब्रह्मका स्वरूप है और व्यञ्जनसे उत्पन्न वेद और शास्त्रादि हैं, जो मन्त्रस्वरूप हैं । यही वाच्य-वाचकका अभेदत्व है ॥ ५१–५६ ॥

पर्वतराज कैलाशके शिखरपर विराजमान अनङ्गरिपु ईश्वर भगवान हरकी, दोनों भाई वीणाकी सहायतासे सप्तस्वरयुक्त गानके द्वारा, वाणी और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आराधना करने लगे। वे दिनमें, रात्रिमें, मध्याह्नमें और दोनों सन्ध्याओंमें यत्नपूर्वक शिवजीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हुए। वृषभध्वज भगवान शिवजी बहुत कालतक इसी प्रकार दोनोंके द्वारा स्तूयमान होने पर दोनोंके गानसे प्रसन्न हुए और दोनोंसे बोले,—तुम वर ग्रहण करो। तब अश्वतरने कम्बलके साथ उन ईश्वरको प्रणाम कर उमापति नीलकण्ठ महादेवसे विज्ञापना की कि, हे देवोंके भी देव, सर्वशक्तिमान, त्रिलोचन ! यदि आप हमपर प्रसन्न हुये हैं, तो हे देव ! हमें यह अभिलषित वर प्रदान कीजिये कि, कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा जिस अवस्थामें मरी है, उस अवस्थामें मेरी कन्या होकर वह तुरन्त जन्म ग्रहण करे। वह जैसी जातिस्मरा और कान्तियुक्त थी, वैसी ही हो और योगिनी तथा योगमाता होकर मेरे घर जन्मे ॥ ५७-६५ ॥ महादेवने कहा,—हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा है, मेरे प्रसादसे वही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे भुजङ्गम ! सुनो। हे फणिश्रेष्ठ ! जब श्राद्धकाल प्राप्त हो, तब पवित्र और संयतचित्त होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड उठाकर भक्षण कर लेना। मध्यम पिण्डके भक्षण करनेसे वह मङ्गलमयी मदालसा जिस अवस्थामें मरी थी, उसी अवस्थामें तुम्हारी मध्यम फणासे उत्पन्न हो जायगी। इसी प्रकारकी कामनासे तुम पितृतर्पण करो। ऐसा करनेसे उसी क्षण जब तुम श्वास छोड़ोगे, तब तुम्हारी मध्यम फणासे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मृत हुई थी, उसी अवस्थामें प्रादुर्भूत हो जायगी। यह सुनकर उन दोनोंने महेश्वरको प्रणाम किया और वे अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर पातालमें लौट आये ॥ ६६-७० ॥ फिर कम्बलके छोटे भाई अश्वतरने उसी तरह श्राद्ध किया और यथाविधि, मध्यम पिण्डका भोजन किया। अनन्तर अपने इच्छित विषयका ध्यान करते हुए ज्योंहीं उन्होंने श्वास विसर्जन किया, त्योंही उसी क्षण उनकी मध्यम फणासे वह कृश कटिवाली मदालसा जैसीकी तैसी निकल पड़ी। अश्वतरने यह बात किसीसे नहीं कही और उस सुदतीको अपने अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीचमें छिपा रक्खा। इधर नागराजके दोनों कुमार जो देवकुमारोंके समान थे, प्रतिदिन आनन्द पूर्वक आकर ऋतुध्वजके साथ हंसने खेलने लगे। एक दिन पन्नगपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा,—मैंने जो तुमसे पहिले कहा था, वह तुम क्यों नहीं करते ? वह राजपुत्र तुम्हारा उपकारी है। उस मान देनेवालेका प्रत्युपकार करनेके लिये उसे तुम मेरे पास क्यों नहीं लाते हो ! स्नेहवान पिताके इस प्रकार कहनेपर दोनों कुमार महामति ऋतुध्वजके नगरमें गये और उसके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥७१—७७॥ फिर उन्होंने बात बातमें कुवलयाश्वसे प्रेम पुरःसर अपने घर (पातालमें) चलनेके लिये अनुरोध किया

राजकुमारने उन्हें उत्तर दिया, यह सचमुच तुम्हारा ही घर है। धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ मेरा है, वह सब कुछ तुम्हारा ही है। यदि तुम्हारा मुझपर प्रेम है, तो मुझे जो कुछ धन अथवा रत्न आदि तुम देना चाहो, वह दे दो। यदि तुम मेरे घरको अपना नहीं समझते, तो निश्चित ही मैं दुष्टदैवके द्वारा वञ्चित किया जारहा हूं। मेरा प्रिय करना ही यदि तुम अपना कर्तव्य समझते हो और मुझे अनुग्रहका पात्र समझते हो, तो मेरे घर तथा धनमें ममत्व स्थापन करो। अर्थात् इसे अपना ही समझो। हे द्विजश्रेष्ठो! तुम्हारा जो कुछ है, वह मेरा है और मेरा जो कुछ है, वह तुम्हारा अपना है। यह मैं जो कह रहा हूं, उसे तुम सत्य समझो। वास्तवमें तुम मेरे बहिश्चर प्राणस्वरूप हो। हे द्विजश्रेष्ठो; इस प्रकार अब फिर भेदभावकी बात न कहो। मैं तुम्हें हृदयसे सौगन्ध देता हूं, तुम प्रेम पूर्वक मुझपर अनुग्रह करो ॥७८—८४॥ तब नागपुत्रोंने स्नेहार्द्रवदन होकर किञ्चित प्रणयकोप प्रकट करते हुए राजपुत्रसे कहा,—हे ऋतुध्वज! तुमने जो कुछ कहा, हम भी यही समझते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तुम अन्यथा विचार न करो। परन्तु हमारे महात्मा पितृदेवने स्वयं बार-बार कहा है कि मुझे कुवलयाश्वको देखनेकी इच्छा है। यह सुनते ही कुवलयाश्व उच्चासनसे उठकर झुककर प्रणाम करते हुए बोला,—क्या स्वयं पितृदेवने यह कहा है। तब तो मैं धन्य हूं और पुण्यवान हूं। मेरे समान अन्य कौन हो सकता है, जो स्वयं पितृदेवको मेरे देखनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। तो अब उठो, अपने अभी चलें। क्षण भर भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। यह मैं उनके चरणोंकी शपथ करके कहता हूँ ॥ ८५—९० ॥ जड़ने कहा,—इतना कहकर ऋतुध्वज उन नागकुमारोंके साथ चला और नगरसे चलकर पवित्र सलिला गोमतीके तटपर उपस्थित हुआ। फिर तीनों नदीके पार होने लगे। राजपुत्रने समझा था कि, गोमतीके पार ही उन मित्रोंका घर होगा। परन्तु गोमतीके पार होते ही वे दोनों उसे खींचकर पाताल ले गये। राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, दोनों नागकुमारोंने कपटरूपोंको बदलकर अपना वास्तविक रूप ग्रहण कर लिया है। फणके मणिके प्रकाशसे उनके शरीर देदीप्यमान हो रहे थे और उनके सिरका स्वस्तिक चिह्न स्पष्टरूपसे देख पड़ता था। उनके सुन्दररूपको देखकर आश्चर्य चकित हो, मन्दहास्य करते हुए ऋतुध्वजने उनसे प्रेमपूर्वक कहा,—हे ब्राह्मणकुमारो! बलिहारी है। फिर नागकुमारोंने पन्नगेश्वर और देवताओंके भी मान्य, शान्त चित्तवाले अपने पितृदेव अश्वतरसे राजपुत्रके आनेका समाचार निवेदन किया। अनन्तर उस राजपुत्रने अत्यन्त रमणीय उस पातालका अवलोकन किया। वह बालकों, युवकों, वृद्धों और सब जातिके पन्नगोंसे रमणीय हो रहा था। इसी तरह वहां इधर-उधर नाग-

पर्वतराज कैलाशके शिखरपर विराजमान अनङ्गरिपु ईश्वर भगवान हरकी, दोनों भाई वीणाकी सहायतासे सप्तस्वरयुक्त गानके द्वारा, वाणी और इन्द्रियोंके संयमपूर्वक आराधना करने लगे। वे दिनमें, रात्रिमें, मध्याह्नमें और दोनों सन्ध्याओंमें यत्नपूर्वक शिवजीको प्रसन्न करनेमें तत्पर हुए। वृषभध्वज भगवान शिवजी बहुत कालतक इसी प्रकार दोनोंके द्वारा स्तूयमान होने पर दोनोंके गानसे प्रसन्न हुए और दोनोंसे बोले,—तुम वर ग्रहण करो। तब अश्वतरने कम्बलके साथ उन ईश्वरको प्रणाम कर उमापति नीलकण्ठ महादेवसे विज्ञापना की कि, हे देवोंके भी देव, सर्वशक्तिमान, त्रिलोचन ! यदि आप हमपर प्रसन्न हुये हैं, तो हे देव ! हमें यह अभिलषित वर प्रदान कीजिये कि, कुवलयाश्वकी पत्नी मदालसा जिस अवस्थामें मरी है, उस अवस्थामें मेरी कन्या होकर वह तुरन्त जन्म ग्रहण करे। वह जैसी जातिस्मरा और कान्तियुक्त थी, वैसी ही हो और योगिनी तथा योगमाता होकर मेरे घर जन्मे ॥ ५७-६५ ॥ महादेवने कहा,—हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा है, मेरे प्रसादसे वही होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हे भुजङ्गम ! सुनो। हे फणिश्रेष्ठ ! जब श्राद्धकाल प्राप्त हो, तब पवित्र और संयतचित्त होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड उठाकर भक्षण कर लेना। मध्यम पिण्डके भक्षण करनेसे वह मङ्गलमयी मदालसा जिस अवस्थामें मरी थी, उसी अवस्थामें तुम्हारी मध्यम फणासे उत्पन्न हो जायगी। इसी प्रकारकी कामनासे तुम पितृतर्पण करो। ऐसा करनेसें उसी क्षण जब तुम श्वास छोड़ोगे, तब तुम्हारी मध्यम फणासे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मृत हुई थी, उसी अवस्थामें प्रादुर्भूत हो जायगी। यह सुनकर उन दोनोंने महेश्वरको प्रणाम किया और वे अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर पातालमें लौट आये ॥ ६६-७० ॥ फिर कम्बलके छोटे भाई अश्वतरने उसी तरह श्राद्ध किया और यथाविधि, मध्यम पिण्डका भोजन किया। अनन्तर अपने इच्छित विषयका ध्यान करते हुए ज्योंहीं उन्होंने श्वास विसर्जन किया, त्योंही उसी क्षण उनकी मध्यम फणासे वह कृश कटिवाली मदालसा जैसीकी तैसी निकल पड़ी। अश्वतरने यह बात किसीसे नहीं कही और उस सुदतीको अपने अन्तःपुरमें स्त्रियोंके बीच में छिपा रक्खा। इधर नागराजके दोनों कुमार जो देवकुमारोंके समान थे, प्रतिदिन आनन्द पूर्वक आकर ऋतुध्वजके साथ हंसने खेलने लगे। एक दिन पन्नगपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा,—मैंने जो तुमसे पहिले कहा था, वह तुम क्यों नहीं करते ? वह राजपुत्र तुम्हारा उपकारी है। उस मान देनेवालेका प्रत्युपकार करनेके लिये उसे तुम मेरे पास क्यों नहीं लाते हो ! स्नेहवान पिताके इस प्रकार कहनेपर दोनों कुमार महामति ऋतुध्वजके नगरमें गये और उसके साथ क्रीड़ा करने लगे ॥७१—७७॥ फिर उन्होंने बात बातमें कुवलयाश्वसे प्रेम पुरःसर अपने घर (पातालमें) चलनेके लिये अनुरोध किया

राजकुमारने उन्हें उत्तर दिया, यह सचमुच तुम्हारा ही घर है। 'धन, वाहन, वस्त्र आदि जो कुछ मेरा है, वह सब कुछ तुम्हारा ही है। यदि तुम्हारा मुझपर प्रेम है, तो मुझे जो कुछ धन अथवा रत्न आदि तुम देना चाहो, वह दे दो। यदि तुम मेरे घरको अपना नहीं समझते, तो निश्चित ही मैं दुष्टदैवके द्वारा वञ्चित किया जारहा हूं। मेरा प्रिय करना ही यदि तुम अपना कर्तव्य समझते हो और मुझे अनुग्रहका पात्र समझते हो, तो मेरे घर तथा धनमें ममत्व स्थापन करो। अर्थात् इसे अपना ही समझो। हे द्विजश्रेष्ठो! तुम्हारा जो कुछ है, वह मेरा है और मेरा जो कुछ है, वह तुम्हारा अपना है। यह मैं जो कह रहा हूं, उसे तुम सत्य समझो। वास्तवमें तुम मेरे बहिश्चर प्राणस्वरूप हो। हे द्विजश्रेष्ठो; इस प्रकार अब फिर भेदभावकी बात न कहो। मैं तुम्हें हृदयसे सौगन्ध देता हूं, तुम प्रेम पूर्वक मुझपर अनुग्रह करो ॥७८—८४॥ तब नागपुत्रोंने स्नेहार्द्रवदन हो-कर किञ्चित प्रणयकोप प्रकट करते हुए राजपुत्रसे कहा,—हे ऋतुध्वज! तुमने जो कुछ कहा, हम भी यही समझते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तुम अन्यथा विचार न करो। परन्तु हमारे महात्मा पितृदेवने स्वयं बार-बार कहा है कि मुझे कुवलयाश्वको देखनेकी इच्छा है। यह सुनते ही कुवलयाश्व उच्चासनसे उठकर झुककर प्रणाम करते हुए बोला,—क्या स्वयं पितृदेवने यह कहा है। तब तो मैं धन्य हूं और पुण्यवान हूं। मेरे समान अन्य कौन हो सकता है, जो स्वयं पितृदेवको मेरे देखनेकी अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। तो अब उठो, अपने अभी चलें। क्षण भर भी उनकी आज्ञाका उल्लङ्घन करनेकी मेरी इच्छा नहीं है। यह मैं उनके चरणोंकी शपथ करके कहता हूँ ॥ ८५—९० ॥ जड़ने कहा,—इतना कहकर ऋतुध्वज उन नागकुमारोंके साथ चला और नगरसे चलकर पवित्र सलिला गोमतीके तटपर उपस्थित हुआ। फिर तीनों नदीके पार होने लगे। राजपुत्रने समझा था कि, गोमतीके पार ही उन मित्रोंका घर होगा। परन्तु गोमतीके पार होते ही वे दोनों उसे खींचकर पाताल ले गये। राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, दोनों नागकुमारोंने कपटरूपोंको बदलकर अपना वास्तविक रूप ग्रहण कर लिया है। फणके मणिके प्रकाशसे उनके शरीर देदीप्यमान हो रहे थे और उनके सिरका स्वस्तिक चिह्न स्पष्टरूपसे देख पड़ता था। उनके सुन्दररूपको देखकर आश्चर्य चकित हो, मन्दहास्य करते हुए ऋतुध्वजने उनसे प्रेमपूर्वक कहा,—हे ब्राह्मण-कुमारो! बलिहारी है। फिर नागकुमारोंने पन्नगेश्वर और देवताओंके भी मान्य, शान्त चित्तवाले अपने पितृदेव अश्वतरसे, राजपुत्रके आनेका समाचार निवेदन किया। अनन्तर उस राजपुत्रने अत्यन्त रमणीय उस पातालका अवलोकन किया। वह बालकों, युवकों, वृद्धों और सब जातिके पन्नगोंसे रमणीय हो रहा था। इसी तरह वहां इधर-उधर नाग-

कन्याएं क्रीड़ाकर रही थीं, सुन्दर हारों और कुण्डलोंसे ऐसी वे शोभा पारही थीं, जैसे तारागणसे गगन-मण्डल शोभायमान होता है। पातालमें सैकड़ों सुन्दर भवन थे। उनमें कहीं सङ्गीतको ध्वनि होती थी और कहीं वीणा तथा बांसरीके साथ मृदङ्ग, पणव, आतोद्य आदि बाजे बज रहे थे। इस तरह शत्रुओंका नाश करनेवाला वह शत्रुजित्का पुत्र अपने प्यारे दोनों मित्रों,—नागपुत्रोंके साथ पातालका अवलोकन करता जाता था। फिर वे सब नागराजके मन्दिरमें पहुँचे और उन्होंने वहाँ, बैठे हुए महात्मा उरगाधिपतिको देखा। नागराजने दिव्य वस्त्र परिधान किये थे और दिव्य पुष्पमालायें धारण कीथीं। कानोंमें मणिमय कुण्डल शोभा पा रहे थे। गलेमें पानीदार मोतियोंके हार सुन्दरताको बढ़ा रहे थे। केयूरको धारण किये हुए उस महाभाग-को उन्होंने सम्पूर्ण सोनेके सिंहासन पर विराजमान देखा, जो सिंहासन, माणिक, मूँगा, वैडूर्यआदि रत्नोंकी जालियोंसे ढका हुआ था। फिर उन्होंने पिताको दिखाकर राजपुत्रसे कहा कि, ये ही हमारे पिता हैं। इसी तरह पितासे राजपुत्रको दिखाकर निवेदन किया कि, यही वीर कुवलयाश्व है॥ ९१—१०३॥ फिर ऋतुध्वजने पन्नगपतिके चरणोंमें प्रणाम किया। पन्नगेशनेभी उसे उठाकर दृढ़ आलिङ्गन किया और उसका सिर सूंघकर कहा,—तुम चिरंजीव हो, और शत्रुओंका नाश करते हुए माता पिताकी शुश्रुषा करो। हे वत्स! तुम धन्य हो। क्योंकि तुम्हारे पीठ पीछे मेरे पुत्र तुम्हारे अलौकिक गुणोंका वर्णन किया करते हैं। इससे तुम मन, वाणी, शरीर और उद्योग सभीके द्वारा वृद्धिको प्राप्त होगे। जो मनुष्य गुणवान है, उसका जीना प्रशंसनीय है। जो मनुष्य गुणहीन है, वह जीवित अवस्थामेंभी मृतकके समान है। जो व्यक्ति गुणवान् है, वह माता पिताको शान्ति देता है, शत्रुओंके हृदयोंको जलाता है, श्रेष्ठ पुरुषोंका विश्वास-पात्र बनता है और अपना मङ्गल-साधन करता है। देवता, पितृगण, ब्राह्मण, बान्धवगण मित्रवर्ग याचक और अपाहिज सभी गुणी पुरुषके दीर्घ जीवनकी इच्छा करते हैं। जो किसीकी निन्दामें प्रवृत्त नहीं होते, दुखियोंके प्रति दया-भाव रखते हैं और विपन्नावस्थामे प्राप्त व्यक्तियोंको आश्रय देते हैं उन गुणवान् पुरुषोंका जन्म सफल है॥ १०४–११०॥ जड़ने कहा,—उस वीर पुरुषसे इस प्रकार भाषण कर नाग-राजने कुवलयाश्वका सत्कार करनेकी इच्छासे दोनों पुत्रोंसे कहा,—अब हम सब यथाक्रम स्नान, मधुपान, यथेच्छ भोजन आदि कार्य सम्पन्न कर प्रसन्न चित्तसे कुवलयाश्वके साथ चित्तको उल्लसित करनेवाली कथावार्ता करते हुए थोड़ा समय बितावें। शत्रुजितके

टीका—इस गाथामें लक्ष्य डालने योग्य निम्नलिखित विषय हैं। माता और पिताका आदर्श, प्रेममय पति और सती स्त्रीका आदर्श, दैवी-सम्पतिके व्यक्तियोंका स्वभावसिद्ध परोपकार व्रतका आदर्श।

पुत्र ऋतुध्वजने मौन वाणीसे इस बातको स्वीकार कर लिया और उदारधी पन्नगराजने ऐसा ही किया । फिर उस अनेक भोगोंको भोगनेवाले, आत्मज्ञानी, सत्यभाषी, पन्नगराज अश्वतरने अपने पुत्र और राजपुत्रके साथ मिलकर आनन्दपूर्वक अन्न और मधु आदिका यथायोग्य उपभोग किया ॥ १११-११५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके मदालसोपाख्यानका तेईसवां अध्यायसमाप्त हुआ ।

चौबीसवाँ अध्याय ।

जड़ने कहा,—नागोंके राजा महात्मा अश्वतरके भोजन कर लेनेके उपरान्त उनके दोनों पुत्र तथा राजपुत्र तीनों मिलकर उनको प्रसन्न करने लगे । महात्मा नागराजने उन लोगोंके अनुरूप बातें करते और प्रेम प्रकट करते हुए अपने पुत्रोंके सखा (ऋतुध्वज) से कहा,—हे भद्र ! जब तुम मेरे अभ्यागत हो, तो पितासे जिस प्रकार पुत्र निःशङ्क होकर कहता है, उसी प्रकार तुम भी स्वच्छन्दता पूर्वक मुझसे कहो कि, तुम्हारे लिये मुझे क्या करना चाहिये ? क्या सोना, क्या चांदी, क्या वस्त्र, क्या वाहन, क्या आसन अथवा जो कुछ तुम्हें अभीष्ट हो, चाहे वह कितना ही दुर्लभ क्यों न हो, तुम मुझसे माग लो ॥ १-४ ॥ कुवलयाश्वने कहा,—भगवन् ! आपकी कृपासे मेरे पिताके घरमें सुवर्ण आदि सभी पदार्थ विद्यमान हैं । अब तक मुझे इन सब पदार्थोंकी कुछ आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई । जब कि, मेरे पिता सहस्र वर्षोंसे इस पृथ्वीका शासन करते हैं और आप इस पातालके अधीश्वर हैं, तब मुझमें याचनाकी प्रवृत्ति कैसे हो सकती है ? संसारमें वे ही दिव्य और

ऐसे आदर्श जीवनका प्रत्येक कल्पमें आविर्भाव होना प्रकृतिकी पूर्णताका परिचायक है, इसमें सन्देह नहीं । इस गाथामें दूसरा लक्ष्य डालने योग्य विषय जगद्धात्री भगवती सरस्वतीदेवीके स्वरूपका विज्ञान है । जगन्माता ब्रह्मशक्तिके स्वरूपका विज्ञान यद्यपि इस पुराणमें आगे भलीभांति आवेगा और यथास्थान उसका रहस्य समझानेका भी प्रयत्न किया जायगा । परन्तु यहां इतना कहना अवश्य ही प्रयोजनीय है, कि इस अध्यायमें जो भगवती सरस्वती देवीकी स्तुति की गई है, वह जगन्माताके अध्यात्म भावोंसे गुम्फित है । महालक्ष्मी, महाकाली; और महासरस्वती रूपसे जो तीन भाव कहे गये हैं, उनमेंसे यह स्तुति महासरस्वतीभावका परिचायक है । और इस अध्यायमें जो संगीत-शास्त्रका संक्षिप्त वर्णन है, वह मार्गी संगीत से सम्बन्ध रखता है, देशी और लौकिक संगीतसे नहीं । और इस अध्यायमें जो नागराजकी फणासे मदालसा की उत्पत्तिका वर्णन है, वह वर्णन लौकिकी भाषासे युक्त होनेपर भी उसका मौलिक तात्पर्य यह है कि, मृत्युलोककी तरह देवलोक तथा असुरलोकमें मातृगर्भसे जन्म नहीं होता है । योंही अकस्मात् पूर्णावयवी सृष्टि हो जाती है ॥ १११—११५ ॥

अत्यन्त पुण्यवान् पुरुष हैं, जिनके पितृदेव जीवित हों। वे तारुण्यके कारण धन जैसी वस्तुओंको तृणके कोटि अंशके समान भी नहीं समझते। देखिये, मेरे मित्र मेरे अनुरूप और शिष्टाचार सम्पन्न हैं, इसी तरह मेरा देह भी नीरोग है, मेरे पिताके पास अतुल सम्पत्ति है और मेरी तरुण अवस्था है। अतः मेरे पास क्या नहीं है? धनाभाव होनेसे ही मनुष्यका मन याचना करनेमें प्रवृत्त होता है।। जब मेरे पास विपुल धन है, तब मेरी जिह्वा क्योंकर याचना करेगी? अपने घरमें धन है या नहीं, इसकी किञ्चित् भी जो चिन्ता नहीं करते और जो पितृदेवके बाहुरूपी वृक्षोंकी छायामें अवस्थित रहते हैं, वे ही वास्तवमें सुखी हैं। किन्तु जो बाल्यावस्थासे ही पितृहीन और कुटुम्बी हैं, मेरी समझमें विधाताने ही उन्हें।सुखास्वादसे दूर रखकर ठगा है। आपके प्रसादसे पिताजीके दिये हुए धन, रत्नादि संग्रहको हम प्रतिदिन ही स्वेच्छापूर्वक याचकोंको बाँटा करते हैं। जब मेरे चूड़ामणि (सिरपेंचके रत्न) को आपके चरणोंका स्पर्श होगया और मैंने आपके अङ्गका स्पर्श प्राप्त कर लिया, तब मैं सब कुछ पा गया ॥ ५-१३ ॥ जड़ने कहा,—इस प्रकार ऋतुध्वजके विनयपूर्ण वचनोंको सुनकर नागराजने अपने पुत्रों पर उपकार करनेवाले उस राजपुत्रसे प्रीतिपूर्वक कहा,—यदि मुझसे धन-रत्नादि पानेका तुम्हारा मन नहीं करता, तो और जो तुम्हारे चित्तकी प्रीतिका विषय हो, वह मुझसे कहो, मैं वही तुम्हें प्रदान करूँगा। कुवलयाश्वने कहा,—भगवन्! आपकी कृपासे मेरे घरमें जिनके लिये प्रार्थना की जाय, वे सब वस्तुएँ विद्यमान हैं। और भी जो कुछ मुझे पाना था, वह आपके दर्शनसे ही प्राप्त हो गया है। आप देवता हैं और मैं मनुष्य हूं। ऐसा होते हुए जब आपने मेरा आलिंगन किया, तब इस व्यवहारसे मैं कृतकृत्य हुआ और मेरा जीवन सफल हो गया है। हे पन्नगेश्वर! आपकी पद-रजने जब मेरे सिरपर अधिकार कर लिया, तो उसीसे मुझे सब कुछ प्राप्त हो गया। तथापि यदि आप मुझे मेरा मन चाहा कोई वर देना ही आवश्यक समझते हैं, तो यह वर दीजिये कि, मेरे हृदयसे कदापि पुण्यसंस्कारोंका लोप न हो। मरे विचारमें स्वर्ण, मणि रत्नादि, वाहन, भवन, आसन, स्त्री, भोजन, पान, पुत्र, सुन्दर माल्य, अङ्गराग गीत-वाद्यादि जो सब अभीप्सित पदार्थ हैं, वे सभी पुण्यरूपी लताके फल हैं। अतः जीवन को सफल बनानेकी इच्छा करनेवाले मनुष्योंको उस बनस्पतिके मूलको ही सींचनेका यत्न करना चाहिये। इस प्रकार जो पुण्य मार्गमें लगे हुए हैं, इस संसारमें उनके लिये दुर्लभ कुछ भी नहीं है ॥ १४—२२ ॥ अश्वतरने कहा,-हे प्राज्ञ! ऐसा ही होगा। तुम्हारी मति निरन्तर धर्मका आश्रय करके रहेगी। तुमने जो कहा, वह सत्य है और यह सब (धन, गृह, सुख आदि) धर्मका ही फल है। तौभी जब तुम मेरे घर आये हो तब

तुम्हें अभीष्ट होने पर भी जो मानवलोकमें दुष्प्राप्य है, वह तुमको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये । जड़ने कहा,—नागराजका यह वचन सुनकर वह राजपुत्र इस समय नागराज के पुत्रोंके मुखोंकी ओर देखने लगा । तब उन दोनों वीर-नागपुत्रोंने पिताको प्रणाम कर राजकुमारकी जो वासना थी, वह सब स्पष्टरूपसे निवेदन कर दी ॥२३-२६॥ पुत्रोंने कहा,—इनकी प्रियतमा पत्नीको किसी दुष्टबुद्धि दानवने वैरके कारण चकमा दिया कि, किसी दुरात्माने इनका वधकर डाला है । इनके निधनकी वार्ता सुनते ही उस (साध्वी) ने अपने अत्यन्त प्रिय प्राणोंका परित्याग कर दिया । गन्धर्वराज (विश्वावसु) की वह कन्या थी और उसका नाम मदालसा था । पिताजी ! मदालसाके इस प्रकार प्राण परित्यागकी वार्ता सुनकर उसके प्रति कृतज्ञ होनेके कारण इन्होंने यह प्रतिज्ञा की, कि, मदालसाको छोड़कर अन्य किसी स्त्रीको मैं पत्नीरूपसे ग्रहण नहीं करूंगा । यह वीर ऋतुध्वज उस सर्वाङ्गसुन्दरीको देखनेके लिये अत्यन्त उत्कण्ठित होरहा है । पिताजी ! यदि यह काम किया जा सके, तभी इसका उपकार हो सकता है । अश्वतरने कहा,—पञ्चभूतों का वियोग हो जाने पर फिर उनका जैसाका तैसा संयोग हो जाना, यह स्वप्नमें हो सकता है अथवा शम्बरकी बतायी हुई मायाके द्वारा हो सकता है । अन्यथा यह सम्भव नहीं है । जड़ने कहा,—यह सुनकर शत्रुजितके पुत्र ऋतुध्वजने महात्मा नागराजसे हाथ जोड़कर और प्रेम तथा लज्जासे युक्त होकर कहा,—हे तात ! आप इस समय उस मदालसाको यदि मायाके द्वारा भी दिखा दें, तो मैं समझूंगा कि, आपने मुझपर बड़ा ही अनुग्रह किया है । अश्वतरने कहा,—हे वत्स ! यदि तुम माया ही देखना चाहते हो, तो देखलो । तुम अनुग्रहके पात्र हो, क्योंकि घर आया हुआ अभ्यागत चाहे बालक ही क्यों न हो, वह सर्वथा मान्य है ॥ २७—३४ ॥ जड़ बोला,—फिर नागराजने घरमें छिपी हुई मदालसाको वहां बुला मँगाया । सब लोगोंको छकानेके लिये कुछ अटपट [मन्त्रकी तरह] शब्दोंका उच्चारण किया और तब वह कल्याणी [वहां आने पर] उस राजपुत्रको दिखा दी । फिर पूछा,—हे राजपुत्र ! यही तुम्हारी भार्या मदालसा है या नहीं ? उस सुन्दरीको देखते ही वह राजपुत्र लज्जाको छोड़कर उसी क्षण "प्रिये ! प्रिये !" कहता हुआ उसकी ओर बढ़ा, उसको आगे बढ़ते देख, नागराज अश्वतरने उसे झटसे रोक लिया और कहा,—हे पुत्र ! मैंने पहिले ही तुमसे कहा है कि, यह माया है, इसको स्पर्श न करो । क्योंकि मायाको स्पर्श करते ही वह शीघ्र अन्तर्धान हो जाती है । नागराजका यह वचन सुनते ही "हा प्रिये !" कहकर वह राजपुत्र मूर्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा । राजकुमारकी यह अवस्था देखकर भामिनी मदालसा मन-ही मन सोचने लगी कि, अहो ! इस राजपुत्रका मुझपर कैसा प्रेम है । इसका मन मुझ-

पर कैसा अचल है। ये शत्रुओंको [शस्त्रसे] मार गिराते हैं, किन्तु इस समय [प्रेमके कारण] विना शस्त्रके ही स्वयं गिर गये हैं। मैं मायामयी हूं, ऐसा कहकर उन्हें दिखायी गयी हूं। वस्तुतः माया मिथ्या होनेसे मैं भी मिथ्या हूं, यह स्पष्ट है। क्योंकि वायु, जल, तेज, पृथ्वी और आकाशके संयोगकी ही यह चेष्टा है। यह मिथ्या नहीं, तो और क्या है? जड़ने कहा,--इसके अनन्तर नागराजने कुवलयाश्वका समाधान किया और मृतमदालसा पुनः कैसे जीवित हुई, इसका सब वृत्तान्त कह सुनाया। फिर राजपुत्र कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनीको पाकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ और उसने अपने घोड़ेका स्मरण किया। स्मरण करते ही घोड़ा [कुवलय] उपस्थित हो गया। राजपुत्रने पन्नगेश्वरको प्रणाम किया और पत्नी मदालसाके साथ अश्वपर शोभायमान होकर अपने नगरमें प्रस्थान किया ॥ ३५—४३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसा प्राप्ति नामक चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचीसवाँ अध्याय।

जड़ने कहा,--ऋतुध्वजने अपने नगरमें आकर परलोकगता तन्वङ्गी मदालसा पुनः कैसे प्राप्त हुई, इसका सब वृत्तान्त यथाक्रम माता-पितासे निवेदन किया। उस कल्याणी, कृशाङ्गी मदालसाने भी सास-ससुरके चरणोंकी वन्दना की और अन्य स्वजनोंका भी, जैसा जिसका वयस था, प्रणाम आलिङ्गन आदिसे यथान्याय तथा उचित रीति पर आदर किया। तत्पश्चात् नगरमें नागरिकोंने बड़ा उत्सव मनाया। इधर ऋतुध्वज भी क्षीण कटिवाली मदालसाके साथ पर्वतोंके झरनों, नदियोंके पुलिनों और मनोहर वनों तथा उपवनोंमें बहुत दिनों तक विहार करते रहे। पुण्यक्षयकी इच्छा करनेवाली मदालसा भी कामोपभोगके द्वारा उस अतिललित ऋतुध्वजके साथ रमणीय भूभागमें विहार करने लगी। इस प्रकार बहुत समय व्यतीत होनेपर उत्तम रीतिसे पृथ्वीका शासन कर नर-

---

टीका :—नागलोक सप्त पातालके अन्तर्गत है। पातालवासी भी देवता ही होते हैं। यद्यपि सप्त पातालोंमें असुरोंका ही वास है, परन्तु असुर भी देवयोनि ही हैं और सृष्टिके त्रिभावात्मक होनेसे असुर लोकमें भी दैवी-सम्पत्तिके जीव रहते हैं। नागराज और उनके पुत्रोंकी प्रकृति देवदुर्लभ थी, इसमें सन्देह नहीं है। उस कल्पमें, जबकी यह गाथा है, असुरलोक, देवलोक और मृत्युलोक तीनोंके व्यवहारकी घनिष्ठता वर्तमान कल्पसे अधिक थी, यह मानना ही होगा ॥ १—४३ ॥

पति शत्रुजित्‌का देहान्त हो गया॥ १--६॥ फिर पुरवासियोंने उनके पुत्र उदारचरित, उदारकर्मा, महात्मा ऋतुध्वजको राज्य-पदपर प्रतिष्ठित किया। राजकुमार भी महाराज होनेपर प्रजाको अपने औरस पुत्रकी तरह पालन करने लगे। इसी बीचमें मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ। उस बुद्धिमान् पुत्रका नाम पिताने विक्रान्त रक्खा। पुत्र उत्पन्न होनेसे राजसेवकोंको बड़ा आनन्द हुआ और मदालसा हंसने लगी। जब बालक चित्त होकर पड़ा बेढंगा रो रहा था, तब उसे खिलाने (समझाने=शान्त करने) के बहानेसे उससे मदालसाने कहा,--हे वत्स! तू शुद्ध है, तेरा कोई नाम नहीं है। कल्पनासे ही तेरा नाम रख दिया गया है। यह तेरा देह पञ्चभूतात्मक है। इसका तू कोई नहीं है और न यह तेरा कोई है; फिर तू क्योंकर रो रहा है? अथवा तू रोता नहीं है। यह शब्द राजकुमारका आश्रय कर आप ही आप आविर्भूत हो रहा है। नाना प्रकारके भौतिक गुण और अगुण तेरे इन्द्रियोंमें विकल्पित हुए हैं॥ ७--१२॥ मनुष्यके अत्यन्त दुर्बल भूतसमूह, भूतसमूहों द्वारा ही अर्थात् अन्न, जल आदिके द्वारा ही परिवर्धित होते हैं। ये सब किसके हैं? अर्थात् तेरे नहीं हैं। उनके घटने बढ़नेसे न तेरी हानि है, न वृद्धि ही। तेरा यह चोला एक आच्छादन मात्र है। इसके जीर्ण-शीर्ण हो जानेसे तू मोहके अभिभूत न हो। मदादिसे विमोहित होकर जो शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं, उनके द्वारा यह देहरूपी आवरण मिलता है, और उसीसे तू आबद्ध होगया है। कोई पिता है, कोई पुत्र है, कोई माता है, कोई दयिता है, कोई आत्मीय है, कोई अनात्मीय है, परन्तु वास्तवमें कोई कुछ नहीं है। तू (व्यर्थ ही) इन भूतसंघों [जीवों] को बहुत कुछ मान रहा है। जो अज्ञान हैं, वे ही दुःखोंको दुःखनिवृत्तिके और भोगोंको सुखके कारण मानते हैं। जो अविद्याग्रस्त और ज्ञानहीन हैं, वे दुःखोंका अनुभव करते हुए भी उन्हींको सुख समझते हैं। स्त्रीकी हँसी अस्थियोंका प्रदर्शन मात्र है, बहुत चमकीली आँखें तर्जनस्वरूप हैं, पीन-स्तन सघन मांसका लोंदा है, और रतिस्थान भी ऐसा ही है। फिर क्या स्त्री एक नरकके समान ही नहीं है? भूमिमें यान (सवारी गाड़ी इत्यादि),

---

टीकाः—इस अध्यायका महारानी मदालसाका चरित्र बहुत ही विस्मयकारक है। विषय-भोगरता महारानी होनेपरभी इस प्रकारके पुत्रको वैराग्य सिखानेका उसका उद्यम क्या सत्य और सम्भव हो सकता है? इस प्रकारकी शङ्काएँ पाठकोंको हो सकती हैं। इस कारण ही पूज्यपाद महर्षिने "पुण्यक्षयाकाङ्क्षिणी" शब्दका प्रयोग किया है। आत्मज्ञानी, स्वरूपस्थित, चाहे पुरुष हो चाहे स्त्री, जीवन्मुक्त दशामें उसकी चार अवस्थाएं होना स्वतः सिद्ध हैं। ब्रह्म और ब्रह्म प्रकृति (मूल प्रकृति) दोनोंके अस्तित्वको अलग-अलग देखना और प्रकृतिकी लीलामें फँसाव न रखना और इस प्रकारसे अपनी स्वरूपोपलब्धिकी धृतिको बार-बार प्राप्त करना, यह पहिली अवस्थाका लक्षण है। जैसे, डोरेमें बँधा हुआ बाज पक्षी शिकारमें दौड़ जानेके अनन्तर फिर अपने मालिकके हाथ पर ही आ जाता है। जीवन्मुक्तकी प्रथम

यानमें देह और देहमें कोई अन्य पुरुष स्थित है। परन्तु अपने देहके प्रति जैसी अत्यन्त ममत्व बुद्धि होती है, वैसी उस पुरुषके प्रति नहीं होती; यह कैसी मूर्खता है ? ॥ १३-१८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका मदालसोपाख्यानान्तर्गत पुत्र समुद्धापन नामक पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

छब्बीसवाँ अध्याय ।

—o: * :o—

जड़ने कहा,—इस प्रकार दिन दिन ज्यों ज्यों वह पुत्र बढ़ने लगा, त्यों त्यों महारानी (मदालसा) उस निर्मलात्मा पुत्रको खिलानेके वहानेसे आत्मबोध कराने लगीं । क्रमशः पितासे वह जैसे जैसे बल और बुद्धि पाने लगा, वैसे वैसे माताके उपदेशोंसे आत्मज्ञान भी प्राप्त करने लगा । जननीके द्वारा जन्मकालसे ही आत्मज्ञान-सम्बन्धी उपदेश पानेसे वह ममताहीन और ज्ञानसम्पन्न होगया और इससे गृहस्थीमें उसकी वासना नहीं हुई; उधरसे उसका चित्त हट गया । फिर (कुछ वर्षोंके बाद) मदालसाके दूसरा पुत्र हुआ, ऋतुध्वजने उसका नाम 'सुवाहु' रक्खा । यह नाम सुनकर भी मदालसा हंसी । उस

दशा वैसी ही होती है । जीवन्मुक्तकी दूसरी दशा वह होती है कि, जिस अवस्थामें कर्मविपाकके अनुसार विषय–भोग भोगते हुए भी स्वरूपकी संलग्नता नष्ट नहीं होती । उस समय न विषयोंमें घृणा होती है, न स्वस्वरूपसे च्युत होनेका अवसर ही होता है । इन दोनों अवस्थाओंमेंभी पूर्व प्रारब्धकर्मोंके वेगसे कर्मविपाक बराबर बना रहता है और वह पुरुष या स्त्री, चाहे मृत्युलोकमें हो, चाहे देवलोकमें हो, उसमें कर्मविपाककी तीव्रता रहनेसे नाना भोगोंका सम्बन्ध बना रहता है । परन्तु वह कर्मविपाकरूपी भोग पूर्वार्जित पुण्यके क्षयरूपसे ही होता है, इसमें सन्देह नहीं । क्योंकि चाहे मानवपिण्ड हो चाहे देवपिण्ड, विना प्रारब्धके पूर्णक्षय हुए निर्वाण मुक्तिका अवसर नहीं मिलता । जीवन्मुक्तकी तीसरी अवस्था वह होती है कि, कर्मविपाक जब अपने आपही भोगसे क्षीण हो जाता है, तब भोगकी सामग्री रहते हुए भी उनमें उसकी स्वाभाविक उपरति रहती है । इस प्रकारके महदात्मा स्त्री अथवा पुरुष, विषय–सान्निध्य होने परभी विषयकी आधिभौतिक दशामें विमुग्ध न होकर उसके आध्यात्मिक स्वरूपमें उन्मज्जन-निमज्जन करते हुए ब्रह्मानन्दका अनुभव करते हैं । इसी देवदुर्लभ दशामें पहुंच कर साधक रागात्मिका भक्तिको छोड़कर पराभक्तिका अधिकारी बन जाता है । जीवन्मुक्तकी चौथी दशा वह कहाती है, जब आत्मज्ञानी व्यक्ति सब अवस्था और सब देश-काल-पात्रकी उपस्थितिमें ही अद्वैत-भावमें रमण करता है । देवकन्या महारानी मदालसा कर्मविपाकके निमित्त आरूढ़ पतित उन्नत आत्मा थी, यह मानना ही पड़ेगा । उसके प्रथम जन्ममें जब वह स्वर्गलोकमें जन्मी थी, तब उसकी पहिली सन्धि उपस्थित हुई थी । उसके पुण्यफलरूपी कर्मविपाकसे दूसरा जन्म नागलोकमें होनेके अनन्तर दूसरी सन्धिका स्वतः ही उदय हुआ था । और स्त्रीशरीर होनेपरभी क्रमशः वह तीसरी और चौथी सन्धिको प्राप्त करके कृतकृत्य हुई थी ॥१-१८॥

पुत्रकोभी उसने बाल्यावस्थासे ही पहिलेकी तरह खिलाते-खिलाते आत्मबोध कराना आरम्भ किया। फलस्वरूप महामति उस दूसरे पुत्रनेभी आत्मज्ञान प्राप्तकर गृहस्थीसे मुख मोड़ लिया। अनन्तर जब तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, तब उसके पिताने उसका नाम 'शत्रुमर्दन' रक्खा। पुत्रका यह नाम सुनकर सुन्दर भौहोंवाली मदालसा बहुतदेरतक हंसती रही। कृशाङ्गी मदालसाने उस पुत्रकोभी बाल्यावस्थासे ही आत्मज्ञान कराना आरम्भ किया और वह पुत्रभी पहिले पुत्रोंकी तरह निष्काम और उपकारक-क्रियाओंसे विहीन हो गया। अर्थात् प्रत्युपकारकी इच्छा न रखकर निष्काम व्रतधारी हो गया। अन्तमें जब चतुर्थ पुत्र उत्पन्न हुआ, तब राजा उसका नामकरण करनेके लिये उत्सुक होकर शुभ आचारवाली मुसकराती हुई मदालसाकी ओर देखने लगे। मदालसाको किञ्चित् हंसती हुई देखकर कौतुकसे युक्त होकर राजाने उससे पूछा,--प्रत्येक पुत्रके उत्पन्न होने पर जब मैं उसका नामकरण करने लगता हूं, तब तुम हंस देती हो, इसका क्या कारण है? मैंने विक्रान्त, सुबाहु और शत्रुमर्दन ये नाम क्रमशः तीन पुत्रोंके रक्खे हैं, जो मेरी समझमें बहुत ठीक हैं। क्षत्रिय भाइयोंके शौर्य और दर्पके दर्शक नाम रखना योग्य भी है। हे भद्रे! यदि ये तीनों नाम तुम्हें अच्छे नहीं जचे हैं, तो मेरे इस चौथे कुमारका नामकरण तुम ही करो। मदालसाने कहा,—महाराज! आपकी आज्ञाका पालन करना मेरा सर्वथा कर्तव्य है। अतः आपने जैसा कहा है, तदनुसार इस चौथे पुत्रका नामकरण मैं करूंगी। यह धर्मज्ञ पुत्र अलर्क नामसे जगतीतलमें प्रख्यात होगा। यह आपका सबसे छोटा पुत्र परम बुद्धिमान होगा। माताने जब पुत्रका नाम अलर्क रक्खा, तब यह असम्बद्ध नाम सुनकर राजाने हँसकर कहा,—हे कल्याणि! जो नाम तुमने मेरे पुत्रका रक्खा है, वह तो बड़ा ही ही असम्बद्ध है। हे मदालसे! इसका क्या अर्थ है? ॥ १--१५ ॥ मदालसाने कहा,-- महाराज! नामकरण एक लोकाचार है, एक कल्पना मात्र है। हे भूपाल! आपने पुत्रोंके जो नाम रक्खे हैं, उनका भी कोई अर्थ नहीं होता। सुनिये, जो प्राज्ञ पुरुष हैं, वे आत्माको सर्वव्यापक कहते हैं। एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेकी जो गति है, वह क्रान्ति कही जाती है। देहेश्वर आत्मा जब कि, सर्वगत और सर्वव्यापक है, तब उसका क्रान्त होना अर्थात् कहीं एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना सम्भव नहीं है। इस विचारसे मेरी समझमें 'विक्रान्त' शब्दका कोई अर्थ नहीं। हे पृथ्वीनाथ! आपने दूसरे पुत्रका नाम 'सुबाहु' रक्खा है। आत्मा अमूर्त होनेसे अर्थात् उसका कोई रूप न होनेसे यह नाम भी अर्थहीन है। तीसरे पुत्रका नाम 'अरिमर्दन' रक्खा है। मेरी समझमें यह भी असम्बद्ध है। इसका कारण सुनिये। एक ही आत्मा समस्त शरीरोंमें रमा हुआ है। फिर हे राजन्! उसका शत्रु कौन और मित्र ही कौन हो सकता है? भूतोंके द्वारा भूत मर्दित होते हैं। जो अमूर्त है

उसका मर्दन कैसे हो सकेगा ? वह तो क्रोध आदिसे दूर है, तब उसके लिये अरिमर्दनकी कल्पना ही निरर्थक है । यदि लोकाचारके लिये ही ऐसे अर्थहीन नामोंकी कल्पना की जाती है, तो मैंने जो अलर्क नाम रक्खा है, आपके मतसे वह निरर्थक क्योंकर है ॥ १६--२३ ॥ जड़ने कहा,-महारानीके इस प्रकार सही-सही कहने पर परमबुद्धिमान् राजाने सत्यवचन कहनेवाली पत्नीसे कहा,-तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है । अनन्तर सुभ्रु मदालसा चौथे पुत्र (अलर्क) को भी पहिले तीन पुत्रोंकी तरह आत्मज्ञानकी शिक्षा देने लगी । तब राजा ने कहा,--अरी पगली, यह क्या कर रही है । ऐसी बुरी शिक्षा इसे तू दे रही है, जैसी मेरे पहिले लड़कोंको दे चुकी है । यह मेरी सन्ततिके अभावका कारण होगा । यदि मेरा प्रिय करना ही तू अपना कर्तव्य समझती है, और मेरे वचनका पालन करना तुझे योग्य प्रतीत होता है, तो इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्गमें आरूढ़ कर दे । हे देवि ! इस पुत्रको प्रवृत्ति-मार्गमें प्रवृत करनेसे कर्ममार्गका उच्छेद नहीं होगा । हे सुभ्रु ! पितृगण चाहे देवलोकमें निवास करते हों, तिर्यक् योनिमें पहुँचे हों मनुष्यत्वको प्राप्त हुए हों या अन्य किसी भूतवर्गमें स्थित हों; वे चाहे पुण्यात्मा हों या पुण्यहीन हों, उनके भूखे-प्यासे होनेपर यदि मनुष्य कर्ममार्गका अनुसरण करता रहे, तो वह पिण्ड और उदक दान कर उन्हें तृप्त करता है । इसी तरह देवता और अतिथि भी कर्ममार्गपरायण मनुष्यके द्वारा ही तृप्त होते हैं ॥ २४—३० ॥ क्या देवता, क्या मनुष्य, क्या पितृगण, क्या प्रेत, क्या भूत, क्या गुह्यक, क्या पक्षी, क्या क्रमि-कीट, सभी मनुष्यकी सहायतासे ही जीविका निर्वाह करते हैं, अतः, हे सुन्दरि ! मेरे पुत्रको जो क्षत्रिय जातिके लिये उचित हो और जिससे उसका इहलोक और परलोक बने, ऐसी शिक्षा प्रदान करो । इस प्रकार श्रेष्ठ नारी मदालसाने पतिका वचन सुनकर अलर्क नामक अपने पुत्रसे खिलाते हुए कहा,—हे पुत्र ! तुम्हारा उत्कर्ष हो और मित्रोंका उपकार करनेवाले तथा शत्रुओंका नाश करनेवाले कर्मोंका आचरण करते हुए मेरे पतिदेवको आनन्दित करो । हे पुत्र ! तुम धन्य हो । क्योंकि तुम शत्रुरहित होकर दीर्घकाल तक इस वसुन्धराका पालन करोगे । तुम्हारे प्रजा-प्रतिपालनसे सब लोग सुखी होंगे और धर्माचरणके फलस्वरूप अमरत्वको प्राप्त करोगे ॥ ३१—३५ ॥ तुम सब पर्वोंमें ब्राह्मणोंको तृप्त करोगे, बन्धुवर्गके अभिलाषोंको पूर्ण करोगे, निरन्तर चित्तमें परोपकारकी चिन्ता करोगे और तुम्हारा मन कभी परायी स्त्रीपर आसक्त न होगा । अनेक यज्ञानुष्ठान द्वारा देवताओंको और अजस्र (अटूट) अर्थदान द्वारा विप्रों और याचकोंको सन्तुष्ट करोगे । हे वीर ! नाना प्रकारके भोगों द्वारा रमणियोंको और संग्रामके द्वारा शत्रुगणको प्रसन्न करोगे । हे वत्स ! तुम बाल्या-वस्थामें कुटुम्बियोंको, कौमारावस्थामें आज्ञापालन द्वारा गुरुजनको, युवावस्थामें

सत्कुलोद्भवा स्त्रियोंको और वृद्धावस्थामें वनवासी-वनचरोंको आनन्दित करोगे। हे पुत्र! तुम राज्यपदपर प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणको प्रसन्न करोगे, साधुओंकी, गौओंकी तथा ब्राह्मणोंकी रक्षा करोगे, अनेक यज्ञ करोगे और रणमें दुष्ट वैरियोंका विनाश करते हुए परलोकमें गमन करोगे ॥ ३६—३९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

सत्ताईसवां अध्याय।

जड़ने कहा,—माता मदालसा प्रतिदिन खिलानेके वहानेसे इस प्रकार अलर्कको (कर्म मार्गका) ज्ञान देने लगी और अलर्ककीभी बुद्धिके साथ ही साथ अवस्था वढ़ने लगी। क्रमशः कौमारावस्था प्राप्त होनेपर बुद्धिमान् अलर्कका उपनयनसंस्कार किया गया। तदनन्तर उसने माताको प्रणाम किया और कहा,—मां! मैं विनयावनत होकर पूछता हूं, तुम बताओ कि, मुझे इहलोक और परलोकके सुखके लिये क्या करना चाहिये? मदालसाने कहा,—हे वत्स! जिसका राज्याभिषेक हो गया है, उस राजाको सब से पहिले अपने धर्मके अविरोधीभावसे प्रजाको प्रसन्न रखना चाहिये, यही उसका कर्तव्य है। अपनी जड़को उखाड़ देनेवाले सात व्यसनों(*)को त्यागकर अपनी मन्त्रणा बाहर प्रकट

टीकाः—यह दृश्य प्रपञ्च प्रकृतिका ही है। पुरुष निर्लिप्त है। इसी मौलिक नियमके अनुसार संसारमें गृहिणीकी सर्वाङ्गपूर्णतापर परमानन्दकी प्राप्ति निर्भर करती है। महारानी मदालसाके जीवनमें यह सर्वाङ्गीण पूर्णता आदर्शरूपसे प्रकट होती है। इस आदर्श-जीवनमें स्त्रीभावकी पूर्णता, सतीत्वकी पूर्णता, प्रवृत्तिधर्मकी पूर्णता और निवृत्तिधर्मकी पूर्णता, गृहिणीधर्मकी पूर्णता, मातृधर्मकी पूर्णता, और ज्ञानकी पूर्णता विद्यमान है। आर्यमहिलाओंको यह अलौकिक जीवनी अनुकरण करने योग्य है ॥१—३१॥

---

* पानमक्षाः स्त्रियश्चैव मृगया च यथाक्रमम्।
एतत् कष्टतमं विद्यात् चतुष्कं कामजे गणे ॥

अर्थ—कामसे उत्पन्न होनेवाले व्यसनोंमें शराब पीना, जूआ, स्त्री, तथा शिकार, ये चार व्यसन क्रमशः बड़े ही कष्ट दायक हैं।

दण्डस्य पातनं चैव वाक्पारुष्यार्थदूषणे।
क्रोधजेऽपि गणे विद्यात्कष्टमेतत् त्रिकं सदा ॥

अर्थ—किसीपर लाठी चलाना, झूठ वचन कहना, और दूसरेका धन ले लेना, ये तीन क्रोधसे उत्पन्न व्यसन विशेष कष्ट देनेवाले होते हैं।

न हो, ऐसी व्यवस्था करते हुए शत्रुओंसे सदा आत्मरक्षा करनी चाहिये, सर्वाङ्गपूर्ण सेना-से युक्त (रक्षित) रथसे उतरने पर (बाहर आ जानेपर) जिस प्रकार राजाका आठ प्रकारसे नाश होता है, उसी प्रकार मन्त्रणाके प्रकट होनेसेभी होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।* शत्रुओंके बहकावेमें आकर कौन मन्त्री दूषित होगया है और कौन निर्दोष है, इसको जान लेना चाहिये। इसी तरह अपने गुप्तचरों द्वारा शत्रुओंके गुप्तचरोंका भी प्रयत्नपूर्वक पता लगाते रहना चाहिये। मित्र, आप्त और बन्धुओंकाभी राजाको विश्वास नहीं करना चाहिये। किन्तु नरपतिको उचित है कि, ऐसा ही कोई विशेष अवसर प्राप्त होनेपर वह शत्रुकाभी विश्वास करले। नरपतिको स्थान, वृद्धि और क्षयका ज्ञान होना चाहिये, कभी कामके वशीभूत न होना चाहिये और षड्गुणों(†)से युक्त होना चाहिये। भूपाल पहिले अपने आपको फिर मन्त्रियोंको, अनन्तर सेवकोंको और तत्पश्चात् प्रजाओंको काबूमें करले तब शत्रुओंसे विरोध करे। जो इन सबको वशमें किये विना ही शत्रुओंको जीतनेकी इच्छा करता है, आत्माको वशमें न किया हुआ वह राजा अमात्योंसे पराजित होकर शत्रुओंसे पीड़ा पाता है। हे पुत्र! इस कारण राजाको पहिले कामादि विकारों पर जय कर लेना चाहिये। इनको जिसने जीत लिया, उसका जय अवश्यम्भावी है। इनको न जीतनेवाला राजा नाशको प्राप्त होता है। काम, क्रोध, लोभ, मद, मान और हर्ष ये ही शत्रु, राजाके विनाशके कारण होते हैं। पाण्डुराजाका कामके कारण ही पतन हुआ। अनुह्लाद राजाको क्रोधके कारण पुत्रसे हाथ धोना पड़ा। लोभके कारण ऐल राजाको नाशको प्राप्त होना पड़ा। मदके कारण वेन राजा ब्राह्मणोंके हाथों मारा गया। अनायुषापुत्र बलि अभिमानके कारण गिरा और हर्षके कारण पुरञ्जयका निधन हुआ। परन्तु

---

* प्राचीन समयसे राजाके आठ मन्त्री हुआ करते थे। इनके आठ प्रकार कौटिल्यने अपने अर्थ-शास्त्रमें बताये हैं। यथाः—१ क्रुद्ध, २ अक्रुद्ध, ३ लुब्ध, ४ अलुब्ध, ५ भीत, ६ अभीत, ७ अपमानित और ८ अतिमानित। इन आठों प्रकारके मन्त्रियोंसे राजाको सदा सावधान रहना चाहिये।

सप्तकस्यास्य वर्गस्य सर्वत्रैवानुषङ्गिणः।
पूर्वं पूर्वं गुरुतरं विद्याद् व्यसनमात्मवान्॥

अर्थ—उपरोक्त मद्यपानादि आनुषङ्गिक सात व्यसनोंमें बुद्धिमान् राजा पूर्व पूर्व व्यसनों को विशेष दुखदायी समझे।

† सन्धिं च विग्रहं चैव यानमासनमेव च।
द्वैधीभावं संश्रयं च षड्गुणांश्चिन्तयेत् सदा॥

अर्थ—सन्धि-आपसकी मेल-जोल, विग्रह-वैमनस्य, यान-शत्रुपर चढ़ाई करना, आसन-अपनी स्थिति-शक्तिका ध्यान करना, द्वैधीभाव-किसीसे सन्धि करना और किसीसे विग्रह करना, संश्रय-हीनबल होनेपर दूसरेको आश्रय लेना, इन छः गुणोंका सदा चिन्तन किया करे।

महात्मा राजा मरुने इन सबको जीतकर सारे संसारको जीत लिया था। इस कारण इन सब बातोंको सोचकर राजाको उक्त दोषोंका त्याग करना चाहिये ॥ १—१६ ॥ राजाको कौवा, कोयल, भँवरा, हरिण, सर्प, मोर, हंस, मुरगा और लवा पक्षीसे चरित्रकी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये, अर्थात् राजाको कौएकी तरह सावधान, कोयलकी तरह मधुरभाषी, भँवरेकी तरह रसिक, हरिणकी तरह चपल, सर्पकी तरह मनमें गांठ रखनेवाला, मोरकी तरह सुन्दर, हंसकी तरह गुण-अवगुणकी पहिचान रखनेवाला, मुरगेकी तरह युद्धकुशल और लवेकी तरह आक्रमणशील होना चाहिये। राजाको चाहिये कि, शत्रुपक्षके लिये वह कीटककी नीतिका अवलम्बन करे। अर्थात् कीट जिस प्रकार बिना किसी आयोजनके धीरे धीरे कुतरकर लकड़ीको जर्जरित कर डालता है, उसी प्रकार राजा विपक्षको धीरे धीरे खोखला बना दे। राजा चिउँटीकी तरह संग्रहशील हो। उसे अग्निकी चिनगारी अथवा शाल्मली वृक्षके बीजके समान प्रसरण शील और दाहक होना उचित है। वह चन्द्र-सूर्यकी तरह राजनीतिके द्वारा पृथ्वीका पर्यवेक्षण करे। अर्थात् चन्द्र सूर्य सब पर समान रूपसे जिस प्रकार अपने किरण-जालका विस्तार करते हैं, उसी तरह राजा सब प्रजापर समान रूपसे कृपामयूखोंका विस्तार करे और राजनीतिके द्वारा चन्द्रकी तरह कोमलता और सूर्यकी तरह तीक्ष्णताका प्रयोग करता रहे। बन्धिका (वेश्या), कमल, शरभ, शूलिका, गर्भिणीके स्तन और ग्वालिनसे राजाको प्रज्ञा ग्रहण करनी चाहिये। अर्थात् वेश्या जिस प्रकार परपुरुषका चित्त हरण करलेती है, उस प्रकार राजा अपनी प्रजाके चित्तपर अधिकार करले, कमलके समान राजा आह्लादकारक और सद्गुण सुगन्धसे युक्त हो, शरभके समान पराक्रमी हो, शूलिकाकी तरह शत्रुविदारण करनेमें समर्थ हो, गर्भिणीके स्तनमें भावी सन्तानके लिये जिस प्रकार दूधका संग्रह होजाता है, उसी प्रकार राजा भावी आवश्यकताओंकी पूर्तिके लिये सञ्चयशील हो और ग्वालिन जिस प्रकार एक दूधसे चतुरतासे अनेक पदार्थ बना लेती है, उस प्रकार राजाको भी कल्पनापटु होना चाहिये। पृथ्वीका पालन करते हुए महीपतिको इन्द्र, सूर्य, यम, सोम और वायुका रूप धारण कर लेना चाहिये। अर्थात् इन्द्र चारमास जिस प्रकार जलकी वर्षाके द्वारा जगत्को पोसता है, उस प्रकार राजा भी, धनकी वर्षासे प्रजाको सन्तुष्ट करे। सूर्य अपनी किरणों द्वारा जैसा आठमास पृथ्वीका रस शोषणकर संसारको रोग रहित करता है, राजा भी वैसा प्रजासे न्यायानुकूल कर ग्रहणकर उसके सुख स्वास्थ्यकी वृद्धि करे। वह यमकी तरह निष्पक्ष और दृढ़व्रत होकर मित्र, शत्रु, प्रिय, अप्रिय, दुष्ट, अदुष्ट, सबको समान रूपसे जैसा समय हो, उसके अनुरूप न्यायदान करे। पूर्णचन्द्रमाको देखकर लोगोंको जैसा प्रेम उत्पन्न होता है, राजाको देखकर प्रजामें वैसा प्रेम बढ़े, ऐसा

चन्द्रमाका व्रत राजाको ग्रहण करना चाहिये। वायु जिस प्रकार गुप्तरूपसे सर्वभूतोंमें विचरण करता है, उसी प्रकार राजाको भी गुप्तचरोंके द्वारा प्रजा, अमात्य और बन्धुओं की गति-विधिको जानते रहना चाहिये ॥ १८-२९ ॥ लोभ, काम अर्थ, अथवा अन्य किसी कारणसे जिसका मन नहीं ललचाता, उस नरपतिको स्वर्ग प्राप्त होता है। हे वत्स! जो मूढ़ मनुष्य कुपथगामी हुए हों और स्वधर्मसे विचलित हो रहे हों, उन्हें जो अपने धर्ममें आरूढ़ कराता है, उस राजाको स्वर्ग प्राप्त होता है। जिसके राज्यमें वर्णधर्म और आश्रम-धर्म क्षीणताको प्राप्त नहीं होते, हे वत्स! वह राजा क्या इस लोकमें और क्या देहान्तके पश्चात् परलोकमें शाश्वत् सुखको प्राप्त करता है। कुबुद्धिवाले मनुष्योंके द्वारा विचलित हुए लोगोंको अपने अपने धर्मपर स्थित करना हीं राजाका श्रेष्ठ कर्तव्य है, और यही उसकी सिद्धिका कारण है। पृथ्वीपति प्राणिमात्रका पालन करनेसे ही कृत-कृत्य होता है। जो राजा यत्नपूर्वक उत्तम रीतिसे प्रजाका पालन करता है, वह प्रजाके धर्मकाभी अंशभागी होता है। इस प्रकार चातुर्वर्ण्यकी रक्षाके लिये जो राजा आचरण करता है, वह इस लोकमें सुखी होकर विहार करता है और अन्तमें इन्द्रकी सलोकता अर्थात् स्वर्गको प्राप्त करता है॥३०-३५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यानके अन्तर्गत पुत्रानुशासन-नामक सत्ताईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठाईसवां अध्याय।

जड़ने कहा,—माताके ये वचन श्रवण कर उस राजा अलर्कने फिर मातासे वर्णधर्म और आश्रम धर्मके सम्बन्धमें जिज्ञासा की। अलर्कने कहा,—हे महाभागे! तुमने यह राजनीतिसे सम्बन्ध रखनेवाले धर्मका वर्णन किया है। अब मैं वर्णाश्रमात्मक धर्मको सुनना चाहता हूं। मदालसा बोलीं,—दान, अध्ययन और यज्ञ, ये ही ब्राह्मणके लिये त्रिविध धर्म हैं। कोई विपत्ति आपड़ी हो, तो बात और है, किन्तु यों इनके अतिरिक्त ब्राह्मणके लिये कोई चौथा धर्म नहीं है। विशुद्धभावसे यज्ञ कराना, अध्यापन करना और पवित्र दान लेना, यही तीन प्रकारकी ब्राह्मणोंके लिये उत्तम जीविका कही गयी है। दान, अध्ययन और यज्ञ करना क्षत्रियोंकाभी धर्म है। पृथ्वीपालन और शस्त्र-संचालन, ये दो उनके लिये जीविकाके साधन हैं। दान देना, अध्ययन करना और यज्ञ करना वैश्योंकाभी धर्म है। जीविकाके लिये उन्हें वाणिज्य, पशुपालन और कृषिकर्म करना चाहिये। दान देना, यज्ञ करना और ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्योंकी शुश्रूषा करना शूद्रोंका धर्म है। कलाकुशलता-के काम करना, द्विजों (त्रिवर्ण) की सेवा करना, पशुपालन करना और क्रय-विक्रय करना

ही उनकी जीविकाका साधन कहा गया है। वर्ण धर्मकी ये बातें मैंने कहीं हैं, अब आश्रम-धर्मका विवरण श्रवण करो ॥ १—८ ॥ जो मनुष्य वर्णधर्मका पालन करता है और उससे च्युत नहीं होता, वह सब प्रकारकी सिद्धिको प्राप्त करता है और जो वर्णधर्मके विरुद्ध आचरण करता है, वह देहान्तके पश्चात् नरकमें जा गिरता है। हे पुत्र! द्विजोंका जबतक यज्ञोपवीत संस्कार नहीं होता, तबतक वे स्वेच्छानुसार व्यवहार, सम्भाषण और खानपान-कर सकते हैं। हे वत्स! उपनयन हो जानेपर द्विजबालकको ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक गुरु-गृहमें निवास करना चाहिये। वहां उस अवस्थामें कैसा धर्माचरण करना चाहिये, वह मैं कहती हूं, उसे समझ लो। स्वाध्याय, अग्नि शुश्रूषा, स्नान, भिक्षार्थ परिभ्रमण, गुरुको प्रथम निवेदन कर उनकी आज्ञासे अन्न भोजन, गुरुके कार्य-साधनमें तत्परता, गुरुका सन्तोष प्राप्त करना, गुरुके बुलानेपर उनके निकट जाकर तत्परता और अनन्य चित्तसे अध्ययन करना, ये सब ब्रह्मचारीके कर्तव्य हैं। गुरुमुखसे एक दो अथवा सभी वेदोंको प्राप्तकर उनके चरणोंको बन्दन करे और उन्हें दक्षिणा प्रदान करे। अनन्तर उनकी आज्ञा मिलनेपर यदि गृहस्थी करनेकी इच्छा हो, तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करे। ब्रह्मचारी यदि गृहस्थाश्रममें न जाना चाहे, तो वानप्रस्थ अथवा संन्यास ग्रहण भी कर सकता है। अथवा ब्रह्मचर्य धारणपूर्वक गुरुके घरमें ही निवास कर सकता है। गुरुके अभावमें उसके पुत्रकी और गुरु-पुत्र न हो, तो उसके शिष्यकी निरभिमान होकर सेवा करता हुआ ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्याश्रमका पालन करे। और जब गृहस्थाश्रमकी इच्छा हो, तब गुरुगृहसे लौट जाय। ॥९—१७॥ गृहस्थाश्रममें प्रवेश करनेपर गृहस्थीके लिये असमान ऋषि-कुलकी, अपने अनुरूप, रोगरहित और अव्यङ्ग कन्यासे न्यायानुसार विवाह करे। गृहस्थको अपने वर्णानुकूल कर्मके द्वारा धनोपार्जन कर भक्तिपूर्वक देवता, पितृगण और अतिथियोंको तृप्त करना चाहिये और आश्रितजनका पोषण करना चाहिये। सेवक, पुत्र, स्त्रीवर्ग, दीन, अन्ध, पतित, मित्र, पशु-पक्षी आदिका यथाशक्ति अन्नके द्वारा पालन करना चाहिये। ऋतु-कालमें स्त्रीसंभोग करना गृहस्थका धर्म है। यथाशक्ति पञ्चमहायज्ञ करनेमें नहीं चूकना चाहिये। अपने वैभवके अनुसार आदर-पूर्वक देवता, पितर, अतिथि और ज्ञाति बान्धवों-को (भोज्य पदार्थ) अर्पण कर जो बच जाय, वह भृत्यगणके साथ भोजन करना चाहिये। यह मैंने संक्षेपसे गृहस्थाश्रमका धर्म कहा है। अब वानप्रस्थाश्रमके धर्मका वर्णन करती हूँ; उसे समझ लो ॥ १८—२३ ॥ गृहस्थको जब नाती-पोते हो जायं और वह जब शरीर-की अशक्तताका अनुभव करने लगे, तब उस बुद्धिमान् पुरुषको आत्म-शुद्धिके लिये वान-प्रस्थाश्रमका अवलम्बन करना चाहिये। इस आश्रममें बनमें उत्पन्न हुए कन्द-मूलोंको खाकर तपसे शरीरको, शीतोष्ण सहनेके योग्य बनाना चाहिये। भूमिपर शयन, ब्रह्मचर्यव्रत-

पालन, देवता, पितर और अतिथियोंकी परिचर्या, होम, त्रिकाल स्नान, जटा-वल्कल धारण, सदा योगाभ्यास और वनचरोंसे स्नेहसम्पादन करना वानप्रस्थाश्रमी पुरुषका कर्तव्य है। यह पाप-शुद्धि और आत्माके उपकार-साधनार्थ वानप्रस्थधर्म कहा गया है। इसके पश्चात् अन्तिम संन्यासाश्रम है। हे तात ! धर्मज्ञ महात्माओंने इसे स्वधर्म कहा है। इस चतुर्थ आश्रमका स्वरूप मुझसे सुनो। सर्वसङ्गपरित्याग, ब्रह्मचर्य, क्रोध-शून्यता, इन्द्रिय-दमन, एक स्थानमें अधिक दिन न रहना, काम्य-कर्मोंका त्याग, भिक्षासे प्राप्त अन्नका एक बार ही भोजन, आत्म-ज्ञानके लाभकी इच्छा, आत्मसाक्षात्कार, ये सब चतुर्थाश्रमके धर्म (कर्तव्य) हैं, जो मैंने तुमसे कहे हैं। अब वर्ण और आश्रमके जो साधारणधर्म है, ये मुझसे सुनो। सत्य, शुचिभूतता, अहिंसा, असूया (डाह) न करना, क्षमा, कठोरता न करना, कृपणता न करना और संतोष ये आठ सब वर्णाश्रमियोंके लिये साधारणधर्म संक्षेपसे कहे गये हैं। अपने-अपने वर्णाश्रमानुसार इन धर्मोंका पालन करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है। जो मनुष्य अपने वर्णाश्रमोचित धर्मका उल्लंघन कर अन्यथा आचरण करता है, वह राजाके द्वारा दण्डपात्र होता है। जो व्यक्ति स्वधर्मका त्याग कर पाप करते हैं और जो राजा उन्हें दण्ड न देकर उनकी उपेक्षा करता है, उस राजाके इष्ट और पूर्त दोनों प्रकारके कर्म नष्ट हो जाते हैं। अतः राजाको उचित है कि, वह सब वर्णोंके लोगोंको अपने-अपने धर्ममें यत्नपूर्वक प्रवृत्त करे और यदि वे स्वधर्माचरण न करते हों, तो उन्हें दण्ड देकर अपने-अपने कर्ममें नियोजित करे ॥ २४—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यानान्तर्गत मदालसावाक्य नामक अट्ठाईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

उनतीसवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

अलर्कने कहा, जो पुरुष गृहस्थाश्रमका पालन करते हैं, उनका कर्तव्य क्या है? कौनसे कार्य न करनेसे उनका बन्धन होता है और कौनसे कार्य करनेसे अभ्युदय होता है? मनुष्योंके उपकारके लिये घरमें किन कार्योंका अनुष्ठान सज्जनोंके द्वारा किया जाता है और कौनसे कार्य निषिद्ध हैं? यह विषय मैं जानना चाहता हूं, इसको कहें। मदालसा बोली, हे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रमका अवलम्बन कर इस समस्त जगत्को पोसता है और उसीसे इच्छित लोकोंपर अधिकार कर लेता है। पितृगण, ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतङ्ग, पशु, पक्षी, असुर ये सभी गृहस्थाश्रमीके आश्रयसे अपनी जीविका-

निर्वाह करते और उसीके द्वारा तृप्त होते हैं। सभी प्राणी गृहस्थका मुख इस आशासे हेरा करते हैं कि, यह हमें कुछ देगा ॥ १-५ ॥ हे वत्स ! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुके रूपसे सबका आधारभूत होता है। अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमें प्रतिष्ठित है और यही धेनु ब्रह्माण्ड-का कारण है। ऋग्वेद इस धेनुकी पीठ है, यजुर्वेद मध्य है, सामवेद मुख और ग्रीवा है, इष्टापूर्त कर्म इसके सींग हैं, साधु-सूक्तियां रोमावली हैं, शान्ति और पुष्टि इसका मल और मूत्र है। वर्णाश्रमपर यह स्थित है। यह धेनु अक्षय है, इसका कभी क्षय नहीं होता। समस्त संसार इसीसे जीवन धारण करता है। हे पुत्र ! स्वाहाकार, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार ये चार उस धेनुके स्तन हैं। इन चार स्तनोंमेंसे सुरगण स्वाहाकाररूप स्तनको, पितृगण स्वधाकाररूपी स्तनको, ऋषिगण वषट्काररूपी स्तनको और मनुष्यगण हन्तकार-रूपीस्तनको चूसा करते हैं। हे वत्स ! इस प्रकार यह त्रयीमयी (वेदरूप) धेनु (गृहस्थ) सबको सन्तृप्त करती रहती है। इस त्रयीधर्मरूपी धेनुका अर्थात् गृहस्थाश्रमका जो महापापी उच्छेद करता है, वह तामिस्र अथवा अन्धतामिस्र नामक नरकमें जा गिरता है। देवगण इस धेनुके बछड़े हैं। उन्हें जो मनुष्य इस धेनुका योग्य कालमें दूध पिलाकर तृप्त करता है, वह स्वर्ग-लोकको प्राप्त करता है। इस कारण हे पुत्र ! देव, ऋषि, पितर, मनुष्य और प्राणिमात्रका मनुष्यको अपने शरीरकी तरह पोषण करना चाहिये। प्रतिदिन इसीलिये ठीक समयपर स्नानकर पवित्रतासे और स्थिरचित्त होकर देवता, ऋषि, पितर और प्रजापतिका जल-दानके द्वारा तर्पण करना उचित है। गृहस्थ प्रतिदिन चन्दन, गन्ध, पुष्प आदिसे देव-पूजनकरे, फिर अग्नितर्पण (वैश्वदेव) करे और अनन्तर बलिप्रदान करे। ब्रह्मा, विश्वेदेवा और धन्वन्तरिके उद्देश्यसे घरमें पूर्व अथवा उत्तरमें बलिप्रदान करे। इन्द्रको पूर्वमें, यमको दक्षिणमें वरुणको पश्चिममें और सोमको उत्तरमें बलिप्रदान करे। घरकी देहलीपर धाता और विधाताको तथा घरके बाहर चारों ओर अर्यमादि पितरोंको बलिप्रदान करना चाहिये। निशाचरों और भूतमात्रके उद्देश्यसे आकाशमें बलि देवे। पितरोंको बलिप्रदान करते हुए दक्षिणाभिमुख होना चाहिये। बुद्धिमान् गृहस्थ सावधान चित्तसे तत्पर होकर जहां जहां बलि जिन जिनको दिया हो, वहां वहां उन उन देवताओंके उद्देश्यसे आचमनके लिये जल प्रदान करे। इस प्रकार गृहपति पवित्र होकर घरमें गृह-बलि प्रदान कर आदरके साथ प्राणिमात्रकी तृप्तिके लिये उत्सर्ग-विधि करे। इसके पश्चात् कुत्तों, अन्त्यजों (अछूतों) और पक्षियोंके लिये भूमिपर अन्न प्रदान करे। इसीको वैश्वदेव कहते हैं और यह विधि गृहस्थको सायं-प्रातः प्रतिदिन करना चाहिये। वैश्वदेव करनेके अनन्तर बुद्धिमान् पुरुषको आचमन करके अपने घरके द्वारका अवलोकन करना चाहिये ॥ ६-२४ ॥ एक मुहूर्तके आठवें भागतक द्वारपर खड़े होकर अतिथिकी बाट जोहनी चाहिये और

अतिथिके आनेपर उसको गन्ध-पुष्पादिसे पूजाकर उसे यथाशक्ति अन्न-जल देना चाहिये। मित्र अथवा एक ही ग्रामका रहनेवाला अतिथि नहीं होता। जिस व्यक्तिका कुल और नाम विदित न हो, जो उसी समय उपस्थित हुआ हो, थका-मांदा आया हो, जिसके पास कुछ न हो, जो भूखा हो और याचना करता हो, ऐसे ब्राह्मणको विद्वान् पुरुषोंने अतिथि माना है। ऐसे अतिथिका शक्तिके अनुसार सत्कार करना उचित है। बुद्धिमान् गृहस्थ अतिथिके वेद, शाखा, स्वाध्याय आदिका विषय कुछ भी न पूछे। अतिथि सुन्दर है या कुरूप, इसका विचार न कर उसे साक्षात् प्रजापतिका स्वरूप समझना चाहिये। जिस स्थानमें गृहस्थ रहता है, वहां अभ्यागत स्थायी रूपसे न रहनेके कारण ही उसे अतिथि कहते हैं। अतिथिको तृप्त करनेसे गृहस्थाश्रमी नृयज्ञके ऋणसे उऋण होता है॥२५-२६॥ जो अतिथिको भोजन कराये विना स्वयं भोजन करता है, वह किल्विषभोजी है, केवल पाप भोजन करता है और अन्य जन्ममें विष्ठा खाता है। जिसके घरसे अतिथि हताश होकर लौट जाता है, उसका पुण्य वह अतिथि ले जाता है और अपना पाप गृहपतिको दे जाता है। अतिथिको जल, शाक अथवा जो कुछ स्वयं भोजन किया जाय, वह अर्पण कर गृहस्थ अपनी शक्तिके अनुसार आदरके साथ उसकी पूजा करे। प्रतिदिन अन्न और जलादि द्वारा पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक ब्राह्मणोंको भोजन करावे। अन्नका अग्रभाग उठाकर ब्राह्मणको देवे और परिव्राजक (संन्यासी) अथवा ब्रह्मचारी भिक्षार्थ उपस्थित हुए हों, तो उनकोभी भिक्षा अर्पण करे। एक ग्रास अन्नको भिक्षा चार ग्रास अन्नको अग्रभाग और चौगुने अग्रभागको हन्तकार कहते हैं, अपने वैभवके अनु-

---

टीका:—पञ्चमहायज्ञ गृहस्थादिके लिये अवश्य कर्तव्य हैं। ऊपर लिखे हुये सब आचार पञ्चमहायज्ञके सम्बन्धके हैं। ज्ञानराज्यके संचालक नित्य ऋषिगणकी तृप्ति करनेसे ब्रह्मयज्ञ होता है। और उससे ज्ञानराज्यका सम्वर्धन होता रहता है। यज्ञादि द्वारा और दानादि पुण्य-कर्मों तथा आहुति प्रदानसे देवयज्ञका साधन होता है। उसके द्वारा देवतागण सम्वर्धित होते हैं और उनके सम्वर्धनसे धर्माधर्मकी श्रृंखला और कर्मकी व्यवस्था ब्रह्माण्डमें सुरक्षित रहती है। श्राद्धादि द्वारा पितृयज्ञका साधन होता है। उससे नित्य (देवता विशेष) और नैमित्तिक (परलोकगामी पितर) दोनों सम्वर्धित होते हैं। उनके सम्वर्धनसे स्थूल जगत् और स्थूल शरीरकी सुव्यवस्था होती है तथा कुलकी पवित्रता और सुरक्षा होती है। भूतबलि द्वारा नाना प्रकारके भूतसङ्घके सञ्चालक देवताओंकी तृप्ति होनेसे वह भूतयज्ञ कहाता है। उसके द्वारा मनुष्य भूतऋणसे उऋण होता है और उसकी आत्मा व्यापकताको प्राप्त करती है। अतिथि सत्कारादि द्वारा तथा इसी प्रकारके और धर्म जो इस अध्यायमें कहे गये हैं, उनके द्वारा नृयज्ञका साधन होता है। जिससे धर्मात्मा मनुष्य समाजके ऋणसे उऋण होता है। ऊपरके सब धर्म इन पञ्चमहायज्ञोंके ही धर्म हैं। पञ्चमहायज्ञ साधारणधर्म है। मनुष्यमात्र चाहे आर्य हो या अनार्य, पञ्चमहायज्ञ रूपान्तरसे कर सकता है। क्योंकि साधारणधर्म सर्वजीवहितकारी होता है। दानधर्मके

सार हन्तकार, भिक्षा अथवा अग्रभाग दिये विना भोजन नहीं करना चाहिये ॥३०-३६॥ अतिथिका सत्कार करनेके उपरान्त इष्ट-मित्र, जाति, बन्धु, याचक, अपाहिज, वालक, वृद्ध और आतुरको भोजन करावे। यदि कोई अकिञ्चन व्यक्ति भूखा-प्यासा आया हो तो, उसे और यदि विपुल सम्पति हो, तो सम्पन्न कुटुम्बियोंकोभी भोजन कराना चाहिये। जातिमें श्रीमान् गृहस्थोंके रहते हुए यदि उस जातिके कुछ लोग कष्ट पाते हों और उन कष्टोंके कारण यदि वे कोई पाप करें, तो उस पापके भागी उस जातिके श्रीमान् गृहस्थभी होते हैं। यह सब विधि दिनकी तरह सन्ध्या समय भी करनी चाहिये। सूर्यास्तके समय यदि अतिथि आजावे, तो अपनी शक्तिके अनुसार शयन, आसन, भोजन आदि द्वारा उसका सत्कार करना आवश्यक है। हे तात! इस प्रकार जो गृहस्थ अपने कन्धेपर गृहस्थीका भार उठाता है, उसपर विधाता, देवगण, ऋषिगण, पितृगण, अतिथिगण, बान्धवगण,

---

त्रिविधभेद तपोधर्मके त्रिविधभेद, कर्मयज्ञके छः भेद, उपासना यज्ञके नौ भेद, और ज्ञानयज्ञके तीन भेद, तथा इन सबके सात्विक, राजसिक, तामसिकरूपसे तीन भेद इस प्रकार बहत्तर भेद साधारण धर्मके साधारण रूपसे कर्ममीमांसा-शास्त्रमें माने गये हैं। इसके अतिरिक्त धर्मस्वरूपसे यज्ञधर्मके जो यज्ञ और महायज्ञ समष्टि और व्यष्टि लक्ष्यके भावसे शास्त्रोंमें कहे गये हैं तथा सत्य, ब्रह्मचर्य, क्षमा आदि जो साधारण धर्मके अनेक उपाङ्ग कहे गये हैं, वे सब स्त्री-पुरुष, आर्य, अनार्य, सबके हितकारी हैं। परन्तु ब्राह्मणधर्म, क्षात्रधर्म-आदि वर्णधर्म और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्यआदि आश्रमधर्म गृहस्थके प्रवृत्तिधर्म और संन्यासीके निवृत्तिधर्म, पुरुषके धर्म और स्त्रीके धर्म, आर्यजातिके धर्म और अनार्यजातिके धर्म ये सब विशेषधर्मके अन्तर्गत माने गये हैं। इन धर्मोंमें जैसा जिसका अधिकार हो, वह वैसा इन विशेषधर्मोंका पालन कर सकता है। ऊपर विशेषधर्म और साधारणधर्म इकट्ठे कहनेपरभी उनके अधिकार पृथक् हैं॥ गृहस्थधर्म विशेषधर्म होनेपर-भी उसकी महिमा अधिक क्यों कही गयी है, इसका कारण ऊपरके अलौकिक रूपकके वर्णनमें कहा गया है। अब सम्भव है कि, महारानी मदालसाके जीवनके विषयमें और उसके उपदेश देनेके अधिकारके विषयमें पुराणपाठकोंको अनेक शङ्काएँ हो सकती हैं। यथा स्त्री होने और महारानी होनेपर भी उसको उपदेश देनेका आचार्योंकी तरह अधिकार है या नहीं? सृष्टिमें जब पुरुषधारा और स्त्रीधारा दो अलग अलग हैं और मीमांसा शास्त्रका सिद्धान्त है कि, स्त्री बिना पुरुष हुए मुक्तिकी अधिकारिणी नहीं हो सकती, तब महारानी मदालसा में मुक्तात्माके लक्षण कैसे सम्भव हैं? इस प्रकारका उच्च अधिकार स्त्रियोंमें सम्भव है या नहीं? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान कर देना अत्यन्त उचित है। शास्त्रोंमें जैसे सतीके चार प्रकारके भेद कहे हैं, मूल प्रकृति ब्रह्मशक्तिकी जैसी चार अवस्थाएँ मानी गयी हैं, यथा,-स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय, जिसका विस्तृत वर्णन आगे आवेगा, उसीप्रकार स्त्री-जातिकेभी चार अधिकार तत्वदर्शी मुनियोंने माने हैं। उनमें से एक विकृतिके अनुसार और तीन प्रकृतिके अनुसार अधिकार हैं। जगत्में इन्द्रियभोगके सम्बन्धसे और इन्द्रियसुखेच्छा-मूलक जो साधारण स्त्रियोंका अधिकार है, वह प्रकृतिके अनुसार नहीं, विकृतिमूलक है। अनार्य स्त्रियोंमें तो यही अधिकार पूर्णरूपसे विद्यमान है। आर्यमहिलाओंमेंभी इस अधिकारका बाहुल्य है। यह अधिकार सबसे निम्न और चतुर्थस्थानीय है। पुरुषके इहलौकिक सुखपर लक्ष्य रखकर जो सती स्त्री प्रवृत्ति मार्गमें अग्रसर होती है, वह स्त्री-जातिका तृतीय और उत्तम अधिकार है। इसी प्रकार जो स्त्री पुरुषके

पशु, पक्षी, सूक्ष्मकीट आदि सभी अत्यन्त प्रसन्न और तृप्त होकर कल्याणकी वृष्टि करते हैं। हे महाभाग! महाभाग अत्रिने गृहस्थाश्रम संबंधी जो गाथा कथन की है, वह मैं सुनाती हूं, तुम उसे श्रवण करो। यदि गृहस्थकी साम्पत्तिक स्थिति अच्छी हो, तो उसे देवगण, पितृगण, अतिथिगण, बन्धुबान्धव, ज्ञातिबन्धु और गुरुगणका सत्कार करनेके उपरान्त कुत्तों, अछूतों और पक्षियोंके उद्देश्यसे भूमिपर अन्नदान करना चाहिये। यह वैश्वदेव नामक विधि प्रतिदिन सायं प्रातः करनी चाहिये। मांस अन्न, शाक या और जो कुछ घरमें बना हो, उसे यथाविधि देव, ऋषि, पितृ, अतिथि आदिको समर्पण किये विना स्वयं कदापि भक्षण नहीं करना चाहिये ॥३१-४६॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणका मदालसोपदेश नामक उनतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

इहलौकिक तथा पारलौकिक अभ्युदयको सदा ध्यानमें रखकर अपने तपोमूलक धर्मका पालन करती है, वह उन्नततर द्वितीय अधिकार है। नारीजातिका प्रथम और सर्वोत्तम अधिकार कुछ विलक्षण है। जो अलौकिक शक्ति सम्पन्ना और आसाधारण धर्माधिकार प्राप्ता सती, पुरुषके तथा अपने दोनोंके निःश्रेयसके निमित्त अपने शरीर और मनको नियोजित करती है, वह अलौकिक धर्मिणी नारी सर्वोत्तम है और वह अधिकार उच्चदेवियोंमें सम्भव होनेपरभी स्वर्गमेंभी दुर्लभ है। सांख्य-शास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, मुक्ति ज्ञानारूढ होनेसे और कार्यप्रवाहमें आत्म-समर्पण करनेसे दोनों प्रकारसे होती है। और वह मुक्ति चाहे पुरुष की हो चाहे स्त्रीकी, दोनों सम्भव है। दम्पतिकी उच्चतम अवस्थामें जब नारीमें इस प्रकार एक ओर उच्च कर्म-विपाकका उदय हो और दूसरी ओर उसकी अलौकिक तपस्या और आत्मज्ञानका उदय हो, तबही महारानी मदालसाके सदृश आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त हो सकती है। कर्मकी गति अति विचित्र और दुर्ज्ञेय है। और कर्मके द्वारा सम्भव, असम्भव, सब कार्य हो सकते हैं। इस कारण कर्मकी लोकातीत शक्तिके द्वारा एक ही जन्ममें स्त्रीधारा और पुरुषधाराकी भेद-प्रतीति नष्ट होकर प्रकृति और पुरुष दोनोंकी यथार्थ पृथकता ब्रह्माण्ड और पिण्डमें अनुभूत होकर नारीको यह लोकातीत प्रथम अवस्था प्राप्त होसकती है, इसमें संदेहका अवसर नहीं है। क्योंकि ऐसी दशामें लौकिक दृष्टिसे उसका स्थूल शरीर नारीका होनेपरभी आत्म-ज्ञानके प्रभावसे उसका सूक्ष्म शरीर रूपान्तरको प्राप्त होता है और कारण शरीर निर्बीज हो जाता है। अवश्य यह दशा अति असाधारण है। दूसरी ओर पुरुष और स्त्रीके समान अधिकारोंके पक्षपाती, जल्प, वितण्डा और वाद करनेवालोंके पुरुषार्थकाभी यहां अवसर नहीं है। स्त्री-जातिके लिये अवश्य साधारणतः निरापद पथ सतीत्वधर्मका ही है। सतीत्वधर्मके पालनसे ही स्त्रीप्रकृति स्वाभाविक संस्कारकी शक्तिको प्राप्तकर स्वतः ही अभ्युदय और निःश्रेयसकी ओर परिगामिनी होती है। इस पथमें अग्रसर होते हुए पुण्यफल-भोगके साथ ही साथ ऐहलौकिक और पारलौकिक अभ्युदय और क्रमशः स्त्रीधाराको छोड़कर पुरुषधारामें उसकी परिणति होती है। परन्तु असाधारणधर्मकी अधिकारिणी उन्नततम अधिकारकीस्त्री त्रिविध शुद्धिका अधिकार साथही साथ प्राप्त करते रहनेपर वह इस उच्चतम अधिकारको एक ही जन्ममेंभी प्राप्त कर सकती है। जब स्त्री या पुरुष शरीरधारी कोईभी हो, वह मूलप्रकृति और आदिपुरुष दोनोंको अलग अलग अनुभव करके स्वस्वरूपकी उपलब्धि करनेमें समर्थ हो, तो ऐसी दशामें धर्मोपदेश और ज्ञानोपदेश देनेका अधिकार उस महात्माको होही सकता है। और पुत्रको माताका धर्मोपदेश देना तो धर्म ही है ॥ १-४६ ॥

तीसवां अध्याय

—:०:—

मदालसाने कहा,—हे पुत्र ! गृहस्थोंके करने योग्य तीन प्रकारके कर्म होते हैं; यथा,—नित्य, नैमित्तिक और नित्य-नैमित्तिक (मिश्र)। तीनोंका विवरण मैं कहती हूं, तुम सुनो। मैंने जो पञ्चमहायज्ञका विषय कहा, वे सब नित्य कर्म हैं। इसके अतिरिक्त पुत्रकामेष्टिआदि कर्म नैमित्तिक और पर्व श्राद्धादि कर्म पण्डितोंने नित्य-नैमित्तिक माने हैं। इनमेंसे जिससे अभ्युदय होता है, उन श्राद्धादि नैमित्तिक कर्मोंका विषय कहती हूं। पुत्रका जन्म होनेपर गृहस्थोंको जातकर्मके साथ जो विधि करनी चाहिये, वे ही सब विवाहादिके अवसर परभी क्रमशः भलीभाँति करनेकी शास्त्राज्ञा है। संस्कारोंके करते समय जो पितृगण नान्दीमुखके नामसे प्रसिद्ध हैं, उनका पूजन करना चाहिये। उस समय यजमानको सावधानतासे पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर पितरोंके उद्देश्यसे-दहीमें सने हुए यवके आटेका पिण्ड देना चाहिये। किसी किसीके मतसे यह कर्म करते हुए बलि-वैश्वदेवकी आवश्यकता नहीं होती। इस कर्ममें सम संख्यामें, (जैसे,—दो, चार, आठ, दस इत्यादि) ब्राह्मणोंको वरणकर उनकी प्रदक्षिणा करके पूजा करनी चाहिये। यह नैमित्तिक वृद्धिश्राद्ध कहाता है। इसके अतिरिक्त किसीके मरणदिनमें एकोद्दिष्ट नामक जो और्ध्वदेहिक श्राद्ध किया जाता है, उसका विवरण सुनो। इसमें देवकार्य नहीं किया जाता है और कुशाका एकही पवित्रक धारण किया जाता है। आवाहन और अग्नौकरणकीभी इसमें विधि नहीं है। उच्छिष्टके निकट प्रेतके उद्देश्यसे एकही पिण्ड प्रदान कर उसके नामका स्मरण करते हुए अपसव्यसे अर्थात् जनेऊ दाहिने कंधेपर और बाएं हाथके नीचे कर तिलोदक देना चाहिये। उस समय कहना चाहिये कि, अमुकके उद्देश्यसे यह जलदान करता हूँ, यह अक्षय्य हो, (अटूट रहे) और इससे प्रेतात्मा प्रीति लाभ करे। इस प्रकार ब्राह्मणोंको बिदा करते समय वेभी कहें कि, हम प्रसन्न हुए हैं। गृहस्थोंको यह विधि एक वर्ष तक प्रतिमास करनी चाहिये। फिर संवत्सर बीत जानेपर अथवा गृहस्थ जब करना चाहे, सपिण्डीकरण नामक पितृ-कार्य करे। उसकी विधि अब मैं कहती हूं। इस विधिमेंभी देवकार्य नहीं किया जाता, एक अर्घ्य दिया जाता और एक ही पवित्रक धारण किया जाता है। अग्नौकरण और आवाहन करनेकाभी प्रयोजन नहीं है। अपसव्य करके पिण्ड देना चाहिये और विषम, (जैसे,—तीन, पांच, सात, इत्यादि) ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। इसमें प्रतिमास कुछ अधिक क्रियाएंभी करनी पड़ती हैं। उनको मैं कहती हूं, तुम एकाग्र होकर सुनो

॥१-१४॥ हे पुत्र ! इस विधिमें गन्ध, जल और तिलपूर्ण चार पात्रोंकी स्थापना करनी चाहिये। तीन पात्र पितरोंके और चौथा प्रेतका होता है। पितरोंके लिये स्थापित तीन पात्रोंमें प्रेतके चौथे पात्रका अर्घ्य देना चाहिये। अर्घ्य देते हुए "ये समाना" इत्यादि मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये। शेष सब विधि पूर्व श्राद्धके अनुसार ही करनी चाहिये। स्त्रियोंके उद्देश्यसेभी इसी प्रकार एकोद्दिष्टश्राद्ध करनेका विधान है। परन्तु जिस स्त्रीके पुत्र न हो, उसका सपिण्डीकरण नहीं किया जाता। गृहस्थोंको स्त्रियोंका यह एकोद्दिष्टकार्य प्रतिवर्ष करना चाहिये। पुरुषोंकी तरह स्त्रियोंका भी मरणदिनमें श्राद्ध करनेकी शास्त्रोंकी न्याय-संगत आज्ञा है। पुत्र न हो तो सपिण्डगण और सपिण्ड न हो, तो सहोदकगण पुत्रहीन व्यक्तिके लिये यह श्राद्धविधि भलीभाँति करे। अपुत्र मातामहका श्राद्ध करनेका नातीकोभी अधिकार है। नाती पोते अपने मातामह-पितामहका यह 'द्व्यामुष्यायन' नामक विधि करके यथान्याय पूजन करते हुए इस नैमित्तिक श्राद्धका सम्पादन करें। यदि कोई न हो, तो स्त्रीही अपने पतिका अमन्त्रक रीतिसे श्राद्ध करे। यदि स्त्रीभी न हो, तो राजा उस मृतक व्यक्तिके कुटुम्बियों अथवा जाति-बान्धवोंके द्वारा भलीभाँति उसकी दाहादि सब क्रिया करा दे। क्योंकि राजा सभी वर्णोंका बान्धव होता है। हे वत्स ! ये सब नित्य और नैमित्तिक क्रियाएँ मैंने कही हैं। अब श्राद्धसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्य नित्य-नैमित्तिक क्रियाओंका विषय सुनो, चन्द्रमाका जो क्षयकाल है, वह दर्श कहाता है। श्राद्धका यह निमित्त है। यह नियत अवसरपर उपस्थित होता है। अर्थात् प्रति अमावस्याको ही यह काल प्राप्त होता है। इससे उसकी नित्यता सूचित होती है। इस कालमें जो कर्म किये जायं, वे नित्य-नैमित्तिक कहाते हैं ॥१५-३०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका श्राद्धकल्प नामक तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकतीसवाँ अध्याय ।

मदालसाने कहा,—सपिण्डीकरणसे पितृपिण्डमें पिताके प्रपितामहका अधिकार नहीं रहता। वह लेपभोजियोंमें चला जाता है और उसका पिण्ड लुप्त हो जाता है। पितरोंमें जो चतुर्थ है अर्थात् जो पिताका प्रपितामह है, वह पुत्रका लेपान्नभोजी होनेसे

टीका :—कर्मके प्रधानतः तीन भेद हैं। यथा :—शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक। बौद्धिक कर्म अध्यात्म, मानसिक कर्म अधिदैव, और शारीरिक कर्म अधिभूतरूपको धारण करते हैं। इन्हीं

पिण्ड-सम्बन्धसे रहित होकर केवल पिण्डका उपभोग मात्र करता है। अर्थात् सपिण्डों को दिये हुए पिण्डका ही वह अंशभागी होता है, उसका स्वतन्त्र पिण्ड नहीं होता। पिता, पितामह और प्रपितामह ये तीन ही पुरुष पिण्डसम्बन्धी कहाते हैं। पितामहके पितामहसे ऊपरके तीन पुरुष लेपसम्बन्धी माने गये हैं। स्वयं यजमान सातवां पुरुष है। इस प्रकार मुनियोंने सात पुरुषोंका सम्बन्ध बताया है। यजमानसे ऊपरके जो सब अनुलेपसम्बन्धी पुरुष होते हैं और जो अन्य पूर्वपुरुष नरकमें, तिर्यक्योनिमें या भूतादि योनियोंमें प्राप्त हुए हैं, हे पुत्र! उन सबको यजमान किस विधानके अनुसार श्राद्ध करके तृप्त करे, वह विषय मैं कहती हूं, तुम सुनो। मनुष्य भूमिपर जो अन्न छींटते हैं, उससे पिशाच योनिको प्राप्त हुए व्यक्तियोंकी तृप्ति होती है। हे वत्स! स्नानके वस्त्रसे जो जल चूता है, उसके पृथ्वीपर टपकनेसे उसके द्वारा जो वृक्षयोनिमें प्राप्त हुए हों, उन पितरोंकी तृप्ति होती है। अपने शरीरसे स्नानके पश्चात् जो जलविन्दु पृथ्वीपर गिरते हैं, उनसे अपने कुलके वे पितर तृप्त होते हैं, जिन्हें देवत्व प्राप्त हुआ हो ॥१-१०॥ पिण्ड उठाते समय जो अन्न पृथ्वीपर गिर जाता है, उससे तिर्यक्योनिप्राप्त पूर्वपुरुष तृप्तिलाभ करते हैं। कुलमें जो व्यक्ति बाल्यावस्थामें ही मरनेपर क्रियाके योग्य होनेपरभी विना संस्कारके जला दिये गये हों, वे विपन्न व्यक्ति विकिरित अन्न और सम्मार्जनके जलसे तृप्ति लाभ करते हैं। ब्राह्मणगण भोजनके पश्चात् आचमन करते हैं, उस समय जो जल भूमिपर गिरता है और उनके चरण धोनेसे जो जल बहता है, उसको पान करके अन्य सब पितृगण तृप्त होते हैं। हे वत्स! जो गृहस्थ उत्तम रीतिसे श्राद्धकर्म करता है, उस यजमानके और उस श्राद्धमें जो ब्राह्मण भाग लेते हैं, उनके थोड़ा भी अन्न या जल अर्पण करनेसे, चाहे वह अन्नजल पवित्र हो या जूठा, उसके कुलमें जो पितर जिस किसी योनिमें गये हों, वहां वे तृप्तिलाभ करते हैं ॥ ११—१५ ॥ अन्यायसे उपार्जित धनसे यदि मनुष्य पितृश्राद्ध करे, तो उससे जो पितर चाण्डाल, डोम आदिकी योनियोंमें प्राप्त हुए हों, वे तृप्त होते हैं। हे वत्स! इस प्रकार मृतकके बन्धु-बान्धव श्राद्धके द्वारा जो अन्न और जल दान करते हैं, उससे उनके

तीन प्रकारके कर्मसंग्रहके अनुसार संस्कारभी तीन श्रेणीके बनते हैं और उन्हींसे कर्मविपाककी श्रृंखला भी बनती है। कर्मविपाकके अन्तर्दृष्टिसम्पन्न मुनियोंने चौबीस प्रकारके भेद माने हैं। यथा :—तीन प्रकारकी देवयोनिकी प्राप्ति। ऊर्ध्व देवयोनि, अधो असुरयोनि और मध्य पितृयोनि। तीन प्रकारकी देवश्रेणी हैं। यथा :—ऋषि, देवता, और पितर। जिनका वर्णन पहिले आचुका है। तीन प्रकारकी दुःखदायी योनियां हैं। यथा :—नरकके जीव, प्रेतलोकके जीव और मूढ़योनिके जीव। तीन प्रकारके चतुर्विध भूतसंघ हैं। यथा :—स्वर्गीय पशु, पक्षी, वृक्षादि, नरकके चतुर्विध भूतसंघ और मनुष्यलोकके आरूढ़पतित भूतसंघ। तीन मनुष्य श्रेणीकी अवस्थायें हैं। यथा :—सुखी, मध्य श्रेणीके और दुखी मनुष्य। तीन मनुष्यपिण्डकी अवस्थाएं स्वास्थ्य-सम्बन्धसे शरीरके विचारसे मानी गयी हैं। तीन श्रेणी

बहुसंख्यक पितृ-पुरुष तृप्ति लाभ करते हैं। इसलिये प्रत्येक मनुष्यको भक्तिपूर्वक यथाविधि चाहे शाकपातसे ही क्यों न हो, श्राद्ध करना चाहिये। श्राद्ध करनेसे कुलका कोईभी पितृ-पुरुष कष्ट नहीं पाता। अब मैं श्राद्धका नित्य-नैमित्तिक काल और मनुष्यको किस विधिसे वह करना चाहिये, इसका वर्णन करती हूँ, उसे तुम समझ लो। प्रतिमास अमावास्याके दिन जिस दिन चन्द्रमाका क्षय होता है, विधिपूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। अष्टका (माघकृष्णा अष्टमी) कोभी श्राद्ध अवश्य करना चाहिये। अब श्राद्धका इच्छाकाल कहती हूं, वह सुनो। यदि कोई विशिष्ट ब्राह्मण उपस्थित हुआ हो, सूर्य-चन्द्रका ग्रहण हो, अयन बदलता हो, विषुवका समय हो, रवि एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमण करता हो, व्यतीपातयोग हो, श्राद्धके उपयोगी वस्तु प्राप्त हुई हो, दुःस्वप्न दर्शन हुआ हो, जन्मनक्षत्रके कारण कोई ग्रहपीड़ा आगयी हो, तो ऐसे अवसरपर इच्छापूर्वक श्राद्ध करना चाहिये। कुछ विशिष्टतारखनेवाला, श्रोत्रिय, योगी, वेदोंको जाननेवाला, उत्तम सामगानकरनेवाला, नचिकेताके कहे हुए तीनों उपनिषदोंको, त्रिमधु (तीन मधुओं) को, त्रिसुपर्णको और षड़ङ्गोंको जाननेवाला, दौहित्र, ऋत्विक् (यज्ञ करानेवाला) जामाता, भांजा, श्वसुर, पञ्चाग्निसाधनकरनेवाला, तपस्वी, मामा, माता-पिताका भक्त, शिष्य, सम्बन्धी और बान्धव ये सब श्राद्धोपयोगी श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादि शून्य) रोगी, न्यूनाङ्ग, अधिकाङ्ग, दो बार व्याही हुई स्त्रीसे उत्पन्न, काना, कुण्ड (पतिके रहते दूसरे पुरुषसे उत्पन्न), गोलक (विधवापुत्र), मित्रद्रोही, कुनखी (गले हुए नखवाला) नपुंसक, दन्तरोगी, हीन आकृतिवाला, पितासे शाप पाया हुआ, खल, सोमवेचनेवाला, कन्याको विगाड़नेवाला, वैद्य, गुरु अथवा पिताका त्याग करनेवाला, वेतन लेकर पढ़ानेवाला, अमित्र (शत्रु), पर पूर्वापति (जो स्त्री पहिले किसी दूसरेकी पत्नी रही हो, उसका जो पति बन गया हो), वेदका त्याग करनेवाला, अग्निहोत्रका त्याग करनेवाला, वृषली पति (बारहवर्षकी अविवाहिता ऋतुमती स्त्रीका पति), दूषित और अन्यान्य बुरे कर्मोंका आचरणकरनेवाले ब्राह्मणको पितृकार्यमें वरण नहीं करना चाहिये ॥ १६—२९ ॥ श्राद्धके

ज्ञानके विचारसे मानी गयी हैं। यथा :—ज्ञानवान्, विषयी और ज्ञानहीन। तीन उन्नत अवस्थायें हैं जो लोकान्तरमें सालोक्यादि विज्ञानके अनुसार मानी गयी हैं। इस प्रकारसे कर्मविपाकके पाप और पुण्यके फलानुसार चौबीस भेद माने गये हैं। इसी विपाक-वैचित्र्यके अनुसार परलोककी गति अनिवार्य है। उसी विपाक-दशामें सुखीको प्रसन्नता और दुखीको यथाशक्ति सहायता पहुंचानेके अभिप्रायसे श्राद्धकर्मका यह पुरुषार्थ हैं। इसमें श्रद्धाही प्रधान है। मनोमयकोष और प्राणमयकोषके द्वारा यह सहायता पहुंचायी जाती है और योग्य ब्राह्मणोंकी सहायताभी इस कर्ममें परम सहायक होती है। क्योंकि उनके आत्मबलकी सहायता यजमानको प्राप्त होती है। इस अध्यायमें जो नचिकेताकी वेदोक्त गाथाका उल्लेख है, उसका लोकातीत रहस्य टीकाकारके कठोपनिषद् भाष्यमें देखने योग्य है ॥ १६—२९ ॥

पहिले दिन पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको निमन्त्रित करना चाहिये। पहिले दिन ही निश्चित कर देना चाहिये कि, अमुक देवकार्यमें और अमुक पितृकार्यमें नियुक्त किये हैं। उन ब्राह्मणों और श्राद्धकर्ताको संयमसे रहना चाहिये। जो मनुष्य श्राद्ध करके और जो श्राद्धका भोजन करके मैथुन करते हैं, उनके पितर एक मासतक वीर्यमें लेटे रहते हैं। जो मनुष्य स्त्रीसंग करके श्राद्ध करने जाते हैं, या जो स्त्रीसंगके पश्चात् श्राद्धान्न भोजन करते हैं, उनके पितर मूत्र और रेतका भोजन-पान एक मासतक करते रहते हैं। इसलिये बुद्धिमान् पुरुषको श्राद्धके पहिले दिनही ब्राह्मणोंको निमन्त्रित कर देना चाहिये। उस दिन यदि ऐसे ब्राह्मण न मिलें, तौभी स्त्रीसंग किये हुए ब्राह्मणका परित्याग करना चाहिये और ठीक समयपर प्राप्त हुए भिक्षार्थी संयमी तथा संन्यासीको प्रणामादिसे प्रसन्न कर संयतचित्तसे भोजन कराना चाहिये। जिस प्रकार पितरोंको शुक्लपक्षकी अपेक्षा कृष्णपक्ष अधिक प्रिय होता है, उसी प्रकार पूर्वाह्नकी अपेक्षा वे अपराह्नको अधिक पसन्द करते हैं ॥३०-३५॥ श्राद्धके लिये जो ब्राह्मण घर आये हों, उनका स्वागत कर उनकी पूजा करनी चाहिये और हाथमें कुशा लेकर उनके पांव धोकर उन्हें आसनपर बैठाना चाहिये। पितरोंके लिये विषम-संख्यक और देवोंके लिये सम-संख्यक ब्राह्मणोंको वरण करना चाहिये। प्रत्येक पितर (पितृ, पितामह, प्रपितामह) के लिये एक एक और देवोंके लिये अपनी शक्तिके अनुसार जितने चाहे उतने ब्राह्मण वरण किये जा सकते हैं। मातामह, मातृपितामह, मातृप्रपितामहके लियेभी एक एक ब्राह्मणका वरण हो अथवा वैश्वदैविक विधिमेंभी उनका अन्तर्भाव कर दिया जाय, अर्थात् विश्वेदेवोंकी पूजाके साथही उनकी पूजा करदी जाय। कुछ लोगोंके मतसे उनके लिये पृथक् ब्राह्मणोंका वरण करना ही उचित है। मनीषी पुरुषोंने आज्ञा दी है कि, देव-सम्बन्धी सङ्कल्प पूर्वाभिमुख होकर और पितर तथा मातामहादि-सम्बन्धी सङ्कल्प उत्तराभिमुख होकर करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष श्राद्धमें निमन्त्रित ब्राह्मणोंको कुशासनपर बैठाकर उन्हें अर्घ्य प्रदान करे। फिर उन्हें कुशके पवित्रक अर्पण कर और उनसे आज्ञा प्राप्तकर मन्त्रोच्चारपूर्वक देवोंका आवाहन करे। यव-मिश्रित जलके द्वारा विश्वेदेवाओंको अर्घ्य प्रदान करे और गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और जलसे उनकी पूजा करे। अपसव्यसे पितरोंका समस्त कार्य करना चाहिये। फिर उन्हें दो दो दर्भ देकर और उनकी अनुज्ञा प्राप्त कर मन्त्र उच्चारणपूर्वक बुद्धिमान् पुरुषको पितरोंका आवाहन करना चाहिये। हे महाभाग! पितरोंकी प्रसन्नतामें निरत पुरुष अपसव्य

टीका:—श्राद्धमें प्राणमयकोष और मनोमयकोषकी सहायताकी आवश्यकता होती है। अतः वीर्य धारणकी इतनी महिमा मानी गयी है ॥३०-३५॥

करके यवके बदले तिलमिश्रित जलसे पितरोंके लिये वरण किये हुए ब्राह्मणोंको अर्घ्य प्रदान करे। फिर जब वे ब्राह्मण अनुज्ञा दें कि, अग्निकार्य करो, तब नमक और मसालेसे रहित अन्नकी अग्निमें आहुति दे। पहिली आहुति देतेहुए 'अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा' यह कहे और 'सोमाय वै पितृमते स्वाहा' कहकर दूसरी आहुति दे। 'यमाय प्रेतपतये स्वाहा' कहकर तीसरी आहुति देनेके उपरान्त जो शेष बच रहे, वह ब्राह्मणोंको भोजनमें दे देना चाहिये। ब्राह्मणोंकी पत्तलको छूकर यथाविधि भोजन परोसे और मधुर वचन कहे कि, आप सुख-पूर्वक भोजन करें। फिर ब्राह्मणोको मौनभावसे बड़े चावके साथ सुखपूर्वक भोजन करना चाहिये। जिस अन्नको ब्राह्मण अधिक प्रिय समझे और चावसे मौन होकर प्रेम-पूर्वक खावें, उसी अन्नको क्रोधरहित होकर धीरे-धीरे यथासम्भव प्रलोभन देते हुए गृहस्थ उन्हें परोसे। सिद्धार्थकोंसे रक्षा पानेके लिये रक्षोघ्न मन्त्रोंको पढ़ते हुए पृथ्वीपर चारों ओर तिल छींट देना चाहिये; क्योंकि श्राद्धमें अनेक विघ्न हुआ करते हैं। फिर ब्राह्मणोंसे पूछे कि, क्या आप इस पुष्टिकर और तृप्तिकर अन्नसे तृप्त हुए हैं? तब ब्राह्मण कहें कि, हम तृप्त हो गये हैं। अनन्तर यजमान ब्राह्मणोंकी अनुमति लेकर भूमिपर चारों ओर अन्नको छींट दे और ब्राह्मणोंको आचमनके लिये एक एक बार जल प्रदान करे। फिर ब्राह्मणोंकी आज्ञा प्राप्तकर वाणी, शरीर और मनको संयत करते हुए सव्यसे कुशपर उच्छिष्टके पास पितरोंके उद्देश्यसे जल और अन्नके पिण्ड बनाकर अर्पण करे। हे पुत्र! भक्तिपूर्वक समाहित होकर पितृतीर्थसे यजमान पिण्डोंपर जल देवे। इसी तरह हे राज-कुमार! मातामहादिकोभी यथाविधि पिण्डप्रदान करना चाहिये। अनन्तर गन्ध-पुष्प-मिश्रित उन्हें आचमन देकर 'सुस्वधास्तु' इत्यादि मन्त्रका पाठ करते हुए अपनी शक्तिके अनुसार दक्षिणा प्रदान करे। ब्राह्मणोंके सन्तुष्ट होनेपर वैश्वदेविक मन्त्रोंका पाठ करके वे कहें कि, हे विश्वेदेवगण! आप सन्तुष्ट हों, आपका मङ्गल हो। उनके इस प्रकार कहने पर उनसे आशीर्वाद देनेकी प्रार्थना करे। उनसे आशीर्वाद ग्रहण करने पर प्रिय वचन कहते हुए उनको भक्तिपूर्वक प्रणाम कर विदा करे। विदा करते समय उन्हें द्वार तक पहुंचावे और उनकी अनुमति मिलने पर लौट आवे। फिर नित्यकर्म करे और अतिथियोंको भोजन करावे। कुछ विद्वानोंका मत है कि, श्राद्धदिनमें नित्यके पितृकर्म नहीं करने चाहिये और कुछ विद्वानोंके मतसे करना आवश्यक है। परन्तु पितृकर्मके अतिरिक्त शेष सब नित्यकर्म करने चाहिये। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि, श्राद्धदिनमें नित्यके पितृकर्म करनेके लिये पृथक् पाकनिष्पत्ति करनी चाहिये और कुछ लोगोंके मतसे इसका प्रयोजन नहीं है। नित्यकर्म करनेके पश्चात् शेष अन्नका अपने भृत्य, इष्ट-मित्रआदिके साथ गृहस्थ भोजन करे। धर्मज्ञ गृहस्थको इस तरह सावधानतासे पितृश्राद्ध करना

चाहिये, जिससे श्रेष्ठ ब्राह्मणगण सन्तुष्ट हो जायँ। महर्षियोंके मतसे दौहित्र, कुतप (मध्याह्न और अपराह्नके बीचका एक निश्चित काल) और तिल ये तीन श्राद्धमें पवित्र हैं। और क्रोध, परिभ्रमण तथा त्वरा ये त्याज्य हैं। हे पुत्र! श्राद्धमें चांदीका पात्र प्रशस्त माना गया है। अतः चांदीका दर्शन और दान करना चाहिये। सुना गया है कि, पितरोंने वसुन्धराका स्वधा रूपी दूध चांदीके पात्रमेंही दुहा था। इस कारण पितरोंको चांदी प्यारी है और इसकी वे चाहना करते हैं॥ ३९-६६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पार्वणश्राद्धकल्प नामक इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

बत्तीसवाँ अध्याय।

मदालसाने कहा,-हे वत्स! पितरोंकी प्रसन्नताके लिये भक्तिपूर्वक जिन वस्तुओंको जुटाना चाहिये और उनको अप्रीतिकर होनेसे जिन वस्तुओंको वर्ज्य समझना चाहिये, उनका मैं वर्णन करती हूं, सुनो। हविष्यान्नके द्वारा पितरोंकी एक मासतक तृप्ति होती है। मछलीके मांससे पितामहादि दो मास तक तृप्त रहते हैं। पितरोंकी तीन मासतक तृप्तिके लिये हरिणका मांस जानना चाहिये। खरहे [खरगोश] का मांस पितरोंको चार मासतक पुष्ट करता रहता है। शकुन पक्षीका मांस पांच मास, सूअरका मांस छः मास, बकरेका मांस सात मास, 'ऐण' नामक हरिणका मांस आठ मास, 'रुरु' नामक हरिणका मांस नौ मास और गवय (रोज़) नामक पशुका मांस दस मासतक पितरोंकी तृप्ति करता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। औरभ्र (भेड़ाका) मांस पितरोंकी ग्यारह मासतक तृप्ति करनेवाला है। गोदुग्ध और खीरसे पितरोंकी बारह मासतक तृप्ति होती है। वार्ध्रीनस * के मांस, लौहपक्षीके मांस, कालशाक (नरचेका शाक), मधु, दौहित्रके दिये हुए या अन्य किसी अपने कुलके पुरुषके लाये हुए मांससे पितृगण अनन्त कालतक तृप्त होते हैं। इसीतरह गयाश्राद्ध और गौरीसुत श्राद्धसे भी पितृगण तृप्त होते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। सांवां, राजसांवां, प्रसातिका (पसाईका चांवल), नीवार (तिन्नीका चांवल), पौष्कल ये धान्य पितरोंकी तृप्ति करनेवाले हैं।

---

* यह बकरेकी ही एक जाति है। पानी पीते समय यह कान नाक जलमें डुबा देता है। इसका लक्षण यह है:—

त्रिपिबन्तं कृतक्लीवं श्वेतं वृद्धमजापतिम्।
वार्ध्रीनसं तु तं प्राहुर्मुनयो यज्ञकर्मणि॥

इसी तरह यव, व्रीहि (धान), गेहूं, तिल, मूंग, सरसों, प्रियङ्गु (वलटाउन), कोविदार (कोदों), निष्पाव (पावटां) ये धान्य पितरोंके लिये उत्तम माने गये हैं ॥१—१०॥ मकई, राजमाष (बड़ी उरदी), अणु (छोटा), विप्रुषिक और मसूर ये धान्य गर्हित होनेसे श्राद्धमें वर्ज्य हैं। लहसुन, गाजर, प्याज, सलगम, करम्भ (कोत्री) और रस तथा वर्णसे हीन जो वस्तुएं हों, गन्धारिका (चुकरकन्द), अलाबू (तुम्बी), लवण-क्षार, प्रत्यक्ष लवण, लाल गोंद और जो वस्तुएं मुखसे उच्चारण करने योग्य न हों, वे सब श्राद्धमें त्याज्य हैं। लोगोंको सताकर कमाया हुआ, पतित व्यक्तिसे या अन्यायसे उपार्जन किया हुआ और कन्याविक्रयसे प्राप्त किया हुआ धन श्राद्धके लिये अत्यन्त निन्दनीय है। दुर्गन्धियुक्त, फेनयुक्त, छोटी गड़हीका, जिससे गौकी तृप्ति न हो, जो रातको लाया गया हो, जिसे सब लोगोंने त्याग दिया हो, जो पीनेयोग्य न हो और जो प्याऊ (पोसरे) से लाया गया हो, हे तात ! पितृकर्ममें ऐसा जल सदा वर्ज्य है। ऐसे जलका श्राद्धमें कभी व्यवहार नहीं करना चाहिये। मृगका, बकरीका, ऊँटनीका, एक खुर (शफ) वाले प्राणीका, भैंसका, भेड़का, उस गौका कि, जिसको प्रसूत हुए दसदिन न बीत गये हों और जो 'श्राद्धके लिये दो' यह कहकर लाया गया हो, सज्जनोंको ऐसे दूधका श्राद्धकर्ममें सदा परित्याग करना चाहिये ॥ ११—१६ ॥ कीड़ों-मकोड़ोंसे व्याप्त, रूखी, आगसे जलीहुई, अनिष्ट दुष्ट शब्दोंसे उग्र अर्थात् जहां कोलाहल होता हो और दुर्गन्धियुक्त भूमि श्राद्ध-कर्मके लिये निषिद्ध है। जो कुलका अपमान करनेवाला हो, बहेलिया, मौष्टिक (मुष्टियोद्धा), लङ्घक (अश्वारोही), नंगा और पापी मनुष्य यदि श्राद्धकर्मको देख ले, तो वह कर्म नष्ट हो जाता है। नपुंसक, माता पिता और गुरुके द्वारा परित्यक्त व्यक्ति, मुरगा, ग्राम-शूकर, कुत्ता और राक्षस ये यदि श्राद्धकर्मको देख लें, तो वह कर्म नष्ट हो जाता है। इस कारण, हे तात ! सुसंवृत होकर (गुप्त रीतिसे) पृथ्वीके चारोंओर तिल छींट देना चाहिये। इससे श्राद्धकर्मकी और अपनी भी रक्षा होती है। जननाशौच और मरणाशौच जिसको लगा हो और उससे जो छू गया हो, जो रोगी हो, जो पतित अथवा मलिन हो, उसका छुआ हुआ द्रव्य श्राद्धमें काममें लानेसे पितरोंकी पुष्टि नहीं होती। ऐसे लोगोंको श्राद्धकालमें पास नहीं आने देना चाहिये और रजस्वलाका तो दर्शन भी नहीं करना चाहिये। जिसका माथा मुंड़ा हुआ हो और जिसे मद्यपानका अभ्यास हो गया हो, श्राद्धकालमें यत्नपूर्वक उससे बचना चाहिये। जिसमें केश या कीटक पड़ गये हों, जिसे कुत्तेने देख लिया हो, जिसमें पीपकी गन्धि आती हो, जो बासी हो और वस्त्रसे जिसपर हवा की गयी हो; ऐसी वस्तुका श्राद्धमें परित्याग करना चाहिये। परम श्रद्धासे युक्त होकर पितरोंके नाम और गोत्रोच्चारपूर्वक जो कुछ अर्पण किया जाता है, वह उन्हें

आहारके रूपमें परिणत होकर प्राप्त होता है। इस कारण श्राद्धमें पितरोंके सन्तोषसाधनार्थ श्रद्धावान् होकर शास्त्रविधानानुसार प्रशस्त वस्तुओंको ही पितरोंको तृप्ति चाहने वालोंको योग्य पात्रमें अर्पण करना उचित है॥ १७-२७॥ बुद्धिमान् मनुष्य श्राद्धमें योगी पुरुषको सदा भोजन करावे। क्योंकि पितृगण योगके आधारस्वरूप हैं। अतः योगियोंकी सदा पूजा करनी चाहिये। योगीको यदि पहिले भोजन करा दिया जाय, तो वह हजारों ब्राह्मणोंकी अपेक्षा यजमान और भोजन करनेवाले अन्य लोगोंको ऐसा तार देता है, जैसी नांव जलमें तार देती है। इस लोकमें ब्रह्मवादियोंद्वारा पितरोंकी गाथा गायी जाती है। पूर्वकालमें पितरोंने यह गाथा महीपति ऐलके उद्देश्यसे गायी थी॥ २६-३०॥ वह गाथा इस प्रकार गायी थी कि, "हमारी सन्तानमें कब ऐसा सर्वश्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न होगा, जो योगियोंके भुक्तावशिष्ट अन्नके द्वारा भूमिपर हमारे उद्देश्यसे पिण्ड प्रदान करेगा? अथवा हमारी एक मासकी तृप्तिके लिये गयामें जाकर उत्कृष्ट हविःस्वरूप गेंडेके मांस, कालशाक, तिलयुक्त कृषर (खीचड़ी) आदि वस्तुओंका पिण्ड हमें अर्पण करेगा? वैश्वदेव और सौम्यबलिके विषयमें गेंडेका मांस बहुत उत्तम हवि माना गया है। यदि बिना सींगके गेंडेका मांस मिल जायं, तो उसको खाकर जबतक सूर्य है, तब तक हम तृप्त होते रहेंगे।" दक्षिणायनकी त्रयोदशी तिथि और मघा नक्षत्रमें यथाविधि श्राद्ध करके मधु और घृतयुक्त पायस प्रदान करना चाहिये। हे पुत्र! इस प्रकार मनुष्य पितरोंकी भक्तिपूर्वक पूजा करे, तो सब कामनाएं पूर्ण हो जाती हैं और पितृपूजकके सब पाप छूट जाते हैं। श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करनेसे वसु, रुद्र, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र, तारका आदि सभी सन्तुष्ट होते हैं। श्राद्धके द्वारा पितरोंको तृप्त करनेसे वे आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या,

---

टीकाः—इस प्रकरणमें आवश्यकीय विषयोंका शङ्का समाधान किया जाता है। वेद और शास्त्र अन्तर्दृष्टिसे पूर्ण हैं। इस कारण द्रव्यविशेषमें और मांसविशेषमें गुप्तरूपसे निहित गुणविशेषके सम्बन्धसे ही श्राद्धीय पदार्थोंकी विशेष विशेष महिमा कही गयी है। लोकान्तरमें विशिष्ट गुणोंके पदार्थ विशिष्ट फल उत्पन्न करते हैं, यही इसका तात्पर्य है। इसी प्रकार प्राणमयकोष और मनोमयकोषकी शक्तिके विचारसे ब्राह्मणोंकी पात्रता सिद्ध की गयी है। यदि योग्य ब्राह्मण न मिले, तो निवृत्तिसेवी संन्यासी श्राद्धमें अनधिकारी होने परभी उसकी पूजा विहित हुई है। श्राद्धकर्म प्रवृत्ति कर्म है और संन्यासी निवृत्तिधर्मका अधिकारी होनेसे श्राद्धकर्मके विपरीत माना गया है। तौ भी अन्तर्दृष्टिसम्पन्न ब्राह्मणके अभावमें संन्यासीकी अन्तर्दृष्टि और संममित मनोमयकोष तथा प्राणमयकोषसे लाभ उठानेके लिये उसकी पूजा करना शास्त्रोंने प्रशस्त माना है। इसी विज्ञानके अनुसार योगीकी पूजा अति उत्तम मानी गयी है। योगीका योगयुक्त अन्तःकरण स्वभावसे ही शक्तिशाली होता है और व्यापकताको धारण करता है। योगीका योगयुक्त अन्तःकरण प्राणके संयमन और मनके एकतत्त्वप्राप्तिके अधिकारसे योगी लोक-लोकान्तरमें अपने मनकी गतिको पहुंचा सकता है। अथवा उसका योगयुक्त अन्तःकरण

स्वर्ग, मोक्ष, सब प्रकारके सुख और राज्य प्रदान करते हैं। हे पुत्र! मैंने यह सब शास्त्र-विहित श्राद्धकी विधि बतायी है। अब हे वत्स! काम्यश्राद्धकी तिथियोंका मैं वर्णन करती हूं, उसे सुनो ॥ ३१-३८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका श्राद्धकल्प नामक बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

तेतीसवां अध्याय।

मदालसाने कहा,—हे वत्स! प्रतिपत्के दिन श्राद्ध करनेसे धनलाभ होता है। द्वितीया हाथी देनेवाली होती है। तृतीया वर देनेवाली और चतुर्थी शत्रुओंका नाश करती है। पञ्चमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीकी प्राप्ति होती है और षष्ठीको श्राद्ध करनेवाला लोक-पूज्य होता है। सप्तमीमें श्राद्ध करनेसे सेनापति पद मिलता है और अष्टमीको श्राद्ध करनेसे उत्तम बुद्धि प्राप्त होती है। नवमीका श्राद्ध रमणी स्त्रीको देनेवाला होता है और दशमीको श्राद्ध करनेसे सब कामनायें पूर्ण हो जाती हैं। एकादशीको श्राद्ध करनेसे सम्पूर्ण वेदोंका ज्ञान हो जाता है। द्वादशीको पितरोंकी पूजा (श्राद्ध) करनेवाला जय लाभ करता है। त्रयोदशीके दिन श्रद्धायुक्त होकर जो मनुष्य, श्राद्धोपयोगी जैसा कुछ अन्न मिल जाय उससे पितरोंका श्राद्ध करता है, उसको सन्तान, बुद्धि, पशु, श्रेष्ठता, स्वतन्त्रता, उत्तमपुष्टि, दीर्घ आयु और ऐश्वर्यकी प्राप्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। जिनके पुरषा

समाहित होनेसे उसके चित्तकी धारणा अपने आप ही लोकान्तरको पहुंच सकती है। ऐसा योगयुक्त महापुरुष यदि इच्छा करे, तो बात ही क्या है, यदि इच्छा न भी करे, तो भी स्वतःही उसकी तृप्तिसे यजमानके श्राद्धसम्बन्धी उद्देश्यकी पूर्ति स्वतःही हो जाती है। इस कारण परलोकगामी आत्माकी तृप्तिके सम्बन्धसे योगीकी इतनी महिमा कही गयी है। इस अध्यायमें पितरोंके स्वयं मुक्त न होनेपर भी यजमानको मोक्ष देनेका उल्लेख है, जो साधारणतः असम्भव प्रतीत होता है। उसका समाधान यह है कि, जैसे दुराचारी तथा आत्मज्ञानरहित व्यक्ति भी यदि हो और उसकी मृत्यु काशीमें हो, तो उसकी मुक्ति जैसी संभव है, वैसी अमुक्त पितरोंद्वारा यजमानकी मुक्ति भी सम्भव है। काशीमें शरीर छोड़ते समय काशीके अधिदैव सदाशिवके कृपाविशेष तथा काशीके आकाश और वातावरणके शक्तिविशेषसे जिस प्रकार काशीमें मरे हुए व्यक्तिकी आत्मा मरणान्तमें ज्ञानलोकको प्राप्त करती है और वहांसे जीव ज्ञानका अधिकारी बनकर मुक्त होता है, उसी प्रकार परम्परारूपसे सहायता प्राप्त करके यजमान अपनी सेवा द्वारा पितरोंके सम्वर्द्धनसे अपने मलका नाश करके और श्रद्धा द्वारा पितृलोकके अधिपति भगवान् यमधर्मकी कृपा प्राप्त करके अपने विक्षेपका नाश करके जन्मान्तरमें तत्वज्ञानी होकर अपने आवरणका नाश करके मुक्त हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ ३१—३८ ॥

जवानीमें मर गये हों अथवा शस्त्रसे मारे गये हों, उन्हें उनकी तृप्तिके लिये चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करना चाहिये। जो पुरुष पवित्रतासे यत्नपूर्वक अमावास्याको श्राद्ध करता है, उसकी सब कामनायें सिद्ध हो जाती हैं और उसे अनन्त कालतक स्वर्गसुख प्राप्त होता है॥ १—७॥ कृत्तिका नक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करनेसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है। जिन्हें सन्तानकी अभिलाषा हो, उन्हें रोहिणी नक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये। मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे तेजस्वित्वताकी प्राप्ति होती है। आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसुमें क्षेत्रादिका लाभ होता है। पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुष्टिलाभ, आश्लेषामें प्रतापी पुत्रका लाभ, मघामें स्वजनोंके बीचमें प्रधानता और पूर्वाफाल्गुनीमें सौभाग्यका लाभ होता है। उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें

टीकाः—तीसरे अध्यायकी टीकामें यह प्रमाणित किया गया है कि, पितृयज्ञ रूपी श्राद्धकर्म द्वारा लोकान्तरके पितरोंको श्राद्धयज्ञका फल कैसे मिलता है और तज्जनित तृप्ति कैसे प्राप्त होती है। उसके अनन्तर श्राद्ध सम्बन्धी और भी कई शङ्काओंका समाधान किया गया है। तद्‌तिरिक्त और भी शङ्काएं हो सकती हैं। उनका समाधान बुद्धिमान् जिज्ञासुओंके लिये कर देना आवश्यक है। श्राद्ध अर्यमा आदि नित्यपितरोंका नहीं होता। पञ्चमहायज्ञके अन्तर्गत जो पितृयज्ञ है, उसके साथ अर्यमा आदि पितरोंका साक्षात् सम्बन्ध है। पूर्व अध्यायोंमें जो श्राद्धका वर्णन है, वह परलोकगामी नैमित्तिक पितरोंसे ही सम्बन्ध रखता है। जबतक जीव आवागमनचक्रमें लोकान्तर प्राप्त करता हुआ भ्रमण करता रहता है, तबतक उसे बारबार मृत्युलोकमें आना पड़ता है और मातृगर्भसे जन्म लेना पड़ता है। इस कारण इस मृत्युलोक और इसमें स्थूल शरीरको देनेवाले माता पिता आदिका सबसे अधिक सम्बन्ध सिद्ध होता है। ऐसे नैमित्तिक पितरोंकी प्रसन्नतासे जीव चतुर्वर्गकी प्राप्ति करनेमें सहायता प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं है। यद्यपि विशेष विशेष तिथि नक्षत्रादि कालमें श्राद्ध करनेसे विशेष विशेष फलप्राप्तिका जो वर्णन है, वह रोचक कहा जा सकता है; परन्तु कर्मविपाक और कर्मशक्तिकी अलौकिकताके कारण उक्त वर्णनमें कोई सन्देह करनेका अवसर नहीं है।

इसी तरह श्राद्धकर्मकी विशेषताके वर्णनमें पाठकोंको कई प्रकारकी शंकाएं हो सकती हैं। यथा,—श्राद्धकर्ममें मांस अर्पणकी आवश्यकता क्यों है? नानाप्रकारके मांसोंका विभिन्न प्रकारका फल कैसे सम्भव है? विशिष्ट पर्वों, तिथियों और दिनोंमें ही श्राद्ध क्यों किया जाना चाहिये? दैवकार्यसमूह श्राद्धकर्मके समय क्यों वर्ज्य हैं? द्वो तरहके श्राद्ध क्यों माने गये हैं? यजमानके शरीरके जल आदि तथा ब्राह्मणोंके आचमनोदक तथा चरणोदक तकसे पितरोंकी कैसे तृप्ति होती है? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान होना अत्यन्त आवश्यक है। जिससे यह प्रकरण शंकारहित होसके। जीवजगत्‌की पर्यालोचना सूक्ष्मदृष्टिसे करनेपर यह सुगमतासे सिद्ध होगा कि, जीवके द्वारा जीवकी रक्षा और पुष्टि होती है। बिना जीवबलिके जीवजगत्‌की रक्षा हो ही नहीं सकती। जीव जीवका रक्षक है, जीव जीवका भक्षक है, जीव जीवका पोषक है और जीव जीवका अन्न है। जिससे प्राणकी रक्षा होती है, उसको अन्न कहते हैं। जिस खादसे उद्भिज्ज जगत्‌की पुष्टि होती है, वह जीवजगत्‌का ही परिणाम है। स्वेदज सृष्टिमें रोगद कीटकी बलि जब रोगघ्न कीट करते हैं, तभी सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा होती है। रजके कृमि जब वीर्यके कृमियोंको आत्मसात् करते हैं, तब सृष्टि होती है। जल और वायु द्वारा अनन्त स्वेदज कृमियोंका प्रति मुहूर्त नाश या बलि किये बिना अण्डज, जरायुज और मनुष्य योनिके जीव जीवित नहीं रह सकते। जो वायु नासिकारन्ध्रसे

श्राद्ध करनेसे गृहस्थ दानशील और पुत्रवान् होता है। हस्त नक्षत्रमें श्राद्ध करनेवाला मनुष्य निःसन्देह श्रेष्ठताको प्राप्त होता है। चित्रा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे मनुष्य रूपवान् और अपत्यवान् होता है। स्वातीमें व्यापारवृद्धि, विशाखामें तनयप्राप्ति और कामना-सिद्धि, अनुराधामें चक्रवर्तित्व, ज्येष्ठामें आधिपत्य, मूलमें आरोग्य, पूर्वाषाढ़ामें यशःप्राप्ति,

---

जाकर प्राणकी रक्षा करता है अथवा जो जलविन्दु उदरमें जाकर प्राण क्रियाकी सामञ्जस्यरक्षा करता है, उसमें अगणित स्वेदज कृमि भस्मीभूत होते हैं। इस विषयको आजकलकी पदार्थविद्याने यन्त्रोंद्वारा प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है। सात्विकसे सात्विक मनुष्य, संयमीसे संयमी मनुष्य, जिस दधि, दुग्ध, गोधूम, चणक, तण्डुल, फल, मूल, वनस्पति आदिके द्वारा अपने प्राणोंकी रक्षा करते हैं, वे सब जीवमय हैं। इन सब कारणोंसे यह सिद्ध हुआ कि, जीवका बलिदान किये बिना जीवकी जीवनयात्रा हो ही नहीं सकती। दूसरी ओर जीवबलिके बिना सृष्टिका सामञ्जस्य सुरक्षित हो ही नहीं सकता। व्याघ्र, सिंह आदि जन्तु जैसे मृगोंके हिंसक कहाते हैं, मृगादि जन्तु उसीप्रकार उद्भिज्ज सृष्टिके हिंसक कहाते हैं। वनके द्वारा व्याघ्र और व्याघ्रके द्वारा वन सुरक्षित होता है। उद्भिज्ज सृष्टि, मृग और सिंह तीनोंका परस्पर खाद्य-खादक सम्बन्ध होनेसे ही सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा होती है। अब यह प्रश्न हो सकता है कि, अहिंसाकी सार्थकता ऐसी दशामें कैसे सम्भव है? ऐसे अवान्तर प्रश्नका समाधान यह है कि, मन, वचन और शरीरसे किसी जीवको क्लेश न पहुंचानेको अहिंसा कहते हैं। इस विज्ञानके अनुसार निम्न जीवजगत्की अहिंसा अपेक्षाकृत तारतम्यसे समझी जा सकती है। अर्थात् जब जीव-बलिका होना अनिवार्य है, तो उच्च श्रेणीके जीवोंको बचाकर निम्न श्रेणीके जीवोंसे काम चलाना ही अपेक्षा-कृत अहिंसा होगी। यद्यपि तण्डुलादि अन्नग्रहणमें हिंसा है, परन्तु मृगादिके मांससे उसमें हिंसाकी न्यूनता है, इसमें सन्देह नहीं। प्रसङ्ग क्रमसे यह भी कहा जा सकता है कि, मनुष्य श्रेणीके साथ मनुष्य श्रेणीका जो युद्ध है, वह भी सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा करता है। परन्तु युद्ध हिंसात्मक कार्य होनें पर भी धर्म-युद्ध,—चाहे शस्त्रात्मक हो या अशस्त्रात्मक,—अपेक्षाकृत अहिंसा ही है। ऊपर लिखित विज्ञानके अनुसार यदि मांसका प्रयोग संस्कारके अनुसार आवश्यक हो, तो वह धर्मविरुद्ध नहीं होगा। जीवके स्वाभाविक और अस्वाभाविक संस्कार जीवहिंसामूलक हैं। मनुष्ययोनिमें भी इसी कारण भोगसम्बन्धसे अन्नके रूपमें मांसका ग्रहण सर्वत्र देखनेमें आता है और अनादिकालसे इसका व्यवहार भी प्रचलित होनेसे वह भोगका एक बड़ा अङ्ग है, इसमें सन्देह नहीं। मनुष्यलोकमें सात्विक वृत्ति, सात्विक आचार और सात्विक धारणा आदिसे ब्राह्मणादि उच्च जातियोंमें कहीं कहीं उसका प्रयोग रहित हो जानेपर भी भोगकी स्वाधीनताके समय उस प्राचीन भोगसंस्कारका पुनरुदय होना स्वतःसिद्ध है। इस मृत्युलोकमें भी देखा जाता है कि, राजसिक लोग मांसके स्वतः ही पक्षपाती हो जाते हैं। इस विज्ञानके अनुसार सूक्ष्म दैवी लोकोंमें जहां और भोग-परायण इच्छाशक्तिकी प्रबलता हो जाती है, वहां उस स्वाभाविक संस्कारके द्वारा परलोकगामी आत्माओं-की प्रकृति और प्रवृत्तिका नियोजित होना अवश्य सम्भावी है। इस कारण स्वर्गगामी, नरकगामी और प्रेतलोकगामी आत्माओंकी तृप्तिकी उत्तम सामग्री मांस मानी जा सकती है। अवश्यही उच्च लोकोंमें भी ऋषि आदि उच्च श्रेणीके देवपिण्ड विद्यमान रहते हैं। उनके लिये ऐसे राजसिक भोग पदार्थोंकी आवश्यकता नहीं है, परन्तु भोगपरायण राजसिक और तामसिक परलोकगामी आत्माओंके लिये मांसका अर्पण अवश्यकरणीय है। मत्स्य तथा मांस सभी मांसके अन्तर्गत होनेपर भी प्रत्येक जीवके मांसके

उत्तराषाढ़ामें शोकराहित्य, श्रवणमें शुभलोकप्राप्ति और धनिष्ठा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे प्रचुर धनकी प्राप्ति होती है। अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्धानुष्ठान करनेसे अखिल वेदोंकी अभिज्ञता हो जाती है। शतभिषामें श्राद्ध करनेसे वैद्यशास्त्रमें पारङ्गत होता है। पूर्वाभाद्रपदामें श्राद्ध करनेसे घुड़सवारोंका लाभ और उत्तराभाद्रपदामें पदाति (पैदल सैनिक) का लाभ होता है।

परमाणुओंमें भेद होनेके कारण और उनकी प्रकृतिके तारतम्यके कारण शक्तितारतम्य होनेसे अलग अलग मांसोंका फल अलग अलग कहा गया है। अतः श्राद्धमें मांसप्रयोग मीमांसाशास्त्रके अनुकूल है, प्रतिकूल नहीं है। जब श्राद्धीय पदार्थोंमें मांसके साथही हविष्यान्न और दुग्ध भी विहित है, तो समझना होगा कि, यजमानकी प्रकृति और प्रवृत्तिपरही मांसका प्रयोग या अप्रयोग निर्भर करता है। दूसरी ओर हिंसाका समाधान यह है कि, जीवहिंसासे पाप अवश्य होता है। परन्तु जैसे पीपलका वृक्ष अच्छेद्य होनेपरभी याज्ञिक लोग यज्ञके निमित्त उसका छेदन कर सकते हैं और यज्ञमें पीपलकी लकड़ी लग जानेपर पीपलके जीवकी उन्नति होती है, वैसे ही पितृयज्ञ और देवयज्ञमें बलि दिये हुए पशुकी उन्नति आवश्य होती है। विशेषतः भूतयज्ञके द्वारा ऐसे हिंसाजनित पापोंकी निवृत्ति होना भी शास्त्रोंमें विहित है। श्राद्धकर्मके लिये दो श्रेणीकी तिथियां मानी गयी हैं,—एक मृत्युतिथि और दूसरी पर्व तिथि। देशके साथ कालका और कालके साथ प्रकृतिका और प्रकृतिके साथ आत्माका पारस्परिक घनिष्ठ सम्बन्ध होनेसे मृतककी मृत्यु-कालरूपी मृतक तिथिमें श्राद्ध करनेसे श्राद्धक्रियाकी गति अवश्य ही सरल हो जाती है। उस तिथिके अभिमानी देवता उस क्रियाके सफल करनेमें सहायक होते हैं। दूसरी ओर पर्वकी पुण्यतिथियोंमें श्राद्ध किया जाय, तो पुण्यकी वृद्धिसे और तत्तत्पर्वोंके अभिमानी अधिदैवोंकी कृपासे श्राद्धक्रियामें विशेष शक्तिका सञ्चार होना स्वाभाविक है। वैसे तो नियोजित मन श्रद्धा और भक्तिके बलसे प्रतिमुहूर्त हर समय श्राद्ध-क्रियासे लाभ उठा सकता है, क्योंकि पञ्चकोश सर्वव्यापक होनेसे योगयुक्त मन हर समय एक पञ्चकोशके केन्द्रसे दूसरे पञ्चकोशके केन्द्रमें पहुंच सकता है। इस कारण श्राद्धकर्म पर्वों और मृतक तिथियोंके अतिरिक्त हर समय भी हो सकता है। परन्तु ऐसे समय मनके विशेष संयमित होनेकी आवश्यकता है, इसमें सन्देह नहीं। पितृलोक और देवलोकमें अन्तर है, यह हम पहिले कईवार कह चुके हैं। पितृलोकके राजा और देवलोकके राजा, पितृलोककी प्रजा और देवलोककी प्रजा, पितृलोककी प्रकृति और उच्चदेवलोककी प्रकृतिमें अन्तर होनेके कारण और उनके कालमें अन्तर होनेके कारण एकसाथ उन दोनोंके सम्बर्द्धनकी क्रियाओंका होना सम्भव नहीं है। इस कारण पितृश्राद्धके समय देवकार्य प्रायः नहीं किये जाते। हां, नित्य श्राद्ध जिनका सम्बन्ध नित्य पितरोंसे है, ऐसे नान्दीमुख श्राद्धादि देवकार्योंके साथ किये जाते हैं। क्योंकि वरुणादि देवताओंकी तरह अर्यमादि पितृगण भी एक श्रेणीके देवताही हैं। केवल नित्य देवताओंका वास देवलोकमें और नित्य पितरोंका वास पितृ लोकमें होता है। पितृकर्ममें जो पितरोंके निमित्त और देव-ताओंके निमित्त ब्राह्मण वरण किये जाते हैं, ये क्यों किये जाते हैं? इस शङ्काका समाधान यह है कि, जीव मरकर या तो प्रेतयोनिमें पितृलोकमें, नरकलोकमें अथवा तिर्यक् योनिमें जाता है। ये सब भगवान् यमधर्मराजके अधीन हैं। अथवा जीव मरकर स्वर्गादि उच्च लोकोंमें जाता है, जो लोक भगवान् इन्द्रके अधीन हैं। अब यह निश्चय नहीं रहता कि, मृतक जीव वास्तवमें किस दैवीराज्यकी सीमामें पहुंचा है। इस कारण श्राद्धके यन्त्ररूपी ब्राह्मण दो श्रेणीके (देवश्रेणी और पितृश्रेणीके) वरण करनेकी विधि है। इसी भेदका यह कारण है कि, जैसे श्राद्धादि पितृकर्ममें देवताओंका आह्वान नहीं होता, उसी प्रकार अग्निष्टोमादि दैवकर्ममें

रेवतीके श्राद्धसे सोना चांदीके अतिरिक्त सब धातुओंकी प्राप्ति, अश्विनीके श्राद्धसे घोड़ोंकी प्राप्ति और भरणी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे दीर्घायुप्राप्ति होती है। इसकारण तत्ववेत्ता पुरुषोंको उक्त नक्षत्रोंमें काम्यश्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये ॥८—१६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका काम्यश्राद्धफलकथन नामक तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

चौंतीसवां अध्याय।

—※०:०※—

मदालसाने कहा,—हे पुत्र ! इस प्रकार उत्तम गृहस्थको सदाचारपरायण होकर हव्य, कव्य और अन्नदानसे पितृगण, देवगण, भूतसमूह, अतिथिवर्ग, बान्धवगण, भृत्यगण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक और अन्य जो कोई याचना करे, उन सबको सम्मानित करना चाहिये। गृहस्थाश्रमी व्यक्ति यदि नित्य-नैमित्तिकी क्रियाओंका उल्लंघन करे, तो वह पापभोगी होता है। अलर्कने कहा,—हे कुलनन्दिनी मातः ! आपने मुझसे नित्य, नैमित्तिक और नित्य-नैमित्तिक इन तीन कर्मोंका, जो प्रकृत पुरुषोंके आचरणके योग्य हैं, वर्णन किया है। अब मैं आपसे सदाचारका विषय सुनना चाहता हूं। जिसके पालनसे मनुष्य इह और पर दोनों लोकोंमें सुखका भागी हो सकता है ॥ १—५ ॥ मदालसाने कहा,—गृहस्थको सदा सदाचारका पालन करना चाहिये। जो व्यक्ति आचारविहीन हैं, किसी लोकमें उनको सुख प्राप्त होनेकी सम्भावना नहीं है। जो लोग सदाचारका उल्लंघन कर गृहस्थी करते हैं, उनके किये यज्ञ, दान और तप अमङ्गलके ही कारण बनते हैं। दुरा-

---

पितरोंका आह्वान नहीं किया जाता। यह सिद्ध हो चुका है कि, पञ्चकोशोंमेंसे प्राणमय और मनोमय कोशका ही अधिक सम्बन्ध पितृकार्यसे है। इस कारण यदि यजमान अपनी संयम क्रियासे अपने प्राणमय कोशको नियोजित रक्खे और सात्विक श्रद्धाके द्वारा अपने मनोमयकोषको नियोजित रक्खे, तो उसके शरीर अर्थात् अन्नमयकोशकी क्रिया तद्वत् हो जायगी। तब उसके शरीरके जल, वस्त्रके जल आदि तक दैवी क्रियासम्पादनमें कार्यकारी होंगे। यह तो निश्चित ही है कि, श्राद्धादि कर्मकी स्थूल क्रिया या स्थूल पदार्थ साक्षात् रूपसे परलोकमें नहीं पहुंचते, किन्तु प्राणमयकोश और मनोमयकोषकी सहायतासे रूपान्तर प्राप्त कर पहुंचते हैं, जैसा कि, पहले हम स्पष्ट रूपसे कह चुके हैं। दूसरी ओर जो ब्राह्मण श्राद्धकर्ममें वरण किया जाता है, वह यदि त्रिविधशुद्धियुक्त सच्चा ब्राह्मण हो, तो उसकी अध्यात्मशुद्धि रहनेसे जब उस महापुरुषका अन्तःकरण स्वस्वरूप ब्रह्मपदमें सदा युक्त रहेगा, तब उसका ब्रह्मीभूत स्थूल शरीरसे सम्बन्धयुक्त चरणोदक या आचमनोदक सब प्रकारके पितरोंको तृप्त करेगा, इसमें सन्देह ही क्या है ? ॥ ८—१६ ॥

चारी कभी दीर्घजीवी नहीं होते; इसलिये निरन्तर सदाचारमें यत्नशील होना उचित है। सदाचार बुरी लतों (आदतों) को छुड़ा देता है। हे पुत्र ! अब मैं सदाचारके स्वरूप का वर्णन करती हूं। तुम एकाग्रचित्तसे उसे सुनो और तदनुसार सदाचारका अनुष्ठान करनेकी चेष्टा करो। गृहस्थको त्रिवर्ग (धर्म, अर्थ और काम) साधनका प्रयत्न करना चाहिये। त्रिवर्गकी सिद्धि हो जानेसे गृहस्थको क्या इहलोक और क्या परलोक, दोनोंमें सुखकी प्राप्ति होती है ॥ ६—१० ॥ गृहस्थ जो कुछ धन उपार्जन करे, उसमेंसे चौथा भाग अपने पारलौकिक कल्याणके लिये रख छोड़े। दो भागोंसे नित्य नैमित्तिकादि कर्मोंको करते हुए अपनी जीविका निर्वाह करे और शेष जो एक भाग बच रहे, वह सञ्चितकोषमें रक्खे जिसकी बराबर वृद्धि होती रहे। हे पुत्र ! ऐसा करनेसे ही धनकी सफलता होती है। धन सञ्चयके लिये मनुष्यको जैसा यत्न करना चाहिये, वैसा ही पाप निवारणार्थं धर्म-संचय करना भी आवश्यक है। सकाम और निष्काम रूपसे धर्म दो प्रकारका होता है। निष्काम धर्म परलोकमें और सकाम धर्म इसी लोकमें फल प्रदान करता है। प्रत्यवायका भय रखकर, सकाम और निष्काममें जिससे परस्पर विरोध न हो, ऐसा दोनों धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये। त्रिवर्गके अविरोधसे काम भी दो प्रकारका है। धर्म अर्थ और काम यही त्रिवर्ग हैं ये जैसे परस्पर सम्बन्धयुक्त हैं, वैसे एक दूसरेके विरोधी भी समझने चाहिये। ये परस्पर कैसे आबद्ध हैं, इसका वर्णन मैं करती हूं, सुनो ॥ ११—१५ ॥ धर्म और धर्मानुबन्धार्थ धर्म आत्मार्थबाधक नहीं होता। इन दोनोंके संयोगसे काम जिस प्रकार द्विविध होता है, उसी प्रकार कामके द्वारा धर्म और अर्थ भी दो भागोंमें बंटे हुए हैं। अर्थात् काम, जिस प्रकार धर्मानुबद्धकाम और अर्थानुबद्धकाम दो प्रकारका होता है, उसी प्रकार कामके द्वारा आबद्ध धर्म और अर्थ भी दो दो प्रकारके होते हैं। गृहस्थको ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कार्य क्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सबकी चिन्ता करनी चाहिये, फिर बिछौनेसे उठकर (शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर) आचमन करके संयम और पवित्रतापूर्वक पूर्वाभिमुख आसन जमाकर प्रातःकाल नक्षत्रोंके रहते और सायंकाल सूर्यदेवके रहते हुए प्रतिदिन सन्ध्यावन्दन करना चाहिये। सन्ध्यावन्दन यथा-विधि करनेमें, यदि कोई आपत्ति न आजावे, तो कदापि न चूकना चाहिये। हे पुत्र ! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कठोर वाक्यका कदापि प्रयोग न करना अत्यन्त आव-श्यक है। इसी तरह असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा कदापि नहीं करनी चाहिये। नियतात्मा होकर प्रातः सायं होम भी करना चाहिये। उदय और अस्तके समय सूर्य दर्शन करनेका शास्त्रोंने निषेध किया है ॥ १६—२० ॥ बाल संवारना, दर्पणमें मुख देखना, दांत धोना और देवतर्पण करना, ये सब काम दिनके पूर्वाह्नमें करनेके हैं। ग्राम, धर्मशाला, तीर्थ,

क्षेत्र, पथ, जोते हुए खेत और गौओंके बाड़ेमें मल-मूत्र त्याग करना उचित नहीं है। नग्न स्त्री और अपने मलपर दृष्टि डालना भी उचित नहीं है। ऋतुमती स्त्रीको नहीं देखना चाहिये। न उसे स्पर्श करना या उससे सम्भाषण ही करना उचित है। जलमें मल, मूत्र त्याग या मैथुन नहीं करना चाहिये। प्रज्ञावान् व्यक्तिको मल, मूत्र, केश, भस्म, कपाल, गोयठा, अङ्गार, (कोयला), अस्थि, डोरी, धज्जियाँ, रास्ता और मिट्टी आदि पर नहीं बैठना चाहिये। गृहस्थ व्यक्ति अपनी सम्पत्तिकी अनुकूलताके अनुसार सबसे पहिले पितृगण, देवतागण, मनुष्यगण और भूतगणकी पूजा करके तव स्वयं भोजन करे। भोजनसे पहिले आचमन कर मौनावलम्बन पूर्वक पवित्रतासे एक घुटना मोड़ कर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठ कर तद्गतचित्त होकर भोजन करना चाहिये। किसी प्रकारका यदि उपघात न हो, तो किसी व्यक्तिका दोष दिखाना उचित नहीं है। प्रत्यक्ष लवण अथवा अत्युष्ण अन्नका सेवन वर्ज्य है। संयमी पुरुषको चलते चलते अथवा बैठे बैठे मलमूत्र त्याग नहीं करना चाहिये। भोजन समाप्त होने और आचमन कर लेनेपर थोड़ा भी खाना अनुचित है ॥ २१—२९ ॥ जूठे मुंह किसीसे वार्तालाप करना अथवा वेदाध्ययन करना निषिद्ध है। विशेषतया जूठे मुँह गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने सिरको कभी नहीं छूना चाहिये। जूठे मुंह अपनी इच्छासे चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रोंका दर्शन नहीं करना चाहिये। फटा आसन, टूटी खटिया और फूटा बर्तन सर्वथा त्याज्य है। अभ्युत्थान आदि सत्कारके साथ गुरुजनको आसन देना चाहिये। अभिवादनपूर्वक उनके साथ अनुकूल वार्तालाप करना चाहिये और वे जब जाने लगें, तो उनके पीछे-पीछे कुछ दूर तक जाना चाहिये। उनके आगे किसी प्रकारका प्रतिकूल वचन कहना उचित नहीं है। एक वस्त्रसे भोजन अथवा देवपूजन करना निषिद्ध है। द्विजातिको वाहन नहीं बनाना चाहिये अर्थात् उनसे अपनी पालकी नहीं उठवानी चाहिये और बुद्धिमान् पुरुषको कदापि अग्निमें मूत्रोत्सर्ग नहीं करना चाहिये। विना वस्त्रके नहाना या सोना अनुचित है। दोनों हाथोंसे सिर खुजलाना भी उचित नहीं है। विना कारण स्नान करना अथवा निरन्तर सिरसे नहाना योग्य नहीं है। सिरसे नहानेके पश्चात् शरीरके किसी अङ्गमें तेल नहीं लगाना चाहिये। सब अनध्यायोंके दिनोंमें वेदाध्ययन नहीं करना चाहिये। ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्यके सम्मुख कदापि मल-मूत्र त्याग नहीं करना चाहिये ॥ ३०-३९ ॥ दिनमें उत्तराभिमुख और रात्रिमें दक्षिणाभिमुख बैठकर विघ्नशून्य स्थानमें इच्छानुसार मलमूत्र त्याग करना उचित है। गुरुजनके कुकर्म किसीसे नहीं कहने चाहिये। उनके क्रुद्ध हो जानेपर उन्हें प्रसन्न करनेकी चेष्टा करनी चाहिये और यदि कोई उनकी निन्दा करता हो, तो उस ओर कान नहीं देना चाहिये। ब्राह्मण, राजा, दुःखातुर, अपनेसे अधिक विद्वान्,

गर्भिणी, भारातुर, युवक, गूंगा, अन्धा, बहिरा, नशा किया हुआ, उन्मत्त, कुटनी, जिसने अपनेसे वैर बांधा हो, बालक और पतित इन सबको रास्ता कर देना चाहिये ॥ ३७—४० ॥ देवमन्दिर, चैत्यवृक्ष, चौराहा, अपनेसे अधिक पढ़ा हुआ, गुरु और देवता इन सबको प्रदक्षिणा करना प्राज्ञ व्यक्तिको उचित है। अन्य किसी व्यक्तिके पहिने हुए जूते, वस्त्र और माल्य आदि न पहिने और किसी दूसरेके धारण किये हुए उपवीत, आभूषण और कमण्डलुको धारण न करे। चतुर्दशी, अष्टमी, पौर्णिमा, और पर्व दिनोंमें तैल मर्दन तथा स्त्री संभोग वर्ज्य है। बुद्धिमान् व्यक्तिको चाहिये कि, वह जांघ और पैर फैलाकर न बैठे और पैर घसीटता हुआ न चले। जिससे किसीको मर्म व्यथा हो, ऐसा आचरण न करे, किसी पर न खौवावे और न किसीके साथ दुष्टता ही करे, बुद्धिमान् पुरुषको उचित है कि, वह दम्भ, अभिमानका परित्याग करे और किसीसे कठोरताका व्यवहार न करे ॥ ४१-४४ ॥ मूढ़, उन्मत्त, विपन्न, कुरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबकी हँसी उड़ाकर उनकी निन्दा न करे। किसी दूसरेको अथवा शिक्षा देते समय पुत्र अथवा शिष्यको किसी प्रकारका दण्ड न देवे। पैरसे आसन खींचकर उस पर न बैठे। केवल अपने उदरकी पूर्तिके लिये पावठा, कृषर (खिचड़ी) अथवा माँसको न पकावे। प्रातःकाल और सायंकाल अतिथिका योग्य सत्कार करनेके उपरान्त स्वयं भोजन करे। मौन होकर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठकर दन्तधावन करे। जो दतौन दन्तधावनके लिये निषिद्ध माने गये हैं, उनको काममें न लावे। उत्तर और पश्चिमकी ओर शिर करके न सोवे। दक्षिण अथवा पूर्वकी ओर शिर करके सोना अच्छा है। दुर्गन्धियुक्त जलमें अथवा रात्रिके समय स्नान करना उचित नहीं है। केवल ग्रहणके समयमें रात्रिमें स्नान करना प्रशस्त माना गया है। स्नान कर लेने पर वस्त्र अथवा हाथोंसे शरीरको नहीं रगड़ना चाहिये। गीले बालों और वस्त्रोंको फटकारना नहीं चाहिये। विचक्षण व्यक्ति विना स्नान किये चन्दन (तिलक) न लगावे। लाल, काला अथवा छापेका वस्त्र न पहिने। धोती, दुपट्टा और आभूषण विपरीत भावसे धारण न करे। अर्थात् दुपट्टा पहिन कर धोती न ओढ़े अथवा गलेका गहना हाथमें न पहिने। जिसमें छोर न हो, जो जीर्ण हो गया हो और जो फट गया हो, ऐसा वस्त्र धारण न करे। केश और कीड़ोंसे युक्त, कुचला हुआ, कूकुरके द्वारा देखा हुआ या चाटा हुआ, सारोत्तोलनके कारण जो दूषित हो गया हो, ऐसा अन्न और पीठका माँस, वृथा मांस, निषिद्ध मांस तथा प्रत्यक्ष लवण इन सब वस्तुओंका कदापि सेवन नहीं करना चाहिये ॥ ४५-५६ ॥ हे राजकुमार! बहुत समयका पका हुआ या बासो अन्न नहीं खाना चाहिये। पिसान, शाक, ईख और दूधके विकारसे बने हुए पदार्थोंका सेवन नहीं करना चाहिये। मांस विकारसे बने हुए पदार्थ भी यदि

बहुत देरके बने हों, तो वे भी त्याज्य ही हैं। सूर्योदय अथवा सूर्यास्तके समय सोना निषिद्ध है। स्नानके पश्चात् और बैठे बैठे सोना या ऊँघना अच्छा नहीं है। अन्य-मनस्क होकर शयन करना भी अनुचित है। शैय्यापर अथवा भूमिपर इस तरह मचककर न बैठे, जिससे शब्द हो। दुपट्टेको फेककर एकही वस्त्रसे भोजन न करे। बात करते करते खाना अथवा कोई सामने आशाभरी दृष्टिसे देखता हो, उसे विना दिये खाना उचित नहीं है। सुबह-शाम यथाविधि स्नान करके आहार करना योग्य है॥ ५७—६०॥ बुद्धिमान् पुरुष कदापि परस्त्रीके साथ सम्भोग न करे; क्योंकि परस्त्री-गमनसे इष्टापूर्त कर्म नष्ट हो जाते हैं और परमायुका ह्रास होता है। पुरुषकी परमायुका नाश जैसा परदा-राभिमर्षणसे होता है, वैसा और किसीसे नहीं होता। सुरगणकी पूजा और गुरुजनका अभिनन्दन सर्वदा ही करना चाहिये। भलीभाँति आचमन किये बिना अन्नग्रहण नहीं करना चाहिये। हे पुत्र! फेनरहित, गन्धरहित, मलरहित पवित्र जलको आदरके साथ हाथमें लेकर प्राङ्मुख अथवा उदङ्मुख होकर पान करना चाहिये। जलके भीतरकी, वासस्थानकी, बाँबीकी, चूहेके विलकी और शौचके पश्चात् जो बच गयी हो, ये पांच प्रकारकी मृत्तिकाएँ त्याज्य हैं। हाथ पाँवको धोकर और प्रोक्षण कर पल्थी मारकर बैठे और तीन या चार वार आचमनका जल पान करे। सिरसे मुख पर्यन्तके इन्द्रिय द्वारोंको जलसे दो बार मार्जन करे और फिर पवित्र भावसे आचमन पूर्वक सब शुभ क्रियाओंको करे। देवताओं ऋषियों और पितरोंके सम्बन्धके सब कर्म मनुष्यको निरन्तर स्वस्थ चित्त होकर यत्न पूर्वक करने चाहिये। धोतीकी आँटी और काँछ बांधनेपर और यदि धोती खसक जाय, तो आचमन करना चाहिये। क्षुत, अवलेहन, वमन और निष्ठीवन आदि होनेसे आचमन, गोपृष्ठ स्पर्शन, अर्कदर्शन, और दक्षिणश्रवण-स्पर्श करना चाहिये॥६१—७०॥ इन चार बातोंमें पहिली पहिली बातें न हो सकें, तो यथासम्भव पिछली पिछली बातोंको करना चाहिये; क्योंकि पहिली क्रियाओंकी अपेक्षा पिछली क्रियाएँ अधिक प्रशस्त मानी गयी हैं। दाँत पर दाँत नहीं रगड़ना चाहिये और अपने आपको नहीं पीट लेना चाहिये। क्या प्रातः सन्ध्या और क्या सायं संध्या, दोनों कालोंमें शयन, अध्ययन और भोजन नहीं करना चाहिये। सन्ध्याकालमें स्त्रीसम्भोग न करे और राह न चले। हे पुत्र! पूर्वाह्नमें सुरगणकी, मध्याह्नमें मनुष्यगणकी और अपराह्नमें पितृगणकी भक्तिपूर्वक अर्चना करनी चाहिये। शिरःस्नान करनेके उपरान्त पितरों और देवताओंकी क्रियाओंका अनुष्ठान कर-नेमें प्रवृत्त होना चाहिये। पूर्वमुख अथवा उत्तरमुख बैठकर हजामत बनवानी चाहिये। जो कन्या उत्तम कुलमें उत्पन्न होने पर भी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृता, पिङ्गलवर्णा, मुखरा आ सब दोषोंसे दूषिता हो, उस कन्याका पाणिग्रहण करना उचित नहीं है। जो सब अङ्गोंसे

पूर्ण हो, जिसकी मुखाकृति सौम्य हो और जो सब उत्तम लक्षणोंसे विभूषित हो, कल्याण-चाहनेवाले पुरुषको ऐसी कन्याके साथ विवाह करना चाहिये ॥ ७१-७७ ॥ पिता-माताकी सातवीं और पाँचवी पीढ़ी तक जिसका सम्बन्ध न हो, उस कन्यासे विवाह करना प्रशस्त है। स्त्रीकी रक्षा करना और उससे ईर्ष्या न करना योग्य है। दिनमें निद्रा या मैथुनक्रिया नहीं करनी चाहिये। जिस कामसे किसीका चित्त दुखे या जिससे जीवोंको क्लेश पहुँचे, ऐसे कामको सदा त्याग देना चाहिये। प्रथम चार रात्रि ऋतुमती स्त्री सब वर्णोंके लिये गमनयोग्य नहीं है। हे पुत्र! जिसे कन्याकी इच्छा न हो, वह पाँचवीं रात्रिमें स्त्रीसङ्ग न करके छठीं रात्रिमें करे; क्योंकि ऋतुकालके चार दिनोंके पश्चात् सम दिनोंमें ही स्त्री-समागम करना उत्तम माना गया है। समदिनोंमें स्त्रीसङ्ग करनेसे पुत्र और विषम दिनोंमें करनेसे कन्या उत्पन्न होती है। अतः पुत्रकामी दम्पत्तिको सम दिनोंमें ही सम्भोग करना योग्य है। प्रातःकालमें स्त्रीसङ्ग करनेसे विधर्मी और सन्ध्याकालमें करनेसे नपुंसक सन्तानकी उत्पत्ति होती है। हे पुत्र! हजामत बनवा लेने, वमनकरने, स्त्रीसङ्ग करने और श्मशानमें जानेपर सचैल (वस्त्र सहित) स्नान करना चाहिये। हे वत्स! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्त्वनिष्ठ, महात्मा, गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील और तपःपरायण व्यक्तिकी निन्दा या परिहास करना कदापि उचित नहीं है। उद्धत व्यक्ति यदि ऐसे लोगोंकी निन्दा करते हों. तो उधर कान नहीं देना चाहिये ॥ ७८-८४ ॥ अपनेसे बड़े या छोटोंकी शय्या या आसन पर नहीं बैठना चाहिये। अमङ्गल वेष और अमङ्गल वचनसे सदा बचे रहना चाहिये। शुभ वस्त्रों और शुभ पुष्पोंका व्यवहार करना उत्तम है। उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, विनयशून्य, चरित्रहीन, चौर्य्यआदि दोषोंसे दूषित, अपरिमित व्ययकरनेवाला, लोभी, शत्रु, बन्धकी, हीन, बन्धकी पति, नीचाशय, निन्दित, सदा सन्देह रखनेवाला और भाग्यपर भरोसा रखनेवाला, इन सबके साथ सौहार्द स्थापन करना बुद्धिमानोंके लिये उचित नहीं है। सदाचार-परायण सत्पुरुषोंके साथ ही मित्रता करना योग्य है। प्रज्ञावान्, पिशुनतारहित, शक्तिमान् और सत्कार्यमें जो सदा उद्योगशील हों, उनके साथ मित्रता करना योग्य है ॥ ८५-९० ॥ विद्वज्जन सर्वदा वेदज्ञ, पण्डित, व्रतपरायण और स्नातक व्यक्तियोंके साथ रहा करते हैं। सुहृद्, दीक्षित, राजा, स्नातक, श्वसुर और ऋत्विक् ये छः लोग यदि एक वर्ष बीतजानेपर अपने घर आवें, तो अपने वैभवके अनुसार यथासमय उनकी मधुपर्कके साथ पूजाकरनी चाहिये। उक्त छहों अर्घ्य प्रदानके योग्य पात्र हैं। इनके घर आनेपर इनकी अर्चा करनी चाहिये और अपना कल्याण चाहनेवालेको हे पुत्र! उनका आज्ञाधारक होना उचित है। वे यदि डाँट डपट करें, तौ भी उनके साथ विवाद करना योग्य नहीं है ॥ ९१-९३ ॥ भली भाँति घरकी

देवमूर्तियोंकी पूजा करनेके उपरान्त क्रमानुसार अग्निकी पूजा करके उसमें आहुति प्रदान करे। ब्रह्माके उद्देश्यसे प्रथमाहुति देकर प्रजापतिके उद्देश्यसे द्वितीय, गुह्यगणके उद्देश्यसे तृतीय और कश्यपके उद्देश्यसे चतुर्थ आहुति प्रदान करे। फिर अनुमतिके उद्देश्यसे पञ्चम आहुति देकर नित्यकर्म विधिके सिलसिलेमें जैसा मैंने पहिले वर्णन किया है, तदनुसार गृहबलि प्रदान करना चाहिये। अनन्तर वैश्वदेव बलि प्रदान करना चाहिये। उसके नियम कहती हूं, श्रवण करो। वैश्वदेवमें मण्डल बनाकर स्थान-विभागानुसार देवताओंके उद्देश्यसे पृथक् पृथक् बलि देना पड़ता है। पर्जन्य, आप और धरित्री इनको तीन और वायुको एक बलि देकर पूर्वादिक्रमसे यथाक्रम प्रत्येक दिशाको (दिक्पालको) एक एक बलि देवे। फिर उत्तर दिशामें यथाक्रम ब्रह्मा, अन्तरिक्ष, सूर्य, विश्वदेवगण, विश्वभूत गण, ऊषा और भूतपतिको बलि देकर दक्षिण दिशामें "स्वधा नमः" कहकर पितृगणको बलि प्रदान करे। फिर अन्नावशेषकी कामना करते हुए अपसव्यसे वायुकोणमें "यद्मैतत्ता" इत्यादि मन्त्र पाठकर झारीसे यथाविधि जल प्रदान करे। फिर अन्नका अग्रभाग लेकर हन्तकारकी कल्पना करते हुए यथाविधि और यथान्याय ब्राह्मणको देवे। फिर अपने अपने तीर्थसे यथाविधि कर्मानुष्ठान करे। देवादिके उद्देश्यसे ब्राह्मतीर्थके द्वारा आचमन करना चाहिये। दाहिने हाथके अंगूठेकी उत्तर ओर जो रेखा होती है, उसको ब्राह्मतीर्थ कहते हैं। इसी तीर्थके द्वारा आचमन करनेकी विधि है। अंगूठा और तर्जनी इन दो अंगुलियोंके बीचमें जो रेखा होती है, उसको पितृतीर्थ कहते हैं। नान्दीमुखके अतिरिक्त अन्यान्य समस्तपितृकर्मोंमें पितृगणके उद्देश्यसे इसी पितृतीर्थके द्वारा जलादि प्रदान करना चाहिये ॥ ६४-१०५ ॥ अनामिकाके अग्रभागमें देवतीर्थ विद्यमान है। देवक्रियाकी विधि इसके द्वारा सम्पादन करनी चाहिये। कनिष्ठिकाके मूलभागमें काय नामक तीर्थ है। इसके द्वारा प्रजापतिका कार्य सम्पन्न होता है। इस प्रकार इन्हीं तीर्थोंके द्वारा देवता और पितृगणके कार्य निरन्तर करने चाहिये; अन्य तीर्थोंके द्वारा कदापि नहीं। ब्राह्मतीर्थके द्वारा ही आचमन करना विधिसंगत है। पितृतीर्थके द्वारा पितृकार्य, देवतीर्थके द्वारा देवकार्य और कायतीर्थके द्वारा प्रजापतिका कार्य करनेकी शास्त्रोंने आज्ञा दी है। प्रजापतिका कार्य जिस प्रकार प्राजापत्य तीर्थ अर्थात् कायतीर्थके द्वारा सम्पादित होता है, उसी प्रकार नान्दीमुखकी पिण्डोदक-क्रियाएँ भी इसी तीर्थके द्वारा सम्पादन करनी चाहिये। जलदान क्रिया और अग्न्याधान क्रिया एकसाथ बुद्धिमान् पुरुषोंको नहीं करनी चाहिये। गुरु और देवताओंके सामने पैर फैलाकर नहीं बैठना चाहिये ॥ १०६—११० ॥ जो गौ वत्सको दूध पिलानेके लिये उत्सुक हुई हो, उसको न बुलावे और चुल्लूसे जल न पीये। लघुशङ्का हो या दीर्घशङ्का, दोनों शौचोंके आवेगको न रोके। मुखकी फूत्कारसे आगको न सुलगावे।

हे पुत्र ! जिस देशमें ऋण देनेवाला, वैद्य, श्रोत्रिय और सजला नदी ये चार बातें न हों, उस देशमें जाकर नहीं बसना चाहिये । जिस राज्यमें जितवैर, धर्मात्मा और बलवान् नरपति हो, उस देश (राज्य) में निरन्तर निवास करना बुद्धिमान् पुरुषको उचित है । क्योंकि दुष्ट राजाके राज्यमें सुखकी सम्भावना हो ही नहीं सकती । जिस राज्यका राजा पराक्रमशाली होता है, जिस राज्यकी भूमि उर्वरा होती है, जिस राज्यका प्रजावर्ग नियमबद्ध और सदा ही न्यायपथका अनुसरण करनेवाला होता है और जहांके लोग प्रायः मात्सर्यहीन हुआ करते हैं, उस स्थान (राज्य) में निवास करनेसे सुखका उदय होता है ॥ १११–११५ ॥ जहांके कृषिजीवी प्रायः अति भोगशून्य होते हैं, जहां अनगिनती औषधियाँ उत्पन्न होती हैं, उस स्थानमें निवास करना बुद्धिमान् व्यक्तिको उचित है । हे पुत्र ! जहाँ जीतनेकी इच्छा करनेवाले, पूर्व शत्रु और सर्वदा उत्सवोन्मत्त ये तीन प्रकारके लोग रहते हों वहाँ कदापि निवास नहीं करना चाहिये । बुद्धिमानोंको सुशील पड़ोसियोंके बीचमें ही निवास करना उचित है । हे वत्स ! यह सब वर्णन मैंने तुम्हारी कल्याण कामनासे ही किया है ॥ ११६–११८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके अलर्कानुशासनान्तर्गत सदाचार नामक चौंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पैंतीसवाँ अध्याय ।

मदालसाने कहा,—अब मैं वर्ज्यावर्ज्य वस्तुओंका विवरण तुम्हें सुनाती हूं, तुम श्रवण करो । बासी अन्न, बहुत दिनोंकी बनी हुई घी–तेलकी वस्तुएँ और स्नेहशून्य होने पर भी बहुत दिनोंकी बनी हुई गेहूं, यव और छेने (फटे हुए दूध) की वस्तुएँ नहीं

टीकाः—इस अध्यायमें प्रथम विराट्की पूजाके आचारोंका दिग्दर्शन कराके पुनः गृहस्थके साधारण सदाचारोंका वर्णन किया गया है । जगत्को ही ब्रह्मरूप मानकर परोपकार और परमोपकारके लिये जो साधन कहे गये हैं वही विराट् पुरुषकी पूजा कहाती है । पञ्चमहायज्ञादि महायज्ञ सब विराट् पूजा है । धर्मानुकूल शारीरिक व्यापारको आचार वा सदाचार कहते हैं । जिन शारीरिक कर्म्मके द्वारा तमोगुण न बढ़कर सत्त्वगुण बढ़ता है उसको सदाचार कहते हैं । दार्शनिक दृष्टिसे यदि देखा जाय तो यही भली भाँति सिद्ध होगा कि ऊपर लिखित जितने आचार कहे हैं उनके पालन करनेसे साधकमें तमोगुणकी हानि और सत्त्वगुणकी वृद्धि अवश्य होती है । और वह व्यक्ति धर्मके पुण्यमय पथपर स्वतःही अग्रसर होता रहता है । इन आचारोंमें कहीं तो तमोगुणके दबानेका लक्ष्य है और कहीं सत्त्वगुणके बढ़ानेका लक्ष्य रक्खा गया है । और कहीं दोनों ही उपयोगिता एक साथ रक्खी गई है । प्रत्येक आचारकी दार्शनिक गवेषणा करनेपर यही सिद्धान्त निश्चय होगा ॥ १—११८ ॥

खानी चाहिये । खरगोश, कछुआ, गोधा, सजारु और गेण्डेका मांस, हे वत्स ! खाने योग्य है । ग्राम्य शूकर और ग्राम्य कुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं । श्राद्धमें पितृ, देवता आदिको अर्पण करके बचेहुए, यज्ञादिमें प्रोक्षित और औषधके लिये लाये गये मांसका भोजन द्विजातिके लिये दूषणीय नहीं है । शङ्ख पाषाण, स्वर्ण, रजत, रज्जु, वसन, शाक, मूल, फल, विदल, चर्म, मणि, वज्र, प्रवाल, मुक्ता और मनुष्यका देह, ये सब जलमें धोनेसे ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १-५ ॥ लोहमय पदार्थकी जलके द्वारा, पाषाणके पदार्थकी घर्षण द्वारा और स्नेह युक्त (तेल-घी लगे) पात्रकी उष्ण जलके द्वारा शुद्धि होती है । सूप, धान्य, मृगचर्म, मूसल, ऊखली और ऊनी वस्त्र जलके प्रोक्षणसे ही शुद्ध होजाते हैं । सब प्रकारके वल्कल मिट्टी और जलसे धो डालने पर शुद्ध होते हैं । तृण, काष्ठ और औषधियाँ जलके प्रोक्षणसे पवित्र होती हैं । मेढ़ेके रोम अथवा केशोंसे बने हुए वस्त्र यदि अशुचि हो जायँ, तो सरसों अथवा तिलके कल्कसे धो डालने पर शुद्ध होते हैं । कपाससे बनी हुई वस्तुओं-की शुद्धि जल और राखसे होती है ॥ ६-१० ॥ लकड़ी, दाँत, हड्डी और सींग छीलनेसे शुद्ध होते हैं । मिट्टीका बर्तन फिर पकानेसे शुद्ध होता है । भिक्षासे प्राप्त वस्तुएँ, शिल्पीके हाथ, बिक्रीकी चीजें और स्त्रियोंके मुख स्वभावतः शुद्ध होते हैं । रथ्यागत, अविज्ञात, दासवर्गके द्वारा लायी हुई, बहुत दिनोंकी अतीत, अनेकान्तरित और लघु वस्तुएँ 'शुद्ध हैं' कहनेसे ही विशुद्धताको प्राप्त होती हैं । अत्यधिक पदार्थ और बालक, वृद्ध तथा आतुरके किये काम स्वभावतः शुद्ध होते हैं । काम हो जाने पर रसोई घर, जिस स्त्रीके बच्चेने माँका दूध पीना न छोड़ा हो, वह स्त्री और गन्ध रहित, बुद्बुद रहित तथा बहता हुआ जल स्वभावतः शुद्ध है । लेपन, उल्लेखन, वारिसेक, सम्मार्जन और अर्चन, इनके द्वारा घरकी शुद्धिकी जाती है ॥ ११-१५ ॥ हे तात ! मृत्तिका, पानी और भस्मके द्वारा प्रोक्षित कर केश कीटोंसे युक्त, गौके द्वारा सूँघे हुए और जिन पर मक्खियाँ भिनभिनाती हों, उन पदार्थोंको शुद्ध कर लेना चाहिये । उदुम्बरकी (ताम्बेकी) बनी वस्तुएँ खटाईसे, राँगा और सीसेकी क्षारसे और काँसेकी राखसे शुद्ध होती हैं । जो पात्र अमेध्य वस्तुओंके रखनेसे अशुद्ध हो गये हों, उनको मट्टी और जलसे धोकर उनकी गन्धि और वर्ण (पूर्व वस्तुके) को दूर कर शुद्ध कर लेना चाहिये । जो जल प्रकृतिस्थ, महागत और गो जातिके लिये तृप्ति कर हो, वह शुद्ध है । चाण्डाल और व्याधाके द्वारा मारे हुए जीवोंका मांस भी विशुद्ध माना गया है । हे वत्स ! रथ्यागत चैलादि वायुके द्वारा ही शुद्ध हो जाते हैं ॥ १६—२० ॥ धूलि, वह्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादिकी रश्मि, वायु, पृथ्वी, जलबिन्दु और मक्षिका आदि दुष्ट संसर्ग होने पर भी अपवित्र नहीं होते । छाग और अश्वका मुख विशुद्ध है । गोवत्सका मुख शुद्ध नहीं होता; परन्तु गौका मलमूत्र और पक्षियों

द्वारा टूटकर पड़े हुए फल पवित्र होतेहैं। आसन, शय्या, यान, नौका, मार्गमें पड़ा हुआ तृण, चन्द्र-सूर्यकी किरणें और सब प्रकारकी वायु दूकानकी वस्तुओंकी तरह विशुद्ध होती है। पथपर्यटन, स्नान, क्षोतन (छींक), पान और मलमूत्र-विसर्जन इन कार्योंके करनेके उपरान्त वस्त्र बदलकर यथाविधि आचमन करना चाहिये। मार्ग, कीचड़, पानी, ईंटका बना हुआ और कीचड़से पुता हुआ पदार्थ यदि संसर्ग-दोषसे दूषित हो गया हो, तो वायुके संसर्गसे ही शुद्ध होजाता है। अन्नका ढेर यदि किसी तरह दूषित होजाय, तो उसके ऊपरका भाग दूरकर शेष ढेरपर मृत्तिका और जलका सिञ्चन आचमन पूर्वक करनेसे वह शुद्ध होजाता है। अनजाने दुष्टान्न सेवन करलेने पर तीन रात उपोषण करना चाहिये। किन्तु यदि ज्ञानपूर्वक ऐसा अन्न सेवन कर लिया जाय, तो शास्त्रविधानानुसार उस दोषकी निवृत्तिके लिये प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना चाहिये। ऋतुमती स्त्री, अश्व-शृगालादि, सूतिका, चाण्डाल और शववाहक इनको स्पर्श कर लियाजाय, तो स्नानसे शुद्धि हो जाती है। चरबी लगी हुई मनुष्यकी हड्डीसे स्पर्श होजाय, तो स्नानमें शुद्धि होजाती है। किन्तु यदि वह हड्डी सूखी हो, तो उसका स्पर्श होनेपर आचमन, गोस्पर्श और सूर्य दर्शन करनेसे शुद्धि होती है। रुधिर, निष्ठीवन (खखार) और उद्वर्तन (उबटनका मैल) को नहीं लांघना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष रातमें उद्यानादिमें वास न करे ॥ २१—३० ॥ निन्दिता और अधीरा स्त्रीके साथ बातचीत करना भी अनुचित है। जूठा, मल-मूत्र और पैर धोया हुआ जल घरसे बाहर बहा देना चाहिये। पञ्चपिण्डोंका उद्धार किये बिना दूसरे जलमें न नहावे। किन्तु देवखात, गङ्गा, ह्रद और नदीमें स्नान करनेमें कोई हानि नहीं है। जो लोग देवता, पितृगण, सत्-शास्त्र, यज्ञ, मन्त्र आदि की निन्दा करते हैं, हे पुत्र! उनके साथ सम्भाषण करने अथवा उनसे स्पर्श हो जानेसे मेरी दी हुई अंगूठी पहिन कर सूर्यदर्शन करके पवित्र हो जाना चाहिये। ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज, पतित, शव, विधर्मी, सूतिका, नपुंसक, वस्त्ररहित व्यक्ति, अन्त्यावशायी, सौरीकी अशुचि चीजें बाहर फेंकनेवाला और परस्त्रीगामी, इनको देख लेनेपर सूर्यदर्शन कर शुद्ध हो जाना बुद्धिमान मनुष्यको उचित है ॥ ३१—३५ ॥ अभक्ष्य पदार्थ, नवप्रसूता स्त्री, नपुंसक, बिलार, मूसा, मुरगा, कुत्ता, पतित, आविद्ध [माता पिता द्वारा परित्यक्त व्यक्ति अथवा द्रव्यादि], चाण्डाल, मृतकका कफ़न लेनेवाला, ऋतुमती स्त्री, ग्राम्यशूकर और सूतिकाको छुए हुए व्यक्तिका स्पर्श हो जानेपर स्नान करनेसे ही शुद्धि हो जाती है। जिसके घरमें प्रति दिन नित्यकर्मकी हानि देख पड़ती हो और जिसे ब्राह्मणोंने छोड़ दिया हो, वही पाप भागी और नराधम व्यक्ति है। नित्य कर्मकी हानि कदापि नहीं करनी चाहिये। नित्यकर्मका अनुष्ठान न करनेसे बन्धन होता

है। केवल जन्मकाल और मृत्युकालमें नित्य कर्म न करनेसे दोष नहीं लगता। जननाशौच और मरणाशौचके दश दिनोंमें ब्राह्मणोंको दान होमादि नित्यकर्म नहीं करने चाहिये। इसी तरह क्षत्रियोंको बारह दिन; वैश्योंको पंद्रह दिन और शूद्रोंको एक मासतक उक्त कर्म करना वर्जित है। अशौचनिवृत्तिके उपरान्त सभी वर्णके लोग शास्त्रोक्त विधिके अनुसार अपने अपने कर्मोंका आचरण अवश्य किया करें॥ ३६-४१॥ सगोत्रीय व्यक्तिकी दाहक्रिया हो जानेपर प्रथम, चतुर्थ, सप्तम और नवम दिनमें उसके उद्देश्यसे जलाञ्जलि देनी चाहिये। चौथे दिन उसके भस्म और अस्थिका सञ्चय किया जाता है। अस्थि-चयन हो जानेपर दाह करनेवालेको स्पर्श करना चाहिये। अस्थिचयनके पश्चात् समानोदकोंको सब क्रिया कर्म करना चाहिये। जिस दिन सगोत्रीय व्यक्ति मरा हो, उस दिन दाह करनेवालेको सपिण्ड और समानोदक व्यक्ति छू सकते हैं। घोड़ा, अटारी, अश्वादिसे गिरकर या शस्त्र, जल, उद्बन्धन, वह्नि, विष, प्रपातादिसे मृत्यु हुई हो, तो सगोत्र और समानोदकोंको एक दिनका अशौच लगता है। बालक, देशान्तर निवासी और संन्यासीका सद्यः शौच होता है। अर्थात् क्षणमात्र अशौच रहकर फिर शुद्धि हो जाती है। किसी किसीके मतसे ऐसी अवस्थामें त्रिरात्र अशौचका पालन करना चाहिये। एकके मरनेके उपरान्त उसीके अशौचमें यदि किसी दूसरे सपिण्डकी मृत्यु हो जाय, तो पहिले अशौचके साथही दूसरे अशौचकी निवृत्ति हो जाती है। जननाशौचके सम्बन्धमें भी सपिण्ड और समोनोदकोंके लिये ऐसी ही व्यवस्था है। पुत्रका जन्म होतेही सचैल स्नान करना पिताका कर्तव्य है। एकके जन्मके बाद उसीके जननाशौचमें यदि दूसरे का जन्म हो, तो पहिलेके जननाशौचके साथ दूसरेके जननाशौचकी भी निवृत्ति हो जाती है॥ ४२-५०॥ ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको दस दिन, बारह दिन, पन्द्रह दिन, और एक मासतक यथाविधि अशौचाचारका पालन कर अपने अपने वर्णके अनुसार क्रिया कर्म करने चाहिये। अशौच समाप्त होनेपर मृतकके उद्देश्यसे एकोद्दिष्टका सम्पादन करना चाहिये। उस समय मनीषी व्यक्तियोंको मृतकके उद्देश्यसे ब्राह्मणोंको दान करना उचित है। लोगोंको जो वस्तु बहुत अच्छी लगे और घरमें जो जो उत्तमोत्तम वस्तुएं विद्यमान हों, गुणवान् ब्राह्मणोंको उनका दान करना उत्तम है। दान करनेसे उसका पुण्यफल अक्षय्य हो जाता है। क्रिया कर्मके दिन बीत जानेपर सब वर्णके लोग पवित्र होकर जल, यान, अश्व, प्रतोद (कोड़ा) और दण्डको स्पर्श कर अपने अपने काममें लगजावें। ऐसा करनेसे क्या इहलोक और क्या परलोक दोनों लोकोंमें श्रेयःप्राप्ति होती है। हे पुत्र! प्रतिदिन वेदपाठ करना, सदसद्विवेक बुद्धिको जागृत रखना और धर्मानुसार धनोपार्जन करना अवश्यक है। जिनसे आत्मा निन्दनीय न हो और जो महज्जनोंके निकट छिपाने योग्य न हों, निःशङ्कभावसे

उनकर्मोंका आचरण करनेमें प्रवृत होना उचित है। हे वत्स! गृहस्थाश्रमीके इस प्रकार आचार पालन करनेसे उसे धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गकी प्राप्ति होती है और इह-पर दोनों लोकोंमें उसका कल्याण साधन होता है ॥ ५१–५८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणके अलर्कानुशासनान्तर्गत वर्ज्यावर्ज्यकथन नामक पैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

छत्तीसवाँ अध्याय।

जड़ने कहा,—माताके इस प्रकार अनुशासन करने पर ऋतुध्वजकुमार अलर्कने यौवनावस्थामें प्रवेश किया और भली भाँति विधानानुसार दारपरिग्रह (विवाह) कर लिया। फिर अलर्कके कई पुत्र उत्पन्न हुए और उसने अनेक यज्ञानुष्ठान किये। अलर्क निरन्तर पितृदेवकी आज्ञाके वशवर्ती रहा करता था। यों बहुत काल बीतनेपर अतिवृद्ध हो जानेके कारण महाभाग महीपति ऋतुध्वजने सपत्नीक तपस्यार्थ बनमें गमनके विचारसे पुत्र अलर्कका यौवराज्याभिषेक यथाविधि सम्पन्न किया। अभिषेकका समारम्भ समाप्त

टीका—सनातनधर्म्म सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमय है। इस कारण खान पान, वस्त्र, आभरण, स्पर्शास्पर्श, शुद्धाशुद्ध विचार आदि सबके साथ तमोगुणवर्द्धक अधर्म और सत्त्वगुणवर्द्धक धर्मक्रियाका सम्बन्ध शास्त्रोंमें माना गया है। ऊपरके द्रव्यशुद्धिविज्ञानके मूलमें भी यही सिद्धान्त रखकर शुद्धि क्रियाकी विभिन्न आज्ञा दीगई है। और इसी विज्ञानके अनुसार भोजन तथा स्पर्श दोष आदि सम्बन्धका प्रायश्चित्त भी बताया गया है। इसी प्रकार स्त्री-उपयोगी सदाचार, गृहकृत्य, अतिशक्तिशाली वृक्ष पूजन, बालाचार, आदिका जो निर्णय किया गया है, वह दैव सम्बन्ध तथा सत्त्वगुणवर्द्धक धर्मसम्बन्धसे ही किया गया है। ये सब बातें अन्तर्दृष्टिसे ही निर्णीत हुई हैं. इसी प्रकार मनुष्योंका पातित्य होनेका जो विज्ञान है और जो अशौच विज्ञान है वो भी अन्तःकरणपर तम और सत्त्वगुणोंके प्रभावमूलक है। मीमांसाशास्त्रमें यह सब विज्ञान भली भांति सिद्ध किया गया है। पाप किस प्रकार अन्तःकरणपर तमका आवरण उत्पन्न करता है और अशौचकी शक्ति किस प्रकार विक्षेप और आवरण दोनों चित्ताकाशमें प्रगट करती है, ये सब विज्ञान कर्म्ममीमांसा शास्त्रसे समझने योग्य हैं। सनातनधर्मका स्पर्शास्पर्शविज्ञान, शुद्धाशुद्धिविज्ञान, भक्ष्याभक्ष्य विज्ञान और मृताशौच जननाशौच विज्ञान तथा सदाचारकी सब आज्ञाएं अधर्ममूलक तमोगुण और धर्ममूलक सत्त्वगुणके विचारसे तथा उनका शरीर और अन्तःकरणपर प्रभाव अवश्यसंभावी होनेके कारण त्रिकालदर्शी धर्माचार्योंने निर्णीत की हैं ॥ १—५८ ॥

हो जानेपर पुत्रको कामभोगसे निवृत्त करनेके अभिप्रायसे मदालसाने उसे इस प्रकार अन्तिम उपदेश किया कि,—"हे तात! गृहस्थ सदा ही ममतापरायण होनेसे स्वाभाविक रूपसे ही वह दुःखका आयतन (घर) हुआ करता है। अतः मैं कह देती हूं कि, गृहस्थाश्रम धर्मका पालन और राज्यशासन करते हुए जब कभी तुम्हें प्रियजनवियोग, शत्रुबाधा अथवा वित्तनाशके कारण असह्य दुःखका अनुभव होने लगे, तब मेरी इस अंगूठीमेंसे वह सूक्ष्माक्षरोंमें लिखा हुआ पत्र, जो मैंने इसमें रक्खा है, निकाल कर मेरा अनुशासन पढ़ लेना!" जड़ने कहा,—मदालसाने यह कहकर अपनी अंगुलीसे एक सोनेकी अंगूठी निकालकर पुत्र अलर्कको देदी और उसे गृहस्थोचित आशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर कुवलयाश्वने पुत्रको राज्य अर्पण कर, तपस्याके लिये देवी मदालसाके साथ वनमें गमन किया ॥ १—१० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मदालसोपाख्यान नामक छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

प्रथम खण्ड समाप्त।

टीका—हिन्दु सभ्यता और वैदिक विज्ञान कितना उदारतापूर्ण सर्वव्यापक और सर्वाङ्गोंसे पूर्ण है, इसका उदाहरण श्रीमदालसा चरित्र भली भाँति देता है। जिस स्त्रीजातिको सर्वथा पराधीना बनाकर तपोधर्मसे शास्त्रोंने जकड़ रक्खा है, उसी स्त्री जातिका उज्वल रत्न देवी मदालसा जीवन्मुक्त मानी गयी है। जीवन्मुक्तके भी दो भेद हैं। यथा,—मूक, उन्मत्त, निष्क्रिय जीवन्मुक्त ब्रह्मकोटिके कहाते हैं और कर्मठ, कर्मयोगी, सर्वशास्त्रज्ञ, जगद्गुरुरूपी जीवन्मुक्त ईशकोटिके कहाते हैं। देवी मदालसामें ईशकोटिके जीवन्मुक्तके लक्षण कहे गये हैं। इसी कारण उनके चरित्रमें स्थूल सदाचारसे लेकर सूक्ष्म ब्रह्म सद्भावके लक्षण तक विद्यमान हैं। नारीधर्मकी पूर्णताके साथ ही साथ पूर्ण मनुष्यत्वकी पूर्णता और आचारकी पूर्णताके साथ ज्ञानकी पूर्णता भी देदीप्यमान है। यह अलौकिक चरित्र असाधारण और देवदुर्लभ है ॥ १—१० ॥

मार्कण्डेय पुराण।

[द्वितीय खण्ड]

श्रीः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

——:o*o:——

[द्वितीय खण्ड]

——:o:——

श्रीभारतधर्म्ममहामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक
पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी
हुई 'रहस्योद्घाटिनी' टीका सहित ।

——:o:——

सम्पादकः—
विद्यारञ्जन
पण्डित रमेशदत्त पाण्डेय, बी० ए०,
भूतपूर्व शिक्षामंत्री काश्मीर-राज्य ।

——:o:——

प्रकाशकः—
आर्य्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्,
बनारस ।

————

द्वितीय संस्करण] सन् १९३२ [मूल्य एक रुपया

निवेदन।

—०॥०—

पूर्व सङ्कल्पके अनुसार "आर्य्यमहिला" मासिक पत्रिकामें क्रमशः "मार्कण्डेय पुराण" का विशुद्ध अनुवाद "रहस्योद्घाटिनी" टीका सहित प्रकाशित हो रहा है। प्रथम खण्डके लिये जितना आवश्यक था, उतना अंश उक्त पत्रिकामें प्रकाशित होते ही गत श्रीकृष्ण जन्माष्टमीके सुमुहूर्तपर उसका हमने पुस्तकाकार द्वितीय संस्करण निकाला था। अब द्वितीय खण्डके लिये जितना आवश्यक है, उतना अंश पत्रिकामें निकल जानेके कारण ठीक एक वर्षके बाद यह द्वितीय खण्ड पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है। आशा है, प्रथम खण्डकी तरह यह खण्ड भी पुराणप्रिय सज्जनोंको रुचिकर प्रतीत होगा। अब इस पुराणका एक तिहाई अंश शेष रह गया है। वह भी सम्भवतः एक वर्षमें समाप्त होकर सम्पूर्ण ग्रन्थ पाठकोंके हाथमें आजायगा। यह ग्रन्थ समाप्त होनेपर दूसरे ग्रन्थमें हाथ लगाया जायगा और इसी तरह यह पुराणमाला बराबर गूँथी जाती रहेगी। इसके पाठ और प्रचारमें यदि पुराणप्रेमी सनातनधर्मावलम्बी सज्जन उचित मनोयोग करें, तो हम अपने परिश्रम सफल हुए समझेंगे।

श्रीकृष्ण-जन्माष्टमी
संवत् १९८९

निवेदक—
रमेशदत्त पाण्डेय।

मार्कण्डेय पुराण

के

द्वितीय-खण्डकी विषय-सूची ।

द्वितीयखण्ड समाप्त ।

समर्पण

श्रीमान् हिज़हाइनेस, फ़र्ज़न्द-ए-ख़ास दौलते-इंग्लिशिया, मन्सुरुल्-ज़मर, अमीरुल्-उमरा,
महाराजाधिराज, राजेश्वर, महाराजा-ए-राजगण, मेजर-जनरल, सर,
भूपेन्द्रसिंह महेन्द्र बहादुर, जी० सी० आई० ई०, जी०
सी० वी० ई०; पटियाला (पंजाब)
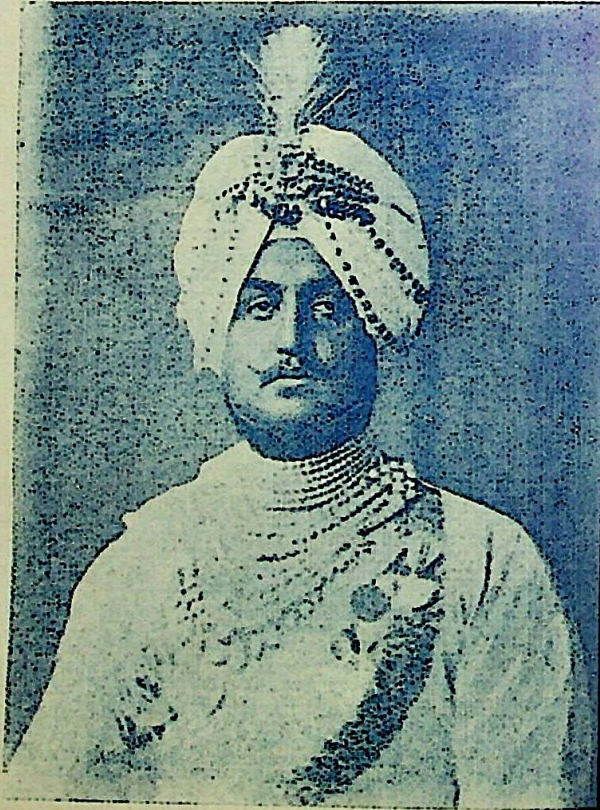
स्वस्ति श्रीयदुवंश-कैरव-सखे ! सच्छिष्य-चूड़ामणे !
धी-श्री-श्री रति-कीर्ति भूति सुषमा-सौहार्द, वीराग्रणे !
दासी, दास, स-मान सद्गुण अहो ! दीन्हें तुम्हें श्रीहरी ।
मार्कंडेय-कथा प्रदान करती 'विद्या' सुधा-निर्झरी ॥

मार्कण्डेय पुराण ।

द्वितीय खण्ड ।

सैंतीसवाँ अध्याय ।

जड़ने कहा,—धर्मात्मा अलर्क न्यायानुसार पुत्रवत् अपनी प्रजाका पालन करने लगा; जिससे सभी लोग बड़े प्रसन्न हुए और अपने अपने विहित कर्मोंका अनुष्ठान निश्चिन्त होकर करने लगे। दुष्टोंको दण्ड देते और शिष्टोंका परिपालन करते हुए अलर्कको बड़ा आनन्द आता। उसने अनेक बड़े बड़े यज्ञ भी किये। कुछ समय बीतनेपर उसे अनेक कुमार हुए, जो बड़े ही बलवान्, पराक्रमी, धर्मात्मा, महात्मा और सन्मार्गगामी थे। अलर्क संयमशील होकर धर्मके द्वारा अर्थ और अर्थके द्वारा धर्मका उपार्जन और रक्षण करते हुए धर्म और अर्थ दोनोंके अविरोधसे विषयोपभोग करने लगा। इस प्रकार धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके सम्पादनके साथ ही साथ पृथ्वीपालन करते हुए अलर्कके अनेक वर्ष एक दिनकी तरह बीत गये॥ १–५॥ प्रियतम विषयोंका बहुकाल तक सम्भोग करते रहनेपर भी उसमें वैराग्यका सञ्चार नहीं हुआ और न धर्म तथा अर्थके उपार्जनमें ही विरक्ति हुई। अलर्कका सुबाहु नामक एक भाई पहिले ही विरक्त होकर वनमें चला गया था। उसने अलर्ककी भोग-सम्भोगकी प्रमत्तता और परायणताकी सब बातें सुनीं। तब वह अपने भाई अलर्कको तत्त्वज्ञानका लाभ कैसे हो, इसकी चिन्ता करने लगा। अन्तमें वह इस निर्णयपर पहुँचा कि, अलर्कके शत्रुका आश्रय करनेसे ही उसका कल्याणसाधन हो सकता है। तदनन्तर कार्यकुशल सुबाहुने अपने पैतृक राज्यके पानेके लिये (जिसका उपभोग अलर्क कर रहा था) महाबली और बहु सेना तथा वाहनोंके अधीश्वर काशिराजकी शरण ली। काशिराजने भी सुबाहुका पक्ष ग्रहण किया और सेनाका उचित प्रबन्ध कर अलर्कके पास दूत भेजकर कहलाया कि, "हे अलर्क! सुबाहुको राज्य दे दो।" क्षात्र धर्मको जाननेवाले अलर्कने इस बातको स्वीकार नहीं किया। काशिराजके दूतसे उसने कहा,—"मेरे ज्येष्ठ भ्राता मेरे पास आकर विनीत भावसे मुझसे

राज्यकी याचना करें। मैं आक्रमणके भयसे एक कणके बराबर भी भूमि नहीं दूंगा।" महामति सुबाहु राज्यकी याचना करनेको प्रस्तुत नहीं हुआ। क्योंकि याचना करना क्षत्रियका धर्म नहीं है। एक मात्र पराक्रम ही उनका धन हुआ करता है। तदनन्तर काशिराजकी विपुल सेनाको साथ लेकर नरपति अलर्कके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिये सुबाहु आकर उपस्थित हुआ और उसने राज्यपर आक्रमण कर भी दिया। अलर्कके सामन्त सरदारों और भृत्योंको अपनी ओर मिलाकर थोड़े ही समयमें उसने अलर्कको अपने अधीन कर लिया। भाईके राज्यको घेरकर उसने उस राज्यके सब सामन्तों, किलेदारों और अधिकारियोंको, किसीको दण्ड देकर, किसीको धनलोभमें फँसाकर, किसीको भेद और सामके द्वारा अपने अधीन कर लिया ॥ ११-१७ ॥ इस प्रकार अलर्क परचक्रसे पीड़ित होकर क्षीणबल और क्षीणकोष हो गया। उसके पुत्र भी शत्रुओं द्वारा कैद कर लिये गये। दिन दिन धनहीन होता हुआ शत्रुओंसे अत्यन्त सताया जानेके कारण अलर्कको पराकाष्ठाका विषाद हुआ और उसका चित्त अकुला गया। क्रमशः जब वह बेबस और अत्यन्त आर्तभावापन्न हुआ, तब माता मदालसाने जाते समय अंगूठीके सम्बन्धमें जो बात कही थी, उसका उसे स्मरण हो आया। तुरन्त उसने स्नान करके पवित्र भावसे बैठकर और ब्राह्मणोंके द्वारा स्वस्तिवाचन कराके अंगूठीमेंसे वह लेख निकाला जो माताने स्पष्टाक्षरोंमें लिख रक्खा था। माताके लिखे हुए उस अनुशासन (लेख) को पढ़ते ही उसका शरीर पुलकित हो उठा और उसके नेत्रोंमें प्रसन्नता झलकने लगी ॥ १८-२२ ॥ शासनपत्रमें लिखा था,—"सब भाँति सर्वसङ्ग परित्याग कर दो। यदि सर्वसङ्गपरित्याग न कर सको, तो सन्तोंका सङ्ग करो; क्योंकि सन्तसङ्ग औषध स्वरूप है। सब भाँति सब प्रकारकी इच्छाओं (वासनाओं) को छोड़ दो। यदि ऐसा न कर सको, तो मुक्तिकी इच्छा करो। यही इसकी औषधि है।" यह शासनपत्र बार-बार पढ़ता हुआ वह सोचने लगा कि, मनुष्योंका कल्याणसाधन किस उपायसे हो सकता है? फिर पत्रको पढ़कर उसने निश्चय किया कि, मुक्तिकी इच्छा ही कल्याण-साधनका उपाय है और सत्सङ्ग ही

टीका:—सृष्टिके जिस कल्पकी यह गाथा है, उस कल्पमें देवता और मनुष्यका पारस्परिक सम्बन्ध इस समयसे अधिक घनिष्ठ था। इसी कारण मानवपिण्डधारी अलर्कको देवपिण्डधारी भगवान् दत्तात्रेयके दर्शन थोड़े प्रयत्नसे ही होसके थे। विभिन्न कल्पोंमें उत्पन्न जीवोंकी शक्तिमें न्यूनाधिकता हुआ करती है। सनातनधर्म्म सर्वव्यापक ईश्वरीय नियम है। जो शारीरिक, वाचनिक, मानसिक और बौद्धिक कर्म्म सत्त्वगुण बढ़ावें, वही धर्म्म कहाता है। प्रकृतिके गुण तीन हैं, यथाः—सत्त्व, रज और तम। ये स्वाभाविक हैं। शारीरिक कर्म्म, वाचनिक कर्म्म, मानसिक कर्म्म अथवा बौद्धिक कर्म्म जो सत्त्वगुणको बढ़ावें, वही धर्म्म स्वतः ही रजोगुण और तमोगुणका नाश कर देता है और जिस व्यक्तिकी उत्पत्ति धर्मसे

मुमुक्षुत्वका कारण है। फिर वह साधुसङ्गका लाभ कैसे हो, इसकी चिन्ता करने लगा। चिन्ता करते करते वह नरपति अत्यन्त आर्तभावातुर होकर अन्तमें महाभाग दत्तात्रेयके निकट उपस्थित हुआ। उन निष्पाप, निःसङ्ग और महानुभाव दत्तात्रेयकी प्रणामपूर्वक पूजा कर अलर्कने न्यायानुसार उनसे कहा,—हे ब्रह्मन्! आप शरणागतोंके आश्रयस्थान हैं। आप मुझपर प्रसन्न हों। मैं विषयभोगमें लिप्त होनेके कारण दुःखसे अभिभूत हो रहा हूं। आप मेरे दुःखको दूर करें ॥ २३-२८ ॥ दत्तात्रेय बोले—हे पृथ्वीनाथ! मैं आज ही तुम्हारे दुःखको दूर कर दूंगा। परन्तु हे पार्थिव! तुम सच कहो कि, क्योंकर तुम्हें दुःख हो रहा है? जड़ने कहा,—महामति दत्तात्रेयके इस प्रकार पूछने पर महीपति त्रिविध दुःखोंके स्थान और आत्माके सम्बन्धमें विचार करने लगा। उदारमति, धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक वार आत्माके द्वारा आत्मविचार कर हंसते हुए बोला,—मैं भूमि नहीं, जल नहीं, ज्योति (अग्नि) नहीं, वायु नहीं और आकाश भी नहीं हूँ। किन्तु शरीरका आश्रय कर सुखकी इच्छा करता हूं। इस पाञ्चभौतिक शरीरमें सुख और दुःख उपस्थित होकर उनमें न्यूनाधिकता हुआ करती है ॥ २९-३३ ॥ यदि ऐसा ही होता हो, तो इसमें मेरी क्या हानि है? क्योंकि मैं शरीर नहीं हूं, शरीरसे स्वतन्त्र होकर विद्यमान हूं। मेरी न्यूनता अथवा अधिकताकी सम्भावना ही नहीं हो सकती। नित्यप्रभूतसद्भावमें स्थित होनेपर न्यूनाधिकता, अवनति और उन्नति तथा समतासे भी छूटकर विशेषरूपसे स्वरूपकी उपलब्धि होती है। सूक्ष्म, तृतीयांश, तन्मात्रामें अवस्थित अपने आपको देखते हुए पञ्चभूतोंके सद्भाव-से उत्पन्न हुए शारीरिक सुख-दुःख वस्तु ही क्या रह जाती है? सुख और दुःख मनमें रहता है, वह मनका धर्म है। जब कि, मैं मन नहीं हूं, तब मुझे सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है। जब मैं अहङ्कार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं, तब अन्तःकरणसे उत्पन्न हुए पारक्य दुःखकी मुझमें सम्भावना ही कैसे हो सकती है? मैं शरीर नहीं और मन भी नहीं हूं। मैं शरीर और मनसे पृथक् हूँ। अन्ततः सुख-दुःख चाहे मनमें रहे, चाहे शरीर में; मेरा इससे क्या बनता बिगड़ता है? ॥ ३४-३८ ॥ इस शरीरका बड़ा भाई राज्यकी इच्छा करता है; परन्तु यह शरीर तो पञ्चभूतोंका एक ढेर है। गुणकी प्रवृत्तिसे मेरा क्या

हो, जिसकी रजवीर्य्यकी शुद्धि रहे, वह व्यक्ति सुख-दुःखकी सन्धि उपस्थित होनेपर अवश्य ही धर्म्मका अनुसरण करता है। अलर्कको मातृदेवीके द्वारा धर्म्मका सच्चा उपदेश प्राप्त होनेसे और उसकी धर्म्मसे उत्पत्ति होनेसे इस सुख-दुःखकी सन्धिमें वह धर्म्मपथको भूल नहीं सका। जो व्यक्ति धर्मपथको नहीं छोड़ता, उसको आगेकी संधिमें सद्गुरुकी प्राप्ति होती है। जगद्गुरु विष्णुरूपमें अथवा शिवरूपमें दर्शन देते हैं। देवलोकमें भगवान् दत्तात्रेय जगद्गुरुका अवतार है और इस मृत्युलोकमें सच्चे सुहृद, निष्काम व्रतधारी, आत्मनिष्ठ महापुरुष ही इन तीनोंमेंसे किसीके प्रतिनिधि बनकर गुरु होते हैं ॥ २३—२८ ॥

प्रयोजन है ? क्या मेरा बड़ा भाई और क्या मैं, दोनों ही शरीरसे पृथक् वस्तु हैं। जिसके न हस्तपादादि अवयव हैं, न मांस है, न हड्डियाँ हैं और न शिराएँ हैं, उस पुरुष (आत्मा) का हाथी, घोड़े, रथ, कोष आदिसे अणुमात्र सम्बन्ध नहीं है। अन्ततः मेरा शत्रु, सुख, दुःख, नगर, कोष, अश्व, गज, सैन्य आदि कुछ भी नहीं है। जैसा यह सब कुछ मेरा नहीं है, वैसा और किसीका अर्थात् मेरे बड़े भाईका भी नहीं हो सकता। जिस प्रकार एक ही आकाश घटी, कुम्भ, कमण्डलु आदिमें बहुविध देख पड़ता है, उसी प्रकार एक ही आत्माको मैं सुबाहु, काशिराज, अपने शरीर आदिमें देहभेदके कारण नाना प्रकारका देख रहा हूं ॥ ३६-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पितापुत्रसंवादान्तर्गत आत्मविवेक नामक सैंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

अड़तीसवां अध्याय।

—o:※:o—

जड़ने कहा,—इसके उपरान्त वह राजा (अलर्क) विनयावनत होकर प्रणामपूर्वक विप्र दत्तात्रेयसे बोला,—हे ब्रह्मन्! मेरी भलीभाँति दृष्टि खुल जानेसे अब मुझे किसी प्रकारके दुःखका अनुभव नहीं होता। जिनकी दृष्टि निर्मल नहीं हुई है, वे ही सर्वदा दुःखसागरमें निमग्न रहा करते हैं। मनुष्यकी बुद्धि जिन जिन विषयोंमें आसक्त होती है, उन्हीं उन्हीं विषयोंसे दुःखसमूह उत्पन्न हुआ करते हैं। घरके मुरग़ेको यदि बिल्ली खा जाय, तो जैसा दुःख होता है, वैसा परेवा अथवा चूहेको खा जानेसे नहीं होता। ममता ही इसका कारण है। पाले हुए मुरग़ेपर जैसा मनुष्यका ममत्व होता है, वैसा कंकड़ चुगनेवाले परेवा अथवा चूहेपर नहीं होता। मैं सुखी नहीं और दुःखी भी नहीं; क्योंकि मैं प्रकृतिसे अतीत हूँ।

टीका:—वेदका रहस्य यह है कि, पात्रापात्र विचार करके धर्म तथा आत्मज्ञानका उपदेश दिया जाय। जैसे मिट्टीके ढेलेपर सूर्यकी किरणें प्रतिबिम्बित नहीं होतीं, किन्तु काँच और मणिपर होती हैं; उसी प्रकार अयोग्य पात्रमें ज्ञानका उपदेश व्यर्थ होता है। योग्य पात्रको यथायोग्य उपदेश देना ही पूज्यपाद महर्षियोंका प्रदर्शित मार्ग है। इसी कारण सनातनधर्ममें अधिकारभेद जैसा माना गया है, वैसा पृथ्वीके अन्य किसी धर्ममें नहीं माना गया है। जगद्गुरु दत्तात्रेयने शिष्य राजा अलर्कको उसके उपयोगी प्रश्न करके उसमें पात्रता उत्पन्न की है। योग्य पात्र तीन तरहके होते हैं। विवेकी, सावधान और मलिन। प्रायश्चित्त द्वारा जो शुद्ध किया जाय, वह मलिन पात्र है। जो साधनक्रम द्वारा अग्रसर किया जाय, वह सावधान है और जो गुरुवचन सुनते ही अन्तर्मुख होजाय, वह विवेकी पात्र कहाता है। अलर्क भाग्यवान् और विवेकी पात्र है। इस कारण दत्तात्रेयके प्रश्न करते हीं उसकी बुद्धि अन्तर्मुख होगयी थी ॥ ३६—४२ ॥

भूतोंके द्वारा जो भूताभिभव होताहै, वही सुख दुःखात्मक कहा जाता है ॥ १—५ ॥ दत्तात्रेयने कहा,—हे नर श्रेष्ठ ! तुम जो कहते हो, वह सत्य है। ममता ही दुःखका कारण है और निर्ममत्त्व सुखका मूल है। मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदयमें ऐसे उत्कृष्ट ज्ञानका उदय हुआ है और इसी ज्ञान-बलसे तुम्हारी ममता बुद्धि तिनकेकी तरह उड़ गयी। अहङ्कारके अङ्कुरसे ही अज्ञानरूपी महावृक्षकी उत्पत्ति होती है। ममत्व उस वृक्षका स्कन्ध (तना) है। गृह, क्षेत्र, भर, (खेत) आदि उसकी बड़ी बड़ी शाखाएं हैं। पुत्र, दारा (स्त्री) आदि उसके छोटे पत्ते (पल्लव) और धन, धान्य आदि बड़े पत्ते हैं; जो धीरे धीरे बढ़ते हैं। पुण्यापुण्य उसके अग्र पुष्प और सुख-दुःख महाफल है। मूढ़ सङ्कल्प रूपी जलसे वह सींचा जाता है। इसपर अभिलाषा रूपी भँवरोंकी पंक्तियां मंडराया करती हैं। हृदयमें जब यह अज्ञान रूपी महातरु जड़ पकड़ लेता है, तब मुक्तिका पथ अवरुद्ध हो जाता है। ६—१०॥ जो लोग संसार रूपी पथपर चलते हुए थक कर और भ्रान्ति ज्ञान सुखके अधीन होकर इस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं,उन्हें मोक्षका लाभकैसे हो सकता है ? जो लोग विद्यारूपी कुल्हाड़ेको सत्सङ्गरूपी पत्थरपर चोखा करके उससे इस ममतारूपी वृक्षको काटनेमें समर्थ होते हैं, वे हो अपना मार्ग परिष्कृत (साफ) कर ब्रह्मरूपी वनमें पहुंच जाते हैं। वह वन अत्यन्त शीतल है। वहाँ धूल नहीं उड़ती और काँटे नही हैं। उस वनमें पहुंचने पर वृत्ति रहित होकर परमा प्रज्ञा और निर्वृत्तिकी प्राप्ति होती है। हे नृपते ! तुम भी भूतेन्द्रियमय अथवा स्थूल नहीं हो और मैं भी नहीं हूं। हम दोनोंमेंसे कोई तन्मात्र नहीं है और अन्तःकरणात्मक भी नहीं है। हे राजेन्द्र ! हम दोनोंमें कौन प्रकृतिमय देख पड़ता है ? अर्थात् कोई नहीं। क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृतिसे अतीत और पाञ्चभौतिक पदार्थ ही गुणात्मक तथा प्रकृतिका विषयीभूत होता है। हे राजन् ! मशक और उदुम्वर (गूलर), ईषिका और मुञ्ज तथा मत्स्य और जल, इनका एकत्व होते हुए भी जैसी इनमें पृथक्ता है, क्षेत्र और आत्माकी भी वैसी ही पृथक्ता जाननी चाहिये ॥ ११—१६ ॥ अलर्कने कहा, हे भगवन् ! आपके प्रसादसे मुझमें प्रधान (प्रकृति) और चिच्छक्तिके विवेकके अत्युत्तम ज्ञानका उदय हुआ है; किन्तु मेरा चित्त विषयोंमें आकृष्ट होनेके कारण मैं स्थैर्य धारण करनेमें समर्थ नहीं होता और यह भी नहीं जान पाता हूं कि, प्रकृतिके बन्धनसे मेरा कैसे छुटकारा हो, क्या करनेसे फिर जन्म ग्रहण करना न पड़े ? कैसे निर्गुणत्व प्राप्त हो ? किस प्रकार शाश्वत ब्रह्मके साथ एकत्व लाभ हो ? इस सम्बन्धमें मुझे भली भाँति उत्तम योगका उपदेश दीजिये। हे महाप्राज्ञ ! मैं प्रणत होकर आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ। सत्सङ्गही मनुष्यका सब प्रकारसे उपकार करता है ॥ १७—२० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणका पिता पुत्र संवादान्तर्गत प्रश्न नामक अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनचालीसवाँ अध्याय।

दत्तात्रेयने कहा—ज्ञानलाभ होनेके उपरान्त योगियोंका जब अज्ञानसे वियोग हो जाता है, उसको मुक्ति कहते हैं और प्रकृतिके गुणोंसे अनैक्य (पृथक्ता) हो जाना ही साक्षात् ब्रह्मके साथ ऐक्य (एकता) स्थापित होना है। हे महीपते! योगसे मुक्ति प्राप्त होती है और सम्यक् ज्ञानसे योगकी उपलब्धि होती है।* दुःखसे सम्यक् ज्ञानका उदय होता है और ममतासक्त चित्तसे दुःखका आविर्भाव होता है। अतः मुमुक्षुको प्रयत्न-पूर्वक विषयासक्तिका परित्याग कर देना चाहिये। विषयासक्तिको छोड़ देनेसे "मेरा" यह ज्ञान नष्ट हो जाता है। निर्ममत्व ही सुखका कारण है। हृदयमें वैराग्यका सञ्चार होनेसे संसारके समस्त दोष सूझने लगते हैं। ज्ञानसे जैसे वैराग्यका, वैसे वैराग्यसे भी ज्ञानका उदय हुआ करता है। जिस स्थानमें निवास किया जाय, वही घर है, जिसके द्वारा देहका पोषण होता है, वही भोज्य है; जिसके द्वारा मोक्ष प्राप्त होता है, वही ज्ञान है और इससे जो विपरीत है, वही अज्ञान कहा जाता है। हे पार्थिव! पुण्यापुण्यका उपभोग कर लेने पर निष्काम कर्म करते हुए पूर्वोपार्जित कर्मोंका क्षय और नवीन कर्मोंका असञ्चय होनेसे ही बार बार शरीर-बन्धनमें फँसना नहीं पड़ता ॥ १—७ ॥ हे राजन्! यह सब जो मैंने तुमसे कहा, इसीको योग कहते हैं। जिस योगके द्वारा योगिगण शाश्वत ब्रह्मके अतिरिक्त अन्य और किसीका अनुभव नहीं करते। सबसे पहिले आत्माके द्वारा आत्माको

---

* टीका—जीव पूर्व संस्कारोंके अनुसार विषय भोगकी इच्छामें फंसता रहता है और इसीसे आवागमन चक्रमें घूमता हुआ निरन्तर दुःख पाता है। उसीसे बचनेके उपायको योग कहते हैं। योग अनेक प्रकारका है, यथाः—मन्त्रयोग, हठयोग, लययोग, राजयोग, कर्म्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग इत्यादि। यहां जो भगवान् दत्तात्रेयजीने योगका उपदेश दिया है वह सब योगोंका सार है। इसको राजयोग कह सक्ते हैं। बुद्धियोग साधन करनेका क्रम यह है। अज्ञानसे ममत्व उत्पन्न होकर जीव दुःख पाता है। दुःखका कारण जब जाना जाता है तब उसमें वैराग्य होता है। विषय वैराग्यसे सम्यक् ज्ञान अर्थात् सद्सत् ज्ञानका उदय होता है। ज्ञान सूर्य्यके उदय होनेसे अज्ञानान्धकार स्वतः ही दूर हो जाता है तब स्वरूप ज्ञानरूपी स्वस्वरूपका स्वानुभव होते ही मुक्तिका उदय होता है। यही साधन राजयोगका है। यही यहां योग शब्द वाच्य है। सब योग साधन अन्तमें इसी राजयोगका अनुसरण करके मुक्तिपद पर पहुंच सके हैं। आगे अन्य योगोंका भी कुछ दिग्दर्शनका तथा योगीके लिये अरिष्ट विमोचन उपाय आदि जो वर्णन है वह परम्पराय रूपसे सहायक होनेसे किया गया है। योगके विभिन्न साधन मार्ग सब गुरूपदेशगम्य होते हैं ॥१—७॥

जीत लेना चाहिये। क्योंकि आत्माही योगियोंके लिये दुर्ज्ञेय है। अतः इसके जीतनेमें यत्न करना उचित है। आत्माको किस प्रकार जानना चाहिये, वह मैं कहता हूं तुम सुनो। समस्त दोषोंको प्राणायामके द्वारा, पाप पुञ्जको धारणा द्वारा, विषय समूहको प्रत्याहार द्वारा और अनीश्वर गुणोंको ध्यानके द्वारा दग्ध कर देना चाहिये। जिस प्रकार पर्वतोंमें उत्पन्न होनेवाले धातु अग्नि-संस्कार करनेसे निर्दोष (शुद्ध) हो जाते हैं, उसी प्रकार प्राण वायुको वशमें करनेसे समस्त इन्द्रियकृत दोष दग्ध हो जाते हैं। योगविद्याको जाननेवाला व्यक्ति प्रथम प्राणायामकी साधना करे। प्राण और अपान इन दो वायुओंके निरोधको प्राणायाम कहते हैं ॥ ८—१२ ॥ प्राणायाम तीन प्रकारका होता है;—लघु, मध्य और उत्तरीय। हे अलर्क! इन तीनों प्रकारके प्राणायामोंका प्रमाण बताता हूं, श्रवण करो। लघु प्राणायाम बारह मात्राका होता है। मध्यम प्राणायाम उससे दुगनी और उत्तम अथवा उत्तरीय प्राणायाम तिगुनी मात्राका कहा गया है। आँखकी पलक गिराने और उठानेमें जो काल लगता है, वही एक मात्राका काल है। ऐसी बारह मात्राओंके कालमें लघु प्राणायाम हो जाता है। पहिले प्राणायामके द्वारा स्वेद (पसीना), दूसरे प्राणायामके द्वारा कम्प (कँप कँपी) और तीसरे प्राणायामके द्वारा विषाद (खिन्नता) आदि दोषोंको क्रमशः जीत लेना पड़ता है। सिंह, बाघ और हाथी जिस प्रकार सेवाके द्वारा मृदु (नरम) हो जाते हैं, उसी प्रकार योगिजन प्राणायामके द्वारा प्राणको वशीभूत कर लेते हैं। महावत (पीलवान) जिस प्रकार मस्त हाथीको वशमें लाकर अपनी इच्छाके अनुसार चलाता है, उसी प्रकार योगिगण प्राणको वशीभूत कर स्वेच्छानुसार अनायास उससे कार्य करालेनेमें समर्थ होते हैं ॥ १३-१८ ॥ सिखाया हुआ सिंह जिस प्रकार मृगादिको मारता है, किन्तु मनुष्यको चोट नहीं पहुंचाता, उसी प्रकार प्राणवायुकी साधना करनेसे उसके द्वारा पापपुञ्जका नाश होता है, शरीरकी कोई हानि नहीं होती। इसी कारण योगी पुरुष निरन्तर प्राणायाम परायण हुआ करते हैं। प्राणायामकी चार अवस्थाएँ हुआ करती हैं; जिनसे मुक्ति प्राप्त होती है। उन्हीं अवस्थाओंका अब मैं वर्णन करता हूं, तुम सुनो। हे महीपते! ध्वस्ति, प्राप्ति, संवित् और प्रसाद ये ही प्राणायामकी चार अवस्थाएं हैं। अब मैं इनका यथाक्रम स्वरूप वर्णन करता हूं, उसे सुनो। जिस अवस्थामें दुष्ट और अदुष्ट दानों प्रकारके यावतीय कर्मफल क्षयको प्राप्त होकर चित्तकी मलिनता मिट जाती है, उसको ध्वस्ति कहते हैं। योगी व्यक्ति जिस अवस्थामें लोभ मोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त कामोंको निरन्तर स्वयं निरुद्ध करते हैं, उसको प्राप्ति कहते हैं। योगी जिस अवस्थामें ज्ञान सम्पत्ति प्राप्त कर चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्रादिकी तरह क्षमता प्राप्त कर लेते हैं और अतीत, अनागत, तिरोहित तथा दूरस्थ विषयोंको

जान लेते हैं, उसको संवित् कहते हैं। और जिस अवस्थामें योगीके चित्त, पञ्चवायु, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयोंकी शुद्धि हो जाती है, उसको प्रसाद कहते हैं॥ १६—२६॥ हे महीपते! अब प्राणायामके लक्षण और योगारम्भ करते समय जिस प्रकारके आसन बांधने पड़ते हैं, उनके लक्षण सुनो। पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन आदि आसनोंको बाँधकर हृदयमें प्रणवमन्त्रका जप करते हुए योगानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये। साधक सरल भावसे समासनमें अर्थात् जो आसन ऊँचा नीचा (ऊबड़ खाबड़) न हो ऐसा आसन जमाकर दोनों पाँव और जंघाएं आगेकी ओर बटोर कर, मुँह बन्द कर, संयत चित्तसे ऐसा बैठे, जिससे हाथसे जननेन्द्रिय अथवा अण्डकोष छुआ न जा सके। इस आसनमें सिर कुछ उन्नत रहे और दाँतोंसे दाँत रगड़े न जायँ॥ २७—३०॥ दृष्टि नासिकाग्रमें स्थिर रहे, वह इधर उधर विचलित न हो। योगाभ्यासी व्यक्ति उस समय रजोगुणके द्वारा तमोगुणी वृत्तिका और सत्वगुणके द्वारा राजसिक वृत्तिका निरास कर केवल मात्र निर्मल तत्वमें अवस्थान करता हुआ योग साधन करे। समवाय क्रमसे इन्द्रियों और उनके विषयोंको तथा मन और प्राणादि वायुओंको वशीभूत करके, कछुआ जिस प्रकार अपने सब अङ्गोंको बटोर लेता है उसी प्रकार प्रत्याहारकी साधना करनी चाहिये। इस प्रकार काम-समूहको प्रत्याहरण कर केवल आत्मामें ही लौ लगा देनेसे आत्माके द्वारा आत्माका दर्शन होता है। विचक्षण योगाभ्यासीको कण्ठसे लेकर नाभि पर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक देहकी शुद्धि करके प्रत्याहारकी साधना करनी चाहिये। प्राणायाम दस प्रकारके और धारणा दो प्रकारकी कही गयी है॥ ३१—३५॥ तत्त्वदर्शी योगियोंने भी योगाभ्यासमें दो ही प्रकारकी धारणाका उल्लेख किया है। नियतात्मा होकर योगाभ्यास करनेसे योगीके समस्त दोष मिट जाते हैं, शान्ति लाभ होता है, प्राकृत गुण पृथक रूपसे देख पड़ते हैं, परब्रह्मका दर्शन होता है और आकाशादिके परमाणुओं तथा विशुद्ध आत्माका भी साक्षात्कार हो जाता है। इस प्रकार योगी नियताहार कर और प्राणायाममें निरत होकर धीरे धीरे योगभूमिको जय कर ले और अपने घरकी तरह उस भूमि पर आरूढ़ हो जाय। यदि योगभूमिको जय न किया जाय, तो कामादि दोष, व्याधियां और मोहकी वृद्धि होती है। अतः योग भूमिको विना जय किये उसपर आरूढ़ नहीं होना चाहिये। जिसके द्वारा पञ्चप्राण संयत होते हैं, उसीको प्राणायाम कहते हैं॥ ३६-४०॥ जिसके द्वार मनको धारण किया जाय, वह धारणा कहाती है और नियतात्मा व्यक्ति जिस अवस्थामें इन्द्रियोंको उनके शब्दादि विषयोंसे प्रत्याहरण करते हैं, वही प्रत्याहार है। योग-सिद्ध ऋषिगण इस विषयमें जिन उपायोंका निरूपण कर गये हैं, उनके अवलम्बनसे योगीके शरीरमें व्याधि आदि पैठनेमें असमर्थ हो जाती हैं। जिस प्रकार प्यासा मनुष्य झारीसे

धीरे धीरे जल पीता है, उसी प्रकार जितश्रम योगी धीरे धीरे वायुका पान करे। प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें, फिर कण्ठमें, फिर मुखमें, फिर नासाग्रमें, फिर आँखोंमें, फिर भ्रूमध्यमें, फिर तालूमें और अन्तमें परमब्रह्ममें धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार धारणा दस प्रकारकी कही गयी है। यह दशविध धारणाकी सिद्धि हो जानेपर ब्रह्मसारूप्यकी प्राप्ति होती है ॥ ४१–४५ ॥ हे राजेन्द्र! योगीको सिद्धिलाभके लिये हाँपना, भूख, थकावट और चित्तचाञ्चल्य इनका परित्याग कर समत्व बुद्धिसे योगाभ्यास करना चाहिये। अत्यन्त शीतमें, अत्यन्त उष्णतामें अथवा आँधीमें ध्यान तत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ कोलाहल होता हो ऐसे स्थानमें, अग्नि और जलके निकट, जीर्ण गोष्ठ (जहाँ गायें बाँधी जाती हैं) में, चौराहेपर, सूखी पत्ती जहाँ बिछी हो ऐसे स्थानमें, नदीके तटपर, स्मशानमें, जहाँ साँप बिच्छू हों ऐसे स्थानमें, भयसङ्कुल प्रदेशमें, कुएपर और चैत्य अथवा बाँबी जहाँ हो ऐसे स्थानमें तत्त्ववेत्ता योगीको योगाभ्यास नहीं करना चाहिये। जहाँ और जिस समय सत्त्वगुणका पोषण न हो, उस देश-कालको छोड़ देना चाहिये। जहाँ सात्विकता नहीं, वहाँ योगाभ्यास करनेसे कदापि आत्मसाक्षात्कार नहीं होता। इस कारण असात्विक देशकालका परित्याग करना ही उचित है ॥४६–५०॥ जो साधक मूर्खताके कारण उक्त प्रकारके स्थानोंकी छान बीन न कर योगाभ्यासमें प्रवृत्त होते हैं, उनमें कौन कौनसे दोष उत्पन्न होकर वे उनके कार्यमें विघ्न डालते हैं, वह मैं कहता हूं, सुनो। ऐसे विवेचनाशून्य योगाभ्यासीको बधिरता, जड़ता, मूकत्व (गूँगापन), स्मृतिलोप, अन्धता और सद्योज्वरके दोषसेयुक्त होना पड़ता है। प्रमादवश साधकमें यदि ये दोष आ जायँ, तो उनके निवारणार्थ कौनसे उपाय करने चाहिये, इसका विवरण सुनो। अच्छी तरह जौ (यवागु) को छाँटकर और उन्हें स्निग्ध कर खाने बहुत गरम-गरम उदर तथा गुल्मके स्थानमें बांधनेसे वात और गुल्म रोगका नाश होता है। इसी तरह यवागुको वायुग्रन्थि पर बाँधना अथवा हवा करना लाभदायक है। मनके चञ्चल होनेपर प्रलयकालीन महाशैलकी भावना करनी चाहिये ॥ ५१–५५ ॥ वाक्शक्तिकालोप हो जानेपर वाक्य धारणा और श्रवणशक्तिका विनाश होनेपर तृषातुर व्यक्ति जिस प्रकार रसनेन्द्रियके लिये आम्रफलके लाभकी इच्छा करता है, उस प्रकार श्रवणेन्द्रियकी धारणा करनी चाहिये। इस प्रकार देहमें जो जो व्याधि हों, उनका नाश करनेके लिये देहके लिये उपकारक भावना करनी चाहिये। उष्णतामें शीतलताकी भावना और शीतमें उष्णताकी भावना उपकारक है। सिरहानेकी ओर एक कील गाड़ कर उसपर एक काठ रखकर दूसरे काठसे उस काठको ठोकनेसे लुप्त स्मृति योगाभ्यासी पुरुषमें उसी क्षण स्मृतिशक्तिका पुनरुदय हो जाता है। अथवा स्मृतिशक्तिका लोप होनेपर आकाश, पृथ्वी, वायु और

अग्निकी भावना करनी चाहिये । अमानुषसत्वके कारण उत्पन्न हुए विघ्नोंकी चिकित्सा इसी प्रकार कही गयी है । योगाभ्यासीके हृदयमें अमानुषसत्वका प्रवेश होनेपर वायु और अग्निकी भावना करनेसे वह दग्ध हो जाता है ॥ ५६-६० ॥ हे नृपते ! इस प्रकार सब भाँति शरीरकी रक्षा करना योगवेत्ता व्यक्तिको उचित है । क्योंकि शरीर ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस चतुर्वर्गके साधनका मूल है । प्रवृत्तिस्वरूप वर्णन और विस्मय इन दो कारणोंसे योगीका विज्ञान विलयको प्राप्त होता है । अतः प्रवृत्ति समूहको गुप्त रखना चाहिये । अचाञ्चल्य, नीरोगिता, अनिष्ठुरता, देहमें सुगन्धिसञ्चार मूत्र और विष्ठाकी अल्पता, कान्ति, प्रसाद और सुस्वर, ये सब योगप्रवृत्तिके प्रथम चिह्न हैं । जिस अवस्थामें लोग अनुरक्त होकर पीठ पीछे गुणकीर्तन करें और कोई जीव भय न करे, वही सिद्धिकी उत्तम अवस्था जाननी चाहिये । अत्युग्र शीत और उष्ण जिसे सता न सकें और किसीसे जो न डरे, उसीको सिद्धिलाभ हुआ है ऐसा जानना चाहिये ॥ ६१-६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका जड़ोपाख्यानान्तर्गत योगाध्याय नामक उनचालिसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

चालीसवाँ अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा—आत्म साक्षात्कार होने पर योगियोंको जो उपसर्ग होते हैं, उनको संक्षेपमें कहता हूं, सुनो । उस समय नाना प्रकारकी काम्य क्रियाओंकी और मानवोचित भोग्य पदार्थोंके उपभोगकी इच्छा होने लगती है । स्त्री, दानफल, विद्या, माया, कूप्य, धन, स्वर्ग, अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नाना प्रकारके रसायन, वायुमें उड़ाण, यज्ञ, जल, और अग्निमें प्रवेश, समस्त श्राद्ध और दान समूहका फल तथा नियमादिके सम्बन्धमें योगीके हृदयमें वासनाका उदय होता है । उपवास, पूर्तादि कर्म, देवतार्चन आदि कर्मोंसे उपसृष्ट होनेकी वह वाञ्छा करने लगता है । यदि योगीकी मनोवृत्ति इस तरहकी हो जाय, तो उस ओरसे चित्तको हटानेका उसे प्रयत्न करना चाहिये । इस प्रकार चित्तको हटा देनेसे योगीका उपसर्गसे छुटकारा हो जाता है ॥ १—५ ॥ इन उपसर्गोंको जीत लेने पर भी फिर सात्विक, राजसिक और तामसिक भेदसे अन्यान्य उपसर्ग योगीको आ घेरते हैं । उसमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त ये पाँच प्रकारके उपसर्ग योगमें विघ्न डालनेके लिये भयंकररूपसे आविर्भूत होते हैं । जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ, समस्त काव्यशास्त्रार्थ, यावतीय विद्याएं और शिल्प शास्त्र योगीके चित्तमें प्रतिभात होते हैं, उसको

'प्रातिभ' कहते हैं। जिसके द्वारा यावतीय शब्दोंका अर्थ बोधगम्य हो जाता है और हजारों कोसोंका शब्द सुनायी देने लगता है, उसे 'श्रावण' कहते हैं। जिसके द्वारा मूर्तिमान् देवताके समान बनकर योगी उन्मत्तकी तरह आठों दिशाओंका अवलोकन करने लगता है, विद्वान् पुरुष उसे 'दैव' उपसर्ग कहते हैं ॥ ६—१० ॥ समस्त आचारोंके भ्रष्ट हो जानेसे जो दोष उत्पन्न होता है, उस दोषसे योगीका मन निरालम्ब होकर जब चक्कर खाने लगता है, तब उस उपसर्गको भ्रम कहते हैं। और जिसके प्रभावसे ज्ञानावर्त जलावर्तकी तरह आकुल होकर चित्तको नष्ट कर देता है, उसको 'आवर्त' कहते हैं। योगिगण इन सब घोरतर उपसर्गोंके प्रभावसे योगपरिभ्रष्ट होकर फिर फिर संसारचक्रमें घूमने लगते हैं। अतः मनोमय शुभ्र कम्बलमें अपनेको लपेट कर मनको एक मात्र परब्रह्ममें लगाकर उसीका निरन्तर ध्यान करते रहना योगियोंको उचित है। योगी पुरुष निरन्तर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर भूर्भुवादि सात प्रकारकी सूक्ष्म ,धारणाको मस्तिष्कमें दृढ़ करे ॥ ११—१५ ॥ वह धरित्रीको धारण करे; इससे उसे उसका सुख प्राप्त होगा। वह आत्माकी धरित्रीके रूपमें भावना करे, तो धरित्रीके बन्धनको तोड़नेमें समर्थ हो जायगा। इसी तरह जलमें सूक्ष्म रस, तेजमें रूप, वायुमें स्पर्श और आकाश सूक्ष्म प्रवृत्ति तथा शब्दकी धारणा करके उनका परित्याग कर देना चाहिये। जब मनके द्वारा सब भूतोंके मनमें प्रवृष्ट होकर मानसी धारणा की जायगी, तभी सूक्ष्म मनकी उत्पत्ति होगी। इसी तरह योगी पुरुष यावतीय भूतोंकी बुद्धिमें आविष्ट होकर अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धिको प्राप्त कर उसको त्याग देता है। हे अलर्क! जो योगी इन सात प्रकारके सूक्ष्म-भावोंसे सम्पूर्णरूपसे परिचित होकर उनका परित्याग कर देता है, उसे फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ता ॥ १६—२१ ॥ आत्मज्ञानी पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाओंकी सूक्ष्मता-को बार बार दृष्टि गोचर करके और फिर फिर सिद्धियोंका विसर्जन करके परमा गतिको प्राप्ति करते हैं। हे महीपते! योगी जिस जिस भूतके प्रति अनुरक्त होगा, उसी उसी भूतमें उसकी आसक्ति बढ़कर वह नाशको प्राप्त होता है। जो देही परस्पर संयुक्त भूतोंको जानकर उनका त्याग करनेमें समर्थ होता है, वही परम पदको प्राप्त कर सकता है। हे पार्थिव! इन सात प्रकारकी धारणाओंका अभ्यास कर भूतादिमें अनुरक्त न होनेसे ही सद्भावज्ञ व्यक्ति मुक्त हो जाता है। हे राजन्! गन्धादिमें आसक्ति होनेसे योगनाश हो जाता है। और साधकको पुनः संसार चक्रमें चक्कर लगाना पड़ता है। हे नरेश्वर! योगी पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाओंका अतिक्रमण कर यदि देह विसर्जन करना चाहे, तो वह उन उन सूक्ष्म भूतोंमें लयको प्राप्त होता है और देवता, दानव, गन्धर्व, पन्नग और राक्षस, इनके शरीरोंमें विलीन हो जाता है। वह किसीमें आसक्त नहीं होता ॥ २२—२८ ॥

हे नर श्रेष्ठ ! वही अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व, वशित्व और कामावसायित्व इन आठ प्रकारके निर्वाणप्रद ईश्वरीय गुणोंका अधिकारी होता है। जिसके द्वारा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम हो सके, उसका नाम अणिमा है। जिसके द्वारा क्षिप्रकारित्वका उदय हो, अर्थात् इच्छा करते ही जो चाहे सो कार्य सिद्ध हो जाय, उसको लघिमा कहते हैं। जिसके द्वारा योगी सब किसीका पूजनीय हो जाय, वह महिमा है। जिसके द्वारा सब अभिलाषाओंकी पूर्ति हो, वह प्राप्ति कहाती है। जिसके द्वारा व्यापकताकी शक्ति प्राप्त हो, वह प्राकाम्य है। जिसके प्रभावसे योगी सबका अधीश्वर हो जाय, वह ईशित्व है और जिसके प्रभावसे सबको अपने वशमें कर लिया जाय, उसको वशित्व सिद्धि कहते हैं। यह वशित्व ही योगीका सातवाँ गुण कहा गया है। जिसके द्वारा स्वेच्छानुसार जहाँ चाहे, वहाँ गमन किया जाय और अपनी इच्छाके अनुसार सभी कार्य साध लिये जा सकें, उसको कामावसायिता कहते हैं। वस्तुतः योगी पुरुष इन आठ गुणोंके प्रभावसे ईश्वरकी तरह सब कार्योंको सम्पन्न करनेमें समर्थ हो जाता है ॥ २९-३३ ॥ हे राजन् ! ये सब गुण मुक्तिको सूचित करते हैं; अर्थात् इन गुणोंके प्रकाशित होनेसे ही जान लेना चाहिये कि, योगी शीघ्र ही मुक्त हो जायगा। उसके निर्वाणपद लाभका समय आ गया है। उसे फिर जन्म ग्रहण करना नहीं पड़ेगा। वह न बढ़ेगा, न घटेगा, न नष्ट होगा और न उसका कोई परिणाम (रूपान्तर) ही होगा। वह कभी भूतादिकोंसे छिन्न, भिन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नहीं होगा। शब्दादि उसे कदापि अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सकेंगे। शब्दादि विषयोंके साथ उसका कोई सम्बन्ध ही नहीं रहेगा। वह शब्दादिका भोक्ता नहीं होगा। उसका उनसे संस्पर्श भी नहीं होगा। हे महीपते ! जिस प्रकार अन्य धातु मिश्रित एक सोनेके टुकड़ेको आगमें शुद्धकर लेने पर अर्थात् उसमें जो अन्य धातु है, उसे जला डालने पर शेष विशुद्ध सोना दूसरे विशुद्ध सोनेके टुकड़ेमें सहज ही मिला देनेसे एक रूप हो जाता है, उसी प्रकार योग वह्निके द्वारा राग द्वेषादि दोषोंको दग्ध कर देनेपर योगी भी परब्रह्ममें भली भाँति मिलकर समरस हो जाता है ॥ ३४—३८ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार अग्निमें अग्नि मिला देनेसे दोनों अग्नि एक रूप हो जाते हैं, उनमें प्रभेद नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार दोषसमूहके दग्ध होने पर योगी जब एकबार ब्रह्मसे संयुक्त हो जाता है, तो फिर उसे पृथक् भावका भोग नहीं करना पड़ता। पानीमें पानी मिला देनेसे दोनों पानियोंका जैसा समानत्व हो जाता है, योगीका आत्मा भी वैसा ही परमात्मामें मिलकर साम्यको प्राप्त करता है ॥ ३९-४१ ॥

इस प्रकार मारकण्डेय महा पुराणका योगसिद्धि नामक चालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

———

इकतालीसवाँ अध्याय ।

अलर्कने कहा,—हे भगवन् ! मैं योगीकी उस चर्या (दैनिक कार्यों अथवा अवस्थाओं) को जानना चाहता हूं, जिससे ब्रह्मपथका अनुसरण करते हुए वह अवसादको प्राप्त नहीं होता। दत्तात्रेयने कहा,—मान और अपमान, ये ही दो मनुष्योंको प्रसन्न और उद्विग्न करनेवाले होते हैं। योगीके लिये यदि ये दोनों विपरीतभावमें परिणत हो जायँ, तो सिद्धिप्रद हो जाते हैं। मान और अपमान, विष और अमृत कहे गये हैं। इनमें अपमान अमृत और मान विषम विषस्वरूप है। योगी आँखोंसे भलीभाँति देखकर भूमिपर पैर रक्खे, कपड़ेसे छानकर जल पीये, सदा सत्यसे पवित्र हुआ वचन कहे और बुद्धिके द्वारा विवेचना करके सत्‌विचार करे। योगवेत्ता पुरुष आतिथ्य (मेहमानदारी); श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सवमें कभी कहीं भी सम्मलित न हो और सिद्धिके लिये महाजनके पास कदापि न जावे ॥ १–५ ॥ जब गृहस्थोंके घरका चूल्हा शान्त कर दिया जाय, घर निर्धूम हो जाय और गृहस्थ भोजन करके निश्चिन्त हो जायं, उसी समय प्रतिदिन योगी उनके यहाँ भिक्षाके लिये गमन करे। जिससे लोग परिभूत और अपमानित करें, ऐसे कार्य करते हुए योगी आनन्दसे विचरे; परन्तु इस बातका ध्यान रक्खे कि, साधुजनोचित आचारसमूह दूषित न हों। गृहस्थों और उच्चवर्णीयोंके घर ही भिक्षा करना प्रशस्त है। गृहस्थोंके घर भिक्षा करना श्रेष्ठ माना गया है। जो गृहस्थ लज्जावान, श्रद्धावान्, दान्त, श्रोत्रिय, महात्मा हैं और जो दूषित अथवा पतित नहीं हैं, उन्हींके घर यति (योगी) को भिक्षा करनी चाहिये। नीच वर्णके लोगोंके घरकी भिक्षा जघन्य (निन्दनीय) कही गयी है ॥ ६–१० ॥ यवागु, मट्ठा, दूध, यावक, फल, मूल, प्रियङ्गु, कण, पिन्याक और सत्तू ही योगी भिक्षामें ग्रहण करे। ये ही वस्तुएँ उसके लिये कल्याणकारक और सिद्धिदायक कही गयी हैं। अतः पहिले समाहित और भक्तियुक्त होकर इन्हीं वस्तुओंका उपयोग करना चाहिये। योगी भोजनके पूर्व मौनावलम्बन पूर्वक आचमन कर और "प्राणाय स्वाहा" कह कर प्रथम ग्रास लेवे। योगीकी यह प्रथम आहुति कही गयी है। अनन्तर क्रमशः "अपानाय स्वाहा" कह कर द्वितीय आहुति, "समानाय स्वाहा" कह कर तृतीय आहुति, "उदानाय स्वाहा" कह कर चतुर्थ आहुति और "व्यानाय स्वाहा" कह कर पाँचवी आहुति जठराग्निके लिये देवे। इसके पश्चात् प्राणायामसे पृथक् करके स्वेच्छानुसार शेष भोजन समाप्त करे। भोजन समाप्त हो जानेपर फिर आचमन कर हृदयको

स्पर्श करना चाहिये ॥ ११-१५ ॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ और अहिंसा, योगियोंके लिये ये पाँच परम व्रत और अक्रोध, गुरुशुश्रुषा, शौच, अल्पाहार और प्रतिदिन वेदाध्ययन, ये पाँच उत्तम नियम कहे गये हैं। सारगर्भित और कार्यसिद्धि करनेवाले ज्ञानकी ही आलोचना करना योगीको उचित है, क्योंकि बहुविध ज्ञानविषयोंकी चर्चा करनेसे योगमें विघ्न होना बहुत सम्भव है। जो योगी "यह जानना है, वह जानना है" कहता हुआ प्यासे चित्तसे भटकता फिरता है, उसको सहस्रों कल्पोंतक ज्ञेय वस्तुका ज्ञान हो नहीं सकता। सर्वसङ्कपरित्याग कर, जितक्रोध, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर, बुद्धिकी सहायतासे दसों इन्द्रियोंके द्वार बन्दकर मनको ध्यानमें लगा देना चाहिये ॥ १६-२० ॥ निर्जन स्थान, गुहा अथवा अरण्यमें निवास करते हुए नित्ययुक्त होकर निरन्तर उत्तम विधान पूर्वक ध्यानमें निमग्न रहना योगीको उचित है। वाग्दण्ड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड, ये तीन दण्ड जिसके वशमें हैं, उसीको त्रिदण्डी अथवा महामति कहते हैं। जो इस सदसदात्मक और गुणागुणमय दृश्यमान जगत्को आत्ममय समझते हैं, हे राजन्! उनके लिये कोई व्यक्ति प्यारा नहीं और कोई अप्रिय भी नहीं है। जिनकी बुद्धि विशुद्ध हो गयी है, जिनके लिये पत्थर और सोना बराबर है और जो समस्त भूतोंमें समाहित होकर सर्वत्र एकमात्र सर्वाधार, शाश्वत, अव्यय ब्रह्मको ही देखते हैं; उन्हें पुनर्जन्म ग्रहण नहीं करना पड़ता। संसारमें अशेष वेद श्रेष्ठ हैं और उनमें भी यज्ञक्रियायें श्रेष्ठ हैं। यज्ञकी अपेक्षा जप, जपकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गकी अपेक्षा निःसङ्ग और रागविहीन होकर ध्यान करना श्रेष्ठ है। ध्यानयोगके सध जानेसे शाश्वत ब्रह्मकी उपलब्धि होती है।

टीका:—योगका साधारण स्वरूप पहिले कह चुके हैं। सब योगोंका जो सार है, वह भी पूर्वावस्थामें कहा गया है। तदनन्तर सबसे पहिले योगविघ्नका दिग्दर्शन किया गया है। योगीको योगमार्गमें अग्रसर होते होते उस मार्गमें जो विपत्तियोंकी प्राप्ति होती है, वे ही योगविघ्न कहाते हैं। जीव स्वभावतः दृष्ट और अनुश्रवित विषयोंकी सेवा जन्मजन्मान्तरमें करता हुआ साधन तथा भगवत्कृपाके बलसे योगमार्गमें अग्रसर होने लगता है। वहाँ भी उसको दृष्ट और अनुश्रवित विषय नहीं छोड़ते। उस समय उस शुभ मार्गमें उसको अपने आप जो उच्च विषयभोगकी तृप्तिके उपयोगी दैवी शक्ति प्राप्त होती है, उसीका नाम सिद्धि है। सिद्धियाँ अनेक प्रकारकी होनेपर भी उनको अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं। मन्त्र, औषधि आदि आधिभौतिकके उदाहरण हैं। अणिमा, लघिमा आदि अधिदैवके उदाहरण हैं। और बौद्धिक सिद्धि यथा,—वेदाविर्भाव और शास्त्रप्रकाशन आदिकी शक्ति अध्यात्म कहाती है। इन शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तिविशेषका सब प्रकारकी सिद्धियोंसे सम्बन्ध है। यदि योगी योगमार्गमें चलता हुआ इनमेंसे किसीमें फँस जाय, तो उसका पतन अवश्यसम्भावी है। क्योंकि विषयमात्र ही आत्मानुसन्धानका विरोधी है। परन्तु योगियोंमें जब ये दैवी शक्तियाँ प्रकाशित होती हैं, तो उनकी इच्छा न रहने पर भी कुलकामिनीके अङ्गदर्शनकी तरह कभी कभी वे शक्तियाँ लोगोंको

जो महात्मा समाहित, ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य, पवित्र, एकान्तके अनुरागी और नियतेन्द्रिय होकर इस ध्यानयोगको साध लेते हैं, उनके आत्माका आत्माके साथ संयोग होकर उनको मुक्ति प्राप्त होती है ॥ २१-२६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका योगिचर्या नामक इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

ब्यालीसवां अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा,—इस प्रकार जो योगी उत्तम विधानसे योगयुक्त हो जाते हैं, उन्हें कोई सैकड़ों जन्मान्तरोंमें भी अपने पदसे हटा नहीं सकता । जो विश्वरूप हैं, जो विश्वके ईश्वर हैं, जो विश्वभावन हैं, विश्व ही जिनके पाद हैं, विश्व ही जिनकी ग्रीवा और विश्व ही जिनका मस्तक है, योगी उस परमात्माका साक्षात्कार कर उसे पानेके लिए ॐ इस एकाक्षर मन्त्रका जप किया करते हैं। वही उनका अध्ययन होता है और उसी ॐ कारके स्वरूपका वे श्रवण किया करते हैं। अकार, उकार और मकार ये ही तीन अक्षर ॐ कारकी सात्विक, राजसिक और तामसिक तीन मात्राएँ हैं। इनके अतिरिक्त ॐ कारकी और भी आधी मात्रा है, जो सात्विकादि गुणोंसे अतीत और उर्द्ध्वमें अवस्थित है तथा उसे

दिखायी दे जाती हैं। जैसे,—कुल कामिनी परपुरुषको अङ्ग नहीं दिखा सकती। यदि दिखावे, तो वह व्यभिचारिणी कहावेगी। परन्तु दैवात् कभी अपने पिता, पुत्र आदि अथवा अतिथि आदिकी सेवा, भोजनपानादि अर्पण करते हुए वायु आदिके झकोरेसे परपुरुषको उसका अङ्ग दर्शन हो जाता है, इसी प्रकार यदि पूर्ण वैराग्ययुक्त योगीकी सिद्धियाँ उसकी अनिच्छासे दैवात् प्रकाशित हो जाँय, तो दूसरी बात है; नहीं तो सिद्धिकी ओर दृष्टि पड़ते ही उसका पतन अवश्य होगा। इस कारण पहिले सिद्धिके विषयमें योगीको सावधान करके योगीको सहायकारी आचारोंका वर्णन किया गया है। मन्त्रयोगी, हठयोगी और जपयोगी तीनोंके लिये ऊपर लिखे आचारसमूह परम सहायक हैं। योगभूमिमें चढ़नेकी आठ सीढ़ियाँ हैं। जिसका भली भाँति वर्णन पूज्यपाद महर्षि पतञ्जलिजीने योगदर्शनमें किया है। उसमेंसे वहिरिन्द्रियनिग्रहरूपी यम और अन्तरिन्द्रियनिग्रहरूपी नियम, स्थूल शरीरपर आधिपत्यस्थापनरूपी आसन और प्राणक्रियापर आधिपत्य करनेवाली क्रियाको प्राणायाम कहते हैं। ये चारो क्रियाएँ बहिरंगकी हैं। बाहरसे भीतरको पहुंचनेकी क्रियाका नाम प्रत्याहार, भीतरमें ही ठहरनेकी क्रियाका नाम धारणा, आत्माको लक्ष्यमें रखनेका नाम ध्यान और जीवात्मा तथा परमात्माका एकीकरण करनेका नाम समाधि है। इसीको यहाँ योगशब्दवाच्य कहकर वर्णन किया है। यही अष्टम सोपानरूपी समाधि ही राजयोगका साध्य विषय है। आचारवान् योगी क्रमशः चाहे किसी योग-मार्गमें चलता हो, अन्तमें उसको इसी अष्टम सोपानमें जाकर पहुंचना होता है ॥ २१-२६ ॥

योगी ही जान पाते हैं। गान्धार स्वरसे सम्बन्ध युक्त होनेसे उसे गान्धारी कहते हैं। इसकी गति पिपीलिकाके समान होती है, यह स्पर्शगुणवाली है और इसका प्रयोग करनेसे यह शिरोभागमें देख भी पड़ती है ॥ १-५ ॥ जिस प्रकार ॐ कारका प्रयोग करनेसे उसकी संवेदना शिरोभागमें होती है, उसी प्रकार योगी अक्षर अक्षरमें ॐ कारमय हो जाता है। प्रणव धनुष स्वरूप है, आत्मा बाण स्वरूप है और ब्रह्म लक्ष्यस्वरूप है। प्रमादहीन होकर शरसन्धान करनेसे योगी बाणके समान तन्मय हो जाता है। ॐकार ही वेदत्रय, लोकत्रय, अग्नित्रय, ब्रह्मा, विष्णु, महेश और ऋक्, यजु तथा सामस्वरूप है। परमार्थतः ॐ कारकी साढ़े तीन मात्राएँ हैं। इस ॐ कारसे संयुक्त होनेपर योगी उसीमें विलीन हो जाता है। अकार भूर्लोक, उकार भुवर्लोक और व्यञ्जन सहित मकार स्वर्लोक माना गया है ॥ ६-१० ॥ उसकी प्रथम मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता, तीसरी चिच्छक्ति और चौथी अर्धमात्रा परम-पद कही गयी है। इसी क्रमसे योगभूमियोंको भी जानना चाहिये। ॐ के उच्चारणमात्रसे सभी सदसत्का ग्रहण हो जाता है। पहिली मात्रा ह्रस्व, दूसरी दीर्घ और तीसरी प्लुत है; परन्तु चौथी अर्धमात्रा वाणीके द्वारा उच्चरित नहीं हो सकती। इस प्रकार जो योगी ॐ कार संज्ञक अक्षर स्वरूप परब्रह्मको जानकर उसका ध्यान करते हैं, वे संसारचक्रसे

टीका:—सब मन्त्रोंमें ॐकारकी महिमा सर्वोपरि है। सब स्थलोंमें, सब मनुष्यजातियोंमें, सब शास्त्रोंमें ईश्वरके नाम जो जो कहे गये हैं, सबसे ॐकारका वाच्यवाचकसम्बन्ध ईश्वरसे सर्वोपरि है। इसका प्रधान कारण यह है कि, चाहे निर्गुण ब्रह्म हो, चाहे सगुण ब्रह्म ईश्वर हो, वाच्यरूप ईश्वरका वाचकरूप यथार्थ नाम प्रणवके सिवा और कोई हो नहीं सकता। क्योंकि प्रणव स्वाभाविक है। सृष्टिकर्ता और सृष्टिद्रष्टा ईश्वरके साथ प्रणवका साक्षात् सम्बन्ध है। जहां कोई कार्य है, वहां अवश्य कम्पन होगा, और जहां कम्पन है, वहां शब्द होना स्वाभाविक है। चाहे सूक्ष्मसे सूक्ष्म कार्य हो, वहां भी कम्पन है और शब्द है। सृष्टि एक कार्य है। उसमें कम्पन अवश्य है। आदि सृष्टिसे, सृष्टिकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवस्थासे,—जो शब्द प्रकट होता है, वही प्रणव है। वह सप्तस्वरका बीज है; परन्तु उसमें गन्धार प्रतिफलित होता है। जब सृष्टि नहीं थी और ब्रह्मशक्ति अव्यक्तावस्थामें थी, वहां कोई शब्द भी नहीं था। जब प्रकृति व्यक्त हुई, तो साथ ही साथ उसके तीन गुण भी प्रकट हुए। त्रिगुण-मयी प्रकृतिमें जब प्रथम हिल्लोल हुआ, तो तीनों गुण एक साथ हिले; उस अवस्थासे प्रणवका सम्बन्ध है। प्रणवमें तीनों गुणोंका अस्तित्व है। परन्तु जैसे ब्रह्म प्रकृति त्रिगुणमयी है, वैसे ही ब्रह्मवाचक प्रणव भी त्रिगुणात्मक है। इस अवस्थाके बाद गुणोंका विकार उत्पन्न होता है और सृष्टि आगे चलती है। अतः ब्रह्म ब्रह्मप्रकृति और प्रकृतिके त्रिगुणकी प्रथमावस्था इन सबके साथ प्रणवका साक्षात् और मिश्र सम्बन्ध रहनेके कारण प्रणवके साथ ब्रह्मशक्ति और ब्रह्मका एक रस सम्बन्ध है। यही कारण है कि, प्रणवसे बढ़कर ईश्वरका और कोई नाम नहीं हो सकता। पूज्यपाद योगिराज महर्षि पतञ्जलिजीने कहा है कि, ईश्वरका वाचक प्रणव है। उसका जप और उसकी अर्थभावना द्वारा ईश्वरकी प्राप्ति होती है। अर्थात् आत्मासे स्वानुभव प्राप्तिका यह बड़ा उपाय है। योगी प्रणवका यदि रहस्य समझकर सच्चे प्रकारसे उसका जप

छूटकर और बन्धनत्रयसे पार होकर परमब्रह्म परमात्मामें लयको प्राप्त होते हैं। यदि उनके कर्मबन्धनका क्षय न हुआ हो, तो अरिष्टके द्वारा मृत्युको जानकर उत्क्रान्ति (देहान्तर) के समयमें सब कुछ स्मरण रखकर पुनः योगित्वको प्राप्त करते हैं। अतः चाहे सिद्ध योगी हो अथवा असिद्ध योगी हो, उसे योगके द्वारा सदा अपने अरिष्टोंको जान लेना चाहिये ; जिससे उसे देहावसानके समय खिन्न नहीं होना पड़ता ॥ ११-१७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका योगधर्मान्तर्गत ॐकारस्वरूप कथन नामक ब्यालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

तैंतालीसवाँ अध्याय ।

दत्तात्रेयने कहा—हे महीपते ! अब तुमसे समस्त अरिष्टोंका विवरण कहता हूँ, सुनो। योगिगण इन अरिष्टोंको देखकर अपनी मृत्युका हाल जान लेते हैं। जो लोग देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, सोम, अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको देख नहीं पाते, एक सालमें ही वे मृत्युमुखमें जा पहुँचते हैं। जो सूर्यबिम्बको किरणविहीन और अग्निको अंशुमाली (सूर्य) की तरह देखने लगे, वह ग्यारह माससे अधिक जी नहीं सकता। जो स्वप्नमें मूत्र, विष्ठा अथवा कै (वमन) के बीच सोना अथवा चाँदी देखे, वह दस मासमें ही कालका ग्रास बन जाता है। जो प्रेत और पिशाचादि, गन्धर्वनगर अथवा सोनेके रंगका वृक्ष देखे, उसकी नौ मासमें मृत्यु अवश्य होगी ॥ १-५ ॥ जो व्यक्ति स्थूल होकर कृश हो जाय और पुनः कृश होकर अकस्मात स्थूल हो जाय, उसकी आयु केवल आठमास बच

कर सके, तो अवश्य ही वह योगिराज आत्माका अनुभव प्राप्त करके ब्रह्मीभूत हो जायगा। उसीका गुरुलक्ष्यगम्य उपाय यहां कहा गया है कि, प्रणवको धनु बनावे, आत्माको शर बनावे और ब्रह्मको लक्ष्य बनावे। फिर अप्रमत्त (अतिसावधान) होकर लक्ष्यको वेध करता हुआ ब्रह्मीभूत हो जाय। प्रणव क्या है ? इसको पूर्वकथित विज्ञानसे अनुभव करके प्रथम दशामें वर्णात्मक प्रणव, दूसरी दशामें ध्वन्यात्मक प्रणव, जो अक्षरोंमें लिखा नहीं जा सकता, ऐसे ध्वन्यात्मक मन्त्रको जपकर सिद्धि प्राप्त करे। तदनन्तर अन्तःकरणमें वाक्यातीत प्रणवकी धारणा करके उसका धनु बनावे। उस धनुमें जीवात्माका यथार्थ स्वरूप समझकर उसकी धारणासे उसे शरके स्थानमें स्थापित करे और जब जीवकी उपाधिको ऐसा भूल जाय, जैसा कि, बाणका चलानेवाला सब भूलकर केवल शरकी नोक और लक्ष्यमें ही तन्मय हो जाता है, उसी प्रकार योगी अपनेको, जगत्को और जीवोपाधिको भूलकर जीवकी चेतनता और ब्रह्मकी चेतनताको एक समझ ले, तो ऐसे प्रणवसाधन द्वारा योगी अवश्य ही निर्वाण मुक्तिको प्राप्त कर लेता है ॥ १—१७ ॥

गयी है, ऐसा जानना चाहिये। इसके बाद ही उसका शरीर छूट जायगा। धूल अथवा कीचड़में पैर रखनेसे उसकी छापमें पार्ष्णि (पैरका अग्रभाग) जिसका खण्डित देख पड़े, वह सात माससे अधिक जीवित नहीं रह सकता। गिद्ध, परेवा, काकोल, कौवा अथवा और कोई नीले रङ्गका मांस भक्षण करनेवाला पक्षी उड़कर जिसके मस्तक पर आ बैठे, उसकी छः मासमें ही मृत्यु हो जायगी। जिसे कौवोंकी झुण्ड अथवा धूलिवर्षणासे आघात प्राप्त हो, और अपने शरीरकी छाया उलटी देख पड़े, वह चार या पाँच मास ही जीता रहेगा। विना मेघके जो दक्षिण दिशाको बिजलीकी चमकसे प्रकाशमान देखे और सायं-कालमें इन्द्रधनुषका अवलोकन करे, वह दो या तीन मास ही जीयेगा ॥ ६–१० ॥ घी, तेल, आइना अथवा जलमें देखनेपर जिसे अपनी मूर्ति देख न पड़े, अथवा अपने देहको बिना मस्तकके देखे, वह एक माससे अधिक जी नहीं सकता। हे नृपते ! जिसके शरीरसे मुर्देकी तरह दुर्गन्ध निकलना आरम्भ हो जाय, वह योगी पन्द्रह दिनसे अधिक नहीं जियेगा। स्नान करते ही जिसका हृदय और पैर सूख जायँ और पानी पीते ही फिर प्याससे गला सूखने लगे, वह दस ही दिन जी सकेगा। वायुके छितर जानेसे जिसके मर्मस्थान दुखने लगें और जलस्पर्श करते ही रोंगटे खड़े न हों, उसका मृत्युकाल निकट है, ऐसा जानना चाहिये। जो स्वप्नमें भालू अथवा बन्दरोंकी सवारीपर चढ़कर अपनेको दक्षिण दिशाकी ओर जाते हुए देखे, उसका मृत्युकाल बहुत निकट आ गया है, ऐसा जानना चाहिये ॥ ११–१५ ॥ स्वप्नमें जो यह देखे कि, लाल-काला वस्त्र धारण की हुई स्त्री हँसती गाती हुई उसे दक्षिण दिशाकी ओर ले जा रही है, वह अतीशीघ्र मृत्युमुखमें चला जायगा। स्वप्नमें जो महाबली और नंगे क्षपणकको अकेले हँसते हँसते जाता हुआ देख ले, उसका मृत्युकाल निकट आगया है, ऐसा जानना चाहिये। जो स्वप्नमें अपने शरीरको कीचड़की दलदलमें फँसा हुआ देखे, उसकी सद्योमृत्यु होगी। स्वप्नमें केश, अङ्गार, भस्म, सर्प और सूखी नदी जिसके दृष्टिगोचर हो, दस दिनके बाद ग्यारहवें दिन उसकी अवश्य मृत्यु होगी। स्वप्नमें जो यह देखे कि, कराल, विकटाकार, कालाभुशुण्ड पुरुष सशस्त्र आकर उसपर पत्थर बरसा रहा है, उसकी शीघ्र ही मृत्यु होगी ॥ १६–२० ॥ सूर्योदयके समयमें सामने, पीछे अथवा चारों ओर सियार भागते हुए जो देख ले, उसकी तुरन्त मृत्यु हो जायगी। भोजनसे उठते ही जो पुनः क्षुधासे व्याकुल हो जाय और दाँतसे दाँत रगड़ने लगे, उसकी परमायु समाप्त हो गयी है, इसमें संदेह नहीं। बुझे हुए दीपककी दुर्गन्धि जिसे प्रतीत नहीं होती, जो दिनमें और रात्रिमें भयभीत हो जाता है और जिसे दूसरोंके नेत्रोंकी तारकाओंमें अपनी मूर्ति नहीं देख पड़ती, उसका जीवन समाप्त हो गया है, ऐसा जानना चाहिये। यदि अर्धरात्रिमें इन्द्रधनु और दिनमें तारागण देख पड़े, तो आत्मज्ञानी व्यक्तिको

जान लेना चाहिए कि, उसकी आयु समाप्त हो गयी है। जिसकी नाक टेढ़ी हो गयी हो, जिसके कान नतोन्नत (नीचे ऊँचे) हो गये हों और जिसकी बायीं आँखसे सदा पानी बहता हो, उसकी परमायु शेष हुई जानना चाहिये ॥ २१-२५ ॥ मुख तो लाल रहे, परन्तु जीभ काली पड़ जाय, तो बुद्धिमान् पुरुष समझ ले कि, उसकी मृत्यु निकट है। स्वप्नमें जो व्यक्ति ऊँट और गदहेकी सवारीपर चढ़कर अपनेको दक्षिण दिशाकी ओर जाता हुआ देखे, उसकी शीघ्र मृत्यु होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। कानोंको मूँदकर अपना शब्द न सुन सके और जिसके नेत्रोंकी ज्योति लुप्त हो गयी हो, वह अविलम्बेन जीवनको त्याग देता है। जो स्वप्नमें देखे कि, वह दलदलमें फँसा है और उससे बाहर निकलनेका उसे कोई मार्ग नहीं सूझ पड़ता तथा उठनेमें भी असमर्थ हो रहा है, उसकी परमायु हो गयी है, ऐसा जानना चाहिये। जिसकी दृष्टि ऊपरकी ओर चढ़ी हुई हो, आँखें लाल हो गयी हों, चञ्चलताके साथ इधर उधर घूरता हो, मुख पसीनेसे भरा हो और नाभिरन्ध्र विस्तृत हो गया हो, उसे इस देहको छोड़कर शीघ्र ही अन्य देहका परिग्रह करना होगा ॥ २६-३० ॥ जो स्वप्नमें देखे कि, वह अग्नि अथवा जलमें गिर गया है और उससे बाहर निकलनेमें असमर्थ हो गया है, उसका जानो कि, जीवन शेष हो गया है। जिसे दिनमें या रातमें भूतगण धर दबावें, निःसन्देह सात दिनके भीतर उसकी मृत्यु हो जायगी। जो अपने शुभ्र और स्वच्छ वस्त्रको लाल या काला देखे, उसका मृत्युकाल आसन्न है, ऐसा जानना चाहिये। जिसका स्वभाव विपरीत हो जाय अथवा जिसकी प्रकृति बदल जाय, यम और अन्तक उसके निकट आ जाते हैं। विचक्षण पुरुषोंको निश्चित रूपसे जान लेना चाहिये कि, जिसका अन्त समय समीप आ जाता है, वह संसारमें जो पूज्यतम व्यक्ति हैं अथवा जिनके सामने सदा विनीत भावसे रहना चाहिये, उन महानुभावोंका अपमान और निन्दा करने लगता है, देवताओंकी पूजा-अर्चा करनेसे विमुख हो जाता है, वृद्धों और ब्राह्मणोंकी भर्त्सना करता है, माता पिताका सत्कार और जामाताओंका आदर नहीं करता और योगी, ज्ञानी तथा अन्यान्य महात्माओंकी अवमानना करनेको उद्यत हो जाता है ॥ ३१-३७ ॥ हे महाराज! योगियोंको यत्नपूर्वक जान रखना चाहिये कि, उक्त समस्त अरिष्ट संवत्सरके अन्तमें दिन अथवा रातमें फल प्रदान करते हैं। वे इन सब भीषणतम फलोंकी ओर भली-भाँति दृष्टि रक्खें। ये सब फल सहजमें ही जाने जा सकते हैं। हे नरेश्वर! इन सब फलोंको अच्छी तरहसे जानकर उनके आगमनकालको सदा ध्यानमें रखना चाहिये। इस प्रकार योगी अपना अन्तिम समय जब जान ले, तब सम्पूर्ण रूपसे निर्भय स्थानका आश्रयकर योगाभ्यासमें निरत हो जाय। अरिष्टोंकी सूचना मिलते ही योगी मृत्युका भय छोड़कर और उस अरिष्टके स्वभावकी पर्यालोचना कर जिस समय अरिष्टके फलोदय

की सम्भावना हो, दिवसके उसी भागमें योगमें निमग्न हो जाय। उस दिनके पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, रात्रिकाल अथवा जिस समय अरिष्टकी सूचना मिली हो, उसी समयमें योगीको योगमें प्रवृत्त होना उचित है। जबतक वह (मृत्युका) दिन न आजाय, तबतक इसी तरह योगक्रियाका आचरण करना चाहिये ॥ ३८—४३ ॥ योगी उस समय आत्मवान् होकर भय-का त्याग कर दे और कालको जीत ले। फिर अपने निवासस्थानमें किंवा जिस किसी स्थानमें मनको स्थिरता प्राप्त हो, उस स्थानमें रहकर, तीनों गुणोंको वशमें करके योगयुक्त होकर ऐकान्तिक चित्तसे आत्माको परमात्मामें मिला दे और अन्तमें चिद्वृत्तिका भी विसर्जन कर दे। ऐसा करनेसे योगी इन्द्रियातीत, बुद्धिके अगोचर और वाणीसे परे परम निर्वाण पदको प्राप्त कर सकेंगे। हे अलर्क! मैंने यथार्थरूपसे यह सब तुमसे कहा है। अब जिस उपायसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, वह संक्षेपसे कहता हूं, सावधान होकर सुनो। चन्द्र-किरणोंके संयोगसे चन्द्रकान्त मणिसे जल निःसृत होता है, चन्द्र किरणोंका संयोग हुए विना जल-निःसरण कदापि नहीं होता। यही योगीकी योगसिद्धिका उपाय है। अर्थात् योगमें मनको अभिनिविष्ट किये विना योगीके हृदयमें आनन्दरसका सञ्चार हो नहीं सकता, योगमें मनको लगानेसे ही उस आनन्दकी उपलब्धि होती है ॥ ४४—४८ ॥ सूर्यकिरणोंके संयोगसे ही सूर्यकान्तमणिके द्वारा अग्निका प्रादुर्भाव होता है, विना सूर्यकिरणोंका संयोग हुए नहीं होता। योगीकी योगसिद्धिके सम्बन्धमें यह दूसरा दृष्टान्त है। अर्थात् योगी जबतक योगयुक्त न होगा, तबतक वह कदापि ब्रह्मसाक्षात्कार करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। चिउंटी, चूहा, नेउला, छिपकिली और कपिञ्जल (परेवा) ये सब गृहस्वामीकी तरह घरमें रहते हैं। घरका ध्वंस होनेपर वे अन्य स्थानमें चले जाते हैं। उस घरके स्वामीकी मृत्यु होनेसे उन्हें कोई दुःख नहीं होता। हे राजेन्द्र! योगसिद्धिके सम्बन्धमें घरका यह तीसरा दृष्टान्त है। दीमक एक छोटासा जन्तु है; परन्तु वह अपने सूक्ष्म मुखसे मिट्टीके कण एकत्र करके ढेरके ढेर बना देता है। योगियोंके लिये यह उपदेश ग्रहण करने योग्य बात है। ४९—५२ ॥ पशु, पक्षी, मनुष्य आदि फल, पुष्प और पत्तोंसे युक्त वृक्षका विनाश कर देते हैं। यह देखकर, भी योगी सिद्धि लाभ करते हैं। रुरु नामक मृगके बच्चेके सींग एक तिलकके समान होते हैं; परन्तु बच्चेके साथही साथ वे सींग भी बढ़ने लगते हैं। यह देखकर भी योगी सिद्धिको प्राप्त करता है। द्रवपूर्ण पात्रको प्राप्तकर जब योगी पृथ्वीसे बहुत ऊंचा उठ जाता है और वहांसे जब अपने तुङ्ग अङ्गको देखता है, तब उसके लिये जानने योग्य क्या रह जाता है? अपने जीवनके लिये सर्वस्वका त्याग करनेकी जो मनुष्यकी चेष्टा होती है, उसे यथार्थ रूपसे जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है। जहाँ अपना निवास हो, वही घर है, जिससे प्राण धारण किया जाय, वही भोज्य है और जिससे अर्थ

प्राप्ति हो, वही सुख समझा जाता है। इसमें ममता करनेका प्रयोजन ही क्या है? जिस प्रकार साधनोंके द्वारा अभ्यर्थित साध्य साधा जाता है, उसी प्रकार योगीको भी बुद्धि आदिको परायी जानकर ब्रह्मकी साधना करनी चाहिये ॥ ५३-५८ ॥ जड़ने कहा,—अनन्तर महीपति अलर्क विनयावनत होकर अत्रितनय दत्तात्रेयको प्रणाम कर आनन्दपूर्वक कहने लगा कि, हे ब्रह्मन्! मेरे सौभाग्यसे ही शत्रुके द्वारा मेरा पराभव होकर इस प्रकारके अत्यन्त उग्रजीवन सन्देहकारी भयका मुझमें सञ्चार हुआ। यह भी सौभाग्यकी बात है कि, मेरे अपार बल (सैन्य), सम्पत्ति और पराक्रमका गर्व काशिराजके द्वारा खर्व हुआ। इसीसे मैं यहाँ आकर आपके सत्सङ्गका लाभ उठा सका। मेरे सौभाग्यसे ही मैं क्षीणबल हुआ, मेरे सौभाग्यसे ही मेरे भृत्यगण मारे गये और मेरे सौभाग्यसे ही मेरा ख़ज़ाना ख़ाली हुआ और मुझमें भयका सञ्चार हुआ। सौभाग्यसे ही आपके दोनों चरणोंका मुझे स्मरण हुआ। सौभाग्यसे ही आपके अमृतमय उपदेशोंको मेरे हृदयमें स्थान मिला और सौभाग्यसे ही आपके समागमका लाभ होकर मुझमें ज्ञानका उदय हुआ है। हे ब्रह्मन्! मेरे सौभाग्यसे ही आपने मुझपर दया दिखायी है। मनुष्यका भाग्य खुलनेपर अनर्थ भी उसके लिये अर्थके रूपमें परिणत हो जाते हैं। वर्तमान भीषण विपत्तिने आपसे मुझे मिलाकर मेरा उपकार ही किया है ॥ ५९-६५ ॥ हे प्रभो! हे योगीश्वर! जिनको दबानेके लिये मैं आपके पास आया, वे सुबाहु और काशिराज दोनों मेरे परम उपकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं है। आपके प्रसादरूपी अग्निके द्वारा मेरा अज्ञानरूपी पाप जलकर ख़ाक हो गया है। जिससे फिर ऐसा दुःख प्राप्त न हो, अब ऐसा ही आचरण करनेका मैं

टीकाः—यद्यपि इस अध्यायमें जो अरिष्टकथन किया गया है, वह केवल योगियोंके ही उपयोगी नहीं है; किन्तु सभी बुद्धिमान् व्यक्तियोंके उपयोगी है। परन्तु जब अभ्युदय और निःश्रेयसप्राप्ति दोनों ही धर्मका लक्ष्य है, तो अर्थ और कामके त्यागी होकर चाहे वह अभ्युदय, चाहे निःश्रेयस दोनोंके लिये या दोनोंमेंसे एकके लिये साधनमें जो प्रवृत्त हों; ऐसे साधक-मात्रको साधारण रूपसे योगी कह सकते हैं। क्योंकि योगसाधनके भेद अनेक हैं। संसारके वियोगका भय अर्थात् मृत्युका भय जैसा मनुष्यमात्रके लिये आत्यन्तिक भय समझा जाता है, वैसी ही लोकान्तरगमनकी सन्धि योगीके लिये बहुतही आवश्यकीय तथा सावधान होनेका समय माना जाता है। अतः सर्वसाधारणको चेतावनी देने और अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके पथमें चलनेवाले योगियोंको सावधान करनेके अभिप्रायसे यह अरिष्टकथन किया गया है। हमारे पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने मनुष्योंके कल्याणार्थ ऐसा कोई शास्त्र नहीं है, जिसका विस्तारसे अथवा बीजरूपसे आविष्कार न किया हो। आत्मानुसन्धान तथा आत्मज्ञानप्राप्तिके लिये वेदाविर्भावके अतिरिक्त नाना दर्शनशास्त्रों और पुराणान्तर्गत गीता आदि शास्त्रोंका प्रणयन उनके द्वारा इस प्रकारसे हुआ है कि, इस मृत्युलोकमें वैसा अन्यके द्वारा हो ही नहीं सकता। इसी कारण भारतवर्ष जगद्गुरु कहाता है। इसके अतिरिक्त लोककल्याणार्थ आयुर्वेद शास्त्र, ज्योतिःशास्त्र, अर्थशास्त्र, स्थापत्य शास्त्र, नीतिशास्त्र, उद्भिज्ज-स्वेदजादि नाना जीवशास्त्र, अङ्कशास्त्रके नाना भेद जो आजकल जगत्में प्रचलित हैं, रसायन शास्त्रके

प्रयत्न करता रहूंगा। हे ब्रह्मन्! आप ज्ञानदाता और महात्मा हैं। आपकी अनुमति मिलनेपर मैं गार्हस्थ्याश्रमका परित्याग करदूंगा यह आश्रम दुःखरूपी वृक्षोंके घने जंगलके समान है। दत्तात्रेयने कहा,—हे राजेन्द्र! अब तुम जाओ, तुम्हारा मङ्गल होगा। मैंने जो तुम्हें उपदेश दिया है, मुक्ति प्राप्त करनेके लिये निर्मम और अहंकाररहित होकर उसके अनुसार तुम आचरण करो ॥६६-६६॥ जड़ने कहा,—दत्तात्रेयके इसप्रकार कहनेपर अलर्कने उन्हें प्रणाम किया और वह शीघ्रही अपने बड़े भाई सुबाहु और काशिराजके निकट उपस्थित हुआ। आलर्क महाबाहु काशिराजके निकट और सुबाहुके सम्मुख उपस्थित होकर हँसते हुए बोला, हे काशिराज! क्या आप राज्य लाभकी इच्छा कर रहे हैं? तो लो, इस समृद्धिशाली साम्राज्यका उपभोग करो, या सुबाहुको यह दे डालो अथवा जैसी आपकी इच्छा हो, वैसा करो। काशिराजने कहा,—हे अलर्क! तुम विना युद्ध किये ही राज्यत्याग क्यों कर रहे हो? यह क्षत्रियधर्म नहीं है और तुम तो क्षत्रियधर्मविशारद हो। राजन्यगण अमात्योंको जीतकर और मरणभयको छोड़कर शत्रुको लक्ष्यकर उसपर बाणोंकी वर्षा करते हैं। वे शत्रुओंको हराकर सिद्धिके लिये और अभीप्सित अत्युत्तम भोगोंका उपभोग करनेके लिये बड़े बड़े यज्ञोंका अनुष्ठान करते हैं ॥७०-७५॥ अलर्कने कहा, हे वीर! मेरी पहिले इसी प्रकारकी वासना थी और मेरे मनकी भी ऐसी ही धारणा थी। अब मेरा भाव इससे ठीक विपरीत हो गया है इसका कारण सुनिये। मनुष्यमात्रका सङ्ग जिस प्रकार भौतिक है, उसी प्रकार उसका अन्तःकरण और गुणसमूह भी पञ्चमहाभूतोंकी एक समष्टि मात्र है। हे भूपते! केवल

मौलिक सिद्धान्त जो आजकल जगत्में प्रचलित हैं, इन सब लौकिक शास्त्रोंका आविष्कार उन्होंने अपनी योगशक्तिके द्वारा किया है। आदिमें बिना योगशक्तिके ज्योतिषादि शास्त्रोंका आविष्कार कदापि नहीं हो सकता। पीछेसे दृग्गणित द्वारा उसकी उन्नति की जा सकती है, परन्तु आदि अवस्थामें ग्रह, नक्षत्र और उनकी सूक्ष्म क्रियाओंका आविष्कार करना विना योगशक्ति हो नहीं सकता। इसी प्रकार आयुर्वेदशास्त्र और रसायनआदि शास्त्रोंका विज्ञान भी समझना उचित है। जगद्गुरु, त्रिकालदर्शी महर्षियोंने योगयुक्त बुद्धिसे जैसा इन लौकिक शास्त्रोंका आविष्कार किया है, वैसे ही पारलौकिक शास्त्रोंका भी किया है। मन्त्रयोगशास्त्र और मन्त्रकी विभिन्न शक्तियोंकी व्यवस्थाप्रणाली, हठयोग शास्त्र और उसकी विभिन्न साधनप्रणाली, जो अभी तक पश्चिमी साइन्टिस्ट समझ ही नहीं सकते, लययोगकी सूक्ष्म साधनप्रणाली, राजयोगकी लोकातीत विचारप्रणाली स्वरोदयशास्त्रकी सूक्ष्मता और अरिष्टशास्त्रका चमत्कार, ये सब आजकलके पदार्थवादियोंकी बुद्धिको चकित करनेवाले हैं। अरिष्टशास्त्रका विज्ञान बहुत ही रहस्यपूर्ण है। वैदिक दर्शनशास्त्र द्वारा यह सिद्धान्त अच्छी तरह प्रमाणित हो चुका है कि, ब्रह्माण्ड और मनुष्यपिण्ड दोनों समष्टि और व्यष्टि सम्बन्धसे एक ही है। जो वृहत् रूपसे शक्ति ब्रह्माण्डमें है, वही शक्ति बीजरूपसे पिण्डमें भी विद्यमान है। यही कारण है कि, ग्रह, उपग्रह आदिकी जो क्रिया ब्रह्माण्डमें होती है, उसकी प्रतिक्रिया मनुष्यपिण्डमें भी होती है। पौर्णिमातिथिके प्रभावसे समुद्रमें चन्द्रकी शक्तिके द्वारा जो उफान आता है, उसकी क्रिया मनुष्य पिण्डमें भी अनुभूत होती है। इसको

विच्छक्तिस्वरूप ब्रह्महो सत्य है। उसके सिवा और कुछ भी सत्य नहीं है। जिसे यह ज्ञान हो गया हो, वह शत्रु-मित्र, स्वामी-सेवक आदिकी कल्पना कैसे कर सकता है? हे राजन्! मैं आपके भयसे अत्यन्त दुःखित होकर दत्तात्रयकी शरणमें गया और उन्हींकी कृपासे इस समय ज्ञान प्राप्त कर चुका हूं। अब जितेन्द्रिय होकर भलीभांति सर्वसङ्ग परित्याग कर मनको परब्रह्ममें लगा दूंगा। ब्रह्मको जीत लेनेपर सबकुछ जीत लिया जा सकता है। जिस एकमात्र ब्रह्मके बिना और कुछ भी विद्यमान नहीं है, उसीको साधनेका यत्न करना उचित है। जितेन्द्रिय होनेसे ही सिद्धि प्राप्त की जा सकती है। हे राजन्! न मैं आपका शत्रु हूँ और न आप मेरे शत्रु हैं। सुबाहुने मेरा कुछ भी अपकार नहीं किया है, यह मैं अब बहुत अच्छी तरह जान गया हूं। अतः अब आप किसी अन्य शत्रुको ढूंढ़िये। अलर्कके इस प्रकार कहनेपर राजा सुबाहु अत्यन्त हर्षसे उठ खड़ा हुआ और "मेरा परम सौभाग्य है" कहकर उसने अपने छोटे भाई अलर्कका अभिनन्दन किया। फिर वह काशिराजसे कहने लगा,—॥७६-८३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अरिष्टकथन नामक तैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

आजकलके पदार्थवादी पण्डित भी मानने लगे हैं। इसी उदाहरणसे और सब विषय भी समझने योग्य हैं। सूक्ष्म राज्यमें भी यही क्रिया विद्यमान है। एक मनसे दूसरे मनपर प्रभाव डालना दूसरे मनकी बात जान लेना, दूसरेको मूर्छित या अधीन करना, ये सब क्रियाएं आजकलके पदार्थवादी भी दिखा रहे हैं। हमारे पूज्यपाद महर्षियोंने तो प्राणमय कोष और मनोमय कोषकी क्रिया, श्राद्धकर्म और उपासना कर्म आदिके द्वारा लोकलोकान्तरमें पहुंचानेका दृढ़ नियम बना दिया है। इन सब दृष्टान्तोंसे यह सिद्ध होता है कि, समष्टि और व्यष्टि रूपसे स्थूल जगत् और सूक्ष्म जगत् दोनों ही एक सम्बन्धसे युक्त होकर ब्रह्माण्ड और पिण्डमें व्याप्त है। ऐसी दशामें कर्मकी क्रिया और प्रतिक्रियाका भी प्रभाव समष्टि और व्यष्टि पर होना स्वतःसिद्ध है। इसी समष्टि अथवा व्यष्टि प्रारब्धके तारतम्यानुसार जैसा फल होना सम्भव है, वैसा फलकी उत्पत्तिका पूर्वलक्षण प्रकाशित होना भी सम्भव है। काक, पक्षी, सियार आदिके द्वारा शकुन होना, छींक, शरीर स्फुरण आदिके द्वारा भविष्यत् इंगित होना भी इसी दृढ़ विज्ञानसे सम्बन्ध रखता है। इसी मौलिक कर्मविज्ञानके अनुसार ही स्वप्नदर्शन तथा नाना प्रकारके अरिष्ट दर्शनके द्वारा भविष्यव सम्बन्धी फलाफल निर्णयमें सहायता मिलती है। पूर्वकथित अरिष्टसमूहके जो लक्षण कहे गये हैं, वे योगयुक्त आचार्योंने योगविद्याकी सहायतासे देखकर निर्णय किये हैं॥ १—८३॥

चवालीसवाँ अध्याय।

—— ०*० ——

सुबाहुने कहा,—हे नृपशार्दूल! जिसके लिये मैंने आपकी शरण ग्रहण की थी, वह मुझे सभी प्राप्त हो गया है। अब मैं जाऊंगा। आप सुखी रहें। काशिराजने पूछा,—हे सुबाहो! आप किस लिये यहां आये थे? और कौनसा प्रयोजन आपका सिद्ध हुआ है; वह कहिये। मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है। अलर्कने आपके बाप दादाके विशाल राज्यको आक्रान्त कर लिया था, आपने मुझे प्रेरित किया कि, उसे जीत-कर राज्य आपको देदूं। तब मैंने आपके छोटे भाईपर आक्रमण कर राज्य आपको सौंप दिया। आप उसका अपने कुलकी रीतिके अनुसार उपभोग करें॥ १—४॥ सुबाहुने कहा,—हे काशीराज, जिसलिये मैंने यह उद्यम किया और आपसे भी कराया, उसे आप सुनें। मेरा यह भाई तत्त्वज्ञानी होता हुआ भी क्षुद्र सुख भोगमें लवलीन था और मेरे दो बड़े भाई अपढ़ होते हुएभी ज्ञानी हैं। शैशव कालमें मेरी माने जिस प्रकार मेरे और दोनों बड़े भाइयोंके मुहंमें दूध डाला था, वैसेही कानोंमें ज्ञानभी डाल दिया। मनुष्यको जिन पदार्थोंका जानना उचित है, हे राजन्! माताने वे सब हम तीनों भाइयोंको बता दिये, किन्तु अलर्कको नहीं बताये। जिस प्रकार एकसाथ जाने वालोंमें एकके पीड़ित होनेपर अन्य सभी साधुओंको दुःख होता है, वैसेही अलर्कको देखकर हम लोगोंको दुःख होता था। भाई गृहस्थीके मोहमें फंसकर कष्ट पारहा था। हे नरेश्वर, इस देहके साथ भाईकी कल्पना की जाती है। इस लिये यह निश्चय कर कि, इसे दुःखसे वैराग्यकी भावना होगी, मैं उद्योगके लिये आपके आश्रयमें आया। उससेही इसे दुःख, दुःखसे वैराग्य और फिर ज्ञान उत्पन्न हुआ है। काम पूरा होगया, आपका कल्याण हो। मैं जाता हूं॥ ५-१२॥ हे पार्थिव! यह अलर्क मदालसाके गर्भमें रहकर उसका दूध पीकर अन्य स्त्रियोंके लड़कों की चाल न चले, यही सब सोचकर आपका आश्रय ग्रहण किया। मेरा सब काम अब पूरा होगया है। अब मैं फिर सिद्धिके लिये जाऊंगा। जो मनुष्य स्वजन, बन्धु और मित्रोंको कष्टमें पड़ा हुआ देखकर उपेक्षा करता है, मैं उसे विकलेन्द्रिय मानता हूं। हे नरेन्द्र! मित्र, स्वजन, और बन्धुओंके समर्थ रहते हुए यदि कोई मनुष्य कष्ट पाता है, तो वेही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे च्युत होते हैं; वे मनुष्य नहीं हैं। हे राजन्! यह महान् कार्य मैंने आपके ही संगसे किया है। अब मैं जाता हूं। हे सत्तम! आपका कल्याण हो, आप ज्ञानके भागी हों। काशिराजने कहाः—हे साधु! अलर्कका आपने बड़ा भारी उपकार किया है। किन्तु मेरे उपकारमें आप मन क्यों नहीं लगाते? सज्जनोंका संग फल देनेवाला होता है, वह निष्फल कभी नहीं होता। इस लिये आपके संगसे मेरी उन्नति

होना ही उचित है ॥ १३—१९ ॥ सुबाहुने कहा,—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये ही चार पुरुषार्थ कहलाते हैं। उनमें धर्म, अर्थ और काम आपको प्राप्त हैं, केवल मोक्षका अभाव है। यह विषय आपसे संक्षेपमें कहता हूं; एकाग्रचित्त होकर सुनिये। हे राजन्! मुझसे वह सुनकर और अच्छीतरह विचारकर अपने कल्याणके लिये प्रयत्न कीजिये। हे राजन् "यह मैं हूं" "यह मेरा है" ऐसी ममता और अहंकारके वशीभूत आप न हों। धर्मका ही विवेचन करें, क्योंकि धर्मके अभावमें आश्रयहीन होना पड़ता है। मनमें भली भांति विवेचना कर यह जानना चाहिये कि, "मैं किसका हूं?" ब्राह्म मुहुर्तमें उठकर भीतर और बाहर अपनी आत्माको देखिये। जो अव्यक्तसे लेकर प्रकृति पर्यन्त व्याप्त है, विकारसे शून्य है, अचेतन है और जो कहीं व्यक्त और कहीं अव्यक्त है, उसे आपको जानना चाहिये। फिर जाननेवाला कौन है, 'ज्ञेय क्या है' और 'मैं कौन हूं' यह समझिये। यह सब जाननेपर सभी विज्ञात हो जायगा। देहादि अनात्म वस्तुको आत्मा समझना और जो अपना नहीं है, उसीको अपना समझना यही मूर्खता है। वही मैं, लौकिक व्यवहारसे सर्वगत हूं। हे भूप! जिस विषयकी आपने जिज्ञासा की थी, वह सब मैंने कह दिया। अब मैं जाता हूं ॥ २०–२६ ॥ इसप्रकार काशिराजसे कहकर बुद्धिमान् सुबाहु चला गया और काशिराज भी अलर्कको सम्मानित कर, अपने नगरको गये। अलर्कने भी अपने ज्येष्ठ पुत्रको राज्याभिषेक कर सब सुखोंको छोड़कर सिद्धिके लिये बनको प्रस्थान किया। इसके बहुत दिनोंके बाद निर्द्वंद्व और निष्परिग्रह होकर और अतुल योगकी सम्पत्ति पाकर उसने परम निर्वाण-पदवी प्राप्त की। वह देखने लगा कि, देव, दानव और मनुष्योंके सहित यह समस्त जगत् गुणमय पाशोंसे बँधा हुआ नित्य ही मारा जा रहा है। लड़के, भतीजे, अपने-परायेसे ही यह पाश तैयार हुआ है। यह भिन्न भिन्न देख पड़नेवाला जगत् उसी पाशमें बंधा हुआ है। दुःखसे दीन हो रहा है और अज्ञानके महान पंकमें डूबा हुआ है, जिससे उद्धारका कोई उपाय नहीं। महामति अलर्कने अपनेको देखा कि, मैं गर्तको पार कर चुका हूं। तब उसने यह गाथा गायी कि, "मैंने पहले राज्योपभोग किया

टीकाः—यह गाथा आर्य सभ्यता और वर्णाश्रमसदाचारके महत्त्वसे पूर्ण है। इस कारण इसके विज्ञानकी समालोचना करना आवश्यक है। अनादिसिद्ध आर्यसभ्यतामें नारीजातिको कैसा उच्च स्थान दिया गया है, उसका आदर्श महारानी मदालसाके चरित्रमें भलीभांति प्रतिफलित हुआ है। वेदों और शास्त्रोंका यथार्थ रहस्य न समझकर जो लोग वर्णाश्रम सदाचारपर वृथा दोषारोप करते हैं, यह कहते हैं कि, आर्यजातिकी सभ्यतामें नारीजातिपर अन्याय किया गया है, उनको यह मानना चाहिये कि, यह उनका भ्रम है। नारी जातिको आर्यसभ्यतामें ऐसा उच्च स्थान दिया गया है कि, पृथिवीकी अन्य जातिमें न होगा, न हो सकता है। आर्यसभ्यताकी मौलिक भित्ति नारीजातिकी पवित्रता, उसके सतीत्वकी तपस्याकी पराकाष्ठा, उसके सदाचार और उसकी ज्ञानगरिमापर निर्भर है, जैसा कि, इस चरित्रमें दिग्दर्शन कराया गया है। आर्यसभ्यता किस प्रकार काम और अर्थको गौण मानती है और धर्ममूलक काम और

यह बड़े दुःखकी बात है! मुझे पीछे ज्ञात हुआ कि, योगकी अपेक्षा और कहीं अधिक सुख नहीं है ॥२७-३३॥ जड़ने कहा,—हे तात! मुक्तिके लिये तुम इस उत्तम योगका अनुष्ठान करो। इससे उस ब्रह्मको पाओगे, जिसके पानेपर फिर शोक नहीं करना पड़ेगा। फिर मैं भी जाऊंगा। मुझे यज्ञ और जपसे क्या प्रयोजन है? कृतकृत्य पुरुषके कार्य केवल ब्रह्म प्राप्तिके लिये ही होते हैं। अतएव मैं आपकी आज्ञा लेकर, निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह हो, जिससे निर्वाण लाभ होता है, उस मुक्तिके लिये प्रयत्न करूंगा। पक्षियोंने कहा,—हे द्विज! परम बुद्धिमान् जड़ने पितासे ऐसा कहकर और उनसे आज्ञा प्राप्त कर निष्परिग्रह व्रत धारण कर वहांसे प्रस्थान किया। उसके महामति पिताने भी क्रमशः वानप्रस्थाश्रम ग्रहण कर चतुर्थ (संन्यस्त) आश्रममें प्रवेश किया। चतुर्थाश्रम ग्रहण करने पर पिता अपने पुत्र (जड़) से मिला और गुणादि बन्धनोंसे छुटकारा पाकर उस समय उसे जो विशुद्ध बुद्धि प्राप्त हुई, उसके द्वारा उसने उत्तम सिद्धिको प्राप्त कर लिया। हे ब्रह्मन्! आपने मुझसे जो प्रश्न किये थे, उनका मैंने विस्तारपूर्वक उत्तर दे दिया है। अब आप क्या सुनना चाहते हैं, वह कहिये ॥ ३४-४० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पिता-पुत्र-संवादात्मक जपोपाख्यान नामक चवालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

अर्थका सेवन करनाही उपादेय समझती है और कैसे धर्म और मोक्षको प्रधान मानती है, यदि इस चरित्रमें दिखाया गया है। धर्मका सर्वथा प्राधान्य रहनेपर भी मोक्षको किस प्रकार इस जातिके क्षत्रिय और ब्राह्मण और यहां तक कि; तपस्वनी नारी जातितक कैसे प्रधान लक्ष्य रूपसे मानते आये हैं, और उनके प्रत्येक आचारमें अध्यात्म लक्ष्यकी कैसी प्रधानता रक्खी गयी है, वह इन चरित्रोंसे प्रमाणित होता है। गृहस्थ मात्रका पितृपूजा कैसा कर्तव्य कर्म है और पितृयज्ञ श्राद्धादि द्वारा मनुष्यका कर्म कैसे सुसम्पन्न होता है और श्राद्धोंमें कैसे उच्च विचार और कैसे आचार रखने चाहिये, यह विषय भी इन चरित्रोंमें विषद कर दिया गया है। इस क्षुद्र मृत्युलोकसे प्रेतलोक, नरकलोक और स्वर्गलोक आदि कितने विस्तृत हैं, देवताओं की कृपा और शक्तिपर यह मृत्युलोक कितना निर्भर करता है, सभ्य जातिमात्रको दैवी जगत्पर कैसा विश्वास रखना चाहिये, ये सब असाधारण विषय इन गाथाओंमें गाये गये हैं। वर्णधर्म और आश्रमधर्मके आचार समूहोंके माननेपर अपने आप कैसी दैवी सहायता होती है और अन्तमें आत्मज्ञान प्राप्त होकर वह व्यक्ति कैसे कृतकृत्य होता है, उसका दिग्दर्शन इसमें कराया गया है। आत्मज्ञान और मुक्ति प्राप्तिके लिये विषयोंसे मुंह फेरनेकी कैसी आवश्यकता है और विषयोंमें रहकर भी उन्नत सभ्य पुरुष या स्त्री किस प्रकार विषयकी कालिमासे अलग रह सकते हैं, वह भी इन चरित्रोंमें सुन्दर रूपसे बता दिया गया है। आध्यात्मिक उन्नतिके विषयमें योगकी प्रधानता, आत्माके स्वरूपको लक्ष्य करनेमें प्रथम दृश्यप्रपञ्चसे पुरुषकी स्वतन्त्रता और निर्लिप्तता कैसे अनुभव करने योग्य है, अविद्याके प्रभावसे उत्पन्न चिज्जडग्रन्थिरूपी जीवत्वसे कैसे आत्मज्ञानी व्यक्ति मुक्त हो सकता है और अविद्याकी ग्रन्थि, अस्मिताकी ग्रन्थि, रागद्वेषकी ग्रन्थि, और अभिनिवेशकी ग्रन्थिसे अपनेको छुड़ाकर किस प्रकार मायाके फन्देसे आत्मज्ञानी व्यक्ति अपनेको बचा सकता है और इस प्रकार प्रकृतिके राज्यमें रहता हुआ भी कैसे प्रकृतिसे अतीत रह सकता है, इन सब चिन्ताओंका बीज इन गाथाओंमें वर्णित है ॥१-४०॥

पैंतालीसवां अध्याय ।

जैमिनिने कहा,—हे द्विजश्रेष्ठो ! वैदिक कर्म दो प्रकारके कहे गये हैं। यथा,—प्रवृत्तिकर्म और निवृत्तिकर्म। इसी विषयको आप मुझे समझाइये। अहो ! पिताके प्रसादसे ही आपने ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त किया है। इस ज्ञानके बलसे ही तिर्यक योनि प्राप्त होने पर भी आपका मोह छूट गया है। अब भी आपका मन सिद्धिलाभके लिये पहिलेकी तरह प्रवृत्त है। अतः आप धन्य हैं। विषयजनित मोह आपके मनको विचलित नहीं कर पाता। सौभाग्यसे ही महामति भगवान् मार्कण्डेयने आपके इतिवृत्तका वर्णन किया था, आप सब किसीके सन्देहोंको दूर कर सकते हैं। जो इस संकटमय संसारमें चक्कर काट रहे हैं, उनके भाग्यमें आप जैसे तपस्वियोंसे मिलना बहुत कम बदा रहता है ॥ १—५ ॥ आप ज्ञानदर्शी हैं। आपका सत्सङ्ग पाकर यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हुआ, तो अन्यत्र कहीं उसके सिद्ध होनेकी सम्भावना नहीं है। प्रवृत्ति और निवृत्ति-सम्बन्धी ज्ञान और कर्मकी विशुद्ध बुद्धि जैसी आपको प्राप्त हुई है, मेरी समझमें वैसी बुद्धि और किसीको प्राप्त नहीं हुई है। हे द्विजश्रेष्ठो ! यदि मुझपर अनुग्रह करनेकी आपकी इच्छा हो, तो मैंने जो जिज्ञासा की है, उसका विस्तारपूर्वक विवेचन कीजिये। आप यह बताइये कि, इस स्थावर-जङ्गमात्मक जगत्की सृष्टि कैसे हुई है ? प्रलयके समयमें इसका विलय कैसे हो जाता है ? एक ही वंशसे देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिककी उत्पत्ति कैसे होती है ? मन्वन्तर कैसे आविर्भूत होते हैं ? इसके अतिरिक्त वंशसमूहका आनुपूर्विक विवरण, अनेक सृष्टियोंकी उत्पत्ति और उनका प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरोंकी स्थिति, पृथ्वीका संस्थान और परिमाण, गिरि, शैल, सरिता और वनोंका विवरण, भूलोक स्वर्ग-लोक और पाताललोकका वृत्तान्त, सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र आदि ज्योतिष्कोंकी गति, इन सबकी प्रलय पर्यन्तकी बातें जाननेकी मेरी इच्छा है। यह भी सुननेकी मेरी इच्छा है कि, यह सब संसार जब प्रलयको प्राप्त होता है, तो अवशिष्ट क्या रह जाता है ? ॥ ६—१४ ॥

पक्षियोंने कहा,—हे महर्षे ! आपने हमसे अतुलनीय प्रश्न पूछे हैं। हम इनका विस्तार-पूर्वक उत्तर देते हैं, आप सुनिये। मार्कण्डेयने यह सब विषय व्रतस्नात, शान्तशील, बुद्धिमान् ब्राह्मणपुत्र क्रौष्टुकिसे कहा था। वही हम आपको सुना देते हैं, आप श्रवण करें। हे प्रभो ! आपने हमसे जो जिज्ञासा की है, वही जिज्ञासा क्रौष्टुकिने ब्राह्मणोंद्वारा उपासित महात्मा मार्कण्डेयसे की थी। आज हम उन्हें आपको बताते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ ! तब भृगुनन्दनने प्रसन्न चित्तसे जो उसे कहा था, वही हम, जो

जगत्कारण, पद्मयोनि पितामहके रूपमें इस विश्वकी सृष्टि करते हैं, विष्णुके रूपमें स्थिति करते हैं और प्रलयकालमें रुद्रके रूपमें इस सबका संहार कर डालते हैं, उन जगन्नाथको प्रणामकर आपके निकट विस्तारपूर्वक कथन करते हैं, आप श्रवण कीजिये ॥ १५-१९ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—पूर्वकालमें अव्यक्तयोनि-ब्रह्माके उत्पन्न होते ही उनके चारों मुखोंसे वेदों और पुराणोंका आविर्भाव हुआ। ऋषियोंने उन पुराणोंकी संहिताको विविध अंशोंमें और वेदोंको सहस्रों विभागोंमें विभक्त किया। उस महात्माके उपदेशोंके बिना धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ईश्वर भाव, इन चारोंकी सिद्धि होना सम्भव नहीं है। उसके मनसे सप्तर्षियोंका आविर्भाव हुआ। उन मानस ऋषियोंने सब वेदोंको ग्रहण किया और उसीके मनसे उत्पन्न हुए अन्यान्य आद्य ऋषियोंने पुराणोंको अपनाया। च्यवनने भृगुके निकट पुराणोंका अध्ययन कर अन्याय ऋषियोंमें उनका प्रचार किया। महात्मा ऋषियोंने वे सब पुराण दक्षको सुनाये। दक्षने ही हमें पुराण प्रदान किये हैं। तबसे वे हमारे पास सुर-

---

टीकाः—सृष्टि प्रकरण अति गहन है। सृष्टिके आविर्भावका रहस्य समझ लेनेसे दृश्य प्रपञ्चका रहस्य समझनेका द्वार खुल जाता है। सनातनधर्मके वेदों और शास्त्रोंमें सृष्टिके चार मौलिक स्तर माने गये हैं। प्रथम ब्रह्मप्रकृति जब अव्यक्तसे व्यक्त हुई, उस समय जगन्नाथ अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड नायक, सगुण-ब्रह्मके ईक्षणसे जो सृष्टि हुई, वह प्रथम प्राकृतिक सृष्टि कहलाती है। वह प्रकृतिके स्वभावसे ही होती है। ब्रह्माण्ड गोलक, जीववास-उपयोगी लोक, पर्वत, समुद्र आदिकी सृष्टि तब होती है। परमाणुसञ्जात यह सृष्टि है। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी त्रिमूर्तिका आविर्भाव होता है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें यह त्रिमूर्ति ही सगुण ब्रह्मके प्रतिनिधि और ईश्वर रूप हैं। उस समय भगवान् ब्रह्माके द्वारा ब्राह्मी सृष्टि प्रारम्भ होती है, यह द्वितीय सृष्टि है। तदनन्तर ब्रह्माके मानस पुत्र प्रजापतियोंके द्वारा जो देव, मनुष्य, चतुर्विध भूत-सङ्घ आदिकी विस्तृत सृष्टि होती है, वह मानस सृष्टि कहाती है। वह तृतीय है। उसके अनन्तर जो मनुष्य तथा चतुर्विध भूतसङ्घमें स्त्रीपुरुषशृंगारजात जो सृष्टि होती है, वह वैजी अथवा मैथुनी सृष्टि कहाती है। यह चतुर्थ है। पदार्थवादी गण केवल प्राकृतिक सृष्टि और मैथुनी सृष्टिका ही कुछ अंश अनुभव करते हैं। ब्राह्मी सृष्टि और मानस सृष्टिका रहस्य अन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगियोंके सिवा कोई अनुभव करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। वेदोंका आविर्भाव ब्राह्मी सृष्टि और मानस सृष्टिके समयमें ही होता है। इस कारण वेदों और पुराणोंकी अलौकिकता साधारण बुद्धिगम्य नहीं है। शास्त्रोंमें पांच प्रकारकी पुस्तकें कही गयी हैं। यथाः—ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, विन्दु और अक्षर, ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद और विन्दु ये चार पुस्तकें चिरस्थायी होती हैं। केवल अक्षरमयी पुस्तक जो अक्षरोंमें लिखी जाती हैं, उनकी रचना होती है और नाश भी होता है। ब्रह्माण्डके अधीश्वर ब्रह्मा, विष्णु अथवा महेश इनकी प्रेरणासे पवित्र पिण्डमें जो प्रेरणा रूपसे उत्पन्न होती है उससे प्रकाशित पुस्तकें ब्रह्माण्ड पुस्तक कहाती हैं। कल्पकल्पान्तरमें प्रकाशित होनेवाली ज्ञानराशि जिन मन्त्रोंके द्वारा प्रकाशित होती है और जो मन्त्र ऋषियोंको ज्योंके त्यों सुनायी देते हैं, वे नादमयी पुस्तकें हैं। वेद नादमयी पुस्तक है। श्रुतियां किसीकी रचीहुई नहीं हैं। वे आदि सृष्टिमें ज्योंकी त्यों सुनायी देती हैं। ये दोनों पुस्तकें त्रिमूर्तिसे सम्बन्ध रखती है। प्रथममें भावरूपसे प्रेरणा होती है और दूसरीमें सब शब्द यथार्थ रूपसे ऋषियोंके अन्तःकरणमें सुनाई देते हैं। वेदके भावार्थको स्मरण करके नित्य ऋषियोंकी कृपासे शक्तिप्राप्त महापुरुष जो प्रथम

इनके प्रसादसे कलिकालमें पाप समूहोंका नाश हो जाता है ॥ २०-२५ ॥ हे मुने ! हे महाभाग ! पूर्वकालमें दक्षसे हमने जो कुछ सुना था, वह सब आपसे कहते हैं, आप सुनिये। जो जगत्‌के कारण हैं, जन्मरहित हैं, अव्यय हैं; जो चराचर जगत्‌के एकमात्र आश्रय और धाता हैं; जो परमपद स्वरूप हैं, जो सृष्टिस्थिति-प्रलयके कारण हैं, जो आदि पुरुष हैं, जो उपमा रहित हैं और जिनमें सब कुछ प्रतिष्ठित है, उन धीमान् हिरण्यगर्भको प्रणाम कर हम अनुत्तम प्रपञ्चके रहस्यका भली भाँति वर्णन करते हैं। महत्‌से लेकर विशेष पर्यंत सभी भौतिक सृष्टि विकारोंके लक्षणों-का पञ्चविध प्रमाणों और सत्स्रोतके सहित सिलसिलेवार हम वर्णन करेंगे। हे महा-भाग ! यह भूतसृष्टि पुरुषके द्वारा अधिष्ठित होनेके कारण नित्य होती हुई भी अनित्यकी तरह कैसी अवस्थित है, उसका भी हम वर्णन करेंगे, आप सावधान होकर सुनिये ॥ २६-३१ ॥ जो अव्यक्तके नामसे अभिहित हैं, जिसे महर्षिगण सदसदात्मिका, नित्यसूक्ष्मा, प्रकृति कहते हैं, जो नित्य, अक्षय, अजर और अपरिमेय है, जो किसीका आश्रय लिये विना ही अवस्थित है, जो गन्धविहीन, रूपविहीन, रसविहीन और शब्द-स्पर्शविहीन है; जो अनादि और अनन्त है; जो जगत्‌का उत्पत्तिस्थान है, जिससे तीनों गुण उत्पन्न हुए हैं, जो अविनाशी है, जो चिर विद्यमान और अविज्ञेय है और जो सभीका कारण है, वह प्रधान स्वरूप ब्रह्म ही सबसे पहिले विद्यमान रहता है और प्रलयके पश्चात् भी अखिल जगत्‌को सम्पूर्ण रूपसे परिव्याप्त कर स्थित रहता है। तीनों गुण परस्पर अनुकूल होकर अव्याहत रूपसे उसीमें अधिष्ठित रहते हैं। सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञके अधिष्ठानसे उन उन गुणोंके द्वारा सृष्टिकार्यका प्रारम्भ होनेपर प्रथम प्रधानतत्त्वका आविर्भाव होकर वह महत्तत्वको समाच्छन्न कर देता है। बीजको जिस प्रकार त्वचा आच्छन्न कर देती है, उसी प्रकार प्रधान भी महत्तत्वको आवृत कर लेता है। यह महत्तत्व तीन प्रकारका होता है।

प्रकाशित करते हैं, वह स्मृति कहाती है। यह बिन्दु पुस्तक है और नित्य ऋषियोंकी प्रेरणासे ज्ञान प्रकाशक जो पुस्तकें समय समयपर आविर्भूत होती हैं, वे पिण्ड पुस्तकें कहाती हैं। पिण्ड पुस्तकें दैवी और आसुरी दोनों प्रकारकी होती हैं। क्योंकि नित्य ऋषियोंका वास चतुर्दश भुवनोंमें ही है। बिन्दुपुस्तक और पिण्ड पुस्तक दोनोंका सम्बन्ध नित्य ऋषियोंसे है। ये चारों पुस्तकें अलौकिक हैं। और पांचवीं अक्षरमयी पुस्तक लौकिक और अलौकिक दोनों भावोंको धारण करनेवाली तथा नाशमान है। सृष्टिके आदि कालमें जैसे उस कल्पकी आवश्यकीय ज्ञानराशि श्रुतियोंके स्वरूपमें ऋषियोंके अन्तःकरणमें प्रका-शित होती है, उसी प्रकार पूर्व कल्पान्तरकी घटनावली पुराणरूपसे भावके द्वारा ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें आविर्भूत होते हैं। इसी कारण पुराणोंको भी नित्य कहा है। वेद शब्द और भाव दोनों प्रकारसे नित्य हैं और पुराणोंकी नित्यता केवल भावके द्वारा सिद्ध होती है। इसी कारण इस अध्यायमें वेदके साथ पुराणोंके आविर्भावका वर्णन किया गया है ॥ २०-२१ ॥

यथा,—सात्विक, राजसिक और तामसिक ॥ ३२-३७ ॥ फिर महत्तत्वसे अहङ्कारकी उत्पत्ति होती है। यह अहङ्कार तीन प्रकारका होता है। यथा,—वैकारिक, तैजस और तामस। तामस अहङ्कार ही भूतादिके नामसे अभिहित होता है। जिस प्रकार महत्तत्व प्रधान तत्त्वके द्वारा समाच्छन्न होता है, उसी प्रकार यह अहङ्कार भी महत्तत्वके द्वारा आवृत रहता है। उसीके प्रभावसे वह विकारको प्राप्त होकर शब्दतन्मात्रकी सृष्टि करता है। शब्दलक्षण आकाश इस शब्दन्मात्रसे ही उत्पन्न होता है। तामस अहङ्कारके द्वारा शब्दतन्मात्र आकाश समावृत्त हो जाता है। फिर निःसन्देह उसीसे स्पर्शतन्मात्रकी उत्पत्ति होती है। उससे स्पर्श गुणविशिष्ट महान् बलवान् वायु उत्पन्न होता है। शब्दमात्र आकाशके द्वारा स्पर्शमात्र वायु आवृत रहता है और उसीके विकारसे रूपमात्रकी उत्पत्ति होती है। वायुसे ही रूपगुण विशिष्ट ज्योतिका आविर्भाव होता है। ॥ ३८-४२ ॥ स्पर्शमात्र वायुके द्वारा रूपमात्र आवृत्त हो जाता है। फिर वह ज्योति विकृत होकर रसमात्रको उत्पन्न करती है। उसीसे रसात्मक जलका जन्म होता है। वह रसात्मक जल रूपमात्रके द्वारा आवृत्त हो जाता है। तदनन्तर रसमात्र जल विकृत होकर गन्धमात्रको उत्पन्न करता है और उसीसे गन्ध गुणविशिष्ट पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। इस प्रकार जिस पदार्थमें जो तन्मात्र हो, उसीके द्वारा उस पदार्थमें तन्मात्रता आ जाती है। इनका अन्य कोई वाचक न होनेसे इनको अविशेष कहते हैं। इस अविशेषके सम्बन्धसे वह शान्त, घोर या मूढ़ नहीं है। तामस अहङ्कारसे इस प्रकार भूततन्मात्रोंकी उत्पत्ति होती है। सत्वोद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहङ्कारसे एक साथही वैकारिक सृष्टि सम्प्रवर्तित होती है॥ ॥ ४३—४८ ॥ पांच ज्ञानेन्द्रिय और पांच कर्मेन्द्रिय, दसों तैजस इन्द्रिय कहे गये हैं। ग्यारहवां इन्द्रिय मन है। ये ग्यारहों वैकारिक देवता कहकर अभिहित होते हैं। कान, त्वचा, नेत्र, जीभ और नाकसे शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्धका बोध होता है, इस कारण ये पांचों ज्ञानेन्द्रिय कहाते हैं। पाद, पायु, उपस्थ, हाथ और वाणी ये कर्मेन्द्रिय हैं। इनके द्वारा गति, मलमूत्र त्याग, आनन्द, शिल्प और वचन, इन कर्मोंकी निष्पत्ति होती है। शब्द मात्र आकाश स्पर्श मात्रमें आविष्ट होकर द्विगुण वायुको उत्पन्न करता है सही, किन्तु वायुका विशेष गुण स्पर्श ही है। शब्द और स्पर्श, ये दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर अग्निका उत्पादन करते हैं। अग्नि शब्द, स्पर्श और रूप, इन तीन गुणोंसे युक्त होता है ॥४६-५३॥ इसके अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप रसमात्रमें आविष्ट होकर चार गुणोंसे युक्त रसात्मक जलका सृजन करते हैं। अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गन्धमात्रमें समाविष्ट होकर उनके साहचर्यसे इस पृथ्वीकी उत्पत्ति होती है। यही कारण है कि, पांचों भूतोंमें पृथ्वीही—पांचों भूतोंसे युक्त होनेके कारण स्थूलाकार देख पड़ती है।

और यही कारण है कि, यह शान्त, घोर और मूढ़ कही जाती है। उक्त पांचों भूत परस्परमें समाविष्ट होकर परस्परको धारण किये हुए हैं। यह घनावृत समस्त लोकालोक भूमि (पृथ्वी) में ही सन्निविष्ट रहते हैं। नियततत्त्वके कारण ये सभी इन्द्रिय ग्राह्य 'विशेष' के नामसे भी अभिहित होते हैं। पहिले भूतोंके गुण पीछेके भूतोंमें अनुप्रवेश कर जाते हैं। दशेन्द्रिय, मन और पञ्चतत्व, ये सात पदार्थ परस्पर सम्मिलित न होकर जबतक अलग अलग रहते हैं, तबतक वे सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ५४—५६ ॥ ये जबतक परस्पर मिलकर परस्परका अवलम्बन करते हुए भलीभांति संघटित रहते हैं और पुरुषका अधिष्ठान तथा प्रकृतिका अनुग्रह प्राप्त करते रहते हैं तबतक महत्से लेकर विशेष पर्यन्त एक अण्डकी सृष्टि करते हैं। जलका बबूला जिस तरह जलकाही आश्रयकर बढ़ता है वैसेही वह अण्डाभी जल तत्वका आश्रयकर बृद्धिङ्गत होता है। हे महामते! सलिलस्थ वह अण्ड सब भूतसे बड़ा होता है। ब्रह्मनामक क्षेत्रज्ञभी उसी प्राकृत अण्डमें बढ़ने लगता है। वही प्रथम शरीरी और पुरुष कहा गया है। वही भूत समूहका आदिकर्ता ब्रह्मा है। वही सबसे पहिले विराजमान रहता है। उसीने सचराचर त्रिलोकको व्याप्त कर रक्खा है। उस वृहत् अण्डसे ही मेरुकी उत्पत्ति हुई है। पर्वत उसके जरायु हैं और समुद्र उसका गर्भ सलिल है। देव, दानव मनुष्योंसे पूर्ण यह अखिल जगत् उसी अण्डमें प्रतिष्ठित है। द्वीपादि, पर्वत, सागर और समस्त ज्योतिष्क लोक उसीमें अवस्थित हैं ॥६०—६६॥ जल, वायु, अग्नि, आकाश आदि भूतोंने उत्तरोत्तर दस गुणके हिसाबसे उस अण्डके बहिर्भागको परिवेष्टित कर लिया है। इसके अतिरिक्त उसी प्रमाणमें महत्तत्वने भी उस अण्डको घेर दिया है। प्रकृति उस महत्तत्वके साथ अण्डको आवृत किये हुये शोभा पाती है। इस प्रकार सात प्राकृत आवरणों द्वारा उक्त अण्ड समावृत रहता है। सब मिलाकर आठों प्रकृति परस्परको आवृत किये रहती हैं। इस प्रकृतिको नित्य स्वरूपा जानना चाहिये। आपसे हमने ब्रह्मा नामक जिस पुरुषका उल्लेख किया है, प्रकृतिमें ही समाया हुआ है। उसके सम्बन्धमें संक्षेपमें कुछ कहता हूं, उसे श्रवण करो। पानीमें डूबा हुआ व्यक्ति पानीसे बाहर निकलते समय जिस प्रकार पानी और पानीसे उत्पन्न हुई वस्तुओंको दूर करनेमें समर्थ रहता है, उसी प्रकार ब्रह्मा भी प्रकृतिका विभु है। प्रकृतिही क्षेत्र और ब्रह्मा ही क्षेत्रज्ञ कहा गया है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञका यही लक्षण है। इसी तरह क्षेत्रज्ञसे

टीकाः—यह भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म स्वरूप है। ब्राह्मी सृष्टिके समय अर्थात् जब एक ब्रह्माण्डमें जीवसृष्टि प्रारम्भ होती है, तब सगुण ब्रह्मके जो प्रतिनिधि सृष्टिकार्यमें प्रवृत्त होते हैं, त्रिमूर्तिमेंसे वह सत्ता ब्रह्माका अधिदैव स्वरूप है। भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म रूप ब्रह्माण्डके सब श्रेणीके पिण्डोंके अन्तःकरणोंमें

अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि पूर्वक सर्व प्रथम विद्युल्लताकी तरह आविर्भूत हुई है ॥ ६७—७२ ॥

इस प्रकार मारकण्डेय महापुराणका ब्रह्मोत्पत्ति नामक पैंतालीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ है।

छयालीसवाँ अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! आपने अण्डकी उत्पत्ति और ब्रह्माण्डमें महात्मा ब्रह्माके जन्मकी कथा कह सुनायी। हे भृगुवंशोद्भव! प्रलयके अन्तमें सबका संहार होनेके उपरांत जब कि, सृष्टिका कुछ भी अवशेष नहीं रहा, तब पुनः पञ्च महाभूतोंकी कैसे उत्पत्ति हुई, यही अब आपसे सुननेकी मेरी अभिलाषा है। मार्कण्डेय बोले,—जब तक यह विश्व प्रकृतिमें विलीन रहता है, उसी अवस्थाको विद्वान् लोग प्राकृत प्रलय कहते हैं। प्रकृतिके आत्मामें अवस्थित रहने पर समस्त सृष्ट पदार्थ संहारको प्राप्त होते हैं। जब तक प्रकृति और पुरुषका साधर्म्य सम्बन्ध रहता है, तब तक सत्त्व और तमस् दोनों गुण साम्यवस्थामें रहते हैं। तब तक दोनोंमेंसे किसीकी अधिकता अथवा न्यूनता नहीं रहती। दोनों परस्पर समभावसे युक्त होते हैं ॥ १—५ ॥ तिलमें जैसा तेल अथवा दूधमें घी रहता है, वैसा ही रजोगुण सत्त्व और तमस्में मिला हुआ रहता है। सर्वेश्वर ब्रह्माकी परमायुका काल दो परार्ध वर्ष है। उसका दिनमान और रात्रिमान समान रहता है। वह जगत्का आदि पुरुष है। उससे पहिलेका कोई नहीं। वह सबका कारण, अचिन्त्यात्मा; परमेश्वर और क्रियासे अतीत है। मूर्तिमान् योगस्वरूप वही जगत्पति परमेश्वर प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करता है। मदगर्व अथवा वासन्तिक वायु जिस प्रकार नवयुवतियोंके अन्तःकरणोंमें प्रविष्ट होकर उन्हें क्षुब्ध (चंचल) कर देता है, उसी प्रकार योगमूर्ति ब्रह्मा भी प्रकृति और पुरुषको प्रक्षुब्ध करता है ॥ ६—१० ॥ प्रकृतिके क्षुब्ध होनेसे वह ब्रह्मा-नामधारी देवता उक्त अण्डकोषसे बाहर निकल आता है। इसी विषयको मैं आपको समझाता हूं। वह प्रकृतिको प्रथम प्रक्षुब्ध कर और उसका पति बनकर

व्याप्त है। उनका अधिदैव स्वरूप अपनी शक्तिके द्वारा सृष्टिकार्य करता है और उनका अधिभूत रूप ब्रह्मलोकमें अवस्थित है। ये तीनों ब्रह्माके अवस्था विशेष हैं ॥ ६७—७२ ॥

टीका :—यह भगवान् ब्रह्माजीके अध्यात्म स्वरूपसे सम्बन्ध रखनेवाला विज्ञान है। यहां प्रकृति और पुरुषका जो वर्णन है, वह चिज्जड़ ग्रन्थि रूपी प्रकृति और पुरुष है, ऐसा समझना चाहिये। नहीं तो परमपुरुष सदा निर्लिप्त और विकाररहित है। और यह विषय ब्रह्मसृष्टिका है ॥ ६—१० ॥

स्वयं प्रक्षुब्ध होता है। ऐसे ही सङ्कोच और विकाशके द्वारा वह प्रकृति रूप बन जाता है। वह जगत्योनि निर्गुण होने पर भी उक्त प्रकारसे आविर्भूत होकर और रजोगुणका अवलम्बन कर ब्रह्माके रूपमें परिणत होता है तथा सृष्टिकार्य करने लगता है। ब्रह्माके रूपमें वह सृष्टिकी उत्पत्ति करता है। फिर सत्वगुणकी अधिकता होनेसे वही विष्णुका रूप धारण कर न्यायानुसार प्रजाका रक्षण करता है। अनन्तर तमोगुणका उद्रेक होने पर रुद्र रूप धारण कर समस्त विश्वका संहार करके सो जाता है। इस प्रकार वह निर्गुण होने पर भी सृष्टि, स्थिति और प्रलय कालमें सत्व, रज और तमोगुणके कार्य करता रहता है ॥११—१५॥ सब किसीका उत्पत्तिस्थान, सर्वव्यापी वही ईश्वर इस प्रकार सृष्टि, स्थिति और संहारका कार्य करता है, इसीसे उसके ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर ये तीन नाम हो गये हैं। वह ब्रह्माके भावसे समस्त लोकोंका सृजन, विष्णु भावसे उदासीनता पूर्वक पालन और रुद्र भावसे निधन करता है। स्वयम्भूकी ये तीन अवस्थाएँ हैं। ब्रह्मा ही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्वगुण हैं। ये तीनों देवता तीन गुणोंके रूपमें निपुणतासे परस्परका आश्रय कर विराजते हैं। क्षणमात्र भी इनका परस्पर वियोग नहीं होता और मुहूर्त भर भी ये एक दूसरे को नहीं छोड़ते ॥ १६—१९ ॥ इस प्रकार जगत्के आदि देवोंके भी देव चार मुखवाले ब्रह्माजी रजोगुणका अवलम्बन कर सबकी उत्पत्तिका कार्य करते हैं। वे ही हिरण्य गर्भ, आदि देव और एक प्रकारसे अनादि भी हैं। वे ही भूपद्मके कोषमें विराजमान होकर सबसे पहिले आविर्भूत होते हैं। उन महात्माकी परमायु ब्राह्ममानसे सौ वर्षोंकी होती है। उसका हिसाब कहता हूँ, वह समझ लें। पन्द्रह निमिषकी एक काष्ठा, तीस काष्ठाकी एक कला, तीस कलाका एक मुहूर्त और तीस मुहूर्तका मानवोंका एक अहोरात्र तथा तीस अहोरात्र अथवा दो पक्षोंका एक महीना होता है ॥ २०—२४ ॥ छः महीनेका एक अयन और दो अयनोंका एक वर्ष होता है। दो अयनोंमें एक दक्षिणायन और दूसरा उत्तरायन कहाता है। मानवोंके एक वर्षका देवताओंका एक अहोरात्र होता है उत्तरायन देवताओंका दिन और दक्षिणायन रात है।। दिव्य परिमाणसे बारह सहस्र वर्षोंमें सत्यादि चार युग हो जाते हैं। अब चारों युगोंका विभाग कहता हूं, वह सुनो। दिव्य चार सहस्र वर्षोंका सत्ययुग होता है। चार चार सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल और सन्ध्यांश माना गया है। तीन सहस्र दिव्य वर्षोंका त्रेतायुग और तीन तीन सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांश होता है। दो सहस्र दिव्य वर्षोंका द्वापरयुग और दो दो सौ वर्षोंका उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांस समझना चाहिये। कलियुगका परिमाण दिव्य एक सहस्र वर्षोंका है और उसका सन्धिकाल तथा सन्ध्यांश एक एक सौ

वर्षोंका कहा गया है ॥२५—३०॥ इस प्रकार विद्वानोंने चार युगोंका विभाग देवताओंके बारह सहस्र वर्षोंमें किया है । इसका सहस्र गुणा करनेसे जो संख्या होगी, उतने वर्षोंका ब्रह्माका एक दिन होता है । हे ब्रह्मन्! ब्रह्माके इस एक ही दिनमें यथा विभाग चौदह मनु आविर्भूत होते हैं । सहस्रों वर्षोंमें उनके कालका विभाग किया जाता है । इन्द्रादि देवता, सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्र राजन्यगण मन्वन्तरके साथही उत्पन्न होते और उसी क्रमसे अन्तर्हितभी हो जाते हैं । कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगोंका एक मन्वन्तर होता है । मनुष्योंके वर्ष मानसे उसका हिसाब कहता हूं, सुनो । तीस करोड़ सड़सठलाख बीस हज़ार मानव वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है । अब दिव्य वर्ष मानके हिसाबसे भी समझलें कि, आठसौ बावन हजार दिव्य वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है ॥ ३१—३७ ॥ इस कालको चौदह गुणा करनेसे ब्रह्माका एक दिन होता है । हे ब्रह्मन् ! उस ब्राह्मदिनके अन्तमें जो प्रलय होता है, विद्वज्जन उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, ये सभी नश्वर (नाशमान्) हैं: केवल महर्लोक विद्यमान रहता है । प्रलय कालमें उत्पन्न होनेवाले तापसे बचनेके लिये महर्लोकवासी जन लोकमें चले जाते हैं । तब त्रिभुवन एक समुद्रके रूपमें परिणत हो जाता है । ब्रह्माजी रातमें सो जाते हैं । ब्रह्माके दिनका जितना परिणाम है, उतनाही रातका भी । रात बीत जानेपर फिर सृष्टिक्रिया आरम्भ होती है । इस प्रकार तीनसौ साठ दिनोंमें अर्थात् सात सौ बीस प्रलयोंके हो जानेपर ब्रह्माका एक वर्ष होता है । ऐसे सौ वर्षोंको फिरसे सौगुणा करनेसे जो संख्या होती है, उसे पर कहते हैं । ऐसे पचास वर्षोंका एक परार्द्ध कहाता है । हे द्विजोत्तम ! इस समय ब्रह्माका एक परार्द्ध बीतचुका है । उसीके अन्तमें पाद्म नामक महाकल्प हुआ था । हे द्विज ! अब दूसरा परार्द्ध चल रहा है । इसीको वाराह कल्प कहते हैं । यही प्रथम कल्प माना जाता है ॥ ३८—४४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणका ब्रह्मायुः परिमाण नामक छयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

टीकाः—ब्रह्मा, विष्णु, महेशमें तीनो अध्यात्मरूपसे सगुण ब्रह्महो होने परभी इनका अधिदैव और अधिभूत रूप पृथक् पृथक् है । ये सबसे बड़े देवपदभी हैं । यम, इन्द्र मनु आदिभी ऐसेही देवपद हैं । वे सब देवपद स्थायी हैं । परन्तु उनमें व्यक्ति बदला करती है । इसी कारण ब्रह्मा, विष्णु, रुद्रकी भी आयु और उनका रात्रि दिवस स्वतन्त्र स्वतन्त्र रूपसे शास्त्रोंमें वर्णित है । जिसका वर्णन आगे आवेगा । मनु आदि देवताओंकी भी आयु ऐसेहो निर्णीत है । अवश्यही उनके पद स्थायी हैं । भगवान् ब्रह्माकी रात्रिमें जो प्रलय होता है, उसे नैमित्तिक प्रलय कहते हैं । इसी प्रकार विष्णु और शिवकी रात्रिमें भी प्रलय होता है । उसका वर्णन अनावश्यक होनेसे शास्त्रोंमें नहीं आया है । कहीं कहीं उसका इंगित मात्र है । जैसा कि, विष्णु पुराणमें विष्णुरात्रिका उल्लेख है । भगवान ब्रह्माके सम्बन्धसे प्रलयका रहस्य समझने पर ज्ञानार्जनके लिये यथेष्ट है ॥ ३१—३७ ॥

सैंतालीसवां अध्याय।

—— *०* ——

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्माने प्रजाओंकी सृष्टि कैसे की, यह मुझे बताइये। मार्कण्डेय बोले,—हे ब्रह्मन्! जगत्कारण अनादि भगवान्ने यह स्थावर-जङ्गमात्मक समस्त जगत् कैसा निर्माण किया, यह मैं आपसे कहता हूं। पाद्म नामक प्रलयके अन्तमें अर्थात् पाद्मकल्प बीत जानेपर सत्वगुणके द्वारा उद्रिक्त हुए प्रभु ब्रह्माने जागकर क्या देखा कि समस्त भुवन शून्य हो रहे हैं। उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूप नारायणके सम्बन्धमें उन्हें इस बातका स्मरण हुआ कि, जलका ही प्रतिशब्द नार है। उनमें जिनका शयनस्थान (अयन) है, वे ही नारायण कहे गये हैं ॥१—५॥ नारायणने जागृत होकर अनुमान किया कि, इसी जलमें पृथ्वी निमग्न हो रही है। अतः उसका उद्धार करनेके लिये पूर्व पूर्व कल्पोंमें जिस प्रकार उन्होंने मत्स्य, कूर्मादि अवतार धारण किये थे, उसी प्रकार वेदयज्ञमय दिव्य वराहका अवतार धारण कर जलमें प्रवेश किया। सर्वगामी जगत्पतिने पातालसे पृथ्वीको उबारकर जलपर स्थापन किया। विशाल देह होनेके कारण वह पृथ्वी जलमें डूबी नहीं, किन्तु बड़ी नौकाकी तरह जलपर तैरने लगी। यह देखकर जनलोकमें रहनेवाले सिद्धोंने जगत्कारण परमात्माके गुणानुवाद गाये। फिर पृथ्वीको समतल करके पहिले पर्वतोंकी सृष्टि की। इस प्रकारकी पहिली सृष्टिको संवर्तक नामक अग्नि जलाने लगा। उस अग्निके तापसे सब पर्वत विशीर्ण कलेवर होकर समुद्रमें निमग्न हो गये। उधर वहांका जल भी वायुके द्वारा खौल उठा; जिससे जहां जहां पर्वत निमग्न हुए थे, वहीं वे अचल हो गये। फिर जितनी पृथ्वी थी, उसका सात द्वीपोंमें विभाग कर भूर्लोकादि चार लोक बना दिये गये। पूर्व पूर्व कल्पोंकी तरह सृष्टि विषयक चिन्ता करनेसे तमोमय तमस्, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्धतामिस्र नामक पांच विद्याओंका आविर्भाव हुआ ॥ ६—१५ ॥ ऐसी चिन्तासे ही जो

टीकाः—यह सृष्टिकी मृत्युलोकके चतुर्विध भूत संघकी सृष्टिसे पहिली अवस्था है। उस समय पृथ्वी मनुष्य वासोपयोगी नहीं बनी थी इसको पदार्थवादी साइन्स शास्त्रके विद्वान् भी अनुमान करते हैं और इसके विषयमें कुछ कहते भी रहते हैं ॥ ६—१० ॥

टीकाः—यह दैवी सृष्टिका विषय है क्योंकि ये चारलोक दैव जगत्से सम्बन्ध रखते हैं। उसके बाद यह पृथ्वी जीव वासोपयोगी बननेपर चतुर्विध भूतसंघोंकी सृष्टि हुई थी जिसका वर्णन आगे आता है ॥ ॥ ११—१५ ॥

बेरोक टोक सृष्टि हुई, वह पांच प्रकारसे ठहर गयी। वह संघटित सृष्टि पर्वतोंके ही रूपमें थी; किन्तु उसके भीतर-बाहर अन्धकार ही था। वह सृष्टि नग (पर्वत) प्रधान होनेसे मुख्य सर्ग नामसे प्रसिद्ध हुई। इस सृष्टिसे काम नहीं चलेगा, यह जानकर वे फिर दूसरी सृष्टिकी कल्पना करने लगे। तिर्यक् प्रवृत्तिको तिर्यक् स्रोत कहते हैं। सृष्टिचिन्ता करते करते वह तिर्यक् स्रोत बह निकला; जिससे अट्ठाईस प्रकारके तमोगुण प्रधान, अबोध विपथगामी, आज्ञानान्ध, अहङ्कार विशिष्ट और अहङ्कार में ही डूबे हुए पशु आदिकी उत्पत्ति हुई। उनके भीतर आकाश था और वे परस्परको आवृत करके रहते थे॥ १६—२०॥ इस सृष्टिको भी निकम्मी जानकर वे फिर चिन्ता करने लगे। इससे ऊर्ध्वपथगामी सात्विक स्रोत आवाहित होने लगा। इस प्रवाहसे सुख प्रीति विशिष्ट, अन्तर्बहिः प्रकाशित, तुष्टात्मा प्रकट हुए। इसीको देवसर्ग कहते हैं। इस सृष्टिको देखकर ब्रह्माको बहुत ही प्रसन्नता हुई। फिर वे पुनः उत्तम साधकोंकी सृष्टि करनेकी चिन्ता करने लगे। तब यथार्थ चिन्तासे युक्त ब्रह्माके मनोबलसे अव्यक्तके द्वारा अर्वाक् स्रोता नामक साधकोंकी सृष्टि हुई। ये सब साधक अर्वाक् भावमें स्थित होनेके कारण इन्हे अर्वाक् स्रोता कहा जाता है॥ २१--२५॥ उन्हींसे तमो रजो गुणशाली, अन्तर्बहिः प्रकाशपूर्ण, दुःखोंसे घिरे हुए और आवागमनके चक्रमें घूमने वाले साधक मनुष्य उत्पन्न हुए हैं। पांचवी सृष्टिका नाम अनुग्रह है। विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और तुष्टिके रूपसे वह चार भागोंमें विभक्त है। बीते हुए और वर्तमान सब विषय उसे अवगत-रहते हैं। भूतादि और सब भूतोंकी सृष्टि छठी सृष्टि कही गयी है। इस सृष्टिमें सभी परिग्रह करने वाले, भलीभांति बटवारा करनेमें निपुण, प्रेरणाकुशल और कुत्सित स्वभा-वके होते हैं। इन्हींको भूतादिक कहते हैं॥ २६—३०॥ प्रथमही जिससे ब्रह्माकी उत्पत्ति होती है, वह महत् सृष्टि कहलाती है। ब्रह्माके अंशसे हुई सृष्टि दूसरी है। उसे भूतसर्ग कहते हैं। इन्द्रिय सम्बन्धसे होनेवाली वैकारिक सृष्टि तीसरी है। बुद्धिपूर्वक की हुई यह सृष्टि प्राकृत सृष्टि है। चौथी मुख्य सृष्टिके नामसे अभिहित होती है। स्थावरादिकी सृष्टिही मुख्य सृष्टि है। पूर्वोक्त योनिरूपी तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है। ऊर्ध्व स्रोतकी जो

टीका—पहिले केवल जड़ सृष्टि अर्थात् पर्वतादिकी सृष्टि होनेसे वहां जीवत्व न रहनेके कारण भीतर और बाहर अन्धकार था। उसके अनन्तर जीवधारा प्रारम्भ होनेपर जो सृष्टि हुई, उसमें चित्सत्ताका सम्बन्ध रहनेके कारण बाहर तो अन्धकार था, पर भीतर प्रकाश हो गया। गम्भीर और अलौकिक सृष्टि विज्ञानको समझानेके लिये इससे अच्छा विवेचन और क्या हो सकता है? पुराण शास्त्र वेदके भाष्य ग्रन्थ हैं। इन्हीं सब वर्णनोंसे उसका दृढ़ प्रमाण मिलता है पिण्ड तीन प्रकारके होते हैं। एक सहज पिण्ड, दूसरे देव पिण्ड और तीसरे मानव पिण्डकी। यह सहज पिण्डकी सृष्टिका वर्णन है॥ १६-२०॥

छठी सृष्टि है, उसे देवसर्ग कहते हैं। उसके अनन्तर अर्वाक् स्रोतसे उत्पन्न हुई सातवीं मानवी सृष्टि है। अनुग्रहसृष्टि आठवीं है और वह तामसिक तथा सात्विक भेदसे दो प्रकारकी होती है। इन आठ प्रकारकी सृष्टियोंमें पहिली तीन प्राकृतसृष्टि और अन्तिम पांच वैकृतसृष्टि मानी गयी हैं। कौमार नामक नवम सृष्टि होती है। सब मिलाकर प्रजापतिकी नौ प्रकारकी सृष्टि वर्णित हुई है ॥ ३१—३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका प्राकृत वैकृत नामक सैंतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीका—यह जो सृष्टिका वर्णन हुआ, वह पूर्व कथित चारों प्रकारकी सृष्टिसे सम्बन्ध रखता है। प्राकृतिक सृष्टि, जो ब्रह्माजीके प्रकट होनेसे पहिले जगज्जननीके लीलामात्रसे उत्पन्न होती है, उस सृष्टिका अन्तिम विवरण भगवान् ब्रह्माके प्रकट होनेके अनन्तर मुख्यसर्ग नामसे अभिहित हुआ है। परन्तु भगवान् ब्रह्माजीके प्रकट होनेके अनन्तर जो नौ भेद सृष्टिके किये हैं, उसमें इसका स्थान चौथा है, ऐसा समझना होगा। भगवान् ब्रह्माजीकी उत्पत्तिके साथ ही महत्सृष्टि होती है। उस समय विराट्का अन्तःकरण अर्थात् एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण बन जाता है। महत् उसका उपादान है और ब्रह्मा उसके अधिदैव हैं। उसके अनन्तर सनकसनन्दनादि पूर्णावयव देवताओंकी सृष्टि और तदनन्तर प्रजापति नामक देवताओंकी सृष्टि, उनके द्वारा मानस सृष्टिका विस्तार और तदनन्तर स्त्रीपुरुष मैथुनजन्य वैजी सृष्टिका विस्तार, इस प्रकारसे सृष्टिका विस्तार हुआ था। उसीको यथाक्रम न गिनाकर उसकी श्रेणी विभाग करके यह नौ प्रकारकी सृष्टि बताई गई है। उसका संक्षिप्त समाधान यह है। महत् सृष्टि चित्सत्ताके संबंधसे अलौकिक भावयुक्त है। इसी तरह चौथी मुख्य सृष्टि जीवभावसे रहित है। इसकारण इन दोनोंसे तीन प्रकारके पिण्डोंका सम्बन्ध नहीं बांधा जा सकता। बाकी सात सृष्टियोंमें नाना पिण्डोंका सम्बन्ध समझना उचित है। दूसरी ओर महत् सृष्टि, भूत सृष्टि और वैकारिक सृष्टि ये तीनों सहज कर्मके अधीन हैं और बाकी सृष्टियां ऐश और जैव कर्मके अधीन हैं। जब प्रथम स्थूलब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ, उस समय प्रकृतिके अव्यक्तअवस्थासे व्यक्त अवस्था होते समय और जीववासोपयोगी लोककी भित्तिकी स्थापना होते समय परमाणुओंके आकर्षणसे जो स्थूल जीवपिण्डरहित सृष्टि हुई, वह अवश्य ही जड़सृष्टि कहावेगी और वह मुख्य सृष्टि है, यह मानना ही पड़ेगा। तदनन्तर प्रकृतिसे आलिङ्गित पुरुषरूपसे जो सगुणब्रह्मके सृष्टिकर्तारूपका अनुभव है, वही भगवान् ब्रह्माके प्रकट होनेकी अवस्थासे महत्सृष्टिका सम्बन्ध विराट्देहसे दिखाया गया है। कौमारसृष्टि पूर्णावयव परमहंसरूपी सनकसनन्दनादिकी सृष्टि और तदनन्तर भगवान् ब्रह्माके अंशसे उत्पन्न प्रजापतियोंके द्वारा भूतसृष्टि, देवलोककी दैवीसृष्टि, अनुग्रहसृष्टि आदि सब देवपिण्डकी सृष्टियां हैं। चतुर्विध भूतसंघ तिर्यक् सृष्टि आदि सहजपिण्डकी सृष्टियां हैं और मनुष्यसृष्टि मानवपिण्डकी सृष्टि है। सृष्टिकी आदि अवस्थामें सब भूत तथा तीनों पिण्डोंकी सृष्टि मानसिक बलसेही प्रकट हुई थी। उसके अनन्तर वैजी सृष्टि आरम्भ हुई है। इस प्रकारसे समझनेपर गम्भीर सृष्टिप्रकरणका रहस्य समझमें आ सकेगा। पदार्थविद्याके सेवी इन सब सृष्टियोंका रहस्य समझ नहीं सकते। क्योंकि वे केवल परमाणुसंजात मुख्यसृष्टिके अनुसन्धानमें ही प्रवृत्त रहते हैं ॥ ३१—३६ ॥

अड़तालीसवां अध्याय।

—०*०—

क्रौष्टुकि ने कहा,—हे भगवन्! आपने जो सृष्टिप्रकरण सुनाया, वह अति संक्षिप्त है। अतः देवता आदिकी उत्पत्तिका विषय विस्तारके साथ कहिये। मार्कण्डेयने कहा,—हे ब्रह्मन्! पूर्व जन्मोंके शुभाशुभ कर्मोंके कारण ही पुनर्जन्म होता है। कर्मबद्ध देवताओंसे लेकर स्थावरतककी सब चतुर्विध प्रजा प्रलयकालमें जब विनष्ट हो जाती है, तब उसकी पुनः सृष्टि करनेकी ब्रह्माजी इच्छा करते हैं। फिर वे देवता, असुर, पितृगण और मनुष्य इन चारोंकी सृष्टि करनेकी कामनासे अपना अंश जलमें निक्षिप्त करते हैं। सृजनकी इच्छा रखनेवाले प्रजापतिके तमोगुणका उद्रेक होनेसे पहिले उनकी जङ्घाओंसे असुरोंकी उत्पत्ति होती है। उन्हें वे तमोगुणात्मक शरीर प्रदान करते हैं। वह शरीर जब व्यक्त हो जाता है, तब रात्रिके नामसे ख्यात होता है। फिर ब्रह्मा दूसरा शरीर धारण कर बड़े प्रसन्न होते हैं, तब सत्वगुणका उद्रेक होकर उनके मुखसे सत्वगुणविशिष्ट देवगण उत्पन्न होते हैं और उन्हें वे सात्विक शरीर प्रदान करते हैं। जो सत्वगुणयुक्त शरीर वे देते हैं, उसीको दिवस कहा जाता है। फिर सत्वगुणयुक्त शरीर धारण कर वे पितरोंको उपन्न करते हैं। वह शरीर उन्हींको दे डालने पर दिन रातके बीचकी सन्ध्याके रूपमें परिणत हो जाते हैं। अन्तमें रजोगुणात्मक एक नूतन शरीर धारण करते हैं। वह शरीर रजोगुणविशिष्ट मनुष्यसृष्टि करता है और उसीको ज्योत्स्ना कहते हैं। यह ज्योत्स्ना रात्रिके अन्त और दिनके आरम्भमें प्रादुर्भूत होती है ॥ १—१२ ॥ देवोंके देव ब्रह्माके उक्त सब शरीर ही दिन, रात, सन्ध्या और ज्योत्स्नाके नामसे प्रसिद्ध होते हैं। ज्योत्स्ना, सन्ध्या और दिवस ये तीनों सत्वगुणात्मक और रात्रि तामसी होती है। इसीसे रात्रि त्रियामा कही जाती है। पूर्वोक्त गुणाधिक्यके कारण दिनमें देवता,

---

टीका—यह चार प्रकारकी सृष्टि न पिण्डके विचारसे कही गयी है और न चतुर्विध भूतसंघका इससे सम्बन्ध है। यह आवागमनचक्रवाली चार प्रकारकी सृष्टि है। यथाः—मृत्युलोकवाली मनुष्य सृष्टि, जो मातृगर्भसे जन्मती है। अन्य तीन दैवी सृष्टियां हैं, जो देवताओंकी सहायतासे यों ही उत्पन्न हो जाती हैं। इन तीनोंका भेद इस प्रकार हैः—प्रेत, नरक और पितृलोककी दैवी सृष्टि, उद्‌र्ध्व स्वर्गलोककी दैवी सृष्टि और अधः सप्तपातालकी असुरयोनिकी दैवी सृष्टि है। आवागमनके चक्रके नियमानुसार जीव अपने शुभाशुभ कर्मोंके फलोंसे इन चारों श्रेणीके लोकोंमें पहुंचा करता है और यही जन्मान्तरका घुमाव आवागमनचक्र कहाता है। स्थावरसृष्टि मृत्युलोककी सृष्टिके अन्तर्गत ही समझी जायगी। यहां जो जलका वर्णन है, वह साधारण जल नहीं, कारणवारि है ॥ १—१२ ॥

रातमें असुर, उषःकालमें मनुष्य और सन्ध्याकालमें पितृगण बलशाली होकर विपरीत गुणोंसे युक्त हो जाते हैं। दिवस, रात्रि, सन्ध्या और ज्योत्स्ना रूपी चार शरीरोंको उत्पन्न करनेके पश्चात् रात्रिमें भूखसे व्याकुल होनेके कारण ब्रह्माने रजस्तमोमय एक शरीर और धारण किया। उससे अत्यन्त कुरूप, बढ़े हुए केशवाली, भूखी-प्यासी प्रजाकी सृष्टि की। उस प्रजाने ब्रह्माके उस अमङ्गल शरीरको भक्षण करना आरंभ किया। खाते-खाते जिन्होंने 'रक्षा करेंगे' कहा, वे राक्षस और जिन्होंने "भोजन करेंगे" कहा, वे यक्ष हो गये ॥१३-२०॥ उस प्रजाको देखकर ब्रह्माको घृणा हुई, जिससे उनके केश झड़ने लगे। ब्रह्माके गिरे हुए केश फिर शिर-पर आरोहण करनेमें असमर्थ होनेके कारण इधर उधर खिसकने लगे। उन्हींको सर्प संज्ञा प्राप्त हुई। हीन जातिके होनेके कारण उन्हें अहि भी कहते हैं। सर्पदर्शनसे क्रुद्ध होकर क्रोधात्मा, कपिलवर्ण, उग्रस्वभाव, पिशिताशनों (मांसखादकों) की उन्होंने सृष्टि की।

टीकाः—सृष्टिप्रकरणका ठीक ठीक समझना समानधियुक्त बुद्धिका कार्य है। साधारण बुद्धि उसको समझ नहीं सकती। दूसरी बात यह है कि, पुराणोंकी वर्णनशैली कोई दार्शनिक वर्णनशैली नहीं है। पुराणोंमें एक साथ ही सृष्टिके नाना स्तरोंकी बातें आजानेसे विषय जटिल होकर असम्बद्ध सा प्रतीत होता है। इसी कारण सृष्टिप्रकरणका पूर्वापरसम्बन्ध कुछ स्पष्ट कर देना उचित है। सृष्टिप्रकरणके साधारणतः तीन स्तर हैं। यथाः—प्राकृतसृष्टि, मानस सृष्टि और बैजीसृष्टि। प्राकृतसृष्टि सगुण ब्रह्मकी, मानससृष्टि ब्रह्मा और प्रजापतियोंकी और बैजीसृष्टि सब जीवोंकी मैथुनीसृष्टि समझी जा सकती है। प्रलयमें जब सब ग्रह-उपग्रह आपसमें टकराकर परमाणुरूप होकर नष्ट हो जाते हैं, उसके बाद दूसरे कल्पमें जब सृष्टिका आरम्भ होता है, तो ब्रह्मप्रकृति अव्यक्तसे व्यक्त होकर कार्य करती है। ब्रह्म-प्रकृतिही सृष्टि, स्थिति और लय करती है और ब्रह्म केवल निर्लिप्त होकर ईक्षण किया करते हैं। यही ब्रह्मकी सगुण अवस्था है। यही दर्शनशास्त्रका ईश्वरभाव है। पहिली अवस्थामें प्रकृतिके स्वभावसे रजोगुणरूपी आकर्षणद्वारा परमाणुपुंज एकत्र होते हैं। यही न्याय-वैशेषिकदर्शनका सृष्टिप्रकरणसम्बन्धी मौलिक सिद्धान्त है। उस समय परमाणुओंके एकत्रित होनेसे ग्रह-उपग्रह आदिके स्थूल लोकसमूह बनते हैं। तब ब्रह्माण्ड जीववासोपयोगी नहीं होता। केवल पंचभूतोंके स्थूल परमाणु ब्रह्माण्डके स्थूल अङ्गको बनाते हैं। इसी प्राकृतिकसृष्टिको आधुनिक पदार्थवादी भी कुछ कुछ अनुमान करते हैं। यह सृष्टिका पहिला स्तर है। तदनन्तर प्रत्येक ब्रह्माण्डके अधिदैव त्रिमूर्तिके रूपमें सगुणब्रह्मके प्रतिनिधि होकर प्रकट होते हैं। उस समयका वर्णन पुराणोंमें ऐसा किया गया है कि, सत्वगुणके अधिदैव भगवान् विष्णु योगनिद्रामें सोये रहते हैं। उनके नाभिकमलसे रजोगुणके अधिदैव भगवान् ब्रह्मा जागृत होकर प्रकट होते हैं और तमोगुणके अधिदैव भगवान् शिव उन दोनोंके शरीरोंमें अलक्षित रूपसे विराजमान रहते हैं। अवश्यही भगवान् विष्णुकी यह योगनिद्रा जीव-जगत्की मामूली निद्रा नहीं है। जगत्से दृष्टि हटाकर स्वस्वरूपमें अवास्थिति इस निद्राका योगयुक्त अनुभव है। इस दशामें भगवान् ब्रह्मा ब्राह्मीसृष्टि करते हैं। वे भी योगयुक्त होकर ही करते हैं। अतः सृष्टिप्रकरणका समझना समाधिगम्य है। अवश्यही भगवान् ब्रह्माकी समाधि और साधारण योगीकी समाधिमें महान् अन्तर है। क्योंकि योगीका अन्तःकरण एक जीवका व्यष्टिअन्तःकरण है और ब्रह्माका

वाक्यकी चिन्ता करते हुए गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। वाक्यस्मरणसे उत्पन्न होनेके कारण ही वे गन्धर्व नामसे विख्यात हुए। इस प्रकार आठ प्रकारकी देवयोनियोंको उत्पन्न करनेके अनन्तर ब्रह्माने अपने शरीरसे अन्यान्य पशु, पक्षी आदिकी सृष्टि की। उनके मुखसे बकरा, छातीसे पक्षी, पेट और पसलीसे गौ, दोनों पैरोंसे घोड़ा, हाथी, गदहा, खरहा, हरना, ऊंट और खच्चर तथा रोमोंसे फल, मूल, चावल और नानाप्रकारकी औषधियां उत्पन्न हुईं ॥२१-२७॥ भगवान् त्रेतायुगके प्रारम्भमें इसप्रकार पशु और औषधियोंकी सृष्टि कर यज्ञ सृष्टि करनेमें प्रवृत्त हुए थे। गाय, भैंस, बकरा, मेढ़ा, घोड़ा, खच्चर और गदहा इनको ग्राम्यपशु और श्वापद, दो खुरवाले प्राणी, हाथी, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप इन सात प्रकारके पशुओंको वन्यपशु कहते हैं। विधाताके पूर्वमुखसे ऋग्वेद, गायत्री, त्रिवृत् छन्द, रथन्तर साम और अग्निष्टोम यज्ञ; दक्षिणमुखसे यजुर्वेद,

---

अन्तःकरण एक ब्रह्माण्डका समष्टिअन्तःकरण है। तथापि योगयुक्त अन्तःकरणकी स्थिति और समाधिकी प्रक्रियां एकही जातिकी है, यह माननाही पड़ेगा। फलतः जो महापुरुष पातञ्जल योगशास्त्रोक्त सविकल्प और निर्विकल्प समाधिका रहस्य और सविकल्प समाधिके अस्मितानुगत, आनन्दानुगत, विचारानुगत और वितर्कानुगत इन चारों भेदोंको भली भांति जानते हैं, वेही सृष्टिप्रकरणकी गम्भीरताको कुछ समझ सकते हैं। भगवान् ब्रह्माकी मानससृष्टि, तदन्तर परमहंससृष्टिरूपी सनकादिकी सृष्टिमें अनिच्छा और तदनन्तर प्रजापतियोंकी मानससृष्टिका रहस्य अति गूढ़ है। यह सब मानससृष्टिके अन्तर्गत है। इस अध्यायमें जो प्रकरण आया है, वह सब मानस और ब्राह्मी सृष्टिकाही प्रकरण है। भगवान् ब्रह्मा सृष्टिकार्यके लिये जगन्माताकी इच्छा-अनिच्छा-रूपी स्वभाविक इच्छासे अथवा यों कहियें कि, उनकी लीलामयी भृकुटिके सञ्चालनमात्रसे जब जीवसृष्टि उत्पन्न करनेके लिये ब्रह्मा प्रकट हुए, तो योगयुक्त होकर अपनी समाधिबुद्धिद्वारा "यथापूर्वमकल्पयत्" इस सृष्टिसिद्धान्तानुसार कारणवारिमें गोता लगाकर उन्होंने सृष्टि आरम्भ की। जब पूर्वकल्पमें प्रलय हुआ था, तब चतुर्दशलोकमय ब्रह्माण्ड जिन जिन समष्टिसंस्कारोंको लेता हुआ प्रलयके गर्भमें लीन हुआ था, वही समष्टिसंस्कार कारणवारि कहाता है। भगवान् ब्रह्मा अस्मितानुगत और आनन्दानुगत दोनों समाधियोंके अनुसार अपने स्वस्वभावसे और प्रजापतिगण आनन्दानुगत और विचारानुगत दोनों समाधियोंकी सहायतासे भगवान् ब्रह्माकी प्रेरणाद्वारा दैवीसृष्टिका सञ्चालन करते हैं। किस अवस्थासे किस अलौकिकशक्तिद्वारा जगज्जननी महामायाके प्रभावसे सृष्टिकार्य होता है, वह समाधिस्थ योगिगणही कुछ कुछ समझ सकते हैं। पुराणादि शास्त्र उन अवस्थाओंका केवल इंगित करते हैं। ब्रह्माका जलमें अपना अंश फेंकना रजोगुणके प्रभावसे समष्टिकर्मबीजसंस्कारसे सृष्टिका अंकुरोत्पन्न होना समझना उचित है। आसुरी सृष्टि तमोगुणप्रधान है। इस विषयमें सब शास्त्र एकमत हैं। सत्वके कार्यसे तमका कार्य प्रथमही होता है। जगत्में भी इसका दृष्टान्त सर्वत्र मितता है। यही कारण है कि, जगत्में धर्मकी क्रियासे अधर्मकी क्रियाकी प्रबलता और व्यापकता अधिक है। तमस् अधोगामी और सत्व उर्ध्वगामी है। यह भी कारण है कि, तमकी ओर वृत्ति पहिले दौड़ती है। उसके अनन्तर देवताओंकी सृष्टि हुई, जो सत्वगुणमयी है। सृष्टिके साथही साथ कालकी उत्पत्ति हुई है। वही काल दिन

त्रिष्टुभ् छन्द, पञ्चदशस्तोम यज्ञ, वृहत्साम और उक्त; पश्चिममुखसे सामवेद, वैरूप छन्द और अतिरात्र यज्ञ तथा उत्तरमुखसे इक्कीस अथर्ववेद, अनुष्टुभ् और वैराज् छन्द एवं आप्तोर्याम यज्ञका प्राकट्य हुआ है ॥२८-३४॥ भगवान् हरएक कल्पके प्रारम्भमें ही विद्युत्, अशनि (वज्र), मेघ, लाल इन्द्रधनु और वयस् (आयु) की सृष्टि करते हैं। फिर देवता, असुर, पितृगण और मनुष्योंकी सृष्टि होती है। भगवान्के शरीरसे ही नानाप्रकारके प्राणियोंकी उत्पत्ति होती है। तत्पश्चात् वे स्थावर, जङ्गम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गन्धर्व, अप्सराएँ, नर, किन्नर, राक्षस, पक्षी, पशु, मृग, भुजङ्ग, आदि समस्त नश्वर और अविनश्वर पदार्थोंकी सृष्टि करते हैं। जिनका जो काम हो, वह उन्हें सृष्टिके प्रारम्भमें ही बता दिया जाता है। इस कारण बारबार जन्मलेनेपर भी वे वही अपना अपना काम किया करते हैं ॥३५-३६॥ पूर्वजन्ममें प्राणी हिंसा-अहिंसा, मृदुता-क्रूरता, धर्म-अधर्म,

---

और रातके विभागसे यथाक्रम सत्वगुण और तमोगुणमय हुआ। यही कारण है कि, देवता और असुर भाई कहाते हैं। असुर बड़े भाई हैं और रात्रिका अधिकार भी पहिला है। सृष्टिकी अवस्थामें रात्रि पहिले उत्पन्न हुई थी। सृष्टि और कालका यह अलौकिक सम्बन्ध है। पितृगण भी देवताके भेद हैं और सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षा करना उनका कार्य है। ब्रह्माण्डके मध्यमें मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक, यह चारलोकमय जो भूलोक है, उसींमें उनका पूर्ण अधिकार है। भगवान् यम धर्मराज उनके राजा हैं। येही जीवके सदसत्कर्मोंके फलदाता ईश्वर कहाते हैं। देवलोककी सृष्टिके अनन्तर ही इसीकारण पितृगणकी सृष्टि कही गयी है। पितृगणको सन्ध्या इस कारण कहा गया है कि, जीव चाहे ऊपरके देवलोकमें जाय, या नीचेके असुरलोकमें जाय, नरकमें जाय, या स्वर्गमें जाय, घूमके पुनः आवागमनचक्रके बलसे उसे मृत्युलोकमें आना पड़ता है। क्योंकि मृत्युलोक ही कर्मभूमि है। वह मृत्युलोक पितृशृंखला और पितृराजके आधीन है। इस कारण पितरोंको सन्ध्या कहा गया है। मनुष्यपिण्ड सबका केन्द्र है, इस कारण उसको ज्योत्स्नया उषःकाल कहा है। अन्तर्मुखसम्पन्न योगिगण इस रहस्यको अच्छी तरह समझ सकते हैं। जैसे पितृगण देवताओंकी योनि हैं, वैसे ही राक्षस और यक्ष असुरयोनिसे सम्बन्ध रखते हैं। है। दूसरी ओर ऋषि गण भी पितृगणकी तरह देवपिण्डधारी ही होते हैं। ऋषियोंकी विशेषता यह है कि, उनका निवास चतुर्दशभुवनोंमें भी रहता है। यही कारण है कि, शास्त्र दैवी होते हैं और आसुरी भी होते हैं। दैवीशास्त्र देवलोकके ऋषियों द्वारा और आसुरीशास्त्र असुरलोकके ऋषियोंद्वारा शृंखलाबद्ध होकर मनुष्योंके अन्तःकरणोंमें प्रेरित होते हैं। नित्यऋषिगण एक श्रेणीके देवता हैं और वे ज्ञानराज्यके सञ्चालक हैं। सर्पयोनिका जो वर्णन है, वह मृत्युलोककी सर्पयोनि नहीं, असुरलोककी देवयोनिविशेष है। जिसका वर्णन इस पुराणमें पहिले आ चुका है। पाताललोकमें ही उनका निवास है। इसी प्रकार मांसभक्षकोंका जो वर्णन है, वह असुरयोनिसे सम्बन्धयुक्त है। गन्धर्वकी सृष्टि दैवीसृष्टि है। उनका सम्बन्ध ऊर्द्ध्व द्वितीय लोकसे है। तदनन्तर चतुर्विधभूतसङ्घका जो वर्णन है, वह सहजपिण्डसे सम्बन्ध रखता है। अन्यान्य पुराणोंमें यह सब सृष्टि प्रजापतियोंके द्वारा होनेका वर्णन है। पुराणोंमें सृष्टिके स्तरोंका पूर्वापर ठीक वर्णन न रहनेसे और पूर्वकथित सृष्टिके तीनों स्तरों और उनके अन्तर्विभागोंका यथाक्रम प्रतिपादन न होनेसे समझनेमें कठिनता होती है और वर्णनशैली असम्बद्धसी प्रतीत होती है।

सत्य-मिथ्या आदि जिस किसी चिन्तामें जीवन बिताते हैं, उसीके अनुसार दूसरे जन्ममें उनकी प्रवृत्ति होती है । उसमें उनको किसी तरह हिचक नहीं होती । विधाताने स्वयं शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, प्राणियों और उनके शरीरोंका नानाविधत्व, नानारूपत्व और नानाकर्तृत्वका यथायोग्य विभाग कर दिया है । प्रलयका अन्त होनेपर उन्होंने वैदिक शब्दोंके आधारपर देवता, ऋषि और अन्यान्य सृष्टपदार्थोंका नामकरण किया है । जिस प्रकार ऋतु बदल जानेपर उस ऋतुके चिन्होंकी विविधता देख पड़ती है, उसी प्रकार युगके आरम्भमें सृष्टपदार्थोंकी उस युगके अनुसार विविधता हो जाती है। अव्यक्तजन्मा विधाता ही प्रलयके पश्चात् प्रत्येक कल्पके प्रारम्भमें इस प्रकारकी सृष्टि किया करते हैं ॥४०-४५॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सृष्टि प्रकरण नामक अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

उनचासवाँ अध्याय ।

क्रौष्टुकिने कहा,—हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोता मनुष्योंके सम्बन्धमें जो कुछ कहा, उसको फिर विस्तारपूर्वक कहिये । साथ ही यह भी बताइये कि, किन किन विशिष्ट गुणोंसे युक्त किस किस वर्णकी सृष्टि हुई है और ब्राह्मणादि वर्णोंका क्या क्या

अतः प्राकृतिक सृष्टि, दैवी मानससृष्टि और लौकिक मैथुनीसृष्टि इन तीनोंका स्तर अलग अलग ध्यानमें रखनेसे और दूसरी ओर दैवी सृष्टिका रहस्य समझनेसे जिज्ञासुओंकी शंका नहीं रह सकेगी । दैवी सृष्टिमें भगवान् ब्रह्माकी सृष्टि और ब्रह्माके पुत्र प्रजापतियोंकी सृष्टि और देवपिण्ड, सहजपिण्ड और मानवपिण्ड इन तीनोंके पृथक् अधिकार ध्यानमें रखनेसे सृष्टि प्रकरणके समझनेमें सुगमता होगी । साथही साथ दैवी मानस सृष्टिके आसुरी भेद, दैवी भेद और लौकिक मनुष्य तथा चतुर्विध भूतसङ्घके भेद अच्छी तरह समझलेनेपर सृष्टि प्रकरणका समझना सरल हो जायगा । बैजी अर्थात् मैथुनी सृष्टिका स्वरूप तो बुद्धिमानोंके सम्मुख विद्यमान ही है और वेद शास्त्र तथा पदार्थविद्याके द्वारा भी उसका बहुतसा रहस्य समझनेमें आता है । केवल पूर्व कल्पके अनुसार नवीन कल्पमें योगयुक्त अन्तःकरणसे "यथापूर्वमकल्पयत्" इस वैदिक आज्ञाके अनुसार जो मानस सृष्टि होती है, उसीका समझना कठिन है । उसके समझनेसे और समाधि प्रकरणको समझनेसे यह भी हृदयङ्गम हो सकेगा कि, वेदका आविर्भाव और पुराणोंका सृष्टिके आदिमें प्राकट्य होना भी विज्ञानसिद्ध है । भगवान् ब्रह्माके अन्तःकरणसे ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें वेदोंका सुना जाना वह आनन्दानुगत समाधिद्वारा सिद्ध है । तदनन्तर इसी क्रमके अनुसार समष्टि अन्तःकरणसे व्यष्टि अन्तःकरणमें विचारानुगत समाधिद्वारा पूर्व कल्पकी गाथा आदिका पुराणरूपसे भावके द्वारा प्रकट होना भी विज्ञानसिद्ध है । वेद यथावत् शब्दके द्वारा और पुराण भावके द्वारा प्रकट होते हैं ॥१३-४५॥

कर्तव्य है ? मारकंण्डेय बोले,—हे मुने ! सृष्टिके प्रारम्भमें चिन्ताशील ब्रह्माके मुखसे सत्व-गुण युक्त सहस्र मिथुनों (जोड़ों) की उत्पत्ति हुई। फिर वक्षस्थलसे रजोगुणयुक्त सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए। वे सभी बड़े तेजस्वी और क्रोधी थे। फिर उनकी जङ्घाओंसे जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए, वे रजस्-तमस्मिश्र स्वभाववाला और ईर्ष्यान्वित थे और दोनों पैरोंसे जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए, वे श्रीहीन, मन्दबुद्धि और तामसिक स्वभावके थे। इस प्रकार द्वन्द्वसे उत्पन्न प्राणिगण प्रसन्न चित्तसे परस्पर मैथुन करने लगे। तबसे प्रतिकल्पमें ऐसेही मिथुनोंकी सृष्टि होने लगी॥ १—८॥ उस समय प्रतिमास स्त्रियोंका आर्तव निःसृत नहीं होता था। अतः वे चाहे जब मैथुन क्यों न करें, उनके गर्भाधान नहीं होता था। केवल मृत्युकालमें ही वे मिथुन प्राणीको प्रसव करते थे। इसी तरह उस समय मिथुनों (जोड़ों) की उत्पत्ति हुआ करती थी। ब्रह्मा जब मनही मन प्रजाओंकी सृष्टिकी चिन्ता करते हैं, तब प्रजाओंके साथही साथ पञ्चमहाभूतों और शब्दादिकी उत्पत्ति होती है। इसीको प्रजापतिकी मानसी सृष्टि कहते हैं। इस समय उस सृष्टि-परम्पराके द्वारा सारा संसार परिपूर्ण हो रहा है। पूर्व युगमें प्रजाओंको न अधिक शीत लगता था, न उष्णता ही। इस कारण सभी नदी, सरोवर और समुद्रके निकट अथवा पर्वतोंपरही विचरण किया करते थे। उपभोग्य विषयोंको स्वाभाविक रूपसे ही प्राप्तकर वे तृप्तिलाभ करते थे और उनमें किसी प्रकारका व्याघात, द्वेष अथवा मत्सर आदि नहीं होता था। वे मकान नहीं बनाते थे और पर्वतों अथवा समुद्रके तटपर निवास करते थे। वे सदा निष्कामचारी और प्रसन्नचित्त हुआ करते थे॥ १०—१५॥ पिशाच, उरग, राक्षस, मत्सरी प्राणी, पशु, पक्षी, मगर, मछली, सरीसृप, अवारक (जलके तीरपर रहने वाले जीव) और अण्डज प्राणी अधर्मके द्वारा उत्पन्न हुए हैं। तब मूल, फल, फूल, ऋतु, संवत्सर, अति ग्रीष्म या अति शीत कुछ भी नहीं था। वह बड़ेही सुखका समय था। समय पाकर उस समयके लोगोंको अद्भुत सिद्धि प्राप्त हुई। पूर्वाह्न अथवा मध्याह्नमें उन्हें तृप्ति न होनेपर इच्छा करनेसे ही वे अनायास तृप्त हो जाते और इच्छा करने पर आयास (परिश्रम) भी करते थे। उस समय जलकी अति सूक्ष्मता होनेके कारण जीवों-को नाना प्रकारकी रसोल्लासवती सिद्धियां प्राप्त होती थीं और जीवोंकी सब अभिलाषाएं भी पूरी हो जाती थीं। उनके आहार्य पदार्थ शोभारहित होते थे और सभीका यौवन स्थिर रहता था॥ १६—२१॥ सङ्कल्प करनेसे ही वे मिथुन प्रजा एक साथ उत्पन्न कर सकते थे। वह मिथुन प्रजा एक साथ उत्पन्न होती और रूपादिकी समता प्राप्त कर एक साथ ही प्राण-त्याग करती थी। उनमें परस्परका अभिलाष या द्वेष नहीं रहता था। सभी समान-भावसे कालक्षेप किया करते थे। उनमें कोई उत्तम अथवा अधम नहीं था। क्योंकि सभी-

की आयु और रूप आदि समान थे। वह मिथुन प्रजा मनुष्योंके हिसाबसे चार सहस्र वर्ष जीती और बिनाक्लेशके प्राण त्याग करती थी। दैवयोगसे किसी किसी स्थानमें पृथ्वी ऐसी हो जाती थी कि, प्रजागण क्रमशः जीवन विसर्जन करदेते थे॥ २२—२५॥ उक्त प्रजाजन और सिद्धियोंका क्रमशः विनाश होनेपर मनुष्यगण आकाशसे टपक पड़े। फिर गृह (घर) नामक कल्पवृक्ष उत्पन्न हुआ और उस कल्पवृक्षके द्वाराही उन्हें सब प्रकारके भोग प्राप्त हुए। त्रेतायुगके आरम्भमें मनुष्य अपनी जीवनयात्रा इसी प्रकार निर्वाह करते थे। अनन्तर कालक्रमसे उनमें आकास्मिक राग उत्पन्न हुआ। रागके उत्पन्न होनेसे मानवी स्त्रियोंको प्रतिमास ऋतु और बार-बार गर्भाधान होने लगा तथा गृह नामक कल्पवृक्ष और उसकी शाखाएँ धीरे-धीरे सूखकर गिरने लगीं। जो कुछ वृक्ष बच गये, उनसे वस्त्र और उनके फलोंसे अलङ्कार बुनने लगे। उन फलोंकी प्रत्येक सतहमें सुन्दर गन्ध और रङ्गका अमाक्षिक (विना मक्खीका) मधु (शहद) होता था। त्रेतायुगके आरम्भमें उस बलकारक मधुका पान करके ही उस समयके लोग जीवन धारण करते थे। कालक्रमसे लोग अत्यन्त लोभी और ममतासे अभिभूत होकर उन वृक्षोंको एक दूसरेसे छीनने लगे। इस अपचोरसे उक्त सब वृक्ष विनष्ट हो गये॥२६—३३॥ फिर शीतोष्ण, क्षुधा आदि द्वन्द्वोंकी उत्पत्ति हुई। इन द्वन्द्वोंके प्रतिकारार्थ लोगोंने नगर बसाये। फिर मरुभूमि, पर्वतों, दरियों (खाइयों) और समुद्रोंमें बड़े-बड़े किले बने और घनघोर बनों, पर्वतों और समुद्रोंमें बने हुए किलोंका लोग आश्रय करने लगे। अपने अपने अङ्गुलोंके परिमाणसे वे सब कृत्रिम दुर्ग नापे गये और उनके परिमाणको जाननेके लिये नाप जोखके प्रमाण निश्चित करलिये गये। अति सूक्ष्मप्रमाणके लिये परमाणु, त्रसरेणु और धूलि तथा स्थूलप्रमाणके लिये केशाग्र, लिक्षा, यूका, यव आदि स्थिर किये गये। ग्यारह यवका एक अङ्गुल होता है। छः अङ्गुलका एक पद, दो पदकी एक वितस्ति (बित्ता) दो वितस्तिका एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ (टिहुनीसे मध्यमा अङ्गुलीके अग्रतकके भागतक) के चार हाथोंका एक धनुर्दण्ड (लट्ठा) अथवा नाडिकायुग, दो सहस्र धनुर्दण्डकी एक गव्यूति और चार गव्यूतिका एक योजन होता है। बुद्धिमान पुरुषोंने नाप जोखके लिये यह प्रमाण बांध रक्खा है ॥ ३४-४० ॥ पहिले जो दुर्ग कहे गये हैं, उनमें तीन प्राकृतिक और एक कृत्रिम (मनुष्यकृत) है। अर्थात मरुभूमि, पर्वतशिखर और समुद्रके दुर्ग प्राकृतिक और नगररूपी दुर्ग मनुष्यकृत है और मनुष्यको इसे बनाना भी चाहिये। नगररचना करते हुए मनुष्योंने हे द्विज! पुर, खेटक, द्रोणीमुख, शाखानगर, कर्वटक, त्रयी, ग्राम, संघोष और स्थान स्थानपर आवास (पड़ाव) आदि निर्माण किये। जिसके चारों ओर कोट और खाई खिंची हो, जिसका क्षेत्रफल एक गव्यूति अर्थात् दो कोसका हो और जो आठ हिस्सोंमें फैला हो, उसको पुर

कहते हैं यदि ऐसा पुर पूर्व और उत्तरकी ओरसे जलसे घिरा हो और उस जलसे पार उतरनेके लिये उसपर ठोस बांसका पुल बना हो, तो वह अधिक प्रशस्त है। पुरके जो लक्षण हैं, उनसे आधे लक्षण जिसमें हों, वह खेटक कहाता है। पुरके चतुर्थांश लक्षण-युक्त कर्वटक और अष्टमांश लक्षणयुक्त द्रोणीमुख कहाता है। जिसके आसपास कोट तो हो, परन्तु परिवार (खाई) न हो, उसे वर्मवत्पुर, और मन्त्री, आमात्य आदिके निवास के लिये जो बसाया गया हो, उसे शाखानगर कहते हैं। जहां शूद्र बसे हों और समृद्धि-मान् कृषक निवास करते हों, और जिसके चारों ओर खेत और फलफूलोंके बाग् हों, वह ग्राम कहाता है। किसी कार्यके उद्देश्यसे नगरसे आकर जहां लोग बसते हों, उसे वसति कहते हैं। जहांके लोग दुष्ट प्राय, बलवान् और अपना खेत न होते हुए भी दूस-रोंके खेतपर अधिकार करके वैठ गये हों, और जहां राजप्रिय लोग बसते हों, उस स्थानको अक्रिमी कहते हैं। जहां माल लादनेकी गाड़ियोंका गोपालनका व्यवसाय करने वाले ग्वाला रहते हों, अपनी गायें बांधते हों, परन्तु जहां दूकाने न हों और जहांकी मनमानी भूमि आंक ली गयी हो उसको घोस कहते हैं। इस प्रकारके अपने बसने योग्य नगरादि बसा लेने पर मनुष्योंने शीतोष्णादि द्वन्द्वोंके निवारण तथा वाणिज्य-व्यवसायादिके लिये नाना तरहके निकेतन (घर) बनाये। पहिले सब प्रजाके लिये वृक्ष ही घर हो रहे थे, किन्तु अब सबने वृक्षोंकी रचना देखकर उनके अनुसार अपने बसने योग्य घर बना लिये। गृह रचनामें वृक्षोंकी शाखाएँ वैसी ही तर ऊपर रखीं, जैसी वृक्षोंमें थीं। पहिले जो शाखाएं कल्पवृक्षमें थीं, अब वे घरोंमें धवन, कड़ी आदिके रूपमें लगा दी गयीं ॥ ४१—५३ ॥ हे द्विजोत्तम! घरोंके बन जाने पर लोगोंका शीतोष्णादि निवारणका काम तो बन गया, परन्तु अब वे जीविका

टीका: — जैसे पूर्ववर्णित चारों प्रकारके सृष्टिस्तर और उनके अवान्तर भेदोंका सामञ्जस्य करनेकी आवश्यकता थी, जैसा कि, पहले किया गया है, उसी प्रकार इस अध्यायमें कही हुई आदि मानव सृष्टिका सामञ्जस्य करके उसका रहस्योद्घाटन करनेकी बड़ी आवश्यकता है। क्योंकि यह वर्णन भी असम्बद्ध—सा प्रतीत होता है। अतः मानव पिण्डकी सृष्टिकी आदि अवस्था, मध्य अवस्था और अन्तिम अवस्था इन तीनोंका रहस्य बिना खोले मानव पिण्डका सृष्टि प्रकरण साधारण बुद्धिगम्य नहीं हो सकता। अन्यान्य शास्त्रोंमें वर्णन है कि, जब यह पृथ्वी मानववासोपयोगी बन गयी और चतुर्दश भुवन भी ढंगसे बन गये, तब मानव पिण्ड उत्पन्न हुआ। इसी कारण आकाशसे मनुष्यका टपक पड़ना कहा गया है। प्रथम सनकादि परमहंसोंकी पूर्ण सृष्टि हुई। वे भी भगवान् ब्रह्माजीके इच्छा मात्रसे टपक पड़े। वह प्रथम सृष्टि इतनी पूर्ण हुई थी कि, वे महापुरुष परमहंस हुए थे। और इच्छा रहित होनेसे वे सृष्टि करनेके अयोग्य और सृष्टिसे अतीत थे। तब भगवान् ब्रह्माने पुनः इच्छा की। तब प्रजापति नामक देवतागण उत्पन्न हुए। वह पहिली सृष्टिसे गिरी हुई सृष्टि थी। क्योंकि सृष्टिका प्रवाह नीचेकी ओर चलता ही है। प्रजापति गण मानस सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। उस समय तक सब देव पिण्डकी सृष्टि थी। तदनन्तर

निर्वाहके उपायकी चिन्ता करने लगे। क्योंकि मधु (शहद) के सहित सब कल्पवृक्ष अब नष्ट हो गये थे और इससे सब लोग विषादग्रस्त और भूख प्याससे अत्यन्त कातर हो उठे थे। त्रेता युगके आरम्भमें लोगोंको एक प्रकारकी सिद्धि प्राप्त हुई थी, जिससे उनकी जीविका सम्बन्धी चिन्ता दूर होगयी, उस समय जब कभी लोग इच्छा करते थे, उसी समय प्रचुर परिमाणमें वृष्टि हो जाती थी। वृष्टिका वह जल निम्नगामी होनेसे जहां तहां अड़ने और संगृहीत होने लगा और वही आगे चलकर स्रोतके द्वारा खात करता हुआ नदियोंके रूपमें परिणत हुआ। जो जल पहिले वृष्टिके द्वारा पृथ्वीपर गिरा था, वह अब पृथ्वीके संयोगसे दोष रहित हो गया। इस कारण उससे तर होकर पृथ्वीपर ग्राम्य और आरण्य चौदह प्रकारके वृक्ष और गुल्म आदि विना जोते बोये ही उत्पन्न होने लगे। ऋतु-कालमें आप ही आप वे फलफूल देने लगे। इस प्रकार त्रेतायुगके आरम्भमें सब प्रकारकी औषधियोंका प्रादुर्भाव हुआ था ॥५४—६०॥ हे मुने! तब प्रजामें अकस्मात् राग और लोभ उपजा और वे औषधि (वनस्पतियों) से उत्पन्न होने वाले पदार्थोंके द्वारा त्रेतायुगमें जीवन धारण किया करते थे। फिर जैसा जिसका बल होता, उसके अनुसार उस समयके लोग नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और औषधियोंको अपने काममें लाने लगे। हे द्विजवर! उनके इस दोषसे देखते देखते सब औषधियां नष्ट हो गयीं। हे महामते! उन सब औषधियों-को पृथ्वीने अपने उदरमें रख लिया। समस्त औषधियोंके लुप्त हो जानेसे फिर सब लोग व्याकुल और क्षुधातुर हो गये और परमेष्ठी ब्रह्माकी शरणमें जाकर अपना दुःख सुनाने लगे। विभु भगवान् ब्रह्माने सचमुच ही देखा कि, वसुन्धरा ग्रास कारिणी हो रही है। तब उन्होंनें सुमेरु पर्वतको (जो पृथ्वीका बछड़ा है) वशमें करके पृथ्वीको दुहा। इस

मानव पिण्ड और सहजपिण्डकी सृष्टि हुई है। तब सब मनुष्य पिण्डधारी जीव विभिन्न गुणोंके होनेपर भी एक ही अधिकार और रूपके थे। वे मानससृष्टि कर सकते थे और बैजी (मैथुनी) भी। इच्छाचारी होनेसे इच्छामात्रसे वे तृप्त हो सकते थे और प्रकृतिकी स्वाभाविक दशाके अनुसार अपनी जीवनयात्राका निर्वाह करते थे। सब आस्तिक और पूर्णावयव थे। इस कारण वे स्वभावसे धार्मिक थे। इसी अवस्थाकी महाभारतादि शास्त्रोंमें कहा गया है कि उस समयकी सृष्टिके मानव-पिण्डधारी सभी जीव ब्राह्मण थे। इस विज्ञानको दूसरे प्रकारसे भी समझ सकते हैं। अर्थात् भगवान् ब्रह्माकी प्रथम इच्छाशक्तिसे पूर्णज्ञानी परमहंस की पूर्णसृष्टि, तदनन्तर दैवीशक्ति सम्पन्न इच्छाशक्तिकी पराकाष्ठा रखनेवाले प्रजापतियोंकी सृष्टि और तीसरी अवस्थामें पूर्णवयव ब्राह्मणोंकी मानवपिण्डकी सृष्टि भगवान् ब्रह्माके इच्छा मात्रसे उत्पन्न हुई थी। वे सब प्रकृतिके प्रवाहके अनुकूल चलनेवाले होनेके कारण धर्मात्मा थे। तदनन्तर जब कर्मका विप्लव मनुष्यकी इच्छा शक्ति निरङ्कुश हो जानेसे बढ़ने लगा और मनुष्य पिण्डधारी जीव धार्मिक होकर उत्पन्न होने पर भी रागद्वेष तथा अभिनिवेशके बढ़ जानेसे प्रकृतिके स्वाभाविक स्रोतको छोड़कर दूसरी ओर अपनी इच्छसे बह निकले, तब प्रकृतिमाताने भी उनको अपनी गोदसे उतार दिया, तब सत्त्व, रज, तम

प्रकार दुहनेसे भूमाताने नाना प्रकारके शस्य उत्पन्न किये । उनसे बीज उत्पन्न होकर फिर ग्राम्य और आरण्यक औषधियां उत्पन्न हुईं जिनमें परिपक्व फल होते थे ऐसी ग्राम्य औषधियां सत्रह हुईं जो इस प्रकार हैं:—व्रीहि, यव, गेहूं, ककुनी, तिल, प्रियङ्गु (रामदाना), उदार, कोदो, चीनक, उर्द, मूंग, मसूर, पावठा, कुलथी, आढ़क और चना ॥६१—६६॥ ग्राम्यारण्य औषधियां चौदह प्रकारकी होती हैं और यज्ञके काममें उनका उपयोग किया जाता है । वे इस प्रकार हैं:—व्रीहि, यव, गेहूं, ककुनी, तिल, प्रियङ्गु, कुलथी सावां, नीवार, यत्तिल, गवेधुक, कुरुविन्द, मर्कटक (मकई) और वेणुयव । ये सब प्रकृष्ट औषधियां एकबार होकर जब फिर अङ्कुरित नहीं हुईं, तब उनके जिलाने और बढ़ानेका विचार ब्रह्माजी करने लगे । फिर उन्होंने कर्मज हस्तसिद्धि तैयार की । तबसे कृष्टपच्य (हलसे जोती बोई जानेवाली) औषधियां उत्पन्न होने लगीं । लोगोंके जीवन निर्वाह का इस प्रकार जब प्रबन्ध हो गया, तब प्रभु ब्रह्माने सबकी न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा बांध दी । हे धार्मिकवर ! उन्होंने वर्ण और आश्रमोंके धर्म तथा धर्मार्थपालक सब वर्णोंमें उत्पन्न हुए लोगोंके धर्मका निरूपण किया । क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके धर्मका निरूपण किया । क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये उन्होंने प्राजापत्य स्थान निर्धारित किया । संग्राममें पीठ न दिखाने वाले क्षत्रियोंके लिये इन्द्रस्थान, स्वधर्म परायण वैश्योंके लिये मारुत स्थान और परिचर्या निरत शूद्रोंके लिये गान्धर्वस्थान निश्चित किया । ऊर्द्ध्वरेता अठासी हजार ऋषियोंके लिये जो स्थान निश्चित था, वही गुरु गृहवासी ब्रह्मचारियोंको दिया गया । सप्तर्षियोंके लिये जो स्थान निर्दिष्ट था, वह वानप्रस्थोंके लिये; गृहस्थोंके लिये प्राजापत्य-

---

इन तीनों गुणोंका अलग अलग अधिकार भेद बना और कर्मकी संकरता उत्पन्न हुई, तो मनुष्य प्रजा नीचेकी ओर गिरने लगी । मानस बल घट जानेसे मानस सृष्टि करनेका अधिकार एकबार ही जाता रहा । मैथुनी सृष्टि ही चलने लगी । कामके बढ़ जानेसे इंद्रियसेवाजनित इच्छा शक्ति बढ़ गयी । सृष्टिका स्वाभाविक प्रवाह नीचेकी ओर है इसका विज्ञान पूर्व कथित तीनों स्तरोंसे ही समझमें आ सकता है । अतः जब सृष्टि कर्ता भगवान् ब्रह्माने देखा कि, मानवपिण्डकी सृष्टि अब नीचे की ओर बही जाती है, और कर्म सांकर्यसे वर्णसंकर बनती जाती है, तो उनको भय हुआ कि, मानव सृष्टि क्रमशः अध्यात्म लक्षण विहीन, धर्म लक्ष्यच्युत और इन्द्रिय सेवी होकर असभ्य और बर्बर होकर नष्ट भ्रष्ट हो सकती है । पृथ्वीके इतिहासके पाठ करनेसे भी इसकी सत्यता बुद्धिमान मात्रको प्रतीत होगी कि कालान्तरमें कैसे मनुष्य जाति धर्म और अध्यात्मिक लक्ष्यविहीन होकर असभ्य और बर्बर हो जाती है । तब भगवान् ब्रह्माने मनुष्योंपर कृपा करके दृढ़ दार्शनिक भित्तिपर स्थित वर्णाश्रमकी सामाजिक शृंखलाको धर्मशास्त्रके द्वारा बांध दिया । वर्ण धर्म और आश्रम धर्मकी अकाट्य दार्शनिक युक्तिके द्वारा सुरक्षित अलौकिक शृंखलाका यह मौलिक रहस्य है वर्णाश्रमके दृढ़ बंध्य (बांध)ने सभ्य मनुष्य जातिके इस नीचे बहनेवाले स्रोतको सृष्टिके उस प्रथम समयमें रोक दिया था और अब भी वह

स्थान, संन्यासियोंके लिये ब्राह्मपद और योगियोंके लिये अमृतस्थान निर्मित हुआ। इस प्रकार मैंने आपसे स्थान कल्पनाका वर्णन कथन कर दिया है ॥७०—८०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सृष्टि प्रकरण सम्बन्धी
उनचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

पचासवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर ब्रह्माजी फिर चिन्ता करने लगे, तो उनके शरीरसे कार्य और कारण सहित समस्त मानसी प्रजा उत्पन्न हो गई। धीमान् ब्रह्माके शरीरसे देवज्ञ उत्पन्न हुए और इनके अतिरिक्त जिनकी उत्पत्ति हुई उनका उल्लेख पहिले हो चुका है। देवताओंसे लेकर स्थावर तक सभीको त्रैगुण्य विशिष्ट जानना चाहिये। स्थावर जङ्गमात्मक सब सृष्ट पदार्थ त्रिगुणमय हैं। जब इतनी सृष्टि करनेपर भी ज्ञानी ब्रह्माकी प्रजा नहीं बढ़ी, तब उन्होंने अपने ही समान भृगु आदिको उत्पन्न किया। पुराणोंने निश्चित किया है कि, भृगु पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अङ्गिरा, मारीचि, दक्ष, अत्रि और वशिष्ठ येही नौ ब्रह्माके मानसपुत्र हैं। ब्रह्माने फिर अपने क्रोधसे रुद्र को उत्पन्न किया और साथ ही अब तक जो कुछ उत्पन्न किया था, उसके भी पूर्वज संकल्प और धर्मको भी उत्पन्न किया। सनकादिकी जो ब्रह्माने पहिले सृष्टिकी थी, वे सभी भविष्यत्को जाननेवाले, वीतराग, निर्मत्सर, निरपेक्ष और समाधि सम्पन्न होनेसे प्रजाओंकी सृष्टि करनेमें प्रवृत्त नहीं हुए ॥ १-८ ॥ प्रजाकी सृष्टि करनेमें उन्हें निरपेक्ष देखकर ब्रह्माको बड़ा क्रोध हुआ; उस क्रोधसे एक प्रचंड शरीरवाला और सूर्यके समान कान्तिवाला पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसका आधा शरीर

दृढ़ बन्ध उस निम्नगामी प्रवाहको रोके हुए है। जबतक वर्णाश्रम शृंखलाका बीज रहेगा, पृथ्वीके रंगमंच से धर्मप्राण और आध्यात्मिक लक्ष्ययुक्त मनुष्यजातिका लोप नहीं होगा और उसके द्वारा देवलोकका भी अभ्युदय बना रहेगा ॥ १—८०॥

टीका :—प्रजा नहीं बढ़नेका कारण पहिले कहा गया है, जो अन्य पुराणोंमें स्पष्ट है। अर्थात् सनकादि परमहंसों द्वारा सृष्टि बढ़ी ही नहीं। क्योंकि वे वासना रहित और आत्माराम थे। वेदोक्त सृष्टि प्रकरणमें पहिली सृष्टि पूर्ण मानी जाती है। तदनन्तर सृष्टि क्रमशः नीचेकी और गिरती रहती है। यथाः— सनकादि पारमहंस सृष्टि, भृगु आदि प्रजापतियोंकी सृष्टि, मानस सृष्टि और बैजी सृष्टि। तदनन्तर सृष्टिकी अत्यन्त अधोगति और उसको रोकनेके लिये वर्णाश्रम बांधकी आवश्यकता। यही क्रम सृष्टि प्रकरणका है। क्रमका वर्णन अलग अलग न होनेके कारण कहीं कहीं समझनेमें कठिनता होती है। इसी वैज्ञानिक सिद्धान्तानुसार सब वर्णन यथास्थान देखने पर विरोधकी प्रतीति नहीं होगी ॥ १—८ ॥

स्त्रीका था। उस पुरुषसे यह कहकर कि, तुम अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त कर दो, ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये। ब्रह्माकी आज्ञाके अनुसार उस पुरुषने भी अपने शरीरको दो भागोंमें विभक्त कर दिया, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् पृथक् दिखाई देने लगे। फिर उन्होंने पुरुषत्वको और स्त्रीत्वको ग्यारह भागोंमें बांट दिया और उनके सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित, आदि भेदोंसे अनेक विभाग कर दिये। प्रभु ब्रह्माके क्रोधसे उत्पन्न हुए आत्मसदृश पुरुषके पुरुष अंश सम्भूत पुरुषका उन्होंने 'स्वायम्भुव मनु' नाम रक्खा और उसे प्रजापालक बना दिया तथा उस दिव्य पुरुषके स्त्री अंशसे जो स्त्री बनी, जिसके सब पातक नष्ट हो गये थे, उसे 'शतरूपा' के नामसे विख्यात किया। देव विभु स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको पत्नीके रूपमें ग्रहण किया ॥ ६—१४ ॥ शतरूपाके गर्भसे स्वायम्भुव मनुको दो पुत्र और दो कन्याएँ हुईं। प्रथम पुत्रका नाम प्रियव्रत और दूसरेका नाम उत्तानपाद रक्खा गया। दोनों अपने अपने कर्मोंसे बहुत विख्यात हुए। कन्याओंमेंसे एकका नाम ऋद्धि और दूसरीका नाम प्रसूति था। पिताने ऋद्धिका रुचिप्रजापतिके साथ और प्रसूतिका दक्ष प्रजापतिके साथ विवाह कर दिया। हे महाभाग! प्रजापति रुचिके भी एक पुत्र और एक कन्या हुईं। पुत्रका नाम यज्ञ और कन्याका नाम दक्षिणा रक्खा गया। यज्ञ और दक्षिणामें विवाह हो गया। उनके जो बारह पुत्र हुए, स्वायम्भुव मन-वन्तरमें वे "याम" नामक देवता कहे जाते थे ॥ १५—१८ ॥ भास्वर आदि और कितने ही पुत्र यज्ञ और दक्षिणासे हुए थे। इधर दक्ष प्रजापतिसे प्रसूतिके गर्भके द्वारा जो चौबीस कन्याएँ हुईं, उनके यथाक्रम नाम गिनाता हूं, सुनो। श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि और कीर्ति ये तेरह कन्याएँ जो सुन्दर नेत्र-वाली और युवती हो चली थीं और ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा, उन्नति, अनुसूया, ऊर्ज्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे प्रसिद्ध थीं, वे यथा क्रम भृगु, महादेव, मरीचि, अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वशिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगणसे ब्याह दी गयीं। इस प्रकार उत्तम मुनियोंके साथ दक्षकी कन्याओंका विवाह होगया। उनमेंसे श्रद्धाने कामको, लक्ष्मीने दर्पको, धृतिने नियमको, तुष्टिने सन्तोषको, पुष्टिने लोभको, मेधाने श्रुतिको, क्रियाने दण्ड, नय तथा विनयको, बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसायको, शान्तिने क्षमाको, सिद्धिने सुखको, और कीर्तिने यशको प्रसव किया। ये ही धर्मकी सन्तान हैं। कामसे अत्यन्त हृष्ट हर्ष नामक धर्मका पौत्र हुआ ॥ १६—२८ ॥ अधर्मकी पत्नीका नाम

टीकाः—मनुकालके अधिदैव और उसका प्रमापक देवपद है। यह भी दैवी सृष्टिका ही विषय है तथा यह सृष्टिकी आदि अवस्थाका ही वर्णन है। प्रजापतियोंकी दैवीसृष्टिके साथ ही साथ यह सृष्टि हुई थी, ऐसा समझा जाय ॥ ९—१४ ॥

हिंसा है, उसके गर्भसे अनृत नामक एक कन्या हुई। अनृत और निऋतिमें दाम्पत्य सम्बन्ध स्थापित होनेपर उनसे नरक और भय नामक दो पुत्र तथा माया और वेदना नामक दो कन्याएँ उत्पन्न हुईं। यथाक्रम वे दोनों कन्याएँ दोनों पुत्रोंके साथ मैथुन करने लगीं। माया और भयके जोड़ेसे प्राणिगणका संहार करनेवाला मृत्यु नामक एक पुत्र और नरक तथा वेदनाके जोड़ेसे दुःख नामक एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई। मृत्युसे व्याधि, जरा, तृष्णा, शोक और क्रोध नामक सन्तति हुई। यह सभी दुःखोद्भवा और अधर्म परायण थीं। इस सन्ततिके भार्या या सन्तति कुछ भी नहीं थी, क्योंकि ये सभी ऊर्ध्वरेता थे॥ २८—३२॥ हे मुनिवर! मृत्युकी एक दूसरी भार्या थी, उसका भी नाम निऋति ही था; किन्तु उसे लोग अलक्ष्मी कहते हैं। उससे मृत्युने चौदह सन्तान उत्पन्न किये। मृत्युके आज्ञाकारी ये सभी पुत्र "अलक्ष्मी तनय" के नामसे प्रसिद्ध हैं। ये जब मनुष्यका विनाशकाल उपस्थित होता है, तब उसे घेरते हैं। मनुष्य पर ये किस प्रकार आक्रमण करते हैं, यह अब मैं बताता हूं, सुनो। प्रथम दश पुत्र तो मनुष्यके दशों इन्द्रियों पर और ग्यारहवां मनपर अधिकार कर लेता है। यही समस्त स्त्री पुरुषोंको अपने अपने विषयोंमें संयोजित करता है। फिर राग-क्रोधादिके द्वारा सब इन्द्रियोंको पछाड़ कर उन्हें अधर्म आदिके साथ मिला देता है। इससे प्राणियोंकी बड़ी हानि होती है। बारहवां मृत्युपुत्र अहङ्कारका आश्रय करके रहता है। तेरहवां बुद्धिको काबूमें कर लेता है। इसीके प्रभावमें आकर पुरुषगण स्त्रियोंके विनाशको प्रवृत्त होते हैं॥ ३३—३७॥ अलक्ष्मीके चौदहवें पुत्रका नाम दुःसह है। यह मनुष्योंके घर घरमें वास करता है। यह कभी अघाता नहीं। सदा भूखा, अधोमुख, नंगा, चीरधारी और कौए जैसा कर्कश शब्द करनेवाला होता है। ज्ञात होता है कि, जान बूझकर समस्त पदार्थोंको भक्षण करनेके लिये ही मानो ब्रह्माने इस तपोनिधिको उत्पन्न किया है। दंष्ट्रा कराल, मुँह बाये हुए और अत्यन्त भयंकर उस दुःसहको समस्त सृष्ट पदार्थोंको भक्षण करनेमें जब उद्यत देखा, तब सर्व ब्रह्ममय, विशुद्ध और जगत्के कारण लोक पितामह ब्रह्माने उससे कहा कि, हे दुःसह! जगत्को भक्षण कर जाना तुम्हें उचित नहीं है। क्रोध छोड़कर तुम शान्त हो जाओ। इस तमोगुणी वृत्तिको हटा दो और रजोगुणके अंशको भी त्याग दो। तब दुःसह बोला,—हे जगन्नाथ। मैं क्षुधासे अत्यन्त कृश और प्याससे बहुत ही दुर्बल हो गया हूं। हे नाथ! मैं किस प्रकार अपनी भूख प्यास बुझाकर अपनी तृप्ति कर लूँ और किस प्रकार बलवान् होऊँ तथा किसका आश्रय करके सुखपूर्वक रहूं, यह कृपा करके मुझे बता दीजिये॥ ३८—४२॥ ब्रह्माने कहा,—हे वत्स! मनुष्योंके घरोंमें ही तुम्हारा वास रहेगा। अधार्मिक लोग ही तुम्हारा बल होंगे। लोगोंके नित्य कर्मोंकी हानि होनेसे ही तुम्हारी पुष्टि हो जायगी। फोड़ा-फुन्सी तुम्हारा वस्त्र होगा। अब

तुम्हारे लिये आहार भी बता देता हूं। जहां कीड़े पड़ गये हों और जो कुत्तोंसे काटा गया हो, वह क्षतका (घावका) स्थान ही तुम्हारा आहार है। जो फूटे बासनमें हो, मुँहकी वायुसे ठण्ढा किया गया हो, जूठा हो, अपक्व (कच्चा) हो, छाना बीना न हो, किसी प्राणीने जिसे चाट लिया हो, जो शुद्ध न किया हो, फटे आसन पर बैठकर किसी व्यक्तिके द्वारा जो खाया गया हो, जो समीप आगया हो, विदिशाओंमें अथवा दोनों सन्ध्या कालोंमें नृत्य, वाद्य और गीतके द्वारा संस्कृत किया गया हो, रजस्वला द्वारा जो छू गया हो, अथवा देखा गया या जूठा किया गया हो, और जो विघ्नोंसे भरा हो, ऐसा प्रत्येक पदार्थ तुम्हारा खाद्य और पेय है। हे दुःसह! तुम्हारी पुष्टिके लिये और साधन भी बता देता हूं॥ ४३—४७॥ जिसका अश्रद्धा पूर्वक हवन किया गया हो, मूर्खोंके द्वारा जो दान किया गया हो, विना जल दिये ही जिसका दान संकल्प हुआ हो, जो अनर्थके लिये किया गया हो, परित्यागके लिये ही जिसका आविष्कार हुआ हो, बड़े विस्मयसे जो अर्पित हुआ हो, जो दूषित हो गया हो या क्रुद्ध और आर्त व्यक्तिके द्वारा समर्पित हुआ हो, जिसका ऐसा ही फल हो अर्थात् जिसके द्वारा क्रोध और आर्ति उत्पन्न हो तथा हे यक्ष! पौनर्भव सन्तान अर्थात् विधवाकी सन्तान, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, जो कुछ आमुष्मिक कर्म करे, वह तुम्हारे वशमें रहेगा और उसीसे तुम तृप्ति लाभ करोगे। हे यक्ष! कन्याका शुल्क पैंठनेमें जो धनका व्यवहार अच्छी तरह हुआ हो और असत् शास्त्रोंके आधार पर जो क्रियाएं सम्पन्न हुई हों, उनसे तुम्हारी अच्छी पुष्टि होगी। जिसका कोई अर्थ न हो, किन्तु अनर्थकारी हो और सत्य रूपसे अध्ययन न किया गया हो, हे दुःसह! वह तुम्हारी पुष्टिका कारण होगा। तुम्हारी पुष्टिके लिये कौनसा समय उपयुक्त है, यह भी कह देता हूं, सुन लो। जिस समय लोग गर्भिणी स्त्रीके साथ मैथुन करते हों अथवा सन्ध्या और नित्य कर्मका व्यतिक्रम करते हों तथा मनुष्य जब दुष्ट शास्त्रोक्त कार्योंको करते हुए दूषित होते हों, हे दुःसह! उसी समय तुम्हें अभिभवकी शक्ति प्राप्त होगी॥४८—५४॥ पंक्तिभेद (एकको कुछ परोसना और दूसरेको कुछ), वृथा, पाक (अकारण अन्न पकाना) और पाकभेद (एकके लिये कुछ वस्तु बनाना और दूसरेके लिये कुछ और ही) ऐसे ही कार्य करते रहना तुम्हारा कर्तव्य होगा और जहां नित्य गृह कलह होता हो, वहीं तुम रममाण रहोगे। जहां गाय बैल और वाहनके अन्य पशु विना पालन पोषणके वृथा बांध रखते हैं और सुबह शाम जो घर परिष्कृत नहीं किये जाते, वही सब लोग तुमसे भय करेंगे। नक्षत्र पीड़ा, ग्रह पीड़ा और त्रिविध उत्पात देख लेने पर भी जो उनकी शान्ति नहीं करेंगे, उन मनुष्योंको तुम अभिभूत करोगे। जो वृथा उपोषण करते हों, जूआ खेलते हों और स्त्रियोंके प्रति सदा असक्त रहते हों, जो तुम्हारे सम्बन्धके

कथोपकथनमें सहायक होते हों और विड़ालव्रती (बिल्लीके समान धोखा देनेकी बुद्धि रखने वाले हों, अब्रह्मचारी व्यक्तिसे पढ़े हों, मूर्खके द्वारा यज्ञ कराते हों, अपने मनको काबूमें न रखकर जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र परलोकके सुखकी इच्छा रखकर तपोवनमें ग्राम्यभोग विलासमें प्रवृत्त हों और अपने कर्मसे भ्रष्ट हो गये हों, उनके कर्मों से जो फल मिलना सम्भव हो, हे यक्ष! वह सब तुमको प्राप्त होगा। तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी कुछ दे रखता हूं, उसे जान लो ॥५५—६१॥ वैश्वदेवके अन्तमें तुम्हारा नाम उच्चा-रण करके "यह तुम्हारा है" कहकर मर्त्यगण तुम्हें ऊर्जित बलि प्रदान करेंगे। जो व्यक्ति विधिपूर्वक संस्कार किये हुए पदार्थोंका भोजन करता हो, जो भीतर बाहर विशुद्ध, सदा पवित्र और निर्लोभ हो और जिसे स्त्रियां अपने जालमें फँसा न सकती हों, उस घरको तुम छोड़ दोगे। जिस घरमें हव्य कव्यके द्वारा देवता और पितृगण सदा पूजित होते हों, जिस घरमें गृहदेवियों और अतिथियोंका सदा सत्कार होता हो, हे यक्ष! उस घरमें तुम ठहर नहीं सकोगे। जिस घरमें आबाल, वृद्ध, स्त्री, पुरुष निरन्तर परस्पर प्रेम भावसे रहते हों, उस घरका तुम परित्याग कर दोगे। जिस घरकी कुल कामिनियां प्रेममयी, बाहर भटकनेकी इच्छा न रखनेवाली और सदा लज्जावती हों, उस घरमें तुम्हारा चारा नहीं चलेगा ॥ ६२—६६ ॥ जिस घरमें वयः सम्बन्ध योग्य (जिस उम्रमें जितनेकी जरूरत है) निद्रा और भोजनकी व्यवस्था है, हे यक्ष! उस घरको तुम्हें छोड़ देना चाहिये, ऐसी मेरी आज्ञा है। हे दुस्सह! जिस घरके पुरुष अत्यन्त दयालु और सदा सत्कार्योंमें निरत हों और जिनके जीवन निर्वाहकी साधन सामग्री साधारण हो, उस घरका तुम्हें त्याग कर देना चाहिये। गुरु, वृद्ध और ब्राह्मणोंके आसन पर आसीन होनेपर भी जिस घरके लोग स्वयं

टीका:—यह अपूर्व वर्णन वृत्ति राज्यकी सृष्टिका है। यह अलौकिक विज्ञान आर्य सभ्यताके मौलिक सिद्धान्तोंसे भरा हुआ है। यह सृष्टि प्रकरण भी सनकादिकी परमहंस सृष्टि दक्ष आदि प्रजापति और मनु आदि देवपदोंकी सृष्टिकी तरह दैवी सृष्टिका विषय है। इसको अच्छी तरह समझ लेनेसे मनुष्योंको धर्माधर्म रहस्य, काम, अर्थ, धर्म और मोक्षके पथोंका हाल जानकर आर्यसभ्यताकी भित्ति और उसके अध्यात्मलक्ष्यका भी पता लग सकता है। यह वर्णन समाधिभाषासे पूर्ण है। वैदिक सिद्धान्तके अनुसार यह स्थूल मृत्युलोककी सृष्टि चतुर्दश लोकमय एक ब्रह्मांडकी संपूर्ण सृष्टिके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा मात्र है। यह पहिले भली भांति कहा गया है। यह भी भली भांति समझाया गया है कि, यह स्थूल मृत्युलोककी सब अवस्था सूक्ष्म दैवीलोकके आश्रय पर निर्वाहित होती है। इसी कारण प्रत्येक स्थूल भूतके अङ्ग पर्वत, नदी, समुद्र, सोना, चांदी, हीरा, पन्ना आदि सबका अलग अलग अधिदैव अर्थात् रक्षक देवताका होना हमारा शास्त्र स्वीकार करता है। इसी तरह उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज रूपी चतुर्विध भूतसङ्घके प्रत्येक विभागका अलग अलग अधिदैव होना भी आर्यशास्त्र मानता है। पीपल वटसे लेकर चावल, गेहूं आदि सब उद्भिज्जोंकी अलग अलग एक एक देवता रक्षक और चालक है। वेही देवता एक योनिके जीवको

आसनोंपर नहीं आ डटते, हे यक्ष! उस घरमें तुम कभी न जाना। जिस घरका द्वार वृक्ष गुल्मादिसे छेंका हुआ न हो और जहांके पुरुषोंका कभी मर्मच्छेद न होता हो, वह घर तुम्हारे लिये मङ्गलकारक नहीं हो सकता। जिस पुरुषकी जूठनसे भी देवता, पितृगण, मृत्युलोकके जीव और अतिथियोंकी जीवन यात्राका निर्वाह होता है, उस पुरुषके घरको तुम्हें छोड़ देना चाहिये। जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसा, किसीको ताप न देने वाले और असूयाके वशीभूत हुए न हों, हे यक्ष! ऐसे पुरुषोंके यहां तुम्हें नहीं जाना चाहिये।

दूसरी योनि तक पहुंचा भी देते हैं। तभी जीवका क्रमविकाश और अभ्युदय होता है। इसी तरह स्वेदज सृष्टिके रोगघ्न और रोगद नाना प्रकारके जीवोंका हाल जिनका रहस्य अब पदार्थवादी कुछ कुछ समझने लगे हैं, हमारे पूर्वज त्रिकालज्ञ ऋषिगण पहिलेसे ही जानते थे। ऐसे ही महामारी आदिके स्वेदज कीट और नाना पीड़ा देनेवाले कीटोंसे लेकर भगवती गङ्गा नदी तकके पवित्र करनेवाले और सब रोगोंको नाश करनेवाले रोगघ्न कीटों तकका रहस्य वे त्रिकालदर्शी महर्षिगण जानते थे। ऐसे ही उद्भिज्ज, ऐसे ही स्वेदज और मयूर, कोकिल, काक, हंस, कबूतर, सर्प आदि सब अण्डज सृष्टि और हाथी, घोड़ा, महिष, गौ आदि सब जरायुज सृष्टिके जितने लाखों भेद हैं, उनकी सब अलग अलग जीवजातिका चालक और रक्षक एक एक देवता इन्द्रादि देवताओं द्वारा अलग अलग अपने अपने कामों पर नियत किया जाता है। यदि जीव संख्या बढ़ती है, तो पदोंकी संख्या बढ़ती और जीव संख्या घटती है, तो इन पदोंकी संख्या भी घट जाती है। यह सभी स्थायी देवपद और सूक्ष्म दैवी सृष्टिका विषय है। जिसकी कल्पना करना भी आजकलके पदार्थविद्यावादी साइण्टिस्टोंको असम्भव है। क्योंकि उनकी दृष्टि केवल परमाणु तक पहुंचती है। स्थूलके पीछे जो बड़ा भारी दैवीराज्य है, उसकी कल्पना भी वे नहीं कर सकते। जिस प्रकार यह सब दैवीसृष्टि रहस्यमयी है, उसी प्रकार वृत्तिराज्यकी सृष्टि भी अति रहस्यमयी है। पुण्य, पाप, सत्-असत्, धर्म-अधर्म आदिको स्थायी रखनेवाला वृत्तिराज्य है। अन्तःकरणका स्वरूप भी वृत्तिमय है और अन्तःकरण ही सबका चालक है। ऐसा वृत्तिराज्य दिन और रातके उदाहरणके अनुसार अक्लिष्ट और क्लिष्टरूपसे दो भागोंमें विभक्त है। अक्लिष्ट वृत्तिके चालक देवतागण और क्लिष्ट वृत्तिके चालक असुरगण हैं। ऊपर कथित यक्ष-राक्षसादिका जो वर्णन है, वह असुरी सृष्टिसे ही सम्बन्ध रखता है। देवता और असुर दोनों ही दैवी सृष्टिके अङ्ग हैं। हमारा पिण्ड जैसा मनुष्य पिण्ड कहाता है, वैसा देवताओंका देवपिण्ड कहाता है। देव पिण्डधारी नाना देवता और नाना असुर इस स्थूल मृत्युलोकमें नाना धर्म और अधर्मकी क्रियाके सञ्चालक रूपसे नियुक्त भी रहते हैं। यदि कभी दैवी जगत्में देवता हार जाते और देवासुर संग्राममें असुर जीत जाते हैं; तो इस मृत्युलोकके देवपदों पर भी असुरोंका पूर्ण अधिकार हो जाता है। असुरगण युद्धमें जय लाभ करने पर केवल भूः भुवः स्वः इन्हीं तीनों लोकों पर ही अपना अधिकार जमा सकते हैं, आगे नहीं जा सकते। स्वर्गलोकमें देवराजकी राजधानी है। इस कारण वहीं तक असुरोंकी गति हो सकती है। आगेके उन्नतलोकोंमें उनका प्रवेश असम्भव है। यही देवासुर राज्यका संक्षिप्त रहस्य है। जब अन्तःकरणकी वृत्तियां ही उन्नत मनुष्य योनिमें धर्म और अधर्म, सत् और असत् तथा ज्ञान और अज्ञानकी क्रियाएं उत्पन्न किया करती हैं, तो उन वृत्ति समूहोंकी शक्ति सर्वोपरि है। जब उद्भिज्ज, स्वेदज आदि जड़ योनिके अलग अलग चालक देवता हैं, तो सूक्ष्म और अति

जो रमणी सर्वदा पति सेवामें तत्पर रहती है और असती स्त्रियोंका साथ नहीं करती तथा कुटुम्बियों एवं पतिदेवके भोजन करके बचे हुए अन्नसे जीवनकी रक्षा करती है, हे यक्ष! ऐसी ललनाकी ओर तुम आँख उठाकर भी नहीं देखना ॥ ६७—७३ ॥ जो द्विज यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानमें सदा आसक्त रहते हैं तथा याजन, अध्यापन और प्रतिग्रहके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, ऐसे ब्राह्मणोंसे हे दुःसह! तुम कभी छेड़छाड़ न करो। जो क्षत्रिय सर्वदा दान, अध्ययन और यज्ञ करनेमें उद्युक्त रहते हैं और अपनी पवित्र शस्त्र जीविकाके द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, ऐसे क्षत्रियोंको तुम छोड़ दो। जो वैश्य दान, अध्ययन और यज्ञ कर्मके साथ ही साथ पशुपालन, वाणिज्य और कृषिकार्यके द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं, ऐसे निष्पाप वैश्योंको तुम त्याग दो। जो शूद्र यज्ञ, दान और ब्राह्मण सेवामें तत्पर रहते हैं और ब्राह्मणादिकी सेवासे अपना पोषण करते हैं, हे दुःसह! ऐसे शूद्रोंके पास तुम कभी न जाओ। जहां विद्वान् लोग घरमें बैठकरही श्रुति-स्मृतिके अविरोधी कार्योंसे जीविका निर्वाह करते हैं, जिनकी स्त्रियां उन्हींकी अनुगत होती हैं, जिनके पुत्र देवता, गुरु और पितरोंकी पूजा करते हैं तथा जहांकी सब स्त्रियाँ पति सेवा किया करती हैं, हे यक्ष! वहां तुम्हारी गति नहीं है; वहां तो सदा समृद्धि बनी रहेगी ॥७४—७६॥ हे यक्ष! जो घर सुबह दुपहर और सन्ध्याकालमें अच्छी तरह झाड़ा बहोरा, लीपापोता और जलसे धोया जाता है, उसे देखनेमें भी तुम समर्थ नहीं हो सकते। जिस घरकी सेजपर सूर्यकी किरणें नहीं पड़ती अर्थात् जिस घरके लोग सूर्योदयके पहले ही उठ जाते हैं, जिस घरमें अग्नि और जल सदा विद्यमान रहता है और घरमें अच्छी धूप आती है, वहीं लक्ष्मीका निवास रहता है। जिस घरमें चन्दन, वीणा, मधु, घृत, ब्राह्मण और ताम्रपात्रोंका व्यवहार होता है, वहां तुम्हारा आश्रय हो नहीं सकता। जिस घरमें कांटोंका वृक्ष, निष्पावकी लता, विधवासे उत्पन्न हुई पत्नी और वल्मीक (बांबी) बना हो हे यक्ष वह तुम्हारा ही घर है। जिस घरमें पांच पुरुष, तीन स्त्रियां, तीन गायें, अन्धकार, काठ और अग्नि रहती हो, उस घरमें तुम्हारा निवास रहेगा। हे यक्ष! जिस घरमें एक छाग (बकरा), दो बछिया, तीन गायें, पांच भैंसे, छः घोड़े और सात हाथी हों, उसको तुम शीघ्र ही शोषण कर सकोगे अर्थात् तुम उसे नष्ट कर दोगे ॥८०—८५॥ कुदारी, पिटनी कची तथा थाली, लोटा आदि पात्र जिस घरमें बिखरे पड़े हों, वही तुम्हारे आश्रयका

बलशाली वृत्ति समूहोंकी शृङ्खलाकी व्यवस्था रखनेवाले देवता और असुर अलग अलग होना स्वतःसिद्ध है। वृत्तियां उनका अध्यात्मरूप हैं, जैसा कि, ऊपर कहा गया है। उनके अधिदैव भी अलग अलग हैं जैसा कहा गया है और उनके अधिभूत रूप उनके क्रिया समूह हैं ॥ ६७—७३ ॥

स्थान है। जिस घरमें मूसल, ओखली, झाड़ू और औदुम्बरकी स्त्रियां उपेक्षा करती हैं, वह घर तुम्हारे लिये उपकारक है। जिस घरमें पकेपकाये या कच्चे अन्नका दुरुपयोग होता है और शास्त्र मर्यादाका उल्लंघन होता है, हे दुस्सह! उस घरमें तुम जितना चाहे, विचरण किया करो। जिस घरमें थाल ढांकते समय करछुलसे अग्नि दिया जाता है, वहां समस्त अरिष्टोंका आवास रहता है। मनुष्यकी हड्डी अथवा शव जिस घरमें दिनरात पड़ा रहे, वहीं तुम्हारा और अन्यान्य राक्षसोंका निवास रहेगा ॥ ८०—९० ॥ जहांके लोग बन्धु, सपिण्ड और सोदकोंके उद्देश्यसे पिण्ड अथवा जल दान नहीं करते, वहीं तुम पहुंच जाया करोगे। जहां पद्म और महापद्म संख्यक धन विद्यमान हो, जहांकी युवती स्त्रियां नित्य मोदक (मिष्टान्न) भक्षण करती हों और जहां वृषभ और ऐरावत (सब गुणोंसे युक्त हाथी) झूमता हो, उस घरमें तुम प्रवेश नहीं करना। युद्ध कालके न रहते हुए भी जहां अशस्त्र देव विग्रह सशस्त्र कल्पना करके पूजे जाते हैं, उस मन्दिरमें तुम प्रवेश नहीं करो। इसी तरह जहां पुरवासी तथा नागरिक गण सदासे चले आये महोत्सव किया करते हैं, वहां तुम्हारा जाना ठीक नहीं है। जो सूपसे हवा लेते, घड़ेसे, निचोड़े हुए वस्त्रके जलसे अथवा पैरके नखोंसे छुए हुए जलसे स्नान करते हैं वे कुलक्षणी लोग होते हैं; उनके पास तुम जा सकते हो। जो लोग देशाचार, लोकाचार, समय ज्ञाति धर्म, जप, होम, मङ्गलकार्य देव पूजा और उत्तम शौचाचारका पालन करते हैं, तुम्हारा उनका साथ हो नहीं सकता। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विजवर! दुःस्सहको इस प्रकार आदेश कर ब्रह्माजी वहीं अन्तर्हित होगये। दुःसह भी ब्रह्माके अनुशासनके अनुसार आचरण करने लगा ॥ ९१—९७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डे महापुराणका यक्षानुशासन नामक पचासवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीक—ये सभी बातें सृष्टि राज्य सम्बन्धीय सृष्टिकी हैं, जैसा पहिले कहा गया है। धर्मके सम्बन्ध से लक्ष्मी और अधर्मके सम्बन्धसे अलक्ष्मीका होना स्वतः सिद्ध है। अलक्ष्मीकी सन्ततिके सम्बन्धका ऊपर लिखित उपदेश भी स्वतः सिद्ध है। ऊपर लिखित वर्णनके द्वारा आर्य सभ्यताका दिग्दर्शन होता है। कुछ आर्य सभ्यताके अनुकूल शकुनोंका वर्णन भी ऊपर आया है, जिसे गार्हस्थकी भलाई चाहनेवालोंको अवश्य मानना उचित है। दुःस्सह नामक यक्षके अनुकूल जो बातें हैं, वे अधर्म अतः दुःस्सहके सम्पर्कसे धार्मिक व्यक्तियोंको बचे रहना उचित हैं ॥७४—९७॥

इक्यावनवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—दुःसहकी भार्याका नाम निर्माष्टी था, जो यमकी कन्या थी। यमकी पत्नी जब ऋतु मती थी, तब उसने चाण्डालका दर्शन कर लिया था। इस कारण उस ऋतुकालमें उसे जो गर्भ रहा, उसीसे निर्माष्टीने जन्म ग्रहण किया था। दुःसहके साथ निर्माष्टीका विवाह हो जाने पर उससे जगद्व्यापी, अति भयंकर आकृतिवाली सोलह सन्तानें हुई। उनमेंसे आठ पुत्र और आठ कन्याएं थीं। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त, अङ्गधुक, शकुनि, गण्डप्रान्तरति, गर्भहा और शस्यहा ये पुत्रोंके और नियोजिका-विरोधिनी, स्वयंहारकारी, भ्रामणी, ऋतुहारिका, स्मृतिहरा बीजहरा और विद्वेषिणी ये कन्याओंके नाम थे। आठों पुत्रियां लोगोंका अत्यधिक अनिष्ट करने वाली हैं; जिनमें स्मृतिहरा और बीजहरा ये दो तो बहुतही भयानक हैं॥ १—६॥ हे द्विजोत्तम! अब मैं उक्त आठों कुमारोंके कर्म और उनके किये हुए दोषोंके प्रशमनार्थ उपायोंका विवरण कहता हूं, सुनो। दन्ताकृष्टि सोये हुए बच्चोंके दांतोंमें बैठकर उनकी घिग्घी बांध देता है, जिससे उनके प्राण व्याकुल हो जाते हैं। ऐसा होनेपर बच्चोंके बिछौने पर और दांतोंपर सफेद सरसों छींट देनी चाहिये, उन्हें औषधिस्नान कराना चाहिये, उनके पास बैठकर सत् शास्त्रों (सप्तशती, शिवकवच, रामरक्षा आदि) का पाठ करना चाहिये अथवा ऊंट, कण्टक (साही) या गंडेकी हड्डी और टसर (अण्डी) का वस्त्र पहिना देना चाहिये, इससे बालकोंकी बाधाका प्रशमन हो जाता है॥ ७—१०॥ दूसरा पुत्र तथोक्ति सदा, 'तथास्तु, तथास्तु' कहा करता है। मनुष्योंके शुभाशुभको गढ़नेके कामपर यह नियुक्त है। मनुष्य असत् इच्छा करे या सत्, शुभवचन कहे या अशुभ, यह तुरन्त 'तथास्तु' कह देता है और फिर वैसीही घटना हो जाती है। अतः बुद्धिमान पुरुषोंको उचित है कि, वे भविष्यत्के सम्बन्धमें सदा मङ्गलवाणी कहें और शुभ इच्छा किया करें। यदि भूल चूकसे अमङ्गलवाणी निकल पड़ें या अशुभ इच्छा हो जाय, तो चराचर प्रपञ्च जगत्के गुरू ब्रह्मा, भगवान् जनार्दन अथवा अपनी कुल देवताका नाम स्मरण करना चाहिये। इससे उसकी शान्ति हो जाती है। तीसरे पुत्रका नाम परिवर्त है। यह एक स्त्रीका गर्भ दूसरी स्त्रीके गर्भमें पहुंचा देता है। इसी तरह मनुष्य एक बात कहना चहता है, तो उससे कुछ औरही बात कहा देता है और इसीसे हर्ष पाता है। रक्षोघ्न मन्त्रके पाठ और सफेद सरसोंके उपयोगसे इसकी शान्ति होती है।

चौथा पुत्र अङ्गधुक है। यह मनुष्योंके अङ्गोंको फड़काकर अथवा रोमाञ्चित कर शुभाशुभकी सूचना देता है। उसकी शान्तिके लिये शरीरमें थोड़ा कुश चुभा देना चाहिये ॥ ॥११-१५॥ पांचवां पुत्र शकुनि है। यह काक आदि पक्षियों और कुत्ता, सियार आदि पशुओंके शरीरमें बैठकर मनुष्योंको शुभाशुभ का ज्ञान कराता है। जब इस प्रकार कोई अशुभ सूचना उक्त पशु पक्षियों द्वारा मनुष्य को मिले, तो उसे आरम्भित कार्यको रोक देना चाहिये और शुभ सूचना मिले, तो तुरन्त कर देना चाहिये; ऐसा स्वयं ब्रह्माजीने ही कहा है। गण्ड प्रान्तरति नामक छठा पुत्र केवल आधे मुहुर्त्तही किसीके गण्डस्थल पर बैठकर समस्त कार्यारम्भ, माङ्गल्य कर्म और अनसूयता को भक्षण कर जाता है। हे द्विजोत्तम! इसकी शान्तिके लिये ब्राह्मणों का आशीर्वाद, देवतास्तुति, गोमूत्र और सफेद सरसों से स्नान, उस समयके ग्रह नक्षत्रोंकी पूजा, धर्मोपनिषद् श्रवण, शस्त्रदर्शन और जन्मकी अवज्ञा करना उपकारक होता है। ॥१६-२०॥ गर्भहा नामक सातवां पुत्र स्त्रियोंके गर्भको पचा डालता है। इसकी पीड़ा न हो, इस लिये स्त्रियों को सदा विशुद्ध (साफ सुथरा) रहना चाहिये, अच्छे आसिद्ध मन्त्रों (कवचादि) को लिखना चाहिये, माल्यादि धारण करना चाहिये, साफ सुथरे घरमें रहना चाहिये और परिश्रम करना छोड़ देना चाहिये। हे ब्राह्मण! इसी तरह शस्यहा आठवां पुत्र सब खेती को बरबाद कर देता है। इसकी शान्तिके लिये फटी जूती खेतमें रखदेना, जनेऊ को दाहिने कन्धे पर रखकर खेतमें घूमना, चाण्डाल को खेतमें ले जाना, खेतके बाहर बलि प्रदान करना तथा सोमाम्बु मन्त्र का पाठ करना चाहिये। दुःसहकी प्रथम कन्या नियोजिका है। यह मनुष्योंको पर स्त्री गमन और पर द्रव्यापहरणमें प्रवृत्त करती है। इसकी शान्तिके लिये पुण्य ग्रन्थोंका पाठ और क्रोध लोभादिका त्याग करना चाहिये। यदि किसीके द्वारा प्रलोभन दिया जाय या ताड़न किया जाय, तौभी क्रोधादिके वशीभूत नहीं होना चाहिये। विचक्षण पण्डितोंको ऐसे समयमें विचार करना चाहिये कि, परदारागमनादि कुकर्मोंकी ओर हमें नियोजिकाही नियोजित कर रही है। ऐसा करनेसे असत् कार्यसे चित्त हटजाता है ॥ २१—२८ ॥ दूसरी कन्या विरोधिनी है। यह अत्यन्त प्रेमी दम्पतियों तथा सुहृद्, बन्धु, पिता, माता, पुत्र तथा आत्मीय स्वजनोंमें विरोध करा देती है। इसकी शान्तिके लिये अतिशय धैर्यका अवलम्बन कर शास्त्रविहित आचार पालन और बलिकर्म करना चाहिये। तीसरी कन्या स्वयंहारिका है। खलियान और घरके धान्यको नष्ट कर देती है। गौके स्तनसे दूध और दूधसे घी चुरा लेती है। नाना सुन्दर और मूल्यवान् वस्तुओंकी शोभाको बिगाड़ देती है। रसोईके घरसे आधा पका हुआ और पका पकाया परोसा हुआ अन्न भी ले जाती है और तो क्या, भोजनके समय भोजन करनेवालेके साथ ही बैठ कर जूठा खाती है। विशिष्ट

कर्मस्थान (कारोबार, कारखाना आदि) से उत्तम द्रव्य हरण करती है। सुंदरी स्त्रियोंके स्तनोंसे दूध, तिलसे तैल, कलवरियासे मद्य, कुसुम्मादि पुष्पोंसे रङ्ग और कपाससे धागा चुरा लेती है। इसीसे इसका नाम स्वयंहारिका है। इसकी शान्तिके लिये कृत्रिम स्त्रीको बनाकर शिखण्डियोंका द्वन्द्व करा देना चाहिये, लक्ष्मीकी रक्षाके लिये त्याज्य वस्तुओंको छोड़कर ग्राह्य (पवित्र) वस्तुओंका होम, देवपूजा और धूपदान करना चाहिये तथा दुग्धादिके भोजन भस्म (राख) से शुद्ध कर लेने चाहिये ॥ २६-३८ ॥ चौथी कन्याका नाम भ्रामणी इस कारण है कि, एक स्थानमें बसे हुए मनुष्योंके हृदयोंमें उद्वेग उत्पन्न कर उन्हें इधर उधर भटकाया करती है। इसकी शान्तिके लिये आसन शय्या और भूमिपर सफ़ेद सरसों छींट देने चाहिये और किसी पापकार्यमें चित्तके प्रवृत्त होने पर यह विचार कर कि, हमें यह दुष्ट भ्रामणी ही भ्रममें डाल रही है, समाधियुक्त होकर भूमिसूक्तका पाठ करना चाहिये। पांचवी कन्या ऋतुहारिका ऋतुमती स्त्रियोंके रजको हरण कर लेती है। इसका शान्तिके लिये पर्वत शिखरों और तीर्थोंमें मन्दिर निर्माण, नदी सङ्गममें स्नान, प्रातः स्नान, और सुवैद्यसे अच्छी औषधिका सेवन करना लाभ कारक है। छठी स्मृतिहारिका वराङ्गनाओंकी स्मृतिको हरण कर लेती है। इसकी शान्तिके लिये उत्तम परिष्कृत और रमणीय स्थानमें निवास करना चाहिये। सातवीं कन्या बीजापहारिणी है। यह स्त्रियों और पुरुषोंकी रतिको बिगाड़ देती है। इसकी शान्तिके लिये पवित्र अन्नका भोजन और स्नान, करना चाहिये ॥ ३९-४६ ॥ आठवीं कन्या द्वेषिणी है। यह सर्वलोकभयङ्करी कही गयी है। यह स्त्री पुरुषोंमें बिगाड़ करा देती है। इसकी शान्तिके लिये मधु, दुग्ध और घृतसे युक्त तिलके द्वारा मित्रविन्द नामक यज्ञ करना चाहिये। हे द्विजश्रेष्ठ! इन सब कुमार-कुमारियोंको सब मिलाकर अड़तीस सन्तानें उत्पन्न हुईं। उनके नाम, कर्म और उन कर्मोंसे होनेवाले अशुभ फलोंकी शान्तिके उपाय अब मैं कथन करता हूँ, सुनो। दन्ताकृष्टिके विजल्पा और कलहा नामकी दो कन्याएं हैं। विजल्पा मनुष्योंसे अवज्ञान पूर्ण, मिथ्या और दुष्ट वचन कहाती है। इसकी शान्तिके लिये संयम होकर उसीका ध्यान करना चाहिये। कलहा मानव संसारमें सदा कलह कराया करती है। यही कुटुम्ब नाशकी कारणभूत है। इसकी शान्तिके लिये पूजोपहार प्रदान और मधु, घृत, दुग्धयुक्त दूर्वाङ्कुरोंको होम करना चाहिये। फिर इस प्रकार उपासना वाक्य कहने चाहिये,—"कूष्माण्ड, यातुधान आदि सब गणों सहित मेरे द्वारा पूजित होकर सन्तोषको प्राप्त करें और माता सहित बालकोंकी, विद्याकी, तपस्याकी, यमनियमादिकी, कृषिकी और वाणिज्य व्यवसायकी शान्ति करें। इन कामोंमें विघ्न न डालें और श्रीमहादेवकी कृपा तथा आज्ञासे मानवोंके प्रति सभी शीघ्र प्रसन्न हों। सभी सन्तुष्ट होकर कुकर्म, दुराचरण और महापा-

तर्कोंसे उत्पन्न होनेवाले विघ्नोंका नाश करें और सबके अनुग्रहसे उद्वाह आदि समस्त मङ्गल कार्योंके विघ्नोंका विनाश हो। दोनों अश्विनीकुमार, समुद्र, सूर्यदेव, अग्निनारायण और वासुदेव हमारे पुण्यकार्योंके अनुष्ठानमें, गुरु-देवादिके अर्चनमें, जप-यज्ञ आदि पवित्र कार्योंमें चतुर्दश यात्रामें, धनके सम्बन्धमें और वृद्धों, बालकों, स्त्रियों तथा पीड़ित व्यक्तियोंके विषयमें सर्वदा शान्ति बनाये रहें ॥ ४७—६० ॥ तथोक्तिके कालजिह्वनामक एक पुत्र है, जो ताड़के वृक्षपर रहता है। यह माताओंके गर्भमें जाकर नाना प्रकारकी पीड़ायें देता है। परिवर्तके विरूप और विकृत नामक दो पुत्र हैं। ये दोनों पेड़ोंकी डारपर या परिखा, परकोटा और समुद्रका आश्रय करके रहते हैं। गर्भिणियोंके गर्भका परिवर्तन करना इनका काम है। अतः हे क्रौष्टुकि! गर्भिणी स्त्रियोंको वृक्ष, पर्वत परिखा, प्राकार और महोदधिको स्पर्श नहीं करना चाहिये। अङ्गधुकको पिशुन नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। जिनका मन वशमें नहीं रहता ऐसे, मनुष्योंकी हड्डियों और रगोंमें घुसकर उनका बल यह पिशुन डिकार जाता है। शकुनिके बाज, कौवा, कबूतर, गीध और उल्लू ये पांच पुत्र हुए। इन्हें सुर और असुर दोनोंने ग्रहण किया। बाजको मृत्युने, कौवेको कालने, उल्लूको निर्ऋतिने, गीधको व्याधिने और कपोतको स्वयं व्याधीश्वर यमने अपना लिया ॥ ६१—६८ ॥ ये सभी पापोंको उत्पन्न किया करते हैं। अतः श्येन आदिको अपने सिरपर मँडराते हुए देखनेपर आत्मरक्षाके लिये शांति करनी चाहिये। जिस घरमें ये अपना घोंसला बनावें या अण्डा दें, उस घरको छोड़ देना चाहिये। श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक जिस घरमें घुसते हैं।उस घरके किसी व्यक्तिकी मृत्यु अवश्य होती है। अतः ऐसे घरको छोड़ कर इसकी शान्ति करनी चाहिये स्वप्नमें कबूतरका देखना भी अमङ्गलकर होता है। गण्डप्रान्तरतिके छः पुत्र हैं। ये स्त्रियोंके

टीकाः—अन्तर्जगत किस प्रकारसे देवता, देवी असुर और आसुरियोंके द्वारा चालित होता रहता है; जहां कोई कार्य (स्थूल क्रिया अथवा मानसवृत्तिरूपसे) हो, उसके साथ उसके अधिदैवका सम्बन्ध भी रहता है, जहां अध्यात्म है और जहां अधिभूत है, वहां अधिदैव भी है; मृत्युलोकमें जैसा देवताओंका अभाव है, वैसा असुरोंका भी रहना सम्भव है; जैसे नाना जीव जगत् आदिके चालक देवता होते हैं, वैसे ही सूक्ष्म वृत्ति राज्यके रक्षक भी देवता या असुर होते हैं; दैवीराज्यके साथ शास्त्रोंमें कहे हुए शकुनोंका जो सम्बन्ध बताया गया है, वह मिथ्या नहीं है; इत्यादि बातें ऊपर कथित विज्ञानसे भलीभांति सिद्ध होती हैं। दैवी राज्यको पदार्थवादी साइंटिस्टगण अपने स्वप्नमें भी अनुभव नहीं कर सकते। क्योंकि स्थूल राज्यसे दैवी सूक्ष्म राज्य एकबारगी परे रहनेसे और स्थूलमें फंसी हुई बुद्धि सूक्ष्म दैवीराज्यको समझनेमें असमर्थ होनेसे स्थूलवादी पदार्थ विद्याके जानने वालोंको सूक्ष्म दैवी राज्यका पता लग ही नहीं सकता। त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंने पहिले योगयुक्त होकर दैवी राज्यका पता लगाया था और तब उन्होंने आर्य्यजातिके उपयोगी आयुर्वेद, ज्योतिष, शकुन, सामुद्रिक आदि विद्याओंका आविष्कार किया था ॥ १—६० ॥

आर्तवमें रहा करते हैं। उनका निवास काल बताता हूं, श्रवण करो। स्त्रियोंके ऋतुमती होनेपर प्रथम चार दिन, ग्यारहवें और तेरहवें दिन, श्राद्धके दिन, दान कार्यके दिन और समस्त पर्वके दिनोंमें तथा प्रायः दिवाकालमें रजस्वलाओंके रजमें रमे रहते हैं। अतः बुद्धिमान् पुरुषोंको उक्त दिनोंमें तथा कभी दिवाकालमें स्त्री गमन नहीं करना चाहिये ॥६९—७५॥ गर्भ हन्ताके निघ्न नामक एक पुत्र और मोहिनी नामकी एक कन्या हुई। निघ्न तो गर्भमें प्रवेश कर गर्भको खा जाता और मोहिनी मोह प्रदान करती रहती है। उसी मोहके कारण सर्प, मण्डूक (दादुर), कछुआ, सरीसृप आदि जन्तु और विष्ठा उत्पन्न होती है। गर्भिणी स्त्री यदि छः मासतक मांस भक्षण करे, असंयत रहे, रातमें वृक्ष तले अथवा त्रिमुहानी या चौमुहानीमें निवास करे, श्मसान आदि उत्कट स्थानोंमें जावे, विना ओढ़नीके घूमे और रात्रिमें रोवे, तो निघ्न तुरन्त उसके उदरमें प्रवेश कर जाता है। शस्य-हन्ताके क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ। वह छिद्र देखकर ही खेतोंको बढ़ने नहीं देता। जो व्यक्ति अमङ्गल दिनमें अतृप्त होकर खेतमें बीज बोता है, उसके खेतमें क्षुद्रक ऊधम मचाने लगता है॥७६—८१॥ इसकारण सुप्रशस्त दिनमें चन्द्रकी पूजा करके प्रसन्नचित्तसे कृषिकार्य और बीज बोनेका कार्य करना चाहिये। दुःसहकी नियोजिका नामकी कन्याके प्रचोदिका नामकी चार कन्याएँ हुईं। वे सभी सदा प्रमत्त, योवनमद दर्पित और दुर्विनीतभावसे अधर्मको धर्मरूपसे, अनर्थको अर्थरूपसे, अकामको कामरूपसे और अमोक्षको मोक्षरूपसे अपनाकर मनुष्योंमें उनकी पहुंच कर देती और उनके नाना अशुचिरूप दिखाकर मनुष्योंका भया-नकतासे नाश करती है। पूर्वोक्त आठों कन्याओंके चक्करमें आकर मनुष्य अपने पुरुषार्थको छोड़कर मारे मारे फिरा करते हैं। उदुम्बरमें, नक्षत्रके सन्धिकालमें और धाता-विधाताको जब पूजा नहीं चढ़ायी जाती, तब वे घरमें घुसती हैं। भोजन और जलपान करते समय वे दल-बल सहित नर-नारियोंमें संक्रमित होती हैं ॥ ८२—८८ ॥ विरोधिनीके चोदक, ग्राहक तमःप्रच्छादक नामक तीन पुत्रोंकी करतूतें कहता हूं, वह भी सुन लो। जहां मूसल और उखली दीपकके तेलके संसर्गसे दूषित होती अथवा लाँघी जाती है, जहां स्त्रियोंकी जूतियाँ और आसन लाँघे जाते या खराब किये जाते हैं, जहां पैरसे आसन, सूप और चलनी ठुकरायी जाती है, जहां लीपी हुई भूमिकी पूजा किये बिना ही विहार किया जाता है और जहाँ करछुलसे अग्नि अन्यत्र ले जाया जाता है, ऐसे स्थानोंमें विरोधिनीके

टीका—गृध्र, कौवा, कपोत आदि पक्षियोंका सम्बन्ध इस सृष्टि प्रकरणसे देखकर शंका हो सकती है। अतः समाधान यह है कि उक्त जीवोंके अधिदैव देवता और उनके सम्बन्धसे शकुनके विषयमें इस वर्णनको समझना उचित है। आसुरी सूक्ष्म सृष्टिके साथ एक ओर वृत्तिराज्य और दूसरी ओर जीव जन्तु आदि और नाना शकुनोंका मिश्र सम्बन्ध योगयुक्त आचार्योंने बताया है ॥६९—७५॥

पुत्र अपना भरपूर पराक्रम दिखाया करते हैं। चोदक स्त्री पुरुषोंकी जिह्वापर बैठकर उससे झूठ-साँच कहवाया करता है और घरमें बड़ी पिशुनता फैला देता है। ग्राहक बड़ा धूर्त है। वह लोगोंके कानों पर चढ़ाई करके उन (सच्चे-झूठे) वाक्योंका ग्रहण करता है ॥८९-९४॥ तमः प्रच्छादक मनुष्योंके मानस पर आक्रमण कर उसे तमोगुणसे आच्छादित करता है, जिससे क्रोधकी उत्पत्ति होती है। स्वयंहारीके सर्वहारी, अर्द्धहारी और वीर्यहारी नामक तीन पुत्र हुए। ये तीनों अपवित्र घरोंमें, जहाँ आचार पालन न होता हो ऐसे कुटुम्बमें, जिसमें विना पैर धोये लोग घुस जाते हों, उस पाकशालामें, खलियानोंमें, गाय-भैंसोंके बाड़ोंमें आर ज़िस घरमें विद्रोह बढ़ गया हो उस घरमें अन्याय रूपसे विहार करते हैं। भ्रामणीके काकजङ्घ नामक एक पुत्र है। उसके घरमें पैठ जानेसे घरका कोई प्राणी रति नहीं कर पाता। जो व्यक्ति भोजनके पश्चात् सङ्गीत करता है, मित्रतामें जो गाने या हँसने लगता है, सन्ध्याकालमें मैथुनके लिये उत्सुक हो जाता है, उसपर काकजङ्घ आक्रमण करता है ॥ ९५-१०० ॥ ऋतुकालमें हारिणीके तीन कन्याएँ हुई थीं। उनके नाम थे,—कुचहरा, व्यञ्जनहारिका और जातहारिणी। जिन स्त्रियोंका विवाह सम्पूर्ण रूपसे न हुआ हो या विवाहकालका अपगम हो गया हो, कुचहरा उनके कुचोंको बढ़ने नहीं देती। श्राद्धादि कार्य भलीभांति न कर और माताकी पूजा किये विना ही जिस कन्याका विवाह कर दिया जाता है, व्यञ्जन हारिका उसके व्यञ्जनोंको हरण कर लेती है। सौरीके घरमें अग्नि, धूप, जल, दीप शस्त्र, मूसल, भस्म और सरसों न रखनेसे जातहारिका वहां पहुंचकर नवजात शिशुको वहांसे उठा ले जाती है और उसी समय उत्पन्न हुए किसी दूसरे बच्चेको उसके स्थानमें रख जाती है। अतः मांस खानेवाली उस भयंकर जात हारिकासे सौरीके घरमें बालककी सदा रक्षा करनी चाहिये। उसके पुत्र

टीका—यह आचारके साथ आसुरी सृष्टिका सम्बन्ध दिखाया जाता है। किस आचारसे किस किस प्रकारकी आसुरी शक्तिके बढ़नेका सम्भव है, वह सूक्ष्म सृष्टि प्रकरणके साथ मिलाकर कहा गया है। योगयुक्त अन्तःकरणवाले त्रिकालदर्शी महर्षियोंका अन्तःकरण कैसे अलौकिक प्रत्तक्ष द्वारा बाहरसे भीतर तक, स्थूलसे सूक्ष्मतक, शरीर राज्यसे वृत्तिराज्य तक और स्थूल सृष्टिसे दैवी सृष्टि तक अनायास देख सकते थे, उसीके ये कुछ उदाहरण हैं, जो आर्य जातिकी प्राचीन सभ्यता और उनके आचारके साथ मिलाकर कहे गये हैं ॥८९—९४॥

टीका—यह सब वर्णन आर्य सदाचार पोषक और अनाचार रोधक है। आर्य सभ्यताका यह नमूना बताने वाला है। डाइनों (लीकाओं) की उत्पत्तिके साथ वृत्तिराजका संबंध भी सूक्ष्म विज्ञान मूलक है। मनोबल द्वारा कौशलपूर्ण यत्न करके मनुष्य मनुष्यको हानि पहुंचा सकता और मार भी डाल सकता है। जिस मनके द्वारा आदि सृष्टिकालमें सब प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई थी, उस मनके द्वारा डाइनें बालक अथवा

का नाम प्रचण्ड है। लोगोंकी स्मृति शक्तिको नष्ट कर देता है, जिससे वे अपने मनको काबूमें नहीं रख पाते। इससे उसे उनका हृदय अपने वसके लिये सूना मिल जाता है॥ १०१—१०८॥ उसके पौत्रसे लाखों करोणों लीक (डाइनें) उत्पन्न हुई थीं। दन्तपाशाति भीषण आठ चाण्डाल योनियां भी इस प्रचण्डके वंशसे ही निकली हैं। चाण्डाल जातिके लोग और डाइनें क्षुधासे व्याकुल होकर एक दूसरेको खानेके लिये लौड़ने लगीं, तब प्रचण्ड ने बिचवई करके उनको आज्ञा दी कि, जो स्त्री चाण्डालके घरमें अथवा किसी दूकानमें प्रसव करेगी, उसकी सब सन्ततिको लीकाएँ नाश कर डालेंगी और आजसे इन डाइनोंको जो आश्रय देंगे उनको मैं ऐसा दण्ड दूंगा, जिससे अधिक कठोर दण्ड हो नहीं सकता। स्त्री पुरुषोंकी बीजापहारिणीके वातरूपा और अरूपा नामकी दो कन्याएँ हुईं। स्त्री पुरुष के मैथुनके ठीक निषेधकालमें वातरूपा शुक्रमें घुसकर स्त्री पुरुषोंमें वात शुक्रत्व दोषको उत्पन्न कर देती है। ॥ १०६—११५ ॥ जो व्यक्ति विना भोजन किये स्त्री सम्भोग करता है, या किसी वियोनिमें मैथुनासक्त होता है, अरूपा उसको निर्जीव कर डालती है। भ्रुकुटी कुटिला नाना विद्वेषिणीके दो पुत्र हैं। वे सदा पुरुषोंके अपकारोंको प्रकट करते रहते हैं। शौच विहीन स्त्री या पुरुष ही निर्बीजताको प्राप्त करते हैं। विद्वेषिणीके दोनोंपुत्र नीचता करनेमें निपुण, लोभी और पुरुषद्वेषी मनुष्यों पर आक्रमण करनेवाले होते हैं। वास्तवमें कोई भी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीयोंके साथ यदि विद्वेष करे, तो वह धर्म और अर्थ प्राप्तिका पात्र नहीं हो सकता। पापाचारी एक पुत्र लोगोंमें अपने गुण समूहोंको प्रकट करता है और दूसरा लोगोंके गुणों और मित्रताको छीन

दुर्बल चित्तवाले मनुष्योंकी हत्या कर सकती है, इसमें सन्देह ही कम है ? अतः मनोबलसे जैसी सृष्टि हो सकती है, वैसा उसका नाश भी हो सकता है। अब रहा डाइनोंकी समस्या। असभ्य अवस्थामें मारणकी सुकौशलपूर्ण क्रिया, मन्त्रादि द्वारा यह कुकर्म, मनुष्य कर सकता है। ऐसी मन्त्रशक्तिका होना भी सम्भव है। और स्त्रियोंकी धारणा पुरुषसे कई गुणा अधिक होती है। यही कारण है कि, उन्नत सती स्त्रियां पतिके शवके साथ जलती हुई क्लेशका अनुभव नहीं करतीं। उसी धारणाशक्तिको यदि वे कुकर्ममें लगावें तो लगा सकती हैं। इसी कारण डाइनोंका होना पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंमें अधिक सम्भव है। सभ्यता और शिक्षाके साथ ही साथ मनोबलका यह दुरुपयोग मनुष्य समाजसे बन्द हो सकता हैं, परन्तु उसका सर्वथा बन्द होना असम्भव है। चाण्डालकी योनियोंका जो वर्णन है, उसका यही तात्पर्य है कि, असभ्य और बर्बर जैसी निम्न श्रेणीकी मनुष्य योनियां जो केवल आचारहीन और अपवित्र नहीं किन्तु जीवन मात्रको क्लेश देनेवाली हैं। ऐसी निकृष्ट मनुष्य योनियोंका अभाव भारतवर्षमें या संसारके अन्य देशोंमें भी नहीं। यह सब सृष्टि प्रकरण कहनेसे यही तात्पर्य है कि, मनुष्य समाज सदाचारी हो, कदाचारका त्याग करे, तथा दैवी जगत् पर विश्वास रक्खे, देवताओं और असुरोंकी परस्पर विरोधी शक्तिको जानकर दैवी शक्तिका आश्रय कर असुरी शक्तिसे अपने आपको बचावे। सदा अध्यात्म लक्ष्य

लेता है। इस प्रकार पापाचारी दुःसहकी सन्तान समस्त जगत्को व्याप्त किये हुए है ॥११६—१२१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दौःसहोत्पत्ति समापन नामक इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

बावनवां अध्याय।

—:०:ॐ:०:—

मार्कण्डेयने कहा,—अव्यक्त जन्मा ब्रह्माकी तामसी सृष्टिका वर्णन मैं कर चुका। अब रुद्रसर्गकी बात कहता हूं, श्रवण करो। कल्पके आदिमें अपने समान पुत्रोंकी इच्छा करनेसे ही ब्रह्माके आठ पुत्र, उनकी पत्नियाँ और कितने ही पौत्र उत्पन्न हो गये। प्रभुकी गोदमें प्रथम एक नील-लोहित पुत्र पहुँच कर सुस्वरसे रोने लगा। ब्रह्माने उससे पूछा,—"बच्चा! तू क्यों रोता है?" बच्चेने उत्तर दिया,—"मेरा कुछ नाम रख दो।" जगत्पति बोले,—"तुम्हारा नाम 'रुद्र' रख दिया है। अब मत रोओ, चुप रहो।" फिर बच्चेने क्रमशः सात बार रोदन किया, इस कारण उसीके सात नाम और रख दिये। फिर उसके आठ रूप बना कर आठोंको पत्नियां, पुत्र और स्थान भी दे दिये ॥ १-६ ॥ रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये आठ नाम उन कुमारोंके रखकर उनके स्थान भी निर्दिष्ट कर दिये। सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित ब्राह्मण और सोममें उनका निवास होने पर उनसे क्रमशः सुवर्चसा, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी नामकी आठ कन्याएं व्याह दी गयीं। रुद्रादि आठ मूर्तियोंकी आठ रुद्रपत्नी कहाती हैं। शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजय, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध ये आठ रुद्रादिके पुत्र हुए। रुद्रने सतीको भार्या रूपमें प्राप्त किया था। फिर दक्षपर कोप करनेसे सतीने शरीर त्याग कर मेनकाके गर्भसे हिमवानके घर कन्या रूपसे जन्म ग्रहण किया था। समुद्रका सखा मैनाक उसका भाई था। हिमसुता पार्वतीने भगवान् भवसे परिचय कर लिया। भृगुकी ख्याति नामकी एक पत्नी थी। उसके धाता और

रक्खे और वर्णाश्रम मर्यादा को मानकर अपने आप ही अभ्युदयके मार्गमें अग्रसर हो ॥९५—१२१॥

टीकाः—दैवि सृष्टि साधारणतः दो प्रकारकी होती है। एक तमो बहुल और दूसरी सत्वबहुल। पहिले अध्यायमें कही हुई सृष्टि तमोबहुल और इस अध्यायमें कही हुई सृष्टि सत्वबहुल है। इस कारण उच्च देवताओंसे लेकर ऋषि और पितरों तककी सृष्टिका दिग्दर्शन इस अध्यायमें किया गया है। ऋषि, देवता और पितर ये सभी दैवयोनि हैं। भगवान् रुद्रकी उत्पति बहुत ही गंभीर विज्ञानमूलक है। सृष्टिकी आदि अवस्थामें ब्रह्मा,

विधाता नामक दो पुत्र और एक कन्या हुई। वही कन्या देवदेवनारायणकी पत्नी है ॥ ७-१४ ॥ महात्मा मेरुके आयति और नियति नामकी दो कन्याएं थीं। वे ही धाता और विधातासे व्याही गयीं। प्राण और मेरे महयशा पितृदेव मृकण्डु ये दो उनके पुत्र हैं। मृकण्डुकी पत्नी मनस्विनीके गर्भसे मैं औरस रूपसे उत्पन्न हुआ। मेरे पुत्रका नाम वेदशिरा है। प्राणके धूमवती नामकी पत्नीसे द्युतिमान् और अजरा नामक दो पुत्र हुए। इनके पुत्र-पौत्र अनेक हुए। मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको प्रसव किया। उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र हुए। इनके पुत्रोंकी वंशकीर्तिका अर्थात् राजवंशका अब मैं वर्णन करूँगा। आङ्गिरसकी पत्नी स्मृतिके सिनीवाली, कुहू, राका और अनुमति नामकी चार कन्याएं हुई। अत्रि पत्नी अनुसूयाने सोम दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक तीन योगियोंको पुत्र रूपसे प्राप्त किया था। पुलस्त्यकी पत्नी प्रीतिके गर्भसे दत्तोलि अथवा दम्भोलि की उत्पत्ति हुई थी। पूर्वजन्ममें यही अगस्तिके नामसे विख्यात था। प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमाने कर्दम, अर्वरीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्रोंको प्रसव किया। ऋतुकी भार्या सन्नतिने ऊर्द्ध्वरेता साठ सहस्र वालखिल्योंको जन्म दिया था ॥ १५-२४ ॥ वशिष्ठको ऊर्ज्जाके गर्भसे रज, गात्र, ऊर्द्ध्वबाहु, सबल, अनघ, सुतपा और शुक्र नामक सात पुत्र हुए। ये ही सप्तर्षिके नामसे विख्यात हैं। अभिमानी अग्नि ब्रह्मा का ज्येष्ठ पुत्र है। अग्निकी पत्नी स्वाहाने पावक, पवमान और जलाशी शुचि नामक तीन पुत्र प्रसव किये। उन पुत्रोंके पैंतालीस पुत्र हुए और तीन पुत्र जो पितृलोक कहे जाते हैं अग्निके वे पौत्र हैं, ये सब उनचास अग्नि पौत्र दुर्जय कहे गये हैं और इन्हींका पहिले पितृलोकके नामसे उल्लेख किया गया है। अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि पितृगणसे स्वधाने मेना और वैधारिणी नामकी दो कन्याएँ प्राप्त की थीं। वे दोनों ब्रह्मवादिनी,

---

विष्णु और रुद्र तीनोंका अर्थात् त्रिमूर्तिका आविर्भाव एक ब्रह्माण्डमें एक साथ ही हो, वही परन्तु उस समय ब्रह्मा जागते रहते, विष्णु योग निद्रामें निद्रित रहते और रुद्र दोनोंके शरीरोंमें व्यप्त रहते हैं। ब्राह्माकी सहायताके लिये विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग होती है, जैसा कि, इसी पुराणमें आगे कहा गया है। तदनन्तर रुद्रका प्राकट्य होता है। नहीं तो तीनोंका आविर्भाव एक साथ ही होता है। कोई किसीका पुत्र नहीं है तीनों अपने अपने अधिकारानुसार सगुण ब्रह्म हैं। जैसा कि, विस्तृत रूपसे पीछे कहा गया है। आयुमें ब्रह्मा पदकी आयु सबसे कम, विष्णु पदकी आयु उससे अधिक और रुद्र पदकी आयु उससे भी अधिक है। जिसका वर्णन भी आयुकी वर्ष संख्याके साथ पीछे आवेगा। दैवसृष्टिमें देव संघके अधिपति भगवान् विष्णु, पितृ संघके अधिपति भगवान् ब्रह्मा और ऋषि संघके अधिपति भगवान् रुद्र अथवा शिव भी माने गये हैं। इसी कारण भगवान् शिव ज्ञान प्रदाता, भगवान् विष्णु धर्म प्रदाता और भगवान् ब्रह्मा आधिभौतिक शक्ति प्रदाता माने गये हैं। केवल सृष्टिको चला देना ही उनका कार्य है। तदनन्तर विष्णु भगवान्का कार्य और शिव भगवानका कार्य रह जाता है। यही कारण है कि,

योगिनी, उत्तम ज्ञानसम्पन्ना और सर्वगुणालङ्कृता हैं। इस प्रकार दक्ष कन्याकी सन्तति का वृत्तान्त है। श्रद्धावान् होकर इसका स्मरण करनेसे अपुत्रत्व या बाँझपन नष्ट हो जाता है ॥ २५-३२।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुद्रसर्गाभिधान नामक बावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

त्रेपनवां अध्याय।

—:०:*:०:—

कौष्टुकिने कहा,—भगवान्! आपने जो स्वायम्भुव मन्वन्तरका विषय सुनाया, वह मैंने सुना। परन्तु उसे विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी इच्छा है। विशेषतया मन्वन्तरोंका प्रमाण, देवता, देवर्षि और इन्द्रके विषयमें मैं सब कुछ सुनना चाहता हूं। मार्कण्डेय बोले,—मन्वन्तरोंकी प्रमाणसंख्या इकहत्तर युगोंसे कुछ अधिक होती है। मनुष्योंके प्रमाणके हिसाबसे उसे मैं स्पष्ट कर देता हूं, सुनो। तीस करोड़, सड़सठ लाख, बीस हज़ार वर्षोंका एक मन्वन्तर होता है। इससे अधिक नहीं। देवताओंके प्रमाणसे ये वर्ष आठ सौ बावन सहस्र वर्ष होते हैं। स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत और चाक्षुष ये छ मनु बीत गये हैं। इस समय वैवस्वत मनु चल रहा है। और पाँच सावर्णि तथा रौच्य और भौत्य मनु आगे होंगे। देवता, ऋषि, यक्षेन्द्र और पितृगणके विषयमें प्रत्येक मन्वन्तरकी बातें अब विस्तारपूर्वक कहता हूं॥ १-८॥ स्वायम्भुव मनुकी सन्तति उत्पति, संग्रह और उस सन्ततिके क्षेत्रका विषय कहता हूँ, सुनो। स्वायम्भुव मनुके उसीके सदृश दश पुत्र उत्पन्न हुए। उन्होंने सातों द्वीपों, पर्वतों, समुद्रों और आकरों (खानों) से युक्त पृथ्वीको कई वर्षों (भागों) में विभक्त कर दिया। पुरा कालमें स्वायम्भुव मन्वन्तरके त्रेतायुगके प्रारम्भमें प्रियव्रतके पुत्रों अर्थात् स्वायम्भुवके पौत्रोंने ऐसा ही किया था। कर्दम प्रजापतिकी प्रजावती नामकी कन्याके साथ प्रियव्रतका विवाह था। उससे उसे दश पुत्र और दो कन्यायें हुईं। इन दोनों कन्याओंने सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया॥ ९-१३॥ प्रियव्रतने उक्त दश पुत्रोंमेंसे अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और सवन नामक सात पुत्रोंको सप्तद्वीपमें अभिषिक्त किया। मेधातिथिको प्लक्ष द्वीपमें, वपुष्मानको शाल्मल द्वीपमें, ज्योतिष्मान्को कुश द्वीपमें, क्रौञ्चद्वीपमें द्युतिमानको, शाकद्वीपमें भव्य

भगवान् ब्रह्माकी पूजाकी विधि क्वचित ही है। दूसरी ओर भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी पूजाकी विधि सर्वत्र देखनेमें आती है। यही कारण है कि, पिता-माता ही ब्रह्माजीके अवतार माने जाते हैं। भगवान् विष्णुके अवतार सर्वत्र होते हैं और रुद्रके अवतार भी क्वचित् ज्ञानविकाशके लिये होते हैं॥१-३२॥

एवं पुष्कर द्वीपमें सवनको पितृदत्त अधिकार प्राप्त हुये। पुष्कराधिपतिने महवीत और घातकी नामक दोनों पुत्रोंको पुष्कर द्वीप बांटकर प्रदान कर दिया। भव्यके जलद, कुमार, सुकुमार, वनीयक, कुशोत्तर मेधावी और महाद्रुम ये सात पुत्र हुए। उन्होंने इन्हीं सातों नामोंके अनुसार शाकद्वीपमें वर्षविभाग किये। द्युतिमानके भी सात पुत्र हुए—कुशल, मनुग, उष्ण, प्राकार, अर्थकारक, मुनि और दुन्दुभि, इन्हीं सात नामोंके अनुसार क्रौञ्च द्वीपके सात विभाग हुए ॥ १४—२३ ॥ ज्योतिषमानने अपने सात पुत्रोंके नामोंके अनुसार कुशद्वीपमें सातवर्षके विभाग किये, उनके नाम इस प्रकार हैं—उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन, धृतिमान, प्रभाकर और कापिल। श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और केतुमान। शाल्मलेश्वर वपुष्मानके सात पुत्र हुए। प्रत्येकके विभिन्न नामोंके अनुसार शाल्मलीद्वीपके विभक्त अंशोंका नामकरण हुआ। मेधातिथिके भी सात पुत्र हुए, जिनके नामोंके अनुसार प्लक्ष द्वीपके सात वर्ष विभक्त हुए हैं। शाक भव, शिशिर, सुखोदय, आनन्द, शिव और ध्रुव नाम प्लक्ष द्वीपके सात वर्ष प्रसिद्ध हैं। प्लक्षद्वीपसे लेकर शाकद्वीप तक, इन पांच द्वीपोंके प्रत्येक वर्षमें नित्य, स्वाभाविक अहिंसादिसे समलंकृत, वर्णाश्रम विभागयुक्त धर्म विद्यमान है। जिस अग्नीध्रको उनके पिताने जम्बूद्वीप प्रदान किया था उसके प्रजापतिके समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २३—३२ ॥ ज्येष्ठ पुत्रका नाम नाभि, द्वितीय का किंपुरुष, तृतीयका हरि, चतुर्थका इलावृत, पञ्चमका रम्य, षष्ठका हिरण्य, सप्तमका कुरु, अष्टमका भद्र, और नवमका नाम केतुपाल था। इन्हीं सब नामोंके अनुसार वर्षोंके विभाग हुए। हिमालयको छोड़कर जितने भागको किम्पुरुष कहते हैं, वहां स्वभावसे ही सिद्धि और विना यत्नके ही सुखका लाभ होता है। इसके विपरीत अथवा जरा और मृत्युका वहां कोई भी भय नहीं रहता। वहां धर्माधर्म, उत्तम, मध्यम और अधमका विभाग, चतुर्युगकी विभिन्न अवस्थाएं, ऋतु सम्बन्धी अवस्थाएँ, और विभिन्न अवस्थाएं भी नहीं है। अग्नीध्रके पुत्र नाभिका लड़का ऋषभ; ऋषभका पुत्र भरत। ऋषभने पुत्रका अभिषेक कर प्रव्रज्याका अवलम्बन किया और पुलहाश्रममें आकर तपस्या करने लगे। भरतको उनके पिताने दक्षिण वर्ष दिया था इसीलिये उनके नामानुसार उसका नाम भारतवर्ष हुआ। भरतके सुमति नामक पुत्र हुए। उन्होंने भी सुमतिको राज्य अर्पणकर वन गमन किया। इनके पुत्र और पौत्र तथा प्रियव्रतके पुत्र स्वायंभुव मन्वन्तरमें इस सप्तद्वीपा वसुन्धराका भोग करते थे। पूर्व मनवन्तरमें यह स्वायंभुवसर्ग हमने भली भांति कह दिया है। अब और अधिक क्या कहें? ॥ ३३—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मन्वन्तर कथन नामक त्रेपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

———

चौवनवां अध्याय।

—०‰०—

क्रौष्टुकि बोले, हे महामुने! द्वीप, समुद्र, पर्वत और नदीकी संख्या क्या है? महाभूत और लोकालोकका प्रमाण क्या है? इसी प्रकार हे महामुने! चन्द्र और सूर्यके व्यास, परिमाण और गतिके विषयमें विस्तार पूर्वक कहिए। मारकण्डेय बोले,—समस्त पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है, उसके सभी स्थानोंके सम्बन्धमें कहता हूं, श्रवण कीजिये। जम्बूसे लेकर पुष्कर पर्यन्त जो सब द्वीपोंका विषय कहा है, उसीको फिर विस्तारके साथ कहता हूँ। जम्बू, प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीप ये यथा क्रम एक दूसरेसे दूने हैं। लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि, दधि, दुग्ध, और जल, समुद्रके द्वारा परिवेष्टित हैं, और यह सागर भी एक दूसरेसे यथाक्रम द्विगुण हैं। जम्बूद्वीपका आकृति परिमाण लम्बाई, चौड़ाई, और गोलाईमें एक लाख योजन है। हिमवान, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत, और शृंगी ये सात उसके वर्ष पर्वत हैं। बीचमें दो लाख योजन विस्तृत दो बड़े बड़े पर्वत हैं। उनमें दक्षिण और उत्तर दिशामें जो दो दो गिरि-स्थित हैं, वह परस्पर दश दश सहस्र संख्यासे न्यून है। अन्य सब दो हजार योजन उन्नत और उसी प्रकार विस्तृत हैं। इसके बीच समुद्रमें स्थित छः वर्ष पर्वत हैं। यह पृथ्वी उत्तर दक्षिणमें नीची और बीचमें उन्नत और चौड़ी है॥ ६—१२॥ तीन वर्ष दक्षिणार्ध एवं तीन वर्ष उत्तरार्धमें हैं, इन दोनोंके बीचमें अर्धचन्द्रके आकारवाला इलावृतवर्ष अवस्थित है। उसके पूर्वमें भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल है। इलावृतके बीचमें कनकाचल सुमेरु हैं। इस महापर्वतकी ऊंचाई चौरासी सहस्र योजन है सोलह हजार योजन पृथ्वी के नीचे और उसी प्रकार सोलह हजार योजन विस्तृत है। इसका शिखर शरावेके समान बत्तीस हजार योजन विस्तृत है। इस गिरिका वर्ण पूर्वकी ओर श्वेत, दक्षिणकी ओर पीला, पश्चिमकी ओर नीला और उत्तरकी ओर लाल है। उसके ऊपर पूर्वादिक आठो दिशाओंमें क्रमसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रका निवास है। उसके ऊपर इन्द्रादिक लोकपालोंकी और बीचमें ब्रह्माकी चौदह हजार योजन विस्तृत दिव्य सभा सुशोभित है॥ १३—१८॥ इसके नीचे यथाक्रम पूर्वादिक चारों दिशाओंमें दश हजार योजन ऊंचे मन्दार, गन्धमादन, विपुल और सुपार्श्वचार विष्कम्भ पर्वत हैं। इन चारों पर्वतों पर ध्वजाके समान शोभायमान चार वृक्ष हैं। मन्दरपर कदम्ब, गन्धमादनपर जामुन, विपुल पर पीपल सुपार्श्वके ऊपर महान् वट वृक्ष है। इन समस्त वृक्षोंका ग्यारह सौ योजन

विस्तार है । पूर्व दिशामें जठर और देवकूट पर्वत हैं, वे परस्पर विशेष और नील गिरितक फैले हैं । मेरुके पश्चिम पार्श्वमें निषध और पारिपात्र हैं, पूर्व दिशाके समान यह भी नील और निषध पर्यन्त विस्तृत हैं । दक्षिण दिशामें कैलाश और हिमवान नामक महागिरि हैं, यह पूर्व पश्चिममें फैलकर समुद्रमें प्रविष्ट हुए हैं, उत्तरमें शृंगवान और जारुधि हैं, दक्षिणके समान यह समुद्र पर्यन्त विस्तृत हैं । हिमवान हेमकूट प्रभृति यह आठों पर्वत सीमापर्वत हैं, हे द्विजोत्तम ! सो मैंने तुमसे कह दिये हैं । हिमवान और हेमकूट आदि पर्वतोंका परस्परमें नौ हजार योजन विस्तार है और मेरुके पूर्व दक्षिण आदि चारों ओर इलावृत्तमें यह स्थित हैं ॥ १८—२७ ॥ गंध मादन पर्वतके शिखर पर हाथीके देहके समान जो जम्बूफल गिरते हैं, उसीके रससे उत्पन्न नदीको जम्बूनदी कहते हैं । इसी जंबूनदसे जाम्बुनद नामक स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है । हे द्विज शार्दूल ; वह जम्बूनदी मेरुकी परिक्रमा कर फिर जम्बू-मूलमें ही आजाती है । वहांके मनुष्य उसीका जलपान करते हैं । भद्राश्वमें अश्व शिरा, भारतमें कूर्माकृति विष्णु, केतुमालमें वराह, और उत्तरमें मत्स्य रूप नारायण रहते हैं । हे द्विज श्रेष्ठ ! उन चारों पर्वतोंमें नक्षत्र रूपसे ऋषि अवस्थित हैं, जो ग्रहोंके पूर्ण ज्ञाता हैं ।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भुवनकोषान्तर्गत जम्बूद्वीपवर्णन नामक चौवनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

पचपनवां अध्याय ।

—०*०—

मार्कण्डेय बोले—मन्दरादिक चार पर्वतोंमें जो चार वन और सरोवर हैं, उन्हें कहता हूं, सुनिये । पूर्व शैलमें चैत्ररथ, दक्षिणमें नन्दन; पश्चिममें वैभान और उत्तरमें सावित्र नामक वन है । मेरुके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीलोद तथा उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर स्थित हैं । मन्दरकी पूर्व दिशामें शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर

टीकाः—जिस प्रकार पुराणोंमें सृष्टि प्रकरण दैवीसृष्टि, आसुरी सृष्टि और मानवी सृष्टि इस प्रकार तीनोंका साथ साथ ही वर्णन चलता है, जिसके समझनेमें कठिनता होती है, उसी प्रकार भूगोल तत्त्वके देश, नदी, पर्वत, समुद्र, आदिका वर्णन भी मिश्र हुआ करता है । क्योंकि त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी ज्ञान दृष्टिके सामने चतुर्दश भुवनका दृश्य करामलकवत् हुआ करता था, इस कारण पुराणोंमें वर्णित भूगोल शास्त्रको आजकलके लौकिक भूगोल शास्त्रसे मिलाना उचित नहीं है । जो ऐसा करते हैं वे पुराणका अपमान करते हैं, इसके लिये एक उदाहरण दिया जाता है । सात समुद्रका जो वर्णन है उसमेंसे एक लवण समुद्र लौकिक है, बाकी छः समुद्र दैवी हैं ॥ १—१२ ॥

शुकंकवान् मणि शैल वृषवान् महानील, भवाचल, विन्दु, मन्दर, वेणु तामस, निषध, और देवशैल यह सब पर्वत हैं। त्रिकूट, शिखर कलिंग पतंगक, रुचक, सानुमान, ताम्रक विशाखवान्, श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान, एकशृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक, पञ्चशैल, कैलास, और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान ये समस्त पर्वत मेरुके दक्षिण पार्श्वमें अवस्थित हैं। सुरक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु, अञ्जन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर सहस्र शिखर, परिपात्र, और सश्रृंगवान, ये मेरु तथा विष्कम्भके पश्चिम दिशासे बाहर हैं। इन सब पर्वतोंका वर्णन हो चुका है, अब उत्तरके पर्वतोंका वर्णन करता हूँ सो सुनिये। शंखकूट, वृषभ, हंस, नाभ कपिलेन्द्र सानुमान, नील, स्वर्ण श्रृंगी, शातशृंगी, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि, तथा मयूर और जारुधि, ये समस्त पर्वत मेरुके उत्तर दिशामें कहे गये हैं। इनकी कन्दराएं अत्यन्त मनोहर हैं। हे द्विजोत्तम! निर्मल वे सरोवरोंसे घिरे और वनसे शोभित हैं। सुतरां इस स्थानपर पुण्यवान् मनुष्योंका ही जन्म होता है॥४-१५॥ हे द्विज श्रेष्ठ, स्वर्गकी अपेक्षा अधिक गुणशाली यह स्थान भूस्वर्गके नामसे प्रसिद्ध है। यहां अपूर्व पुण्य पापका उपार्जन नहीं है। हे द्विज सत्तम! इन सब शीतान्तादि शैलोंका उपभोग देवताओं को भी पुण्यभोग कहा गया है। वहां विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता और गन्धर्वादिकोंका शोभायमान वासस्थान है, सदा मनोज्ञ उपवनों और सरोवरोंसे परिवेष्टित है, सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली हवा चला करती है। किसी स्थानमें भी मनुष्योंमें कुछ भी वैमनस्यका कारण नहीं दिखाई देता। इसी लिये मैंने इसे चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन किया है। भद्राश्व, भारत आदि इसके चारों पत्र है। पहले दक्षिण दिशामें जो भारतवर्षका वर्णन किया है, वही कर्मभूमि है, और किसी स्थानमें पुण्य पापकी प्राप्ति नहीं है। इसीमें सब प्रतिष्ठित होनेके कारण यह प्रधान कहकर प्रसिद्ध है। हे दिज! कर्म भूमि होनेसे ही मनुष्यगण स्वर्ग मनुष्यता, नरक, पक्षीयोनि तथा अन्यान्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं॥ १६-२३॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भुवनकोषमें पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

छप्पनवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, जगद्योनि नारायणका ध्रुवाधार नामक जो पद है उससे त्रिपथ गामिनी गंगा उत्पन्न हुई हैं। समस्त जलके आधार, सुधा योनि चन्द्रमण्डलमें प्रवेशकर, वह वहां संवर्ध्यमान सूर्यकी किरणोंकी संगतिसे पवित्र हो सुमेरु पर्वतके ऊपर गिरी हैं, और

वहांके मेरुकूटोंसे गिरती, चक्कर खाती हुई चार धाराओंमें निकली हैं। इस प्रकार अपने जलको बिखेरती हुई निरावलम्ब गंगादेवी मन्दरादि पर्वतोंमें विभक्त होकर समान भावसे गिरी हैं। तथा पर्वत शिलाओंको तोड़ते हुए उन्होंने गमन किया है। उनमें गंगा-देवीकी जो धारा पूर्व दिशामें बहती हुई चैत्ररथ वनकी ओर गई है, उसका नाम सीता है। वही सीता गंगा चैत्ररथ वनको सींचती हुई वरुणोद सरोवरमें गई है। फिर वहां से शीतान्त पर्वत और वहांसे अन्य पर्वतोंका अतिक्रमण करती हुई पृथ्वीमें जाकर भद्राश्ववर्ष होती हुई समुद्रमें जा मिली है ॥१—६॥ उसी प्रकार दक्षिणमें गंधमादन पर्वतपर गिरी हुई अलकनन्दा नामकी धारा मेरुके सन्निकट, देवताओंको आनन्द देने वाले नन्दनवनको सींचती हुई बड़े वेगसे मानस सरोवरको गई है। मानस सरोवरको आप्लावित कर गिरिराज रम्य पर्वतके शिखर और वहांसे अन्य पर्वतोंको पार करती हुई महाद्रि हिमालयमें गिरी है। वहां वृषध्वज भगवान् शंकरने उनको धारण किया और किसी प्रकार भी नहीं छोड़ा। इसके बाद भगीरथने उपवास और स्तुतिसे भगवान्की की आराधना की। शम्भुसे छूट कर उसने दक्षिण समुद्रमें सात भागोंसे प्रवेश किया है। उनमें महानदीके तीन भाग पूर्वकी ओर सींचते हुए समुद्रमें मिले हैं, और एक धारा भगीरथके रथके पीछे जाती हुई दक्षिण समुद्रमें मिली है ॥ ७—१२ ॥ सुमेरु पर्वतके पश्चिम दिशामें विपुल पादसे होकर जो धारा निकली है, उस महानदीका नाम सुरक्षु है। वह वैभ्राज पर्वतपर वैभ्राज वनका पवित्र करती हुई शीतोद सरोवरको आप्लावित करती है। फिर वहांसे त्रिशिख पर्वत, त्रिशिख पर्वतसे अन्यान्य पर्वत शिखरोंको गई है। वहांसे केतुमाल पर्वतमें होती हुई वह दक्षिण समुद्रमें जा मिली है। सुमेरुके उत्तरमें जो गंगाकी धारा गिरी है उसका नाम सोमा है; वह सोमा गंगा सवित्र वनको पवित्र कर महाभद्र सरोवरमें गई है। फिर वह महानदी शंख कूट और वृषभादि पर्वतसे होकर उत्तरके समस्त कुरुदेशको पवित्र करती हुई महासागरके साथ मिली है ॥ १३—१८ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ! मैंने तुमसे यह गंगाजी का विषय वर्णन किया है। जम्बू द्वीपके निवेषमें जो किंपुरुषादिवर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें जो प्रजा रहती है वह प्रायः सुखी, निरांतक, एवं न्यूनता एवं अधिकता से रहित है। जो नव वर्ष कहे गये हैं, उनमें भी सात सात कुलाचल हैं, एवं प्रत्येक देशमें पर्वतसे बहनेवाली नदी विद्यमान हैं। हे द्विजोत्तम! किंपुरुषादि जो श्रेष्ठ पर्वत हैं और उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिज्ज हैं, क्योंकि इस भारतवर्षमें

टीका—त्रिलोक पावनी गंगादेवीका जो यह विस्तार कहा गया है, इसके पाठ करनेसे ही श्रद्धालु विद्वान्को विदित होगा कि, गंगादेवीका यह विस्तार स्वर्गलोक औ मृत्युलोक दोनोंका ही इकट्ठा वर्णन किया है, गंगादेवी त्रिलोक पावनी हैं इसलिये त्रिलोकमें इनकी स्थिति विद्यमान है ॥ १—१२॥

ही मेघका जल होता है । और यह जो आठ वर्ष हैं, वहां वार्क्षी स्वाभाविकी; देश्या, तोयोत्था, मानसी और कर्मजा यह छः प्रकारकी मनकी सिद्धि हैं । अभिलाषा प्रदान करने वाले वृक्षसे जो सिद्धि उत्पन्न होती है वह वार्क्षी सिद्धि है । स्वभावसे उत्पन्न सिद्धि स्वाभाविकी है । देशसे उत्पन्न सिद्धिका नाम देश्या और जलकी सूक्ष्मतासे जो सिद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम तोयोत्था सिद्धि है । मानसी सिद्धि ध्यान द्वारा सम्पादित होती है तथा उपासना आदिके द्वारा जो सिद्धि मिलती है वह कर्मजाके नामसे विख्यात है । हे द्विजोत्तम ! इन समस्त वर्षोंमें आधि व्याधि एवं पुण्य व पापका समागम कुछ नहीं है ।

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें गंगावतार नामका छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

सत्तावनवां अध्याय ।

—:०:*:०:—

क्रोष्टुकि बोले—भगवन् ! आपने इस जम्बू द्वीपका विषय संक्षेपसे वर्णन किया है । हे महाभाग, आपने कहा कि, भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य किसी स्थानमें कोई कर्म, पाप, व पुण्यके निमित्त अनुष्ठित नहीं होता; इसी स्थानसे स्वर्ग और मोक्ष, मध्य दशा और अन्त्य दशा समस्त प्राप्त होती हैं, अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंका कर्मानुष्ठान नहीं होता, इसीलिये हे ब्रह्मन् ! भारतवर्षका विषय विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये । हे द्विज शार्दूल ! इस भारतवर्षके जितने भेद हैं और उन भेदोंका जितना परिमाण है, जैसी उसकी स्थिति है, उसमें जितने देश और जितने पर्वत हैं, सभीका विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १-४ ॥ मार्कण्डेय बोले, इस भारतवर्षके नौ भेद हैं वह मुझसे सुनिये । वह सब समुद्र द्वारा अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं । इन्द्र द्वीप, कशेरुमान, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नाग द्वीप, सौम्य, गन्धर्व, वारुण और नवम भारतवर्ष । यह भारत नामका जो नवम द्वीप है, यह सागरसे घिरा एवं दक्षिण और उत्तरमें सहस्र योजन परिमित है । इसके पूर्व भागमें किरात और पश्चिम सीमामें यवनगण वास करते हैं एवं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्रगण इसके मध्यभागमें रहते हैं । ये यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य आदिक अपने अपने कर्मके द्वारा पवित्र होते हैं और इन्हीं सब कर्मोंके द्वारा उनका भलीभांति व्यवहार, स्वर्गलाभ, मोक्षप्राप्ति, पुण्य पाप आदि होते हैं । महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान, ऋक्ष, विन्ध्य और पारिपात्र नामक सात कुल पर्वत इसमें वर्तमान हैं । इन कुलाचलोंके सन्निकट एक एक सहस्र पर्वत हैं । उनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस

तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि रोचन, पाण्डुर, पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, कृतस्मर, श्रीपर्वत और कोर पर्वत यह अत्यन्त ऊँचे मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं। इनके अतिरिक्त और भी सैकड़ों पर्वत हैं। इन सब पर्वतोंसे मिले हुए जनपद म्लेच्छ और आर्य नामसे विख्यात हैं ॥ ५-१५ ॥ उन जनपदोंके निवसी मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियोंका जलपान करते हैं, उनका वर्णन करता हूं, सुनिये। गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्राभागा यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती, धूतपापा, बाहुदा दृषद्वती, विपाशा, देविका, चक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी। हे विप्र, यह सब नदियां हिमालयसे निकली हैं। वेदस्मृति, वेदवती, वृषघ्नी, सिन्धु, देवा, सानन्दनी सदानीरा, मही, पारा चर्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्रवती, शिप्रा और अवर्णी यह सब नदियां पारिपात्र पर्वतसे निकली हैं। महानद शोण और नर्मदा सुरक्षाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं। मन्दाकिनी और दशार्णा नदी चित्रकूट पर्वतसे निकली हैं। चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणी, विपाशा, मञ्जुला, सुमेरुजा, शुक्तिमती शाकुली, त्रिदिवा और आक्रम यह वेगसे बहनेवाली समस्त नदियां स्कन्दपाद या ऋक्ष पर्वतसे वहिर्गत हुई हैं। शिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणवा वैतरणी, सिनिवाली, कुमुद्वती, करतोया, महागौरी, दुर्गा और अन्तःशिरा यह पवित्र जलवाली—शुभप्रद समस्त नदियां विन्ध्यपादसे प्रसूत हुई हैं। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेणवा, तंगभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और महानदी कावेरी यह भी विन्ध्य पर्वतसे निकली हैं। कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्पलावती नदी पुष्पपर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, इक्षुका और त्रिदिवा यह शीत जलवाली मलयाद्रिसे उद्भूत हुई हैं। लांगलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं। ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी, कृपा

टीका—भारतवर्ष कर्मभूमि है, अन्य सब भोगभूमि है, यह वचन अति रहस्य पूर्ण है, रहस्यपूर्ण होनेपर भी अनेक पुराणोंमें ऐसा वचन पाया जाता है। जब समस्त संसार ही कर्माधीन है तो भारतवर्षकी यह प्रधानता क्यों दी गई? इस श्रेणीकी शंकाओंका सहज समाधान यह है कि, चाहे स्वर्गलोकके नाना देश हों अथवा असुरलोकके नाना देश हों अथवा भूलोकके प्रेतादि नाना देश हों अथवा मृत्युलोकमें भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य देश हों सब स्थलोंमें भोगकी सम्भावना अधिक और कर्म करनेकी सम्भावना कम है। देवलोक और असुर लोकमें तो इच्छामात्रसे भोग्य पदार्थकी प्राप्ति होनेसे और नरक लोक तथा प्रेतलोकमें केवल दुःखदायी भोग रहनेसे वे सब भोग लोक ही हैं, इसमें सन्देह नहीं और इस मृत्युलोकके अन्य स्थानोंमें साधारण मानव धर्मके बहत्तर अङ्गोंके साधन करनेका पूरा अवसर न रहनेसे और केवल भारतवर्षमें नहीं साङ्गोपाङ्ग धर्मका पालन करनेका अवसर रहनेसे और भारतवर्षके वर्णाश्रमीके साथ ऋषि, देवता और पितरोंके सम्बर्द्धनका बहुत कुछ घनिष्ठ सम्बन्ध रहनेके कारण इसको कर्मभूमि और धर्मभूमि करके माना है।

और पलाशिनी इन सब नदियोंका जन्म युक्तिमान् पर्वतसे हुआ है। हे द्विजवर! इन सब नदियोंके नामोंका जो वर्णन किया है वह सभी अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक जल वाली हैं। इनमेंसे कितनी ही गंगामें और किनती सागरमें गिरी हैं॥ १६-३०॥ यह समस्त संसारकी माता और पापहारिणी हैं। हे द्विजोत्तम! इनके अतिरिक्त और भी हजारों क्षुद्र नदियां हैं। उनमें कितनी ही वर्षा कालमें प्रवाहित होती हैं और कितनी ही में सर्वदा जल रहता है। मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुन्तल, काशी, कौशल अथर्ध, आकलिंग, मलक और वृक ये समस्त जनपद प्रायः मध्य देशीय कहकर गिनाये गये हैं। सह्य पर्वतके उत्तर दिशामें गोदावरी नदी वहती है, सम्पूर्ण पृथ्वीमें यह प्रदेश अत्यन्त मनोरम है। वहां महात्मा भार्गवकी गोवर्धन नामक मनोहर नगरी है और वाह्लीक, वाद्यधान, आभीर और कालतोयक ये अपरान्त देश हैं। शूद्र पल्लव, चर्मखण्डित, गांधार, यवन सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शतद्रज, कलिंग, पारद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, कैकेय, दशमालिक प्रभृति समस्त देशोंमें क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र कुल वास करते हैं। काम्बोज, दरद, वर्व्वर, हर्षवर्धन, चीन, खार, और बहुल इन प्रदेशों-में उत्पन्न मनुष्य वहिर्देशज कहलाते हैं। आत्रेय, भरद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, लम्पाक, शूल-कार, चूलिक, जागुड़ औषध और अनिभद्र आदि जातिके मनुष्य किरात जातिके ही भेद विशेष हैं। तामस, हंसमार्ग, काश्मीर तंगण, शूलिक, कुहक, ऊर्ण, और दर्व आदि समस्त देश उत्तरमें स्थित हैं। अब पूर्व देशोंको मुझसे सुनो॥ ३१—४१॥ अध्रारक, मुदकर, अन्तर्गिरि, वहिर्गिरि, प्रवंग, रंगेय, मानद, मानवर्तिक, उत्तर ब्रह्म, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेय मल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, यल्ल, मगध, और गोमन्त आदि समस्त देश पूर्व देशमें स्थित हैं। अब दक्षिण पथ स्थित समस्त देशोंका वर्णन करता हूं। यथा,—पुत्रक, केरल, गोलांगूल, शैलूष, मूषिक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, माहिषक, कलिंग, आभीर, वैशिक्य, आटव्य, शवर, पुलिन्द, विन्ध्य मौलेय, वैदर्भ, दत्तक, पौरिक, मौलिक, शलमक, नैषिक कुन्तल, अन्ध्र, उद्भिद और वनदारक आदि भोगवर्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कह-लाये हैं। इसके वाद पश्चिम देशकी कथा कहता हूं, सुनिये। सूर्यारक, कालिवल, दुर्ग, आलीकट, पुलिंद, सुमीन, रूपप, स्वापद और कुरुमिन इत्यादि देशोंको कटाक्षर अथवा नासिक्याद्य कहते हैं, और उत्तर नर्मदा भीरुकच्छ, माहेय सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र, आवन्त और अर्बुद आदि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्य कहकर विख्यात हैं॥ ४२—५२॥ अब विन्ध्यवासी देशोंका वर्णन सुनिये। सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक, तुम्बुरु, तुम्बुल, पटु, नैषध, अन्नज, लुष्टिकार, वीर होत्र और अवन्ति यह सम्पूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वतकी पीठमें हैं। अब उन समस्त देशोंका जो पर्वताश्रयी

अर्थात् पर्वतोंका आश्रय लेते हैं, वर्णन करता हूं। यथा,—नदीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस, कुन्त, प्रावरण, उर्ण, दार्व, कुत्रक, त्रिगर्ण, मालव, तामस, और किरात इन सब देशोंको पार्वतीय देश कहते हैं ॥ ॥ ५३—५७ ॥ हे क्रौष्टुके ! इस प्रकार चारों सीमाओंमें स्थित भारतवर्षका कीर्तन तुमसे कर दिया है। इसमें ही सत्ययुग, त्रेता, द्वापर आदि चारों युगोंकी विधि विद्यमान रहती है। इसे पूर्व, दक्षिण और पश्चिम धनुषाकार महासागर घेरे हुए है, तथा उत्तरमें हिमालय धनुषकी प्रत्यञ्चाके समान विद्यमान है। हे द्विजवर ! यही भारतवर्ष सबका बीज स्वरूप है, इसमें ब्रह्मत्व, देवत्व और देवगण सभी वर्तमान हैं। यही मृग, पशु, आदि और अप्सराओंका उत्पन्न करनेवाला है, इसीमें सरीसृप आदि उत्पन्न होते हैं। स्थावर, जंगम आदि जितने पदार्थ हैं, सभी इसमें शुभाशुभ कर्मफलसे उत्पन्न होते हैं। समस्त लोकोंके बीचमें यह भारतवर्ष ही एकमात्र कर्मभूमि है। हे विप्रर्षे ! सभी देवगण यही इच्छा करते हैं कि 'यदि देवत्वसे कहीं भ्रष्ट होना पड़े तो पृथ्वीमें इसी भारतवर्षमें मनुष्य-योनि प्राप्त हो। क्योंकि जो कार्य मनुष्य कर सकते हैं उसे देव और राक्षस कोई नहीं कर सकते। देखिये, यह कर्मरूपी वेड़ियोंसे बँधा हुआ मानव समुदाय लेशमात्र सुखके लिये, कर्म विख्यातिके लिये उत्सुक होकर क्या नहीं करते ॥ ५८—६४ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें नद्यादि वर्णन नामक सत्तावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठावनवां अध्याय ।

—०:॥:०—

क्रौष्टुकि बोले, हे भगवन्, आपने हमारे निकट भारतवर्षका वर्णन सम्पूर्ण रूपसे कर दिया है एवं उस देशमें जो समस्त नदियां, पर्वत देश और वहां पर जो निवास करते हैं वह सब भली भांति वर्णन किया है। किन्तु आपने पहले कहा है कि भारतवर्षमें भगवान हरि कूर्म रूपसे वास करते हैं, इस समय उनकी स्थिति किस प्रकार है, उसे सम्पूर्ण

टीका—चतुर्दश भुवनोंमेंसे भूलोक एक भुवन है, वही मध्याकर्षण विशिष्ट है। भूलोकके चार अङ्ग हैं, यथा—मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक, और पितृलोक। अतः मृत्युलोक हमारे ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा हुआ। इसी मृत्युलोकमें चाहे देवता हों चाहे असुर हों उनके भोग समाप्तिके अनन्तर पुनः कर्मसंग्रहके लिये जन्मग्रहण करना पड़ता है और पुनः यहां शुभाशुभ कर्मफल संग्रह करके देवता गन्धर्व आदि देवयोनियों अथवा असुरयोनि आदिको प्राप्त करनेमें समर्थ होते हैं। ऐसे मध्याकर्षण विशिष्ट मृत्युलोकका मस्तक रूप भारतवर्ष है। मृत्युलोकका भारतवर्ष उत्तमांग होनेसे और भारतवर्षकी प्रकृति सर्वाङ्गपूर्ण होनेसे इसकी इतनी महिमा कही गयी है ॥ ५८—६४ ॥

रूपसे सुननेकी इच्छा करता हूं। उन देव जनार्दनने कूर्मरूपमें किस प्रकार वास किया था और उनके द्वारा मनुष्यका शुभाशुभ किस प्रकार होता है? हे भगवन्, उनके मुख और चरण जिस प्रकारके हैं, उन सबका वर्णन पूर्ण रूपसे कीजिये ॥ १—३ ॥ मार्कण्डेय बोले—हे ब्रह्मन्, वही देव भगवान कूर्मरूप धारण करके नवखण्डोंमें विभक्त भारतवर्षको आक्रमण करके पूर्वकी ओर मुँह किये वास करते हैं। नक्षत्र और सम्पूर्ण विषय भी नव भागोंमें विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करते हैं। हे द्विजवर! यह सब भली भांति श्रवण कीजिये। विमाण्डव्य, वेदमन्त्र, शाल्व नीप, शक, उज्जिहान, घोषसंख्य, खश, सारस्वत. मत्स्य शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्यौतिषिक, गौरग्रीव, गुड़ाश्मक, उद्देहक, पाञ्चाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि पाखण्ड, पारियात्र निवासीगण, कापिंगल, बाह्य-कुरु, उडुम्बर और गजा यह सम्पूर्ण देश कूर्मके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं। कृत्तिका रोहिणी और मृगशिरा यह तीनों नक्षत्र उन मध्यवासी मनुष्योंके शुभाशुभका विचार करने-वाले हैं ॥ ४—१० ॥ वृषध्वज, अञ्जन, जम्बुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, खर्माक, कर्वटाशन, चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ्र और बदन, दन्तर समस्त पर्वत प्राग्ज्यौतिष, लौहित्य, समुद्र, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल, कषाय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एक पादप, वर्धमान और कौशल, यह समस्त कूर्मरूपी भगवानके मुखप्रदेशमें स्थित हैं। आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य यह तीन नक्षत्र उनके मुखमें स्थित हैं। उनके दक्षिण चरणमें जो समस्त देश हैं उनका वर्णन करता हूं, हे क्रौष्टुके उन्हें सुनिये ॥ ११-१५ ॥ कलिंग, वंग, जरठ, कौशल, मूषक, चेदि, उद्धर्धन और मत्स्य आदि जो देश विंध्य पर्वतके निकट हैं तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक व्याघ्रग्रीव महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी, कैष्किन्ध, हैमकूट, निषध, कटकस्थल, दशार्ण, हारिक, काकुला, लक, नग्न, निषाद देश और पर्णशवर आदि समस्त देश तथा आश्लेषा मघा और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र उनके पूर्व दक्षिण पादमें निवास करते हैं। लंका कालाजिन, शैलिक, निकट, महेन्द्र मलय और दर्दुर पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कटवन स्थित सम्पूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोंकण आभीर, वेण्वानदीके तीर स्थित समस्त देश, अवन्ति, दासपुर आकरनी महाराष्ट्र कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट, कोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर, कावेरी और ऋष्यमूक स्थित सम्पूर्ण देश-शंख सुक्ति और वैदूर्य शैल और उसके समीपवर्ती वारिचर, कोल, चर्म-पट्ट और गणवाह्य और कृष्ण द्वीप निवासी मनुष्य समुदाय सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वतों पर रहनेवाले मनुष्य, उखावन, पिशिक, कर्मनायक दक्षिण, कौरुष, ऋषिक, तापस, साश्रम, ऋषभ, सिंहल, कांची निवासी तिलंग कुञ्जर और दरी, कच्छस्थित मनुष्य, एवं ताम्र पर्णी यह सब कूर्मकी दक्षिण कुक्षिमें स्थित हैं। उत्तरा-

फाल्गुनी हस्त और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्मके दक्षिण पार्श्वमें विराजमान हैं ॥१५—२९॥ वाह्य पाद, काम्बोज, पह्लव, वड़वामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त वनितामुख, द्रावण, मार्गिग शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पांत्य, पारशव, कल, धूर्तक हैम गिरिक, सिन्धु, कालक, वैरत, सौराष्ट्र, दरद, द्राविण, महार्णव, वह समस्त जनपद कूर्मके दूसरे दक्षिण पदमें स्थित हैं, स्वाती विशाखा और अनुराधा तीनों नक्षत्र इन समस्त देशोंके शुभाशुभकी सूचना देते ॥३०—३४॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खञ्जन, अस्त गिरि, अपरास्तिक, हैहय शास्तिक, विप्रशास्त, कोङ्कण, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर अङ्गतक, शकी शाल्मल, गुरुस्वर, फल्गुनक वेणुमत्त, फाल्गुक, गुरुह कलह, एकैक्षण, वाजिकेश, दीर्घग्रीव, सुचुलिक और अश्वकेश, यह समस्त देश कूर्मकी पूछमें अवस्थित हैं। ज्येष्ठा मूला और पूर्वाषाढ़ा यह तीन नक्षत्र कूर्मकी पूंछमें ही विराजमान हैं। माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, ललन कुशार्त, लड़ह, स्त्रीवाह्य, वालिक, नृसिंह, वेणुमती बलावस्थ, धर्मबद्ध, उलूक, उरुकर्म स्थित मनुष्य यह समस्त देश कूर्मके बायें चरणमें स्थित हैं ॥ ३५—४० ॥ उत्तराषाढ़, श्रवण और धनिष्ठा यह तीनों नक्षत्र उसी स्थानमें स्थित हैं। कैलाश, हिमालय और धनुष्मान्, वसुमान और क्रौञ्च, कसत्रक, क्षुद्रवाण, रसालय, कैकय, भोगप्रस्थ, यामुन अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्निज, अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिविड़, केशधारी दोसरक, वारधान, शवधान, पुष्कल, अधम, कैरात तक्षशील, अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदान्तिक, पिंगल, मानकलह, हूण, कोहल, माण्डव्य, भूति, युवक, शातक, हैमतारक, यशोमत्य, गांधार, स्वरस गर, राशि, यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामल और क्षेमधूर्त, ये समस्त जनपद कूर्मरूपी भगवान्‌की बाईं कुक्षिका आश्रय ग्रहण कर अवस्थित हैं ॥ ४१—४८ ॥ शतभिषा, पूर्वा भाद्रपद, और उत्तरा भाद्रपद, नक्षत्र वहांके शुभाशुभ सूचक हैं। किन्नर राज्य, पशुपाल काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वंगण, कुलट, वनराष्ट्रक सैरिष्ठ, ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द पल्हव, लोलन, दार्वाद, मरक, कुरट अन्नदारक, एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक, यवन हिंगचिर प्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, और गंधर्व यह समस्त देश पूर्व उत्तर पदमें स्थित हैं, रेवती, अश्विनी और भरणी यह तीनों नक्षत्र इसके शुभाशुभ सूचक हैं ॥ ४९—५३ ॥ हे द्विज इन समस्त नक्षत्रोंके पीड़ित होनेपर उक्त समस्त देश पीड़ित होते हैं इसी प्रकार शुभ ग्रहके भली भांति अवलोकित अथवा अवस्थित होनेपर उन्नति और शुभ होता है। जो ग्रह जिस नक्षत्रके अधिपति हैं उस ग्रहसे उस देशको भय नहीं होता। हे मुनिश्रेष्ठ! वह ग्रह ही उस देशका शुभाशुभ सूचक है। हे द्विजोत्तम! प्रत्येक देशको

टीका—इस अध्यायमें भारतवर्षके देशोंका जो भेद वर्णन है, वह उस समयके भूगोलशास्त्रके अनुकूल प्रतीत होता है। कालभेदसे अब उन देशोंका पता लगना कठिन है।

ग्रह नक्षत्रसे उत्पन्न भय अथवा शुभ मनुष्योंको होता है। अपने नक्षत्रके अशुभ होनेपर मनुष्योंको सामान्य भय होता है। अशुभ ग्रहके द्वारा उक्त नक्षत्र यदि विद्ध हो तो पीड़ा, कष्ट और अमंगल होता हैं। द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, सुहृत्, पुत्री, अथवा पत्नीके ऊपर पुण्य-वान् व्यक्तियोंको ग्रहजात भय होता है ॥ ५४—६० ॥ जिन मनुष्योंका पुण्य अल्प होता है, उनकी देहमें पीड़ा होती है और पापियोंको समस्त पदार्थोंमें ही ग्रह पीड़ाका भय होता है। किन्तु जो पुण्यवान हैं उन्हें कहीं भी भय नहीं। मनुष्य समुदाय दिक्, देश, राजा अथवा पुत्र, इन सबके साथ नक्षत्रग्रहसे उत्पन्न शुभाशुभ भोग करता है। नक्षत्रोंके विषयमें मैंने जो कूर्म संस्थान बताये हैं वह सब देशोंमें समान शुभाशुभ सूचक हैं। सुतरां देश नक्षत्र, ग्रहकी पीड़ा, लोकवाद सब जानकर बुद्धिमान उसकी शान्ति करे। देव और दानवोंका शत्रु जब आकाशसे पृथ्वी पर गिरता है, तब लोकमें लोकवादके नामसे विख्यात होता है। अतएव बुद्धिमानको वैसा करना चाहिये, लोकवादको कभी न छोड़े। इन सबकी शान्ति करनेसे ही मनुष्योंका शुभ और दुरित क्षय होता है, शुभ उदय होता है, पापकी हानि होती है; इन सबकी शान्ति न करनेसे ये पुरुषका समस्त द्रव्य और बुद्धिकी हानि करते हैं, सुतरां लोकवादरत और शान्तिपर बुद्धिमान ग्रहपीड़ाके समय लोकवाद और शान्ति करें ॥ ६१—६० ॥ शान्ति-कालमें किसीसे द्रोह न करे, उपवास करे; देव बन्दना; जप होम दान और स्नान करे, एवं क्रोध आदिका परित्याग करे। बुद्धिमान मनुष्य समस्त प्राणियोंके साथ अद्रोह और मैत्री स्थापन करे; असत्य वाक्य और अतिवादका परित्याग करे। सपूर्ण पीड़ाओंमें मनुष्यको ग्रह शान्ति करना उचित है। हे द्विजोत्तम! ऐसा करने पर मनुष्योंकी ग्रह नक्षत्र जनित समस्त भयंकर पीड़ायें शान्त हो जाती हैं। हे द्विजोत्तम! भारतवर्षमें पूर्णरूपसे स्थित भगवान विभुका समस्त विषय मैंने कह दिया। उस अचिन्त्यात्मा नारायणके ऊपर ही सब कुछ प्रतिष्ठित है। प्रत्येक नक्षत्रमें स्थित देवताओंके वही आधार हैं। उनके मध्यमें अग्नि, पृथ्वी, और चन्द्र विद्यमान हैं। मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थलमें स्थित हैं; मिथु-नादि दो राशि उनके मुखमें विद्यमान हैं। कर्क और सिंह राशि उनके पूर्व दक्षिण चरणमें निवास करते हैं। सिंह, कन्या और तुला यह तीनों राशियां उनके ऊपर विराजमान हैं। तुला और वृश्चिक राशि उनके दक्षिण और पश्चिम पदोंमें विद्यमान हैं। वृश्चिक और धनु-राशि उनके पृष्ठ देशमें; धनु और मकरादि तीन उनके वायव्य चरणमें कुम्भ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षिमें, इसी प्रकार हे द्विजश्रेष्ठ! उनके पूर्वोत्तर चरणमें मीन और मेष राशि आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। हे द्विजवर! कूर्मके ऊपर देश और नक्षत्र जिस रूपसे स्थित हैं वह सब वर्णित कर दिया है। इस देशमें जिस

प्रकार समस्त राशि स्थित हैं, एवं राशि और नक्षत्रमें जिस प्रकार समस्त ग्रह विद्यमान हैं, वह सब वर्णन कर दिया गया। इस प्रकार ग्रह नक्षत्रके पीड़ित होने पर देश पीड़ा जाननी चाहिये। देश पीड़ा होने पर स्नान कर होम दान आदि करने चाहिये। यह जो विष्णुके चरण स्वरूप ब्रह्मा ग्रह गणोंके बीचमें निवास करते हैं, यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्के कारण और जगत्प्रभु हैं ॥ ७०-८१ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें कूर्म निवेश नामका अट्ठावनवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५८॥

उनसठवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—हे मुनिवर! मैंने भारतवर्षका वर्णन यथावत् कर दिया है। इस भारतवर्षमें ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलिरूप चारों युग वर्तमान हैं; यहीं ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका भेद है। सत्य, त्रेता आदि युगोंमें मनुष्य क्रमानुसार चारसौ, तीनसौ, दोसौ और सौ वर्ष जीवित रहते हैं। पूर्व दिशामें देवकूट नामक महापर्वतके पूर्वकी ओर जो वर्ष है, उसका नाम भद्राश्ववर्ष है; उसे मुझसे सुनिये। श्वेतपर्ण, नील, शैवाल कौरञ्ज और पर्णशालाग्र नामक पांच श्रेष्ठ कुलाचल और इनसे उत्पन्न और भी छोटे पर्वत इस वर्षमें स्थित हैं। यहां कुमुद संकाश, शुद्धसानु, सुमंगल आदि हजारों जनपद छोटे छोटे पर्वतोंके साथ भिन्न भिन्न रूपसे स्थित हैं। शीता शंखावती भद्रा, और चक्रावर्तादि अनेक शीतल वाहिनी नदियां विस्तीर्ण होकर इसवर्षमें बहती हैं। इस वर्षमें मनुष्य शंख और शुद्ध सुवर्णकी कान्ति वाले होते हैं, उनका संग उत्तम होता

टीका—भारतवर्षको जो कूर्म चक्र बनाकर उसके साथ राशि और नक्षत्र आदिका सम्बन्ध दिखलाया गया है, वह ज्योतिष शास्त्रका विषय है। पुराण शास्त्र और तन्त्र शास्त्रमें आत्मा अनात्मा-विचार अध्यात्मतत्व प्रकाश, धर्माधर्म निर्णय और लोकालोक स्वरूप कथन आदिके अतिरिक्त ज्योतिषशास्त्र वैद्यकशास्त्र, शकुनशास्त्र, जीवशास्त्र आदिका वर्णन भी बहुत कुछ पाया जाता है, पुराणोंमें विज्ञान अधिक है और तन्त्रोंमें क्रियासिद्धांश अधिक है। प्रत्येक सौर जगत्के ठीक चारों ओर जो और सौर जगत् हैं, वेही विशेष विशेष श्रृंखलाके अनुसार नक्षत्र और राशि कहाते हैं। नक्षत्र समूह सौर जगत् हैं और नक्षत्रोंके वलयोंका जो विभाग है वही राशि कहाता है, जैसे अपने सौर जगत्के ग्रह और उपग्रहकी आकर्षण और विकर्षण शक्तिका प्रभाव, पृथिवीके जीवोंपर पड़ता है वैसे ही नक्षत्र और राशिका भी पड़ता है, इसी प्रभावके आधार पर फलित ज्योतिषशास्त्र पूज्यपाद महर्षियोंने बनाया है। ज्योतिष शास्त्र सत्य-विज्ञानमूलक और अतिसूक्ष्म विज्ञानसे पूर्ण है; फलित ज्योतिषकी सहायताके लिये और भारतवासियोंको सहायता देनेके लिये यह कूर्मचक्रका वर्णन है।

है। वे पवित्र रहकर सहस्र वर्षतक जीवित रहते हैं। उनमें कोई भी उच्च व नीच नहीं है क्योंकि वे समदर्शी हैं। वहांके मनुष्य स्वभावसे ही तितिक्षा आदि आठ गुणोंसे युक्त हैं। इस भद्राश्व वर्षमें भगवान् चतुर्भुज जनार्दन हयग्रीव रूपसे शिर, हृदय, मेढ़ू चरण, हस्त और तीन नेत्रोंसे युक्त होकर स्थित हैं। उन जगत्प्रभुका विषय भी इस प्रकार जानना चाहिये ॥ १-११ ॥ इसके बाद पश्चिम केतुमाल वर्षका वर्णन मुझसे सुनिये।

टीकाः—प्रत्येक ब्रह्माण्डमें चौदह प्रधान लोक होते हैं। और उन चौदह लोकोंके और अलग अलग अन्तर्विभाग भी होते हैं। हमारे इस ब्रह्माण्डके ऊपरके सात लोकोंके नाम यथाः— १ भूः, २ भुवः, ३ स्वः, ४ महः, ५ जनः, ६ तपः, ७ सत्य। इसी प्रकार नीचेके सात लोकोंके नाम यथाः—१ अतल, २ वितल, ३ सुतल, ४ तलातल, ५ रसातल, ६ महातल, ७ पाताल। ऊपरके सात लोकोंमें देवता अर्थात् देवयोनिके जीव और नीचेके सात लोकोंमें असुर अर्थात् असुरयोनिके जीव वास करते और जाते आते रहते हैं। देवराजकी राजधानी स्वर्लोकमें है और असुरराजकी राजधानी पाताललोकमें है। इन चौदह लोकोंके पुनः अनेक अन्तर्विभाग हैं। यथाः—गन्धर्वलोक भुवर्लोक का अन्तर्विभाग है। इसी प्रकार भूलोकके चार अन्तर्विभाग हैं। यथाः—हमारा मृत्युलोक, प्रेतलोक, नरकलोक और पितृलोक, इन चारोंके सञ्चालक धर्मके नियमिक भगवान् यम धर्मराज हैं, जिनकी राजधानी पितृलोकमें है। और उनके दूत अन्य तीन लोकों अर्थात् मृत्युलोक, प्रेतलोक और नरकलोककी व्यवस्था बांधते हैं। मृत्युलोक वस्तुतः चतुर्दश लोकों का केन्द्र है। यहीं मातृगर्भसे जन्म होता है। सब जीवोंको शुभ और अशुभ कर्मोके भोगके अनन्तर मृत्युलोकमें आकर कर्मसंग्रह करना पड़ता है। क्योंकि मृत्युलोक कर्मभूमि है और यहां शुभाशुभ कर्म करने का सुभीता है। देवता और असुर, जो वहींसे आगे नहीं बढ़ सकते, उनको इस मृत्युलोकमें आकर पुनः कर्मकरके आगे बढ़ना पड़ता है। इसी कारण मृत्युलोककी ब्रह्माण्डमें प्रधानता है। इस मृत्युलोकमें भारतवर्षही उत्तमाङ्ग अर्थात् मस्तकरूप है। इसी कारण भाषाकी पूर्णता, शरीरके अङ्ग, रूपरेखा, वाणी आदिकी पूर्णता, और प्रकृतिकी पूर्णता इसी भारतवर्षके स्त्री पुरुषोंमें देखनेमें आती है। यही कारण है कि, सीता-सावित्री जैसी स्त्रियां, ध्रुव-प्रह्लाद जैसे बालक, रघु-युधिष्ठिर जैसे राजा, शिबि-दधीचि जैसे दाता वशिष्ठ-विश्वामित्र जैसे तपस्वी, भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण जैसे अवतार, याज्ञवल्क्य और पतञ्जलि जैसे योगी, मार्कण्डेय और कपिल जैसे मुनि, भरद्वाज और अत्रि जैसे ऋषि, वाल्मीकि और व्यास जैसे ग्रन्थरचयिता, अनुसूया और लोपामुद्रा जैसी तपस्विनी, मदालसा और सुकन्या जैसी गृहिणी, इसी भारतवर्षमें प्रकट हुई और उन्होंने इसकी महिमा बढ़ाई है। भारतकी स्थूल प्रकृतिकी पूर्णता को तो आजकलके स्थूलदर्शी साइण्टिस्ट गणभी एकवाक्य होकर स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि, ऐसी पूर्ण प्रकृति युक्त भूमि पृथ्वीभरमें नहीं है। सर्वोच्च और सबसे अधिक समृद्धिशाली पर्वत हिमालय भारतवर्षमें ही है। सबसे अधिक शक्तिशाली तथा दैवी विभूतियुक्त नदी गंगा भारतवर्षमें ही है, जिसको "जर्मथ्योरी" के मानने वाले साइण्टिस्टोंने भी स्वीकार किया है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चार प्रकारकी भूमि भारतवर्षमें ही है। छः ऋतुओं का यथाक्रम होना और हर समय कहीं न कहीं विद्यमान होना, भारतवर्षमें ही देखा जाता है। सब रङ्गोंके मनुष्य भारतवर्षमें ही देख पड़ते हैं। सब देशोंके उद्भिजसे लेकर सब पशुतक भारतवर्षमें जीवित और प्रसन्न रह सकते हैं। इन थोड़ेसे दिग्दर्शनोंसे भारतकी स्थूलप्रकृतिकी पूर्णता सिद्ध होती है। भारतकी सूक्ष्म प्रकृतिकी पूर्णताका जाज्वल्यमान प्रमाण उसका धर्मज्ञान, उसका तत्त्व-

इस वर्षमें जो सात कुल पर्वत हैं, उनके नाम इस प्रकार हैं, विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत, विशोक और बुद्धमान। इनके अतिरिक्त पृथ्वीके मौलिस्वरूप और भी हजारों महाकाय पर्वत हैं, उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्युलाख्य आदि अनेक प्रकारके सैकड़ों मनुष्य वास करते हैं। इस वर्षमें रंक्षु, श्यामा और कम्बला आदि सहस्त्रों नदी हैं। उनमें उत्तम जलवाली मनोहारिणी श्यामा ही सबसे श्रेष्ठ है। इस वर्षके मनुष्य इन्हीं सब नदियोंका जल पीते हैं। यहांके मनुष्योंकी आयुभी पहलेकी ही भांति है। इस वर्षमें भगवान् हरि वराहरूपसे निवास करते है। इनके चरण, मुख, हृदय, पृष्ठ और पार्श्व देशमें तीन तीन नक्षत्र विभक्त हैं; उनमें शुभप्रद देश स्थित रहते हैं। हे क्रौष्टुके! यह मैंने आपसे केतुमाल वर्षका वर्णन किया है ॥ ११—१७ ॥ हे द्विजवर! अब उत्तर कुरु देशका वर्णन करता हूं, सुनिये। इस उत्तर कुरु देशमें सर्वदा फल पुष्पोंसे युक्त, मधुर फलवाले, समस्त काम और कामोंके फलको देनेवाले वृक्ष फल उत्पन्न करते हैं, और उनके फलोंसे समस्त अलंकार उत्पन्न होते हैं। वहांकी भूमि मणिमयी, सुन्दर गन्धसे युक्त और सर्वदा सुखदेने वाली है। देवलोकसे परिभ्रष्ट होकर मनुष्य वहीं जन्म ग्रहण करते हैं। वे चक्रवाकके सदृश परस्पर अनुरक्त रहते हैं और समान कालतक रहनेवाले युग्म बालक बालिकाओंको उत्पन्न करते हैं। वह साढ़े चौदह हजार वर्षतक जीवित रहते हैं। इस वर्षमें चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठकुल पर्वत हैं। वहांपर पवित्र और निर्मल जलके प्रवाह वाली भद्रसेना नामकी नदी पृथ्वीमें बहती है, इसी प्रकार औरभी छोटी छोटी सैकड़ों नदियां वहां वर्तमान हैं। और जो दूसरी नदियां हैं उनमें कोई क्षीर वाहिनी और घृत वाहिनी है और कोई दधिसरोवरसे युक्त है। और इन सात कुल पर्वतोंके अतिरिक्त भी सैकड़ों छोटे छोटे पर्वत हैं। वहांपर सैकड़ों और हजारों रम्य वनोंमें अमृतके समान सुस्वादु फल फलते हैं। यहां परभी भगवान् विष्णु मत्स्यरूप धारणकर पूर्वकी ओर मस्तक किये हुए वास करते हैं। यहांपर नक्षत्र नवभागोंमें विभक्त होकर तीन तीनके क्रमसे स्थित हैं। हे मुनिवर इस प्रकार समस्त देश नव भागोंमें विभक्त हैं। इस वर्षमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप

ज्ञान, उसका वेद, उसका पुराण और उसका दर्शनशास्त्र समूह है। अतः भारतवर्षही पृथ्वीका स्वाभाविक मस्तकरूप है। जैसे मस्तकमें ही सब ज्ञानेन्द्रियों का केन्द्र रहता है, उसी प्रकार दैवीजगत्के साथ घनिष्ट संबंध भारतवर्षसे ही रहता है। यही कारण है कि, कलियुगके एक सहस्र वर्षतक देवतागण यहां साधारण तौर पर प्रत्यक्ष हुआ करते थे। ऋषि, देवता और पितरों का यहां घनिष्ठ सम्बन्ध विद्यमान रहनेके कारण चारों युगोंका इसी भारतवर्षमें प्रधान रूपसे घनिष्ठ सम्बन्ध पाया जाता है और उनका प्रभाव यहीं अलग अलग दिखायी दिया करता है और यहीं वर्णाश्रमकी ठीक ठीक श्रृंखला विद्यमान हैं ॥ १—११ ॥

नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं; दोनोंही समुद्रके बीचमें स्थित और पवित्र हैं। हे ब्रह्मन्! यह मैंने उत्तर कुरु वर्षका वर्णन भली भांति कर दिया है। इसके बाद किंपुरुषादिके विषयमें कहता हूं, सुनिये ॥ १८—२९ ॥

इसप्रकार मार्कण्डे महापुराणमें उत्तरकुरुकथन नामक उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥५९॥

साठवां अध्याय

—:०:*:०:—

मार्कण्डेय बोले,—इसके बाद किंपुरुष नामक जो वर्ष है, उसका वर्णन मैं करता हूं; वहां शरीरधारी मनुष्योंकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है, वहांके स्त्री और पुरुष नीरोग और शोक हीन होते हैं। वहां नन्दन वनके समान एक प्लक्ष खण्ड है। वहांके पुरुषगण उन्हीं वृक्षोंका रस पीकर सदा स्थिरयौवन और स्त्रियां कमलके समान गंधावाली होती हैं। इस किंपुरुष वर्षके बाद हरिवर्ष नामक एक और वर्ष है, वहां जो पुरुष जन्म ग्रहण करते हैं, वे उत्कृष्ट रजतकी कान्तिवाले होते हैं, वे समस्त देवलोकसे च्युत देवताओंके ही समान रूपवान है। हरिवर्षमें मनुष्य मधुर इक्षु रसका पान करते हैं, उन्हें जरा पीड़ित नहीं करती, इसलिये जीर्ण (दुर्बल) नहीं होते। वे जब तक जीते हैं, नीरोग जीते हैं ॥ १–६ ॥ मेरुवर्षको मैंने मध्यम वर्ष कहा है, इसे इलावृत कहते हैं, वहां सूर्य नहीं तपता और मनुष्य वृद्ध नहीं होते। वहां चन्द्र, सूर्य और नक्षत्रोंकी किरणे आत्म लाभ नहीं कर पातीं, क्योंकि वहां मेरुका ही अत्यन्त प्रकाश है। वहांके मनुष्य पद्मके समान कान्ति वाले, पद्मके समान गन्ध वाले और पद्मपत्रके समान विस्तृत नेत्र वाले होते हैं; वे जम्बू रसका पान करते हैं। वहां तेरह सहस्र वर्षकी परमायु होती है। मेरुके मध्यमें इलावृत वर्षका संस्थान शरावेका समान है। वहां मेरु महा शैल है और उसीके अनुसार इलावृत मेरुवर्षके नामसे प्रसिद्ध है। अब इसके बाद रम्यक नामक वर्षका वर्णन करता हूं, सुनिये। वहां भी न्यग्रोध नामक हरे पत्तों वाला एक समुन्नत वृक्ष है, वहां मनुष्य उसीके फलोंका रस पीकर जीवन धारण करते हैं। उसके फलोंको खाने वालोंकी आयु दश सहस्र वर्षकी होती है, वे रति क्रीणामें निपुण, सुन्दर और जरा तथा दुर्गन्धिसे हीन होते हैं। उसके उत्तरमें जो वर्ष है उसका नाम हिरण्मयवर्ष है। वहां बहुतसे कमल-पुष्पोंसे शोभित हिरण्वती नामक नदी बहती है। वहां जो मनुष्य जन्म ग्रहण करते हैं

वे अत्यन्त बलशाली, तेजस्वी यक्षोंके समान स्वरूप वाले, अत्यन्त सत्वशील, धनी और प्रिय दर्शन होते हैं ॥ ७-१५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें भुवनकोषान्तर्गत किंपुरुषादि वर्णन नामक साठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६० ॥

टीकाः—सनातन विज्ञानके कालनिर्णयके अनुसार १७२८००० वर्षका सत्ययुग, १२९६००० वर्षका त्रेता, ८६४००० वर्षका द्वापर और ४३२००० वर्षका कलियुग होता है। इस प्रकार चारों युगोंका मिलकर ४३२०००० मनुष्य वर्षोंका एक महायुग होता है। ऐसे ७१ महायुगोंका एक मन्वन्तर होता है, जिसमें मनुपदपर दूसरे देवता आजाते हैं। अब इस वर्ष संख्याको देखनेसे बुद्धिमान् व्यक्तिमात्र समझ सकेंगे कि, इस विपुल कालमें प्रकृतिका कितना परिवर्तन हो सकता है। साइन्सके विद्वान् यह सिद्ध करते हैं कि, दो हजार वर्ष बाद पत्थर और मकान आदिका कुछ भी पता नहीं चल सकता। उसी प्रकार अधिक कालमें नदी पर्वतादिका भी रूपान्तर हो जाता है। ऊपरके ये सब वर्णन अन्यान्य मन्वन्तरोंके हैं। अतः हमारे वर्तमान मन्वन्तरके भूगोल वर्णनके साथ ऊपर लिखित भूगोल वर्णनका बहुत कुछ पार्थक्य होगा, इसमें सन्देह ही क्या है? इस कारण यदि इस भूगोलके साथ नवीन भूगोल वर्णनका मेल न हो, तो शङ्का करनेका अवसर नहीं है। दूसरा विचार करनेका विषय यह है कि, पुराण और हमारे इतिहास शास्त्रमें अध्यात्मिक, अधिदैव और अधिभूत तीनोंका वर्णन साथही साथ चलता है। भेद यह है कि, जिसमें अधिभूत वर्णन अधिक हो, वह इतिहास कहाता है और जिसमें अधिदैव वर्णन अधिक हो, वह पुराण कहाता है। हमारे पुराण और इतिहास आजकलके लौकिक इतिहास नहीं हैं। वह धर्मग्रन्थ हैं। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, रामायणमें रामावतारकी कथा और महाभारतमें कृष्णावतार और पञ्चपाण्डवोंकी कथा और उसी प्रकार लौकिक राजाओंके वंश वर्णन अधिक हैं। इसी कारण रामायण और महाभारत इतिहास कहाते हैं। और सब पुराण कहाते हैं। महाभारतके विषयमें शङ्का-समाधानके लिये कहा जाता है कि, महाभारतका युद्ध केवल पांच सहस्र वर्षका पुराना होनेपर भी उसमें जो दैवी घटनाका वर्णन है, उसमें अर्जुनकी इसी शरीरसे स्वर्ग जाने और असुरलोकमें जाकर असुरोंसे युद्ध करनेका जो वर्णन है, उसका कारण यह है कि, सत्ययुग, त्रेतायुग द्वापरयुग और कलियुगके एक सहस्र वर्षतक देवताओंका साधारण तौरपर मृत्युलोकमें आना जाना बना था। ऋषियोंका भी आना जाना बना था। दैवी कृपासे तत्क्षण मनुष्य पिण्डमें देवपिण्डका परिवर्तन हो सकता था। ऋषिगणोंकी सहायता प्रत्यक्ष रूपसे पुण्यवान् मनुष्योंको प्राप्त हुआ करती थी। यही कारण है कि, महाभारतमें अनेक अलौकिक और आसाधारण बातोंका वर्णन पाया जाता है। इस कारण शङ्काका अवसर नहीं है। और यह तो पुराण तथा इतिहास दोनोंकी विशेषता है कि, एक गाथामें कहीं अधिभूत व्यक्ति, कहीं अधिदैव व्यक्ति और कहीं आध्यात्म व्यक्तिका वर्णन साथही साथ किया जाता है। क्योंकि हमारे इतिहास और पुराण लौकिक इतिहास नहीं हैं। वे धर्म रहस्यको प्रकाशित करनेके शास्त्र ग्रन्थ हैं। अतः प्रत्येक गाथामें यह ध्यान रखना उचित है कि, हम जब अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनोंका घनिष्ठ सम्बन्ध और समान अस्तित्व मानते हैं, तो तीनों ही कहा जा रहा है, ऐसी धारणा रहनी चाहिये। जब हम कहें कि, हे सूर्यदेव! तुम हममें विद्यमान हो, तो समझना चाहिये कि; हम अपने नेत्रेन्द्रिय स्थित रूप तन्मात्राको लक्ष्य कर रहे हैं। जब हम उनको कहें कि, तुम विश्वज्योति हो, तब हम अधिभूत सूर्यमण्डलको लक्ष्य कर रहे हैं। जब हम कहें,

इकसठवां अध्याय।

—:*:—

क्रौष्टुकिने कहा,—हे मुनिवर! मेरी जिज्ञासाके अनुसार आपने पृथ्वी, समुद्र ग्रह नक्षत्र आदिकी स्थिति, परिमाण, एवं पृथिव्यादिक तीनों लोकों, समस्त पातालों तथा स्वायम्भुव नामक प्रसिद्ध मन्वन्तरका वर्णन किया है। इस समय उक्त मन्वन्तरके परवर्ती अन्य समस्त मन्वन्तर, उन मन्वन्तरोंके विषयके सुननेकी मेरी इच्छा है। मार्कण्डेय बोले,—मैंने तुमसे स्वायम्भुव मन्वन्तरका जो वर्णन किया है, अब उसके परवर्ती स्वारोचिष नामक दूसरे मन्वन्तरका वर्णन सुनिये ॥ १-४ ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंकी अपेक्षा अधिक रूपवान, वेद वेदांग पारदर्शी, द्विजाति प्रवर, मृदु स्वभाव सदाचारी कोई ब्राह्मण वरुणा नदीके तीर अरुणास्पद नगरमें रहता था। अतिथि उसे सर्वदा प्रिय थे, रात्रिकालमें वह आये हुए लोगोंका आश्रय था। वह मनमें विचार करता कि, अति रमणीय बन और नदियोंसे उक्त अनेक नगरोंसे सुशोभित इस वसुन्धराको मैं देखूंगा इसके बाद एक समय समस्त औषधियोंके प्रभावको जानने वाला, मंत्र विद्या विशारद एक अतिथि उसके घर आया। श्रद्धासे पवित्र चित्त उस ब्राह्मणके पूछने पर उस अतिथिने उसके निकट विविध देश, रमणीय नगर, वन, नदी, पर्वत और पवित्र स्थानोंका वर्णन किया। तब उस अरुणास्पद निवासी ब्राह्मणने विस्मित होकर कहा,—हे द्विजवर! आप अनेक देश देखकर अब श्रान्त हो गये हैं, किन्तु न तो आप वृद्ध ही हुए और न आपका यौवन ही बीता है। इतने अल्प समयमें आपने किस प्रकार पृथ्वी परिभ्रमण किया है ॥ ५-११ ॥ आगन्तुक ब्राह्मण बोला,—हे विप्र, मंत्र और औषधिके प्रभावसे अप्रतिहतगति होकर एक सहस्र योजन मैं गमन करता हूं। मार्कण्डेय बोले,—फिर उस विद्वान् ब्राह्मणके वचनोंमें श्रद्धाकर अरुणास्पद, निवासी ब्राह्मणने कहा,—हे भगवन्! मंत्र और औषधि देनेकी कृपा मुझ पर कीजिये; क्योंकि पृथ्वी देखनेकी मेरी बहुत ही इच्छा है। उस उदार बुद्धिवाले आगन्तुक ब्राह्मणने अरुणास्पद निवासी ब्राह्मणके पैरोंमें औषधि लेपकर दिया और उसकी बतलाई हुई दिशा का उपदेश भी दिया। ॥१२—१५॥ हे क्रौष्टुके! इसके अनन्तर अतिथि के पाद लेपन कर देने पर "दिनके प्रथमार्धमें एक सहस्र योजन गमन करूंगा और अप-

---

कि, हमें चतुर्भुज रूपसे दर्शन दो, तब हम अधिदैव सूर्य मूर्तिको लक्ष्यकर रहे हैं। इसी प्रकार इतिहास और पुराणकी प्रत्येक गाथाका रहस्य समझते समय इस त्रिविध विज्ञानकी धारणा अवश्य रहनी चाहिये ॥७—१५॥

रार्धमें वापस भी आजाऊंगा।" यह सोचकर अनेकों प्रस्रवणों (उपपर्वतों) के सहित वह हिमालय देखने के लिये चल दिया और अनायास ही हिमालय पृष्ठपर पहुंचकर हिमालयकी भूमिमें भ्रमण करने लगा। वहां हिमके पैरमें लगनेसे उत्तम औषधियोंसे बना हुआ वह पादलेप धुल गया। सुतरां ब्राह्मण जड़गति होगये। वह इसके अनन्तर इधर उधर घूमते हुए हिमालयके अत्यन्त मनोहर शिखर देखने लगे। सिद्ध गन्धर्वोंसे सेवित, किन्नरोंसे मनोरम, इधर उधर देवगणोंकी क्रीड़ा और विहारसे रमणीय, ।सैकड़ों दिव्य अप्सराओंके द्वारा परिव्याप्त उस हिमोलयके शिखरोंको देखते देखते पुलकित होकर वह द्विजवर तृप्ति लाभ न करसके ॥ १६—२२ ॥ वह ब्राह्मण दत्तचित्त हो देखने लगे,—कहीं हिमालय पर्वत स्रोतोंसे गिरे हुए जलपातसे शोभा पा रहा है, कहीं नाचते हुए मयूरोंकी वाणीसे निनादित हो रहा है; कहीं दात्यूह (पपीहा) कोयष्टि (तीतर) आदि पक्षियोंसे परिवृत हो रहा है, कहीं कोयलकी मधुर कूकसे प्रतिध्वनित हो रहा है, और कहीं वृक्ष समूहमें खिले हुए पुष्पोंकी गन्धसे सुवासित वायुद्वारा वीजित हो रहा है ॥ २३—२५ ॥ यह ब्राह्मण पुत्र हिमालय पर्वत देखकर "कल फिर आकर देखूंगा" यह निश्चयकर घर जानेके लिये इच्छा करने लगे। वहां विलम्ब होनेके कारण उनका पादलेप भ्रष्ट हो गया था। अतएव वह जड़गति होकर सोचने लगे, "इस समय हिमजलमें हमारा पादलेप नष्ट हो गया है और हमभी अत्यन्त दूर दुर्गम हिमालय शैलमें चले आये हैं। अब बड़ा सङ्कट उपस्थित हो गया है; अग्निहोत्रादिक क्रियाकी हानि होगी, उसे यहां मैं कैसे कर सकूंगा? 'यह रम्य है, यह रम्य है' इस प्रकार इस श्रेष्ठ पर्वतपर सौ वर्षमें भी तृप्ति लाभ न कर सकूंगा ॥ २६—३० ॥ चारों ओरसे किन्नर गणोंका श्रुतिमधुर सुन्दर आलाप सुनाई देता है, कुसुमित वृक्षोंकी सुगन्धिसे घ्राणेन्द्रिय तृप्तिलाभ करती है, वायुका स्पर्श सुखकारी है और फल रसयुक्त हैं। सुन्दर सरोवर हठात् चित्त चुरालेते हैं। इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर यदि किसी तपोधनको देखपाता तो उससे घर जानेका उपदेश पा सकता।" मार्कण्डेय बोले,—पैरोंमें लगी हुई औषधिकी शक्तिके लुप्त हो जानेसे परम दुःखित होकर वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करते करते हिमालय भ्रमण करने लगे। उसी समय वरूथिनी नामक मौलैया, महाभागा और रूपवती किसी अप्सराने भ्रमण करते हुए उन्हे देखा। उन द्विजवरको देखकर कामदेवके द्वारा आकृष्ट हृदय हो, वह वरूथनी उसी समय उनसे प्रेम करने लगी। वरूथनी सोचने लगी, यह सुन्दर आकृति वाले पुरुष कौन है? यदि यह हमारा अपमान न करें तभी हमारा जन्म सफल होगा! अहा! इनकी कैसी अपूर्व रूप माधुरी है? कैसी मनोहर गति है? दृष्टिकी गम्भीरता है कहां? पृथ्वीमें और ऐसा पुरुष कहां? देव, दैत्य, सिद्ध, गन्धर्व, और पन्नग सभीका

रूप मैंने देखा है, किन्तु उनमें इनके समान रूपवान और किसीको नहीं देखा। मैं उनके प्रति जिस प्रकार अनुरागिणी हूं, उसी प्रकार यदि वह भी मेरे प्रति अनुरक्त होजांय तो हमारे पूर्वजन्मोंके किये पुण्योंका फल प्राप्त हो जाय। यदि यह हमारे ऊपर स्नेहस्निग्ध दृष्टि डालें तो हमारी अपेक्षा त्रैलोक्यमें और कौन पुण्यवती रमणी होगी?" ॥ ३१—४१ ॥ मार्कण्डेय बोले, वह देवांगना वरूथिनी कामदेवसे पीड़ित होकर, इस प्रकार चिन्ता करते करते अपने सुन्दर अंग प्रत्यंग उस ब्राह्मणको दिखाने लगी। वह द्विजपुत्र उस रूपवती वरूथिनीको देखकर आदरके साथ आकर बोले, हे सुन्दरी! तुम्हारा वर्ण कमलगर्भकी कान्तिवाला है। तुम कौन हो? किसकी स्त्री हो? यहां क्या करती हो? मैं ब्राह्मण हूं, अरुणास्पद नगरसे यहां आया हूं। हे मदिरेक्षणे, मैं जिसके प्रभावसे यहां आया हूं, वह मेरा पादलेप हिमजलसे नष्ट होकर उसीमें मिल गया है। वरूथिनी बोली, मैं वरुथिनी नामकी प्रसिद्ध भाग्य शालिनी अप्सरा हूं। इसी रमणीय महापर्वतपर सदैव विचरण किया करती हूं। हे विप्र, इस समय आपके दर्शनसे कामदेवके आधीन हो मैं लांछनेके योग्य हो गई हूं। मुझे आदेश दीजिये, मैं क्या करूं? इस समय मैं आपके आधीन हूं। ब्राह्मण बोले, हे चारुहासिनि, मैं जिस उपायसे अपने घर जा सकूं वह मुझसे कहिये। हे कल्याणि! प्रवासके वशसे इस समय हमारे सभी नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी हानि हो रही है। ब्राह्मणके लिये नित्य नैमित्तिक कार्य्योंकी हानि बहुतही अनिष्टकर होती है। अतएव हे भद्रे! इस हिमालयसे हमारा उद्धार करो। ब्राह्मणोंका प्रवास कभीभी प्रशंसनीय नहीं है। हे भीरु! मैंने कोई अपराध नहीं किया है। देश दर्शनके कौतूहलसे ही मैं प्रवासी हूँ। घरमें रहनेवाले ब्राह्मणके नित्य नैमित्तिक सभी कर्म निष्पन्न होते हैं, किन्तु प्रावासी होनेपर उन सभी कार्योंकी हानि होती है। हे यशस्विनी! अधिक बोलनेकी क्या आवश्यकता? इस समय वही कीजिये, जिससे सूर्यास्तके पूर्व ही मैं घर पहुंच सकूं। ॥ ४२-५२ ॥ वरूथिनी बोली,—हे महाभाग! ऐसा मत कहिये, वह दिवस ही उपथित न हो, जिस दिन आप मुझे छोड़ कर अपने घर जायं। हे द्विज नन्दन! स्वर्ग भी इस स्थान की अपेक्षा रमणीय नहीं है। अतएव हम लोग इन्द्र लोकको छोड़ कर यहीं रहें। हे कान्त! आप इस हिमाचलमें हमारे साथ विहार करते हुए अपने बन्धुओंका स्मरण भी नहीं करेंगे। इसी स्थानमें मैं आपको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूँगी, क्योंकि, मैं आपके आधीन हूं। हे महाभाग, इस स्थानमें वास करनेसे वीणा और वेणुका स्वर, किन्नरोंके मनोहर गीत, आल्हाद जनक संगीत, उष्ण अन्न, पवित्र अन्नजल, अभिलाषित शय्या और सुगन्धि और अनुलेप यह सभी आपको सुलभ हो जायंगे। यहां न रहनेसे अपने घरमें आपको और क्या अधिक मिलैगा? यहां रहनेसे

आप कभी भी जरा ग्रस्त नहीं होंगे। यह यौवनकी वृद्धि करनेवाली देवताओंकी भूमि है। यह कहकर उस अनुरागवती कमलनयनीने सहसा व्याकुल होकर मधुर स्वरसे "प्रसन्न होइये" कहकर उनका आलिंगन कर लिया ॥ ५३–६० ॥ ब्राह्मणने कहा, हे दुष्टे! तू मेरा स्पर्श मत कर। जो तेरे योग्य हो, तू उसके पास जा। मैंने तुझसे किसी रूपमें प्रार्थनाकी और तू उसे किसी दूसरे रूपमें ग्रहण कर मुझसे मिलनेकी चेष्टा करती है। प्रातः और सायं हवन करनेसे नित्यलोक प्राप्त होते हैं। हे मूर्खे! यह अखिल त्रैलोक्य होमके द्वारा ही प्रतिष्ठित है, अतएव उसके निर्वाहके लिये जिस उपायसे मैं घर जा सकूं, उसे शीघ्र ही कह। बरूथिनीने कहा, हे विप्र! मुझे देखकर क्या तुम्हें प्रेम नहीं होता? यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है? गन्धर्व और किन्नरोंको छोड़कर कौन व्यक्ति आपको अभीष्ट है। आप निश्चय ही यहांसे अपने घर जा सकेंगे। इस समय आप थोड़ीदेरके लिये मेरे साथ दुर्लभ भोगोंका भोग कीजिये। ब्राह्मणने कहा, गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिण, यही तीन अग्नि हमें अभीष्ट हैं, अग्नि-गृह ही रमणीय स्थान है और विस्तरिणा देवी ही मुझे प्रिय हैं। बरूथिनीने कहा, हे द्विजवर! आठ प्रकारके आत्म गुणोंमें दया ही प्रधान है, आप सद्धर्म पालक होकर भी हमारे ऊपर दया क्यों नहीं करते। मैं आपके विना जीवित न रहूंगी, मुझे आपके प्रति इतना अनुराग हो गया है। मैं यह झूठ नहीं कहती, अतएव हे, कुलनन्दन! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये ॥६१–६७॥ ब्राह्मणने कहा, यदि सत्य ही तुम मुझसे प्रेम करती हो और जो मुझसे कहती हो वह यदि बनावटी नहीं है तो जिस उपायसे मैं घर पहुँच सकूं वह बताओ। बरूथिनीने कहा, आप अपने घर जा सकेंगे, यह निश्चय है, किन्तु इस समय थोड़ी देरके लिये आप मेरे साथ दुर्लभ भोगोंको भोगिये। ब्राह्मणने कहा, हे बरूथिनी! स्त्रियोंके साथ इस प्रकार चेष्टा ब्राह्मणके पक्षमें भोगके लिये उचित नहीं है, वह उन्हें इस लोकमें भी क्लेश देती है और परलोकमें भी शुभ फल देनेवाली नहीं होती। बरूथिनीने कहा,—मैं मर रह हूं, मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें पुण्यका ही फल प्राप्त होगा और अन्य जन्ममें विविध प्रकारके भोग प्राप्त होंगे। इस प्रकार परलोक और जन्मान्तर दोनों अवस्थाओंमें आप सुखी होंगे। किन्तु मुझे निराश करने पर मेरी मृत्यु होगी और आपको पाप होगा। ब्राह्मणने कहा, 'पर स्त्रीकी इच्छा न करे' यह मेरे गुरुजनोंने कहा है। इसलिये चाहे तू विलाप कर चाहे जीवनका त्याग, मैं तेरी अभिलाषा नहीं करता ॥ ६८–७३ ॥ मार्कण्डेय बोले, बरूथिनीसे यह कहकर उस नियमवान महाभाग ब्राह्मणने आचमन कर पवित्र हो, गार्हपत्य अग्निको प्रणाम कर उपांशु (जो सुना न जा सके) जपके द्वारा कहा, हे भगवान् गार्हपत्य अग्ने! तुम सब कर्मोंके बीज रूप हो। आपहीसे आवहनीय और दक्षिणाग्नि उत्पन्न हुई हैं, उनका और

कोई उत्पादक नहीं। तुम्हारे ही प्रसन्न होनेसे देव वृष्टि और शस्यके हेतु होते हैं। शस्यसे ही समस्त जगत् प्रतिष्ठित है और किसीसे नहीं। तुमसे ही जिस सत्यके द्वारा यह जगत् इस प्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यके द्वारा आज सूर्यके रहते अपना घर देख सकूं, जिस सत्यके द्वारा समस्त वैदिक धर्म यथोचित कालमें मुझसे नहीं छूटते, उसी सत्यके द्वारा अपने घर आकर सूर्यका दर्शन करूँ, जिस सत्यके द्वारा मेरी मति परस्त्री और परद्रव्यकी अभिलाषा नहीं करती, उसी सत्यके द्वारा मुझे आज भी सिद्धि प्राप्त हो॥७४–७९॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिष मनूत्पत्यन्तर्गत ब्राह्मणवाक्य नामका इकसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

बासठवां अध्याय।

—::※::—

मार्कण्डेय बोले,—यह कहते कहते ही ब्राह्मण पुत्रके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने आकर अधिष्ठान कर लिया। इस प्रकार अधिष्ठित होकर प्रभामण्डलके मध्यवर्ती वह ब्राह्मण कुमार, मूर्तिमान अग्निके सदृश उस प्रदेशको प्रकाशित करने लगे। उस रूपमें ब्राह्मण कुमारको देखते ही उस दिव्यांगनाका और भी अनुराग बढ़ा, किन्तु गार्हपत्य नामक अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण उस समय वह ब्राह्मण कुमार पहलेकी भांति जानेके लिये शीघ्र ही प्रवृत्त हो गये। वह बड़े वेगसे चले गये। वह तन्वंगी अप्सरा उन्हें जहां तक दृष्टि गई, देखती रही। उसका गला दीर्घ निश्वाससे कंपने लगा ॥ १–५ ॥ उसी समय ब्राह्मण कुमारने तत्क्षण ही अपने घर पहुंच कर पूर्वोक्त प्रकारसे समस्त क्रियायें कीं। इसके अन्तर उस सर्वाङ्गसुन्दरी बरूथनीने उन ब्राह्मण कुमारके प्रति आसक्त मन हो, दीर्घ निश्वास लेते लेते शेष दिवस और समस्त निशा व्यतीत की। वह अनिन्दित अंगवाली मदिरेक्षणा सासें भरती हुई हाहाकार कर बारबार रोती रही, वह मंदभाग्या कह कर अपनी निन्दा करने लगी। न विहारमें, न आहारमें, न रमणीय वनमें और न रम्य कन्दराओंमें ही उसे सन्तोष मिला। दो चक्रवाकोंको रमण करते देख कर उसे भी अभिलाषा हुई, किन्तु वह वरारोहा ब्राह्मणकुमारसे परित्यक्त होनेके कारण अपने यौवनकी निन्दा करने लगी ॥ ६–१० ॥ "दुष्ट दैवके वशीभूत हो मैं इस पर्वतमें कहां आ गई ? और

टीका:—यह उपर्युक्त गाथा यथावत् सत्य होनेपर भी आजकलकी बुद्धिमें नहीं समाती। इसका कारण यह है कि, यह दूसरे मन्वन्तरकी बात है। उस समयकी दैवी शक्तिका आविर्भाव और तिरोभाव और उस समयके मानवपिण्डकी उपयोगिता अवश्य ही अन्य प्रकारकी थी, जो हमारी वर्त्तमान धारणासे परे है ॥ १–७९ ॥

कहांसे वैसा पुरुष मेरे दृष्टिगत हो गया ? यदि आज वह महाभाग मेरा संग नहीं करेगा, तो इस दुःसह कामाग्निमें जलकर निश्चय ही जीवन त्याग करूँगी। जिस कोयलका शब्द पहले मुझे अच्छा लगता था, आज ब्राह्मण कुमारसे पृथक् होनेके कारण वही मुझे जला रहा है।" मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार वह कामदेवके वशीभूत हो मुनिवरको देखने लगी, उस समय उसका अनुराग प्रतिक्षण बढ़ने लगा। पूर्व समयमें, अपने ऊपर अनुरक्त कलिनामक एक गन्धर्वको वरूथिनीने दूर कर दिया था। उसने उसे इस अवस्थामें देखा। तब वह सोचने लगा, "इस पर्वतमें यह गजगामिनी निश्वास पवनसे परिम्लान हो रही है, इसे किसी मुनिने शाप दिया है क्या ? अथवा किसीने इसका अपमान किया है ? क्योंकि इसके मुख पर बाष्पाश्रु गिर रहे हैं।" इसके अनन्तर कौतूहलके कारण बहुत देर तक ध्यान धर कर समाधिके प्रभावसे उसने सभी बातें जान लीं ॥ ११-१८ ॥ मुनिके वृन्तातको जान कर कलि सोचने लगे कि, "हमारे ही पूर्व कृत पुण्योंके फलसे ही यह अभिलषित प्राप्त हुआ है। अनुरक्त होकर मेरे बार बार प्रार्थना करने पर भी इसने दूर ही रक्खा, वह आज मुझे प्राप्त होगी। यह मनुष्यके ऊपर अनुरक्त हुई है, यदि मैं भी मनुष्य रूप धारण करूँ तो यह निश्चय ही मुझसे रमण करेगी। तब विलम्ब ही क्यों ? वही करूँ।" मार्कण्डेय बोले, अपने प्रभावसे उस ब्राह्मणका रूप रख कर वह कलिनामक गन्धर्व जहां वरूथिनी बैठी थी वहीं विचरण करने लगा। उसे देख कर उस वरारोहाके नेत्र कुछ कुछ विकासित हो गये। वह पास आकर बार बार कहने लगी, "प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये ! आपसे परित्यक्त होनेपर मैं निश्चय ही जीवन छोड़ दूंगी। उससे महान् अधर्म और क्रियाका लोप होगा। इस महापर्वतकी कन्दरा में मेरे साथ रहकर, मेरी रक्षा करनेके कारण अवश्य ही धर्म लाभ करेंगे। हे महामते ! निश्चय ही मेरी आयु अभी समाप्त नहीं हुई, इसलिये मेरे हृदयको आनन्दित करनेवाले आप लौट आये हैं" ॥ १९-२६ ॥ कलिने कहा, हे कृशोदरि ! क्या करू ? यहां रहनेसे क्रियाकी हानि तो होगी ही और तुम भी इस प्रकारके वाक्य कह रही हो। इसलिये मैं संकष्टमें पड़ गया हूं, मैं जो कहूं वही करना यदि तुम स्वीकार करो तभी तुम्हारे साथ मेरा संग हो सकता है, अन्यथा नहीं। वरूथिनीने कहा, आप प्रसन्न होइये। जो आप कहेंगे, वही मैं करूंगी। मैं झूठ नहीं बोलती हूं, कहिये, मुझे इस समय क्या करना चाहिये। कलिने कहा, आज वनमें सम्भोगके समय तुम मुझे देखना नहीं, नेत्र बन्द किये तुम्हारे साथ मेरा संसर्ग होगा। वरूथिनी बोली, यही हो। आपकी जैसी इच्छा है, वैसा ही होगा ! मैं इस समय सभी प्रकारसे आपके अधीन हूँ ॥ २७-३१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिषमन्वन्तरमें बासठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६२॥

त्रेसठवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, वह कलि वरूथिनीको साथ लेकर पर्वतों, कुसुमित कानन, सुन्दर सरोवर, रमणीय कन्दरा, नदी तीर तथा अन्य मनोज्ञ स्थानोंमें प्रसन्न चित्त हो विहार करने लगे। अग्निसे अधिष्ठित होकर उस ब्राह्मणका जैसा तेजस्वी स्वरूप हो गया था, सम्भोगके समय वरूथिनी नेत्र बन्द कर वैसा ही रूप चिन्तन करने लगी। हे मुनि सत्तम! उस गन्धर्वके वीर्यसे उस अप्सराने गर्भ धारण किया, ब्राह्मणके चिन्तनसे उसका रूप भी वैसाही तेजस्वी हुआ। इसके बाद गर्भिणी वरूथिनीको सान्त्वना देकर, उससे विदा ले वह विप्ररूपधारी गन्धर्व चला गया। सूर्यके समान अपनी किरणोंसे समस्त दिशाओंको प्रकाशित करता हुआ प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी एक बालक उत्पन्न हुआ। स्वरोचि अर्थात् अपनी अंग प्रभासे प्रकाशित होनेके कारण वह बालक स्वरोचि नामसे प्रख्यात हुआ॥ १—७॥ चन्द्रमाकी कलायें जिस प्रकार शुक्ल पक्षमें प्रतिदिन बढ़ती हैं, उसी

टीका—मैथुनी सृष्टिमें ध्यानके साथ सृष्टिका असाधारण घनिष्ठ सम्बन्ध है इसको प्राचीन आर्यगण अच्छी तरह समझते थे। अबतो साइंटिसगण कुत्ते आदिकी सृष्टिमें इस विज्ञानको काममें लाते हैं। छोटी जातिके कुत्ते और छोटी जातिकी कुतियाके सामने बड़ी जातिका कुत्ता बांध देते हैं। वह ऐसी बड़ी जातिका कुत्ता होता है कि जिससे उस छोटी जातिकी कुतियामें गर्भ नहीं रह सकता। इस सुकौशल पूर्ण क्रियाका नित्य फल कुत्तेकी सृष्टिमें साइंटिस्ट लोग प्राप्त करते हैं। उससे यह फल होता है कि ऐसी नवीन ढंगकी सृष्टिके कुत्ते देखनेमें उसी बड़ी जातिके कुत्तेके समान होते हैं, परन्तु शरीरसे छोटे होते हैं। पश्चिमी साइंटिस्ट अभी इस विद्याको इतना ही समझे हैं, परन्तु हमारे त्रिकालदर्शी महर्षि गण इस विद्याके पारंगत थे, अश्वमेध यज्ञका जो घोड़ा पैदा किया जाता था; वह इसी तरहसे किया जाता था। अश्वमेधमें जैसे चित्र विचित्र रंगके घोड़ेकी आवश्यकता होती है, ठीक उसी प्रकारका सुन्दर घोड़ा मिट्टीका बनाकर सामने रक्खा जाता और उसके सामने किसी अच्छी घोड़ीको खड़ा कर अन्य घोड़े से संगम कराया जाता था उससे ठीक आवश्यकताके अनुसार अश्व पैदा हो जाता था। इस विज्ञानकी व्यवस्था शास्त्रोंमें पायी जाती है। केवल अश्व शास्त्रमें ही इस सृष्टि व्यवस्थाको बांधकर हमारे पूज्यपाद ऋषिगण निश्चिन्त नहीं हुए। उन्होंने मनुष्यकी उत्पत्तिके विषयमें इसी सृष्टि विज्ञानके आधारपर अनेक आचारकी व्यवस्थाकी है अभीतक उन सब सदाचारोंकी श्रृंखला हमारे गृहस्थोंमें पायी जाती है। ऋतुमती स्त्री चतुर्थदिवसके स्नानके अनन्तर पतिका मुख पहिले देखती है। पतिके अनुपस्थित होनेपर देवर आदिका मुख देखती है! सद्गृहस्थोंके शयनागारमें देवता ऋषि और अवतारोंके चित्र रखनेकी आज्ञा है। इस पुराणके इस स्थलपर ऋषिके प्रेममें अप्सराको धोखा देकर यक्षने जो ऋषिका रूप बनाकर स्त्री संसर्ग किया उस समय अप्सराको ऋषिका ही ध्यान रहा, और उस ध्यानके बलसे उसके गर्भमें ऋषिके तुल्य रूप वाला पुत्र ही नहीं हुआ बल्कि उनके गुण भी आगये। यह गाथा अति सूक्ष्म विज्ञान मूलक है॥ १-७॥

प्रकार उस महाभाग बालकके गुण-समूह आयुके साथ साथ प्रतिदिन बढ़ने लगे। उन महाभाग स्वरोचिषने क्रमसे चारों वेद, समस्त शास्त्र और धनुर्वेदसे शिक्षित होकर यौवन की सीमामें पदार्पण किया। उन सुन्दर चेष्टा वाले स्वरोचि ने किसी समय मन्दर पर्वतपर भ्रमण करते हुए एक गिरि प्रस्थ पर एक भयभीत कन्याको देखा। इन्हें देखकर उसने 'रक्षा करो' यह वाक्य कहा। उन्होंने उस भयभीत नेत्रों वाली कन्यासे कहा 'डरो मत'। उन महात्मा ने वीरजनोचित वाक्यमें पूछा, क्या बात है? इसपर वह कन्या हांफनेके कारण अस्पष्ट अक्षरोंमें कहने लगी, इन्दीवर नामक विद्याधरके औरस पुत्र मरुधन्वाकी कन्यासे मेरा जन्म हुआ है, मेरा नाम मनोरमा है। विभावती और कलावती नामकी मेरी दो सखी हैं। पहली तो मन्दार नामक विद्याधरकी कन्या है, और दूसरी पार मुनीकी ॥८-१४॥ मैंने उन लोगोंके साथ एक दिन कैलासके किनारे जाकर वहां एक मुनिको देखा। वह अत्यन्त दुर्बल थे; उनका शरीर तपके कारण अत्यन्त कृश हो गया था, भूखसे उनका कण्ठ क्षीण हुआ जाता था, उनके नेत्रकी पुतलियां मानों बाहर निकली आती थीं। मेरे उपहास करने पर, क्रुद्ध हो, अत्यन्त क्षीण स्वरसे, होठोंको कुछ कुछ कंपाते हुए उस तपस्वीने मुझे यह शाप दिया 'ऐ दुष्ट तापसि अनार्ये। तूने मेरा उपहास किया है, इस लिये तू शीघ्रही किसी राक्षस द्वारा पराभूत होगी, मुनिके इस प्रकार अभिषाप देनेपर वे दोनों सखी मुनिकी भर्त्सना कर कहने लगीं,-'तुम्हारे क्षमाहीन ब्राह्मण धर्मको धिक्कार है, तुम जो तपस्या करते हो वह सब व्यर्थ है, क्योंकि ब्राह्मण धर्मका आधार क्षमा, और क्रोधका संयम ही तप है, तपस्यामें तुम अभी पूर्ण नहीं हुए और इसी बीचमें क्रोधके वशीभूत हो नष्ट होगये। यह सब सुनकर उन अतुलप्रभाववाले मुनिने उन्हें भी शाप दिया। एकसे बोले 'तुम्हारे सर्वाङ्गमें कुष्ट हो' और दूसरीसे उन्होंने कहा 'तुम्हारे क्षय रोग हो। मुनिके कहनेके अनुसार ही उसी क्षण उनके वह रोग होगये और मेरे पीछे भी एक महा-राक्षस लग गया ॥ १५—२१ ॥ आज तीन दिन हो गये, किसी प्रकार भी वह मेरा पीछा नहीं छोड़ता, वह निकट ही गर्जन कर रहा है, क्या आप नहीं सुन रहे हैं? समस्त अस्त्रों के सारसे निर्मित यह प्रसिद्ध अस्त्र आपको प्रदान कर रही हूं, हे महामते! आप इसके द्वारा इस राक्षस से मेरी रक्षा कीजिये। इस अस्त्रको पहले पिनाक पाणि रुद्रने स्वायंभुव मनुको दिया था, स्वायंभुव मनुने उसे सिद्ध श्रेष्ठ वसिष्ठ को प्रदान किया, उन्होंने मेरे नाना चित्रायुधको इसे दिया। मेरे पिताको यौतुक (दहेज) के स्वरूपमें स्वयं श्वसुरने इसे प्रदान किया। हे वीर! बाल्यकालमें मैंने अपने पिताके निकट समस्त अस्त्रोंके सार-भूत, शत्रुओंको विनास करनेवाले इस अस्त्रकी शिक्षा ग्रहण की। उसी समस्त अस्त्रोंके आश्रय स्वरूप इस वेगगामी अस्त्रको ग्रहणकर इस ब्रह्मघाती राक्षसका हनन कीजिये।

॥ २२—२७ ॥ मार्कण्डेय बोले,—इसके अनन्तर स्वरोचि के स्वीकार करलेने पर उस विद्याधरीने आचमन कर रहस्य और निवर्तनके सहित वह अस्त्र हृदय [मंत्र] प्रदान किया। इसी बीचमें वह भीषणकृति राक्षस, बड़ाभारी गर्जन करते हुए वहां बड़े वेगसे आ उपस्थित हुआ। स्वरोचि ने देखा, वह कह रहा था—"मेरे आक्रमण करने पर कौन रक्षा करेगा ? अब विलम्बकी आवश्यकता ही क्या ! शीघ्र आओ, मैं भक्षण करूं।"उसको आया देखकर स्वरोचि चिन्ता करने लगे "यह राक्षस इसे ग्रहण करे तो उस महामुनि के वचन सत्य होंगे।" उनके यह सोचते सोचते ही उस राक्षस ने विद्याधरीको आकर पकड़ लिया, वह सुमध्यमा रक्षा करो रक्षा करो, कहकर करुण विलाप करने लगी। इसके अनन्तर क्रोधित होकर स्वरोचि, अत्यन्त भैरव प्रचण्डास्त्रको संयोजित कर, निर्निमेष दृष्टिसे उस राक्षसको देखने लगे ॥ २८—३३ ॥ उस समय उनकी दृष्टिसे भय विह्वल होकर वह निशाचर, मनोरमाको छोड़, स्वरोचि से कहने लगा,—'प्रसन्न होइये' अस्त्रको शान्त कीजिये। सुनिये मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं। हे महाद्युते! बुद्धिमान ब्रह्ममित्रने जो दुरन्त शाप दिया था, आपने मुझे उससे मुक्त कर दिया है। हे महाभाग! आपसे अधिक मेरा और कोई उपकारी नहीं है, क्योंकि आपने मुझे अत्यन्त क्लेशकर ब्रह्मशापसे मुक्त किया है। स्वरोचि ने पूंछा,—'महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुम्हें किस लिये और कैसा शाप दिया था। राक्षसने कहा,—ब्रह्ममित्र मुनिने अथर्व वेदके त्रयोदश अधिकारका ज्ञान प्राप्तकर, आठ भागोंमें विभक्त समस्त आयुर्वेदका अध्ययन किया था। मेरा नाम इन्दीवर है मैं इस कन्याका पिता और खड्गधारी नल नाभ नामक विद्याधरका पुत्र हूं। मैंने पहले उक्त ब्रह्ममित्र मुनिके निकट यह प्रार्थनाकी कि, हे भगवन्! आप हमें अशेष आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये। हे वीर! विनयावनत होकर मेरे बार बार प्रार्थना करने परभी जब मुनिने मुझे आयुर्वेद विद्या प्रदान न की, तब हे अनघ! शिष्योंके पढ़ाते समय छिपकर वह आयुर्वेद विद्या ग्रहण की। आठ मासके अन्तरमें विद्या ग्रहण करलेने पर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ और बार बार हास्य करने लगा ॥ ३४—४३ ॥ हास्यसे सब जानकर, क्रोधित हो मुनिने, कंधे कंपाते हुए मुझसे यह कठोर शब्द कहे,—"हे दुर्मते! तूने राक्षसके समान अदृश्य होकर विद्याकी चोरी और मेरा उपहास किया है, अतएव तू मेरे शापसे अपने अधिकारसे च्युत होकर सात रात्रिमें ही भयंकर राक्षस होगा, इसमें सन्देह नहीं। ऐसा कहनेपर प्रणिपातादिक अनेक उपायोंसे उन्हें प्रसन्न किया। थोड़ी देर हीमें प्रसन्न चित्त हो, उन्होंने मुझसे फिर कहा,—'हे गन्धर्व! मैंने जो कहा है, वह अवश्यही होगा, उससे अन्यथा नहीं; किन्तु तुम राक्षस होकर फिर अपनी देह प्राप्त करोगे। नष्टस्मृतितथा तथा क्रोधित हो राक्षसके रूपमें जब तुम अपनीही पुत्रीके खाने

की इच्छा करोगे तब उसीके अस्त्राग्निसे तापित हो फिर स्मृति और अपने शरीरको प्राप्त करोगे। उसी प्रकार गन्धर्व लोकमें तुम्हारा स्थान भी तुम्हें मिलेगा।" हे महाभाग! आपने इस समय मुझे इस निशाचरत्वके महाभयसे मुक्त किया है, इस लिये हे वीर! मेरी एक प्रार्थना और कीजिये। हे महामते! यह कन्या मैं आपको सम्प्रदान करता हूं; आप इसे भार्यारूपमें ग्रहण कीजिये और मैंने जो उन मुनिके पाससे समस्त अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त किया है, उसेभी प्रदान करता हूं ग्रहण कीजिये ॥ ४४—५२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—दिव्याम्बर और दिव्यभूषण, युक्त पूर्व शरीरमें स्थित होकर उस गन्धर्वने विद्या प्रदानकर जब कन्यादानका उपक्रम किया, तब वह कन्या निजरूप धारी अपने पितासे बोली,—"हे तात! इन महात्माके दर्शन करनेके समयसे ही मुझे इनके प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया है; और इस परभी इस समय यह हमारे उपकारी हैं। किन्तु हमारी दो सखियां हमारे लिये दुःख भोग रही हैं, अतएव इनके साथ मुझे भोगोंके भोगनेकी अभी अभिलाषा नहीं है। मनोहर स्वभाव वाले पुरुषभी जब ऐसा नृशंस आचरण नहीं कर सकते, तब मेरे सदृश स्त्री कैसे कर सकती है। वे कन्यावस्थामें मेरे लिये जिस प्रकार दुःखसे पीड़ित हो रही हैं, उसी प्रकारमैं भी उनके दुःखमें शोकानलसे जला करूंगी ॥ ५३—५८ ॥ स्वरोचिने कहा,—हे सुमध्यमे! अपने इस शोकका परित्याग करो आयुर्वेद शास्त्रके प्रसादसे मैं तुम्हारी दोनों सखियोंको रोगसे मुक्त करूंगा। मार्कण्डेय बोले;—इसके अनन्तर स्वरोचिने उस पर्वतमें पितासे समर्पित उस चारु लोचना कन्या के साथ विवाह किया। कन्यादानके अनन्तर गन्धर्व पुत्रीको सांत्वना देकर दिव्य गतिसे अपने लोकको चला गया। स्वरोचिनेभी उस कृशांगीके साथ उस उद्यानको गमन किया, जहां दोनों कन्याएं मुनिके शापसे रोगातुर हो वास कर रहीं थीं। इसके अनन्तर आयुर्वेद के तत्वको जानने वाले विजयी स्वरोचिने रोगको नाश करने वाली औषधियों और रसोंसे दोनो सखियोंके शरीरको नीरोग कर दिया। तब व्याधिसे मुक्त अति रूपवती उन दोनों कन्याओंके शरीरकी प्रभासे वह पर्वत प्रकाशित होने लगा ॥ ५८—६३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें त्रेसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६३ ॥

चौसठवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार रोगसे विमुक्त होकर प्रसन्न चित्त हो एक कन्या स्वरोचि से कहने लगी कि, हे प्रभो! मेरे वचनोंको श्रवण कीजिये, मैं मन्दार नामक विद्याधरकी कन्या हूं, मेरा नाम विभावरी है। आपने जो मेरे साथ उपकार किया है, उसीके प्रतिदान स्वरूप मैं आत्म सम्प्रदान करती हूं, और वह विद्या भी दूंगी जिसके द्वारा सब प्राणियोंका स्वर जाना जा सकता है। आप कृपा पूर्वक ग्रहण कीजिये। मार्कण्डेय बोले, धर्मज्ञ स्वरोचिके 'एवमस्तु' कहकर स्वीकार कर लेनेपर द्वितीय कन्या उस समय यह वाक्य कहने लगी 'कुमारावस्थामें ब्रह्मचर्य व्रतधारी, वेद वेदांगके पारदर्शी महात्मा पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ॥ १—५ ॥ पुंस्कोकिलके अलापसे रमणीय वसन्त ऋतुमें पहले किसी समय उनके समीप पुञ्जिकास्तना नामकी एक प्रसिद्ध अप्सरा आयी। उस समय वह मुनिपुङ्गव कामके वशीभूत होगये। उनके संयोगसे इसी महापर्वत पर उस अप्सराके गर्भसे मैं उत्पन्न हुई हूं। इसके अनन्तर मेरी माता मुझे व्याल और श्वापदसे व्याप्त इस निर्जन वनमें भूपृष्ठपर अकेली छोड़कर चली गयी, तब एक महात्मा गंधर्व मुझे लेजाकर पालन करने लगे। वहां शुक्लपक्षमें बढ़ती हुई चन्द्रकलासे परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाती किन्तु कृष्ण पक्षमें जब चन्द्रकी कला कलाक्षीण होती उस समय मेरी कला नहीं; यह देखकर उन प्रतिपालक गन्धर्वने मेरा नाम कलावती रक्खा ॥ ६—१० ॥ कुछ दिनों बाद एक दिन अलि नामक एक असुरने आकर महात्मा पिताके निकट मेरे लिये प्रार्थना की। उस समय उन्होंने मुझे जब उस राक्षसको प्रदान नहीं किया, तब उसने मेरे पिताको शाप देकर मार डाला। तब मैं अत्यन्त दुःखके कारण दृढ़ प्रतिज्ञ हो आत्मविनाशके लिये उद्यत हो गई, तब शम्भुपत्नी सतीने मुझसे निवारण कर कहा; हे सुभ्रु! शोक मत करो। स्वरोचि नामक एक महात्मा तुम्हारे भर्ता होंगे, उनके पुत्र मनु होंगे और समस्त निधियां तुम्हारी आज्ञाका सादर पालन करेंगी। हे शुभे! तुम्हारी इच्छाके अनुसार वह धन प्रदान करेंगी; किन्तु हे वत्से! जिस विद्याके प्रभावसे समस्त निधियां तुम्हारी आज्ञानुवर्तिनी होंगी, महा पद्मसे पूजित पद्मिनी नामकी उसी विद्याको मुझसे ग्रहण करो ॥ ११—१५ ॥ सत्यपरायण दक्षकी सुता सतीने मुझसे यह कथा कही है; वह कभी भी झूंठ न बोलेंगी; अतएव आप निश्चय ही वही स्वरोचि हैं। मैं आपको देह, प्राण और वह विद्या अर्पण करती हूं; आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो ग्रहण कीजिये।

मार्कण्डेय बोले,—इसके बाद स्वरोचिने कलावतीसे 'ऐसाही हो' कहा। फिर स्निग्ध दृष्टिके द्वारा विभावरी और कलावती दोनोंकी अनुमति पाकर देवताओंके सदृश कान्तिवाले स्वरोचिने उनका भी पाणि ग्रहण किया। विवाहके समय देवताओंके वाद्य बजने और अप्सराओंका नृत्य होने लगा ॥ १६—१६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वरोचिष मन्वन्तरमें चौसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६४॥

पैंसठवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर देवताओंकी कान्तिवाले स्वरोचि अपनी पत्नियोंके साथ उस शैलेन्द्रके रमणीय कानन और निर्झर प्रदेशमें रमण करने लगे। हे महाभाग क्रौष्टुके! निधिगण पद्मिनी विद्याके वशवर्ती होकर उपभोग करनेके योग्य विविध रत्न, सुमधुर मद्य, माल्य, वस्त्र, अलंकार सुगन्धि, अनुलेपन, आसन, रजत, काञ्चन, कमण्डलु, सुवर्णनिर्मित विविध पात्र एवं दिव्य आस्तरण युक्त विविध शय्या आदि वस्तु इच्छानुसार प्रदान करने लगीं। स्वरोचि दिव्य सुगन्धिसे सुवासित और रत्नादिसे प्रकाशित पार्वत प्रदेशमें तीनों पत्नियोंके साथ विहार करने लगे ॥ १—५ ॥ स्वर्गके समान उस रमणीय श्रेष्ठ पर्वत पर स्वरोचिके साथ विहार करती हुई उक्त तीनों पत्नियां भी अत्यन्त आल्हाद प्राप्त करने लगीं। उसी समय स्वरोचि और उनकी पत्नियोंका वैसा प्रेम देखकर उसीके अनुरूप प्रणयकी इच्छा करती हुई एक कलहंसी दूसरी जल स्थित कलहंसीसे कहने लगी, "यह जो युवक अपनी स्त्रियोंके साथ इच्छित भोग्य विषयोंको भोग रहा है, यही धन्य है, यही पुण्यवान है। इस जगतीतलमें रूप और यौवनसे युक्त ऐसे अनेक सुपुरुष हैं, जिनकी पत्नियां रूपवती नहीं। किन्तु पति और पत्नी दोनों हीं सुन्दर हों, ऐसे दम्पति विरल हैं; किसीको पत्नी प्रिय है, किसी स्त्रीको पति प्रिय है किन्तु दोनोंको परस्पर अनुराग हो, ऐसे दम्पति अत्यन्त दुर्लभ हैं; अतएव अपनी पत्नियोंका प्रियतम यह युवक धन्य है, इसकी प्रियतमा पत्नियें भी धन्य हैं; क्योंकि जो धन्य हैं, उन्हींमें परस्पर अनुराग होता है॥६-११॥ कलहंसीके कहे हुए इन वचनोंको सुनकर चक्रवाकी बहुत विस्मित न होकर उससे बोली,—"हे सखि! यह स्वरोचि धन्य नहीं है। एक स्त्रीके समीप रहते यह अन्य स्त्रीसे सम्भोग करता है, सुतरां इसे कुछ भी लज्जा नहीं है। इसका मन भी सब जगह बराबर नहीं रहता; क्योंकि चित्तका अनुराग जब एक ही स्थानमें अधिष्ठित रहता है, उस समय यह अन्य स्त्रियोंसे समान अनुरागी कैसे होगा? यह पत्नियां भी इसको प्रिय नहीं हैं और न यह पति ही इनको

प्रिय है; अन्य परिजनोंके समान यह भी एक विनोद मात्र है। यदि यह सभीको प्रिय है तो प्राणोंको क्यों नहीं छोड़ता है? एक स्त्री जब इसका ध्यान करती है, उस समय यह दूसरीका आलिंगन करता है; विद्याओंके ग्रहण करनेके कारण, उसके मूल्यमें बिका हुआ—सा यह नौकरके समान आचरण करता है; क्योंकि बहुत स्त्रियोंमें समान प्रेम नहीं रहता। ॥१२—१७॥ हे कलहंसि! मेरा पति धन्य है और मैं धन्य हूं; क्योंकि मैं उसकी एक मात्र पत्नी हूं, उसका चित्त एक मात्र मुझमें और मेरा चित्त एक मात्र उसीमें लगा रहता है।" मार्कण्डेय बोले,—सब प्राणियोंके स्वरको जाननेवाले अपराजित स्वरोचि इसे सुनकर लज्जित हो चिन्ता करने लगे, 'जो यह कहती है, वही सत्य है, झूठ नहीं है।' इसके अनन्तर उस महापर्वत पर रमण करते हुए स्वरोचिके जब सौ वर्ष बीत गये तब उन्होंने एक दिन सामने मृगियोंके झुण्डके साथ विहार करते हुए स्निग्ध एवं पुष्ट अंगोंवाले एक मृगको देखा। कस्तूरीकी गंधसे सुवासित हिरणियोंसे वह घिरा हुआ था॥ १८-२१॥ उस समय हरिणियोंका झुण्ड नाक सिकोड़ सिकोड़ कर मृगके शरीरको सूंघ रहा था, उक्त मृग उनसे कहने लगा, पत्नियों, अब तुम जाओ, तुमने लज्जा छोड़ दी है। हे सुन्दर नेत्रोंवाली, मैं स्वरोचि नहीं हूं, न उसकी तरह मेरा स्वभाव ही है। स्वरोचिके समान तुम्हें अनेक निर्लज्ज मिलेंगे उन्हींके पास जाओ। एक रमणी अनेकोंके अनुगत होनेपर जिस प्रकार हास्यास्पद होती है, उसी प्रकार भोगके लिये अनेक स्त्रियोंके द्वारा निरीक्षित पुरुष भी हास्यास्पद होता है; उस समय प्रति दिन उसकी क्रियाकी हानि होती है। वह व्यक्ति एक

टीका:—वैदिक विज्ञानका यह सिद्धान्त है, और कर्ममीमांसा शास्त्र इसको सिद्ध करता है कि सृष्टिमें प्रथमसे ही दो धारा चलती हैं; एक स्त्री-धारा और दूसरी पुरुष-धारा। उद्भिज्जमें यही दो धारा विद्यमान हैं, स्वेदज, अण्डज आदिमें भी यही क्रम है। मनुष्यमें यही दोनों धारा मिलकर सृष्टिकी पूर्णता सम्पादन करती हैं। इस कारण पुरुष भी असम्पूर्ण रहता है और स्त्री भी असम्पूर्ण रहती है। जब विवाह संस्कारसे दोनों मिल जाते हैं तभी सब वैदिक संस्कार और याग यज्ञादिका वह दम्पति अधिकारी होता है। इस कारण चाहे प्रेमके विचारसे हो, चाहे धर्मके विचारसे हो, और चाहे सुख शान्तिके विचारसे हो स्त्रीके लिये एक पतिव्रत और पुरुषके लिये एक पत्नीव्रत ही परम मंगलकर रूपसे शास्त्रोंमें माना गया है। यही शुद्ध सनातन धर्म है। और यही आदर्श गृहस्थ धर्म है, जिसको भगवान् रामचन्द्रने अपने जीवनमें आदर्शरूपमें स्पष्ट किया है। शंका समाधानके लिये यह कहा जा सकता है कि स्त्री जातिके लिये तपोधर्म प्रधान आचार होनेसे स्त्रीके लिए दूसरे पुरुषोंकी चिन्ता करना भी अघ है। परन्तु पुरुष जातिका धर्म यज्ञप्रधान होनेसे पुत्र प्राप्तिके लिये पितरोंके उद्धारके निमित्तसे सन्तति न होनेपर दूसरी पत्नीका भी ग्रहण शास्त्रानुमोदित है। परन्तु यह गौणधर्म है, मुख्य नहीं है। केवल कामके विचारसे अन्य पत्नीका ग्रहण करना कामज कार्य होगा, धर्मज नहीं। यही आदर्श धर्म है। इसी धर्मका यहां प्रतिपादन किया गया है॥ १२—१७॥

भार्याका संग होनेपर दूसरी भार्याकी सदैव कामना करता है, अतएव परलोकसे पराङ्मुख स्वरोचिके स्वभाववाला जो कोई दूसरा नर हो उसकी कामना करो। तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचिके तुल्य नहीं हूं ॥२२-२६॥

इस प्रकार मारकण्डेय महापुराणमें स्वरोचिषमन्वन्तरमें पैंसठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥६५॥

छासठवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार हरिणके द्वारा मृगांगना निरस्त हो गई, स्वरोचि यह सब सुनकर अपनेको पतित समझने लगा। हे मुनि सत्तम! उसने चक्रवाकी और मृगके वाक्य सुनकर और मृगके आचरणसे अपनेको निन्दनीय समझकर उसी समय पत्नियोंके परित्यागकी अभिलाषा की; किन्तु फिर उनके साथ मिलकर, कामदेवके प्रवल होनेके कारण उनका वैराग्य दूर होगया और उन्होंने छ सौ वर्ष तक रमण किया। किन्तु उदार बुद्धिवाले स्वरोचिसे पत्नियोंके साथ विषयोंका भोग करते समय भी धर्माश्रित समस्त क्रियाओंको यथा विधि सम्पन्न करते ॥ १—४ ॥ इसके अनन्तर विजय, मेरुनन्द और प्रभाव नामक स्वरोचिके तीन पुत्र हुए। इन्दीवर विद्याधरकी कन्याके गर्भसे विजय, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्द और कलावतीके गर्भसे प्रभावका जन्म हुआ। समस्त भोगोंको देनेवाली पद्मिनी नामकी विद्याके प्रभावसे पिता स्वरोचिने तीन नगरोंका निर्माण किया। पूर्वकी ओर कामरूप पर्वतके ऊपरके प्रदेशपर बने हुए विजय नामक श्रेष्ठ पुरको पहले विजय नामक पुत्रको प्रदान किया। इसके अनन्तर उत्तर दिशामें अत्यन्त ऊंचे वप्र प्रकार से परिवेष्टित नन्दवती नामकी विख्यात पुरी मेरुनन्दको एवं दक्षिणदिशामें तालनामक नगर कलावतीके पुत्र प्रभावको स्वरोचिने प्रदान किया ॥ ५—१० ॥ हे विप्र! इस प्रकार वह नर श्रेष्ठ तीनों पुत्रोंको तीनों नगरोंमें प्रतिष्ठित कर मनोहर प्रदेशोंमें विहार करने लगे। एक समय धनुष लेकर वनमें विहार करते समय उन्होंने अत्यन्त दूरमें एक वाराह देख धनुष चढ़ाया। उसी समय एक हरिणी उनके समीप आकर बार-बार कहने लगी, इस बाणको मेरे ऊपर छोड़ो; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। इस वाराहको मारनेसे क्या होगा? शीघ्र ही मेरा वध कीजिये। आपका चलाया हुआ बाण दुःखसे मेरी रक्षा करेगा ॥ ११—१४ ॥ स्वरोचिने कहा, मुझे तुम्हारा शरीर रुग्ण नहीं दिखाई देता! क्या कारण है कि तुम अपने प्राणोंका परित्याग करना चाहती हो? मृगी बोली, जिसका हृदय अन्य रमणीसे

आसक्त है, उसी पर मेरा मन अनुरक्त है, उसके बिना मृत्यु ही मेरी औषध है, विशेष क्या ? स्वरोचिने कहा, हे भीरु ! तुम्हारी कौन अभिलाषा नहीं करता और तुम किसपर अनुरक्त हो, जिसके न मिलने पर तुमने प्राण छोड़नेका संकल्प किया है। मृगीने कहा, मैं तुम्हारी ही इच्छा करती हूं। आपका कल्याण हो। आपने ही मेरा चित्त चुराया है। इसी कारण मैं मृत्युकी आकांक्षा करती हूं, आप शीघ्र ही मेरे ऊपर वाण छोड़िये ॥ १५—१८ ॥ स्वरोचिने कहा, तुम चंचल अङ्गोवाली मृगी हो, हम मनुष्यरूपधारी हैं; अत एव मेरे सदृश मनुष्यके साथ तुम्हारा संयोग कैसे होगा ? मृगीने कहा, यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हो गया हो तो मेरा आलिङ्गन कीजिये। यदि आपका चित्त शुद्ध है, तो जैसी आपकी इच्छा होगी वैसा ही कार्य करूंगी। इस प्रकार आपके द्वारा मेरा अत्यन्त सम्मान होगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर स्वरोचिने उस हरिणांगनाका आलिङ्गन किया। किन्तु उनके आलिङ्गन करते ही वह दिव्य देह धारिणी होगई। तब आश्चर्य चकित, हो स्वरोचिने पूंछा, "तुम कौन हो ?" उसने प्रेम एवं लज्जाके कारण गद्गद स्वरसे कहा, मैं इस काननकी अधिदेवता हूं; देवताओंने मुझसे प्रार्थना की है, इसलिये मैं आपके निकट आई हूं। हे महामते ! आपको मेरे गर्भसे मनु उत्पन्न करना चाहिये। आपके प्रति मैं अनुरागिणी हूं, इस लिये भूलोकका प्रतिपालक पुत्र मुझसे उत्पन्न कीजिये, यह मैंने देवताओंके कथनानुसार आपसे कहा है ॥१९—२४॥ मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर स्वरोचिने उस वनदेवताके गर्भसे उसी क्षण समस्त लक्षणोंसे युक्त, अपने समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। उसके उत्पन्न होते ही देववाद्य बजनेलगे; गन्धर्वपति गान करने लगे; अप्सरायें दल बांधकर नृत्य करने लगीं, दिग्गज जलके बूंदोंसे सींचने लगे; इसी प्रकार तपोधन ऋषि और देवगण चारोंओर पुष्प वृष्टि करने लगे। उसके तेजको देखकर पिताने स्वयं नाम-संस्कार किया। उसके तेजसे समस्त दिशायें

टीका—मनुपद इन्द्र, वरुण, आदिके समान देवपद हैं। कालप्रमापक देवपद मनु कहाता है। प्रत्येक मन्वन्तरमें उस देवपदके अधिकारी व्यक्ति बदल जाते है। मन्वन्तर कितने वर्षोंका होता है। सो पहले कहा जा चुका है। यहां जो सृष्टिका वर्णन है वह भी दैवी सृष्टिका वर्णन है। मानवी जैजी सृष्टिका वर्णन नहीं है। इसको स्मरण रक्खा जाय। वह मृगी वनदेवी थी। वनदेवी पशुओंका रूप धारण कर सकती है। स्वर्गादिमें भी औरूप पतित जीवोंकी पशुसृष्टि रहती है, वहांके कोकिल मृगादि जन्तु आरूढ पतित जीव होते हैं। अतः मृगीके द्वारा देवऋषिके औरससे स्वारोचिष मनुष्य जन्म होना दर्शनशास्त्रके विरुद्ध नहीं होगा और इस कारण इस विषयमें शंकाका अवसर नहीं है। जिस प्रकारकी सृष्टि इस मृत्युलोकमें होती है, उसकी तुलना देवलोककी सृष्टिके साथ नहीं हो सकती। वहांकी गर्भधारण प्रथा, वहांकी सन्ततिकी उत्पत्ति आदिका ढंग और प्रकारका है। विशेषतः यह सब समाधिसे प्राप्त गाथायें अन्य मन्वन्तरकी होनेसे इनमें विचित्रता अवश्य ही होगी ॥ २५—३० ॥

प्रकाशित होने लगीं, इसलिये उस महा बल और पराक्रमशील बालकका 'द्युतिमान' नाम रक्खा गया। स्वरोचिके पुत्र होनेके कारण उसका 'स्वारोचिष' भी नाम पड़ा। किसी समय रमणीयगिरि निर्झरोंमें विचरण करते करते उक्त स्वरोचिने अपनी पत्नीके सहित एक हंसको देखा ॥२५—३०॥ उस समय हंस साभिलाष हंसीसे बारबार कहने लगा हे जलचरि ! अपने मनको निवृत्त करो, तुम्हारे साथ हमने बहुत देर विहार किया है। चिरकाल तुम्हारे साथ भोग करनेसे ही क्या होगा ? वृद्धावस्था आगई है, हमारे और तुम्हारे दोनोंके विषय वासना छोड़नेकी यह काल है ! हंसीने कहा, भोगमें अकाल कैसा ? यह समस्त जगत् ही भोगमय है, क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणभी भोगके ही लिये यज्ञादिक करते हैं, इसी प्रकार विवेकी पुरुष दृष्ट और अदृष्ट भोगोंकी कामना करते हुए दान देते और पूर्ण धर्मके अनुष्ठान करते हैं। संयतात्मा और विवेकी पुरुषोंके कर्मोंका फल भी जब भोग ही है, तब हम सरीखे तिर्यग् जातिके लिये कहना ही क्या ? अब उसी भोगकी तुम इच्छा नहीं करते, सो क्यों ? ॥ ३१—३५ ॥ हंसने कहा, जो भोगमें अनासक्त चित्त हैं, उनकी मति परमात्मानुगामिनी है; बन्धुवर्गके सहित रहनेवाले व्यक्तिकी वैसी मति कब और कैसे हो सकती है ? पुत्र, मित्र और स्त्री आदिमें आसक्त प्राणिगण तालावके दलदलमें फंसे हुए वनगजके समान दुःख प्राप्त करते हैं। हे भद्रे ! क्या तुम नहीं देखती हो, यह ज्ञात संग स्वरोचि बचपनसे ही काममें आसक्त और स्नेहके दलदलमें मग्न है। यौवनमें स्त्रियोंमें और इस समय पुत्र और नातियोंमें निमग्न स्वरोचिके मनका किस प्रकार उद्धार होगा ? हे जलेचरि ! मैं स्वरोचिके समान स्त्रियोंमें बंधा हुआ नहीं हूं; मैं विवेकवान हूं, इस समय भोगसे निवृत्त होगया हूँ। मार्कण्डेय बोले, पक्षीके कहे हुए इन वाक्योंको सुनकर स्वरोचिको उद्वेग हुआ; वह तीनों पत्नियोंको लेकर दूसरे तपोवनमें चले गये, वहां स्वरोचिने पत्नियोंके साथ घोर तपश्चरण करते हुए समस्त पापोंसे मुक्त होकर विमल लोकोंको गमन किया ॥ ३६—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें स्वरोचिष मनवन्तरमें छासठवां अध्याय समाप्त हुआ॥६६॥

सरसठवां अध्याय ।

इसके अनन्तर भगवानने द्युतिमान स्वारोचिषको प्रजापति मनु बनाया, उनका मन्वन्तर सुनिये। उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो समस्त देवता मुनि और मनुपुत्र भूपाल गण हुए, उन्हें कहता हूं, आप मेरे निकट श्रवण कीजिये। उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें

देवगण पारावत और तुषित नामसे तथा इन्द्र विपश्चितके नामसे विख्यात थे। ऊर्ज, स्तम्ब प्राण, दण्डालि, ऋषभ, निश्चर, और अर्वरीवान नामक सप्तर्षि थे। महात्मा स्वारोचिष मनुके चैत्र, किम्पुरुष आदिक महापराक्रमी पृथ्वीका भरण करने वाले सात पुत्र हुए। जितने समय तक उनका मन्वन्तर रहा, उतने समय तक उनके वंशके राजागण पृथ्वीका भोग करते रहे। मन्वन्तरोंमें स्वारोचिष मन्वन्तर द्वितीय हैं। इस स्वारोचिषकें चरित्र एवं स्वारोचिष मनुके जन्मके श्रवण करने पर मनुष्य पापसे मुक्त हो जाता है॥ १—२०॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सरसठवां अध्याय समाप्त हुआ।

अरसठवां अध्याय।

कौष्टुकिने कहा, हे भगवन्! स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुका जन्म वृत्तान्त आपने मुझसे सविस्तर कहा है। अब समस्त भागोंको देनेवाली पद्मिनी नामकी विद्याके आश्रित जो श्रमस्त निधियां हैं, उनके विषयमें मुझसे विस्तार पूर्वक कहिये। हे गुरो! आठ प्रकारकी निधियोंका स्वरूप और द्रव्य संस्थिति आपके मुखसे सुननेकी इच्छा करता हूँ। मार्कण्डेय बोले, पद्मिनी नामकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी है, यह विद्या हो आठ प्रकारकी निधियोंका आधार स्वरूप है। मैं उसे कहता हूं, आप श्रवण कीजिये ॥ १—४ ॥ पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंख नामक आठ निधियां इस पद्मिनी विद्याके आश्रित हैं। समृद्धि होनेपर यह निधिसमूह एवं उनकी सिद्धि प्राप्त होती है। हे क्रौष्टुके! यह आठ प्रकारकी निधियां तुम्हारे निकट कह दी गई हैं। देवताओंके प्रासादसे और साधुओंकी सेवासे यह निधियां मनुष्योंके धनको सदैव देखा करती हैं। इनका जैसा स्वरूप है, वह मैं तुमसे कहता हूं, सुनिये। पद्म नामक निधि पहले मय दानवके एवं उसके पुत्र, पौत्र, और प्रपौत्रोंके आधीन रहा। इससे अधि ष्ठित होनेपर पुरुष दाक्षिण्यवान्, सत्वगुणसम्पन्न और महाभोगी होता है, क्योंकि यह निधि सात्विक है ॥ ५—१० ॥ पद्मसे अधिष्ठित होने पर पुरुष विपुल सुवर्ण, रौप्य और ताम्र आदिक धातुओंका प्रतिग्रह तथा क्रय और विक्रय करता है, अनेक प्रकारके यज्ञकर विपुल दक्षिणा प्रदान करता है। वह एकाग्र चित्त हो सभा और मन्दिरका निर्माण करता है। महापद्म नामक निधि सत्वाधार कहकर प्रसिद्ध है; उससे अधिष्ठित होनेपर पुरुष भी सत्व प्रधान होता है। महापद्मनिधिसे अधिष्ठित होनेपर पुरुष पद्मरागादि रत्न मौक्तिक और प्रवालोंका स्वामी होता है एवं उन्हींका क्रय तथा विक्रय करता है। जो योगी

हैं उन्हें आवास और जनोंको उत्साह प्रदान करता है, और स्वयं भी योगशील है। उसके पुत्र पौत्रादिक वंशोत्पन्न उसीके समान शीलवान् होते हैं; पूर्वकी अपेक्षा दूसरेमें आधे परिमाण में रहकर यह सात पीढ़ोमें ही परित्याग नहीं करती ॥ ११—१६ ॥ मकर नामक निधि तामस है। उससे अधिष्ठित पुरुष तमोगुण प्रधान और सुशील होता है। इससे अधिष्ठित पुरुष धनुर्वाण खड्ग, चर्म का परिग्राही होता है, भोज्य वस्तुके आस्वाद ग्रहण करनेमें पूर्णरूपसे समर्थ होता है; राजाओंकेसाथ उसकी मैत्री होती है; वह भूपालप्रिय, शौर्यवृत्तिवाले पुरुषोंको दान देकर संतुष्ट होता है; वह शस्त्रोंके क्रय और विक्रयके अतिरिक्त और किसी कामसे प्रसन्न नहीं होता; वह द्रव्यके लोभमें डाकुओंके हाथसे अथवा युद्धमें मारा जाता है। मकरनिधिवाला यह पुरुष एक ही का अनुगामी होता है, उसके बादकी पीढ़ीका नहीं। कच्छप नामक जो निधि है उससे निरीक्षित पुरुष तमोगुण प्रधान होता है, क्योंकि यह निधि तामस है। वह पुरुष पुण्ययुक्त समस्त आचार और समस्त अदृष्ट पदार्थोंका भोग करता है, किसीका विश्वास नहीं करता एवं कच्छप जिस प्रकार अपने अंग छिपा लेता है उसी प्रकार अपने चित्तको समेट कर वह अपने मनको संयममें रखता है। विनाशके भयसे धनका न वह स्वयं उपभोग करता है और न दूसरोंको दान देता है। यह निधि एक पीढ़ी पर्य्यन्त ही पृथ्वीपर रहती है॥ १७—२४ ॥ हे द्विज ! मुकुन्द नामक जो दूसरी रजोगुण नामक निधि है, उससे अवलोकित पुरुष रजोगुणसे सम्पन्न होता है। वह वीणा, वेणु, मृदंगादिक चार प्रकारके बाजोंका परिग्रह करता है; गायक नर्तकोंको प्रचुर धन प्रदान करता है; वन्दी, सूत, विट (लम्पट) और लास्यपाठी (नर्तनाभिज्ञ) मनुष्योंको अभिलाषित भोगोंको प्रदान करता और उन्हींके साथ स्वयं उनका उपभोग करता है; इस पुरुषकी कुलटा और वैसे पुरुषोंके साथ प्रीति नहीं होती। जिस पुरुषकी यह निधि सेवा करती है, केवल उसीकी अनुगामिनी होती है। नन्द नामक महानिधि रज और तम दोनों गुणोंसे सम्पन्न होती है, उससे अवलोकित पुरुष अत्यन्त जड़ताको प्राप्त होता है; वह धातु रत्न और धान्यादि पवित्र द्रव्यों का परिग्रह एवं क्रय विक्रय करता है॥२५–३०॥ हे महामुने! वह व्यक्ति स्वजन आगत और अभ्यागतोंका आश्रय रूप होता है, वह थोड़ेसे भी अपमानके शब्द नहीं सहन कर सकता है, प्रशंसा करनेपर अत्यन्त प्रसन्न होता है, अर्थिगण जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, वह उन्हें वही प्रदान करता है। वह स्वयं मृत्यु स्वभाववाला होता है, उसके सुखके लिये अत्यन्त सुन्दर पुत्रवती अनेक स्त्रियां होती हैं। हे सत्तम! अष्टम भागसे वृद्धि करता हुआ यह निधि सात पीढ़ी तक अनुगामी होता है, यह अपने आश्रित पुरुषको दीर्घायु करता है। यह बन्धुओंका और दूरसे आये हुए पुरुषोंका भरण पोषण करता है, परन्तु परलोकमें इसका आदर नहीं

होता, पड़ोसियोंके प्रति इसका स्नेह नहीं होता, पहिलेके मित्रोंमें शिथिलता एवं नवीन मित्रोंमें स्नेह संस्थापन करता है ॥३१-३६॥ सत्व और रजोगुणसे सम्पन्न महानिधिका नाम नीलनिधि है, इससे अधिष्ठित पुरुष सत्त्व और रजोगुणसे युक्त होता है, वह वस्त्र, कपास धान्यादि, फल और पुष्पका परिग्रह करता है; मुक्ता, मूंगा, शंख, शुक्ति आदि तथा काष्ठ एवं जलसे उत्पन्न वस्तुओंका क्रय विक्रय करता है, उसका और जगह मनही नहीं लगता। वह व्यक्ति तालाब, पुष्करिणी, और नदियोंके पुलको बनवाता है; वृक्षोंको लगवाता है, वह अङ्गलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओंका उपभोग करता है। यह नीलनिधि तीन पीढ़ी तक अनुगमन करती है ॥ ३७—३९ ॥ शंख नामक जो निधि है, वह रज और तमोगुणसे युक्त है, उससे अधिष्ठित पुरुष भी उन्हीं गुणोंसे युक्त होता है। यह निधि एक ही पुरुषका अनुगमन करती है, अन्यपुरुषको नहीं प्राप्त होती। हे क्रोष्टुके! जिस पुरुषकी निधि शंख है, उसका स्वरूप सुनिये। वह पुरुष स्वयं उपार्जित उत्कृष्ट अन्नको खाता एवं उत्कृष्ट वस्त्र पहनता है, किन्तु उसके परिवारको कुत्सित अन्न एवं कुत्सित वस्त्र मिलते हैं। शंखनिधि-वाला पुरुष, मित्र, कलत्र, माता, पुत्र और पुत्रवधू आदिके भरणपोषणके लिये कुछ नहीं देता, वह सदा अपने ही पोषणमें तत्पर रहता है। यह निधि मनुष्योंको अर्थदेवताके नामसे प्रसिद्ध है। मिश्रावलोकनसे अर्थात् एक साथ कई निधियोंके देखनेसे यह मिश्र-फल देनेवाली होती हैं, अलग देखनेसे अपने ही स्वभावके अनुकूल फल देती हैं। हे द्विज! श्रीरूपिणी पद्मिनी नामकी विद्या उक्त आठ प्रकारकी निधियोंकी स्वामिनीके पदपर अधि-ष्ठित है ॥ ४०—४७

इसप्रकार मार्कण्डेयमहापुराणमें निधिनिर्णय नामक अड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६८ ॥

टीका—यह सब निधियां स्वयं ही दार्शनिक विज्ञानसे युक्त हैं। इन निधियोंके विज्ञानको समक्ष लेनेसे मनुष्य चरित्रवेत्ता, पण्डित और ज्योतिष आदि बहुत कुछ मनुष्य सम्बन्धी ज्ञानको प्राप्त कर सकते हैं। प्राचीनकालमें इस भारतभूमिमें क्या योगविद्या, क्या अध्यात्मविद्या, क्या मानव विज्ञान, क्या नानाजीवतत्त्व विज्ञान, क्या स्त्रीविज्ञान क्या पुरुषविज्ञान, क्या पदार्थविज्ञान, क्या पारलौकिक विज्ञान सब विषयोंका पूर्णज्ञान पुस्तकोंके द्वारा प्राप्त होता था। अब हमारी उन पुस्तकोंका सहस्रांश भी नहीं मिलता ॥ १—४७ ॥

उनहत्तरवां अध्याय।

—०:*:०—

कौष्टुकिने कहा—हे ब्रह्मन्, मेरे पूछने पर आपने मुझसे स्वारोचिषमन्वन्तर तथा आठों निधियोंका वर्णन विस्तार पूर्वक कर दिया है, अब उत्तम नामक तृतीयमन्वन्तर मुझसे कहिये। मार्कण्डेय बोले—सुरुचि नामक रानीके गर्भसे उत्तानपादके महाबली एवं पराक्रमशील उत्तम नामक एक प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुआ। वह धर्मशील, महात्मा और पराक्रमके धनी राजा हुए, सूर्यके समान उनका पराक्रम सब प्राणियोंको अतिक्रमण करके प्रकाशित होता था। हे महामुने! वह भूपति शत्रु-मित्र एवं प्रजा पुत्रको समान दृष्टिसे देखते थे; वह दुष्टको शत्रुके सदृश और साधुको चन्द्रमाके सदृश थे ॥ १—५ ॥ इन्द्रने जिस प्रकार सब लोकोंमें विख्यात शचीसे विवाह किया था, उसी प्रकार धर्मके जाननेवाले उत्तानपादके पुत्र उत्तमने वभ्रु की वहुला नाम्नी कन्यासे विवाह किया। चन्द्रमा जिस प्रकार रोहिणीके प्रति आसक्त रहता है, उसी प्रकार प्रसिद्ध वहुलाके प्रति उनका मन भी आसक्त रहने लगा। उनका मन और कहीं भी मुग्ध नहीं होता था; स्वप्नमें भी वह उसीका ध्यान धरते थे। वह उस सुन्दर अवयवोंवाली पत्नीका दर्शन करते ही स्पर्श करते, और स्पर्श करते ही तन्मय हो जाते थे। किन्तु रानीको भूपतिके वाक्य उद्वेग उत्पन्न करनेवाले और अत्यन्त सम्मान उसको अपमानजनक प्रतीत होता था॥५-१०॥ वह प्रदान की हुई माला तथा अत्यन्त सुन्दर आभूषणोंके प्रति अवज्ञा प्रकट करती; उसके अत्यन्त उत्कृष्ट आसवपान करते समय वह उठ जाती, मानो उसके अंगोंमें पीड़ा उत्पन्न होने लगी हो। भोजन करते समय यदि राजा थोड़े समयके लिये उसका हाथ पकड़ लेते तो वह बहुत हर्षित न हो थोड़ासा खा लेती। इस प्रकार महात्मा पतिके अनुकूल होनेपर भी वह अनुकूल न रहती और इसपर भी राजा उसपर अधिकाधिक अनुराग प्रकट करते थे। कभी एक समय स्वयं आसवपान कर राजाने सुरासे पवित्र पानपात्रको आदर पूर्वक मनस्विनी रानीके हाथमें दे दिया। उस समय बहुतसे भूपालोंके समक्ष संगीतमें निपुण श्रेष्ठ वारांगनाएं मधुर स्वरसे गान कर रही थीं। सुरासे पराङ्मुख रहनेवाली उस रानीने राजाओंके सम्मुख उस पात्रको ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की। इसपर सर्पके समान निश्वास छोड़ते हुए क्रुद्ध होकर राजाने द्वारपालको बुलाकर कहा,—इस प्रियतमा देवी वहुलाने अपने अप्रिय पतिको अपमानित किया है; तुम इसे विजन वनमें लेजाकर शीघ्र ही छोड़ आओ। मेरे आदेशमें तुम्हें सन्देह करनेकी आवश्यता नहीं ॥११—१८॥ मार्कण्डेय

बोले,—राजाके वचनोंको अविचार्य समझकर द्वारपालने उस सुभ्रूको रथमें बैठाकर वनमें लेजाकर छोड़ दिया। इस प्रकार वह रानी राजाके द्वारा वनमें छोड़ दी गई; उसने भी अदृश्यमान रहनेके लिये राजाके इस कार्यको परम अनुग्रह समझा। इधर उत्तानपादके पुत्र राजाका हृदय रानीके प्रति प्रगाढ़ अनुरागी होनेके कारण संतप्त रहने लगा; उन्होंने दूसरी भार्य्याका ग्रहण नहीं किया; केवल दुःखित चित्त हो उसी सुन्दरांगीका स्मरण करने लगे। वह इस प्रकारकी अवस्थामें भी प्रजाका पालन करते हुए धर्मपूर्वक राज्य करते थे। जिसप्रकार पिता अपने औरस पुत्रका पालन करता है, उसी प्रकार वह भी प्रजाजनका पालन कर रहे थे। इसी समय किसी एक सन्तप्तचित्त ब्राह्मणने आकर उनसे कहा,—महाराज! मैं अत्यन्त दुःखी हूं; जो मैं कहता हूं, उसे सुनिये। क्योंकि राजाके अतिरिक्त और कहीं भी मनुष्योंका दुःखोंसे परित्राण नहीं होता। मैं सो रहा था, उसी समय किसीने द्वार खोलकर मेरी स्त्रीका अपहरण कर लिया है; उसे बुलवा देना ही आपको उचित है ॥१६—२५॥ राजाने कहा,—हे द्विज! आपकी पत्नीका किसने अपहरण किया है, और कहां लेगया है; आप कुछ नहीं जानते हैं। मैं किसके साथ विरोध करनेका प्रयत्न करूँ और उसे कहांसे लाऊं? ब्राह्मणने कहा—द्वार बन्द थे; मैं सो रहा था तौ भी मेरी पत्नीका अपहरण हो गया, क्यों और किसने किया यह आप ही जानते हैं। क्योंकि आप राजा हैं और हम आपके रक्षित हैं। धर्मका षष्ठांश आपका वेतन है, इसीलिये मनुष्य रात्रिमें निश्चिन्त होकर सोते हैं। राजाने कहा—मैंने तुम्हारी स्त्री नहीं देखी, उसकी कैसी आकृति है, क्या वय है और उस ब्राह्मणी का कैसा स्वभाव है, मुझसे कहिये। ब्राह्मणने कहा,—हे भूपाल! उसके नेत्र कठोर हैं, शरीर लंबा है; हाथ छोटे हैं; मुंह कृश है, वह अत्यन्त कुरूपा है तौभी मैं उसकी निन्दा नहीं करता। हे भूप! बोलनेमें वह अत्यन्त कर्कश है और स्वभावसे भी वह सौम्य नहीं है; मैंने अपनी भार्य्याका रूप कह दिया है, वह देखनेमें अच्छी नहीं है, और उसका पूर्व वयस भी कुछ कुछ व्यतीत हो चुका है। मेरी पत्नीका यही स्वरूप है, मैंने आपसे सत्यही कहा है ॥ २६—३२ ॥ राजाने कहा,—हे ब्राह्मण! उसे रहने दीजिये; मैं आपको दूसरी पत्नी देता हूं; अच्छे लक्षणोंवाली पत्नी सुखके लिये होती है, वैसी कुलक्षणा पत्नी तो दुःखका ही हेतु है। हे विप्र! सुन्दर स्वरूप और उत्तमशीलही मंगलके हेतु हैं, इसलिये जो रूप और शीलसे हीन है उसका परित्याग ही उचित है। ब्राह्मणने कहा,—हे महीपाल! 'पत्नीकी रक्षा करनी चाहिये' यही श्रुति मुझे अवगत है। भार्य्याकी रक्षा करनेसे संततिकी भी रक्षा होती है। हे नरेश्वर! पत्नीके गर्भमें अपनी ही आत्मा जन्म ग्रहण करती है, अतएव उसकी रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि सन्ततिकी रक्षा करनेसे अपनी आत्माही की

रक्षा होती है । हे महीपाल ! पत्नीकी रक्षा न करनेसे वर्णसंकरकी उत्पत्ति होगी, ऐसा होने पर वह मनुष्य अपने पितृगण को स्वर्गसे नीचे गिराता है। भार्य्यासे हीन हो जानेके कारण मेरी प्रतिदिन धर्मकी हानि होती है; नित्यक्रियाकी हानि भी मेरे पतनके लिये ही होगी ॥ ३३—३८ ॥ हे पृथ्वीपाल ! उस पत्नीके गर्भसे होनेवाली मेरी सन्तति आपको धर्मसे षष्ठांश देगी। हे प्रभो ! इसीकारण मैंने आपसे कहा है कि, अपहरण की हुई मेरी पत्नीको आप मंगवा दीजिये । क्योंकि आपही रक्षा करनेके लिये नियुक्त हुए हैं। मार्कण्डेय बोले,—ब्राह्मणके वचनको सुनकर और विचार कर समस्त उपकरणोंसे युक्त महारथ पर राजाने आरोहण किया फिर वह इधर उधर पृथ्वीका परिभ्रमण करने लगे । उसी समय उन्होंने महारण्यमें एक उत्तम तापसके आश्रमको देखा। रथसे उतरकर उन्होंने आश्रममें प्रवेश किया, वहां उन्होने कुशासनमें बैठे हुए प्रज्वलित अग्निके समान तेजस्वी एक मुनिको देखा। राजाको आया हुआ देखकर उन्होंने शीघ्रता पूर्वक उठकर सादर स्वागतके लिये शिष्यसे कहा,—'अर्घ लाओ'। यह सुनकर शिष्यने उसी समय धीरेसे पूंछा,—'हे मुने ! क्या इन्हें अर्घ देना चाहिये, आप विचार कर कहिये, मैं आपकी आज्ञाका पालन इसी समय करता हूं।' इसके अनन्तर उन मनस्वी मुनिने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल आसन और सम्भाषणके द्वाराही राजाका सम्मान किया ॥ ३९—४६ ॥ ऋषिने कहा,—'मैं जानता हूं आप उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं, आप यहां किस लिये आये हैं और क्या चाहते हैं ? राजाने कहा,—हे मुने ! ब्राह्मणकी स्त्रीका किसीने अपहरण कर लिया है, उसका स्वरूप अविदित है। मैं उसी स्त्रीकी खोजमें यहां आया हूं । हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे कुछ पूछता हूं, मैं आपके घरमें अभ्यागत हूं, आप कृपाकर मुझसे उसका ठीक ठीक उत्तर दीजिये । ऋषिने कहा, हे पृथ्वीनाथ ! जो कुछ आपको पूछना है, उसे निःशंक होकर आप पूछिये, यदि मुझे कहना उचित होगा तो मैं ठीक ठीक कह दूंगा ! राजाने कहा,—हे मुनिवर ! घर आजाने पर, आप मुझे देखतेही पहले अर्घ देनेके लिये उद्यत हुए थे, उस अर्घको क्यों फिर वापस कर लिया ? ऋषिने कहा—हे नृप ! आपको देखतेही जब जल्दीमें मैंने इसे आज्ञा दी थी, उसी समय इस शिष्यने मुझे सावधान कर दिया । जिसप्रकार मुझे भूत, वर्तमान और भविष्यत्, प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष सभी ज्ञात हैं, उसीप्रकार मेरे प्रसादसे यह शिष्य भी इस संसारमें जो कुछ अनागत है सब जानता है। शिष्यके 'विचार कर कहिये' कहने पर मैंने सब कुछ जान लिया । इसीलिये मैंने आपको विधिपूर्वक अर्घ नहीं दिया । हे राजन् ! यह सत्य है, आप अर्घ देनेयोग्य हैं, आप स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हैं तो भी हमलोग आपको अर्घ देने योग्य नहीं समझने ॥ ४७—५५ ॥ राजाने

कहा,—हे ब्रह्मन्! ज्ञान वा अज्ञान पूर्वक मैंने ऐसा क्या किया है, जिसके कारण अभ्यागत होता हुआ भी मैं आपसे अर्घ पानेके योग्य नहीं हूं। ऋषिने कहा,—हे नृप! आपने अपनी पत्नीका वनमें जो परित्याग कर दिया है, क्या आप उसे भूलगये हैं? आपने उसीके साथ अपने समस्त धर्मोंका परित्याग कर दिया है! और भी देखिये, जब विण्मूत्रादि (विष्ठा) के स्पर्शसे वार्षिकी क्रियाकी हानि होती है तो उसी समय मनुष्य अस्पश्यं हो जाता है; आपकी तो पत्नीके विना नित्य ही कर्मकी हानि हो रही है! हे नर नाथ! पतिके किसी भी स्वभावके होने पर भी उसीके अनुकूल होना जिसप्रकार पत्नीका कर्तव्य है, उसीप्रकार दुःशील पत्नीकी रक्षा करनाभी पतिका धर्म है। ब्राह्मणकी जिस पत्नीका अपहरण हो गया है, वह उसके प्रति प्रतिकूल ही रहती है, तौभी केवल धर्मकी इच्छासे ही उसने आपको उद्यत किया है। हे महापते! औरोंके विचलित होनेपर आप उन्हें धर्ममें प्रतिष्ठित करते हैं, किन्तु

टीका—पति पत्नी सम्बन्धसे शुद्धाशुद्ध विवेक और उभयकी धर्मरक्षाके विषयमें धर्मविज्ञान दुर्ज्ञेय है। शुद्धाशुद्ध विचारका जो शास्त्रोंमें वर्णन है, उसका कारण मनुष्यके कर्मके सन्बन्धसे ही जाना गया है। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, जननाशौच मरणाशौच अथवा चन्द्र सूर्य्य ग्रहणका आशौच जब होता है तो उसका प्रभाव मनुष्यके मनोमयकोष पर पड़ता है। मनोमयकोषके उस समय प्रभावित हो जानेसे कर्ममें बाधा होती है। विष्ठामूत्रादिकी अपवित्रता भी अन्नमयकोषके द्वारा प्रभावित होकर अन्यकोषोंको प्रभावित करती है। उसके द्वारा कर्मके साधन और संस्कारके संग्रह दोनोंमें विघ्न उत्पन्न होता है। अतः कर्म्मोपासना यज्ञादिमें आशौचके बाधक होनेसे उसका निवारण करना आवश्यक होता है। यह शुद्धाशुद्ध और स्पृश्यास्पृश्य विवेकका वैज्ञानिक रहस्य है। इसी प्रकार पुरुष और स्त्री दोनोंके मिलने पर मानवप्रकृति पूर्णताको प्राप्त करती है। प्रकृतिराज्यसे परे आत्माके स्वरूपकी उपलब्धिकी बात और है, परन्तु जहांतक प्राकृतिक राज्य है, जहांतक सृष्टि प्रपञ्च है, वहां तक प्रकृति और पुरुष दोनोंका परस्पर सम्बन्ध अपरिहार्य है। परमपुरुष परमात्मा और ब्रह्मप्रकृति महामाया दोनोंका सगुण अवस्थाका जो सम्बन्ध है वही सृष्टि स्थिति और लयका कारण है। सृष्टि दशा अर्थात द्वैतदशामें चिन्मय पुरुष और त्रिगुणमयी प्रकृति दोनोंका युगल सम्बन्ध विद्यमान रहता है। महादेवी-आलिंगित महादेव दोनों मिलकर सगुण दशाको उत्पन्न करते हैं, वही सगुण ब्रह्मकी दशा है, तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी सशक्ति हो अपना अपना काम करते हैं, उनकी प्रकृति ब्राह्मी, वैष्णवी, और रौद्री माया या शक्ति कहाती है। जीवधारामें वही दो शक्ति अर्थात् चिन्मयी और त्रिगुणमयी होकर नियमित कार्य करती हैं। वही दोनों शक्तियां पुनः पुरुषधारा और स्त्रीधारा होकर उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज इन चारों भूत संघ में अलग अलग प्रवाहित होती रहती हैं। मनुष्यपिण्ड और देवपण्डिमें वही दोनों मिलकर पूर्णता प्रदान करती हैं। देवताओंमें बिना शक्तिके ब्रह्मा विष्णु महेशसे लेकर रुद्र, वसु, आदित्य आदि और इन्द्रादिक कोई भी अपने अपने कार्यके करनेमें समर्थ नहीं होते हैं और न पदके उपयोगी होते हैं। उसी प्रकार मनुष्यक्षेत्रमें मनुष्य सस्त्रीक होकर ही सब प्रकारके प्रवृत्ति धर्मोंका अधिकारी होता है। दूसरी ओर स्त्रीके द्वारा पुरुष और पुरुषके द्वारा स्त्री कार्यकारिणी होती है और अपने अपने धर्मपालनका अभ्युदय और निःश्रेयसका मार्ग सरल कर सकती हैं। बिना स्त्रीके न पुरुषकी

आपको अपने धर्मसे विचलित होजानेपर फिर कौन प्रतिष्ठित करेगा ॥ ५६—६१ ॥ मार्कण्डेय बोले, उन बुद्धिमान् ऋषिके ऐसा कहने पर राजाने लज्जित होकर सब स्वीकार किया और ब्राह्मणकी अपहृत पत्नीके विषयमें पूछा,—हे भगवन्! ब्राह्मणकी पत्नीको कौन ले गया है? वह कहां है? क्योंकिसंसारमें भूत और भविष्यत् आप यथार्थ रूपमें जानते हैं। ऋषिने कहा,—हे भूपते! उसका अपहरण अद्रिके पुत्र बलाक नामक राक्षसने किया है, आप आजही उसे उत्पलावत नामक वनमें देखेंगे। शीघ्रप्रस्थान कीजिये, और उन द्विजवरको उनकी पत्नीसे शीघ्रही मिला दीजिये। जिससे उक्त द्विजवरको प्रतिदिन पापका भागी न होना पड़े ॥ ६२—६५ ॥

इस प्रकार, मार्कण्डेय महापुराणमें उनहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय ।

—०:❀:०—

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर उन महामुनिको प्रणाम कर रथपर बैठ उनके बताए हुए उत्पलावत वनकी ओर राजाने गमन किया। वहांपर राजाने पतिके कथनानुरूप स्वरूपवाली ब्राह्मणकी पत्नीको श्रीफल खाते हुए देखा। उन्होंने उससे पूछा, हे भद्रे! आप इस वनमें क्यों आयी हैं? स्पष्ट कहिये, क्या आप विशालके पुत्र सुशर्माकी पत्नी हैं? ब्राह्मणीने कहा, मैं वनवासी ब्राह्मण अतिरात्रकी पुत्री हूं; जिनका नाम अभी आपने लिया है, उन्ही विशालके पुत्रकी पत्नी हूं। दुरात्मा बलाक नामक राक्षस मुझे हर लाया है; मैं उस समय मां और भाईसे हीन सोयी हुई थी। जिसने मुझे इस प्रकार माता, भ्राता तथा अन्य परिजनोंसे वियुक्त कर दिया है, वह राक्षस भस्मीभूत हो जावे! मैं यहां अत्यन्त दुःखी हूं। वह इस गहन वनमें लाकर मुझे, नहीं जानती, किस कारणसे छोड़ गया है। न वह मेरा उपभोग ही करता है, और न खाता ही है ॥१-७॥ राजाने कहा,—हे द्विज नन्दिनि!

रक्षा हो सकती है और न बिना पुरुषके स्त्रीकी रक्षा हो सकती है। सृष्टिकार्यमें जैसे दोनोंकी आवश्यकता होती है, सृष्टिकी रक्षामें भी वैसेही दोनोंकी आवश्यकता होती है। और लयरूपी मुक्ति कार्यमें भी स्त्री ही प्रवृत्तिधर्ममें पुरुषको सुरक्षित रखकर जब अभ्युदय कराती है तब वह निःश्रेयसका मार्ग प्राप्त करता है। निःश्रेयसका तो केवल पदमात्र है और आत्मोन्नतिका सारा मार्ग अभ्युदयका है, उस अभ्युदय करानेका सारा भार तभी उठाया जाता है जब पुरुष और स्त्री दोनों मिलकर उठावें। जब दोनोंकी दोनोंको पूर्ण अपेक्षा है, तो पुरुषके लिये एक पत्नीव्रत और स्त्रीके लिये एक पतिव्रतका धारण करना ही प्रशंसनीय और मुख्य धर्म है। पूर्व मन्वन्तरोंमें इस आदर्शकी प्रतिष्ठा थी, गाथाओंसे ऐसा ही प्रकट होता है ॥२६-६५॥

वह राक्षस आपको छोड़कर कहां गया है, क्या आपको यह मालूम है? मैं आपके पतिके ही द्वारा यहां भेजा गया हूँ। ब्राह्मणीने कहा, वह निशाचर इसी वनके प्रान्तभागमें रहता है; यदि उससे आप भय नहीं करते तो जाकर देखिये। मार्कण्डेय बोले, इसके बाद राजाने ब्राह्मणीके दिखाये हुए मार्गसे जाकर परिवारसे युक्त राक्षसको देखा। उन्हें दूरसे देखते ही वह राक्षस, मस्तकसे पृथ्वीका स्पर्श करता हुआ बड़े वेगसे उनके पैरोंके समीप पहुंचा। उसने कहा, मेरे मकान पर आकर महाराजने बड़ा अनुग्रह किया है; आदेश कीजिये, मैं क्या करूं। मैं आपके ही राज्यमें निवास करता हूं। यह मेरा अर्घ ग्रहण कीजिये; यह आसन है, बैठिये। आप स्वामी हैं, मैं सेवक हूं; आप मुझे निश्चिन्त हो आज्ञा दीजिए। राजाने कहा,—हे निशाचर! तुमने सभी कर्त्तव्य कर्म किये हैं; समस्त अतिथिसत्कार भी किया है, फिर ब्राह्मणकी भार्य्याको आप क्यों लाये हैं? यह सुन्दरी नहीं है; यदि पत्नी बनानेके लिये लाये हैं, तो आपके अनेकों पत्नियां हैं। अगर आप उसे खानेके लिये लाये हैं, तो खाते क्यों नहीं, यह मुझसे कहिये॥ ८—१५॥ राक्षसने कहा, हे नृप! हम मनुष्याहारी राक्षस नहीं हैं, वे राक्षस और होते हैं। हमलोग सुकृतोंके फलका ही भोजन करते हैं। अपमानित या सम्मानित हो हम पुरुष और स्त्रियोंके स्वभावका ही भोजन करते हैं। हमलोग जन्तुओंके खाने वाले नहीं हैं। जब हम मनुष्योंके क्षमागुणको खालेते हैं, तब वह क्रोधित होते हैं, और हमारे दुष्ट स्वभावके खालेने पर वे गुणवान् होजाते हैं। हे, नृप! हमारे अनेकों राक्षसी प्रमदायें अप्सराओंके समान रूपवती हैं, उनके रहते मानुषी स्त्रियोंमें हमें कैसे प्रेम हो सकता है॥१६-१९॥ राजाने कहा,—हे निशाचर! यदि यह उपभोगके लिये भी नहीं और आहारके लिये भी नहीं, तो इसे ब्राह्मणके घर घुसकर क्यों हर लाये? राक्षसने कहा, हे नृप! वह द्विज श्रेष्ठ मंत्रोंका जाननेवाला है, वह प्रतियज्ञमें जाकर राक्षसोंके मारनेवाले मन्त्रोंको पढ़कर मेरा उच्चाटन करता है। उसके मन्त्रोच्चाटन कर्मसे हम भूखे रहते हैं, कहां जायं? वह ऋत्विग् ब्राह्मण तो सभी यज्ञोंमें रहता है, इसीलिये मैंने यह विकलता उसमें उत्पन्न करदी है, क्योंकि पत्नीके बिना कोई भी पुरुष यज्ञकर्मके योग्य नहीं होता है॥ २०—२३॥ मार्कण्डेय बोले, उस महामति ब्राह्मणकी विकलताके वाक्यसे वह राजा अत्यन्त खिन्न होगये। ब्राह्मणकी विकलताको कहता हुआ यह हमारी ही निन्दा करता है, उन मुनिसत्तमने भी मुझे अर्घके अयोग्य ही कहा, यह राक्षस भी मेरे समान पत्नी-विहीन उस ब्राह्मणकी विकलताकी बात कह रहा है। इस समय मैं बड़ेभारी संकटमें पड़ गया हूं, इस प्रकार जब वह राजा चिन्ता कर रहा था, उसी समय हे मुने! फिर राक्षसने राजाको नम्रता पूर्वक प्रणाम करते हुए हाथ जोड़कर कहा, हे नरेन्द्र! मैं आपके राज्यमें रहता हूं, आपका

विनम्र सेवक हूं । आप आज्ञा प्रदान करनेका मुझ पर अनुग्रह प्रकट कीजिये ॥२४—२८॥ राजाने कहा, हे निशाचर! 'मैं स्वभावका भोजन करता हूँ' यह तुमने कहा है, इससे मैं जिस कार्यसे यहां प्रार्थी बनकर आया हूँ, उसे कहता हूं सुनो अभी तुम इस ब्राह्मणीकी दुश्चरित्रताका भोजन करलो, जिससे तुम्हारे द्वारा दुःस्वभावके खा लिये जानेपर, यह उस ब्राह्मण के प्रति विनीत हो जाय, फिर यह जिनकी पत्नी है उन्हींके घर उसे पहुंचा आओ । ऐसा कर लेनेपर अभ्यागतके प्रति तुम्हारा कर्तव्य पूरा हो जायगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर उस राक्षसने अपने मायाबलसे उस ब्राह्मणीके अन्तःस्तलमें प्रवेश कर राजाके आदेशानुसार दुःस्वभावका भोजन कर लिया । तब अत्यन्त प्रचण्ड दुःस्वभावसे परित्यक्तहोनेपर उस ब्राह्मणकी पत्नीने राजासे कहा, अपनेही कर्मफलके परिपाकसे मैं अपने महात्मा स्वामीसे पृथक् हो गई हूं, यह निशाचर तो उसका कारणमात्र था । न तो इसकाही दोष है और न मेरे महात्मा पतिका ही । मेरे अतिरिक्त और किसीका दोष नहीं । क्योंकि कर्मोंके फलका उपभोग अवश्यही करना पड़ता है । किसी दूसरे जन्ममें मेरे द्वारा किसीका विच्छेद हुआ है, उसीका फल मुझे प्राप्त हुआ, इसमें और किसीका दोष नहीं है। राक्षसने कहा, हे प्रभो ! आपके आदेशसे इसे इसके पतिके घर इसी समय पहुंचाता हूं। हे पृथ्वीपते ! आज्ञा दीजिये, और आपका क्या कार्य है ? राजाने कहा, हे निशाचर! इस कार्यके कर देनेपर तुमने सभी कार्य कर दिये । हे वीर ! कार्यके समय जब मैं तुम्हारा स्मरण करूं, तुम आ जाना । मार्कण्डेय बोले, 'ऐसाही हो' कहकर वह राक्षस उस समय दुःस्वभावके चले जानेसे पवित्र उस ब्राह्मणकी पत्नीको लेकर उसके पतिके घर पहुंचा आया ॥ ३३—३९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणान्तर्गत उत्तम मन्वन्तरमें द्विजभार्यानयन नामक सत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७० ॥

इकहत्तरवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, उस स्त्रीको अपने पतिके घर भेज निःश्वास छोड़ते हुए राजाभी चिन्ता करने लगे, अब क्या करनेसे भला होगा ! बड़े दुःखकी बात है, उन महामना मुनिने मुझे अर्घके योग्य नहीं कहा; इस निशाचरने भी ब्राह्मणके बहाने मुझे विकलताके योग्य कहा है । मैंने अपनी पत्नीका परित्याग कर दिया है, अब मैं क्या करूं ? या उन्हीं ज्ञानदृष्टिसम्पन्न मुनिसे जाकर पूछूं ? यह सोचकर वह भूपाल रथपर बैठकर वहीं

पहुंचे जहां वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा मुनि थे। रथसे उतरकर वह उनके पास आये और प्रणामकर उन्होने, राक्षसका मिलन, ब्राह्मणीका दर्शन, दुःस्वभाव का विनाश, पतिके घर उसका भेजा जाना तथा अपने आनेका कारण भी उनसे कहा ॥ १—६ ॥ ऋषि बोले, हे नराधिप! जो तुमने किया है और जिसलिये तुम यहां आये हो, मुझे यह सब पहिलेसे ही विदित है। 'क्या करना चाहिये' यह तुम्ही मुझसे पूछो, इसी लिये मेरा मन उद्विग्न था। अब तुम आगये हो। तुम्हारा क्या कर्तव्य है, हे महीपाल! इसे कहता हूं, श्रवण करो। मनुष्योंके धर्म अर्थ और कामका मुख्य कारण स्त्री है; उसे परित्याग करनेवाला पुरुष धर्मका विशेषरूपसे परित्याग करता है। हे नृप, ब्राह्मण हो वा क्षत्रिय, वैश्य हो वा शूद्र, पत्नीविहीन अपने कर्मोंके योग्य नहीं होता। आपने पत्नीका परित्याग कर अच्छा कार्य नहीं किया, जिस प्रकार पत्नीके लिये पति अत्याज्य है, उसी प्रकार पत्नी पतिके लिये है ॥ ७—११ ॥ राजाने कहा,—हे भगवन्! मैं क्या करूं? यह मेरे कर्मोंका विपाक है। मेरे अनुकूल होते हुए भी वह अनुकूल नहीं रहती थी, इसीसे मैंने उसका परित्याग कर दिया। हे भगवन्! उसके वियोगके कारण उत्पन्न दुःखसे मेरी अन्तरात्मा भयभीत रहती थी। इसी लिये व्यथित चित्त होकर भी वह जो कुछ करती मैं क्षमा कर देता था। इस समय वह वनमें छोड़ दी गई है, नहीं जानता वह कहां गई अथवा वनमें सिंह व्याघ्र या राक्षसने उसे खा लिया। ऋषिने कहा,—हे भूपाल! उसे सिंह व्याघ्र या राक्षसने नहीं खाया। वह इस समय रसातलमें रहती है, उसका चरित्र पवित्र है ॥ १२—१५ ॥ राजाने कहा,—हे विप्र! उसे पातालमें कौन ले गया है? वह वहां निष्कलंक कैसे है? यह अत्यन्त अद्भुत बात है, आप मुझसे भलीभांति कहिये। ऋषिने कहा,—हे राजन्! पातालमें कपोतक नामक विख्यात नागराज हैं, उन्होंने आपके द्वारा परित्यक्त रूपवती युवती पत्नीको महावनमें भ्रमण करते हुए देखा, तब वह अपना प्रयोजन समझकर उसे पातालमें ले गये। हे महीपते! उन बुद्धिमान् नागराजकी सुन्दर भौहोंवाली कन्याका नाम नन्दा और पत्नीका नाम मनोरमा है। उसने उस सुन्दरीको अपनी माताकी भावी सपत्नी समझ, अपने घर लेजाकर अन्तःपुरमें छिपाकर रक्खा है ॥ १६—२०॥ नागराजके मांगनेपर नन्दा उन्हे कुछ उत्तर नहीं देती थी, तब पिताने अपनी पुत्रीसे कहा, 'तुम गूंगी हो जाओगी।' हे भूपते! इस प्रकार पितासे शाप पाकर वह कन्या, और नागराजके द्वारा उपनीत एवं उसकी कन्याके द्वारा गुप्त आपकी सती पत्नी वहीं है। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजाने अत्यन्त हर्षित होकर उन द्विज श्रेष्ठसे प्रियाके प्रति अपने दुर्भाग्यका कारण पूछा। राजाने कहा,—हे भगवन्! समस्त लोकका मुझपर परम स्नेह है, पत्नी मुझसे प्रेम नहीं करती इसका

क्या कारण है? हे महामुने! वह मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है, किन्तु मेरे प्रति उसका व्यवहार अच्छा नहीं, इसका क्या कारण है? हे द्विज! मुझसे कहिये। ऋषिने कहा,—विवाहके समय आपके ऊपर रवि, मंगल और शनैश्चरकी दृष्टि एवं आपकी पत्नीके ऊपर शुक्र और वृहस्पतिकी दृष्टि थी और उसी समय आपकी पत्नीके चन्द्र और आपके बुध अत्यन्त विरुद्ध हो गये थे। इस समय आप जाइये और धर्मपूर्वक पृथिवीका पालन कीजिये एवं पत्नीकी सहायतासे समस्त धार्मिक क्रियायें सम्पादित कीजिये। मार्कण्डेय बोले, महामना ऋषिके यह कहनेपर भूपाल उत्तम उन्हे प्रणामकर रथपर आरूढ़ हो अपने नगरको आये॥ २१—२८॥

इस प्रकार मार्कण्डेय-महापुराणान्तर्गत उत्तममन्वन्तरमें इकहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ॥ ७१॥

बहत्तरवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले—इसके अनन्तर अपने नगरमें आकर राजाने शीलवती पत्नीके सहित प्रसन्न चित्त ब्राह्मणको देखा। ब्राह्मणने कहा, हे राज श्रेष्ठ! मैं कृतार्थ हो गया हूं क्योंकि आप धर्मज्ञ हैं, आपने मेरी पत्नीको लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है। राजाने कहा,—हे द्विज श्रेष्ठ! अपने धर्मके पालन करनेसे आपतो कृतार्थ हुए हैं, किन्तु मैं सङ्कटमें पड़ गया हूं, क्योंकि मेरी पत्नी घरमें नहीं है। ब्राह्मणने कहा,—यदि वनमें उसे किसी हिंसक जन्तुने खा लिया हो तो उसे रहने दीजिये, किसी दूसरी स्त्रीका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते? क्रोधके वशीभूत होकर आपने धर्मकी रक्षा नहीं की। राजाने कहा, मेरी पत्नीको किसी हिंसक जन्तुने नहीं खाया, वह जीवित है, उसका चरित्र निष्कलंक है; मैं कैसे क्या करूं? ब्राह्मणने कहा,—यदि आपकी पत्नी अभी जीवित है और व्यभिचारिणी नहीं है तब पत्नीके परित्यागका पाप आप क्यों करते हैं? राजाने कहा,—हे विप्र! यहां बुलाने परभी वह सदैव मेरे प्रतिकूल ही रहेगी, वह मेरे दुःखके ही लिये होगी सुखके लिये नहीं। उसका सौहार्द्य मेरे उपर कभी न होगा। वह जिस प्रकार मेरे वशमें रहे आप वही उपाय कीजिये। ब्राह्मणने कहा,—मित्रताकी इच्छा करनेवाले जिस उपकारी यज्ञको करते हैं, मैं आपकी और आपकी पत्नीकी प्रीतिके लिये उसी 'मित्रविन्दा' नामक यज्ञको करूंगा। हे मनुजेन्द्र! परस्पर प्रीति न करनेवाले दम्पतियोंमें प्रीति कराने वाली एवं उत्पादिका-शक्ति-दायिनी वह इष्टि मैं आपके लिये करूंगा। आपकी

पत्नी जहां इस समय है, हे महीपते! वहांसे आप उसे बुला लाइये। वह आपसे अत्यन्त प्रीति करेगी। मार्कण्डेय बोले, इस कथनसे उन भूपति उत्तमने समस्त वस्तु मगांदी और उन ब्राह्मण श्रेष्ठने वह यज्ञ किया। उन्होंने राजाके प्रति पत्नीका प्रेम सम्पादन करनेके लिये बार बार सातवार इष्टि की। उन महामुनिने जब पत्नीको अपने पतिके प्रति अनुरागिणी समझ लिया, तब राजासे कहा,—हे नरश्रेष्ठ! आप अपनी प्रिय पत्नीको अपने समीप लाकर उसके साथ सांसारिक सुखोंका उपभोग तथा समादृत होकर यज्ञोंका अनुष्ठान कीजिये। मार्कण्डेय बोले,—ब्राह्मणके यह कहने पर राजा विस्मित हो गये, उन्होने तब उस पराक्रमशील सत्यप्रतिज्ञ राक्षसको स्मरण किया। स्मरण करतेही तत्क्षण उपस्थित हो राजाको प्रणामकर उस राक्षसने कहा, 'क्या, करूं ?' हे महामुने! इसके अनन्तर उन नरेन्द्रके उससे सविस्तर सब वृत्तान्त कहने पर वह पाताल जाकर राजपत्नीको लेआया। रानीने आकर हार्दिक प्रेमके साथ राजाको देखा और बार बार प्रसन्न होकर कहने लगी, 'प्रसन्न होइये।' तब राजाने उस मानिनीको बड़े वेगसे आलिंगन कर कहा,—हे प्रिये, मैं तो प्रसन्न ही हूँ, तुम बार बार ऐसा क्यों कहती हो ? पत्नीने कहा,—हे नरेन्द्र! यदि आपका मन मेरे ऊपर प्रसन्न है, तो मैं आपसे एक प्रार्थना करती हूं, आप उसे मेरे सम्मानके लिये कीजियें ॥ १५—२० ॥ राजाने कहा, मुझसे तुम्हारी जो अभिलाषा हों, उसे तुम निःशंक होकर कहो। वह तुम्हारे लिये अलभ्य न होगी। मैं तुम्हारे आधीन हूं, अन्यथा नहीं। पत्नीने कहा,—मेरे लिये उस नागने मेरी सखीको शाप दिया है कि तुम मूक होगी; और वह मूक होगई है। यदि मेरी प्रीतिसे आप उसका कुछ प्रतीकार, मूकताकी शान्तिके लिये, करसकें तो आपने मेरे लिये क्या नहीं किया ? मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजाने ब्राह्मणसे पूछा— मूकताको दूर करनेके लिये इसमें कौनसी क्रिया होगी ? तब उस ब्राह्मणने राजासे कहा, राजन्! आपके वचनसे मैं सारस्वती इष्टि करता हूं, जिससे आपकी पत्नी सखीकी वाणी ठीक हो जानेके कारण उऋण हो जावे ॥ २१—२५ ॥ मार्कण्डेय बोले, उन द्विजश्रेष्ठने उसके लिये सारस्वती इष्टि की और सावधान चित्त हो सारस्वती सूक्तका जप किया। इसके अनन्तर उसकी वाणी फिर ठीक हो गई, तब रसातलमें गर्गने उससे कहा, तुम्हारी सखीके पतिने यह दुष्कर उपकार किया है। इस प्रकार सब जानकर नागकन्या नन्दाने शीघ्रगतिसे पुरमें आ अपनी सखीका आलिंगन किया। आसन ग्रहण करलेनेके अनन्तर सुन्दर उक्तियोंसे बारम्बार राजाकी स्तुति करती हुई वह मधुर वचन बोली,—आपने इस समय जो बड़ा उपकार मेरे साथ किया है, उसके कारण मेरा हृदय आपकी ओर आकृष्ट हो गया है। हे वीर! मैं जो कहती हूं, उसे सुनिये। हे नराधिप! आपके एक

बड़ा पराक्रमी पुत्र होगा। इस भूमण्डलमें वह अवाधित राज्य करेगा। समस्त शास्त्रोंके तत्वको जानने वाला, धर्मानुष्ठानमें तत्पर आपका वह बुद्धिमान् पुत्र निश्चय ही मन्वन्तरेश्वर मनु होगा। इस प्रकार वह नागकन्या राजाको वर देकर और अपनी सखीका आलिंगन कर पाताल चली गई॥ २६—३३॥ इसके अनन्तर रानीके साथ सुख भोगते और प्रजाका पालन करते हुए राजाका बहुत सा समय व्यतीत हो गया; तब पूर्णिमाके सम्पूर्ण चन्द्रमण्डलकी तरह सुन्दर एक पुत्र रानीके गर्भसे उन महात्मा राजाको उत्पन्न हुआ। उसके उत्पन्न होतेही समस्त प्रजाको हर्ष हुआ, देव दुन्दुभी वजाने लगे और पुष्प वृष्टि होने लगी। उसके मनोहर शरीर और भावी शीलको देखकर समागत ऋषियोंने उसका नाम 'उत्तम' रक्खा। यह उत्तम वंशमें और उत्तम कालमें उत्पन्न हुआ है; इसके अवयव उत्तम हैं, अतएव यह उत्तम होगा। मार्कण्डेय बोले, उत्तमका वह पुत्र 'उत्तम' के ही नामसे प्रसिद्ध हुआ। हे भागुरे! वह मनु हुए, उनका प्रभाव मुझसे सुनिये। जो उत्तम मनु और उत्तम नृपतिके आख्यानको नित्य सुनता है उसे कभी भी विद्वेष नहीं होता; जो उसे नित्य सुनता है उसका अपने इष्ट, पत्नी, पुत्र अथवा वन्धुसे कभी भी वियोग नहीं होता। इसके मन्वन्तरके समय इन्द्र, देव, और ऋषि कौन थे, मैं कहता हूं, हे विप्र! आप श्रवण कीजिये॥ ३३—४२॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें उत्तममन्वन्तरमें बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ॥ ७२॥

—— ——

तिहत्तरवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले,—हे मुने! उत्तम प्रजापतिके इस तीसरे मन्वन्तरमें इन्द्र, देव और ऋषियोंके सम्बन्धमें मैं कहता हूं, उसे आप श्रवण कीजिये। अपने नामके ही अनुरूप गुणवाले प्रथम गणके देव स्वधामा नामक है; द्वितीय गणके देव सत्य नामसे प्रसिद्ध हैं। हे मुनि सत्तम! तृतीय गणके देवताओंके नाम शिव हैं, उनका स्वरूप कल्याणमय है; उनके श्रवणमात्रसे ही पाप नष्ट हो जाते हैं। हे मुनिवर! देवताओंका चतुर्थगण प्रदर्शन नामक है; पांचवां वशवर्ती नामक देवताओंका गण हैं, हे द्विज! वे सभी अपने अनुकूल गुणस्वरूपवाले हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! इस मन्वन्तरमें यज्ञके भागी देवोंके यही पांच गण हैं, जिनमें प्रत्येकमें बारह देवता हैं;॥ १—७॥ उनका सुशान्ति नामक महाभाग इन्द्र सौ यज्ञोंको करके त्रैलोक्य गुरु हुआ है। उपसर्गके विनाश करनेके

निमित्त मनुष्यगण भूतल पर आज भी उसके नामाक्षरसे विभूषित गाथाका गान करते हैं, वह कान्तिमान् देवराज सुशान्ति शिव सत्यादिकके सहित सुशान्ति प्रदान करें, वैसा ही उनके वशवर्ती देव भी करें। इन मनुके अज, परशुचि और दिव्य नामक तीन देवोपम, बलवान् और पराक्रमी पुत्र हुए; जितने समय तक उन उत्तम तेज मनुका मन्वन्तर रहा तबतक उन्हींके वंशज नरेश्वर होकर पृथ्वीका पालन करते रहे ॥ १—११ ॥ सत्य त्रेतादिक युगोंको गिनाते समय जो संख्या मैंने कही है उससे कुछ अधिक इकहत्तर युगोंका एक मनु होता है। अपने तेजसे ही श्रेष्ठ वरिष्ठ नामक महात्माके सात पुत्र ही उस मन्वन्तरमें सात ऋषि हुए। मैंने आपसे तीसरा मन्वन्तर कह दिया है; अब तामस नामक चतुर्थ मन्वन्तर कहता हूँ, जिन वियोनि जन्मा मनुके यशसे यह संसार प्रकाशित है, उसीका मैं वर्णन करता हूं, सुनिये। समस्त मनुओंका चरित्र इन्द्रियगम्य नहीं होता, उन महात्माओंका जन्म वृत्तान्त और प्रभाव अवश्य जानना चाहिये ॥ १२—१६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें उत्तम मन्वन्तर नामक तिहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७३ ॥

चौहत्तरवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले, अनेक यज्ञोंको करनेवाले, युद्धमें अपराजित ज्ञान सम्पन्न एव पराक्रमी सुराष्ट्र नामक एक भूमण्डलमें विख्यात राजा हुए; मंत्रीकी आराधनासे सूर्यने उसे दीर्घायु प्रदान की थी। हे द्विज! उसके सौ सुन्दरी रानियां थीं। किन्तु हे मुने!

टीका—यह सब गाथायें उत्तम नामक मन्वन्तर तककी हैं। प्रत्येक मन्वन्तर मनुष्यके ३०६-७२०००० वर्षका होता है। अतः इतने बड़े कालके अनन्तर क्या चतुर्विध भूतसंघका; क्या मनुष्य सृष्टिका, क्या देवसृष्टिका, सबमें ही बड़ा भारी अनन्तर होना सम्भव है, इसमें सन्देह ही क्या है। अतः काल विशेषमें पशु पक्षियोंकी शक्तिमें भेद होना, मनुष्योंकी शक्तिमें भेद होना, मनुष्य लोक और नागलोकादिमें अथवा असुरलोक और देवलोकादिमें जानेकी शक्ति होना भी सम्भव है। इस कारण इस प्रकारकी गाथाओंमें जो कुछ आश्चर्यजनक घटनायें पायी जायं उससे सन्देह होनेका कारण नहीं। दूसरी ओर जिस प्रकार स्थूल राज्यके चालक नाना देवता और असुर होते हैं वे देवांश और असुरांशको धारण करके कार्य करते हैं उसी प्रकार वृत्तिराज्यके भी चालक देवता और असुर होते हैं इस कारण दैवी शक्तिके द्वारा वृत्तियोंका पलट जाना भी सम्भव है। और उस मन्वन्तरमें वृत्ति अर्थात् स्वभाव भोजी बलाक नामक अधिदैवका होना असम्भव नहीं है ॥ १—१६ ॥

उस दीर्घायु नृपतिकी पत्नी दीर्घायु न थीं, वे मन्त्री और भृत्य सभी समय पाकर मर गये; पत्नी, सेवक और अपने साथियोंके वियोगसे राजा अत्यन्त उद्विग्न होगये, उनका पराक्रम प्रति दिन क्षीण होने लगा। उनको इस प्रकार दुर्बल और विश्वस्त सेवकोंसे हीन देखकर पड़ोसी विमर्द नामक राजाने उन्हें राज्यच्युत कर दिया ॥ १-५ ॥ वह महाभाग राजा भी राज्यसे च्युत होकर खिन्न मनसे वनमें जाकर वितस्ता नदीके किनारे तप करने लगे। उन्होंने ग्रीष्ममें पञ्चाग्निमें;वर्षामें मेघोंके नीचे खुले स्थानमें,शीत ऋतुमें जलमें लेटकर निराहार संयत भावसे व्रत किया। वर्षा ऋतुमें जब वह तप कर रहे थे, उसी समय प्रतिदिन निरन्तर मेघोंके बरसनेसे पानीकी बाढ़ आ गई; पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर आदि दिशायें भी नहीं जानी जाती थीं; सभी अंधकारमें ही मानों मिल गये। अत्यन्त वेगशालिनी नदीकी उस बाढ़से हटकर प्रार्थना करने पर भी वह राजा तटको नहीं पा सके ॥ ५-१० ॥ तब जलके वेगसे बहुत दूर जाकर राजाने पानीमें एक रौहीं (एक प्रकारकी मृगी) को पाया; उन्होंने उसकी पूंछ पकड़ ली। इसके अनन्तर जलप्लवसे खिंच कर राजा पृथ्वीको ओर चले और इधर उधर अन्धकारमें उन्होंने तटको पाया। मृगीके द्वारा खिंचकर वह राजा बड़े भारी दुस्तर दलदलको पार करते हुए दूसरे किसी रमणीय वनमें पहुंचे। पूंछमें लगे हुए अस्थिमात्र शरीरवाले उन दुर्बल भूपतिको वह रौही मृगी वहां अन्धकारमें खींचने लगी। उस अन्धकारमें घूमते-घूमते राजाका मन कामसे आकृष्ट हो गया; वह उस मृगीके स्पर्शसे उत्पन्न उत्तम आनन्दको पाने लगे। अपनी पीठको बार बार छूनेके कारण राजाके अनुरागको जानकर वह मृगी उनसे बोली,—हे भूपाल कांपते हुए हांथसे आप मेरी पीठको क्यों छूते हैं, इस कार्यकी कुछ दूसरी ही गति हो गई है। हे प्रभु! आपका मन किसी अनुचित स्थानमें नहीं गया; मैं आपके लिये अगम्या नहीं हूं। किन्तु आपके साथ समागम करनेमें यह लोल विघ्न व बाधा देता है। मार्कण्डेय बोले, उस मृगीके इन वचनोंको सुनकर राजाको कौतूहल उत्पन्न हुआ; वह रौहीसे कहने लगे, तुम कौन हो? मृगी होकर मनुष्यके समान किस प्रकार बोलती हो और यह लोल कौन हैं,जो तुम्हारे साथ संग करनेमें मुझे बाधा देता है? मृगीने कहा,—हे भूप! मैं दृढ़धन्वाकी पुत्री सैकड़ों पत्नियोंमें श्रेष्ठ आपकी प्यारी उत्पलावती नामकी पहले पत्नी थी। राजाने कहा—तुमने ऐसा कौन सा काम किया है जिससे तुम्हें ऐसी दशा प्राप्त हुई है? वह तो पतिव्रता और अपने धर्ममें लगी रहती थी, उसकी यह दशा कैसे हुई ॥१०-२२॥ मृगीने कहा,—मैं पिताके घर बाल्यावस्थामें एक बार सखियोंके सहित वनमें खेलनेके लिये गई, वहीं मृगीके साथ समागम करते हुए एक मृगको देखा। तब मैंने निकट जाकर मृगी पर प्रहार किया; वह मुझसे डर कर दूसरी जगह चली गई, तब मृग मुझसे बोला,—'हे

मूढ़े! तू क्यों इतनी उन्मत्त हो गई है? धिक्कार है तेरी दुःशीलताको! तूने मेरा यह गर्भाधानका समय निष्फल कर दिया।' मनुष्यके समान बोलते हुए उसके वचनको सुनकर मैं डर गई। मैं उनसे बोली, आप इस मृगयोनिमें कौन हैं? तब उन्होंने कहा,—'निवृत्ति चक्षु मुनिका पुत्र हूं। मेरा नाम सुतपा है। मृगीके प्रति इच्छा होनेके कारण मैं मृग हो गया हूं। वनमें इसने मेरी इच्छा की, तब प्रीतिसे मैंने इसका अनुगमन किया था। हे दुष्टे! तूने उसका वियोग करा दिया है, इसलिये मैं तुझे शाप देता हूं। मैंने कहा,—हे मुने! मैंने अज्ञानसे आपका यह अपराध किया है, आपको मुझे शाप न देना चाहिये, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों।' हे महीपते! यह कहने-पर वह मुनि मुझसे इस प्रकार बोले, 'यदि तू आत्मप्रदान करदे तो मैं शाप न दूंगा' ॥२३—३०॥ मैंने कहा, 'मैं मृगीका रूप धारण करनेवाली मृगी नहीं हूं, आप दूसरी मृगी पा जायंगे, मुझसे अपना भाव हटा लीजिये, यह कहने पर उनकी आंखे क्रोधसे लाल हो गईं, उन्होंने होंठ कंपाते हुए कहा, 'तूने कहा है कि मैं मृगी नहीं हूं इस लिये हे मूढ़े तू मृगी होगी। तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो, अपने ही रूपमें स्थित अत्यन्त क्रुद्ध उन मुनि-वरको प्रणाम कर बार बार कहा, 'आप प्रसन्न हों। मैं बालिका हूँ. वाक्योंके बोलनेमें अनभिज्ञ हूं। इसी लिये मैंने ऐसा कहा है। क्योंकि पिताके न होने पर ही स्त्रियां स्वयं वर चुनती हैं। हे मुनि सत्तम! पिताके रहते हुए मैं किस प्रकार वरण करूँ। इसपर भी यदि मैं अपराधिनी हूं तो मैं आपको प्रणाम करती हूं आप मेरे ऊपर प्रसन्न होइये।' इस प्रकार प्रार्थना करने पर उन मुनि श्रेष्ठने मुझसे कहा, 'मेरा कहा हुआ वाक्य कभी भी झूठ नहीं होता। तुम इसी जन्ममें मरकर इस वनमें मृगी होगी। हे भामिनि! मृगीके अवस्थामें ही सिद्धवीर्य मुनिका लोल नामक दीर्घबाहु पुत्र तुम्हारे गर्भमें उत्पन्न होगा। उनके गर्भमें आजाने पर तुम अपनी जातिका स्मरण करनेवाली हो जाओगी और स्मृति पाकर तुम मनुष्यकी बोली बोलोगी। उनके जन्म ग्रहण करनेपर मृगीकी योनिसे छूटकर पतिके द्वारा पूजित हो तुम उन लोकोंको प्राप्त करोगी जिन्हे दुष्कर्मके करनेवाले नहीं पाते। फिर वह महावीर्य लोल भी पिताके शत्रुओंको पराजित कर तथा समस्त पृथ्वीको जीतकर मनु होंगे।' इस प्रकार शाप पाकर मृत्युके पश्चात् मैं तिर्य्यग् योनिमें आई और आपके संस्प-र्शसे मेरे जठरमें वह गर्भ उत्पन्न होगया है। इसीलिये मैं कहती हूं कि मेरे प्रति अनुरक्त होने के कारण आपका मन किसी अनुचित स्थानमें नहीं गया। मैं भी अगम्य नहीं हूं; यह गर्भ-स्थित लोल ही विघ्न करता है ॥३०—४०॥ मार्कण्डेय बोले,—इस प्रकार यह कहे जानेपर कि, यह पुत्र मेरे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीमें मनु होगा। वह राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए। इसके उपरान्त उस मृगीने सुन्दर लक्षणोंसे युक्त पुत्रको प्रसव किया। उसके उत्पन्न

होनेपर समस्त प्राणी प्रमुदित हुए। उस बनमें पुत्र उत्पन्न होनेपर राजाको विशेष आनन्द हुआ, वह मृगी भी शापसे मुक्त होकर उत्तम लोकोंको प्राप्त हुई। इसके अनन्तर हे मुनि सत्तम! सब ऋषियोंने एकत्र होकर उस महात्माकी भावी समृद्धिको देखकर नाम करण संस्कार किया। अन्धकारसे आच्छादित लोकमें यह तामसीयोनिको प्राप्त हुई माताके गर्भसे उत्पन्न हुआ है इस कारण यह बालक 'तामस' नामसे विख्यात होगा, इसके अनन्तर वनमें तामसने पिताके द्वाराही वृद्धि पायी। हे मुनिसत्तम! वृद्धि उत्पन्न होनेपर वह पितासे बोले,—हे तात! आप कौन हैं? मैं आपका पुत्र कैसे हूं और मेरी माता कौन है? आप किस लिये यहां आये हैं, यह सब मुझसे सत्य सत्य कहिये॥ ॥४३—५०॥ मार्कण्डेय बोले,—उन महाबाहु जगतीपति पिताने पुत्रसे राज्यसे भ्रष्ट होनेसे लेकर सभी समाचार जैसेके तैसे कह दिये। तामसने भी सब सुन, सूर्यकी आराधनाकर समस्त दिव्य अस्त्र और उनके संहार प्राप्त किये। अस्त्रोंमें निपुण हो, वह शत्रुओं को जीतकर पिताके पास ले आए और उनकी आज्ञा पाकर सबको मुक्तकर अपने धर्मका पालन किया। उनके पिताने भी पुत्रका मुख देखकर सुखपूर्वक देहको छोड़ तप और यज्ञके द्वारा अर्जित अपने लोकोंको प्राप्त किया। वह तामस नामक भूपति सम्पूर्ण पृथ्वीको जीतकर तामस नामक मनु हुए, उनका मन्वन्तर सुनिये। उस मन्वन्तरमें जो जो देवता, देवताओंके अधिपति इन्द्र, ऋषि और उन मनुके जिन जिन पुत्रोंने पृथ्वी का पालन किया, उसे सुनिये। हे मुने! इस मन्वन्तरमें सत्यगण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण यह चार प्रकारके सत्ताइस सत्ताइस संख्यावाले देवताओंके गण हैं। महाबल महावीर्य शिवी नामक इन्द्र सौ यज्ञ करके उन देवताओंके प्रभु हुए। हे ब्रह्मन्! ज्योतिधर्मा पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर यह सात सप्तर्षि हुए। नर, क्षान्ति,

---

टीका—तामस मन्वन्तरके कालाधिपति देवता मनुक जन्मवृत्तान्त सुननेपर नाना शंकायें पाठकोंके हृदयमें उत्पन्न हो सकती हैं। उन शंकाओंका समाधान स्वतःही हो सके, इस कारण कुछ इंगित करना आवश्यक है। प्रत्येक मन्वन्तर मनुष्यके कितने वर्षोंका होता है यह इससे पहलेके मन्वन्तर की टीकामें कहा गया है। अतः मृत्युलोककी सृष्टि और देवलोककी सृष्टि दोनोंमें ही अनेक अन्तर हो जाना सम्भव है। दूसरी बात विचारने योग्य यह है कि, विभिन्न मन्वन्तरोंमें सहजपिण्ड, मानवपिण्ड और देवपिण्ड इन तीनोंकी शक्तिका तारतम्य होनेसे तीनों पिण्डोंमें ही तीनों तरहकी सृष्टिके उत्पन्न होनेकी शक्तिका होनाभी सम्भव है। जैसे—मृगरूपी सहजपिण्डमें देवपिण्डकी तरह इच्छामात्रसे गर्भ उत्पन्न हो जाना। उसी तरह सहजपिण्डसे अथवा मानवपिण्डसे तुरतही देवपिण्डको प्राप्त करना ये सब शक्ति वैलक्षण्यका ही फल है। इस कालमें मानवपिण्डसे हटकर तब जीव पापके फलसे सहजपिण्डमें दण्डके रूपमें प्रवेश करता है। अथवा पुण्यके बलसे देवता बननेके लिये देवपिण्डमें प्रवेश कर सकता है। इस युगमें इससे अधिक शक्ति किसी पिण्डमें प्रकट नहीं दिखायी देती। इसकारण ऐसी शंकायें हुआ

शान्त, दान्त, जानु, जंघा आदि तामस मनुके महाबली और पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए। ॥ ५०—६२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें तामस मन्वन्तरनामक चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७४ ॥

पचहत्तरवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, हे ब्रह्मन्! रैवत नामक पांचवे मनु भी प्रसिद्ध हुए हैं; उनकी उत्पत्ति मैं आपसे विस्तारपूर्वक कहता हूँ, सुनिये। ऋतवाक् नामसे प्रसिद्ध एक महाभाग ऋषि थे, वह पहिले पुत्रहीन थे। बादमें उनके रेवती नक्षत्रके अन्तमें एक पुत्र उत्पन्न हुआ। हे मुने! ऋषिने उस पुत्रकी जातकर्मादिक क्रिया और उपनयनादिक संस्कार यथाविधि किये। किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं हुआ। क्योंकि जबसे वह पुत्र उत्पन्न हुआ तभीसे वह मुनिश्रेष्ठ दीर्घकालिक रोगसे ग्रस्त रहने लगे। उसकी माता भी कुष्ठादिक रोगसे पीड़ित होकर परम दुःख भोगने लगी। तब दुःखी होकर पिता सोचने लगे, ऐसा क्यों हुआ? उसके अत्यन्त दुर्मति पुत्रने भी किसी दूसरे मुनिपुत्रके सम्मुख ही उसकी भार्याको ग्रहण कर लिया। तब खिन्न मनसे ऋतुवाक्ने कहा, मनुष्यकी कु-पुत्रतासे अ-पुत्रता श्रेष्ठ है। क्योंकि कुपुत्र मातापिताके हृदयको सदा ही दुःख देता है और स्वर्गस्थित अपने पितरोंको भी नीचे गिराता है। उसके द्वारा न मित्रोंका ही उपकार होता है और न पितरोंकी ही तृप्ति। माता पिताके दुःखके ही लिये दुष्कर्मकारी पुत्रका जन्म होता है, उसे धिक्कार है! जिसकी सन्तान सम्पूर्ण मनुष्योंसे आदृत परोपकारी, शान्तप्रकृति और सत्कर्ममें अनुरक्त होती है, वही धन्य है। हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रावलम्बी और असन्तुष्ट यह मन्द जन्म केवल नरकके ही लिये है, सद्गतिके लिये नहीं। कुपुत्र निश्चय ही सुहृदोंको दीन, शत्रुओंको प्रसन्न और असमयमें ही माता पिताको वृद्ध कर देता है ॥ १-१२ ॥ मार्कण्डेय बोले, इस प्रकार अत्यन्त दुष्ट पुत्रके चरित्रसे मन ही मन जलते हुए मुनिने गर्ग मुनिसे समस्त वृत्तान्त पूछा।

करती हैं परन्तु पूर्व मन्वन्तरोंमें देशकाल और पात्रके विलक्षण होनेसे शक्ति वैलक्षण्यभी होता था। कर्मकी गति दुर्ज्ञेय होती है, इसी कारण इस मन्वन्तरमें मानवपिण्डधारी पिता और सहजपिण्डधारी मातासे ऐसा पुत्र उत्पन्न हुआ जो पराक्रमशाली राजा हुआ और अन्तमें इतना तपस्वी हुआ कि देवपिण्ड प्राप्त करके उसने मनुरूपी देवपदको प्राप्त किया ॥ १—६२ ॥

ऋतवाक्ने कहा,—पहले मैंने सद्व्रत पूर्वक यथाविधि वेदोंको ग्रहण किया है। वेदाध्ययन समाप्त कर विधिपूर्वक मैंने पत्नी ग्रहण की है। श्रौत, स्मृति और वषट्कारकी वह क्रिया जो सपत्नीकको करनी चाहिये, हे महामुने! आज तक मैंने उनमें कुछ भी त्रुटि नहीं की। हे मुने! पुन्नाम नरकके भयसे गर्भाधानविधानसे यह पुत्र उत्पन्न किया है, कामके वशमें होकर नहीं। हे मुने, क्या यह मेरे पुत्र दोषसे अथवा अपने ही दोषोंसे हम लोगोंको दुःख और अपने दुःस्वभावसे बन्धु गणोंको शोक देनेवाला उत्पन्न हुआ है॥ १२-१७॥ गर्गने कहा,—हे मुनिश्रेष्ठ! यह आपका पुत्र रेवती नक्षत्रके अन्तमें उत्पन्न हुआ है। यह दुष्ट-कालमें उत्पन्न हुआ है, इसी लिये सबको दुःख देता है। न माताके और न कुलके ही अपचारसे यह दुष्ट स्वभावका है, इसका कारण तो रेवतीका अन्तभाग ही है। ऋतवाक्ने कहा,—जब कि, रेवत्यन्तके कारण मेरा एकमात्र पुत्र दुःशील हुआ, तो यह रेवती शीघ्र ही गिर पड़े। उनके इस प्रकार शाप देने पर सब लोगोंके आश्चर्यचकित चित्तसे देखते देखते ही रेवतीनक्षः नीचे गिर पड़ा। कुमुद पर्वतमें रेवतीनक्षत्रके गिरनेके कारण वन, कन्दरा और निर्झर सहसा प्रकाशित हो गये। उसके गिरनेसे कुमुद पर्वत भी रैवतक नामसे विख्यात हुआ। वह भूधर समस्त पृथ्वी भरमें अत्यन्त रमणीय है। उस नक्षत्रकी कान्तिसे कमलोंसे युक्त एक सरोवर उत्पन्न हुआ और उससे अत्यन्त रूपवती एक कन्याने जन्म ग्रहण किया। हे भागुरे! प्रमुचमुनिने उस कन्याको रेवतीकी कान्तिसे उत्पन्न देख कर उसका नाम रेवती रक्खा। वह महाभाग उस पर्वत

टीका—यह पहले बार बार कहा गया है कि, पुराणको समझनेके लिये समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीय भाषा इन तीनों भाषाओंका रहस्य और उनकी वर्णनशैली और भावविन्यास समझने योग्य है। तथा आध्यात्मिकवर्णन, आधिदैविकवर्णन और आधिभौतिक वर्णन इन तीनोंका भी रहस्य हर समय ध्यान देने योग्य है। इस रेवती नक्षत्र और अलौकिक कन्या-उत्पत्तिकी गाथाको समझनेके लिये इन छः बातोंकी पर्य्यालोचना आवश्यक है। यह वर्णन शैली लौकिकी भाषा और परकीय भाषा उभयसे गुम्फित है और दूसरी ओर आधिदैविक विज्ञान और आधिभौतिक विज्ञान दोनोंसे मिश्रित है। रेवती नक्षत्रका टूट पड़ना यह आधिदैविक रहस्य है अर्थात् रेवती नक्षत्र की अधिदैव देवीका अंश अवतार रूपसे इस मृत्यु लोकमें कन्या बनी। ऐसे अवतार भगवान् विष्णु रुद्रसे लेकर सब देवताओंके, ऋषियोंके और देवियोंके हुआ करते हैं। ऐसे अवतार प्राप्त होनेसे वह असल देवपद नष्ट-भ्रष्ट नहीं होता है। लौकिक भाषा और परकीयभाषाका रहस्य इस कन्याके जन्मादि वर्णनमें लौकिक भाषा और अन्यान्य कर्म वर्णनमें परकीय-भाषाका परिचायक है। महर्षिगण पुराण लिखते समय जब समाधिस्थ होते हैं तो सविकल्प समाधिकी अवस्थामें विचारानुगत अवस्थासे ये सब बातें प्राप्त होती हैं तब अन्य कल्पोंकी अथवा अन्य मन्वन्तरादिकी ये घटनाएं उनके अन्तःकरणपटलमें अपने आप ही उदय हो जाती हैं। योगयुक्त अन्तःकरणवाले समाधिसिद्ध योगीगण इसको समझ सकते हैं कि,

में अपने आश्रमके समीप उत्पन्न हुई उस कन्याका पालन पोषण करने लगे ॥ १८—२६ ॥ रूप और यौवनसे युक्त कन्याको देखकर मुनि सोचने लगे कि इसका भर्ता कौन हो ? हे मुने ! इस प्रकार चिन्ता करते हुए उनका बहुतसा समय बीत गया, किन्तु उन महामुनिको उसके अनुरूप कोई भी वर नहीं मिला । तब उन्होंने वरके बारेमें पूछनेके लिये अग्निके समीप अग्निशालामें प्रवेश किया । पूछने पर हुताशनने मुनिसे कहा,— महाबल, महावीर्य, प्रियवक्ता तथा धर्मवत्सल दुर्गम नामक महीपति इसके भर्ता होंगे ॥ २७—३० ॥ मार्कण्डेय बोले, हे मुने ! इसके बाद स्वायंभुव मनुके ज्येष्ठ पुत्र प्रियव्रतके वंशमें तथा कालिन्दीके गर्भसे उत्पन्न, विक्रमशीलके पुत्र, महाबल पराक्रमशील एवं बुद्धिमान् वह नरपति शिकार खेलते खेलते आश्रममें गये । आश्रममें प्रवेशकर जब उस राजाने ऋषि को नहीं देखा तो उस कृशांगी कन्याको 'प्रिया' कहते हुए बुलाकर पूछा । राजाने कहा,—हे सुन्दरी ! वह भगवान् मुनिवर इस आश्रमसे कहां गये हैं ? मुझसे कहो, मैं उन्हें प्रणाम करने की इच्छा करता हूं । मार्कण्डेय बोले, ब्राह्मण अग्निशालामें गये थे; वह राजाके कहे हुए वाक्य और 'प्रिया' के सम्बोधन को सुनकर शीघ्रही बाहर आगये । उन्होंने सामने ही राजाके लक्षणोंसे युक्त, विनयसे झुके हुए महात्मा राजा को देखा । फिर वह गौतम नामक शिष्यसे बोले,—गौतम ! शीघ्रही इन राजाके लिये अर्घ लाओ । एक तो यह राजा बहुत दिनोंके बाद आये हैं, दूसरे यह दामाद होनेके कारण मेरे विचारमें विशेषकर अर्घ देनेके योग्य हैं ॥३१-३८॥ मार्कण्डेय बोले, इसके बाद राजा 'दामाद' कहनेका कारण सोचने लगे, किन्तु कुछ समझ न सके; तब उन्होंने चुपचाप अर्घ ग्रहण किया । उन महामुनिने अर्घ ग्रहणकर आसन पर बैठे हुए राजासे स्वागत करते हुए पूछा,—हे नरेश्वर ! आपके घर, खजाना, सेना, मित्र, भृत्य तथा अमात्यगण सभी कुशली हैं न ? हे महाबाहो ! आपही सबके आधार हैं, आप भी कुशली हैं न ? आपकी पत्नी यहां कुशल पूर्वक रहती है, इसीसे उसके विषयमें मैंने कुछ नहीं पूछा है, किन्तु आपके यहां की अन्य स्त्रियां तो सकुशल हैं न ? राजाने कहा,—हे सुव्रत ! आपके प्रसादसे मेरा कहीं भी अमंगल नहीं, किन्तु हे मुने ! मुझे बड़ा कौतूहल हो रहा है । यहां मेरी पत्नी कौन है ? ऋषि बोले, हे राजन् ! त्रैलोक्यसुन्दरी महाभागा रेवती आपकी पत्नी है; आप उस वरारोहा को नहीं जानते क्या ? ॥३९—४४॥ राजाने कहा,—हे विभो ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरीतनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा,

---

अस्मितानुगत अवस्थासे आनन्दानुगत अवस्था और आनन्दानुगत अवस्थासे विचारानुगत अवस्थामें पहुंचते ही ऐसी स्तुति आ सकती है ॥ १८—२६ ॥

विपाठा तथा नन्दिनी इनमेंसे प्रत्येक पत्नीको मैं जानता हूं। हे द्विज ! वे सब मेरे घरमें ही रहती हैं। हे भगवन् ! रेवती को मैं नहीं जानता; यह कौन है ? ऋषि बोले,—हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनीको आपने प्रिया कहा है, वही आपकी गृहिणी है ! क्या आप उसे भूल गये ? राजाने कहा,—मैंने यह कहा सही है, किन्तु हे मुने ? उसमें मेरा कोई बुरा भाव नहीं है। इसके लिये आप मेरे ऊपर क्रोध न करें, यह प्रार्थना है। ऋषि-बोले, आपने कहा, 'मेरा कोई बुरा भाव नहीं है' यह ठीक है, किन्तु हे नृपते ! यह आपने अग्निका ही प्रेरणासे कहा है। हे भूपाल ! मैंने अग्निसे पूछा था कि, इसका भर्ता कौन होगा तब अग्निने यही उत्तर दिया कि आपही इसके पति होंगे। हे नराधिप ! अब आप क्या विचार करते हैं ? जिसे आपने 'प्रिया' कहकर बुलाया है उस कन्याको मैं देता हूं, आप ग्रहण कीजिये ॥ ४५—५१ ॥ मार्कण्डेयने कहा, इसके अनन्तर ऋषिके यह कहने पर राजा चुप हो गये। ऋषिभी कन्याके विवाहकी तैयारी करने लगे। हे महामुने ! पिता को विवाहके लिये तैयार देखकर विनयसे मस्तक झुकाए हुए वह कन्या बोली,—हे तात ! यदि आप मुझे प्यार करते हो, तो मुझपर कृपा कीजिये। आप प्रसन्न हो मेरा विवाह रेवती नक्षत्रमें करें। ऋषिने कहा,—हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र इस समय चन्द्रमासे युक्त नहीं है। हे सुभ्रु ! विवाहके दूसरे नक्षत्र तो हैं। कन्याने कहा,—हे तात ! रेवती नक्षत्रके बिना मुझे सभी समय विफल प्रतीत होता है। मेरे सदृश कन्याका विवाह विफल कालमें कैसेहो सकता है? ऋषिने कहा,—ऋतवाक् नामक प्रसिद्ध तपस्वीने रेवती नक्षत्रके प्रति क्रोध किया था; उन्होंने उसे नीचे गिरा दिया है। इसके अतिरिक्त इस मदिरेक्षणाको भार्यारूपमें देनेको भी प्रतिज्ञा है किन्तु इस समय तुम विवाहकी इच्छा नहीं करती हो, यह मेरे लिये बड़े ही संकटका समय उपस्थित होगया है। कन्याने कहा,—ऋतवाक् मुनिने कौनसी ऐसी तपस्याकी थी, वह क्या आपने नहीं की ? मैं क्या ब्रह्मबन्धु की कन्या हूं ? ऋषि बोले,—तुम ब्राह्मणाधमकी कन्या नहीं हो। हे बाले ! उस तपस्वीकी अर्थात् मेरी कन्या हो, जो दूसरे देवताओंको बनानेका उत्साह करता है ॥ ५२-६० ॥ कन्याने कहा,—यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं तो उस नक्षत्रको आकाशमें स्थापित कर मेरा विवाह उसीमें क्यों नहीं करते ? ऋषिने कहा,—हे भद्रे ! ऐसा ही होगा। तुम्हारा कल्याण हो, तुम प्रसन्न रहो। मैं तुम्हारे लिये रेवती नक्षत्रको चन्द्र मार्गमें स्थापित करता हूं। मार्कण्डेय बोले, हे द्विजोत्तम ! इसके अनन्तर महामुनि प्रमुचने तपस्याके प्रभावसे रेवती नक्षत्रको पहलेकी भांति चन्द्रमासे संयुक्त कर दिया। फिर विधिवत् मंत्रोंसे कन्याका विवाह कर प्रसन्न हो दामादसे कहने लगे। वह बोले,—मैं विवाहके यौतुकमें तुम्हें क्या दूं ? हे भूपाल ! आपही कहें। मैं दुर्लभ वस्तु भी दूंगा। मेरी तपस्या अखण्ड है। राजाने कहा,—हे

मुने! मैं स्वायंभुव मनुके कुलमें उत्पन्न हुआ हूं। आपके प्रसादसे मैं मन्वन्तरका अधिपति पुत्र प्राप्त करूं, यही वर मैं मांगता हूँ। ऋषिने कहा,—हे भूपाल! यह तुम्हारी कामना पूरी होगी। तुम्हारा पुत्र मनु होगा। वह समस्त पृथ्वीका भोग करेगा। वह धर्मज्ञ भी होगा। मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर राजा उसे लेकर अपने नगरको चले गये। उनके रेवतीके गर्भसे रैवत नामक पुत्र मनु हुए। वह समस्त धर्मसे युक्त और मनुष्योंसे न हारनेवाले थे, समस्त शास्त्रोंके अर्थके ज्ञान और वेद विद्याके मर्मके वेत्ता भी थे। हे ब्रह्मन्! उनके मन्वन्तरके देवता, मुनि, इन्द्र और भूपालगणके सम्बन्धमें कहता हूं, आप सावधान होकर सुनें। हे द्विज! सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अमिताभ यह चौदह चौदह देवोंके चार देवगण हैं। इन चारों देवगणोंके ईश्वर, सौ यज्ञोंके कर्ता विभुनामक इन्द्र हैं। हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्ववाहु, वेदबाहु, सुधामा, महामुनि पर्जन्य तथा वेद वेदांग पारगामी महाभाग वसिष्ठ यही रैवतमन्वन्तरमें सप्तर्षि हैं। बलबन्धु, महावीर्य, सुयष्टव्य और सत्यक आदि रैवत मनुके पुत्र हुए। रैवत मनु तकका जो वर्णन मैंने आपसे किया है, स्वारोचिष मनुके अतिरिक्त वह सभी मनु स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए हैं॥ ६१–७६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें रैवत मन्वन्तर नामक
पचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ॥ ७५॥

टीका—सूर्य और चन्द्र ग्रहणके विषयमें पुराणोंमें वर्णन है कि राहु सूर्य और चन्द्रको ग्रास करता है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि सूर्यलोक अथवा चन्द्रलोक राहुके उदरमें चले जाते हों। राहुभूतछायारूपी क्रियाका अधिदैव असुर है, इसमें सन्देह नहीं। और इसमें भी सन्देह नहीं है कि ग्रहणके समय पृथ्वीपर आने वाली सूर्यशक्ति और चन्द्रशक्तिका अवरोध हो जाता है। इसी कारण हमारे पृथ्वीलोकके सम्बन्धसे सूर्य और चन्द्रका राहु द्वारा ग्रास होना स्वतःसिद्ध है। परन्तु उस समय सूर्यलोक और चन्द्रलोक ज्योंके त्यों रहते हैं और उनके अधिदैव भी ज्योंके त्यों रहते हैं। केवल उनकी शक्ति, जो ग्रहणके समय पृथ्वी लोकमें कार्य नहीं करती थी, वह शक्ति ग्रहणके अन्तमें करने लगती है। इसी उदाहरणसे औदाहरण समझने योग्य है। ऋषिके तपःप्रभावसे और रेवतीके कर्मप्रभावसे जो रेवती नक्षत्रकी शक्तिमें बाधा हुई थी इस समय इस कन्याके पिता महर्षि प्रमुचके तपःप्रभावसे वह बाधा दूर हुई। ऐसा समझने पर पुराण-पाठकोंको शंका का अवसर नहीं रहेगा॥ ६१—६६॥

छिहत्तरवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले, मैंने आपसे पांचवें मन्वन्तरका वर्णन किया है। अब चाक्षुष मनुका छठवां मन्वन्तर मुझसे सुनिये। हे द्विज! अन्य जन्ममें यह ब्रह्माके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे अतएव इस जन्ममें भी यह चाक्षुष कहलाए। महात्मा राजर्षि अनमित्रकी पत्नीका नाम भद्रा था, उन्हींके गर्भसे विभु, पवित्र तथा जातिको स्मरण करनेवाला पुत्र उत्पन्न हुआ। माता नवजात शिशुको अपनी गोदीमें लेकर हार्दिक आनन्दसे खिलाती फिर आलिंगन करती और पुनः खिलाती थी। इस पर माताकी गोदीमें बैठा हुआ वह जातिस्मर पुत्र हंस पड़ा, तब माता क्रोधित होकर बोली,—हे वत्स! मैं डर गई हूं, तुम्हारे बदनमें यह हंसी कैसी है? असमयमें ही तुम्हें ज्ञान होगया है? क्या इसमें तुम्हें कोई मंगल दिखाई पड़ता है? पुत्रने कहा,—क्या तुम नहीं देखती हो? सामने यह मार्जारी (बिल्ली) तथा अदृश्य जातहारिणी मुझे खाजाना चाहती है और आप पुत्र-प्रेमके कारण मुझे हार्दिक स्नेहसे देखती हैं; खिला खिलाकर बार बार मुझे आलिंगन करती हैं; आनन्दसे आपके रोएं खड़े हो जाते हैं; स्नेहसे आपके नेत्रोंमें आंसू आजाते हैं; इसीलिये मुझे हंसी आगई। इसका कारण भी सुनिये, स्वार्थमें लगी हुई मार्जारी और अन्तर्हित जातहारिणी मुझे देख रही हैं ॥१-१०॥ स्वार्थके लिये जिस प्रकार मुझसे इन दोनोंका हृदय स्नेहशील होगया है, उसी प्रकार मुझे आपका भी प्रतीत होता है। मार्जारी और जातहारिणी मेरा ही उपभोग करना चाहती हैं और आप मेरे द्वारा धीरे धीरे उपभोग्य फलका। आप नहीं जानती कि मैं कौन हूं; मैंने आपका कोई उपकार भी नहीं किया; बहुत दिनका नहीं केवल पांच सात दिनका संग है तो भी आप मुझसे स्नेह करती हैं; आखोंमें आसू भरकर आलिंगन करती हैं; तात, भद्र, वत्स आदि व्यर्थके सम्बोधन करती हैं। माताने कहा,—हे वत्स, किसी उपकारके लिये मैं तुम्हारा आलिंगन नहीं करती, केवल प्रीतिसे ही करती हूं; यदि तुम इससे प्रसन्न नहीं होते तो मैं तुमसे छोड़ ही दी गई हूं। मैंने भी तुम्हारे द्वारा अपना सारा स्वार्थ छोड़ दिया। यह कहकर वह शरीरसे जड़ और अन्तःकरणसे शुद्ध उस पुत्रको छोड़ कर सूतिकागृहसे बाहर चली गई। तब माताके द्वारा परित्यक्त उस पुत्रका जातहारिणीने अपहरण कर लिया ॥ ११-१७ ॥ वह उसे चुराकर विक्रान्त नामक राजाकी नवप्रसूत पत्नीकी शय्यामें रख कर उसके पुत्रको ले आयी फिर उसे दूसरेके घरमें लेगयी और उसके लड़केको उठा लिया, इस प्रकार उस जातहारिणीने तीसरेके लड़केको

खा लिया। वह क्रूरा अपहरण करती हुई तीसरे पुत्रको ही खाती है। वह प्रतिदिन इसी प्रकारका बदला किया करती है ॥ १८-२० ॥ इसके अनन्तर महीपाल विक्रान्तने भी वह सभी संस्कार किये जो क्षत्रियोंके होते हैं। अत्यन्त आनन्दसे युक्त होकर उसके पिता विक्रान्त महीपतिने विधिपूर्वक उसका नाम 'आनन्द' रक्खा। उपनयन होजानेके अनन्तर गुरुने उस कुमारसे कहा,—पहले माताको उठकर प्रणाम करो। गुरुका यह वाक्य सुनकर वह हंसकर बोला,—मैं किसे प्रणाम करूं, जननीको अथवा पालन करने-वालीको? गुरुने कहा, हे महाभग! यह जारूथकी पुत्री ही तुम्हारी माता है, यह विक्रान्तकी प्रधान रानी और इसका नाम हैमिनी है। आनन्दने कहा, यह विशाल ग्राम-वासी विप्रश्रेष्ठ बोधके पुत्र चैत्रकी जननी है, वही इसके पुत्र हैं। मेरा तो अन्यत्र जन्म हुआ है। गुरुने कहा, हे आनन्द! तुम कहांसे आये हो? वह चैत्र कौन हैं जिनकी तुमने बात कही है? तुम क्या कह रहे हो, तुमने कहां जन्म लिया है? मुझे तो बड़ा भारी संकट मालूम पड़ रहा है। आनन्दने कहा,—हे द्विज! मैं अनमित्र नामक राजाके घर उनकी पत्नी गिरिभद्राके गर्भसे उत्पन्न हुआ हूं। जातहारिणी मेरा अपहरण कर मुझे यहां छोड़ गई है और हैमिनीके पुत्रको वह उन द्विज श्रेष्ठ बोधके घर ले गई; वहां उसने उनके पुत्रको खा लिया। हैमिनीपुत्र वह ब्राह्मणके संस्कारोंसे संस्कृत हुआ है। हे महा-भाग! हम यहां पर आपसे संस्कृत हुए हैं। मुझे आपका कहना करना चाहिये, आप गुरु हैं। कहिये, मैं किसे प्रणाम करूं? गुरुने कहा,—यह बड़ा भारी संकट उपस्थित हो गया है, मैं कुछ नहीं समझता, मोहके कारण मेरी बुद्धि चक्कर खा रही है ॥ २१-३२ ॥ आनन्दने कहा,—इस प्रकारके व्यवस्थित जगत्में मोहका विराम हो क्या? हे विप्रर्षे! कौन किसका पुत्र है? जब जन्मसे लेकर ही मनुष्योंके सम्बन्धी प्राप्त होते हैं तब तो कोई किसी-का बन्धु ही नहीं है। दूसरे सम्बन्धी भी मृत्युके द्वारा अलग कर दिये जाते हैं। यहां पर उत्पन्न हुए मनुष्योंका जो बान्धवोंके साथ सम्बन्ध है, उसका देहके साथ ही अन्त हो जाता है, यही समस्त संसारका क्रम है। इसीसे कहता हूं संसारमें रहनेवालेका कोई बान्धव नहीं है। कौन चिर बन्धु है? क्यों आपकी बुद्धि भ्रममें पड़ रही है। देखिये, इसी जन्ममें मुझे दो पिता, दो मातायें मिलीं तब अन्य जन्ममें ऐसा ही हो तो आश्चर्य ही क्या? इसलिये मैं तप करूंगा, आप विशाल ग्रामसे इन भूपतिके पुत्र चैत्रको ले आइये। मार्कण्डेयने कहा, इसके बाद आश्चर्य चकित होकर राजाने स्त्री बन्धुओंके साथ माताको छोड़ कर उसे वन जानेकी अनुमति दी ॥ ३३-३८ ॥ जिस ब्राह्मणने चैत्रको पुत्र समझकर पाला था, उसे सम्मानित कर राजाने पुत्रको लाकर राज्यके योग्य बनाया। वह आनंद भी विमुक्तिके बाधक कर्मोंके क्षयके लिये बाल्यावस्थामें ही उस महावनमें तपस्या करने

लगे। तब देव प्रजापतिने तपस्या करते समय उनसे कहा,—हे वत्स! तुम किस लिये यह कठिन तप कर रहे हो, मुझसे कहो। आनन्द बोले,—हे भगवन्! मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या कर रहा हूँ। मेरे जो कर्म मुझे बांधनेके लिये हैं, मैं उनके नाशके लिये तत्पर हूं। ब्रह्माने कहा, जिसके अधिकारोंका क्षय हो गया है वह पुरुष मुक्तिके योग्य होता है, कर्मवान् नहीं। आप सत्वाधिकारवाले पुरुष हैं, आप मुक्ति कैसे पायेंगे। अब आपको जाकर वही करना चाहिये जिससे आप छठे मनु हों, आपको तपस्याकी आवश्यकता नहीं; वैसा करने पर आप मुक्ति प्राप्त करेंगे ॥ ४०—४५ ॥ मार्कण्डेय बोले, ब्रह्माके यह कहने पर 'ऐसा ही हो' कहकर वह महामति उस कर्मके लिये अग्रसर हुए, उन्होंने तपस्या छोड़ दी। ब्रह्माने उन्हे तपस्यासे निवृत्त कर उनका पूर्व नाम चाक्षुष रक्खा। इसके अनन्तर वह विख्यात चाक्षुष मनु हुए। उन्होंने उग्र नामक महीपति की कन्या विदर्भासे विवाह कर उसके गर्भसे अनेकों विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये। हे द्विज! उस मन्वन्तराधिपतिके मन्वन्तरमें जो देवता, जो ऋषि, जो इन्द्र और जो उनकी सन्तति हुई है, उसे सुनिये। हे विप्र! इस मन्वन्तरमें देवताओंका प्रथम गण आर्य नामक है, उस गणमें विख्यात कर्मवाले यज्ञमें हव्यभोजी आठ देवता थे। प्रख्यात बलवीर्यवाले, प्रभामण्डलके मध्यवर्ती, दुर्दर्श देवताओंका प्रसूत नामक दूसरा गण है। इसमें भी आठ

टीका—पूर्व कर्मसे प्राप्त जो श्रेष्ठ अधिकार जीवको प्राप्त होते हैं, उनके क्षीण होनेका तात्पर्य कर्म-बन्धनसे बचना है। यह विषय बहुत गूढ़ रहस्यपूर्ण है। मुक्ति तीन प्रकारकी होती है। सहज कर्मकी मुक्ति जीवन्मुक्तदशामें इसी मृत्युलोकमें होती है, जनकादि राजा और व्यास वसिष्ठ आदि महर्षि इसके उदाहरण हैं। दूसरे प्रकारकी मुक्ति जैव कर्मसे होती है; जीव जब उग्र तपके अनन्तर आत्मज्ञानका अधिकारी होता है और इस लोकमें शरीर छोड़कर शुक्लगतिका अवलम्बन करके सप्तम ऊर्ध्वलोकमें पहुंच कर मुक्तिपदका अधिकारी होता है, वह दूसरे प्रकारकी मुक्ति है। इसका ज्वलन्त उदाहरण ब्रह्मचारी भीष्मपितामह हैं। तीसरे प्रकारकी मुक्ति कुछ उभय विलक्षण है, जो जीव अपने उग्र शुभ कर्मके प्रभावसे भगवान् यम धर्मराज, भगवान् मनु अथवा त्रिमूर्ति पदमें पहुंच कर उच्चसे उच्च देवपदाधिकारको प्राप्त करके उन अधिकारोंमें और उनसे आरब्ध किये हुए कर्मोंमें निर्लिप्त रहते हैं, वे उक्त पदोंमें रहते हुए भी ब्रह्मभूत हैं और उन अधिकारोंको छोड़कर भी ब्रह्मभूत ही होते हैं। वे शरीर रहते हुए सगुण ब्रह्म हैं और पदत्यागके अनन्तर स्वस्वरूपमें लय होकर ब्रह्मभूत ही हो जाते हैं। इस स्थल पर इसी मुक्तिश्रेणीको इङ्गित किया गया है। मनुपद देवपद है और कालरक्षक देवपद होनेसे बहुत बड़ा देवपद है; इस पदपर जो महापुरुष पहुंचते हैं वे पूर्णज्ञानी स्वरूपस्थित और अलौकिक शक्तिमान् होते हैं। वे पद पर रहते हुए भी मुक्त रहते हैं और अपने पदको छोड़कर भी स्वस्वरूपमें विलीन हो जाते हैं। यह मुक्ति ऐश कर्मकी मुक्ति कहाती है। पूर्व दोनों कर्मोंकी मुक्तिका वर्णन शास्त्रोंमें जहां तहां है, परन्तु यह उभय विलक्षण मुक्ति अलौकिक और असाधारण है ॥ ४०-४५ ॥

देवता हैं । इसी प्रकार आठ देवताओं वाला भव्य नामक तीसरा गण है । चौथे गणका नाम यूथग है । हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें पांच देवगण लेख नामका है, उसके देवता अमृताशी हैं । सौ यज्ञोंको करके यज्ञांश भोजी 'मनोजव' नामक इन्द्र उनके अधिपति हुए, सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अति, और सहिष्णु यह सात सप्तर्षि हुए । चाक्षुष मनुके उरु, पुरु, शतद्युम्न आदि महाबलशाली पुत्र पृथ्वीके स्वामी हुए । हे द्विज ! छठे मन्वन्तरका विषय एवं चाक्षुष मनुका जन्म तथा चरित्र मैंने तुमसे कहा है । अब वैवस्वत नामक जो सातवें मनु इस समय वर्त्तमान हैं उनके मन्वन्तर और देवतादिकका विषय मुझसे सुनिये ॥ ४६-५८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें चाक्षुष मन्वन्तर नामक
छिहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७६ ॥

सतहत्तरवां अध्याय ।

मार्कण्डेय बोले, हे महाभाग ! विश्वकर्माकी संज्ञा नाम्नी कन्या सूर्य भगवान्‌की पत्नी हैं, उनके गर्भसे सूर्यने प्रख्यात यशस्वी एवं बहु ज्ञानसम्पन्न मनुको उत्पन्न किया । विवस्वतके पुत्र होनेके कारण यह मनु वैवस्वत नामसे विख्यात हुए । रविके देखने पर संज्ञा अपने नेत्र बन्दकर लेती थी, इसलिये क्रोधित होकर सूर्यने निष्ठुरता पूर्वक कहा, मुझे देखकर तुम सदैव नेत्रका संयम करती हो, अतएव प्रजाके संयमन करनेवाले यमको

टीका—मन्वन्तरकी जितनी कथाएं इस पुराणमें कही गयी हैं वह सब दैवी सृष्टिकी कथायें हैं और उस उस समयके देवलोकसे सम्बन्ध रखनेवाली हैं । ये सब गाथायें समाधि द्वारा ऋषियोंके अर्थात् पुराण शास्त्र रचयिताओंके अन्तःकरणपटलमें उदय हुआ करती हैं । तब वह ग्रन्थमें लिखी जाती हैं । समाधिके रहस्यजाननेवाले योगिराज गण इस अलौकिक समाधिगम्य विषयको समझ सकते हैं और कोई ठीक ठीक नहीं समझ सकता । जैसे इस मृत्युलोकमें कालके नानाविभागमें राजा प्रजा, राजशक्ति-प्रजाशक्ति और देश काल पात्रका स्वरूप अलग अलग पाया जाता है उसी प्रकार प्रत्येक मन्वन्तरमें दैवी जगत्‌की शृंखला विभिन्न प्रकारसे परिवर्तित हो जाती है । अलग अलग मन्वन्तरमें अलग अलग प्रकारके देवसंघ, अलग अलग प्रकारके ऋषिसंघ, अलग अलग प्रकारके पितृसंघ और अलग अलग प्रकारके देवपदधारी बनकर सृष्टिके अलग अलग समष्टिकर्मके अनुसार उक्त मन्वन्तरकी शृंखला बांधते हैं, इस कारण प्रत्येक मन्वन्तरमें दैवी राज्यकी शृंखला और देवपदोंकी शृंखलामें भेद होना अवश्यम्भावी है । यही कारण है कि, मन्वन्तरोंमें इस प्रकार देवसंघोंका परिवर्त्तन पाया जाता है ॥ ४९-५६ ॥

तुम उत्पन्न करोगी। मार्कण्डेय बोले, तबसे वह देवी भयभीत होकर दृष्टिको चञ्चल रखने लगी, तब इधर उधर नेत्रोंको नचाते हुए उसे देखकर सूर्यने कहा, मुझे देखकर अब तुम अपने नेत्रोंको चपल रखती हो। इसलिये तुम चञ्चल कन्या नदीको उत्पन्न करोगी ॥ १—५ ॥ मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर पतिके शापसे उसके यम तथा प्रख्यात महानदी यमुना उत्पन्न हुई। वह भामिनी संज्ञा भी बड़े दुःखसे रविके तेजको सहन करती थी। जब वह उस तेजको न सहसकी तो उसने सोचा, क्या करूं ? कहां जाऊं ? कहां जानेपर मुक्ति मिलेगी ? उसके बाद किस प्रकार मेरे स्वामी सूर्य क्रोधके वशमें न हों ? उस समय उस प्रकार प्रजापतिकी कन्या महाभागा संज्ञाने बहुत कुछ सोचकर पिताके आश्रयमें ही जाना अच्छा समझा। तब इस यशस्विनीने पिताके घरमें जानेका निश्चयकर रविकी पत्नीके स्थानपर अपने छायामय शरीरका निर्माण किया। फिर वह उस छायासे बोली, इस सूर्यके घरमें जिस प्रकार मैं हूं उसी प्रकार तुम भी होगी। लड़कों के तथा रविके साथ मेरे सदृशही वर्ताव करना। उनके पूछने पर भी तुम मेरे इस प्रकार जानेकी बात न कहना। 'मैं वही संज्ञा हूं' तुम यही बात कहना ॥ ६—१३ ॥ छायाने कहा, हे देवि ! जब तक वह मेरे बाल नहीं खीचेंगे, शाप नहीं देंगे तब तक मैं आपहीका कहना करूंगी। किन्तु शापदेने तथा बाल खींचने पर मैं समस्त वृत्तान्त कह दूंगी। छाया संज्ञाके इस प्रकार कहने पर संज्ञा देवी पिताके घर चली गयीं। वहां उन्होंने तपस्याके द्वारा अपने पापोंको धोकर विश्वकर्माको देखा। विश्वकर्माने भी उसका बड़े आदरके साथ सत्कार किया। वहां पर संज्ञा आनन्द पूर्वक कुछ समय तक रही। थोड़े ही दिन रहनेके पश्चात् पिताने अपनी कन्यासे बहुत आदर और स्नेहके साथ मीठे शब्दोंमें कहा, हे वत्से ! बहुत दिनों तक तुम्हें देखने पर भी मुझे आधा मुहूर्त ही प्रतीत होता है। किन्तु इससे धर्मकी हानि होती है। बन्धुओंके घर बहुत समय तक रहना स्त्रियोंके लिये यशस्कर नहीं होता। उनका मनोरथ यही है कि स्त्रियां पतिके ही घर रहें। हे पुत्रि ! त्रिलोकके स्वामी सूर्य तुम्हारे पति हैं। उन्हींसे तुम्हारा विवाह हुआ है, पिताके घरमें चिरकाल तक रहना तुम्हें उचित नहीं ! अत एव हे शुभे ! तुम इसी क्षण अपने पतिके घर जाओ। मैं संतुष्ट हो गया हूँ, मैंने तुम्हारा सत्कार भी कर दिया है। मुझे देखनेके लिये तुम फिर चली आना ॥ १४-२१ ॥ मार्कण्डेय बोले, हे मुने ! पिताके ऐसा कहने पर उसने 'ऐसा ही हो' कहा, फिर वह उनकी पूजा कर उत्तर देशकी ओर चली गयी। सूर्यके तापको न चाहती हुई उनके तेजसे डरकर वह वहां पर बड़वाका (घोड़ी) रूप धारण कर तपस्या करने लगी। दिनपति सूर्यने संज्ञा जानकर ही उस दूसरी पत्नीके गर्भसे दो पुत्र और एक सुन्दरी कन्या उत्पन्न की। किन्तु वह

छाया-संज्ञा जिस प्रकार अपनी सन्ततिके प्रति स्नेह करती थी वैसा प्रेम संज्ञाके पुत्रों एवं कन्या के साथ नहीं करती थी। नलिनादिकके उपभोग में प्रतिदिन भी दिखाई देता था। मनुने तो क्षमा कर दिया किन्तु यमने नहीं किया। उन्होंने मारनेके लिये अपने पैरको उठाया, किन्तु उसके शान्त रहने पर उसके शरीर पर नहीं पटका। हे द्विज ! इस पर छाया-संज्ञाने क्रोधमें आकर उसने ओंठको कुछ कपाते तथा हांथको चलाते हुए शाप दिया, मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं। तुमने मेरी मर्यादा न रख कर पैरसे मुझे डराया है, अतएव अभी तुम्हारा पैर पृथ्वी पर गिर पड़ेगा। मार्कण्डेय-बोले, माताके दिये हुए इस प्रकारके शापको सुनकर, भयभीत हो पिताके समीप जाकर प्रणाम करते हुए यमने कहा, हे तात ! माताने वात्सल्य-भावको छोड़ कर पुत्रको शाप दिया है, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है ! ऐसा तो कहीं किसीने नहीं देखा ! मनुने जैसा मुझसे कहा था यह वैसी माता नहीं है। पुत्रके दुर्गुणी होने पर भी माता कभी मातृत्वगुणसे हीन नहीं हो सकती ॥ २२-३२ ॥ मार्कण्डेय बोले, यमकी बात सुन कर भगवान् तिमिरारि सूर्यने आदर पूर्वक छाया-संज्ञाको बुलाकर पूछा, 'संज्ञा कहां गई है ?' वह बोली, हे विभावसो ? मैं ही विश्वकर्माकी कन्या आपकी पत्नी' संज्ञा हूं। मेरे ही गर्भसे आपके इन संतानोंने जन्म ग्रहण किया है। भगवान् सूर्यके इस प्रकार उससे बार बार पूछने पर भी उसने ठीक ठीक उत्तर नहीं दिया; जब भगवान् सूर्य उसे क्रुद्ध होकर शाप देनेको उद्यत हुए; तब उसने भगवान् सूर्यसे सभी वृत्तान्त कह दिया। सब कुछ अवगत होनेपर वह विश्वकर्माके घर गये। त्रैलोक्य –पूजित तेजस्वी सूर्यको अपने घरमें आया हुआ देख, विश्वकर्माने परम भक्तिके साथ उनकी पूजा की। उन्होंने सूर्यसे संज्ञाका वृत्तान्त जानकर कहा, संज्ञा हमारे घर आयी थी, किन्तु मैंने उसे आपके ही पास भेज दिया था। तब दिवाकर सूर्यने ध्यानस्थ होकर देखा कि, संज्ञा उत्तर कुरुवर्षमें बड़वा रूप धारण कर तपस्या कर रही है। उन्होंने यह भी जाना कि, उसका तपस्या की अभिसिद्धि भी यही है कि, "मेरा स्वामी सौम्य एवं सुन्दर आकृतिवाला हो जाय।" हे द्विज ! भगवान् भास्करने संज्ञाके पितासे कहा, 'आप मेरे तेजको अव-क्षीण कर दीजिये।' इसके अनन्तर विश्वकर्माने सम्वत्सरका भ्रमण करने वाले सूर्यका तेज क्षीण कर दिया, इसपर देवताओंने उनकी स्तुतिकी ॥३३-४२॥

इसप्रकार मार्कण्डेय-महापुराणमें वैवस्वत मन्वन्तरका
सतहत्तरवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७७ ॥

अठहत्तरवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले, इसके अनन्तर समस्त देवगण और देवर्षिगण आकर त्रैलोक्यपूज्य रविकी स्तुति करने लगे। देवगण बोले, हे देव! आप ऋक् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आप साम स्वरूप हैं आपको नमस्कार है। आप यजुः तथा सामके द्युतिमान् स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है। आपही ज्ञानके एकमात्र आधार हैं। तमके नाशक, विशुद्ध ज्योतिके स्वरूप शुद्ध एवं विमल आत्मा हैं, आपको नमस्कार है। आपही वरिष्ठ, वरेण्य, पर तथा परमात्मा हैं, आपही का मूर्ति समस्त संसारमें व्याप्त है; आपको नमस्कार है। समस्त संसारके कारण आपही हैं, आपही ज्ञानियोंकी निष्ठा हैं, आप सूर्य स्वरूप हैं, आपका रूप ही रूप है आपको नमस्कार है॥ १—५॥ आपही भास्कर हैं, आपही दिनकर भी हैं और रात्रिके कारण भी, आपही संध्या तथा ज्योत्स्नाके बनानेवाले हैं, आपको नमस्कार है। आप भगवान् हैं, भ्रमण करते हुए आपके द्वाराही चर-अचरके सहित यह ब्रह्माण्ड विंधा हुआ-सा भ्रमण कर रहा है। स्पर्श करने योग्य जितने द्रव्य हैं वह आपकी किरणोंके स्पर्शसे ही पवित्र होते हैं। जलादिककी पवित्रता आपकी किरणोंके द्वारा ही होती है। हे देव! यह संसार जबतक आपकी किरणों का संयोग नहीं पाता तबतक होम दानादिके द्वारा उसका कुछ उपकार नहीं होता। आपके अङ्गसे जो समस्त किरणें निकलीं हैं वही ऋक्, यजुः और साम हैं। हे जगन्नाथ! आपही ऋक्मय, आपही यजुर्मय और आपही साममय हैं, अतएव हे प्रभो! आपही त्रयीमय हैं। आपही ब्रह्माके रूप हैं, आपही प्रधान तथा आपही अप्रधान हैं। आपही मूर्त और आपही अ-मूर्त हैं। स्थूल और सूक्ष्मरूपसे भी आपही स्थित हैं। हे देव! आपही निमेष-काष्ठादिके रूपमें क्षयात्मक कालके स्वरूप हैं। आप प्रसन्न होइये। अपनी इच्छाके अनुरूप ही अपने तेज को प्रशान्त कीजिये॥ ५—१३॥ मार्कण्डेय-बोले, इस प्रकार देव और देवर्षियोंके स्तुति करनेपर तेजके समूह, कभी नाश न होने वाले सूर्यने अपने तेजको छोड़ा। उन रविके ऋङ्मय तेजसे पृथ्वी, यजुर्मय तेजसे आकाश, साममय तेजसे स्वर्ग उत्पन्न हुआ। विश्वकर्माने सूर्यको जो पन्द्रह हिस्से तेज क्षीणकर दिया था, उसके द्वाराही उन्होंने महादेवका शूल, विष्णुका चक्र एवं वसुगण, शंकर, तथा अग्निकी सुदारुण शक्तिका निर्माण किया। उससेही कुबेरकी पालकी तथा अन्य राक्षस, यक्ष और विद्याधरोंके उग्र अस्त्रका निर्माण किया॥ १४—१८॥ इसके अनन्तर भगवान् सूर्यने अपने तेजका सोलहवां हिस्साही धारण किया। विश्वकर्माने उसे भी पन्द्रह बार छांटा। तब भगवान् सूर्य घोड़ेका रूप धारणकर उत्तर कुरुवर्ष गये। वहां

उन्होंने वड़वाके रूपमें संज्ञाको देखा। वह उन्हें आता हुआ देख पर-पुरुषकी आशंका करने लगी और अपनी पीठकी रक्षामें तत्पर होकर वह उनके सम्मुख गई। वहां पास आ जानेपर दानोंकी नासिकाके संयोग हो जानेपर अश्वीके मुखसे नासत्य, दस्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए, और उस वीर्यके शेष भागसे चर्म वर्म और खड्गधारी, बाण और तूणसे युक्त, घोड़ेपर चढ़ा हुआ रेवन्त नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भगवान् सूर्यने उस अश्वीको अपना अतुल रूप दिखाया, वह वड़वा भी इनके वास्तविक रूपको देखकर परम प्रसन्न हुई और उसने भी अपना रूपधारण कर लिया। तब जलकेहरणकरनेवाले भास्करदेव प्रीतिमती संज्ञाको अपने आश्रममें ले आये ॥१४–२५॥ इसके अनन्तर इसके ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु, और दूसरे पुत्र यम शापके कारण धर्म दृष्टि हुए। "तुम्हारे पैरोंसे मासके सहित कीड़े पृथ्वी पर गिरेंगे।" इस पापका स्वयं पिताने अन्त किया। वह धर्म दृष्टि थे, शत्रु और मित्रमें उनका समान भाव था, यह देखकर ही तिमिरारि सूर्यने उन्हें यमके पदपर नियुक्त किया। यमुना नामक कन्या कलिन्द देशमें नदीके रूपमें बहने लगी। दोनों अश्विनी कुमार पिताके द्वारा स्वर्गके वैद्य और रैवतक गुह्यकोंके अधिपति नियुक्त हुए। अब छाया-संज्ञाकी संतति नियुक्तिका वृत्तान्त मुझसे सुनिये ॥ २६–३० ॥ ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनुके समान छाया संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न रविके ज्येष्ठ पुत्रका नाम सावर्णिक था। जिस समय बलि इन्द्र होंगे उस समय यही मनु होंगे। शनैश्चर भी पिताके द्वारा ग्रहोंके मध्यमें नियुक्त हुए। सबसे छोटी तीसरी कन्याका नाम तपती था, उसके संवरण नामक राजाके वीर्यसे कुरु नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। अब मैं सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके समस्त ऋषि, देव, इन्द्र और भूपति पुत्रोंके वृत्तान्तको कहता हूं ॥ ३१–३४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें वैवस्वतमन्वन्तरमें वैवस्वतोत्पत्ति नामक अठहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ७८ ॥

टीका—वैवस्वत मन्वतरके अधिपतिकी उत्पत्तिकी यह गाथा अति विचित्रतासे पूर्ण है। शंकाका अवसर न रहे इस कारण इंगित किया जाता है कि, यह गाथा आध्यात्मिक भावसे पूर्ण है और इसकी भाषा लौकिक भाषामयी है। सूर्य आदिके स्वरूप जो समाधिगम्य हैं, उसी समाधिगम्य स्वरूपके साधारण बुद्धिसे अगम्य होनेके कारण उसको लौकिक भाषाकी शैली पर प्रकट किया गया है और दूसरी ओर आध्यात्मिकभावसे गुम्फित रखकर यह गाथा अतिमनोहर रूपमें प्रकट की गयी है। तत्त्वज्ञ विद्वान्‌गण इस विचारशैलीका अनुसरण करने पर इस गाथाके माधुर्यके साथ ही साथ इसका महत्त्व ग्रहण कर सकेंगे और सूर्य भगवान्‌का अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूतरूप और साथ ही साथ उनकी संतति और परिवारवर्गका स्वरूप दार्शनिक दृष्टि द्वारा देख सकेंगे। अध्याय—७७-७८ ॥

उन्नासिवां अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले, आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत्, भृगु तथा अंगिरागण यही इस मन्वन्तरके आठ प्रकारके देवता हैं। इनमें आदित्य, वसु और रुद्रगण कश्यप की सन्तान हैं, साध्य विश्व और मरुद् गण यह तीनों धर्मके पुत्र हैं, भृगुगण भृगुदेवके और अंगिरागण अंगिरादेवताके पुत्र हैं। हे द्विज! इस सर्गको अब मारीच नामसे जानना चाहिये ॥१-३॥ इस मन्वन्तरमें महात्मा ऊर्जस्वी इन्द्र होकर यज्ञांशके भोगी हुए। जो पहले हुए हैं, जो इस समय हैं और जो होंगे वे सभी देवेन्द्र समान लक्षणवाले प्रसिद्ध हैं। सहस्राक्ष, वज्र-धारी और सुन्दर हैं, सभी धनवान्, वृष, शृंगधारी और गजगामी हैं, वे सभी सौ यज्ञोंके कर्ता प्राणियोंके पराभवकारी तेजस्वी हैं। हे द्विज! वे विशुद्ध धर्मके कारणसे ही अधिपतिके गुणोंसे युक्त एवं भूत भविष्य और वर्तमानके स्वामी हैं। हे द्विज! अब आप तीनों लोकोंके विषयको मुझसे सुनें। इस पृथ्वीको 'भूर्लोक' अन्तरिक्षको 'दिव' और स्वर्गको 'दिव्य' लोक कहते हैं। यही तीनों त्रैलोक्य हैं ॥ ४-८ ॥ अत्रि, वशिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिकनन्दन विश्वामित्र और महात्मा ऋचीकनन्दन जमदग्नि, यही सात मुनि इस मन्वन्तरके सप्तर्षि हैं। इक्ष्वाकु, नाभग, धृष्ट, शर्य्याति, नरिष्यन्त, नभग, दिष्ट करुवा, पृषध्र, यह वैवस्वत मनुके तेजस्वी तथा जगद्विख्यात नौ पुत्र हुए। हे ब्रह्मन्! मैंने आपसे वैवस्वत मन्वन्तरका वर्णन कर दिया। हे मुनिश्रेष्ठ! इसका सुनने पाठ करनेसे मनुष्य उसी समय समस्त पापोंसे मुक्त होकर पुण्यका उपभोग करता है ॥ ९-१३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय-महापुराणमें वैवस्वत मन्वन्तरमें उन्यासिवां अध्याय समाप्त हुआ॥७९॥

अस्सिवां अध्याय ।

——:*:——

क्रौष्टुकिने कहा, स्वायम्भुव आदिक सात मनु एवं उनके देवता, राजा और ऋषि-योंका वर्णन आपने मुझसे कर दिया है। हे महामुने! इस कल्पमें और जो सात मनु होंगे, उनका और उस समय देवादिक होंगे उनका विषय मुझसे कहिये। मार्कण्डेय-बोले, छाया-संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वत मनुके तुल्य जिन सावर्णि की बात तुमसे कही है, वही आठवें मनु होंगे। इस मन्वन्तरमें राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान कृप, ऋष्यश्रृंग तथा द्रौणि यही सात सप्तर्षि होंगे। इस मन्वन्तरमें सुतपा, अमिताभ और मुख्य यही तीन प्रकारके देवगण हैं, इनमें प्रत्येकमें बीस अर्थात् सब बीसके तिगुने साठ देवता हैं ॥ १-५ ॥ उनमें. तपस्तपः शक्र, द्युति, ज्योति, प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म तेज,

रश्मि, वक्रतु आदि समस्त सुतपाके बीस संख्यावाले गणके अन्तर्गत हैं। प्रभु, विभु और विभास आदि देवगण अमिताभके अन्तर्गत हैं। अब तीसरे गणके बारेमें मुझसे सुनिये। दम, दान्त, रित, सोम और विन्त आदिक देवगण मुख्य नामक तीसरे बीस संख्यावाले गणके अन्तर्गत हैं। यह सभी मन्वन्तराधिपति तथा सभी मरीचिके पुत्र कश्यपकी संतान हैं। यही सावर्णि मन्वन्तरमें देवता होंगे। हे मुनिवर! विरोचनके पुत्र दैत्यराज बलि, जो आज भी प्रतिज्ञामें बन्धकर पातालमें रहते हैं, इस समय इन्द्र होंगे। सावर्णि मनुके पुत्र विरजा, अर्ववीर निर्मोह, सत्यवाकू, कृति और विष्णु नामवाले उस समयके राजा होंगे ॥६-११॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सावर्णि मन्वन्तरमें अस्सीवां अध्याय समाप्त हुआ॥८०॥

टीका—दैवीराज्यकी काल शृङ्खला, कर्म शृङ्खला और पदाधिकारी की सुव्यवस्था ये तीन स्वतंत्रकार्य दैवी जगत्के माने गये हैं। कालकी व्यवस्था करनेवाले राजा मनु कहाते हैं। धर्माधर्मके मूलभूत कर्मकी शृङ्खलाको ठीक रखनेवाले और जीवको यथावत् फलभोग देकर सम्हालनेवाले राजा यम-धर्मराज हैं और नानादेव पदधारी देवताओंको व्यवस्थित रखनेवाले और दैवी सत्वकी सुरक्षा करनेवाले देवराज इन्द्र कहाते हैं दूसरी ओर देवताओंके संघके भी प्रत्येक मन्वन्तरके समष्टि प्रबन्धके अनुसार अलग अलग विभाग, हुआ करते हैं। ज्ञानकी व्यवस्था करनेवाले देवसंघ ऋषि आदि, आधिभौतिक सृष्टिकी सुव्यवस्था करनेवाले देवसंघ नित्यपितृ आदि चतुर्विध भूत संघको सम्हालने वाले, जीवके आवागमन चक्रको सम्हालने वाले और नाना दैवी पदको सुरक्षित रखनेवाले अन्य कई प्रकारके देवसंघ अपने अपने पद पर नियुक्त रहते हैं। समाधि द्वारा प्राप्त ये सब संघ वैवस्वत मन्वन्तरके कहे गये हैं। प्रत्येक मन्वन्तरका काल मनुष्य वर्षके अनुसार ३०६७२०००० वर्षोंका होता है। एक ब्राह्मकल्प ४३२०००००००० का होता है। उसके अनुसार मन्वन्तर और कल्प दोनोंका हिसाब मिलानेसे मन्वन्तरोंकी सन्धिके २५६२०००० वर्षोंका फरक पड़ता है। प्रत्येक मन्वन्तर की तीन संधि मानी गई हैं। आदि, मध्य और अन्तकी सन्धि। इसका कारण समझानेके लिये उदाहरण दिया गया है कि, जब मनुष्यकी आयु समाप्ति होती है तो उस समय वर्षका हिसाब ठीक मिल जाने पर भी कई एक अवान्तर कारणोंसे शरीर त्यागके दिन और घण्टेमें फरक पड़ा करता है। इसी प्रकारसे प्रत्येक युग प्रत्येक महायुग और प्रत्येक मन्वन्तरके अन्तमें इसप्रकारका थोड़ा फरक पड़ता हुआ कल्प और मन्वन्तरकी आयुमें यह भेद पड़ जाया करता है। वस्तुतः यह तो निश्चित ही है कि मनु पदसे एक व्यक्तिकी जगह दूसरी व्यक्ति आजाता है, तभी एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरका परिवर्तन कहाता है। इस समय इस मन्वन्तरके ३०६७२०००० वर्षोंमें से केवल १२०५३३०३३ वर्ष व्यतीत हुए हैं। अभी १८६१८६९६७ वर्ष वर्तमान मन्वन्तरके बाकी हैं॥

त्रिकालदर्शी पूज्यपाद व्यासादि महर्षिगण अपनी समाधिबुद्धि द्वारा इस प्रकारसे मन्वन्तर और कल्प कल्पान्तरकी गाथाओंको लोक कल्याणके लिये प्राप्त करके पुराणोंमें प्रकट कर गये हैं। ये गाथाएं कल्पित नहीं हैं सत्य हैं परन्तु त्रिभावात्मक हैं। और त्रिभाषामयी हैं। इनसे लौकिक इतिहासका कोई सम्बन्ध नहीं है। दूसरी ओर जब देखा जाता है कि दोसौ पांचसौ वर्षके लौकिक इतिहासमें देशकालपात्र और सभ्यताका कितना फर्क पड़ जाता है तो सोचा जाय कि अनेक मन्वन्तरोंमें और अनेक कल्पोंमें सृष्टिके स्वरूपमें और उसके अङ्गोंके स्वरूपमें कितना फर्क पड़ सकता है। यही कारण है कि आजकलकी लौकिकबुद्धिसे पुराणकी गाथाएँ कल्पित प्रतीत होती हैं ॥ ६—११ ॥

एक्यासीवाँ अध्याय ।

श्रीसप्तशती गीता । ❀

ॐ नमश्चण्डिकायै ।

मार्कण्डेय मुनिने क्रोष्टकीसे कहा कि, सूर्य्यपुत्र सार्वणि जो अष्टम मनु कहलावेंगे,

---

देवि ! प्रपन्नार्तिहरे ! शिवे ! त्वं, वाणीमनोबुद्धिभिरप्रमेया ।
यतोऽस्यतो नैव हि कश्चिदीशः, स्तोतुं स्वशब्दैर्भवतीं कदाचित् ॥
त्वं निर्गुणाकारविवर्जिताऽपि, त्वं भावराज्याच्च बहिर्गताऽपि ।
सर्वेन्द्रियागोचरतां गताऽपि, त्वेकाद्यखण्डा विभुरद्वयाऽपि ॥
स्वभक्तकल्याणविवर्द्धनाय, धृत्वा स्वरूपं सगुणं हि तेभ्यः ।
निःश्रेयसं यच्छसि भावगम्या, त्रिभावरूपे ! भवतीं नमामः ॥
त्वं सच्चिदानन्दमये स्वकीये, ब्रह्मस्वरूपे निजविज्ञभक्तान् ।
तथेशरूपे च विधाप्य मातरुपासकान् दर्शनमात्मभक्तान् ॥
निष्कामयज्ञावलिनिष्ठसाधकान्, विराट्स्वरूपे च विधाप्य दर्शनम् ।
श्रुतेर्महावाक्यमिदं मनोहरम्, करोष्यहो "तत्त्वमसीति" सार्थकम् ॥

हे देवि ! हे प्रपन्नार्तिहरे ! हे शिवे ! तुम वाणी, मन और बुद्धिके अगोचर हो । इस कारण इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो शब्द द्वारा तुम्हारी स्तुति कर सकता हो । तुम आकार रहित, भावातीत, गुणातीत, अखण्ड, अद्वितीय, विभु और सब इन्द्रियोंके द्वारा अग्राह्य होनेपर भी अपने भक्तोंके कल्याणके अर्थ ही सगुणरूप धारण करके भावगम्य होकर उनको निःश्रेयस प्रदान करती हो । हे त्रिभा-वरूपिणि ! आपको प्रणाम है । तुम अपने ज्ञानी भक्तोंको सच्चिदानन्दमय ब्रह्मरूपमें दर्शन देकर, उपासक भक्तोंको ईश्वरी रूपमें दर्शन देकर और निष्काम यज्ञनिष्ठ भक्तोंको विराट्रूपमें दर्शन देकर "तत्त्वमसि" महावाक्यकी चरितार्थता करती हो ।

शक्तिमान् और शक्तिमें वस्तुतः अभेद है । शक्तिमान् और शक्तिकी पृथक् पृथक् सत्ता जब तक परोक्षानुभूति अथवा अपरोक्षानुभूति द्वारा प्रत्यक्षकी जाती है, तब तक यह मानना ही पड़ेगा कि, शक्तिमान्से शक्तिका प्राधान्य है । एक गायक जिसमें अलौकिक गायन शक्तिका विकाश है, उसकी अपेक्षा उसकी गायन शक्तिका आदर, उपयोग और महत्त्व अधिक पाया जायगा । वह गायक यदि अपनी गानशक्तिका प्रयोग करे, तो उसका दर्शन न करके भी उसकी मधुर शब्दमयी सृष्टिके विलासमें

उनकी उत्पत्तिका विवरण मैं विस्तारपूर्वक कहता हूँ, तुम सुनो ॥ २ ॥ महाभाग वे

जगत् मुग्ध होता है, परन्तु वह जब अपनी शक्तिको अपनेमें अव्यक्त रखता हो, उस समय उसके स्वरूपको देख कर कोई भी मुग्ध नहीं हो सकता है। इसी कारण शक्ति-उपासनाका विस्तार, शक्ति-उपासनाका उपयोग और शक्ति-उपासनाका महत्त्व, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है। वस्तुतः उपासना सगुण ब्रह्मकी होती है, जब तक द्वैत भान है, तभी तक उपासनाका सम्बन्ध रह सकता है और द्वैत भान तभी तक रह सकता है जब तक सगुणत्व है। इसी कारण वेद-सम्मत यावत् शास्त्रोंमें सगुण उपासनाका ही अधिक विस्तार है। सगुण उपासनाके पंच भेदोंमेंसे चित्‌भाव-आश्रयकारी विष्णु-उपासना, सत्‌भाव आश्रयकारी शिव उपासना, भगवत्तेजको आश्रयकारी सूर्य्योपासना, भगवद्भावमयी बुद्धिको आश्रयकारी धीश उपासना, और भगवत् शक्तिको आश्रयकारी शक्ति उपासना है। ब्रह्मानन्द-विलास-रूपी सृष्टिदशामें ब्रह्मपदसे घनिष्ठ सम्बन्ध रखनेवाले चित्, सत्, तेज, बुद्धि, और शक्ति, ये ही पांच हैं। चित्‌सत्ता जगत्‌को दिखाती है, सत्‌सत्ता जगत्‌के अस्तित्वका अनुभव कराती है, तेज जगत्‌को ब्रह्मकी ओर आकर्षण करता है, बुद्धि सत् ब्रह्म और असत् जगत्‌का भेद बताती है और शक्ति सृष्टि, स्थिति, लय करती हुई जीवको बद्ध भी कराती है तथा मुक्त भी कराती है। इसी कारण इन पांचके अवलम्बनसे सगुणपंचोपासनाका विज्ञान निर्णीत हुआ है। उपासक इन्हीं पांचोंके अवलम्बनसे ब्रह्मसान्निध्य प्राप्त करके अन्तमें ब्रह्म सायुज्य प्राप्त कर लेता है। पंच उपासनाओंकी पांच गीताएं इसी कारण जगज्जन्मादिकारण मान कर ब्रह्मरूपसे अपने अपने इष्टको निर्देश करती हैं।

अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमय दृश्य-प्रपंच ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। ब्रह्मशक्ति ही सृष्टि-स्थिति-लय करती है, वही अविद्या बन कर जीवको बन्धन जालमें फंसाती है, और विद्या बनकर उसको ब्रह्म साक्षात्कार कराके मुक्त करती है; दूसरी ओर ब्रह्मशक्ति और ब्रह्ममें 'अहं ममेति' वत् भेद नहीं है। शक्तिमान्‌से शक्ति की विशेषता कैसी है सो गायक और गानशक्तिके उदाहरणसे ऊपर कही ही गयी है। उसी ब्रह्म शक्तिके भेद वेद और शास्त्रोंने चार प्रकारके कहे हैं। ब्रह्ममें सर्वदा लीन रहने वाली तुरीया शक्ति कहाती है, यही ब्रह्मशक्ति स्वस्वरूप-प्रकाशिनी है। ब्रह्मा-विष्णु-महेशकी जननी, निर्गुण ब्रह्मको सगुण दिखानेवाली, ब्रह्म-आलिङ्गित महाशक्ति कारणशक्ति कहाती है। यही शक्ति कभी विद्या बन जाती है, कभी अविद्या बन जाती है, ब्रह्मशक्तिके तमःप्रधान और सत्त्वप्रधान पृथक् पृथक् दो भाव ही इसके कारण हैं। ब्रह्मशक्तिका तीसरा भाव सृष्टि कराने वाली ब्राह्मी शक्ति, स्थिति कराने वाली वैष्णवी शक्ति, और लय करानेवाली शैवी शक्ति समझी जाती है; ये ही तीनों सूक्ष्म शक्ति कहाती हैं। चाहे स्थावर सृष्टि हो, चाहे जंगम सृष्टि हो, चाहे ब्रह्माण्ड सृष्टि हो, चाहे पिण्ड सृष्टि हो, सर्वत्र सृष्टि, स्थिति और लयके क्रम एवं अस्तित्वको रखने वाली ये ही सूक्ष्म ब्रह्मशक्तियां हैं। भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु, और भगवान् शिव जो प्रत्येक ब्रह्माण्डके नायक हैं, वे इन्हींकी सहायतासे अपना अपना कार्य्य सुसम्पन्न करते हैं और उस महाशक्तिकी चतुर्थ अवस्था स्थूलशक्ति कहाती है। स्थूलशक्तिका अनुभव पदार्थ-विद्याके द्वारा भी होता है। स्थूल जगत्‌की अवस्थाओंका परिवर्त्तन, उसका धारण आदि सब कार्य्य इस शक्तिके द्वारा सुसिद्ध होते रहते हैं। ताड़ित शक्ति आदि अनेक इसके भेद हैं। इस कारण भी शक्ति-उपासनाका विस्तार और महत्त्व अधिक है।

समष्टि व्यष्टि रूपी ब्रह्माण्ड-पिण्डात्मक-सृष्टि ब्रह्मशक्तिका ही विलास है। वह चतुर्दश लोकमय है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भूः, भुवः, स्वः आदि सात ऊर्ध्वलोक और अतल, वितल आदि सात अधोलोक

सावर्णि महामायाकी कृपासे जिस प्रकार सूर्य्यसे जन्म लेकर मन्वन्तरके अधिपति होंगे

हैं। सात ऊर्द्ध्वलोकमें देवताओंका वास है और सात अधोलोकोंमें असुरोंका वास है। यह मृत्युलोक ऊर्द्ध्व सप्त लोकोंमेंसे भूलोकका एक चतुर्थांश है। इसमें जीवगण मातृगर्भसे उत्पन्न होते हैं और मृत्युको प्राप्त होते हैं, इस कारण इसका नाम मृत्युलोक है। अन्य सब लोकोंमें मातृगर्भसे जन्म नहीं होता है। यहींके जीव अपने अपने कर्मोंके वश होकर मृत्युके अनन्तर आतिवाहिक देहके द्वारा उन उन लोकोंमें दैवी सहायतासे पहुंचते हैं। पिण्ड तीन श्रेणीका होता है। एक सहजपिण्ड उद्भिज्जादि योनियोंका, मानवपिण्ड मनुष्योंका और दैवपिण्ड देवताओंका कहाता है। मृत्युलोकके अतिरिक्त जितने लोक हैं, वे सब देवलोक कहाते हैं, उनमें देवपिण्डधारी देवताओंका ही वास है। सहजपिण्डधारी अथवा मानवपिण्डधारी जीव देवपिण्डधारी जीवोंको देख नहीं सकते हैं। यदि देवतागण इच्छा करें तभी वे देख सकते हैं। देवलोक हमारे पार्थिव लोकसे अतीत और सूक्ष्म हैं। सुर जिस प्रकार देवपिण्डधारी हैं, उसी प्रकार असुर भी देवपिण्डधारी हैं। भेद इतनाही है कि, देवताओंमें आत्मोन्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। असुरोंमें इन्द्रियोन्मुख वृत्तिकी प्रधानता है। यही कारण है कि, सूक्ष्म-देवलोकमें देवासुरसंग्राम प्रायः हुआ करता है। परन्तु देवतागण उन्नत अधिकारी होनेसे वे कदापि असुरराज्यको छीननेकी इच्छा नहीं करते, अपनेही अधिकारके लोकमें तृप्त रहते हैं। असुरगण विषयलोलुप होनेके कारण उनकी प्रवृत्ति सदा दैवराज्य छीननेकी ओर बनी रहती है। यही देवासुर-संग्रामका मूल कारण है। मृत्युलोकमें भी मानवपिण्ड देवासुर-संग्रामके लिये दुर्गरूप हैं। उनको असुरगण और देवतागण अपने अपने ढंग पर अपने अपने अधिकारमें लानेका प्रयत्न करते रहते हैं। यही मनुष्यपिण्डमें पाप-पुण्यसे सम्बन्ध युक्त कुमति और सुमतिका युद्ध है। देवासुर-संग्राममें जब जब असुरोंकी जय होने लगती है, तब ब्रह्मशक्ति महामायाकी कृपासेही पुनः असुरोंका पराभव होकर सूक्ष्म दैवराज्यमें शान्ति स्थापित होती है। उसका उदाहरण पिण्डमें भी देखने योग्य है। पापमति मनुष्य जब पापपंकमें फंस जाता है, तब पुनः उसका उस दलदलसे निकलना कठिन होता है। ऐसे समयमें गुरुबल अथवा दैवबल ये ही उसके सहायक होते हैं; ये सब उस अखिललोकजननी महाशक्तिकी कृपाका ही रूपान्तर है।

जगत्कारण परमात्मा ब्रह्म जिस प्रकार सत्, चित्, और आनन्दरूपसे त्रिभाव द्वारा जाने जाते हैं, पुनः पराभक्तिके अधिकारी भावुक भक्तगण जिस प्रकार उनके इन तीनों भावोंके अनुसार ब्रह्म, ईश्वर और विराट् रूपसे अपने हृदय-मन्दिरमें पृथक् पृथक् भावसे उनके दर्शन करके आनन्द सागरमें अवगाहन करते हैं, वैसेही संसारकी सब वस्तुएं भी त्रिभावात्मक हैं। कारण ब्रह्ममें जिस प्रकार तीन भाव हैं, उसी प्रकार कार्य्य ब्रह्म भी त्रिभावात्मक हैं। इसी कारण वेद और वेदसम्मत-शास्त्र भी त्रिविध अर्थमय हुआ करते हैं। उसी सर्वतन्त्रसिद्धान्त स्वरूप प्राकृतिक नियमके अनुसार देवासुर-संग्रामके भी तीन स्वरूप हैं। देवासुर-संग्रामका अध्यात्म स्वरूप प्रत्येक पिण्डमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तिके नित्य युद्ध द्वारा प्रकट होता है। उस युद्धका अधिदैव स्वरूप सूक्ष्म दैवराज्यमें देवराज और असुरराजकी सेनाओंके द्वारा प्रकट होता है और उसका अधिभूतरूप इस मृत्युलोकमें नाना सामाजिक और राजनैतिक युद्धके द्वारा प्रकट होता रहता है।

सप्तशती-गीताका प्रसंग पूर्वकथित दार्शनिक रहस्योंसे भरा हुआ है। जिसको दार्शनिक बुद्धि सम्पन्न भक्तगण समझकर आनन्दसे गद्गद् होते हैं। अन्य जितनी गीताएं, जो प्रचलित हैं, वे सब प्रायः ज्ञान-प्रधान हैं, और वे सब ज्ञानकाण्डके विस्तारमें तत्पर हैं। सप्तशती गीताका विशेषत्व यह है कि, वह

सो भी कहता हूं सुनो ॥ ३ ॥ पुरा कालमें स्वारोचिष मन्वन्तरमें चैत्रवंश सम्भूत सुरथ

प्रथमतः उपासना की परम सहायक और कलियुगमें कर्मकाण्डकी प्रधान अङ्गीभूत है। द्वितीयतः सप्तशती गीता कलियुगमें जीवोंके सब मनोरथ पूर्ण करनेमें कल्पतरुरूप है। जो शब्द अथवा शब्दसमूह दैवराज्यसे सम्बन्ध रखते हैं, और जिनका प्रभाव दैवराज्य पर पड़ता है, वे मन्त्र कहाते हैं, सप्तशतीगीता कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशालिनी है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष फल देनेवाली सप्तशतीगीता का तीसरा महत्त्व अतिविलक्षण ही है। यह पहले ही कहागया है कि शक्ति और शक्तिमान् का 'अहं ममेति, वत् अभेदत्व है। उदाहरणसे यह भी दिखाया गया है कि, सृष्टिमें शक्तिमान्‌से शक्तिका ही आदर और विशेषता होती है। उपासनामें इन्हीं दोनोंके विचारसे भगवत् सान्निध्य प्राप्त करने की शैली बान्धी गई है। किसी किसी उपासना प्रणालीमें शक्तिमान्‌को प्रधान रखकर उसकी शक्तिके अवलम्बनसे उपासना की साधन प्रणाली निर्णीत हुई है। कहीं कहीं शक्तिको प्रधान मानकर शक्तिमान्‌का अनुमान करते हुए उपासना प्रणाली बनाई गई है। पहली दशाके उदाहरणमें, वेद और शास्त्रोक्त निर्गुण तथा सगुण उपासनाके प्रायः सब भेद पाये जाते हैं। दूसरी दशा जो अपेक्षाकृत आत्मज्ञान-रहित है, उसमें केवल अनुमान बुद्धि द्वारा एक ईश्वर हैं, ऐसा जानकर उनके नाना गुणों का स्मरण करके विभिन्न धर्म-मतों और पन्थोंके उपासक उस सर्वहितकारी भगवान् की ओर अग्रसर होकर कृत-कृत्य होते हैं। पहली अवस्थामें आत्मज्ञान रहनेसे भगवत् स्वरूपका विकाश भागवतके मनोमन्दिरमें यथावत् बना रहता है और दूसरी दशामें आत्मज्ञानका विकाश न रहनेसे भक्त केवल भगवान्‌की मनोमुग्धकारिणी शक्तियोंके अवलम्बनसे मन—बुद्धिसे अगोचर परमात्माको मनोमन्दिरमें बैठानेका प्रयत्न करता है। श्रीभगवान्‌को मातृ-भावसे उपासना करनेकी अनन्त वैचित्र्यपूर्ण जो शक्ति-उपासनाकी प्रणाली है, वह पूर्वोक्त उन दोनोंसे विलक्षण ही है। इस उपासना-विज्ञानमें शक्ति और शक्तिमान्‌का अभेद-लक्ष्य सदा रक्खा गया है। वे ही शक्तिरूपमें उपास्य-उपासकका सम्बन्ध स्थापन करते हैं और वे ही शक्तिमान्‌रूपसे शक्तिभावापन्न भक्तको अपनेमें मिलाकर मुक्त कर देते हैं, यही इस तृतीय तथा अनुपम शैलीका मधुर और गम्भीर रहस्य है।

सप्तशती गीता शक्ति उपासनामार्गका परम सहायक और उसका प्रधान प्रवर्त्तक उपनिषद् ग्रन्थ है। इस औपनिषदिक गाथाका प्रसंग नाना प्रकारसे वेद और वेदसम्मतशास्त्रोंमें पाया जाता है। सप्तशती गीताका प्रसंग पुराणोंमें इस प्रकार पाया जाता है—प्राचीन कालमें भगवान् व्यासके शिष्य महर्षि जैमिनी सांग वेद और नाना शास्त्रोंके पारदर्शी होने पर भी श्रीमहाभारतके बहुत कठिन स्थलोंको समझ नहीं सके थे उस समय उनके गुरुमहाराजको अवकाश न रहनेसे उन्होंने परम विज्ञमहर्षि मार्कण्डेयके निकट जाकर बहुतसे रहस्योंकी जिज्ञासा कीथी। तब महर्षि मार्कण्डेयने आज्ञाकी थी कि, मुझे सन्ध्यावन्दनादिके लिये जाना है, अवकाश नहीं है, आप पितृशापग्रस्त पक्षीरूपधारी पिङ्गाक्ष, विराध, सुपुत्र और सुमुख नामक सर्वशास्त्र विशारद चार मुनिपुत्र हैं, उनके पास जाकर इन सब प्रश्नोंकी जिज्ञासा करो। तुरन्त ही आपके सब सन्देह दूर हो जाएंगे। महर्षि जैमिनीने इस प्रकारसे गुरुकृपा लाभ करके उन पक्षीशरीरधारी महात्माओंके निकट जाकर जिज्ञासा की थी। तब मार्कण्डेय, क्रोष्टुकी सम्बादके उपक्रम द्वारा उन्होंने नाना प्रकारकी शंकाओंका समाधान करके महर्षि जैमिनीको तृप्त किया था। क्रमशः चतुर्दश मन्वन्तरके प्रसंगमें उन्होंने कहाथा कि, राजा सुरथही ब्रह्ममयी भगवतीकी कृपासे अष्टम-मन्वन्तराधिपति सावर्णि नामक मनु होंगे। भविष्यत्के सावर्णि नामक मनु जब साधारण राजा थे, तब किस प्रकारसे उन्होंने जगदम्बा ब्रह्ममयीकी कृपा प्राप्त

नामक व्यक्ति सारे भूमण्डलके राजा हुए थे ॥ ४ ॥ वे अपने औरस पुत्रके समान प्रजा-

की थी, जगत् कल्याण वासनासे आत्मज्ञानी महर्षि मार्कण्डेयने पहले ही क्रोष्टुकीको उस प्रसंगका उपदेश किया था और उस समय अवकाशका अभाव होनेसे उन्होंने पक्षी-शरीरधारी मुनियोंके निकट महर्षि जैमिनीको भेजा था। वही सम्वाद 'मार्कण्डेय उवाच' वचन द्वारा प्रारम्भ किया गया है, जो त्रिलोक पवित्रकर, त्रिलोक रक्षक, सर्वकामप्रद और सर्वजीवहितकारी है।

टीका—पुराण शास्त्र वेदके भाष्य रूप हैं। जिस प्रकार वेद त्रिकालदर्शी हैं, उसी प्रकार पुराण शास्त्र भी त्रिकालके विषयोंको प्रकट करते हैं। इस कारण यह गाथा पुराणोंमें प्रकट हुई है। कालके विषयमें शक्तिरहस्यादिमें लिखा है कि:—

चतुर्युगसहस्राणि, ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
पितामहसहस्राणि, विष्णोरेका घटी मता ॥ १ ॥
विष्णोर्द्वादशलक्षाणि, निमेषार्द्धं महेशितुः ।
दशकोट्यो महेशानां श्रीमातुस्त्रुटिरूपकाः ॥ २ ॥

१०० त्रुटिका एक पर, ३० परका एक निमेष, १८ निमेष की एक काष्ठा, २० काष्ठाकी एक कला, ३० कलाकी एक घटिका, दो घटिका का एक क्षण, ३० क्षणका एक अहोरात्र अर्थात् पूरा दिन होता है। हजार चौकड़ी युगका ब्रह्माका दिन और उतनीहीकी रात्रि होती है। ब्रह्माके एक हजार अहोरात्र की विष्णुकी एक घड़ी होती है। विष्णुकी बारहलाख घड़ियोंका महेशका निमेषार्द्ध होता है। महेशके दस करोड़ निमेषार्द्धोंकी श्रीमाताकी एक त्रुटि होती है। अनादि अनन्त महाकाल नाना प्रकारसे विभक्त किये जाते हैं, यथा—मन्वन्तरसे भगवान् ब्रह्माजीके दिन और आयुका काल अधिक है, उसी प्रकार भगवान् ब्रह्माकी आयुसे भगवान् विष्णुका दिन और आयुका परिमाण बहुत अधिक है। उसी प्रकार भगवान् विष्णुसे भगवान् शिवका दिवस और आयु और भी अधिक है। क्योंकि, वे ब्रह्माण्डके प्रलय करने वाले हैं. उनके आयुके साथही ब्रह्माण्डकी आयु समझी जाती है। चौदह मन्वन्तरमें भगवान् ब्रह्माका एक दिन होता है। भगवान् मनु कालके नियन्तृ-देवता हैं। जिस प्रकार वसु, रुद्र, आदित्य, इन्द्र आदि सूक्ष्म दैवराज्यके पद हैं, वैसेही मनु भी स्थायी पद है। केवल पदधारी बदला करते हैं। आठवें मन्वन्तरमें मनु पद पर नवीन अभिषिक्त होने वाले देवताके पूर्व जन्मका वर्णन इसमें किया गया है। चतुर्दश मनुके नाम यथा,—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष, वैवस्वत, सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि। काल धर्मके पालन करानेमें मनु सदा तत्पर रहते हैं। मनुका अधिकार बहुत बड़ा है ॥ २ ॥

टीका—वेद और पुराणोंमें तीन प्रकारकी वर्णन शैलियां प्रचलित हैं। उन वर्णन शैलियोंके नाम यथा—समाधि भाषा, लौकिकी भाषा और परकीया भाषा। इन तीनोंके विना समझे पुराणशास्त्रका रहस्य समझना असम्भव है। समाधिसे जाननेवाले विषय समाधि-भाषामें कहे जाते हैं। यथा आत्माका स्वरूप, प्रकृतिका स्वरूप, कर्मका स्वरूप, धर्माधर्मनिर्णय इत्यादि। समाधिगम्य अध्यात्म तथा अधिदैव-रहस्योंको जब लौकिक रीतिसे रूपक द्वारा वर्णन करके श्रोताकी बुद्धि सत्यमें प्रतिष्ठितकी जाती है, उसको लौकिकी भाषा कहते हैं। यथा जगदम्बाका जन्म, कर्म, विवाह, विलास आदिका बर्ताव, जो वस्तुतः समाधिगम्य और अलौकिक विषय है, परन्तु मध्यम अधिकारियोंके लिये लौकिकरीतिसे वर्णन किया गया है। तीसरी परकीया भाषा वह कहाती है, जो समाधि-भाषा और लौकिक-भाषाके

ओंका पालन करते थे, इसी समय कोलाविध्वंसी (अनार्य्यजाति विशेष) भूपतिगण उनके शत्रु हो गये ॥ ५ ॥ तब उन राजाओंके साथ अतिप्रबल दण्डधारी सुरथका युद्ध प्रारम्भ हुआ। उस समय कोलाविध्वंसी राजा गण सुरथकी अपेक्षा हीन बल होनेपर भी युद्धमें (दैववशात्) राजा सुरथ ही पराजित हुये ॥ ६ ॥ अनन्तर सुरथ अपनी पुरीमें आकर केवल अपने देशके अधिपति हुए। तभी प्रबल शत्रुओंने आकर महाभाग सुरथ पर आक्रमण किया ॥ ७ ॥ तब वे नितान्त दुर्बल हो गये; इस कारण दुष्ट दुरात्मा मन्त्रियोंने भी (शत्रुओंके साथ मिलकर) राजधानीका कोष और सैन्य-सामन्तादि छीन लिया ॥ ८ ॥ तदनन्तर राजा सुरथ हृताधिपत्य होकर मृगयाके व्याजसे एक घोड़े पर सवार होकर एकाकी अति दुर्गम वनको चले गये ॥ ९ ॥ उन्होंने उस वनमें द्विज मेधस मुनिका आश्रम देखा। वह आश्रम प्रशान्त, वैर भाव रहित पशुओंके द्वारा समाकीर्ण एवं मुनि शिष्योंके द्वारा सुशोभित था ॥ १० ॥ उस मुनिने सुरथका आतिथ्य सत्कार किया और सुरथ इसी प्रकार इधर उधर विचरण करते हुए उसी आश्रममें रहने लगे ॥ ११ ॥ तब वे ममतासे आकृष्टचित्त होकर इस प्रकार चिन्ता करने लगे ॥ १२ ॥ जिस पुरीकी रक्षा हमारे पूर्व पुरुषोंने की थी, मेरे द्वारा त्यक्त उसको क्या हमारे असाधु सेवकगण धर्मानुसार पालन कर रहे हैं? ॥ १३ ॥ हमारा सदा मदस्रावी शूर नामक प्रधान हस्ती शत्रुके वशमें जाकर किन किन भोगोंको प्राप्त करता है, सो भी मैं नहीं जान

विषयोंको दृढ़ करानेके अर्थ युग युगान्तर और कल्प कल्पान्तरकी घटनावलियोंको गाथारूपसे प्रकाशितकी जाय। यह वर्णन वस्तुतः परकीयाभाषाका है, कोई लौकिक इतिहास नहीं है। वेदोंको समझनेवाले त्रिकालदर्शी महर्षिगणने अपनी योगयुक्त बुद्धिसे जैसे समाधि भाषाको प्रकाशित किया है वैसे लौकिक भाषाको किया है और वैसे ही परकीया भाषाको पुराणोंमें प्रकाशित किया है। ये गाथाएं लौकिक कहानी अथवा लौकिक इतिहास नहीं हैं, ये सब समाधिगम्य कर्मरहस्य हैं ॥ ३ ॥

टीका—तपोवनके ये ही दोनों प्रधान लक्षण हैं कि, जहां वैरभावरहित पशुओंका वास हो और मुनियोंका निवास हो। योगशास्त्रका यह सिद्धान्त है कि, जहां वैरभावसे रहित चित्तवाले अहिंसाभावसम्पन्न महात्मा रहते हैं, वहांके हिंसाकारी पशु भी हिंसा छोड़ देते हैं, और भयरहित हो जाते हैं। दूसरी ओर मुनि वे ही कहाते हैं, जिनका मन भगवान्‌में लीन रहता है। जहां ऐसे महात्माओंका वास हो और हिंस्र-पशु हिंसारहित होजायं, वही तपोवन कहलाता है। साधकको सदा यह स्मरण रखना उचित है ॥ १० ॥

टीका—मनुष्यके अभ्युदय और निःश्रेयस करानेवाले धर्म-कर्ममात्रको यज्ञ कहते हैं। और समस्त जगत्‌के कल्याण करनेवाले धर्मको महायज्ञ कहते हैं। गृहस्थके लिये पाँच महायज्ञ प्रधान हैं, यथा,—नित्य ऋषियोंके सम्वर्द्धनके लिये ब्रह्मयज्ञ, देवताओंके सम्वर्द्धनके लिये देवयज्ञ, नित्य-नैमित्तिक पितरोंके सम्वर्द्धनके लिये पितृयज्ञ, जीवमात्रकी तृप्तिके लिये भूतयज्ञ और मनुष्यमात्रकी तृप्तिके लिये नृयज्ञ है। अतिथि सत्कारके द्वारा नृयज्ञका साधन होता है, इसी कारण इसकी इतनी महिमा है। घर पर आये हुए मनुष्यमात्रका अतिश्रद्धापूर्वक सत्कार करनाही नृयज्ञ है ॥ ११ ॥

सकता हूं ॥ १४ ॥ जो सेवकगण हमारी प्रसन्नता और मेरे द्वारा दिए हुए धन भोजनादि से संतुष्ट हमारे अनुगत थे वे आज अवश्य ही अन्य राजाओंकी सेवा कर रहे हैं ॥ १५ ॥ हमारे मन्त्री आदि अतिअपरिमित व्यय करनेवाले हैं। इस कारण नियमित व्यय करके अतिदुःखसे सञ्चय किये हुए हमारे धनागारको नष्ट कर डालेंगे ॥ १६ ॥ राजा सुरथ इस प्रकार नाना प्रकारसे चिन्ता कर रहे थे; ऐसे समयमें उस मेधस मुनिके आश्रमके निकट एक वैश्यजातीय व्यक्तिको देखा ॥ १७ ॥ तब राजा सुरथने उस वैश्यसे पूछा, (महाशय !) आप कौन हैं ? किसलिये यहां आये हैं ? आप चिन्तित एवं शोकाकुल क्यों दिखाई देते हैं ? ॥ १८ ॥ वे वैश्य राजाके उस प्रेमपूर्ण वचनको सुनकर विनयावनत हो उत्तर देने लगे ॥ १९ ॥ वैश्यने कहा, मैं समाधि नामक वैश्य हूं। धनवान् कुलमें मेरा जन्म हुआ था, किन्तु असाधुवृत्तिसम्पन्न पुत्रकलत्रादिकोंने धन लोभसे लुब्ध होकर मुझको निकाल दिया है ॥ २० ॥ २१ ॥ पुत्रकलत्रादिकोंने मेरा धन छीन लिया; मैं पुत्र कलत्रविहीन एवं सुहृद् मित्रोंसे परित्यक्त होकर धनके लिये अतिदुःखी होकर वनमें चला आया हूं ॥ २२ ॥ अब मैं यहां रहकर पुत्र-कलत्र एवं बान्धवोंका कुशलाकुशल समाचार कुछ नहीं जान सकता हूं ॥ २३ ॥ हमारे पुत्रादि इस समय सब सकुशल हैं, अथवा अकुशल हैं, वे सद्वृत्तिपरायण बन गये हैं अथवा दुर्वृत्तिपरायण वन गये सो भी नहीं जान सकता हूं ॥ २४ ॥ राजाने कहा, आप जिन धनलुब्ध पुत्रभार्य्यादिके द्वारा निकाल दिये गये हैं, उन्हीं लोगोंके प्रति आपका मन पुनः स्नेहयुक्त क्यों है ? ॥२५॥२६॥ वैश्य बोले,—आपने जो मेरे सम्बन्धमें कहा है, वह बिलकुल सत्य है, किन्तु मैं क्या करूं। मेरा चित्त किसी प्रकार भी निष्ठुर नहीं होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥ जिन्होंके धनके लोभसे पितृस्नेह एवं पतिस्वजनप्रेमको परित्याग करके मुझको निकाल दिया है, उन्हीं लोगोंके लिये हमारा अन्तःकरण प्रेमप्रवण हो रहा है ॥ २९ ॥ हे महामते राजन् ! आपने जो कहा, वह मैंने समझ लिया है, तथापि न जाने क्यों हमारा चित्त उन गुणरहित बन्धु-बान्धवोंके प्रति प्रेमासक्त हो रहा है, इसका कारण समझमें नहीं आता है ॥ ३० ॥ उन्हीं लोगोंके लिये निःश्वास निर्गत होता है, एवं दौर्मनस्य उत्पन्न होता है; उन प्रेमरहित बान्धवोंके प्रति हमारा चित्त किसी प्रकार ममताहीन नहीं होता है, अतएव मैं क्या करूं ? ॥ ३१ ॥ मार्कण्डेय बोले,—हे विप्र ! इसी प्रकार कथनोपकथनके अनन्तर समाधिनामक वैश्य और वे नरपतिश्रेष्ठ सुरथ मिलकर मेधस् मुनिके निकट गये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥ वे दोनों ही यथा नियम यथायोग्य मुनिके साथ सम्भाषण करके बैठनेके अनन्तर नाना प्रकारके प्रश्न करने लगे ॥ ३४ ॥ राजा बोले,—भगवन् ! आपसे मैं एक बात पूछना चाहता हूं जो मेरे चित्तके वशमें न होनेसे मनके दुःखकी कारण हो

रही है, यह क्या है ? सो आप बतलाइए ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मूर्ख लोग जैसे विषयासक्त होकर मुग्ध होते हैं, मैं ज्ञानवान् होकर भी उसी प्रकार राज्य एवं सब राज्याङ्गोंमें ममत्वाकृष्ट हो रहा हूं, इसका क्या कारण है ? ॥ ३७ ॥ फिर देखिये, मेरे समान यह वैश्य भी पुत्रके द्वारा निकाल दिये जाने पर एवं सेवकों और स्वजनोंके द्वारा परित्यक्त किये जानेपर भी उन्हीं लोगोंके लिये अत्यन्त प्रेमासक्त हो रहा है ॥ ३८ ॥ इसी प्रकार यह वैश्य और मैं विषयका दोष देख कर भी ममत्व द्वारा आकृष्टचेता हो अत्यन्त दुःखित हो रहे हैं । हे महाभाग ! जो अज्ञानी हैं, उनका मुग्ध होना सम्भव है, हम लोग ज्ञानी होकर भी मोहित हो रहे हैं इसका कारण क्या है सो आप बतलाइये ॥ ३९ ॥ ४० ॥ ऋषि बोले,—सब प्राणिमात्रको ही विषय सम्बन्धका ज्ञान है । हे महाभाग ! विषय भी पृथक् पृथक् होते हैं । देखो, कितने ही प्राणी (उलूकादि) दिनको देख नहीं सकते, कितने हीं प्राणी (काकादि) रात्रिमें अन्धे हो जाते हैं, कुछ प्राणी (किञ्चुलुकादि) दिन और रातमें भी अन्धे होते हैं और कितने प्राणी (मार्जार-बिल्ली आदि) दिनमें और रात्रिमें तुल्य दृष्टिसम्पन्न होते हैं, यानी समानरूपसे देख सकते हैं ॥ ४१-४२ ॥ तुम जो अपनेको ज्ञानी समझते हो, उस प्रकार ज्ञानी अर्थात् विषय राज्यके ज्ञानसम्पन्न मनुष्यमात्र ही होते हैं, यह बात सत्य है । केवल मनुष्य ही क्यों, पशु, पक्षी, मृगादि भी विषयोंके ज्ञान प्राप्त करते हैं, अतएव उनको भी ज्ञानी कहा जा सकता है ॥ ४३ ॥ इसी प्रकार मनुष्यों-को जिस तरहका ज्ञान है, मृग पक्षियोंको भी वही ज्ञान है, पुनः मृग-पक्षियोंको जो ज्ञान है, मनुष्योंको भी वह ज्ञान है और आहार-विहारादि बाह्य विषयोंमें मनुष्य और पशुपक्षी आदि सभीको एक ही प्रकारका ज्ञान है । तौ भी यह देखो, ज्ञान रहते हुए भी पक्षीगण स्वयं क्षुधातुर होकर भी मोहवशात् बड़े प्रेमसे तण्डुलादिके कण सब अपने बच्चोंके चञ्चुमें दे देते हैं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ हे मनुष्य श्रेष्ठ ! क्या तुम देख नहीं रहे हो कि, मनुष्य-गण अन्तिम कालमें प्रत्युपकारके लोभसे पुत्रादिकोंके प्रति सर्वदा स्नेहयुक्त हुआ करते हैं ॥ ४७ ॥ किन्तु जगत्की स्थिति करनेवाले परमेश्वरकी मायाके प्रभावसे ही प्राणिगण

टीका—वर्णधर्म प्रवृत्तिरोधक है और आश्रमधर्म निवृत्ति पोषक है । चार वर्णोंमेंसे ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य ये ही द्विज कहाते हैं । और इनका वेद और वैदिक-कर्ममें अधिकार भी है । ब्राह्मण; क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीन व्यक्तिको इस प्रकारसे कर्मविपाक द्वारा एक ही देश कालमें लाकर कर्मनियन्त्री श्रीजगदम्बाने तीनोंका अधिकार तथा क्षत्रिय और वैश्यमें किस प्रकार भय और मोह आदि उत्पन्न हो सकता है, इत्यादि दिखाकर अधिकार निर्णयार्थ यह समाधिगम्य प्रसंग दिखाया है ॥ ३४ ॥

टीका—अहंकारजनित ज्ञानाभिमान जो आसुरी वृत्ति है, उसमें और यथार्थ तत्त्वज्ञानमें कितना भेद है, सो ही मुनिने अपने उपदेश द्वारा दिखाया है ॥ ४४ ॥

ममताके आवर्त्तमें फंस कर मोहके गड्ढेमें गिरते हैं ॥ ४८ ॥ उसी महामायासे यह जगत् मोहित हो रहा है, इस विषयमें विस्मय मत करो,—क्योंकि औरोंकी तो बात ही क्या है, जो जगत्पति भगवान् हैं, वे भी इस महामायाके वशमें हुए थे। वे सब इन्द्रियोंकी नियन्त्री हैं, इनका ऐश्वर्य्य अचिन्त्य है। वे ज्ञानियोंके भी चित्तको बलात् आकृष्ट करके मोहित कर देती हैं ॥ ४९—५० ॥ इन्हींके द्वारा सब चराचर (स्थावर एवं अस्थावर) जगत्की उत्पत्ति होती है, वे ही प्रसन्न होकर जीवोंको मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ५१ ॥ वे ही महामाया जीवोंके बन्धनका हेतु हैं, मुक्तिका भी कारण हैं। वे ही स्वरूपप्रकाशिनी परमा विद्या हैं, वे ब्रह्मादिकोंकी भी ईश्वरी हैं ॥५२॥ राजा बोले,—भगवन्! आप जिनको महामाया कह रहे हैं, वे देवी कौन हैं? उनकी उत्पत्ति कैसे हुई? उनका कार्य्य क्या है? हे ज्ञानिश्रेष्ठ! उन देवीका स्वभाव कैसा है, अथवा नित्या या अनित्या हैं, ये सब आपसे मैं सुनना चाहता हूं ॥ ५३—५४—५५ ॥ ऋषि कहने लगे,—वे नित्या हैं, जगत्रूपिणी हैं इन्हींके द्वारा सब परिव्याप्त है; यद्यपि उनकी उत्पत्ति हम लोगोंकी तरह नहीं होती है तथापि उनकी उत्पत्ति बहु प्रकारसे होती है सो तुम हमारे निकट श्रवण करो ॥ ५६—५७ ॥ देवताओंको कार्य्य सिद्धिके लिये वे जब आविर्भूत होती हैं, तभी लोग नित्या होने पर भी उनको "उत्पन्ना" कहते हैं ॥ ५८ ॥ (अबतक महामायाके स्वरूपके सम्बन्धमें कहा, अब उनके आविर्भावके सम्बन्धमें पूर्वकालीन इतिहासका वर्णन करता हूं सुनो) भगवान् प्रभु विष्णु जगत् अर्थात् सृष्टिकी एकार्णव अवस्थामें अनन्तशय्याका आश्रय करके

टीका—त्रिगुणमयी ब्रह्मशक्ति अपने तमोगुणके प्रभावसे अविद्यारूप धारण करके जीवको बन्धनदशामें पहुंचाती है। वे ही सत्त्वगुणमयी होकर विद्यारूप धारण करती हुई जीवको मुक्तिपदमें पहुंचा देती हैं। वे ही कारणशक्तिरूपिणी होकर ब्रह्मा-विष्णु-महेशरूपी त्रिदेवको प्रत्येक ब्रह्माण्डके सृष्टि-स्थिति-लयके लिये प्रसव करती हैं ॥ ५२ ॥

टीका—ब्रह्मरूपिणी ब्रह्मशक्ति क्या है, कैसे वे स्थूल, सूक्ष्म, कारण और तुरीय रूपको प्राप्त करती हैं, उन रूपोंका विज्ञान क्या है, सो पहले ही भलीभांति कहा गया है। वे सब उनके नित्य-लीलामय-भाव हैं। उनका नैमित्तिकरूप समय समय पर जगत् और भक्तके कल्याणार्थ सूक्ष्म जगत् और स्थूल-जगत्में किसी निमित्तके अवलम्बनसे प्रकट होता है। इसी सप्तशती गीतामें दोनोंका उदाहरण मिलेगा। भक्तोंके लिये आविर्भाव, यथा—राजा सुरथ और वैश्य समाधिके लिये हुआ था, एवं जगत्के लिये आविर्भाव यथाः—तीन प्रधान चरित्र जिससे यह सप्तशती गीता पूर्ण है। अर्थात् देवलोकमें ये ही तीनों रूप प्रथम मधुकैटभ वधके समय, दूसरा महिषासुर वधके समय और तीसरा शुम्भ निशुम्भके वधके समय प्रकट हुआ था। वह भरूपिणी, वाक्-मनोबुद्धिसे अगोचरा सर्वव्यापक ब्रह्मशक्ति भक्तोंके कल्याणके निमित्त अथवा समष्टिरूपसे जगत् कल्याणके निमित्त अलौकिक दिव्य रूपमें प्रकट हुआ करती हैं। सर्वश-क्तिमयीके लिये असम्भव कुछ भी नहीं है ॥ ५७ ॥

योगनिद्रामें निद्रित थे; उस समय मधु एवं कैटभ नामसे प्रसिद्ध भयानक दो असुर विष्णुके कर्णमलसे उत्पन्न होकर ब्रह्माको मारनेके लिये उद्यत हुए थे; तब भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें अवस्थित प्रजापति ब्रह्मा भयानक दोनों असुरोंको देखकर एवं विष्णुको सोते हुए देखकर एकाग्रचित्त हो भगवान्‌को जगानेके लिये हरिनेत्रको आश्रय करने वाली, जगत्कर्त्री, स्थिति-संहारकारिणी, चैतन्यरूपी विष्णुकी निद्रारूपा भगवती, योग निद्राकी स्तुति करने लगे ॥ ५९—६४ ॥ ब्रह्मा बोले,—तुम देवहविर्दानमन्त्ररूपा स्वाहा हो,

---

टीका —सृष्टिके चार भेद हैं, यथा—पहली अद्वितीय निर्गुण ब्रह्मावस्थासे जब सगुण भावकी उत्पत्ति होकर सगुण ब्रह्मसे ब्रह्माण्डगोलककी उत्पत्ति होती है, वह हिरण्यगर्भकी सृष्टि कहाती है। दूसरी जब पिण्डसृष्टि प्रारम्भ होती है, जिसके कारण भगवान् ब्रह्मा हैं, वह ब्राह्मीसृष्टि कहाती है। तीसरी दश प्रजापतिके संकल्पसे जो विचित्र सृष्टि होती है, उसको मानससृष्टि कहते हैं। और हर समय स्त्री पुरुषके सम्बन्धसे जो सृष्टि होती है, वह मैथुनी सृष्टि कहाती है यह चौथी है। प्रकृत विषय ब्राह्मीसृष्टिके समयका है। एक ब्रह्माण्डको उत्पन्न करने वाले जो समष्टि संस्कारपुञ्ज हैं, वही जगत्‌की एकार्णव अवस्था है। शास्त्रोंमें कहीं कहीं इसीको कारण-वारि भी कहा है। अनन्तशय्या अनन्त महाकाशबोधक है। आकाश-तत्त्वसे परे ही ज्ञानस्वरूप आत्माका अनुभव होता है। वही "तद् विष्णोः परमं पदम्" श्रुति प्रतिपाद्यभाव है। उस अवस्थाका बोधक जो सत्त्वगुण है, उसका अधिष्ठाता देव भगवान् विष्णु हैं। यही श्रीविष्णु भगवान्‌का आध्यात्मिक और आधिदैविक रूपका विज्ञान है। समाधिगम्य सब विषय त्रिभावात्मक होते हैं; इसी कारण वेद और वेद-सम्मत शास्त्रोंके सब वर्णनके तीन तरहके अर्थ हुआ करते हैं। उसी नियमके अनुसार वेदके सब मन्त्र और भगवद्गीता तथा सप्तशतीगीता आदि शास्त्र अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनों भावोंसे पूर्ण हैं। श्रीभगवान् विष्णुका अध्यात्मरूप व्यापक आकाशसे परे चिन्मय स्वरूप है। जैसा कि ऊपर कहा गया है। यावत् सत्त्वगुण व्यापी अधिष्ठाता देवभाव ही उनका अधिदैव-स्वरूप है और शास्त्रोक्त जो ध्यानमय रूप है अर्थात् जिस रूपमें वे भक्तको दर्शन दिया करते हैं वह उनका अधिभूत रूप है। कोई कोई अध्यात्म रूपका ही वर्णन करते हैं, इसका यह तात्पर्य नहीं है कि उनका अन्य दोनों रूप नहीं है। वस्तुतः तीनों रूपही सत्यमूलक हैं। ब्राह्मी सृष्टि प्रारम्भ होते समय रजोगुणका प्राधान्य होनेके कारण ब्रह्माजी ही जाग्रत रहते हैं, क्योंकि वे रजोगुणके अधिष्ठाता देव हैं। उस समय कभी कभी भगवान् विष्णुका योगनिद्रामें निद्रित होना भी सम्भव है, क्योंकि रजोगुणके प्राधान्यमें सत्त्व-गुण गौण रहता है। भगवान् ब्रह्माका अध्यात्म रूप चिदाकाशावच्छिन्न एक ब्रह्माण्डका समष्टि अन्तःकरण है। इस कारण समष्टि अन्तःकरण चतुष्टय (मन आदि) बोधक उनके चार मुखका वर्णन पुराणोंमें पाया जाता है। यावत् रजोगुणका अभिमानी देवता ही उनका अधिदैव स्वरूप है। सनातनधर्मके दार्शनिक सिद्धान्तके अनुसार समष्टि कर्म विभाग बिना दैवी सहायताके संचालित नहीं हो सकता है। इसी विज्ञानके अनुसार यावत् स्थावर नदी, पर्वतादि और जंगम उद्भिज्जादि सहज जीव पिण्डोंके चालक स्वतन्त्र स्वतन्त्र देवता माने गये हैं। इसी कारण शास्त्रोंमें तीनसे तैतीसकोटि देवताओंका वर्णन पाया जाता है। श्रीभगवान् ब्रह्माका अधिभूतरूप वही है, जिस रूपमें वे भक्तोंको दर्शन देते हैं और ब्रह्म-लोकमें प्रतिष्ठित हैं। जगत्‌की सृष्टिका कार्य्य अवश्य ही समाधियुक्त होकर भगवान् ब्रह्मा करते हैं। उस समाधियुक्त भावके दो शत्रु हैं। पहली, सृष्टिकी प्रथम अवस्थामें एकमात्र नादमें आनन्द मोहित

तुम पितृहविर्दानकी मन्त्ररूपा स्वधा हो, तुम वषट्कार-यज्ञ एवं उदात्त अनुदात्त आदि स्वरूपा हो। हे नित्ये! तुम वर्णमालाओंमें मात्रास्वरूपा हो एवं ह्रस्वदीर्घ-प्लुतरूपा हो, विना स्वर-की सहायतासे जिसका स्पष्ट उच्चारण नहीं किया जा सकता है, वह व्यंजनरूपाभी तुम हो। तुमही सन्ध्यारूपा हो, तुमही गायत्री रूपा हो, हे देवि! तुम्हीं सबकी जननी हो ॥६५—६७॥

हे देवि! तुम्ही सारे जगत्‌का सर्जन करती हो; पालन करती हो, धारण करती हो, पुनः तुम्हीं प्रलय कालमें उसका नाश करती हो। इस कारण हे जगन्मये! तुम ही सृष्टि कालमें सृज्यवस्तुरूपा एवं सृष्टिक्रियारूपा हो, पालन एवं संहारमें भी तुमही यथाक्रम पाल्य, पालन, संहार्य्य और संहाररूपा हो ॥ ६८-६९-७०-७१॥ आपही महाविद्या, महामाया, महामेधा, महास्मृति और महामोहरूपा हो। महादेवी और महासुरीरूपा भी आपही हो ॥ ७२ ॥ तुमही त्रिगुण प्रकाशिनी सबकी प्रकृति हो, कालरात्रि (प्रलय) महारात्रि (मृत्यु) एवं भयानक मोहरात्रि (निद्रा) भी तुम्हीं हो ॥ ७३ ॥ तुमही लक्ष्मी-

---

होकर तमोगुणमें पहुंचना है। इसी योगविघ्न द्वारा जड़ समाधिकी उत्पत्ति योगशास्त्र अनुमोदित है। वह जड़समाधि तमोगुणसे होती है और योग-विघ्नकारक है। यही मधु नामक असुरका अध्यात्मरूप है। यह नादके सम्बन्धसे अन्तर्मुख भाव है। दूसरी अवस्था कैटभकी है, वह नादसे बहिर्मुख होकर लक्ष्यच्युत होना और निर्विकल्पभावको छोड़कर सविकल्प भावकी प्राप्ति होना है। ये दोनों ही तम परिणामको उत्पन्न करते हैं और समाधिभङ्ग करते हैं। नादके अवलम्बनसे ही दोनों प्रकट होते हैं। नाद-का सम्बन्ध शब्द और आकाशसे है। यही भगवान् विष्णुके कर्णमलसे मधुकैटभ नामक असुरोंकी उत्पत्तिका रहस्य विज्ञान सिद्ध है। योगविघ्नकारी इन दोनों वृत्तियोंके आसुरी दोनों अधिष्ठाता अवश्य माननीय हैं, ये ही दोनों मधु और कैटभके अधिदैव रूप हैं। उन्नत योगिगण इनका अनुभव करते हैं। पुराणान्तरोंमें लिखा है कि, भगवान् विष्णुने जब मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको मार डाला; तब उनके शवोंके मेद परिणामसे पृथिवी बनी और मेदिनी कहलाई। यही उनके अधिभूत रूप समझनेका रहस्य है। सृष्टि अवस्थामें प्रकृत विघ्नका नाश होने पर एक अद्वितीय साम्यावस्था प्राप्त नाद जब वैषम्याव-स्थाको प्राप्त हुआ तो प्रथम शब्दमयी सृष्टि वेदादि तदनन्तर यावत् पार्थिव सृष्टि उत्पन्न हुई। विघ्न दूर हुआ और भगवान् ब्रह्मा अपने कर्तव्य कार्य्यमें सफल काम हुए। सर्वशक्तिमयी महामायाकी कृपाके विना भगवान् विष्णुकी योगनिद्रा भङ्ग नहीं हो सकती थी और ज्ञानस्वरूप भगवान् विष्णुकी सहायता विना भगवान् ब्रह्माका समाधिविघ्न दूर नहीं हो सकता था। जगज्जननी ब्रह्ममयी महामाया अविद्या-रूपसे बुद्धिको आच्छादित किया करती हैं और वेही पुनः विद्यारूप धारण करके उस आवरणको दूर करती हुई जीवको प्रकृतिस्थ और युक्त करती हैं ॥ ६० ॥

टीका—"महा" शब्दका प्रयोग सब स्थलों पर समष्टि वाचक है। दैवी और आसुरी शक्ति, शक्तिरूपसे दोनों समान होनेसे दोनोंका नाम आया है। इस कारण शंकाका अवसर नहीं है ॥ ७२ ॥

टीका—प्रलयकी सन्धि और मृत्युकी सन्धि और निद्राकी सन्धि ये तीनों ब्रह्ममयी महाशक्तिकी शक्तिरूपसे प्रबल विभूतियां हैं। उच्चसे उच्च व्यक्ति भी समानरूपसे इनके अधीन होता है ॥ ७३ ॥

रूपा हो, तुमही निखिल ऐश्वर्य्यशालिनी ईश्वरी हो, तुम ही ह्री (असत् कार्य्यमें संकोच) हो, तुम बोधलक्षणा बुद्धिरूपा हो ॥७४॥ तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शान्ति एवं क्षान्ति—क्षमा-रूपिणी हो ॥७५॥ तुम खड्ग, शूल, गदा, चक्र, शङ्ख, धनु, बाण, भुशुण्डी एवं परिघधारिणी हो ॥ ७६ ॥ तुम सौम्या हो, सौम्यतरा हो एवं निखिलसौंदर्य्योंकी अपेक्षा भी अधिक सुन्दरी हो। तुम ब्रह्मादिकी भी नियन्त्री हो, तुम सृष्टिसे परे स्थित उसकी आधारभूता हो, इस कारण 'परमा' हो, तुम्हीं अनन्त कोटि ब्रह्माण्डकी ईश्वरी हो इसी कारण तुमको 'परमा' कहते हैं ॥ ७७ ॥ हे सर्वमयी देवि! इस अनन्त कोटि ब्रह्माण्डमें जहां कहीं जो कुछ सत् असत् पदार्थ हैं, उन सबोंकी शक्तिभूता तुम ही हो, अतएव तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार कर सकता हूं? ॥ ७८ ॥ जो जगत्का स्रष्टा, पाता एवं संहर्त्ता हैं, वे भी जब तुम्हारे द्वारा निद्रित होते हैं, तब तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? ॥ ७९ ॥ विष्णु, मैं (ब्रह्मा) एवं शिव सबोंने तुम्हारे द्वारा ही शरीर ग्रहण किया है, अतएव तुम्हारी स्तुति करनेमें कौन शक्तिमान् हो सकता है? ॥ ८० ॥ हे स्तुता देवि! तुम अपने इस प्रकार उदार प्रभावके द्वारा ये मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको जो अतीव दुर्धर्ष हैं मोहित करो ॥ ८१ ॥ और जगत्स्वामी अच्युत जागृत हो एवं इन दोनों महा असुरोंको मारनेके लिये इनकी शक्ति विस्फुरित हो ॥ ८२ ॥ ऋषिबोले,—उस समय ब्रह्माजीके इस प्रकार स्तुति करने पर तामसी देवी विष्णुका निद्राभङ्ग और मधुकैटभ वधके लिये विष्णुके नेत्र, मुखमण्डल, नासिका, बाहु, हृदय एवं वक्षःस्थलसे निकल कर स्वयम्भू ब्रह्माकी

टीका—नव आयुधोंका वर्णन शक्तिकी पूर्णताका प्रकाशक है। रक्षाकार्य्यमें शक्तिकी पूर्णताकी आवश्यकता है और उसमें अभयमुद्राका होना स्वाभाविक होनेसे दशवें हाथमें अभयमुद्रा है ऐसा समझना चाहिये ॥ ७६ ॥

टीका—'सौम्य' शब्दका अर्थ आनन्दप्रद, शान्तिप्रद और अमृतप्रद है। सुतरां जो सौन्दर्य्य ब्रह्मानन्दप्रद हो, स्थिर शान्तिप्रद हो और मुक्तिके अभिमुख करे, वही सौन्दर्य्य इन तीनों पदोंसे लक्षित होता है। इस भावको तीन श्रेणीमें विभक्त करनेका तात्पर्य अतिरहस्य पूर्ण है, क्योंकि, समाधिभाषाके सभी शब्द त्रिविध अर्थ बोधक होंगे, इसमें सन्देह नहीं। जगदम्बाके आधिभौतिकरूपकी सुन्दरता, आधिदैविकरूपकी सुन्दरता एवं आध्यात्मिकरूपकी सुन्दरता यथाक्रम एकसे दूसरी और दूसरीसे तीसरी उन्नत है, उन्हीं तीनोंको ये पद लक्ष्य कराते हैं ॥ ७७ ॥

टीका—वेदादि शास्त्रोंमें जैसे ब्रह्मा, विष्णु एवं महेशकी आयुका हिसाब अलग अलग पाया जाता है, उसी प्रकार तीनोंकी रात्रिका भी अलग अलग वर्णन पाया जाता है। तथा ब्रह्मामें ब्राह्मी-शक्ति, विष्णुमें वैष्णवी शक्ति एवं शिवमें शैवी शक्ति जो कुछ है, सो उसी महाशक्तिका अंश है ॥ ७९–८० ॥

टीका—त्रिगुणमयी महाशक्तिके तीनों गुण ही अपने अपने अधिकारके अनुसार पूर्ण शक्ति विशिष्ट

दृष्टिके सामने आविर्भूत हुई ॥ ८३-८६ ॥ उस निद्रारूपिणी भगवतीसे मुक्त होकर जगत्-स्वामी भगवान् विष्णु अनन्तशय्यासे उठे एवं उठते ही दोनों असुरोंको देखा ॥ ८७ ॥ अनन्तर अत्यन्त बलशाली एवं पराक्रमी क्रोधसे लाल नेत्र दुरात्मा दुष्टात्मा मधु कैटभ बृह्माको भक्षण करनेके लिये उद्यत हुए हैं, सो भी देखा ॥ ८८ ॥ अनन्तर जगत्व्यापक भगवान् हरिने उठकर पांच हज़ार वर्ष तक उन असुरोंके साथ बाहुयुद्ध किया था ॥८६॥ उस समय अतिबलसे उन्मत्त दोनों असुरोंने महामायासे विमोहित होकर भगवान् विष्णुको कहा कि, तुम हमलोंगोंसे वर मांगो ॥ ६० ॥ ६१ ॥ भगवान्ने कहा,—तुम लोग यदि मुझसे प्रसन्न हुए हो, तो तुमलोग मेरे वध्य होजाओ ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इस युद्धक्षेत्रमें अन्य किसी वरका प्रयोजन नहीं है, तुमलोग हमारे वध्य हो, यही हमारा वरणीय है ॥ ६४ ॥ ऋषिने कहा कि, इस प्रकार दोनों असुरोंने वंचित हो सारा जगत् जलमग्न देखकर कमलनयन भगवान् विष्णुको कहा कि जो स्थान जलमग्न नहीं है, ऐसे स्थानमें हमलोगोंका वध करो ॥ ६५-६७-६८ ॥ ऋषिबोले,—तब शंख-चक्र-गदाधारी भगवान्ने "ऐसाही होगा" ऐसा कह कर उन दोनोंका मस्तक अपने जांघ पर रख चक्रसे काट डाला ॥ ६६—१०१ ॥ इस प्रकार बृह्माके स्तुति करने पर देवी आविर्भूत हुई थीं ॥ १०२ ॥ उस देवी महामायाका प्रभाव मैं पुनः तुमसे कहता हूं सुनो ॥ १०३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणमें सावर्णि मन्वन्तर देवीमाहात्म्यका मधुकैटभवध नामक एक्यासीवां अध्याय समाप्त हुआ ॥ ८१ ॥

बयासीवाँ अध्याय ।

ऋषिबोले,—जिस समय महिषासुर असुरोंके एवं पुरन्दर देवताओंके अधिपति हुए थे, उस समय पूरे सौ वर्ष तक देवासुर नामक युद्ध हुआ था ॥ १—२ ॥ उस युद्धमें महावीर्य्यशाली असुरोंके द्वारा देवसेनाके पराजित होने पर देवताओंको हराकर महिषासुर स्वयं इन्द्र बन गया ॥ ३ ॥ तदनन्तर देवतागण पराजित होकर प्रजापति बृह्माको

हैं, यह स्तुति ब्रह्ममयी की तामसिक महाशक्तिको लक्ष्य करके ही की गई है, जिसकी साक्षात् विभूति निद्रा है जो यावत् स्थावर जंगमादि सृष्टिसे लेकर ब्रह्मादि त्रिमूर्त्ति तकको अपने बश में करती है ॥ ८४ ॥

टीका—देवासुर संग्रामका अधिदैव रहस्य समझनेके लिये सूक्ष्म लोकोंकी शृंखला और वहांकी शासन-प्रणाली समझने योग्य है । ऊर्द्ध सप्त लोकोंमेंसे भूलोक और उसके अवान्तर चार लोकोंका शासक धर्मराज यम हैं जिनकी राजधानी पितृलोकमें है । इस मृत्युलोकमें भी उनका बहुत कुछ सम्बन्ध विद्यमान

अग्रवर्त्ती (नेता) बनाकर महादेव एवं विष्णुके निकट गये ॥ ४ ॥ और महिषासुर देवताओंको पराजित करके उनसे कैसा व्यवहार करता है, सो यथायथ देवताओंने कहा ॥ ५ ॥ महिषासुरने सूर्य्य, इन्द्र, अग्नि, वायु, चन्द्र, यम, वरुण, एवं अन्यान्य सब देवताओंके अधिकारोंको स्वायत्त कर लिया है ॥ ६ ॥ सभी देवता उस दुरात्मा महिषासुरके द्वारा स्वर्गसे विताड़ित होकर मनुष्यकी तरह मृत्युलोकमें विचरण करते हैं ॥ ७ ॥ हमलोगोंने यहांतक उस असुरकी दुष्टता आप लोगोंको सुनाई, हमलोग आपके शरणागत हैं अतएव उस असुरके वधके विषयमें विचार करें ॥ ८ ॥ उस समय भगवान् विष्णु एवं शिव उन देवताओंकी बात सुनकर क्रुद्ध हो गये, तब उन दोनोंका मुखमण्डल भृकुटिद्वारा कुटिल हो गया ॥ ९ ॥ तदनन्तर अत्यन्त क्रोध पूर्ण विष्णु ब्रह्मा, और शंकर भगवान्के मुखमण्डलसे महत्तेज निकलने लगा ॥१०॥ उस समय इन्द्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी बहुत तेज निकल कर सब एकत्रित हुआ ॥ ११ ॥ उस तेजराशिकी शिखा द्वारा परिव्याप्त दिक् मण्डलको देवताओंने ज्वलन्त पर्वतके समान देखा ॥ १२ ॥ तदनन्तर वहां सब देवताओंके देहसे उत्पन्न वह अनुपम तेजोराशि, सम्मिलित होकर नारी रूपमें परिणत हुई और उनकी कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो गया, ॥ १३ ॥ शम्भुके तेज द्वारा उस नारी देहका मुखमण्डल बना, यमके

है। देवराज इन्द्रकी राजधानी तृतीय लोक स्वर्गलोकमें है। यहींतक असुर लोग जा सकते हैं। आगेके एक दो लोकोंमें यद्यपि इन्द्रदेवका कुछ आधिपत्य विद्यमान रहता है, किन्तु उनसे ऊपरके लोकोंमें उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। क्योंकि, जिस प्रकार इस मृत्युलोकमें ज्ञानी अथवा तपस्वी व्यक्ति पर राजानुशासनकी आवश्यकता नहीं रहती, उसी प्रकार अति ऊर्द्ध लोकोंमें इन्द्रदेवके शासनकी आवश्यकता नहीं रहती है। षष्ठलोक उपासनाका लोक है तथा सप्तम लोक ज्ञानमय लोक है। वे दोनों लोक देवताओंके लिये भी दुर्लभ हैं। असुरराजका आधिपत्य नीचेके सब लोकोंपर रहता है। क्योंकि आसुरी प्रजा इन्द्रिय लोलुप होनेसे वहांके सब लोकों पर राजानुशासनकी आवश्यकता रहती है। देवतागण अपने अधिकारमें ही तृप्त रहते हैं, क्योंकि, वे सत्त्वगुणावलम्बी हैं। असुरगण सदा दैव अधिकार छीननेके लिये व्यग्र रहते हैं। यही कारण है कि, मृत्युलोकमें भी दैवी शक्ति और आसुरी शक्तिका संघर्ष सर्वदा देखनेमें आता है। जब कभी असुरराज इन्द्रदेवके अधिकारमें प्रवेश करते हैं, तब वह युद्ध प्रबल होता है और कभी कभी तपः क्षय होनेसे देवराज हार भी जाते हैं तथा वे अपनी राजधानी छोड़कर उच्च लोकोंमें शरण लेते हैं। जिस कल्पमें महिषासुर असुरराज हुआ था, उस समयकी यह समाधि द्वारा प्राप्त गाथा है ॥ ४ ॥

टीका—यह चक्रका रहस्य है तन्त्रादि शास्त्रोंमें जो उपासना चक्रोंका वर्णन आता है, वह सब इसी अलौकिक विज्ञानको अवलम्बन करके किया गया है। समवेत भक्तवृन्द एकही देशकालमें उपस्थित होकर अनन्यभक्ति,एक ही धारणा,एक ही ध्यानसे युक्त होकर जब समाधिस्थ होते हैं, तब उपासना शास्त्रमें उसको चक्र कहते हैं। यदि चक्र सिद्ध हो, तो उस चक्रमें उस देवका आविर्भाव अवश्य होता है, जैसा कि देवताओंके इस ब्रह्मचक्रमें हुआ था ॥ १३ ॥

तेजके द्वारा एवं विष्णुके तेज द्वारा यथाक्रम केश और बाहु उत्पन्न हुए ॥ १४ ॥ चन्द्रमा, इन्द्र, वरुण और पृथिवीके तेज द्वारा यथाक्रम स्तनद्वय, मध्यभाग, जङ्घा-ऊरुदेश एवं नितम्बदेश निर्मित हुए ॥१५॥ ब्रह्मा, सूर्य्य, अष्टवसु, तथा कुबेरके तेज द्वारा यथाक्रम चरणद्वय उनकी अंगुलियां, हाथकी अंगुलियां एवं नासिका उत्पन्न हुई ॥ १६ ॥ प्रजापतिके तेज द्वारा देवीके दांत समूह उत्पन्न हुए एवं अग्निके तेज द्वारा तीनों नेत्र उत्पन्न हुए ॥ १७ ॥ सन्ध्याके तेज द्वारा भ्रूयुगल, वायुके तेज द्वारा दोनों कान तथा अन्यान्य देवताओंके तेज समूहोंके द्वारा शिवा देवीकी उत्पत्ति हुई ॥ १८ ॥ तदनन्तर महिषासुरके द्वारा पीड़ित देवतागण समस्त देवताओंके तेजसे उत्पन्न उस स्त्रीरूपको देख कर अत्यन्त आनन्दित हुए ॥ १९ ॥ उस समय पिनाकपाणि महादेवने अपने शूलास्त्रसे एक दूसरा शूल निकाल कर उनको (भगवतीको) दिया । कृष्ण-विष्णुने भी अपने चक्रसे एक दूसरा चक्र निकाल कर दिया ॥ २० ॥ वरुणने शङ्ख, हुताशनने शक्ति, वायुने धनु, एवं बाण पूर्ण तूणीर प्रदान किया ॥ २१ ॥ सहस्रनयन देवाधिपति इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र तथा ऐरावत हाथीसे घण्टा लेकर भगवतीको प्रदान किया ॥ २२ ॥ यमने कालदण्डसे दण्ड उत्पन्नकरके प्रदान किया तथा वरुणने पाश, प्रजापति ब्रह्माने अक्षमाला एवं कमण्डलु प्रदान किया ॥ २३ ॥ दिवाकर (सूर्य्यने) सब रोमकूपोंमें अपनी किरण, कालने खड्ग तथा अतिनिर्मल चर्म उनको प्रदान कियो ॥ २४ ॥ क्षीरोद समुद्रने निर्मल हार, अविनश्वर वस्त्रद्वय, अतिमनोहर चूड़ामणि, कुण्डल, वलय, शुभ्र अर्द्धचन्द्र, सब बाहुमें केयूर, अतिनिर्मल नूपुर, अतिउत्तम कण्ठाभरण और सब अङ्गुलियोंमें अंगूठियां प्रदान की ॥२५-२७ ॥ विश्वकर्माने अति निर्मल कुठार, अन्यान्य नाना प्रकारके अस्त्र एवं अभेद्य कवच अर्पण किया ॥२८॥ जलनिधि समुद्रने शिरमें एवं वक्षःस्थलमें अम्लान कमलकी माला तथा अतिसुन्दर कमल प्रदान किया ॥ २९ ॥ हिमालयने सिंह, विविध प्रकारका रत्न एवं धनपति कुवेरने सुरापूर्ण पानपत्र प्रदान किया ॥ ३० ॥ जिन्होंने इस पृथिवीको धारणकर रक्खा है, उन सर्व नागाधिपति अनन्त नागने महारत्नसुशोभित नागहार प्रदान किया ॥ ३१ ॥ तव अन्यान्य देवताओंने भी उनको नाना प्रकारके भूषण एवं अस्त्रादि द्वारा सम्मानित किया । तथा देवी बारम्बार अट्टहास द्वारा महाध्वनि करने लगीं

टीका—पहले चरित्रमें ब्रह्ममयीके तमोमयी महाशक्तिरूपका वर्णन आचुका है। अब इस चरित्र द्वारा उस अनन्तकोटि ब्रह्माण्ड-प्रसविनी विश्वजननी रजोगुणमयी महाशक्तिके रूप और विलासका वर्णन किया गया है। जगदम्बाका जो नित्यस्थित अध्यात्मरूप है, उसका कुछ दिग्दर्शन पहले आचुका है। वे शक्तिरूपिणी, ब्रह्ममयी साक्षात् ब्रह्मरूपा, निखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि-स्थिति-संहार कर्त्री होने पर भी अरूपिणी और मन-बुद्धिसे अगोचरा होने पर भी भक्तोंके कल्याणार्थ किसप्रकारसे रूपको धारण करती हैं,

॥ ३२ ॥ देवीके अतिभयानक, अपरिमित एवं महान् नादसे नभोमण्डल परिव्याप्त हो गया तथा शब्दसे महान् प्रतिशब्द होने लगा ॥ ३३ ॥ देवीके उस महानादके द्वारा समस्त लोक संक्षुब्ध हो उठे, सारे समुद्र कम्पित हो उठे, पृथिवी और सारे पर्वत विचलित हो उठे ॥३४॥ देवतागण आनन्दसे सिंहवाहिनी देवीका जय जयकार करने लगे एवं मुनिगण भी विनम्रभावसे देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ३५ ॥ देवताओंके शत्रु असुर गण त्रिलोकको व्याकुल देख कर अस्त्र शस्त्रसे सुसज्जित सैन्योंको साथ लेकर युद्ध करनेका उद्योग करने लगे ॥ ३६ ॥ उस समय महिषासुर क्रोधसे "आः! यह क्या हुआ?" इस प्रकार बोलता हुआ अनेक असुरोंके द्वारा परिवृत होकर देवीके शब्दको लक्ष्य करके धावित हुआ ॥ ३७ ॥ अनन्तर महिषासुरने देवीको देखा कि, इनकी कान्तिके द्वारा त्रिलोक परिव्याप्त हो उठा है, चरणभारसे पृथिवी नत हो रही है एवं उनके किरीटके द्वारा गगनमण्डल परिव्याप्त हो गया है ॥ ३८ ॥ देवी सहस्र बाहुके विस्तार द्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त करके अवस्थान कर रही हैं ॥ ३९ ॥ तदनन्तर देवीके साथ असुरोंका युद्ध प्रारम्भ होने पर, देवी और असुरोंके द्वारा निक्षिप्त अस्त्र-शस्त्र समूहसे दिगन्तर सन्दीपित हो उठा ॥ ४० ॥ उस समय महिषासुरका सेनापति चिक्षुर नामक महासुर एवं चामर नामक असुर, हस्ती, अश्व, रथ और पदाति सैन्य एवं अन्य असुरोंके द्वारा परिवेष्टित होकर युद्धमें प्रवृत हुए ॥ ४१ ॥ उग्र नामक महा असुर साठ हजार रथोंके द्वारा परिवृत होकर युद्धमें उद्यत हुआ एवं महाहनु नामक असुर एक कोटि रथोंसे वेष्टित

उनका अधिदैव रूप जगत्के कल्याणार्थ कैसे आविर्भूत होता है, वे भक्त मनोमन्दिरविहारिणी होने पर भी समवेत भक्तवृन्दोंके दुःखनिवारणार्थ किस प्रकार प्रकट होती हैं, उनका अधिदैवस्थूल शरीर देवताओंके समवेत तेज द्वारा कैसे बन सकता है, देवताओंके समवेत आयुधोंको ग्रहण करके वे किस प्रकारके रूपको धारण करके असुरराजको परास्त कर सूक्ष्म दैवराज्में शान्ति स्थापन करती हैं, इसीका कुछ संक्षिप्त रहस्य इस समाधिगम्य गाथामें प्रकाशित हुआ है। देवताओंके अधिभूत बल समूह दानवराजके प्रबल सैन्यबलसे परास्त होने पर भी देवताओंकी समवेत अधिदैवशक्ति एकाधारमें जगदम्बाका आश्रय लेकर अजेय दानवराजको परास्त करनेमें समर्थ होगी इसमें सन्देहही क्या है। यह देवीका अधिदैव रूप है, इस कारण विशेष विशेष देवताके तेज द्वारा देवीका विशेष विशेष अङ्ग बना, और युद्धमें उपस्थित होनेके कारण सब देवताओंके आयुधोंके संग्रहकी आवश्यकता हुई ॥ ११—१२ ॥

टीका—जैसे देवपदके अधिकारियोंका वर्णन पहले आचुका है, जिन्होंने अपने अपने शस्त्रादि देवीको अर्पण किये थे; वे सब स्थायी देवपद हैं, उसी प्रकार असुरोंके जो स्थायीपद हैं, उनमेंसे कुछके नाम ये सब कहे गये हैं। ये सब अधिदैव रूप हैं। इन देवपदाधिकारियों और असुरपदाधिकारियोंके अध्यात्मरूप वृत्तिराज्यमें ज्ञानीगण अनुभव करते हैं। असुरराजका पद भी इन्द्रकी तरह स्थायी है। इसमें पदाधिकारीका परिवर्त्तन हुआ करता है। ॥ ४१ ॥

होकर युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥ उस समय असिलोमा नामक महासुर पांच कोटि तथा वाष्कल नामक असुरने साठ लाख रथके साथ उस युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करना आरम्भ किया ॥ ४३ ॥ परिवारित नामक असुर भी हजारों हजारों हाथी, घोड़े एवं कोटि रथोंको साथ लेकर युद्धमें प्रवृत्त हुआ ॥ ४४ ॥ विड़ालाक्ष नामक असुर भी पश्चवृन्द रथ द्वारा परिवेष्टित होकर युद्ध क्षेत्रमें युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥ उस युद्धक्षेत्रमें अन्यान्य असुरगण भी अनेक रथ, हस्ती एवं अश्वसे सुसज्जित होकर देवीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥ उस युद्धमें महिषासुर भी असंख्य रथ, हस्ती एवं तुरगसे परिवृत हुआ ॥ ४७ ॥ उस समय कोई तोमर अस्त्र, कोई भिन्दिपाल अस्त्र, कोई शक्ति, कोई मुसल, कोई खड्ग एवं कोई कोई कुठार और पट्टिस अस्त्र द्वारा देवीके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥ देवीको लक्ष्य करके कोई शक्ति अस्त्र, कोई पाश अस्त्र फेंकने लगा, कोई खड्ग प्रहारके द्वारा देवीको आहत करने लगा ॥ ४९ ॥ अनन्तर देवी चण्डिकाने अपने अस्त्र शस्त्र वर्षणके द्वारा अनायास ही असुर निक्षिप्त अस्त्र शस्त्रोंको छिन्न कर दिया ॥ ५० ॥ एवं सर्वशक्तिमयी देवी, देवता एवं ऋषियोंके द्वारा संस्तूयमाना होकर असुर-देहमें अस्त्र शस्त्र प्रहार करने लगीं । किन्तु युद्धके परिश्रमसे उनका मुखमण्डल विकृत नहीं हुआ था ॥ ५१ ॥ उस समय देवीका वाहनसिंह भी क्रोध पूर्वक स्कन्धके बालोंको हिलाता हुआ दावाग्निकी तरह सैन्योंके बीचमें विचरण करने लगा ॥ ५२ ॥ तब देवी अम्बिकाने असुरोंके साथ युद्ध करती हुई जिन निश्वासोंका परित्याग किया तत् क्षणात् उन निश्वासोंसे शतसहस्र प्रमथ सैन्य आविर्भूत हुए एवं वे सब देवीकी शक्तिसे शक्तिशाली होकर परशु, भिन्दिपाल, खड्ग और पट्टिशास्त्र लेकर असुरोंको विनाश करते हुए युद्ध करने लगे ॥५३-५४॥ उस युद्धरूपी महोत्सवमें सब गण कोई पटह, शंख, कोई मृदङ्ग बजाने लगे ॥ ५५ ॥ अनन्तर देवीने त्रिशूल, गदा शक्ति एवं खड्ग द्वारा सैकड़ों महासुरोंको मार डाला, कितने ही को घण्टाध्वनि द्वारा विमोहित किया और अन्य कितने ही असुरोंको पाश द्वारा बान्धकर आकर्षण किया ॥ ५६-५७ ॥ कितने ही को तीक्ष्ण खड्ग द्वारा दो खण्ड

टीका—युद्ध प्रकृतिकी स्वाभाविक क्रिया है । धर्माधर्मका युद्ध, सामाजिक युद्ध, वृत्तिराजका युद्ध और दैव जगत्में इस प्रकारका देवासुर-संग्राम प्राकृतिक श्रृंखलाकी सामञ्जस्य रक्षा करनेके लिये स्वाभाविक रूपसे हुआ करता है । युद्धक्रिया न स्थूल जगत्से उठ सकती है और न सूक्ष्म दैवराज्यसे उठ सकती है । सूक्ष्म दैवीराज्यमें देवता और असुरोंको अपने अपने अधिकारमें रखकर दैवी अधिकारका सामञ्जस्य रखनेके लिये देवासुर-संग्राम हुआ करता है और जब असुरोंका तपःप्रभाव देवताओंके तपःप्रभावसे बढ़ जाता है, तभी महाशक्तिके आविर्भावकी आवश्यकता होती है । उसी प्रकार इस मृत्युलोकमें अवतारोंके आविर्भावकी आवश्यकता होती है ॥ ५१ ॥

एवं कितने ही को गदापातके द्वारा विमर्दित किया, तब वे सब पृथिवी पर सो गये ॥ ५८ ॥ कितने ही असुर मुशल द्वारा अत्यन्त आहत होकर रक्त वमन करने लगे एवं कितने ही की छाती शूलसे विदीर्ण होनेसे वे सब पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ५९ ॥ अन्य कितने ही असुरसेनापतियोंने शर समूहोंसे आच्छन्न होकर रण प्रांगणमें प्राण परित्याग किया ॥ ६० ॥ उस समय देवीने कितने ही का बाहु, कितने ही का गला एवं अन्यान्य कितने ही का शिर काट डाला एवं कितने ही का मध्य भाग काट डाला ॥ ६१ ॥ कितने ही असुर जांघ कट जानेसे पृथिवी पर गिर पड़े, देवीने अन्य कितने ही का एक एक करके बाहु, चक्षु और पैर काट डाला एवं कितने ही को दो टुकड़ा कर डाला ॥ ६२ ॥ अन्य कितने ही असुरोंका देवीके द्वारा शिर काट लिये जाने पर वे पृथिवी पर गिर पड़े और पुनः उठ खड़े हुए ॥ ६३ ॥ कितने ही कवन्धोंने (शिर कटे हुए देहधारण करनेवालोंने) उत्तम आयुध ग्रहण करके देवीके साथ युद्ध करना आरम्भ किया एवं अन्य कोई कोई वाद्यलयके साथ मिलकर नाचने लगा ॥ ६४ ॥ अन्य महासुर कवन्धगण खड्ग, शक्ति, और ऋष्टि हाथमें लेकर देवीके सैन्योंके शिर काटते हुए देवीको "ठहरो, ठहरो" ऐसा कहने लगे ॥ ६५ ॥ उस समय जिस स्थानमें युद्ध हो रहा था, वह स्थान, गिरे हुए रथ, हाथी, अश्व और असुरोंके द्वारा अगम्य हो उठा ॥ ६६ ॥ उस समय उस असुर सैन्योंके बीचमें हाथी, असुर एवं घोड़ोंकी शोणित राशि (रक्त) महानदीकी तरह प्रवाहित होने लगी ॥ ६७ ॥ अग्नि जिस प्रकार तृण एवं काष्ठराशिको तत् क्षणात् भस्मसात् कर देती है, उसी तरह देवी अम्बिकाने असुरोंके प्रबल सैन्यको विनष्ट कर डाला ॥ ६८ ॥ तब देवीका वाहन सिंह भी स्कन्ध-रोमावली हिलाता हुआ महान् गर्जन करके अवशिष्ट असुरोंका मानों प्राण निकालने लगा ॥ ६९ ॥ उस समय देवीके सैन्यगण भी असुरोंके साथ घोर युद्ध करने लगे, उसको देखकर देवताओंने प्रसन्न होकर आकाशसे पुष्पवृष्टि की ॥ ७० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका महिषासुर सैन्यका बध नामक बयासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

तिरासीवां अध्याय ।

—०:*:०—

ऋषि बोले—अनन्तर सेनापति महासुर चिक्षुर उस सैन्य समूहको निहत देखकर अतिक्रोधसे अम्बिकाके साथ युद्ध करनेको चला ॥ १—२ ॥ तदनन्तर जिसप्रकार मेघ जल वर्षणके द्वारा मेरु पर्वतके शृंगको आच्छन्न करता है, उसी प्रकार उस असुरने शरव-

र्षण करके देवीको आच्छन्न कर दिया ॥ ३ ॥ उस समय देवीने अनायास ही असुर-निक्षिप्त शर समूहोंको छिन्न करके बाणके द्वारा उसके अश्व एवं सारथीको मारडाला ॥ ४ ॥ तथा असुरके धनु और अति उन्नत ध्वजाको काट डाला, तब उस असुरका धनु छिन्न होने पर बाणके द्वारा उसको विद्ध किया ॥ ५ ॥ तदनन्तर वह असुर धनु, रथ, अश्व एवं सारथीसे रहित होकर केवल खड्ग और चर्म लेकर देवीकी ओर धावित हुआ ॥ ६ ॥ एवं तीक्ष्ण धार खड्ग द्वारा सिंहके मस्तक पर आघात करके बड़ी जल्दीसे देवीके बाम बाहु पर आघात किया ॥ ७ ॥ हे नृपनन्दन सुरथ ! असुर द्वारा निक्षिप्त खड्ग देवीके बाहु पर गिरकर भग्न होजानेसे उस असुरने क्रोधसे रक्त नयन होकर शूल ग्रहण किया ॥ ८ ॥ अनन्तर महा असुरने भद्रकालीके ऊपर शूलास्त्र फेंका, वह शूल आकाशमें जाकर तेजसे प्रज्वलित सुर्य्यमण्डलकें समान प्रतीत होने लगा ॥ ९ ॥ उस समय शूलास्त्रको आते हुए देखकर देवीने भी शूलास्त्र फेंका, इस शूलास्त्रने असुरके शूल एवं चिक्षुरासुरको भी खण्ड खण्ड कर डाला ॥ १० ॥ इस प्रकार महिषासुरके सेनापति महावीर्य्यशाली असुरके मारे जाने पर देवविमर्दक चामर नामक असुर हस्ती पर सवार होकर आया ॥ ११ ॥ अनन्तर चामरासुरके भी शक्ति अस्त्र चलाने पर उन्होंने हुङ्कार द्वारा उसको प्रतिहत करके जमीन पर गिरा दिया ॥ १२ ॥ तब चामरने शक्ति अस्त्रको भग्न और जमीन पर गिरा हुआ देखकर क्रोधसे शूलास्त्र फेंका, देवीने उसको भी बाणके द्वारा छिन्न कर डाला ॥ १३ ॥ तदनन्तर सिंह कूद कर चामरके हस्तीके कुम्भ (शिरके) ऊपर बैठ उस असुर सेनापतिके साथ घोर बाहुयुद्ध करने लगा ॥ १४ ॥ अनन्तर वे दोनों युद्ध करते करते हाथीसे पृथ्वी पर उतर कर अत्यन्त क्रोधसे परस्पर दारुण प्रहार करके युद्ध करने लगे ॥ १५ ॥ तत् पश्चात् सिंहने बहुत शीघ्रतासे आकाशमें कूद कर चामरका मस्तक ग्रहण करके कराघातसे छिन्न कर डाला ॥ १६ ॥ तब उदग्र नामक असुरके भी युद्धमें प्रवृत्त होने पर देवीने शिला और वृक्षादिके द्वारा उसको आहत किया एवं कराल नामक असुरको दांत, मुष्टि और तल प्रहारसे निपातित किया ॥ १७ ॥ अनन्तर देवीने क्रुद्ध होकर गदाघातके द्वारा उद्धत नामक असुरको, भिन्दिपालके द्वारा वाष्कल असुरको एवं बाणके द्वारा ताम्र और अन्धकासुरको चुरमार कर डाला ॥ १८ ॥ तदनन्तर परमेश्वरी देवीने त्रिशूल द्वारा उग्रास्य, उग्रवीर्य्य एवं महाहनु नामक तीनों असुरोंको मार डाला । एवं तलवारके द्वारा विडालासुरका मस्तक देहसे अलग करके शरके द्वारा दुर्द्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको यमके यहां भेज दिया ॥ १९—२० ॥ इस प्रकारसे अपने सैन्यके विनष्ट होने पर महिषासुर

टीका—यह पहले ही सिद्ध किया गया है कि, त्रिगुणमयी महाशक्तिका प्रथम चरित्र तमोमयी शक्तिके रहस्यसे पूर्ण है, इस कारण उस चरित्रमें युद्ध-क्रिया विष्णु भगवान् द्वारा सम्पादित हुई थी। यह

महिषरूप धारण करके प्रमथ सैन्योंको डराने लगा ॥ २१ ॥ किसीको तुण्डाघातके द्वारा किसीको खुराघातके द्वारा किसीको लाङ्गूल ताड़न एवं किसीको शृंगके द्वारा विदीर्ण करके भूमि पर गिरा दिया ॥ २२ ॥ और किसी अन्य सैन्योंको वेगके द्वारा, अन्य कितने सैन्योंको भ्रमणके द्वारा एवं अन्य कितने ही को निश्वास वायुके द्वारा पृथ्वी पर गिरा दिया ॥ २३ ॥ इस प्रकार वह महिषासुर प्रमथ सैन्योंको आहत करके महादेवीके सिंहको आहत करनेके लिये धावित हुआ तब, देवी क्रुद्धा हो उठी ॥ २४ ॥ तब वह महावीर्य्य असुर भी खुरके द्वारा पृथिवी तलको पीसता हुआ शृङ्गके द्वारा उच्च उच्च पर्वतोंको फेकने लगा और शब्द करने लगा ॥ २५ ॥ उसके द्रुतगतिसे भ्रमण करनेसे पृथिवी विदीर्ण हो गई, उस समय महिषासुर लाङ्गूलके द्वारा समुद्र पर आघात करने लगा, उससे समुद्रकी जलराशि उछल कर सब ओर प्लावित हो गई ॥ २६ ॥ उस समय उसके शृङ्ग-कम्पनके द्वारा मेघसमूह विदीर्ण होकर खण्ड-खण्ड हो गये एवं निश्वास-वायु के द्वारा पर्वतसमूह आकाशमें उड़ कर पृथिवी पर गिर पड़े ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे क्रोधित होकर महिषासुरको आते देख कर चण्डिका देवी उसके वधके लिये क्रोधित हो उठीं ॥ २८ ॥ एवं पाश फेंक कर उस असुरको बान्धा, उसने भी उस युद्धमें महिषाकारको परित्याग कर दिया ॥ २९ ॥ और सिंहरूप धारण किया, तब, जब तक अम्बिका उसका शिर काटनेको ही थी तब तक वह खड्गधारी एक पुरुषाकार हो गया ॥ ३० ॥ उस समय देवीने बाणके द्वारा खड्ग और चर्म सहित उसको छिन्न कर डाला, उसने तत्क्षण गजाकार धारण किया ॥ ३१ ॥ और शुण्डके द्वारा देवीके सिंहको आकर्षण करके गर्जन कर उठा, देवीने खड्ग द्वारा उस शुण्डको काट डाला ॥ ३२ ॥ अनन्तर वह महासुर पुनः महिषदेह धारण करके चराचर ब्रह्माण्डको पूर्ववत् क्षुब्ध करने लगा ॥ ३३ ॥ तदनन्तर जगदम्बा चण्डिकाने क्रुद्ध होकर बार बार अत्युत्तम मद्यपान किया। तब उनका नेत्र

द्वितीय चरित्र ब्रह्मशक्तिके रजोमयीरूपके रहस्यसे पूर्ण है। युद्धका जो वर्णन किया गया है, वह सब समाधिगम्य सत्य विषय है, इसमें सन्देह नहीं है। पशुओंमें महिष तमोगुणकी प्रतिकृति है। असुर-राजके युद्धके समयमें इस रूपको धारण करनेसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड-जननी महामायाके इस द्वितीय चरित्रके विज्ञानकी और भी पुष्टि होती है। तमोबहुल रज कितना अनर्थ कर सकता है, जिसको दमन करनेके लिये साक्षात् ब्रह्मशक्तिको रजोमय ऐश्वर्य्यकी सहायता लेनी पड़ती है। यही इस चरित्रका आध्यात्मिक रहस्य है, जो समाधिगम्य है। वस्तुतः दुर्गादेवीके उपास्यरूपका यही आध्यात्मिक तात्पर्य्य है कि, तमोगुणरूपी महिषासुरको रजोगुणरूपी सिंहने भगवतीका वाहन बन कर अपने अधीन कर लिया है, जिस पर शुद्धसत्त्वमयी चिन्मयरूपधारिणी ब्रह्मशक्ति विराजमान हैं। देवासुरसंग्राममें जयलाभ करनेके अनन्तरकी दशाका यह शान्त सत्त्वमय स्वरूप है। क्योंकि, युद्धके समय रजका विकाश रहता है ॥ २१ ॥

लाल हो उठा, उस समय वे बार बार हास्य करने लगीं ॥ ३४ ॥ बल वीर्य्य एवं मदसे उद्धत वह असुर भी शब्द करता हुआ शृङ्गके द्वारा पर्वतोंको उठाकर देवी चण्डिकाके ऊपर फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ तब चण्डिका शरोंके द्वारा असुरके फेंके हुए पर्वतोंको विचूर्ण करती हुई स्पष्ट शब्दसे उसको कहने लगी, उस समय उनका मुखमण्डल मद्यके द्वारा अत्यन्त लाल हो गया ॥ ३६ ॥ देवीने कहा,—रे मूढ़ ! मैं जब तक मधु पान करती हूं, तब तक तू गर्जन कर ले, मेरे द्वारा तेरे मारे जाने पर अभी यहां देवता गर्जन करेंगे ॥३७-३८॥ ऋषिने कहा,—देवी महिषासुरसे इस प्रकार कहकर उस पर आरोहण कर, पादके द्वारा कण्ठको आक्रमण करके शूलके द्वारा उसके वक्षःस्थलमें आघात करने लगीं ॥ ३९-४० ॥ तदनन्तर देवीके द्वारा इस प्रकार चरणसे आक्रान्त उस असुरके अपने मुखसे दूसरा शरीर निकलने लगा, उसके आधा निकलते ही देवीने उसको बलात् रोक दिया ॥४१॥ तब अर्द्ध-निष्क्रान्त होकर ही युद्धमें प्रवृत्त होने पर देवीने महाअसि द्वारा उसका शिर काटकर मार डाला ॥ ४२ ॥ अनन्तर अवशिष्ट सैन्यगण "हा हा" शब्द करते करते क्रमशः भाग गये और देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हो गये ॥४३॥ एवं दिव्य महर्षियोंके साथ देवतागण देवीकी स्तुति करने लगे, तब गन्धर्वराजगण और अप्सरागण भी गान नृत्यादि करने लगे ॥ ४४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यके
महिषासुर वध नामक तिरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीका—इस मधुपानका रहस्य अतिनिगूढ़ भावोंसे पूर्ण है। यद्यपि समाधिभाषामय सप्तशती गीताका प्रत्येक श्लोक और प्रत्येक पद त्रिभावोंसे पूर्ण है, परन्तु सबकी त्रिभावात्मक व्याख्या अतिदुर्ज्ञेय है और बहुत स्थलोंमें बुद्धिभेद उत्पन्नकारी है। यह प्रसंग सदाचार विरुद्ध होनेसे इसकी त्रिविध व्याख्या होना परमावश्यक है। मादक द्रव्योंमें परमविभूति रूपी मधु ग्रहण करनेसे प्रत्याहार और धारणाकी सिद्धि होती है। योगियोंके द्वारा यह अनुभूत है कि, मादक द्रव्य ध्यान और समाधिका विरोधी होने पर भी अन्तर्मुख व्यक्तियोंमें तुरत प्रत्याहारकी उत्पत्ति करता है एवं धारणामें सिद्धि प्राप्त करता है। दूसरी ओर ऐसी सिद्धि प्राप्त करनेमें जो धारणा ध्यान-समाधि मूलक संयम क्रिया है और जिसमें धारणाका प्राधान्य रहता है, उसमें भी मधु कारण होता है, इस कारण तन्त्रशास्त्रोंमें इसको "कारण" भी कहते हैं। मधु शक्तिकी आधिभौतिक प्रतिकृति है, इस कारण इतना फल उत्पन्न कर सकता है। किन्तु समर्थ योगिगण ही इससे इस प्रकारका लाभ उठा सकते हैं, अन्यके लिये यह विपत्ति-जनक है। इस कारण वह असुरराजका पेय नहीं हुआ, महामायाका पेय हुआ। यह मधुपानका आधिभौतिक रहस्य है। अन्तर्जगत्के वृत्तिराज्यमें इस रहस्यका आध्यात्मिक स्वरूप और ही है। घोर तमोबहुल रजोगुणको परास्त करनेके लिये सात्त्विक अन्तःकरणमें विशेष प्रेरणाकी आवश्यकता होती है। वह विशेष प्रेरक शक्ति यह मधु है। बिना पूर्ण रजोगुणके दुर्दमनीय तमोवेगको परास्त नहीं किया जा सकता। दूसरी ओर सत्त्वगुणमय प्रशान्त अन्तःकरणमें उस राजसिक वेगको उत्पन्न करनेके लिये कर्त्तव्य-मूलक संकल्पकी आवश्यकता होती है, नहीं तो प्रशान्त व्यक्तिसे ऐसी क्रिया हो नहीं सकती है। यही इसका अध्यात्मरहस्य है, और अधिदैवरहस्य तो जगदम्बाके इस प्रकृत चरित्रमें प्रकट ही है ॥ ३८ ॥

चौरासीवां अध्याय ।

ऋषि बोले—देवीके द्वारा अतिवीर्य्यशाली दुरात्मा महिषासुर एवं उसके सैन्योंके निहत होने पर इन्द्रादि देवतागण ग्रीवा और स्कन्ध देशको विनम्र करके प्रणति पूर्वक वचनोंके द्वारा उस देवीकी स्तुति करने लगे। उस समय रोमांचसे उन लोगोंका देह पुलकित हो उठा ॥ १-२ ॥ (देवतागण बोले) जो देवी अपनी शक्ति द्वारा इस जगत्में व्याप्त हैं, जो सब देवताओंकी शक्तिसे आविर्भूत हैं, जिनकी पूजा समस्त देवतागण और महर्षिगण करते हैं, उस देवीको हम भक्ति सहित प्रणाम करते हैं, वे हम लोगोंका मङ्गल विधान करें ॥ ३ ॥ जिनकी अतुलनीय शक्ति और प्रभाव अनन्त देव, ब्रह्मा एवं शिव भी वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं, वे चण्डिका अखिल जगत्के परिपालन एवं असुर भयनाशके लिये इच्छा करें ॥ ४ ॥ जो पुण्यात्माओंके गृहमें स्वयं लक्ष्मी हैं, और जो पापात्माओंके गृहमें अलक्ष्मी रूपा है, जो निर्मलचेता व्यक्तियोंके हृदयमें बुद्धि-रूपिणी हैं, जो साधुगणमें श्रद्धारूपिणा हैं और सत्कुलोद्भव व्यक्तियोंकी लज्जा रूपिणी हैं, ऐसे तुमको हम प्रणाम करते हैं। हे देवि! तुम विश्वका परिपालन करो ॥ ५ ॥ तुम्हारा रूप और तुम्हारा वीर्य्य हम लोगोंसे अचिन्त्य है, अतएव हम उस रूप एवं असुर विनाशकारी प्रभूत वीर्य्यका वर्णन कैसे कर सकते हैं, तुमने देवताओं और असुरोंके मध्यमें जो युद्ध सम्बन्धीय चरित्र प्रकट किया है, वह भी हमारे वाक् मनके अतीत है, सुतरां उसका वर्णन हम किस प्रकार कर सकते हैं ॥ ६ ॥ तुम समस्त जगत्का कारण हो, तुम सत्त्वरजस्तमोगुणमयी हो, हम लोगोंकी तो बात ही क्या है, ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी तुम्हारा पार नहीं पा सकते हैं। तुम अनन्त ब्रह्माण्डोंकी आधारभूता हो, पुनः सारा जगत् तुम्हारा ही अंशभूत है, तुम अव्याकृता परमा आद्या प्रकृति हो अर्थात् कभी तुम्हारी उत्पत्ति नहीं होती है ॥ ७ ॥ यज्ञमें जिनका उच्चारण करनेसे देवताओंकी तृप्ति होती है एवं श्राद्धमें जिनका उच्चारण करनेसे पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं, वह स्वाहा एवं स्वधा तुम्हारा ही स्वरूप है। इसी कारण तुमको स्वाहा और स्वधारूपसे उच्चारण किया जाता है ॥ ८ ॥ तुम्हीं मुक्तिका कारण परमाविद्यारूपिणी हो इसी कारण मोक्षार्थी मुनिगण रागद्वेषादि सब दोषोंका परित्याग करके संयतेन्द्रिय और ब्रह्मतत्त्वानुसन्धानकी

टीका—प्रत्येक ब्रह्माण्डमें भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिव ये तीनों अपने अपने अधिकारके अनुसार ईश्वर समझे जाते हैं। वे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डजननीके अनादि अनन्त स्वरूपको कैसे समझ सकते हैं क्योंकि, उनका ज्ञान एक ब्रह्माण्डके देश और कालसे परिच्छिन्न ही रहता है ॥ ७ ॥

इच्छासे तुम्हारी चिन्ता करते हैं। हे देवि ! तुम अविचिन्त्य हो, तुम सर्वोत्कृष्टा हो ॥ ९ ॥ तुम शब्दरूपिणी हो, इसीलिये तुमको उद्गीथ एवं रमणीय पद-पाठ विशिष्ट ऋक् यजुः तथा सामका आश्रय कहते हैं पुनः तुम वेदरूपिणी हो, तुमही ईश्वरी हो, तुम्हीं जगत् पालनके निमित्त कृष्यादिरूपसे विद्यमान हो, एवं जगत्की दुःखहन्त्री हो ॥ १० ॥ हे देवि ! सब शास्त्रोंके सारको जाननेवाली मेधा तुम ही हो, तुम्हीं दुर्गम-संसार-सागरतारिणी हो, तुम असंगा हो, तुम दुर्ज्ञेया हो इस कारण तुमको दुर्गा कहते हैं। तुम ही कैटभारि विष्णुके हृदयमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हो, पुनः तुम ही शशि-मौलि-विहारिणी गौरी हो ॥ ११ ॥ हे देवि ! अत्युत्तम स्वर्णवर्ण मृदु मन्द हास्ययुक्त निर्मल तुम्हारा मुखमंडल पूर्णचन्द्र विम्बको नीचा दिखा रहा है, ऐसे मुखमण्डलको देख कर भी महिषासुरने क्रोधित होकर तुम पर प्रहार किया यह बड़ा ही आश्चर्य है ॥ १२ ॥ हे देवि ! कराल भृकुटीयुक्त उदीयमान चन्द्रकान्तिके समान तुम्हारा मुखमण्डल देख कर भी महिषासुरने प्राण नहीं त्याग किया, यह बड़ा ही आश्चर्य्यजनक है, कुपित यमके मुख-को देखकर कोई जीवित नहीं रह सकता है ॥ १३ ॥ हे देवि ! आप संसारके कल्याणके लिये प्रसन्न हों, क्योंकि, जिस पर आप कुपिता होती हो उस कुलका तत्क्षण नाश करती हो। अब हम लोगोंने यह समझा है, इसीलिये महिषासुरके सुविपुल सैन्योंका नाश हुआ ॥१४॥ हे देवि ! जिन पर आप प्रसन्न होती हैं वे ही देशमें सम्मानित होते हैं, उनका ही धन और कीर्ति अक्षुण्ण रहती है,वे ही धर्मादिचतुर्वर्गके अधिकारी हैं एवं निरुद्वेग पुत्र, कलत्र और भृत्यवर्गको प्राप्त करके धन्य होते हैं ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुम्हारी प्रसन्नतासे ही पुण्यवान् गण प्रतिदिन श्रद्धाके साथ धार्मिक कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं, एवं धार्मिक कर्मोंके अनुष्ठान द्वारा स्वर्गके अधिकारी होते हैं;अत एव तुम्हारी प्रसन्नता त्रिलोकमें फलदात्री हुआ करती है ॥१६॥ हे दुर्गे ! भयभीत होकर विपत्तिकालमें तुमको स्मरण करनेसे तुम प्राणिमात्र का भय दूर करती हो, और पुनः जो लोग स्वस्थ हो स्मरण करते हैं, उनका तुम अत्यन्त कल्याण साधन करती हो, तुम सबका दारिद्र्य दुःख विनाश करती हो, तुम्हारे सिवाय

टीका—मुक्ति प्रसंग होनेसे केवल वैष्णवी शक्ति और शैवी शक्तिका ही वर्णन किया गया है, यहां ब्राह्मी शक्तिका वर्णन नहीं किया गया। श्रीमद्भगवद्गीताने सिद्ध किया कि, मुक्ति कर्मयोगसे होती है अथवा सांख्ययोगसे होती है। कर्मको आश्रय करके वासना-रहित होकर कर्म-प्रवाहमें अपनेको बहा देना यह कर्म योग है। और अतिसावधान होकर तत्त्वज्ञानके अवलम्बनसे अग्रसर होनेको सांख्ययोग कहते हैं। इन दोनोंका शिवोपासना और विष्णु उपासनासे सम्बन्ध यथाक्रम है। इसी कारण उपास्य देवताओंमें भगवान् ब्रह्माका सम्बन्ध न रहनेसे केवल गौरी और लक्ष्मी इन दोनों शक्तियोंका ही वर्णन किया गया है ॥ ११ ॥

प्राणिगणके सब प्रकारके उपकारके लिये किसका चित्त दयार्द्र होगा? ॥ १७ ॥ हे देवि! असुरकुलके नाश होने पर जगत् स्वास्थ्य-सुख लाभ करेगा, एवं असुरगण नरकयातना भोग करनेके लिये पुनः पाप संचय न करे, तथा ये संग्राममें मृत्यु प्राप्त करके स्वर्गगामी होवें, यही सब सोच कर ही तुमने इन असुरोंको युद्धमें नाश किया है ॥ १८ ॥ अन्यथा आपके दृष्टिपात करनेसे ही ये भस्मसात् होसकते थे, ये शस्त्रसे पवित्र होकर उच्च लोकोंको प्राप्त हों इसी बुद्धिसे आपने इनको शस्त्रसे आहत किया है। शत्रुके विषयमें भी इस प्रकारकी मति अतीव शुभ है ॥ १९ ॥ हे देवि! अत्युग्र खड्ग प्रभाके समूहोंके द्वारा एवं शूलास्त्रके तीक्ष्ण कान्तिपुञ्जके द्वारा असुरोंकी दृष्टि जो तत्क्षण नष्ट नहीं हुई थी, उसका एकमात्र कारण तुम्हारे इन्दुखण्डके समान कान्तिविशिष्ट मुखमण्डलका निरीक्षण था ॥ २० ॥ हे देवि! दुर्वृत्तकी चेष्टाको शमन करना तुम्हारा मृदुल स्वभाव है, दूसरी ओर अतुलनीय रूप एवं असुरके नाशमें समर्थ वीर्य्य अचिन्तनीय है। एवं शत्रुके विषयमें भी आपने जो दया दिखाई है, सो भी अचिन्तनीय है ॥ २१ ॥ हे देवि! तुम्हारे इस पराक्रमकी उपमा कहीं भी किसीके साथ नहीं हो सकती है, एवं शत्रुके लिये भयजनक फिर भी अतिमनोहारी इस रूपकी भी अन्यत्र तुलना नहीं हो सकती है। हे वरदे! युद्धमें निष्ठुरता और चित्तमें दया एक साथ तुममें ही सम्भव है, तुम्हारे सिवाय त्रिभुव-

---

टीका—जगत् प्रसवित्री, पालयित्री जगदम्बा जो कुछ करती हैं, सो लोक-कल्याण तथा जीव कल्याणके लिये ही करती हैं। जैव दृष्टिसे चाहे कोई कार्य्य अशुभ समझा जाय, परन्तु कर्मके गतिवेत्ताके निकट यही प्रमाणित होगा कि, मंगलमयी जगदम्बाकी इच्छासे जो कार्य्य होता है सो जीवके मंगलार्थ ही होता है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह देवासुर-संग्राम है। सर्वशक्तिमयीके द्वारा क्षणमात्रमें उनके भ्रूभंगसे ही असुरराजका सर्वनाश और मरण संभव था, परन्तु असाधारण तपःफलभोक्ता असुरराजको अन्तमें स्वर्गलोक पहुंचानेके लिये ही उसको साधारण मृत्यु न देकर सम्मुख रणमें मृत्यु दिलानेके अर्थ, देवताओंको तपभ्रष्ट होकर अधःपतनसे बचानेके लिये और अपना प्रत्यक्ष शक्ति-विलास दिखाकर दैवी जगत्की ओर भक्तोंकी दृष्टि आकृष्ट करानेके अर्थ लीलामयीने ऐसी लीला की थी। अब, यह शंका हो सकती है कि, असुरराजने तो स्वर्गको जीत लिया था, पुनः उसको स्वर्गमें पहुंचाना इसका क्या तात्पर्य्य है? समाधान यह है कि, असुरगण अपने तपःप्रभावसे तपोहीन देवराज सेनाको परास्त करके केवल तृतीय ऊर्ध्वलोक तक जा सकते हैं, जहां देवराजकी राजधानी है; उससे ऊपरके लोकोंमें नहीं जा सकते हैं। असुरयोनि त्याग करनेके अनन्तर विशेषदेवयोनि प्राप्त करके असुरगण उससे भी उच्च लोकोंमें पहुंच कर पवित्र दिव्य भावोंको प्राप्त हो सकते हैं, यही इसका तात्पर्य्य है ॥१८–१९॥

टीका—कृपा और निष्ठुरता, ये दोनों विरुद्ध वृत्तियां हैं। जैसे दिन और रात, ज्ञान एवं अज्ञान, अन्धकार तथा प्रकाश एक दूसरेके विरोधी होनेके कारण एकाधारमें नहीं रह सकते हैं, उसी प्रकार निष्ठुरता और कृपा एक ही समयमें नहीं रह सकती हैं। परन्तु जीवमें जो असम्भव है, ईश्वरीमें वह सम्भव है। क्योंकि, वे असम्भवको सम्भव करने वाली हैं। वे ही एक ओर अविद्या बनकर जीवको फंसाती हैं, दूसरी

नमें अन्यत्र इसका दृष्टान्त नहीं है ॥ २२ ॥ तुमने युद्धमें शत्रुओंको विनाश करके त्रिलोकका परित्राण किया है, शत्रुगण भी तुम्हारे द्वारा इस प्रकार युद्धमें प्राणत्याग करके स्वर्गगामी हुए हैं, हम लोगोंका भी उद्धत असुरकुल-जनित भय दूर हुआ है। इसलिये तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि ! शूलसे हमारी रक्षा करो, हे अम्बिके ! तुम खड्गके द्वारा, घण्टाध्वनिके द्वारा, तथा धनुर्ज्या-टङ्कारके द्वारा हम लोगोंकी रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे चण्डिके ! तुम अपना शूल घुमाकर पूर्व, पश्चिम, दक्षिण एवं उत्तर दिशाओंमें हमारी रक्षा करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे जो सब सौम्यरूप एवं भयानक रूप त्रिलोकमें विराजमान हैं, उनके द्वारा हमारी तथा जगत्की रक्षा करो ॥ २६ ॥ हे अम्बिके ! खड्ग, शूल, गदा आदि जो शस्त्र तुम्हारे करपल्लवमें सुशोभित हो रहे हैं, उनके द्वारा हमारी सब ओरसे रक्षा करो ॥ २७ ॥ ऋषि बोले ,—जगद्धात्री देवी इस प्रकारसे देवताओंके द्वारा स्तुता एवं नन्दनवन-सम्भूत पुष्पों तथा गन्धानुलेपनके द्वारा अर्चिता हुईं ॥ २८—२९ ॥ तब सब देवताओंने भक्ति पूर्वक धूप प्रदान किया, उस समय प्रसन्न होकर सुमुखी देवीने प्रणत देवताओंसे कहा ॥ ३० ॥ देवी बोलीं,—हे देवतागण ! मैं तुम लोगोंकी स्तुतिसे प्रसन्न हूं, अतएव तुमलोग अभीष्ट वरकी प्रार्थना करो, वह मैं प्रेमपूर्वक देती हूं ॥ ३१—३२॥ देवतागण बोले-हे देवि ! आपने हमारे शत्रु महिषासुरको विनाश करके सब कुछ किया है और कुछ अव-शिष्ट नहीं है ॥ ३३—३४ ॥ हे महेश्वरि ! यदि आप कृपा करके हमलोगोंको वर देना ही चाहती हैं, तो यही हमलोगोंकी प्रार्थना है कि, हमलोगोंके इसी प्रकार विपत्तिग्रस्त हो आपके स्मरण करने पर आप हमलोगोंकी उस विपत्तिसे रक्षा करेंगी ॥ ३५ ॥ हे निर्मलमुखि ! आपसे एक और भी प्रार्थना करते हैं कि, जो मनुष्य आपकी इस स्तुतिका पाठ करके आपको प्रसन्न करे, उसके धनपुत्र-कलत्रादिका अभ्युदय हो ॥ ३६—३७ ॥ ऋषि बोले,—देवताओंके इस प्रकारसे अपने लिये एवं जगत्के लिये देवीको प्रसन्न करने पर "ऐसाही

ओर विद्या बनकर जीवको मुक्त करती हैं। इसी उदाहरणके अनुसार कर्मकी नियन्त्री सर्वदर्शी और सर्व-जीवहितकारिणी होनेके कारण वर्त्तमान समयको देखते हुए उनका आचरण निष्ठुरताका होनेपर भी भविष्यत् विचारसे उनकी वह निष्ठुरता असुरोंके लिये मंगलका कारण है। इससे उनके चित्तमें कृपा और बाहरी वर्त्तावमें निष्ठुरता होना सिद्ध ही है। ज्ञानकी पूर्णता, शक्तिकी पूर्णता और कर्मगतिकी अभिज्ञताकी पूर्णताके विना यह हो नही सकता, ऐसा विचार कर देवताओंने जगदम्बाकी स्तुतिमें ऐसे शब्द कहे हैं ॥ २२ ॥

टीका—अपने अभ्युदय और निःश्रेयसके लिये जो धर्म कार्य्य किया जाता है, उसको यज्ञ कहते हैं और जगत्के अभ्युदय तथा निःश्रेयसके लिये जो धर्मकार्य्य किया जाता है, उसको महायज्ञ कहते हैं। यज्ञ और महायज्ञ अनेक प्रकारके होते हैं; यथा—दानयज्ञ, तपयज्ञ, कर्मयज्ञ, उपासनायज्ञ और ज्ञान यज्ञ। इन यज्ञोंके अन्तर्भाव अनेक हैं, जिनको किसी किसी महर्षिने बहत्तर श्रेणियोंमें विभक्त किया है।

होगा" कहकर भद्रकाली देवी अन्तर्हिता हो गयीं ॥ ३८—३६ ॥ हे भूपते! त्रिलोकका हित चाहनेवाली देवी पूर्वकालमें देवताओंके देहसे जिस प्रकार आविर्भूता हुई थीं, सो कहा ॥ ४० ॥ अब धूम्रलोचनादि दुष्ट दैत्यगण एवं शुंभ निशुंभके वधके लिये तथा त्रिलोककी रक्षाके लिये देवताओंकी उपकर्त्री देवी जिस प्रकार गौरीदेहसे आविर्भूता हुई थीं, सो यथायथ रूपसे कहता हूं, सुनो ॥ ४१—४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका शक्रादिस्तुति नामका चौरासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ॥

पचासीवां अध्याय।

ऋषि बोले,—प्राचीन कालमें शुम्भ निशुम्भ नामक दो असुरोंने गर्व एवं बलके आश्रयसे इन्द्रका त्रिलोकाधिपत्य तथा यज्ञभाग छीन लिया था ॥ १–२ ॥ उन दोनोंने सूर्य्य, चन्द्र, कुवेर, यम एवं वरुण देवके अधिकारोंको अपने अधीन कर लिया था ॥ ३ ॥ तब शुंभ और निशुंभ ही वायु और अग्निके कार्य्य करने लगे ॥ ४ ॥ अनन्तर देवतागण इस प्रकारसे तिरस्कृत होकर एवं पराजित होकर स्वकीय-राज्यसे भ्रष्ट होगये। उस समय महाअसुर शुंभ निशुंभके द्वारा अधिकारच्युत एवं स्वर्गसे वहिष्कृत होकर देवताओंने अपराजिता देवीका स्मरण किया ॥ ५ ॥ एवं सोचने लगे कि, देवीने पहले हमलोगोंको वर प्रदान किया है कि, तुम लोगोंके स्मरण करते ही मैं आविर्भूता होकर तत्क्षणात् तुम लोगोंकी विपत्ति दूर करूंगी ॥ ६ ॥ इस प्रकार सोचकर पर्वतेश्वर हिमालय पर जाकर देवतागण विष्णुमाया देवीकी स्तुति करने लगे ॥ ७ ॥ देवतागण बोले,—तुम प्रकाशशीला हो, तुम महादेवी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, तुमको प्रणाम है, तुम मूल प्रकृति हो, तुम पालनकर्त्री हो, तुमको वार वार प्रणाम है ॥ ८–६ ॥ तुम भयानक हो. तुम नित्या हो, तुम ही गौरी हो, तुम धात्री हो, तुमको प्रणाम है, तुम ज्योत्स्नारूपिणी हो, तुम इन्दुरूपिणी हो, तुम आनन्दरूपिणी हो, तुमको प्रणाम है ॥ १० ॥ तुम मंगलरूपिणी हो, तुम सम्पद्रूपिणी हो, तुम सिद्धिरूपिणी हो, तुमको हम विनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, तुम

यह देवताओंका उपासनायज्ञ था। और जगत् कल्याण बुद्धिसे यही महायज्ञ भी था। जब दैवीशक्ति और आसुरीशक्ति, ये दोनों अपने अपने जगह कार्य्य करें, दोनोंका सामञ्जस्य रहे, एक दूसरेका अधिकार छीनने न पावे, तभी चतुर्दशभुवनमें धर्मकी स्थापना हो सकती है और बल, ऐश्वर्य, बुद्धि और विद्या आदि प्रकाशित रह कर सुख और शान्ति विराजमान रह सकती है ॥ ३९ ॥

अलक्ष्मीरूपा हो, पुनः तुम्हीं राजलक्ष्मीरूपा हो, तुम माहेश्वरी हो, तुमको बार बार प्रणाम है ॥ ११ ॥ तुम दुर्गम्या दुर्गा हो, पुनः तुमही दुर्गपारकर्त्री हो, तुम सबकी कारण हो, तुम प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुम कृष्ण वर्ण हो, तुम्हीं धूम्रा हो तुमको सतत नमस्कार है ॥१२॥ तुम अति मधुरा हो, पुनः तुम्हीं भयानकरूपधारिणी हो, तुमको प्रणत भावसे बार बार प्रणाम है। तुम जगत् प्रतिष्ठारूपिणी हो, तुमको प्रणाम है। तुम देवी हो, तुम क्रियारूपिणी हो तुमको पुनः पुनः नमस्कार है ॥ १३ ॥ जो विष्णुमाया रूपसे प्राणिमात्रमें विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १४-१६ ॥ जो देवी समस्त प्राणियोंमें चेतनारूपसे विद्यमान हैं, उनको बार बार प्रणाम है ॥ १७-१६ ॥ जो देवी सब प्राणिमात्रमें बुद्धिरूपसे विराजमान हैं, उनको बार बार नमस्कार है ॥ २०-२२ ॥ जो देवी सब भूतोंमें निद्रारूपसे विराजमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २३-२५ ॥ जो देवी सब भूतोंमें क्षुधा रूपसे विराजमान हैं उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ २६-२८ ॥ जो समस्त प्राणियोंके हृदयमें छायारूप अन्धकारसे अर्थात् अविद्या रूपसे विद्यमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ २६-३१ ॥ जो देवी सब भूतोंमें शक्तिरूपसे विद्यमान हैं उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ३२-३४ ॥ जो देवी सब भूतोंमें तृष्णा (वासना) रूपसे वर्त्तमान हैं, उनको बारम्बार प्रमाण है ॥ ३५-३७ ॥ जो समस्त प्राणियोंके अन्तःकरणमें क्षमारूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम हैं ॥ ३८-४० ॥ जो देवी अखिल-प्राणियोंमें जातिरूपसे अवस्थान करती हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥४१-४३॥ जो देवी प्राणियोंमें लज्जारूपिणी हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ४४-४६ ॥ जो देवी सबभूतोंमें शान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रमाण है ॥ ४७-४६ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥५०-५२॥ जो देवी सब भूतोंमें कान्तिरूपसे विद्यमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ५३-५५ ॥ जो देवी सब भूतोंमें लक्ष्मीरूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार

टीका—पुण्यफलसे लक्ष्मी और पापफलसे अलक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। पुण्य और पाप शुभ और अशुभ कर्मफल, ये सब ही शक्तिके विलास हैं इस कारण दोनों ही कहा गया है ॥ ११ ॥

टीका—कृष्णा और धूम्रा ये दोनों सम्बोधन अति रहस्यपूर्ण हैं। कृष्ण कालेको और धूम्र धुआंके रंगको कहते हैं। प्रकृति-शक्तिका प्राधान्य कृष्णामें है और शुद्ध सत्त्वमें कार्य्य नहीं होता है। जब शुद्धसत्त्वसे कार्य्य प्रारम्भ होता है, उस समय उस उज्ज्वलतामें जो थोड़ीसी श्यामता आजाती है, वही धूम्राका रहस्य है। इन दोनोंका योगी जन समाधि द्वारा अनुभव करते हैं। सौम्य और रौद्र अर्थात् भयानक ये दोनों विरुद्ध रसके बोधक हैं। रसरूपा भगवतीमें ही एकाधारमें इनका रहना सिद्ध है। जैसा कि, पहले कृपा और निष्ठुरता वृत्तिके विषयमें कहा गया है। ब्रह्मसे ब्रह्मप्रकृतिका जो सम्बन्ध है, प्रकृतिसे त्रिगुणका वही सम्बन्ध है और त्रिगुण-तरङ्गसे ही कर्मकी उत्पत्ति होती है। इस कारण वे क्रियारूपिणी हैं ॥ १३ ॥

प्रणाम है ॥ ५६-५८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ५९-६१ ॥ जो देवी प्राणियोंके हृदयमें स्मृतिशक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥ ६२-६४ ॥ जो देवी प्राणियोंमें दयारूपसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६५-६७ ॥ जो देवी तुष्टिरूपसे प्राणियोंमें विराजमान हैं उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ६८-७० ॥ जो देवी सब भूतोंमें मातृरूपसे विद्यमान हैं, उनको पुनः पुनः प्रणाम है ॥७१-७३॥ जो देवी सब भूतोंमें भ्रांतिरूपसे विद्यमान हैं, उनको भूयोभूयः नमस्कार है ॥७४-७६॥ जो इन्द्रियोंकी अधिष्ठात्री हैं और जो भूतोंकी अधिष्ठात्री हैं, जो समस्त प्राणिमात्रमें अनुस्यूतभावसे विराजमान हैं, उनको बारम्बार प्रणाम है ॥ ७७ ॥ जो चैतन्यरूपसे सारे जगत्को व्याप्त करके विराजमान हैं, उनको बारम्बार नमस्कार हैं ॥ ७८-८० ॥ पूर्वमें महिषासुरके वधके समय जो देवताओंके द्वारा स्तुत हुई थी, अभी देवेन्द्र जिनकी प्रतिदिन सेवा किया करते हैं; जिनको हम लोग अब भी उद्धत दैत्योंके द्वारा उद्विग्न होकर भक्तिविनम्रभावसे प्रणाम करते हैं, जो स्मरणमात्रसे ही सब विपत्तियोंका विनाश करती हैं, वे कल्याणविधायिनी ईश्वरी सर्वदा हमलोगोंका मंगल करें और विपत्तियोंको दूर करें ॥ ८१-८२ ॥ ऋषि बोले, –हे नृपनन्दन सुरथ! इस प्रकारसे देवतागण स्तुति कर रहे थे, इतनेमें पार्वती देवी देवताओंकी ओरसे होकर गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जाने लगीं ॥ ८३-८४ ॥ उन्होंने समवेत देवताओंसे पूछा कि, आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं? सुन्दर भ्रूवाली भगवतीके पूछते ही उनके अपने शरीर-कोषसे शिवा आविर्भूत होकर बोली; कि ये देवतागण युद्धक्षेत्रमें शुंभ निशुंभके द्वारा पराजित होकर हमारी ही स्तुति कर रहे हैं ॥ ८५-८६ ॥ यह देवी पार्वतीके शरीर-

---

टीका—पूर्वोक्त स्तुतियोंके प्रत्येक स्थलमें पांच वार "नमः" आया है। समाधि-भाषाके शब्द वृथा प्रयुक्त नहीं होते, इस कारण यह समझना उचित है कि, प्रत्येक स्थलमें पांच भावोंको आश्रय करके पांच वार नमस्कार किया गया है। प्रथम, उस वाचकके वाच्यका अधिभूतरूप, दूसरा अधिदैवरूप, तीसरा अध्यात्मरूप, चौथा सबकी कारणभूता सर्वशक्तिमयी मूलप्रकृतिरूप और पांचवां शक्ति और शक्तिमानकी अभेद अवस्था तुरीयरूप, इस प्रकारसे प्रत्येकमें पांच नमस्कार किये गये हैं, जिससे भक्तका अन्तःकरण उस परमपदमें लय हो सके ॥ ८० ॥

टीका—ब्रह्म और ब्रह्मस्वरूपिणी जगज्जननी दोनोंमें अभेद है, दोनों एक ही हैं। ब्रह्म, ईश्वर, विराट् पुरुष और ब्रह्मशक्ति ये जो भेद हैं, ये भेद महामायाके महिमाप्रकाशक और वैभवके समर्थक हैं। दैवी-मीमांसादर्शनने यह सिद्ध किया है कि, सगुण एवं निर्गुणका जो भेद है, वह केवल ब्रह्मशक्तिकी महिमाके लिये ही है। जब तक वह महाशक्ति स्वस्वरूपके अङ्कमें छिपी रहती है, तब तक सत् चित् और आनन्द इन तीनोंका अद्वैतरूपसे एक रूपमें अनुभव होता है, वह तुरीयाशक्ति जब स्वस्वरूपमें प्रकट होकर सत् और चित्को अलग अलग दिखाती हुई आनन्द विकासको उत्पन्न करती हैं, तब वह पराशक्ति कहाती है,

कोषसे उत्पन्न होनेके कारण जगत्में "कौशिकी" नामसे विख्यात हुई ॥ ८७ ॥ अनन्तर शरीरकोषसे कौशिकीके उत्पन्न होनेसे पार्वती कृष्णवर्णा हो गयीं, तब वे हिमालयको आश्रय करके रहीं और कृष्णवर्णा हो जानेसे "कालिका" नामसे विख्यात हुईं ॥ ८८ ॥ अनन्तर कौशिकी अम्बिका परम रमणीय रूप धारण करके विराजमान हुईं, उस समय शुंभ निशुंभके सेवक चण्ड एवं मुण्डने उनको देखा ॥ ८९ ॥ चण्ड और मुण्डने शुंभसे कहा कि, महाराज! अति रमणीया एक कोई स्त्री हिमालयको अपनी प्रभासे प्रकाशित करती

वही पराशक्ति जब स्वरूप ज्ञान उत्पन्न कराकर जीवके अस्तित्वके साथ स्वयं भी स्वस्वरूपमें लय हो निःश्रेयसका उदय करती है, तब उसको पराविद्या कहते हैं। ये ही दोनों अवस्थाएं सृष्टि-विलासकी उत्पत्ति और लयका कारण हैं। औपनिषदिक ये अवस्थाएं केवल समाधिगम्य हैं। इस विज्ञानको अन्य प्रकारसे समझने योग्य है। स्वस्वरूपमें जब वह तुरीया रूपधारिणी महामाया सत् भाव और चित् भाव इन दोनोंको अलग अलग अनुभव करानेके लिये आनन्द विलासरूपी दृश्यको प्रकट करने लगती है, तब उसीका नाम पराशक्ति है और जब जीवके निःश्रेयस प्राप्तिके समय आत्मज्ञान उदय कराकर वह स्वयं स्वस्वरूपके अङ्कमें छिप जाती हैं, तव उसी अवस्थाका नाम पराविद्या है, यह उपनिषद् कथित रहस्य है। वस्तुतः ये दोनों अवस्थाएं तुरीयाशक्तिके ही भेद हैं और "अहंममेति" वत् ब्रह्म और ब्रह्मशक्तिमें भेद नहीं है, यह पहले ही कहा गया है। इन्हीं दोनों तुरीयाशक्तिके अनन्त वैभवयुक्त रूपोंको सप्तशती गीताके इस स्थलमें कौशिकी और कालिका रूपसे अभिहित किया है। यह भी समाधिगम्य औपनिषदिक रहस्य है कि, सत् चित् और आनन्द इन तीनों भावोंमेंसे अस्ति-भावसे प्रकृतित्व और भाति भावसे पुरुषत्व और दोनोंके विलाससे आनन्द-वैभवरूपी दृश्य-प्रपञ्च प्रकट होता है। प्रकृति सद्भावके आश्रयसे ही परिणामिनी होती है सुतरां सद्भावमय ही नगराज हिमालयका अध्यात्म स्वरूप है। वह प्रकृतिप्रसूत जड़मय दृश्यकी प्रतिकृति भी है और हिमालय सब प्रकारके ऐश्वर्य्योंकी खानि होनेके कारण पुराण कथित गौरीका पित्रालय भी है और सद्भावाश्रित अधिदैवको पुराणशास्त्र गौरीके पिता रूपसे वर्णन करता है, सो भी विज्ञान सिद्ध ही है। देवासुर-संग्रामका त्रिविध स्वरूप पहले ही निर्णय किया गया है। इंद्रियसुख-मूलक अविद्याजनित अस्मिता, राग-द्वेष, अभिनिवेशके द्वारा जो वृत्तियां अन्तःकरणको तरङ्गायित करती रहती हैं, वही अवस्था आसुरी शक्तिके प्राधान्यसे आध्यात्मिक स्वरूप है। दूसरी ओर इस आसुरी अवस्थाको परास्त करके जयलाभ करनेके अभिप्रायसे शक्ति-विलास-क्षेत्ररूपी हिमालयमें जाकर पराशक्ति और पराविद्यारूपिणी जगज्जननी महामायाके निकट पहुंच कर जो वृत्तियां स्तुति करनेमें समर्थ होती हैं, अन्तःकरणकी इसी अवस्थासे देवताओंके अध्यात्मरूपका सम्बन्ध समझना उचित है। स्वरूपज्ञान-प्रवाह गंगाका अध्यात्म स्वरूप है। स्वरूपके अङ्कमें स्थित तुरीयाशक्तिरूपिणी जगज्जननीका ऐसी गंगामें स्नान करना स्वाभाविक है। भक्तोंके आर्त्तनादसे बहिर्दृष्टि होते ही वह ब्रह्मशक्ति दो स्वरूपमें विभक्त हुई और कौशिकी देवताओंके भय निवारणमें रत हुई। द्वैत सम्बन्ध स्थापन होते ही जो चित्भावमें सत्भावका प्राधान्य है, वही देवीका श्यामवर्ण होना है। यह अध्यात्म-रहस्य योगीजन—दुर्लभ और उपनिषद्का सार है। इससे यह नहीं समझना उचित है कि, इस गाथाका अधिदैव और अधिभूत-रहस्य नहीं है अथवा देवासुर-संग्राम नहीं हुआ था। यह त्रिविध भावमय-रहस्य पहले लक्ष्य कराया गया है ॥ ८४-८८ ॥

हुई अवस्थान कर रही है ॥ ९० ॥ वैसा सुन्दररूप शायद कभी किसीने नहीं देखा है, हे असुरेन्द्र ! आप एक बार जानें कि, यह स्त्री कौन है ? एवं जान कर आप इसको ग्रहण करें ॥ ९१ ॥ हे दैत्येन्द्र ! यह स्त्रियोंमें रत्नरूपा है, इसके प्रभापटलसे सारा दिङ्मण्डल भासमान हो रहा है, आप चाहें तो उसको देख सकते हैं ॥ ९२ ॥ हे प्रभो ! त्रिलोकमें जो कुछ श्रेष्ठ हस्ती, अश्वादि रत्न तथा महापद्मादि मणि हैं वे सभी इस समय आपके गृहमें सुशोभित हैं ॥ ९३ ॥ आप हस्ती श्रेष्ठ ऐरावत, पारिजातका वृक्ष तथा उच्चैःश्रवा नामक प्रसिद्ध अश्व इन्द्रके यहांसे लाये हैं एवं अतिअद्भुत हंसवाहनयुक्त ब्रह्माका विमान भी आपके आङ्गनमें सुशोभित है ॥ ९४-९५ ॥ आप यह महापद्म नामक निधि धनपति-कुबेरके पाससे लाये हैं, किंजल्किनी नामक माला भी समुद्रने आपको दिया है, जिसका पद्म कभी मलिन नहीं होता है ॥९६॥ आपके गृहमें वरुणका छत्र शोभायमान हो रहा है, जिससे सर्वदा स्वर्ण प्रस्रवण होता है, पुनः देखिये प्रजापतिका श्रेष्ठ रथ भी आपके गृहमें विद्यमान है ॥ ९७ ॥ आपने यमकी उत्क्रान्तिदा नामिका शक्ति भी अपहरण करके अपने यहां रक्खी है। वरुणदेवका पाश और समुद्रसे उत्पन्न सारे रत्न समूह भी आपके भ्राता निशुम्भके हस्तमें शोभायमान हैं ॥ ९८ ॥ अग्निने भी अदाह्य दोनों वस्त्र आपको प्रदान किये हैं ॥ ९९ ॥ दैत्यपते ! इस प्रकारसे यावत् श्रेष्ठ रत्न आपने स्वायत्त किये हैं तो इस मंगलमयी रत्नस्वरूपा स्त्रीको आप क्यों नहीं ग्रहण करते हैं ? ॥ १०० ॥ ऋषिबोले,—उस समय शुम्भने इस प्रकार चण्ड और मुण्डकी बात सुनकर देवीके पास सुग्रीव नामक महासुर दूतको भेजा ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ और उससे कहा कि, तुम हमारे कथनके अनुसार देवीको कहना तथा जिससे वह प्रेम सहित शीघ्र चली आवे ऐसा करना ॥ १०३ ॥ अनन्तर दूत अतिरमणीय हिमालय प्रदेश पर जहां देवी विराजमान थीं, जाकर अति मधुर वाक्य मृदुल भावसे बोलने लगा ॥ १०४ ॥ दूत बोला,—हे देवि ! दैत्यराज शुंभ त्रिलोकका राजा है, मैं उसीके द्वारा भेजा हुआ तुम्हारे पास आया हूं ॥ १०५-१०६ ॥ जिसकी आज्ञा सब देवयोनियोंमें निर्बाध चलती है, जिन्होंने सब शत्रुओंको निःशेषरूपसे पराजित किया है, उसी शुंभने आपको जो कहा है, सो सुनिये ॥ १०७ ॥ समस्त त्रैलोक्य हमारे द्वारा रक्षित है, देवगण हमारे आज्ञाधीन हैं, मैं सारे देवताओंका यज्ञभाग पृथक् पृथक् भावसे भोग करता हूं ॥ १०८ ॥ त्रिलोकमें जो कुछ श्रेष्ठ रत्न हैं वे सब हमारे पास हैं, उसी प्रकार हस्तीश्रेष्ठ ऐरावतादि हमारे ही वशवर्त्ती हैं। क्षीरोद सागर मथन करके जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न देवताओंने पाया था और अबतक जो इन्द्रका वाहन था अब उसे भी अपहरण करके मुझको ही समर्पण किया है ॥ १०९-११० ॥ हे देवि ! अधिक क्या, देव, गन्धर्व, वासुकि आदि नागोंके जो कुछ श्रेष्ठ

रत्न हैं, वे सभी इस समय हमारे पास हैं ॥ १११ ॥ हे देवि ! हम रत्नभोगी हैं, अतएव रत्नभूता आप हमलोगोंका आश्रय करें ॥ ११२ ॥ हे चंचलापाङ्गि ! तुम स्त्रीरत्नरूपा हो, इसलिये तुमको कहता हूँ, तुम मुझको अथवा मेरे प्रबल पराक्रमशाली भाई निशुंभको आश्रय करो ॥ ११३ ॥ मुझको आश्रय करनेसे अतुल परम ऐश्वर्य्योंकी अधिकारिणी होगी इत्यादि सोचकर मेरा आश्रय करो ॥ ११४ ॥ ऋषि बोले, इस प्रकार दूतके देवीसे कहने पर मंगलमयी जगद्धात्री भगवती दुर्गा थोड़ा मुस्कराकर गम्भीर भावसे बोलीं ॥ ११५-११६ ॥ शुम्भ निशुम्भ त्रिलोकके सम्राट् हैं, यह जो तुमने कहा सो सत्य है, तुमने मिथ्या कुछ नहीं कहा ॥ ११७-११८ ॥ किन्तु अल्पबुद्धिवशात् पूर्वमें मैंने एक प्रतिज्ञाकी थी, उसको मिथ्या कैसे करूं ? वह प्रतिज्ञा सुनो ॥ ११९ ॥ जो युद्धमें मेरे दर्पको नष्ट करके मुझे पराजित कर सकेगा और जो संसारमें मेरे समान बली है, वही मेरा पति होगा ॥ १२० ॥ अतएव अब देरी करनेकी आवश्यकता नहीं है, शुम्भ अथवा निशुम्भ शीघ्र ही युद्धमें मुझे पराजित करके मेरा पाणिग्रहण करें ॥ १२१ ॥ दूत बोला—हे देवि ! आप इस प्रकार अभिमानकी बात हमारे सामने न करें, क्योंकि संसारमें ऐसा कौन पुरुष है, जो युद्धक्षेत्रमें शुम्भ निशुम्भके निकट ठहर सके ? ॥ १२२-१२३ ॥ हे देवि ! शुम्भ निशुम्भकी तो बात ही क्या है, सब देवतागण एकत्र होकर अन्य दैत्योंके सम्मुख भी युद्धमें ठहर नहीं सकते हैं। तुम स्त्री होकर अकेली किस प्रकार उनके सामने युद्धमें ठहर सकोगी ? ॥१२४॥ इन्द्रादि देवगण युद्ध क्षेत्रमें जिनके निकट ठहर नहीं सके, उन शुम्भादिकोंके निकट तुम स्त्री होकर कैसे जाओगी ? ॥ १२५ ॥ अतः मैं तुमको कहता हूं, तुम शीघ्र ही शुम्भ निशुम्भके निकट चलो, अन्यथा तुम्हारे केश पकड़ कर बलात् तुमको ले जाएंगे, उसमें तुम्हारा गौरव अवश्य ही नष्ट होगा ॥ १२६ ॥ देवी बोलीं, शुम्भ बलशाली है; निशुम्भ भी अतिवीर्य्यवान् है, यह सत्य है किन्तु मैंने जो बिना विचारे पहले प्रतिज्ञा कर डाली है, उसके लिये क्या करूं ? अतएव तुम जाकर मैंने जो कहा अतिआदर पूर्वक वह सब असुरराजसे कहो वे जो उचित समझें सो करें ॥ १२७-१२९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका देवीदूत संवाद नामक पचासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

छियांसीवां अध्याय।

ऋषि बोले–दूतने इस प्रकार देवीकी बात सुन कर क्रोधित हो दैत्यराजके निकट आकर सब कहा ॥ १–२ ॥ अनन्तर दैत्यराजने दूतकी वह सब बात सुन क्रोधित होकर अन्यतम दैत्यपति धूम्रलोचनसे कहा ॥ ३.॥ हे धूम्रलोचन! तुम शीघ्र ही अपने सैन्योंके साथ जाकर उस दुष्टा स्त्रीका बाल पकड़ कर घसीट ले आओ ॥ ४ ॥ यदि उसकी रक्षा करनेके लिये कोई दूसरा खड़ा हो, तो वह देव, यक्ष, या गन्धर्व ही क्यों न हो, उसको मार डालना ॥ ५ ॥ ऋषि बोले,—अनन्तर दैत्य धूम्रलोचन शुम्भकी आज्ञा पाते ही उसी समय साठ हजार असुर सैन्योंको साथ लेकर चला गया ॥ ६–७ ॥ तब धूम्रलोचन हिमाचल-निवासिनी उस देवीको देख कर उच्च स्वरसे बोला,—तुम शीघ्र ही शुम्भ निशुम्भके निकट चलो ॥ ८ ॥ यदि प्रेम सहित हमारे स्वामीके समीपं नहीं जाओगी, तो अभी तुमको बलात् बाल पकड़ कर घसीट ले चलेंगे ॥ ९ ॥ देवी बोलीं,—आप दैत्यसम्राट् शुम्भके द्वारा भेजे हुये आये हैं, स्वयं भी बलवान् हैं एवं सैन्य सहित हैं, अतएव बलपूर्वक मुझको ले जाने पर मैं क्या करूंगी? ॥ १०–११ ॥ ऋषि बोले,—देवीके ऐसा कहने पर असुर धूम्रलोचन देवीकी ओर धावित हुआ, अनन्तर देवीने हुङ्कार द्वारा उसको भस्मीभूत कर डाला ॥ १२–१३ ॥ अनन्तर असुर-सैन्य क्रोधित होकर शक्ति एवं कुठार अम्बिका देवी पर फेंकने लगा ॥ १४ ॥ उस समय देवीके वाहन सिंहने भी स्कन्धरोमावली हिलाते हुए अति-भयानक नाद करके असुरसेनाओंके बीचमें प्रवेश किया ॥ १५ ॥ तथा किसी किसी असुरको कराघात, किसी किसी असुरको मुखप्रहार, किसी किसी असुरको अधरके द्वारा आक्रमण करके आहत किया ॥ १६ ॥ कितने ही का नखके द्वारा पेट फाड़ डाला, अन्य

टीका— असुरसम्राट्के इस सामन्तको हुङ्कार द्वारा भस्म करनेका जो यह अधिदैव चरित्रवर्णन है, इसका अध्यात्मभाव अतिरहस्य पूर्ण और भक्तोंके लिये आनन्द-जनक है। दैवीसम्पत्तिके अधिकारी उन्नत व्यक्तिके अन्तःकरणमें जब कोई इन्द्रिय-आसक्ति मूलक असद् वृत्ति प्रकट होती है, उस समय भगव-चरणोंमें युक्त भक्त जब मनको डाटता है, तब तुरंत ही मन सावधान होजाता है और उसकी आसुरी वृत्ति भस्मीभूत होजाती है। अन्तर्मुख भक्तगण प्रायः अपने अन्तःकरणमें इस प्रकारसे धूम्रलोचनका वध होना अनुभव किया करते हैं, परन्तु जब वार वार असुरका प्राकट्य अन्तःकरणमें होता है, तब युद्ध करना पड़ता है। यदि वह युद्ध कूटस्थके आधिपत्यमें अथवा इष्टको सम्मुख करके किया जाय, तो सदा जयही हुआ करती है। अधिभूत जगत्में तो इस प्रकार धूम्रलोचनका वध प्रायः देखनेमें आता है। आसुरी प्रजाको पहली दशामें दैवीसम्पत्तियुक्त व्यक्ति धमका कर ही उसकी आसुरी चेष्टाका दमन कर देता है ॥ १३ ॥

कितने असुरोंका चपेटाघातसे शिर विच्छिन्न कर दिया ॥ १७ ॥ तथा अन्यान्य असुरोंका बाहु एवं मस्तक छिन्न करके रोमावलियोंको कम्पित करता हुआ, उन लोगोंके पेटसे रक्त पान करने लगा ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे क्षणमात्रमें ही अतिक्रोधी देवीके वाहन सिंहने सब असुर सैन्योंका विनाश कर डाला ॥ १९ ॥ अनन्तर देवीने धूम्रलोचनको तथा उनके सिंहने सब असुर-सैन्यको नष्ट कर दिया, यह सुन कर दैत्यराज शुम्भ क्रोधित हो उठा, उस समय क्रोधसे उसका ओठ स्फुरित होने लगा, अनन्तर शुम्भने महासुर चण्डमुण्डको आज्ञा दी ॥ २०-२१ ॥ हे चण्ड ! मुण्ड ! तुम बहुत सैन्योंको साथ लेकर उस रमणीके निकट जाके उसको शीघ्र ले आओ ॥ २२ ॥ उसका केश पकड़ कर अथवा बान्ध कर ले आना। यदि किसी प्रकार यह भी न कर सको तो, तुम सब असुर मिल कर नाना प्रकारके अस्त्रोंसे उसको प्रहार करना ॥ २३ ॥ उस स्त्रीके हत-प्राय होने पर, सिंहको मार डालनेके अनन्तर उस अम्बिकाको बान्ध करके ले आना ॥ २४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका
धूम्रलोचन वध नामक छियासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

सत्तासीवां अध्याय ।

—०:*:०—

ऋषि बोले,— शुम्भकी आज्ञा पाते ही चण्ड मुण्ड आदि दैत्यगण हस्ती, अश्व, रथ तथा पदातिदलसे परिवेष्टित हो अस्त्र शस्त्रसे तैयार होकर गये ॥ १-२ ॥ अनन्तर हिमालयके कांचन शृंगके ऊपर सिंहपर उपविष्टा ईषत् हास्यवदना देवीको देखा ॥ ३ ॥ तब उद्धत चण्ड-मुण्ड आदि प्रधान दैत्यगण धनु, असि धारण करके देवीके निकट जाकर उनको पकड़नेकी चेष्टा करने लगे ॥ ४ ॥ अनन्तर अम्बिकाने उन शत्रु असुरोंके प्रति क्रोध किया, क्रोधसे उनका मुखमण्डल रक्तवर्ण हो उठा ॥ ५ ॥ तब उनके भीषण भृकुटी करने पर ललाटदेशसे भीषणवदना असि एवं पाशधारिणी काली निकलीं ॥ ६ ॥ वे विचित्र लोहमययष्टिधारिणी नरमुण्डमालासे विभूषित और व्याघ्रचर्म पहनी हुई थीं और शरीरमें मांस न होनेसे अतिभयानक आकृति मालूम होरही थी ॥ ७ ॥ उनका मुखमण्डल अति-विस्तृत तथा लोल जिह्वा होनेसे देखतेही भय होता था। इनका नेत्र धसा हुआ और लाल था

टीका—पहली इस दशामें तमोन्मुख रजोगुणको शुद्ध रजोगुण ही नाश कर सकता है । जगतमें भी देखनेमें आता है कि, अनेक तामसिक प्रजाको एक ही राजसिक व्यक्ति दबा देता है । इसी आधिभौतिक दृष्टान्तसे आध्यात्मिक और आधिदैविक रहस्य समझना उचित है ॥ १५-१६ ॥

और इन्होंने गर्जनसे दिङ्मण्डलको परिव्याप्त किया था ॥ ८ ॥ एवं अतिवेगसे आकर असुर सैन्योंको आहत करती हुई भक्षण करने लगीं ॥ ९ ॥ अनन्तर पार्श्वरक्षक, अग्ररक्षक, योद्धा एवं घण्टा आदि आभरण सहित हाथियोंको एक हाथसे पकड़ कर मुखमें डालने लगीं ॥ १० ॥ तथा अश्व सहित अश्वारोही और सारथि सहित रथको एक हाथसे पकड़, मुखमें डालकर अतिभयानक रूपसे चर्व्वण करने लगीं ॥ ११ ॥ किसीका केश पकड़ कर, किसीका गला पकड़ कर तथा पैरके द्वारा आक्रमण करके और किसीको वक्षःस्थल द्वारा कुचल डाला ॥ १२ ॥ तब असुरोंके द्वारा अस्त्र शस्त्र चलाए जाने पर उन्होंने उन सबोंको क्रोधसे मुंहमें डाल कर दांत द्वारा विचूर्ण कर दिया ॥ १३ ॥ इस प्रकारसे बलवान् स्थूलकाय असुर सैन्योंमें किसीको मर्दित, किसीको भक्षित तथा अन्यान्य कितने ही को भगा दिया ॥ १४ ॥ कितने ही को खड्ग द्वारा निहत किया, एवं अन्य कितने ही असुर खट्वाङ्ग द्वारा ताड़ित होकर विनाशको प्राप्त हुए तथा अन्य कुछ असुरोंको दांतके अग्रभागके आघातसे विनष्ट कर दिया ॥ १५ ॥ इस प्रकारसे क्षणमात्रमें ही असुर सैन्योंको नष्ट होते देख चण्ड अतिभीषण कालीकी ओर धावित हुआ ॥ १६ ॥ अनन्तर महासुर चण्डने भी अतिभीषण बाण वर्षण करके भीषणनयना कालीको आच्छन्न कर दिया, मुण्डासुरने भी चक्र फेंक कर उनको ढांक दिया ॥ १७ ॥ उस समय असुरके शरसमूह देवीके मुखमण्डलमें प्रविष्ट होकर मेघमें प्रविष्ट बहु सूर्य्यबिम्बके समान सुशोभित होने लगे ॥ १८ ॥ तब

टीका—पहले ही ब्रह्मप्रकृतिके चार स्वरूप अर्थात् स्थूल सूक्ष्म कारण और तुरीयका वर्णन हो चुका है। उनके इन चार रूपोंमेंसे भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी जननी जगदम्बा कारणशक्ति पाश, अङ्कुश, वर और अभयधारिणीका प्रथम तमोमयरूप प्रथम चरित्रमें प्रकाशित होचुका है। उन्हीं महासरस्वती महाकाली महालक्ष्मी रूपिणीकी रजःप्रधान महिमा दूसरे चरित्रमें प्रकाशित हुई है। इस तृतीय चरित्रमें उनकी सत्त्वप्रधान लीलाका वर्णन है। सर्व आश्रयभूता तुरीयाशक्तिके दो स्वरूपोंमेंसे कौशिकी देवी ही देवासुर-संग्राममें लिप्त होती हैं। दूसरे कालिका स्वरूपके साथ इस चरित्रमें वर्णित कालीरूपका सम्बन्ध नहीं समझना उचित है। पूर्व कथित कालिका तुरीया शक्तिभावसे प्रकट हुई थीं, यह चामुण्डा काली युद्धमें कौशिकी देवीके ललाटसे प्रकट हुई है। सत्त्वगुणके प्राधान्यकी अवस्थामें वैराग्यविभूतिसुशोभित तत्त्वज्ञानकी प्रबलावस्था ही इन चामुण्डाकाली देवीका अध्यात्मस्वरूप है। उनकी कृपा होनेपर इन्द्रियलोलुप सब आसुरी सेनायें वाहन सहित उनके कराल वदनमें प्रविष्ट होजाती हैं। यावत् वैषयिक प्रपंच उनका भक्ष्य भी है। तन्त्रोंमें कालिका और चामुण्डा दोनोंका रूप पृथक् पृथक् है। ब्रह्म—शवपर महाकाल, और महाकालको वशीभूत करती हुई उनके वक्षपर स्थित महाकालीका स्वरूप दिखाया गया है एवं चामुण्डाका स्वरूप तो ऊपर वर्णित ही है। ब्रह्मको जड़वत् निश्चेष्ट रखकर अनादि अनन्त महाकालको अपने वशीभूत करके अपने इङ्गितमात्रसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्डका सृष्टि-स्थिति-लय करानेवाली कालिका देवी हैं। परन्तु यह चामुण्डादेवी अन्तःकरणकी उद्दाम इन्द्रियोन्मुख वृत्तिरूप असुर दलको भक्षण करके जीवको निःश्रेयस प्रदान करने वाली हैं ॥ ९–११ ॥

भीषणनादिनी काली क्रोधसे अतिभयानक शब्द करने लगीं, उससे उनकी भयानक दंत पंक्तियोंके द्वारा उनका मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठा ॥ १९ ॥ अनन्तर देवी "हं" ऐसा शब्द करके असि लेकर चण्डासुरकी ओर धावित हुईं तथा बाल खेंचकर तलवारसे उसका शिर काट डाला ॥ २० ॥ चण्डासुरको मृत देखकर मुण्डासुर धावित हुआ, तब देवीने भी खड्ग द्वारा उसको निहत करके पृथिवी पर गिरा दिया ॥ २१ ॥ अनन्तर बचे हुये सैन्य अतिवीर्यशाली चण्ड और मुण्डको निपातित देख कर भयभीत होकर इधर उधर भाग गये ॥ २२ ॥ तब काली चण्ड मुण्डका शिर लेकर भयानक अट्टहास करती हुई चण्डिकाके पास गई और बोली ॥ २३ ॥ मैंने इस युद्धयज्ञमें चण्ड-मुण्ड-नामक महापशु आपको उपहार दिये अब तुम स्वयं शुम्भ निशुम्भको विनाश करोगी ॥ २४ ॥ ऋषि बोले,— देवी चण्डिका चण्ड मुण्डका शिर लेकर आती हुई कालीको देखकर अति मधुर वाक्यसे

टीका—जिस प्रकार कूटस्थ चैतन्यव्यापिनी महादेवीके हुंकारसे धूम्रलोचनका वध हो सकता है, चण्ड मुण्डका वध उस प्रकार नहीं हो सकता है। चण्ड-मुण्डका वध चामुण्डा कालीके द्वारा हो सकता है। आसुरभावजनित राग-द्वेष ही चण्ड-मुण्ड नामक असुर हैं। अधिदैवरूपसम्पन्न दैवराज्यके इन दोनों असुरोंका अध्यात्मरूप यही है। काली देवीका अध्यात्मरूप पहले ही कहा गया है, जिसको विचारनेसे यह जाना जाएगा कि, कालीके द्वारा ये कैसे वध्य हैं। राग और द्वेष ये दोनों रज एवं तमोगुणसम्भूत हैं। रज और तमका समन्वय सत्त्वमें होता है। सत्त्वगुणमें ही सृष्टिकी सामञ्जस्य रक्षा होती है। इसी कारण चण्ड और मुण्ड,दोनोंका शिर सत्त्वगुणमयी महादेवीको काली देवीने उपहार दिया है॥२०–२४॥

टीका—उपासना सम्बन्धसे केवल विष्णु और शिवकी उपासना ही शास्त्रसम्मत है। क्योंकि, मुक्तिप्रसङ्गसे इन दोनोंका ही प्राधान्य है। चित् विज्ञानसे सांख्ययोग और सत् विज्ञानसे कर्मयोग इन दोनोंका वर्णन श्रीगीतोपनिषद्में भली भांति पाया जाता है। सांख्ययोगका फल-प्रदाता भगवान् विष्णु और कर्मयोगफल प्रदाता भगवान् शिव हैं। इसीकारण प्रथम चरित्रमें प्रथमका और तीसरे चरित्रमें दूसरेका सम्बन्ध दिखाया गया है। प्रथममें सृष्टिप्रसङ्ग होनेसे विष्णुको स्वयं युद्ध करना पड़ा था, और तीसरे चरित्रमें लय प्रसङ्ग होनेसे शिवजीको केवल सहायक बनना पड़ा था, क्योंकि, पहले चरित्रमें तमोमयी देवीको केवल सहायता लेनी पड़ी थी, एवं इस तीसरे चरित्रमें प्रत्यक्ष रूपसे युद्ध समाप्त करना पड़ा है। इससे भगवान् विष्णु और भगवान् शिवका आध्यात्मिक स्वरूप लक्षित होगा; परन्तु देवताओंके इन अध्यात्म स्वरूपोंसे कोई इनके अधिदैव और अधिभूत स्वरूपों पर अश्रद्धा न करें। इनके अधिदैव स्वरूपसे सप्तशतीगीता दैवी-शक्ति-सम्पन्न हुई है और इन सबका प्रत्यक्ष अधिभूत रूप षष्ठ एवं सप्तम उपासना लोकोंमें भक्तोंके लिये दर्शनीय है। उपासकगण अपने उपासनाबलसे उन लोकोंमें पहुंच कर कृतकृत्य होते हैं। देवासुर-संग्रामका यह प्रबल युद्ध था, इस कारण सब देवताओंकी शक्तियोंको प्रकट होना पड़ा था। उस समय विवेकरूपिणी शिवदूतीने मुक्तिप्रदाता शिवको दौत्य-कार्यमें प्रवृत्त किया एवं सृष्टिकी सामञ्जस्यरक्षासे प्रकृति-प्रवाहको सरल करनेके लिये असुरोंको एकबार अन्तिम अवसर दिया कि, वे देवताओंके अधिकारको छोड़ कर अपने अधिकारमें चले जायँ ॥ २६–२७ ॥

बोली ॥ २५-२६ ॥ हे देवि ! तुम चण्ड-मुण्डका मस्तक लेकर मेरे निकट आई हो, अतएव तुम जगत्में "चामुण्डा" नामसे प्रसिद्ध होगी ॥ २७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका चण्ड-मुण्ड वध नामक सत्तासीवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

अट्ठासीवां अध्याय ।

ऋषि बोले,—चण्ड, मुण्ड एवं सैन्योंके नष्ट हो जाने पर प्रतापशाली असुरेश्वर शुम्भने क्रोधित होकर सब असुर सैन्योंको युद्धयात्राके निमित्त उद्योग करनेकी आज्ञा दी ॥ १-३ ॥ अभी षड़शीति दैत्य-सेना बहु सैन्योंसे परिवेष्टित हो अस्त्र शस्त्रसे प्रस्तुत होकर जांय और कम्बुकुल सम्भूत चतुरशीति दैत्य सेना भी अपने सैन्योंसे वेशिष्ट होकर जायं। कोटिवीर्य्यनामक असुरकुलसम्भूत पचास, धौम्रवंशीय एक सौ दैत्य मेरी आज्ञासे जायं ॥ ४-५ ॥ और कालक, दौर्हृद, मौर्य्य तथा कालकेय असुरगण मेरी आज्ञासे अतिशीघ्र युद्धके लिये सुसज्जित होकर जायं ॥ ६ ॥ प्रवल रूपसे शासन करनेवाला असुर-राज शुम्भ इस प्रकार आज्ञाको घोषणा करके सहस्रों सैन्योंसे परिवेष्टित होकर चल ॥ ७ ॥ अनन्तर चण्डिकाने शुम्भके उस भयानक सैन्यको देखकर ज्याटङ्कारसे पृथिवी और आकाशको गूञ्जित कर दिया ॥ ८ ॥ हे राजन् ! तब सिंहने भी अतीव गर्ज्जन किया, अम्बिकाने घण्टाध्वनिसे उसको और भी बढ़ा दिया ॥ ९ ॥ विस्तृतमुखा कालीने शब्दके द्वारा दिङ्मण्डलको परिव्याप्त करके भीषण शब्दसे धनु-बाण, सिंह तथा घण्टाके शब्दों-को अभिभूत कर डाला ॥ १० ॥ अनन्तर दैत्यसैन्योंने देवीके शब्दको सुनकर क्रोधित हो देवी, काली तथा उनके सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ ११ ॥ हे भूपते ! इसी समय देवताओंके शत्रु असुरोंके विनाश तथा श्रेष्ठ देवताओंके कल्याणके लिये ब्रह्मा, शिव, कार्त्ति-केय, विष्णु एवं इन्द्रकी अति बलवीर्य्यशालिनी शक्तियां उन लोगोंके शरीरसे निकल कर तत्तद्रूपमें चण्डिकाके निकट उपस्थित हुई ॥ १२-१३ ॥ जिस देवताका जो रूप, जैसा भूषण और वाहन है, उसकी शक्ति वैसा ही रूप, भूषण और वाहन सहित असुरोंके साथ युद्ध करनेको आई ॥ १४ ॥ प्रथमतः अक्षमाला और कमण्डलु धारण करके हंसयुक्ता विमान पर आरूढ़ा ब्रह्माकी शक्ति युद्ध क्षेत्रमें आई, जो ब्रह्माणी नामसे अभिहिता होती हैं ॥ १५ ॥ अनन्तर त्रिशूलधारिणी महेश्वरकी शक्ति वृषारूढ़ा होकर युद्धभूमिमें आई, जो सर्पवलय और अर्द्धचन्द्र विभूषिता थीं ॥ १६ ॥ तत्पश्चात कार्त्तिकेय-प्रतिकृति उनकी

शक्ति, हाथमें शक्ति ले मयूर पर सवार होकर आयीं ॥ १७ ॥ तब वैष्णवी शक्ति भी शङ्ख, चक्र, गदा, धनु और खड्गहस्ता हो गरुड़ पर आरूढ़ा होकर वहां आई ॥ १८ ॥ अनन्तर यज्ञवराहमूर्त्तिधारिणी विष्णुकी शक्ति वराहरूपसे आविर्भूता होकर युद्ध क्षेत्रमें आई ॥ १९ ॥ नारसिंही शक्ति नृसिंहके समान शरीर धारण करके आई, इनके केशराजिके आघातसे नक्षत्रमण्डल टूट कर गिरने लगा ॥२०॥ उसी प्रकार इन्द्रशक्ति हाथमें वज्र धारण करती हुई ऐरावत पर आरूढ़ा होकर आई, इनका सहस्रनेत्र आदि इन्द्रके समान था ॥२१॥ अनन्तर महेश्वर समस्त शक्तियोंके द्वारा परिवेष्टित होकर चण्डिकासे बोले,—हमारी प्रसन्नताके लिये आप इन असुरोंका शीघ्र वध करें ॥ २२ ॥ शिवजीके ऐसा कहते ही देवी चण्डिकाके शरीरसे अतिभयानक अति उग्र उनकी शक्ति आविर्भूत हुई, एवं उनके साथ ही सैकड़ों शिवा (सियाल) उत्पन्न होकर निनाद करने लगीं ॥ २३ ॥ उन्होंने धूम्रवर्ण जटाओंसे विभूषित महादेवजीसे कहा कि, भगवन्! आप दूतरूपसे शुम्भ निशुम्भके निकट जाइये ॥ २४ ॥ और बलगर्वसे गर्वित उस शुम्भ निशुम्भसे तथा युद्धार्थी अन्यान्य दानवोंसे कहिये कि, अब इन्द्र त्रिलोकरक्षा कार्य्यमें नियुक्त हों, देवतागण अपना अपना हविर्भाग ग्रहण करें और तुम लोग यदि जीवन धारण करना चाहते हो, तो शीघ्र ही पातालको चले जाओ ॥ २५—२६ ॥ एवं यदि बलगर्वसे गर्वित होकर युद्ध ही करना चाहते हो, तो शीघ्र ही आवो, तुम लोगोंके मांसके द्वारा हमारे शिवागण तृप्ति लाभ करें ॥ २७ ॥ इस प्रकार देवीने महादेवको दूत-रूपसे नियुक्ति किया, इस कारण "शिवदूती" नामसे जगतमें व्याख्यात हुई ॥ २८ ॥ देवीका कथन महादेवके निकट इस प्रकार सुन क्रोधित होकर असुरगण जहाँ अम्बिका विराजमान थीं, वहां उपस्थित हुए ॥२९॥ तदनन्तर प्रथम ही असुरगण क्रोधित हो शर, शक्ति और ऋष्टि अस्त्र देवी पर बरसाने लगे ॥३०॥ तब देवीने असुर निक्षिप्त बाण, शूल चक्र एवं कुठार समूहोंको धनुष्टङ्कार करके बाणके द्वारा अनायास ही छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥ तब काली भी अवशिष्ट असुरोंमें किसीको शूलाघातसे विदीर्ण कर किसीको खट्वाङ्ग द्वारा मर्दित करती हुई शुम्भासुरके सामने विचरण करने लगीं ॥ ३२ ॥ ब्रह्माणीने भी इधर उधर घूम घूम कर कमण्डलुके जलक्षेपणके द्वारा शत्रुओंको वीर्य्यहीन और निस्तेज करदिया ॥३३॥ माहेश्वरी त्रिशूल, वैष्णवी चक्र, और कार्तिकेयशक्ति शक्तिअस्त्र द्वारा दैत्योंको आहत करने लगीं ॥ ३४ ॥ तब इन्द्रशक्तिने भी वज्रके द्वारा सैकड़ों दैत्योंको विदीर्ण कर डाला, वे सब रक्तवमन करते हुये पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३५ ॥ उस समय वाराहमूर्तिने किसीको तुण्डा-घात द्वारा किसीको दांत द्वारा और किसीको चक्रके द्वारा विदारित करदिया, इससे वे सब पृथिवी पर गिर पड़े ॥ ३६ ॥ नारसिंही मूर्ति भी सिंहनादके द्वारा दिङ्मण्डलको

परिव्याप्त करके नखों द्वारा कितने ही असुरोंको विदीर्ण एवं अन्य कितने ही महासुरोंको भक्षण करती हुई युद्ध क्षेत्रमें विचरण करने लगीं ॥ ३७ ॥ शिवदूती भी अति-भयानक अट्टहास करती हुई असुरोंको आहत एवं पृथिवी पर गिराकर भक्षण करनेमें तत्पर हुई ॥ ३८ ॥ इस प्रकारसे नाना उपायोंके द्वारा मातृगण महाअसुरोंको विमर्दित करने लगीं, तब दैत्यसेनापतिगण युद्धस्थानसे भाग गये ॥ ३९ ॥ तब माताओंके द्वारा विमर्दित दैत्य-सेनाओंको भागते हुए देखकर महा असुर रक्तबीज अतिक्रोधित होकर युद्ध करने आया ॥ ४० ॥ रक्तबीजके युद्धमें प्रवृत्त होने पर जब उसके शरीरसे रक्तबिन्दु गिरने लगा, तत्क्षणात् पृथिवीसे वैसाही एक एक असुर उत्पन्न होने लगा। इस-प्रकार रक्तबीजके गदा हाथमें लेकर इन्द्रशक्तिके साथ युद्ध करने पर इन्द्रशक्तिने अपने वज्रके द्वारा उसके ऊपर आघात किया, तब उसके देहसे बहुत रक्तस्राव हुआ और उससे रक्तबीजके समान ही आकृति एवं पराक्रमशाली योद्धागण उत्पन्न हुये ॥ ४२-४३ ॥ इसी प्रकार रक्तबीजके देहसे जितने रक्त बिन्दु निकले उतने ही रक्तबीजके समान वीर्य्य, बल एवं पराक्रमवाले पुरुष उत्पन्न हुये ॥ ४४ ॥ वे सब पुरुषगण भी अस्त्र-शस्त्र लेकर भयानक रूपसे मातृगणके साथ युद्ध करने लगे ॥ ४५ ॥ अनन्तर ऐन्द्रीशक्तिके वज्रके द्वारा रक्तबीजका शिर काट डालने पर जैसे रक्त-प्रवाह चला, वैसे ही हजारों असुर उत्पन्न हो गये ॥ ४६ ॥ तब वैष्णवीशक्तिने युद्धक्षेत्रमें चक्रके द्वारा उसको आहत किया, ऐन्द्रीशक्तिने उस असुरेश्वरको गदासे विताड़ित किया ॥ ४७ ॥ वैष्णवीके रक्तबीजको चक्रद्वारा आहत करने पर उसके रक्तप्रवाहसे उसीके समान सहस्र सहस्र महाअसुरोंने उत्पन्न होकर जगत् आच्छन्न कर दिया। तब कौमारी, वाराही तथा माहेश्वरी यथाक्रम शक्ति, खड्ग और त्रिशूलके द्वारा रक्तबीजको आहत करने लगी ॥ ४८ ॥ ४९ ॥ रक्तबीजने भी क्रोधित होकर गदा द्वारा प्रत्येक मातृ-शक्तिको पृथक् पृथक् रूपसे आहत किया ॥ ५० ॥ और स्वयं भी शक्ति, शूलादि द्वारा आहत होनेसे उसके रक्तसे सैकड़ों सैकड़ों असुर उत्पन्न होने लगे ॥ ५१ ॥ उस असुरके रक्तसम्भूत दैत्योंसे जगत्को परिव्याप्त देखकर देवतागण भयभीत हुये ॥ ५२ ॥ तब देवी चण्डिकाने देवताओंको भयसे उद्विग्न देखकर शीघ्रतासे कालीको कहा,—हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ। मेरे शस्त्रके आघात द्वारा रक्तबीजके देहसे रक्त गिरते ही तुम उसको पान करो, एवं जो उत्पन्न हो जांय, उनको भी भक्षण करो ॥ ५३ ॥ ५४ ॥ इस प्रकारसे भक्षण करती हुई रणक्षेत्रमें तुम्हारे विचरण करने पर शीघ्रही यह दैत्य क्षीणरक्त होकर विनष्ट हो जायगा और तुम्हारे इस प्रकार भक्षण करने पर पुनः अन्य उत्पन्न नहीं होंगे ॥ ५५-५६ ॥ इस प्रकार कालीको कह कर अपने शूलके द्वारा असुरको घात करने लगीं और काली तत् क्षणात् रक्तबीजकी रक्तराशि पान करने लगीं ॥ ५७ ॥ अनन्तर रक्त-

बीज गदा द्वारा चण्डिकाको आघात करने लगा, किन्तु गदाघात-जनित कोई कष्ट उनको नहीं हुआ ॥ ५८ ॥ किन्तु रक्तवीजके आहत होनेसे उसके देहसे रक्त प्रवाहित होने लगा, चामुण्डा जहांका तहीं उसको पान करने लगीं ॥ ५६ ॥ एवं रक्त गिरते गिरते ही मुखमें जो सब असुर उत्पन्न हुये थे, उन लोगोंको भी भक्षण किया और रक्तपान किया। अनन्तर इस प्रकार चामुण्डाके रक्तपान करने पर देवीने शूल, वज्र, बाण, असि तथा ऋष्टि शस्त्रके द्वारा रक्तबीजको निहत किया ॥ ६०-६१ ॥ हे राजन् ! इस प्रकार रक्तवीज शस्त्रोंके द्वारा आहत हो, रक्तशून्य होकर पृथिवी पर गिर पड़ा ॥ ६२ ॥ हे नृप! उस समय देवगण रक्तवीजको मृत देखकर परमानन्दको प्राप्त हुए, मातृगण भी रक्तपानमें मत्त होकर नृत्य करने लगीं ॥ ६३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका रक्तवीज वध नामका अट्ठासीवां अध्याय समाप्त हुवा।

टीका—चामुण्डा काली देवीके जैसे चण्ड-मुण्ड वध्य हैं, ऐसे ही रक्तवीजके वधमें भी उनकी सहायता प्रधान है। यह पहले ही कहा गया है कि, सप्तशतीगीता अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत तीनों भावोंकी प्रकाशिका है, इसका प्रत्येक प्रकरण त्रिभावात्मक है। उसी शैलीके अनुसार असुर रक्तवीजका भी त्रिभावात्मक स्वरूप निश्चित है। रक्तवीजका अध्यात्मस्वरूप समझनेके लिये पूज्यपाद महर्षि भरद्वाजकृत कर्ममीमांसादर्शनका संस्कारप्रकरण समझने योग्य है। कर्ममीमांसादर्शनने संस्कारके दो भेद किये हैं, यथा, स्वाभाविक और अस्वाभाविक। स्वाभाविक संस्कार एक है और अस्वाभाविक संस्कार अनन्त हैं। स्वाभाविकसंस्कार मुक्तिदेने वाला है, अस्वाभाविक संस्कार वन्धन दशाको स्थायी रखनेवाला है। अस्वाभाविक संस्कारके एक संस्कारसे अनन्त संस्कारोंकी उत्पत्ति होती है। केवल तत्त्वज्ञानके द्वारा वासनाका नाश होकर अस्वाभाविक संस्कारका नाश होता है। जैववासना-जनित अस्वाभाविक कर्म-वीज संस्कार ही रक्तवीजका आध्यात्मिक स्वरूप है। रक्तवीजका रक्त जबतक पृथिवी पर गिरेगा, प्रत्येक रक्तविन्दुरूपी वीजसे नवीन वासना-जनित नवीन संस्कार उत्पन्न होता हुआ नवीन नवीन रक्तवीजकी उत्पत्ति होती रहेगी। भोगके स्थायी होने और आवागमनचक्रके नियमित चलते रहनेका यही कारण है। यदि तत्त्वज्ञानकी सहायतासे अन्तःकरणमें उस संस्कारका संग्रह होना बन्द होजाय और तत्त्वज्ञानसे मनोनाश होकर नवीन वासना संग्रहीत न होने पावे तभी रक्तवीजका नाश सम्भव है, देवासुर-संग्राममें चण्डिका देवीकी सहायतासे रक्तवीजके परास्त होनेका एवं मृत्युका यही रहस्य है। चण्ड-मुण्डको कालीदेवीने स्वयं मारा था और रक्तवीजके मृत्युमें परम सहायक हुई थीं। राग-द्वेषका नाश तत्त्वज्ञानसे हो सकता है, परन्तु दृढ़ अभिनिवेश-जनित जैव वासनासे उत्पन्न अस्वाभाविक संस्कार विद्यादेवीकी कृपासे और तत्त्वज्ञानकी सहायताके विना नष्ट नहीं हो सकता है। यही औपनिषदिक रहस्य है ॥ ६३ ॥

नवासीवां अध्याय।

—०:*:०—

राजा बोले,—भगवन्! आपने रक्तबीजके वधविषक उपाख्यानके साथ यह जो देवीका माहात्म्य वर्णन किया, सो अति आश्चर्यजनक है, अतः रक्तबीजके मरने पर अति क्रोधी शुम्भ निशुम्भने जो कुछ किया सो मैं पुनः आपके निकट सुनना चाहता हूं ॥१-३॥ ऋषि बोले,—रक्तबीज एवं अन्यान्य दैत्योंके युद्धमें निहत होने पर शुम्भ निशुम्भ भयानक क्रोधित हो उठे ॥ ४-५ ॥ अनन्तर निशुम्भ प्रधान प्रधान असुरसेनाओंको साथ लेकर अत्यन्त क्रोधित हो युद्धके लिये धावित हुआ, तब उसके आगे-पीछे एवं पार्श्वमें अनेक प्रधान असुरगण क्रोधसे ओष्ठ चबाते हुये देवीको मारनेके लिये गये ॥ ६-७ ॥ उस समय शुम्भासुर भी अपने सैन्योंसे परिवेष्टित होकर माताओंके साथ युद्ध करके चण्डिकाको मारनेके लिये आया ॥ ८ ॥ अनन्तर देवीके साथ शुम्भ-निशुम्भका तुमुल संग्राम आरम्भ होने पर शुम्भ निशुम्भ दोनों असुर बरसनेवाले मेघके समान बाणवर्षण करने लगे ॥ ९ ॥ चण्डिका भी शरसमूहके द्वारा असुरनिक्षिप्त शरसमूहोंको छिन्न करके असुरराज शुम्भ निशुम्भके अङ्गमें आघात करने लगीं ॥ १० ॥ तब निशुम्भने शाणित खड्ग और प्रभाशाली चर्मफलक (ढाल) लेकर देवीवाहन सिंहको आघात किया, सिंहके आहत होने पर देवीने खुरप्र नामक अस्त्रके द्वारा निशुम्भका उत्तम असि एवं अष्टचन्द्र (मणिमय चक्र विशेष) विभूषित चर्मफलकको छिन्न कर दिया ॥ ११-१२ ॥ उस असुरने खड्ग और चर्मके छिन्न होने पर शक्ति अस्त्र निक्षेप किया, देवीने उसको सामने आते न आते ही चक्रके द्वारा दो खण्ड कर डाला ॥ १३ ॥ तब क्रोधित होकर निशुम्भने शूलास्त्र फेंका, देवीने उसको मुष्टिके आघातसे विचूर्ण कर डाला, तब उस असुरने गदा घुमा कर चण्डिकाके ऊपर फेंका, देवीने भी तत्क्षण त्रिशूलके द्वारा उस गदाको विदीर्ण करके भस्म कर डाला ॥ १४-१५ ॥ अनन्तर वह दैत्य-श्रेष्ठ परशु हाथमें लेकर आ रहा था, देवीने शर-समूहके द्वारा आघात करके उसको पृथिवी पर गिरा दिया ॥ १६ ॥ इस प्रकार भीषण पराक्रमशाली भ्राता निशुम्भके पृथिवी पर गिर जाने पर, शुम्भ अतीव क्रोधित होकर अम्बिकाको निहत करनेके लिये आया ॥ १७ ॥ एवं रथ पर सवार हो अति दीर्घ अष्ट हाथोंमें नाना प्रकारके आयुध ग्रहण करके समस्त आकाशमण्डलको परिव्याप्त करता हुआ सुशोभित होने लगा ॥ १८ ॥ उस असुरको आते देख देवीने शङ्ख बजाया एवं ज्या तथा धनुका शब्द किया ॥ १९ ॥ और देवीके अपने घण्टाध्वनिके द्वारा समस्त दिशाओंको आपूरित करने पर उस शब्दने दैत्य सैन्योंका तेज नष्ट कर दिया ॥ २० ॥ अनन्तर

सिंहने महानाद करके आकाश, पृथिवी एवं दशों दिशाओंको पूर्ण कर दिया। यह शब्द ऐसा भयानक हुआ कि, उससे हस्तीसमूहकी मत्तता विदूरित हो गयी ॥ २१ ॥ तदनन्तर कालीने आकाशमें कूद कर पृथिवीमें आघात किया, उसके शब्दसे पूर्वकृत धनु-ज्या आदिकी ध्वनि तिरोहित हो गयी, तब शिवदूती शत्रुओंका अशुभसूचक अट्टाट्ट-हास्य करने लगीं, उससे असुरोंके भयभीत होने पर शुम्भ क्रोधित हो उठा ॥ २२-२३ ॥ तब देवी अम्बिका शुम्भसे बोलीं,—"रे दुरात्मन् ! ठहर ठहर" ऐसा बोलते ही देवताओंने आकाशसे जय जय कार किया ॥ २४ ॥ अनन्तर शुम्भने आकर शक्ति अस्त्र फेंका, इसकी शिखा अति भयानक थी, इस अस्त्रको वह्निराशिके समान आते हुए देख देवीने महोल्का शक्तिके द्वारा उसको निरस्त कर दिया ॥ २५ ॥ तब शुम्भके सिंहनादसे स्वर्ग-मर्त्य-पाताल परिव्याप्त हो गया, उसके भयानक प्रतिशब्दने इस शब्दको भी अभिभूत कर लिया ॥ २६ ॥ उस समय देवीके शतसहस्र शर समूहोंके द्वारा शुम्भ-निक्षिप्त शरोंको छिन्न कर देने पर शुम्भने भी देवीके द्वारा फेंके हुए शरोंको विच्छिन्न कर दिया ॥ २७ ॥ अनन्तर चण्डिकाने क्रुद्ध होकर शूलके द्वारा शुम्भको आघात किया, तब वह मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥ २८ ॥ तब निशुम्भ सचेत होकर धनुर्धारण पूर्वक शरके द्वारा देवी, काली एवं उनके सिंहको आघात करने लगा ॥ २९ ॥ एवं दश सहस्र बाहु विस्तार करके चक्र अस्त्रसे चण्डिकाको आच्छन्न कर दिया ॥ ३० ॥ तदनन्तर दुर्गतिनाशिनी भगवती दुर्गाने अपने शरके द्वारा उस चक्र तथा शर समूहोंको छिन्न कर डाला ॥ ३१ ॥ तब निशुम्भ

टीका—श्रीसप्तशती गीताके तीनों चरित्रोंमेंसे यह अन्तिम चरित्र अद्भुत रहस्योंसे पूर्ण है। यद्यपि सप्तशती गीताके प्रत्येक शब्द अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपी त्रिविध भावोंसे पूर्ण हैं, जिसका दिग्दर्शन स्थान स्थान पर कराया गया है, परन्तु सब स्थलोंका त्रिविध अर्थ ऐसे छोटे ग्रंथमें नहीं हो सकता है और न साधारण अधिकारी उसकी धारणा ही कर सकते हैं। सप्तशतीगीताका प्रथमचरित्र तमोमयरूपका प्रकाशक होनेके कारण और तममें क्रिया नहीं होनेके कारण वहांकी क्रिया भगवान् विष्णुसे हुई थी। दूसरे चरित्रमें शुद्धसत्त्वमें तमोगुणको परास्त करनेके निमित्त रजका सम्बन्ध स्थापनके लिये "गर्ज्ज गर्ज्ज क्षणं मूढ़ ! मधु यावत् पिवाम्यहम्" आदि अलौकिक भावोंका समावेश कैसा किया गया है, सो भावुकगण समझ सकेंगे। इस तीसरे चरित्रमें भगवतीकी निर्लिप्तताके साथ ही साथ क्रियाशीलता अति अलौकिक रीतिसे प्रकट हुई है; क्योंकि, यह चरित्र सत्त्वप्रधान चरित्र है। इस चरित्रमें पहले ही भगवती कालिका देवीका हिमालयमें स्थिर रहना और कौशिकी देवीका युद्ध करना पुनः उनसे चामुण्डा काली देवीका एवं शिवदूतीका निकलना कैसा गंभीर विज्ञानका प्रकाशक है, सो पहले कहा गया है। राग, द्वेष और अभिनिवेश-जनित-वासना-जाल एवं अस्वाभाविक संस्कार नाश होने पर भी अविद्या और अस्मिता रह जाती है। यह अविद्या और अस्मिता शुम्भ निशुम्भका अध्यात्मस्वरूप है। अविद्या और अस्मिता इन दोनोंको ज्ञानजननी भगवती विद्याके अतिरिक्त और कोई नहीं मार सकता है। यही इस युद्ध प्रकरणका गूढ़ रहस्य है ॥ १-२१ ॥

दैत्य सेनाओंसे परिवेष्टित होकर गदा ले अतिशीघ्रतासे चण्डिकाको मारनेके लिये धावित हुआ ॥ ३२ ॥ चण्डिकाने भी निशुम्भको आते हुए देख शोणित खड्गके द्वारा उसकी गदा छिन्न कर डाली, पुनः उस असुरने शूलास्त्र ग्रहण किया ॥ ३३ ॥ उस समय देवताओंके शत्रु निशुम्भको शूल लेकर आते देख चण्डिकाने तुरत शूल फेंककर उसके हृदयको विद्ध किया ॥ ३४ ॥ उस समय निशुम्भका हृदय विद्ध होने पर उसके हृदयसे महावीर्यशाली, अतिबलशाली एक दूसरा असुर "ठहरो" ऐसा कहता हुआ निकला ॥ ३५ ॥ देवीने भी हँसकर खड्गके द्वारा उसका शिर काट डाला, तब वह असुर भूमि पर गिर पड़ा ॥ ३६ ॥ तदनन्तर सिंह भयानक दन्तपंक्तियोंके द्वारा गलेको चबाता हुआ असुरोंको भक्षण करने लगा एवं काली तथा शिवदूतीने अन्यान्य असुरोंको भक्षण कर लिया ॥ ३७ ॥ तत्पश्चात् कुछ असुर कौमारीकी शक्तिके द्वारा विताड़ित होकर भाग गये, अन्य कुछ असुरोंको ब्रह्माणीने मन्त्रपूत जलके द्वारा भगा दिया ॥ ३८ ॥ एवं अन्य असुरगण माहेश्वरीके त्रिशूल द्वारा विदीर्ण होकर भूमि पर गिर पड़े, कितने ही को वाराहीने तुण्डाघात करके विचूर्ण कर दिया ॥ ३९ ॥ तब वैष्णवीशक्तिने चक्र द्वारा दैत्योंको खण्ड खण्ड कर डाला, इन्द्रशक्तिने भी अन्यान्य असुरोंको वज्रसे खण्ड खण्ड कर दिया ॥ ४० ॥ तब कितने ही असुर युद्धमें मारे गये, कितने ही युद्धक्षेत्रसे भाग गये, अन्य कुछ काली, शिवदूती एवं सिंहके द्वारा भक्षित हुये ॥ ४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका निशुम्भ वध नामक नवासीवां अध्याय समाप्त हुवा ।

टीका—श्रीजगदम्बाका यह तीसरा लीलाचरित अधिदैव सम्बन्धसे जैसा एकाधारमें मधुर एवं भीषण है, उसी प्रकार इसका अध्यात्म-स्वरूप समाधिगम्य रहस्योंसे पूर्ण है। इस युद्धका अध्यात्म-स्वरूप वस्तुतः विद्या और अविद्याका युद्ध है। राग, द्वेष और अभिनिवेश, तत्त्वज्ञान एवं विवेकसे नष्ट होजाने पर भी जबतक अस्मिता और अविद्याका विलय नहीं होता, तबतक कदापि कृत-कृत्यता नहीं होती है। अविद्या एवं अस्मिता इन दोनोंको विद्याकी सहायतासे ही नाश करके जीवन्मुक्तगण कृतकृत्य होते हैं। अस्मिताका नाश पहले होता है, क्योंकि, अविद्याका वह प्रथम कार्य्य तथा सहयोगी है। इसकारण शुम्भ ज्येष्ठ भ्राता और निशुम्भ लघु भ्राता है। अस्मिताका बल इतना अधिक है कि, तत्त्वज्ञानकी सहायतासे जब ज्ञानी व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त करने लगता है तो, उस समय प्रथम "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा भान होता है। उस समय भी "मैं" रूपी अस्मिता अपना बल दिखाती है और विद्यादेवीके कार्य्यको रोकती है। उस समय विद्याके प्रभावसे "मैं ब्रह्म हूं" इस अस्मिताके लोकातीत भाव तकको नष्ट करना पड़ता है, तब स्वस्वरूपका उदय होने पाता है। निशुम्भके भीतरसे उसके मरते समय एक दूसरे पुरुषका निकलना और देवीको रोकना यह उसी भावका प्रकाशक है। निशुम्भके साथ उस पुरुष तकको मार डालनेसे तब अस्मिताका नाश होता है और देवीके निशुम्भवधकी क्रिया सुसिद्ध होती है ॥ ३४-३६ ॥

नब्बे अध्याय।

—०:※:०—

ऋषि बोले, प्राणके समान प्रिय अपने भ्राता निशुम्भको एवं समस्त सैन्योंको निहत देखकर शुम्भ क्रोधित हो बोला, ॥ १-२ ॥ हे दुर्गे ! तुम बलका गर्व मत करो क्योंकि, तुम तो अन्यान्य दैवी शक्तियोंकी सहायतासे अभिमानिनी होकर युद्ध करती हो ॥ ३ ॥ देवी बोली,-रे दुष्ट! इस जगत्में मेरे सिवाय दूसरा कौन है, मैं एकही हूं देख, ये मेरी विभूतियां अभी मुझमें प्रवेश करती हैं ॥ ४-५ ॥ देवीके ऐसा कहते ही ब्रह्माणी आदि समस्त-शक्तियां उनके शरीरमें प्रवेश कर गयीं, तब अम्बिका अकेली विराजमान हुई ॥ ६ ॥ देवी बोली, मेरी जिन विभूतियोंका विस्तार हुआ था, उन सबोंको मैंने समेट लिया, अब मैं अकेली हूं तुम स्थिर होकर युद्ध करो ॥ ७-८ ॥ ऋषि बोले, अनन्तर देखनेवाले देव और असुरोंकी भयप्रद देवी और शुम्भका युद्ध प्रारंभ हुआ ॥ ९-१० ॥ वे दोनों तीक्ष्ण भयंकर शस्त्रास्त्रकी सहायतासे पुनः भीषण युद्ध करने लगे, उससे स्वर्ग, मर्त्य, पाताल सब लोक भयभीत हो गया ॥ ११ ॥ अम्बिकाने जिन दिव्यास्त्रोंको फेंका, दैत्येन्द्रने उन सबोंको उनके प्रतिघात-कारी शस्त्रोंके द्वारा काट डाला ॥ १२ ॥ तब परमेश्वरी देवीने भी असुरनिक्षिप्त दिव्या-स्त्रोंको हुङ्कारादिके द्वारा अनायास ही काट डाला ॥ १३ ॥ अनन्तर उस असुरने सैकड़ों शरोंके द्वारा देवीको आच्छन्न कर दिया, तब देवीने भी क्रोधित होकर बाणके द्वारा उसके धनुको छिन्न कर दिया ॥ १४ ॥ धनु छिन्न होनेपर दैत्यश्रेष्ठने शक्ति अस्त्र लिया, उसको भी उसके हाथमें ही चक्रके द्वारा देवीने काट डाला ॥ १५ ॥ तब खड्ग एवं प्रभाशाली चर्मफलक लेकर दैत्यराज शुम्भके देवीके प्रति धावित होने पर चण्डिकाने अतिशीघ्र धनुषसे शाणित बाण छोड़ कर सूर्य्य किरणके समान प्रभाविशिष्ट खड्ग एवं चर्मफलक काट डाला ॥ १६-१७ ॥ तब अश्व, रथ, धनु, एवं सारथी हीन होकर उस

टीका—ब्रह्मशक्तिकी चार अवस्थाओंका वर्णन पहले ही आ चुका है। वह शक्ति एक और अद्वितीय होने पर भी, उसकी सूक्ष्म और स्थूलशक्तिके अनेक भेद हैं। सूक्ष्म-जगद्-व्यापिनी सूक्ष्म शक्तिके प्रधानतः त्रिगुणके अनुसार तीन भेद होने पर भी विभिन्न दैवपदोंकी क्रियाशक्तिके विचारसे उसके अनेक भेद हैं। वे ही सब शक्तियां इस युद्धमें प्रकट हुई थीं और अब उसी एक अद्वितीय शक्तिमें सब प्रवेश कर गयीं। वस्तुतः शुम्भ और देवीका युद्ध अविद्या और विद्याका युद्ध है। दोनोंका विलास जबतक व्यक्तावस्थामें रहता है, तबतक आसुरी सेना और देवीकी सेनाका प्राकट्य रहता है। उधर निशुम्भके मरते ही असुरोंकी विभूतियां परास्त और नष्ट हो गयीं एवं दैवी विभूतियां जो विभिन्न शक्तिरूपसे प्रकट हुई थीं, सो समिट कर अन्तर्मुख होती हुई देवीमें प्रवेश कर गयीं ॥ ६ ॥

असुरने चण्डिकाको मारनेके लिये भयानक मुद्गर लिया ॥ १८ ॥ शाणित वाण द्वारा देवीके उस मुद्गरको काट डालने पर वह असुर अतिशीघ्रतासे मुष्टि बान्धकर चण्डिकाकी ओर दौड़ा एवं मुष्टिसे देवीके हृदयमें मारा, देवीने भी तलसे उस असुरकी छातीमें मारा; उस तलाघातसे वह दैत्यराज पृथिवी पर गिर पड़ा एवं तत्क्षण पुनः उठ खड़ा हुआ ॥१९-२१॥ अनन्तर देवीको उठा कर आकाशमें उड़ गया, वहां निराधार होकर भी देवी युद्ध करने लगीं ॥ २२ ॥ तब दोनों आकाशमें ठहर कर ही वाहुयुद्ध करने लगे जिसको देख सिद्ध एवं मुनिगण विस्मित हो गये ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे बहुत देर तक वाहुयुद्ध करके अम्बिकाने उसको ऊपर घुमाकर जमीन पर फेंक दिया ॥ २४ ॥ तब जमीन पर गिर कर वह असुर मुष्टि वान्ध चण्डिकाको मारनेके लिये धावित हुआ ॥ २५ ॥ उसको प्रायः निकट आये हुये देखकर चण्डिकाने शूलसे उसका हृदय विदीर्ण करके पृथिवी पर गिरा दिया ॥ २६ ॥ देवीके शूलसे विक्षत होकर वह असुर प्राण परित्याग करके पृथिवी पर गिर पड़ा, उससे सब पर्वत एवं सप्तद्वीप सहित पृथिवी कांप उठी ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे उस दुरात्माके मरनेसे सब प्रसन्न हुए; सारा जगत् शान्त एवं विकाररहित हुआ, आकाश निर्मल हो गया, मेघ सब उल्कारहित होकर अनिष्टसूचक भाव परित्याग कर शान्त हो गये, नदियां पूर्ववत् यथास्थान प्रवाहित होने लगीं ॥ २८-२९ ॥ देवतागण अत्यन्त प्रसन्न हुये एवं गन्धर्वगण मधुर संगीत गाने लगे ॥ ३० ॥ अन्यान्य गन्धर्वगण बजाने लगे, अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ३१ ॥ वायु अनुकूल होकर बहने लगा, सूर्य भगवान् मलीनता रहित हो अपनी सुन्दर ज्योति विस्तार करने लगे एवं अग्निदेव शान्तिसे शान्त दिग्-मण्डलको शब्दायित करके प्रज्वलित होने लगे ॥ ३२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवीमाहात्म्यका शुम्भवध नामक नब्वे अध्याय समाप्त हुआ।

टीका—अविद्याका विलय केवल एकमात्र पराविद्याके प्रभावसे ही हो सकता है। ज्ञानजननी विद्याके उदय होने पर अज्ञान-प्रसविनी अविद्या, प्रकाशके सम्मुख अन्धकारके समान लय हो जाती है। अविद्याके दूर करनेमें और कोई भी दैवीशक्ति कार्य्यकारिणी नहीं होती है। इस कारण सब दैवीविभूतियोंके महादेवीमें प्रवेश कर जानेपर देवी और शुम्भका यह अन्तिम युद्ध इस प्रकार प्रबलरूपसे हुआ तथा अन्तमें परास्त होकर शुम्भकी मृत्यु हुई। मृत्युसे पूर्व देवीको आकाशमें बलपूर्वक ले जाना और वहां युद्ध करना यह नास्तिकतासूचक रहस्य है। सर्वव्यापक ब्रह्मसत्ताका अनुभव कराना विद्याका कार्य्य है, परन्तु सच्चिदानन्दमय ब्रह्मस्वरूपको अनुभव करते समय अविद्याके प्रभावसे सर्वव्यापक आकाशतत्त्वमें अटक कर शून्यवादी होजाना, यह स्वस्वरूपके अनुभवमें सबसे बड़ा और अन्तिम विघ्न है। देवासुर-संग्रामके आकाश युद्धका यही आध्यात्मिक रहस्य है ॥ २२-२७ ॥

एक्यानबे अध्याय।

ऋषिने कहा,–देवीके द्वारा असुरराज शुम्भके मारे जाने पर इन्द्रसहित सब देवतागण अग्निको अग्रणी बनाकर देवी कात्यायनीकी स्तुति करने लगे, उस समय अभीष्ट लाभ करके पुनः राज्यादि प्राप्तिकी आशासे उनका मुखकमल प्रफुल्लित था ॥१-२॥ (देवतागण बोले) हे देवि! शरणागतका दुःख विनाशकरनेवालि! तुम प्रसन्न हो। हे मातः! आप सारे जगत् पर प्रसन्न हों, हे विश्वेश्वरि! तुम चराचर जगत्की अधीश्वरी हो, तुम प्रसन्न हो एवं जगत्की रक्षा करो ॥ ३ ॥ तुम्हीं पृथिवी रूपसे अवस्थान करती हो इसलिये एकमात्र तुमही जगत्की आधारभूता हो, पुनः तुम्हीं जलरूपसे अवस्थान करके अखिल जगत्को कृतार्थ करती हो, तुम्हारी शक्तिको कोई अतिक्रम नहीं कर सकता है ॥ ४ ॥ तुम असीम शक्तिविशिष्टा वैष्णवी शक्ति हो, तुम जगत्की बीजभूता हो, तुम्हींने मायारूपसे समस्त जगत्को मुग्ध कर रक्खा है, तुम्हारी प्रसन्नता ही मुक्तिका कारण है ॥ ५ ॥ सब प्रकारकी विद्याएं तुम्हारी ही भेद हैं, जगत्की सारी स्त्रियां तुम्हारी ही अंशभूता हैं। हे अम्बे! अकेले तुम्हींने सारे जगत्को परिव्याप्त कर रक्खा है, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है? तुमको श्रेष्ठ कैसे कहा जाय, क्योंकि तुम एक अद्वितीय हो, किसीके साथ तुम्हारी तुलना नहीं हो सकती है, तुम स्तुतिसे अतीत हो ॥ ६ ॥ तुम सर्वस्वरूपा हो, तुम स्वर्ग एवं मुक्ति प्रदानमें समर्थ हो, तुम्हारी स्तुति क्या हो सकती है, हमारे पास ऐसी क्या शब्दसम्पत्ति है, जिससे तुम्हारी स्तुति कर सकें? हे नारायणि! तुम सबके हृदयमें बुद्धिरूपसे विराजमान हो। हे देवि! स्वर्गापवर्गदे! (धर्मरूपिणी होनेसे स्वर्ग एवं मोक्षदेनेवाली!) तुमको प्रणाम है ॥ ८ ॥ (कालरूपिणी होनेसे) कला काष्ठादिरूपसे (अठारह निमेषमें जितना समय लगता है, उसको काष्ठा कहते हैं और तीस काष्ठाकी एक कला होती है।) आप जगत्का परिणाम कराती हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् प्रतिमुहूर्त्त परिणामको प्राप्त करता रहता है। तुम जगत्के

टीका—देवताओंमें भी चारों वर्ण हैं। अग्नि ब्राह्मण वर्णके देवता हैं। अग्निकी ही सहायतासे देवतागण स्थूलराज्यसे यज्ञभागादि प्राप्त करते हैं। इसी कारण उपासना कार्यमें अग्निको अग्रवर्त्ती करके देवताओंका स्तुति करना युक्तियुक्त है ॥ २ ॥

टीका—ज्ञानप्राप्तिके यावत् उपाय इस स्थल पर विद्या शब्दसे अभिहित हुये हैं। संसारप्रपञ्चको स्थायी रखनेका कारण स्त्री है। उसको यावत् शक्तियोंकी आधार होनेसे विभूति मानकर ऐसा कहा गया है ॥ ६ ॥

ध्वंसकार्यमें निपुण हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ ९ ॥ तुम सब मंगलोंकी मूलभूता हो, तुम कल्याणरूपिणी हो । तुम सब प्रकारकी सिद्धिप्रदान करनेमें समर्थ हो, हे शरण्ये ! त्रिनयनि ! गौरि ! नारायणि ! आपको प्रणाम है ॥१०॥ हे नित्ये ! तुम सृष्टि-स्थिति-प्रलय-विधायिनि शक्ति हो, तुम गुणोंकी आश्रयभूता हो पुनः गुणमयी भी हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥११॥ हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागतकी दीनतासे रक्षा करती हो, तुम सबका दुःख नाश करनेमें समर्थ हो, तुमको प्रणाम है ॥ १२ ॥ तुम्हीं ब्रह्माणी रूपसे हंसयान पर आरोहण करती हो और कुशके द्वारा अभिमन्त्रित जल छिड़कती हो । हे देवि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है, ॥१३॥ तुम्हींने माहेश्वरी रूपसे त्रिशूल, अर्द्धचन्द्र एवं सर्पवलय धारण किया है । हे महावृषभवाहिनि ! देवि ! तुमको प्रणाम है ॥१४॥ तुम्हीं मयूर—कुक्कुटोंसे परिवेष्टिता महाशक्तिधारिणी कौमारी कार्त्तिकेय शक्तिरूपसे अवस्थान करती हो । हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥१५॥ तुम शङ्ख, चक्र, गदा और शार्ङ्गरूप दिव्य आयुधोंको धारण करनेवाली वैष्णवी शक्ति हो, तुम प्रसन्न हो, तुमको प्रणाम है ॥ १६ ॥ तुमने वाराह रूपसे उग्र महाचक्र धारण किया है, तुमने दांतोंसे पृथिवीका उद्धार किया है, हे वाराहरूप-धारिणि ! हे शिवे ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १७ ॥ तुम भयानक नृसिंहरूपधारण करके दैत्योंके विनाश करनेमें तत्पर हुई थी, तुम त्रिलोककी रक्षा करनेवाली हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १८ ॥ तुम किरीटधारिणी हो, तुम महावज्रको धारण करनेवाली हो, तुम सहस्र नेत्रवाली हो, हे ऐन्द्रि ! तुमने वृत्रासुरको मारा था, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ १९ ॥ तुमने शिवदूती रूपसे दैत्योंकी वृहत् सेनाओंका विनाश किया है, तुम भीषणरूपिणी हो, महाशब्दकारिणी हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २० ॥ हे चामुण्डे ! तुम्हारा वदनमण्डल दंतपंक्तियों द्वारा अतिभयानक प्रतीत होता है, तुमने नर-मुण्ड-माल धारण किया है, हे मुण्डासुरनाशिनि ! नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २१ ॥ तुम्हीं श्रीरूपिणी हो, तुम्हीं लज्जारूपिणी हो, तुम स्वरूपप्रकाशिनी महाविद्या हो, तुम्हीं श्रद्धा, पुष्टि एवं स्वधारूपिणी हो, तुम प्रलयरात्रि हो, हे महामाये ! हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २२ ॥ तुम मेधारूपिणी हो, तुम्हीं सरस्वती हो, तुम सर्वोत्कृष्टा हो, ऐश्वर्य्यरूपिणी हो, तुम कल्याणरूपिणी हो, पुनः तुम्हीं संहाररूपिणी हो, तुम शासन करनेवाली नियमन शीला हो, हे ईश्वरि ! तुम प्रसन्न हो, हे नारायणि ! तुमको प्रणाम है ॥ २३ ॥ तुम जगत्रूपिणी हो, पुनः सबकी ईश्वरी हो, सारी शक्तियां, तुम्हारी शक्तियां हैं, हे देवि ! दुर्गे ! हम लोगोंकी भयसे रक्षा करो, तुमको प्रणाम है ॥ २४ ॥ तीन नेत्रोंसे विभूषित अतिरमणीय तुम्हारा मुखमण्डल समस्त प्राणियोंसे हमारी रक्षा करे, हे कात्यायनि ! तुमको प्रणाम है ॥ २५ ॥ तुमने जिस त्रिशूलके द्वारा समस्त असुरकुलका संहार

किया है, उस भयानक ज्वालाविशिष्ट एवं अतितीक्ष्ण त्रिशूल द्वारा हम लोगोंकी भयसे रक्षा करो, हे भद्रकालि! तुमको प्रणाम है॥ २६॥ जिस घंटाने ध्वनिके द्वारा जगत्को परिव्याप्त करके दैत्योंका तेज विनष्ट किया है, माता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करती है, वह उसी प्रकार हम लोगोंकी पापसे रक्षा करे॥ २७॥ असुरोंके रक्त एवं मेदरूपी पंकसे चर्चित तुम्हारे हस्तकमलमें विराजमान खड्ग हमारा कल्याण करे। हे चण्डिके! अतिप्रणतभावसे तुमको प्रणाम करते हैं॥ २८॥ तुम प्रसन्न होकर सब प्रकारके रोगोंका नाश करती हो, एवं अप्रसन्न होकर सब अभीष्टोंका नाश करती हो। जो तुम्हारे आश्रित होते हैं, उनको किसी प्रकारकी विपत्तिकी सम्भावना नहीं होती, एवं वे स्वयं सबका आश्रयस्थल बन जाते हैं॥ २९॥ हे देवि! अम्बिके! नानारूपसे आविर्भूता होकर यह जो तुमने आज असुरोंका विनाश किया है, सो तुम्हारे सिवाय और कौन कर सकता है॥ ३०॥ सब विद्याओं, सब शास्त्रों एवं विवेक उत्पादक आदि वाक्यरूपी वेद-वाक्योंकी एकमात्र तुम्हीं कारणभूता हो। पुनः तुम्हीं इस अन्धकारमय ममताके गड्ढेमें जगत्को बार बार भ्रमण कराती हो॥ ३१॥ जहां पर राक्षसगण, तीक्ष्ण विषवाले विषधरगण, शत्रुगण, दस्यु सैन्य, (डाकुओंकी सेना) एवं दावानल (वनकी अग्नि) से प्राणियोंको क्लेश पहुँचता है, वहां तुम्ही एकमात्र सहायिका बनकर जगत्की रक्षा करती हो। पुनः समुद्रमें भी सबकी तुम्हीं रक्षा करती हो॥ ३२॥ तुम्हीं जगदीश्वरी हो, तुम्हीं जगत्का पालन करती हो,पुनः तुम्हीं विश्वात्मिकारूपसे विश्वको धारण करती हो। जो तुम्हारा यथार्थ भक्त होता है, वह ब्रह्मादिकोंका भी वन्दनीय होता है। तुम सबकी आश्रयभूता हो॥ ३३॥ हे देवि! इस समय जिस प्रकार तुमने शत्रुओंका विनाश करके जगत्की रक्षा की है, इसी प्रकार प्रसन्न होकर हम लोगोंकी शत्रुभयसे सर्वदा रक्षा करो। जगत्की सारी बाधाएँ एवं उल्कापातादि जनित महा उपसर्गों (दुर्भिक्ष महामारिभय आदि) का नाश करो॥ ३४॥ हे देवि! तुम जगत्के दुःखको नाश करनेवाली हो, शरणागत पर प्रसन्न हो, त्रिलोकवासी सभी तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम सबकी वरदात्री हो॥ ३५॥ देवी बोली,-हे देवतागण! मैं वर दूंगी, तुम लोग जिस वरकी इच्छा हो, उसकी प्रार्थना करो, जगत् कल्याणके लिये मैं वही प्रदान करती हूं॥ ३६-३७॥ देवतागण बोले,-हे सर्वेश्वरि! तुमने इस समय जिस प्रकार शत्रुओंका नाश करके जगत्-

---

टीका—जिस प्रकार अन्तर्जगत्में देवता और असुर, इस प्रकारसे दो प्रकारकी सृष्टिकी प्रधानता है; उसी प्रकार मनुष्य लोकमें तीन प्रकारकी सृष्टिका वर्णन शास्त्रोंमें पाया जाता है। परोपकारमें निरत मनुष्य देवश्रेणी, इन्द्रियसेवामें निरत मनुष्य असुरश्रेणी और दूसरेको दुःख पहुंचानेमें जिनकी रुचि हो, वे राक्षस श्रेणीके कहे जाते हैं॥ ३२॥

की रक्षा की है इसी प्रकार सर्वदा आविर्भूता होकर हमारे शत्रुओंका नाश करके त्रिलोककी सब बाधाएं दूर करोगी ॥ ३८-३९ ॥ देवी बोली,-वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाईसवें युगमें पुनः शुम्भ निशुम्भ नामक अन्य महासुर उत्पन्न होंगे ॥ ४०-४१ ॥ मैं नन्दगोपके यहां

टीका—अबतक देवतागण केवल अपने सूक्ष्म लोककी बाधाओंको दूर करनेमें ही व्यग्र चित्त थे। सूक्ष्म दैवराज्यकी बाधा दूर होने पर उन्होंने ऊर्ध्व अधः और मध्यरूपी त्रिलोककी बाधा दूर करनेके विचारसे श्रीजगदम्बाकी स्तुतिकी थी। इससे पूर्व जो कुछ लीलाका वर्णन है, सो ऊद्ध्वं दैवराज्यकी अधिदैव लीलाका ही वर्णन समझने योग्य है। पूर्वकथित सब युद्ध सूक्ष्म लोकमें ही हुए थे। आगे जिन लीलाओंका वर्णन आवेगा, उसका मध्यलोक रूपी मृत्युलोकसे ही सम्बन्ध समझा जाय। इस स्थल पर जिज्ञासुओंको यह शंका हो सकती है कि, पूर्वकथित सब चरित्र देवलोकके चरित्र हैं, तो पुनः अनेक तीर्थ स्थानोंमें देवासुर संग्रामोंके नाम कैसे पाये जाते हैं ? इस श्रेणीकी शंकाओंका समाधान यह है कि अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत इन तीनोंका नित्य अस्तित्व रहनेके कारण और तीनोंका परस्पर सम्बन्ध रहनेके कारण दैवराज्यके साथ मृत्युलोकके तीर्थोंका सम्बन्ध देखा गया है। उसी प्रकार एक तीर्थका सम्बन्ध अनेक तीर्थोंके साथ मिलता है। यथा, काशीमें सब तीर्थोंकी प्रतिकृति मिलती है। इसी प्रकार सूक्ष्मराज्यके अधिदैव पीठोंका सम्बन्ध मृत्युलोकके भी विशेष विशेष तीर्थोंमें पाया जाता है। जिस प्रकार उपासनापीठके अनेक भेद हैं, उसी प्रकार तीर्थ भी एक प्रकारके पीठ हैं और उनके भेद भी अनेक हैं। प्राणमय-कोषमें आवर्त्त उत्पन्न होकर देवयोनियोंके ठहरनेका जो स्थान बनता है, उसको पीठ कहते हैं, जैसे मृत्युलोकके जीवोंके ठहरनेके लिये पृथिवी है और बैठनेके लिये आसन है, उसी प्रकार सूक्ष्म देवलोकवासी आत्माओंके ठहरनेका स्थान पीठ है। सनातनधर्ममें विभिन्न प्रकारके पीठोंके अवलम्बनसे उपासना की जाती है। जिन अवलम्बनोंसे उपासना-पीठ बनता हैं, उनके सोलह प्रधान भेद हैं। यथा—अग्नि, जल, हृदय,मूर्द्धा, मूर्त्ति, यन्त्र, चित्र आदि। तीर्थ आदि भी इसी प्रकार पार्थिवपीठके अन्तर्गत हैं, इनके भी कई भेद हैं। जीव-यान्त्रिक पीठका उदाहरण बटुक और कुमारी पूजा है। सहज-पीठका उदाहरण स्त्रीपुरुषके संगम अवस्थाको समझने योग्य है, जिसमें स्वाभाविकरूपसे जीवोंका आकर्षण होकर गर्भाधान होता है। स्थूलयान्त्रिक पीठका उदाहरण शव-साधनादिको समझना उचित है। इस प्रकारसे पीठके अनेक भेद हैं। चिरस्थायी पीठोंमें और विशिष्ट तीर्थादिमें पीठाभिमानी देवता नित्य रूपसे रहा करते हैं और उनसे बड़े बड़े कार्य्य सिद्ध होते हैं। अतः पीठके साथ दैव जगत्का सम्बन्ध स्थापित रहता है। इस कारण तीर्थोंके साथ देवासुर-संग्रामके सम्बन्धका वर्णन पाया जाता है ॥ ३९ ॥

टीका—तीस क्षणका एक अहोरात्र अर्थात् दिन होता है। इसी हिसाबसे मास, रात्रि आदि निर्णय द्वारा वर्षका हिसाब बान्धा गया है। पुनः मानुषी वर्षके हिसाबसे एक ब्रह्माण्डकी आयुका निर्णय किया गया है। मनुष्यके २२३९४८०००००००००००००००००० वर्षोंकी एक ब्रह्माण्डकी आयु होती है। ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड श्रीजगदम्बा अपने एक निमेषमें बनाती हैं और लय करती है। ऊपर लिखित संख्या ही भगवान् रुद्रकी आयु समझी जाती है। एक रुद्रकी आयुमें विष्णुपदके कई भगवान् विष्णु बदल जाते हैं। उनकी आयु मनुष्य वर्षके ९३३१२००००००८००००००० वर्षोंकी होती है। एक भगवान् विष्णुकी आयुमें ब्रह्मापदके कई पदधारी बदल जाते हैं। एक भगवान् ब्रह्माकी आयु ३११०४०००००००००० मनुष्य वर्षकी होती है। ब्रह्माजीके प्रत्येक दिनमें सृष्टि होती है और प्रत्येक रातमें प्रलय होता है। भगवान् ब्रह्माकी रात्रिमें नीचेके सात लोक और ऊपरके तीन लोक तथा

यशोदाके गर्भसे उत्पन्न होउँगी एवं विन्ध्याचलमें रहकर उन दोनोंका विनाश करूंगी ॥४२॥ पुनः अतिभयानक-रूपसे भूमण्डल पर अवतीर्ण होकर वैप्रचित्त नामक दानवोंका विनाश करूंगी ॥ ४३ ॥ उन भयानक दानवोंको भक्षण करनेसे हमारी दंतपंक्तियां अनारके पुष्पके समान रक्तवर्ण हो जाएंगी, तब स्वर्गमें देवतागण एवं मृत्युलोकमें मनुष्यगण मुझको 'रक्तदंतिका' नामसे अभिहित करेंगे ॥ ४४-४५ ॥ पुनः सौ वर्षों तक अनावृष्टि होनेसे पृथिवीके जलरहित होने पर प्राणिगण मेरी स्तुति करेंगे तब मैं विना गर्भके ही उत्पन्न हूंगी ॥ ४६ ॥ एवं सौ नेत्रोंसे मुनियोंको देखूँगी, उससे मनुष्यगण मुझे 'शताक्षी' नामसे कीर्तित करेंगे ॥ ४७ ॥ हे देवतागण! उस समय मैं अपने देहसे नाना प्रकारके शाक उत्पन्न कर सबका पालन करूंगी, उन शाकोंके द्वारा वृष्टि होने तक प्राणिगण जीवित रहेंगे, इसलिये उस समय मैं 'शाकंभरी' नामसे विख्यात हूंगी ॥ ४८-४९ ॥ उस समय दुर्गम नामक महासुरका भी विनाश करूँगी, इसलिये मैं दुर्गादेवी नामसे विख्यात हूंगी। पुनः मैं अतिभयानक रूपसे हिमालयमें अवतीर्ण होकर मुनियोंकी रक्षाके निमित्त राक्षसोंका विनाश करूँगी, तब मुनिगण नम्रतासे मेरी स्तुति करेंगे, उस समय मैं 'भीमादेवी' नामसे प्रसिद्ध हूंगी ॥ ५०-५२ ॥ अनन्तर अरुण नामक महासुर जब त्रिलोकमें अत्यन्त बाधा उत्पन्न करेगा, तब मैं असंख्येय षट्पद युक्त भ्रमररूप धारण करके

भगवान् विष्णु की रात्रिमें नीचेके सातलोक और ऊपरके चारलोक तक नष्ट होजाते हैं और भगवान् रुद्रकी रात्रिमें ऊपरके पांच लोक तक लय हो जाते हैं, एवं रुद्रके लय होजाने पर सम्पूर्ण चतुर्दश भुवन जगत्के कारण ईश्वरमें लय को प्राप्त होता है। प्रथम चरित्रमें जो सृष्टिका वर्णन है, वह ब्रह्माण्डकी आदि सृष्टिका है, उक्त प्रकार त्रिदेवकी रात्रिके अवसानकी खण्ड सृष्टिका नहीं है। एक भगवान् ब्रह्माकी आयुमें कई मनु बदलते हैं। मनुष्यके ४३२०००० वर्षका एक महायुग, अर्थात् चौकड़ी युग होता है। इस प्रकारके ७१ महायुगोंके अनन्तर एक मनुका परिवर्त्तन होता है, वही मन्वन्तर कहाता है। कालके इसी हिसाबसे वर्त्तमान मन्वन्तरमें श्रीजगदम्बा पुनः स्थूलरूपमें वृजमें प्रकट हुई थीं। जैसे ब्रह्मचक्रके द्वारा द्वितीय-चरित्रके वर्णनके अनुसार देवलोकमें प्रकट हुई थीं उसी प्रकार पूर्णावतार श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रकी रक्षाके निमित्तसे श्रीजगदम्बा वृजमें प्रकट हुई थीं और दैववाणी द्वारा प्रबल असुरावतार कंसको भीति एवं कृपा दिखाई थी तृतीय चरित्रके समय जैसा जगन्माताका स्थूलपीठ हिमालय बना था, उसी प्रकार इस समय स्थूलपीठ विन्ध्याचल बना था। द्वितीय शुम्भनिशुम्भका वध जगदम्बा अपने अधिदैव स्वरूपसे सूक्ष्म दैवलोकमें करेंगी। जैसे मधुकैटभ वध, महिषासुर वध, और प्रथम शुम्भनिशुंभ वध रूपी पहलेके तीनों चरित्र सूक्ष्म-देवलोक व्यापी है, उसी प्रकार यह चरित्र मृत्युलोक और देवलोक उभयसे सम्बन्ध रखने वाला है। क्योंकि द्वितीय शुम्भ-निशुम्भ वधका देवलोकसे सम्बन्ध है तथा श्रीभगवान् कृष्णकी रक्षाकार्य्यका सम्बन्ध मृत्युलोकसे है। श्रीजगदम्बाके चरित्रके विकाशसे ही भगवान् श्रीकृष्णके पूर्णावतारत्वकी सिद्धि होती है और इसी प्रकार इस युगमें विन्ध्याचलकी सिद्धिप्रदायनी शक्ति शास्त्र द्वारा प्रमाणित है ॥ ४०-४२ ॥

इस महासुरको मारूंगी, उस समय लोग भ्रामरी रूपसे मेरी स्तुति करेंगे ॥ ५३-५४ ॥ इस प्रकारसे जब जब दानवोंके द्वारा पीड़ा उत्पन्न होगी तब तब मैं अवतीर्ण होकर शत्रुओंका विनाश करूंगी ॥ ५५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका नारायणीस्तुति नामक एक्यानबे अध्याय समाप्त हुआ ।

बानबेवां अध्याय ।

—०:*:०—

देवी बोली,—जो व्यक्ति संयतचित्त होकर इन स्तोत्रोंसे मेरी स्तुति करेगा, उसकी सब बाधायें मैं दूर करूंगी ॥१-२॥ जो व्यक्ति मधु-कैटभ एवं महिषासुरवधके विषयका मेरा चरित्र गान करेंगे एवं जो अष्टमी, चतुर्दशी तथा नवमी तिथिमें भक्ति-पूर्वक हमारे इस श्रेष्ठ माहात्म्यका श्रवण करेंगे, उनको कदापि पाप, पापजनित विपत्तियां एवं बान्धवोंके साथ वियोग नहीं होगा ॥ ३-५ ॥ एवं उनको शत्रुभय, दस्युभय, राजभय नहीं होगा तथा शस्त्र, अग्नि एवं जलवेगसे कदापि उनको भय उत्पन्न नहीं होगा ॥ ६ ॥ इसलिये सर्वदा मेरा यह माहात्म्य सावधानचित्तसे भक्तिपूर्वक श्रवण तथा पाठ करना चाहिये, यह बहुत कल्याणप्रद है ॥ ७ ॥ मेरा यह माहात्म्य पाठ और श्रवण करनेसे महामारीजनित नानाप्रकारका उपसर्ग एवं आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक सब त्रिविध उत्पात नाशको प्राप्त

टीका—ये सब चरित्र भविष्यत्में प्रकट होने योग्य और मृत्युलोकसे सम्बन्ध रखने वाले हैं ॥ ४३-५५ ॥

टीका—सृष्टिरूपी दृश्य प्रपंचमें विद्यावैभव और अविद्यावैभव दोनोंकी आवश्यकता अपने अपने अधिकारमें विद्यमान है । यदि अविद्याका वैभव न रहे तो जीवसृष्टि असम्भव हो जाय, भोगसम्बन्धीय लोकसमूहका अस्तित्व न रहे और कर्मशृंखला नष्ट हो जाय । उसी प्रकार विद्याकी कृपा न रहे, तो मुक्तिकी तो बात ही क्या है, लोग ईश्वरके अस्तित्वको भी भूल जाँय । इस कारण मानना ही पड़ेगा कि, जैसे उजियालेके विना अन्धेरा और अन्धेरेके विना उजियालेका अस्तित्व नहीं जाना जा सकता, वैसे ही दोनोंके अधिकारका रहना अवश्य सम्भावी है । इसी प्रकार प्राकृतिक क्रियाकी सामञ्जस्यरक्षा अथवा ब्रह्माण्डकी सुरक्षाके लिये देवता और असुरको अपने अपने अधिकारमें ही रहना उचित है । असुरगण जब देवताओंके अधिकारको छीनते हैं, तभी प्रकृतिराज्यमें असामंजस्य होकर ब्रह्माण्डमें विप्लव उपस्थित होता है । वह विप्लव केवल स्वर्गलोकमें ही नहीं होता, पितृलोक, मृत्युलोक आदिमें भी होता है, क्योंकि, यम, इन्द्र आदि सबके अधिकार छिन जाते हैं । उन अधिकारोंके छिन जानेसे मृत्युलोकमें भी आसुरी प्रकोप बढ़जाता है । अतः इस प्रकारसे विप्लव होनेसे जब सूक्ष्मराज्यमें असामञ्जस्य होता है, तब स्थूल जगत्में असामञ्जस्य हो जाता है और उस समय जगदम्बाके आविर्भूत होनेकी आवश्यकता होती है ॥ ५६ ॥

होते हैं ॥ ८ ॥ जिस गृहमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक् रूपसे नित्य पाठ किया जाता है, उस गृहको मैं कदापि परित्याग नहीं करती हूं, उस स्थानमें सर्वदा मेरा सान्निध्य रहता है ॥९॥ बलिदान, पूजा होमयज्ञादि तथा अन्यान्य महोत्सवोंमें मेरे ये सब माहात्म्य पाठ तथा श्रवण करने चाहिये ॥ १० ॥ जानकर या विना जाने भी मेरा यह माहात्म्य पाठ पूर्वक बलि, पूजा तथा होमादि करने पर मैं प्रेमपूर्वक ग्रहण करती हूं ॥ ११ ॥ शरत्कालमें प्रति-वर्ष जो मेरी महापूजा होती है, उसमें भक्तिपूर्वक मेरा यह माहात्म्य सुनने पर मनुष्य मेरी कृपासे सब दुःखोंसे रहित होकर धन धान्य पुत्रादिका आनन्द प्राप्त करता है, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ १२-१३ ॥ मेरा यह माहात्म्य तथा मंगलमयी उत्पत्ति एवं मेरा युद्ध-सम्बन्धी पराक्रम श्रवण करनेसे मनुष्यगण भयरहित होते हैं ॥ १४ ॥ मेरा यह माहात्म्य सुननेवाले व्यक्तियोंका शत्रु नाशको प्राप्त होता है, दिन प्रति दिन आनन्द एवं वंश वृद्धि-को प्राप्त होता है ॥ १५ ॥ सब प्रकारकी शान्तिक्रियामें, दुःस्वप्न देखनेमें एवं भयानक ग्रह पीड़ा आदिमें मेरा यह महात्म्य श्रवण करना चाहिये ॥ १६ ॥ ऐसा होनेसे सब उपसर्गोंकी शान्ति होती है, ग्रह-पीड़ा दूर होती है और दुःस्वप्न देखने पर वह सुस्वप्न में परिणत होता है ॥ १७ ॥ मेरा यह माहात्म्य पूतनादि बालग्रहसे पीड़ित बालकोंकी रक्षा करता है एवं मनुष्योंमें परस्पर विवाद होने पर उसको शान्त करके मित्रता उत्पन्न करता है ॥ १८ ॥ यह माहात्म्य दुर्वृत्तोंकी बलहानि करता है तथा पाठ मात्रसे ही राक्षस, भूत और पिशाच भाग जाते हैं ॥ १९ ॥ अधिक क्या कहा जाय, मेरे ये सब माहात्म्य पाठ करनेसे मेरा सान्निध्य तक प्राप्त होता है ॥ २० ॥ पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गन्ध, दीप, ब्राह्मण भोजन, होम, अभिषेकसामग्री और अन्यान्य भोज्य द्रव्यादि प्रदान पूर्वक एक वर्ष तक प्रति दिन पूजा करनेसे मैं जितना प्रसन्न होती हूं केवल एक बार यह चरित्र पाठ करने या सुननेसे मैं उतना ही प्रसन्न होती हूं ॥ २१-२२ ॥ मेरे जन्मविषयक उपाख्यान श्रवण करनेसे पाप विनाशको प्राप्त होता है, आरोग्य प्राप्त होता है, एवं सब हिंस्र प्राणियों-से रक्षा होती है ॥ २३ ॥ युद्धके समयका दुष्टदैत्योंके विनाशसम्बन्धीय जो मेरा चरित्र है, उसको श्रवण करनेसे शत्रुजनित भय कभी नहीं होता है ॥ २४ ॥ हे देवतागण ! तुम लोगोंने, ब्रह्मर्षियोंने एवं स्वयं ब्रह्माने जो मेरी स्तुति की है, उसको श्रवण करनेसे सद्बुद्धि उत्पन्न होती है ॥ २५ ॥ अरण्यमें, प्रान्तरमें, डाकुओंके द्वारा घिरे जाने पर, शत्रुओंके द्वारा आक्रान्त होने पर, सिंह व्याघ्रके द्वारा आक्रान्त होने पर, क्रुद्ध राजाके द्वारा बांधनेकी आज्ञा देने पर या बन्ध जाने पर महासमुद्रमें नौका पर जाते हुए वायु द्वारा चालित होने पर, भयानक युद्धक्षेत्रमें, भीषण शस्त्र प्रहार होनेके समय या अन्यान्य सब कष्टोंके समय यदि मेरा यह चरित्र स्मरण करे, तो सब संकट दूर होते हैं ॥ २६-२९ ॥ मेरा यह

चरित्र स्मरण करनेसे मेरे प्रभाव द्वारा सिंहादि हिंस्र जन्तु, दस्यु एवं शत्रुगण दूरसे भाग जाते हैं ॥ ३० ॥ ऋषि बोले,—प्रचण्डपराक्रमा भगवती चण्डिका इस प्रकार कह कर देवताओंको देखते देखते वहीं अन्तर्हिता हो गई ॥ ३१-३२ ॥ तब देवतागण भी शत्रुरहित होकर निर्भय हो पूर्ववत् अपने अपने अधिकारमें अधिष्ठित हुए एवं अपना अपना यज्ञ भाग ग्रहण करने लगे ॥ ३३ ॥ अवशिष्ट दैत्यगण भी देवीके द्वारा देवताओंके शत्रु जगत्-विध्वंसी अतुलपराक्रमशाली शुम्भ निशुम्भके मारे जाने पर पातालमें चले गये ॥ ३४-३५ ॥ हे भूपते! राजन्! देवी भगवती नित्या सनातनी होने पर भी इस प्रकार वार वार अवतीर्ण होकर जगत्का पालन किया करती हैं ॥ ३६ ॥ उन्हीं देवीके द्वारा यह विश्वब्रह्माण्ड मोहित हो रहा है, वही जगत्की सृष्टि करती हैं; उन्हींके निकट प्रार्थना करने पर वे प्रसन्न हो ज्ञान एवं सम्पत्ति प्रदान किया करती हैं ॥ ३७ ॥ हे राजन्! इन्हीं महाकालीके द्वारा जगत् परिव्याप्त हो रहा है। प्रलयके समय वे ही महामारी रूपसे अवस्थान करके सबको अपनेमें मिला लेती हैं, पुनः सृष्टिके समय वे ही सबकी सृष्टि करती हैं, फिर वे ही स्थितिके समय सबका पालन करती हैं, वे नित्या, सनातनी हैं। वृद्धिके समय वृद्धि प्रदान करनेमें समर्थ लक्ष्मीरूपिणी हैं पुनः अभावके

टीका—श्रीसप्तशती गीतारूपी ब्रह्ममयी सर्वशक्तिमती भगवती जगदम्बाका अलौकिक चरित्र किस प्रकारसे मन्त्ररूप है और कलियुगमें वैदिक मन्त्रोंसे भी अधिक शक्तिशाली है, इसका कुछ दिग्दर्शन पहले कराया गया है। ऐसे मन्त्रोंसे श्रद्धावान् साधक सब कुछ लाभ कर सकता है। अतः ऊपर लिखित फलश्रुतियोंके विषयमें कुछ सन्देह ही नहीं है। केवल मन्त्रशुद्धि, क्रियाशुद्धि और द्रव्यशुद्धि सहित साधनकी अपेक्षा है और जिस सिद्धिका श्रद्धा मूलमन्त्र है ॥ १-३० ॥

टीका—आकर्षणरूपी रज और विकर्षणरूपी तमोगुणका जहां समन्वय होता है, वहीं जगत् धारक और रक्षक सत्त्वगुणका उदय होता है। वही स्थिति कारक भगवान् विष्णुका अधिष्ठानपद है। सत्त्वगुणकी प्रधानता ही धर्मका स्वरूप है। जब देवताओंकी शक्ति और असुरोंकी शक्तिका समन्वय होता है, अर्थात् दोनों ही अपने अपने स्थान और पद पर रहते हैं, तभी धर्मका अभ्युत्थान रहता है, जब असुरोंका प्राबल्य होकर यह सामञ्जस्य नष्ट होजाता है, तभी धर्मकी ग्लानि होजाती है। देवताओंके जय होनेसे धर्मविप्लवकारी आसुरी शक्ति नष्ट हुई, देवता और असुर अपने अपने लोकोंमें प्रतिष्ठित रहे, धर्मका अभ्युत्थान हुआ, तब देवताओंको यज्ञभाग मिलने लगा। धर्म और यज्ञ ये दोनों पर्य्यायवाचक शब्द हैं। अधर्मका नाश और धर्मकी स्थापना, सृष्टिकी सामञ्जस्य रक्षा और धर्माधर्मरूपी कर्मकी सदसद्गतिकी सुरक्षा ही यज्ञभागका अध्यात्म स्वरूप है। मृत्युलोकमें पुरुषधर्म, नारीधर्म, प्रवृत्तिधर्म, निवृत्तिधर्म, साधारण धर्म, विशेषधर्म और वर्णाश्रमधर्म सदाचार आदिकी सुरक्षा होनेसे देवादिदेव भगवान् विष्णु प्रमुख सब देवता प्रसन्न और सम्वर्द्धित होते हैं। यही यज्ञभाग प्राप्तिका अधिदैव स्वरूप है और श्रौत-स्मार्त यज्ञकी सहायतासे देवताओंके मुखरूपी अग्निदेवके द्वारा यज्ञभागका देवलोकमें पहुंचना, यह यज्ञभागका अधिभूत स्वरूप है ॥ ३३ ॥

समय अलक्ष्मीरूपा होकर विनाश किया करती हैं ॥ ३८-४० ॥ पुष्प, धूप एवं गन्धादि द्वारा पूजा एवं स्तुति करनेसे वे धर्मबुद्धि, धन एवं पुत्रादि प्रदान करती हैं ॥ ४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय पुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका फलस्तुति नामक बानवे अध्याय समाप्त हुआ ।

तिरानबेवां अध्याय ।

ऋषिने कहा, हे भूप ! ये सब देवी माहात्म्य मैंने तुमसे कहा । वे देवी ऐसी प्रभावशालिनी हैं, जिन्होंने इस जगत्को धारण कर रक्खा है ॥ १-२ ॥ उन विष्णुमाया देवीके प्रसन्न होनेसे ही स्वरूप ज्ञान प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ उन्होंने ही तुमको, इस वैश्यको, तथा अन्यान्य विवेकी, अविवेकी सबको मोहित किया था, अब भी कर रही हैं और भविष्यत्में भी करेंगी ॥ ४ ॥ हे महाराज ! तुमलोग उन्हीं परमेश्वरीकी शरण लो, उनकी आराधना करनेसे वेही भोग, स्वर्ग, एवं अपवर्ग-मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ५ ॥ मार्कण्डेय बोले,-राज्य हार जानेसे दुःखी नरपति सुरथ एवं अति मोहसे निर्विण्ण-मानस मेधस नामक वैश्य मुनिकी इस प्रकारकी बात सुनकर अति प्रभाव सम्पन्न, व्रतधारी उन ऋषिको प्रणाम करके तपस्या करने चले गये ॥ ६-८ ॥ और जगन्माताके दर्शनकी अभिलाषासे नदीके तीर पर देवीसूक्त जप करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ९ ॥ उन दोनोंने उस नदीके तीर पर देवीकी मिट्टीकी प्रतिमा बनाकर पुष्प, धूप एवं होमादि द्वारा पूजा करना प्रारम्भ किया ॥ १० ॥ वे कभी निराहार रहकर, कभी फलमूलका आहार कर सब इन्द्रियोंका निग्रह करके मनको एकमात्र भगवतीमें लीन करके एवं अपने शरीरके रक्तका बलिदान

टीका—ब्रह्मशक्ति महामाया जो अघटनघटनापटीयसी हैं और सर्वशक्तिमयी हैं वे अविद्यारूप धारण करके जीवको मोहित करती हैं, एवं विद्यारूप धारण करके जीवका मोह दूर करती हैं । उसीसे एक ओर बन्धन, दूसरी ओर मुक्ति, एक ओर अज्ञान, दूसरी ओर ज्ञान, एक ओर अन्धकार दूसरी ओर प्रकाश, एक ओर आसुरी शक्ति दूसरी ओर दैवी शक्ति इत्यादि परस्पर विरोधी भाव सृष्टिमें दिखाई पड़ते हैं । सप्तशती गीताके प्रथम चरित्रमें एक ओर मधु-कैटभको मोहित करके उनके मुखसे वर दिलवा देना और दूसरी ओर भगवान् विष्णुके शरीरसे निकल कर उनको प्रकृतिस्थ कर देना महामायाके द्वन्द्व भावोंका परिचायक है ॥ २-४ ॥

टीका—वेद और शास्त्रोंमें सोलह दिव्यदेश माने गये हैं, मूर्ति अर्थात् प्रतिमा उन्हींमेंसे एक है । सर्वव्यापक जगत्पिता परमात्माकी चाहे पुरुषरूपसे उपासना करे, चाहे स्त्रीरूपसे उपासना करे, सनातनधर्मी उपासक इन्हीं जल, अग्नि, पट, मूर्ति, मण्डल, यन्त्र, हृदय, मूर्द्धा आदि सोलह दिव्य देशोंमें

करते हुए तपस्या करने लगे ॥ ११ ॥ इसी प्रकार तीन वर्ष तक संयतात्मा हो आराधना करने पर जगद्धात्री चण्डिका देवी प्रसन्न हो सामने आकर बोलीं ॥ १२ ॥ हे भूप! हे कुलनन्दन वैश्य! मैं प्रसन्न हूं तुम दोनोंके जो जो प्रार्थनीय हों, उन्हें मुझसे प्राप्त करो, मैं सबकुछ प्रदान करती हूँ ॥ १३-१४ ॥ मार्कण्डेयने कहा, तब राजा सुरथने जन्मान्तरमें भी अक्षुण्ण राजत्व एवं इस जगत्में शत्रुओंका विनाश करके राज्य पानेकी प्रार्थना की। अनन्तर समाधि नामक उस वैश्यने संसारके प्रति अत्यन्त विरक्त होनेसे पुत्र, कलत्र एवं देहादिमें आसक्तिके नाश करने वाले परमज्ञानके लिये प्रार्थना की ॥ १५-१७ ॥ देवी बोली, हे भूपते! तुम शीघ्रही अपना राज्य प्राप्त करोगे, एवं शत्रुओंका नाश करके निर्विघ्न भावसे उसका भोग करोगे ॥ १८-२० ॥ पुनः शरीरान्तके बाद सूर्य्यदेवसे जन्मलाभ करके पृथिवीमें सावर्णि नामक मनुरूपसे प्रसिद्ध होगे ॥ २१-२२ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ! तुमने मेरे निकट

से किसीको पीठ बनाकर उपासना किया करते हैं। वे मूर्तिकी उपासना नहीं करते हैं, मूर्तिमें पीठ बनाकर उपासना करते हैं। जैसे गौके सारे शरीरमें रसरूपसे दुग्ध रहने पर भी स्तन द्वारा ही वह क्षरित होता है, उसी प्रकार चिन्मयी ब्रह्मशक्ति सर्वव्यापक होने पर भी दिव्यदेशोंमें आविर्भूत होती हैं। यही मूर्तिपूजाका रहस्य है, यही मूर्तिपूजाकी परम उपकारिता और महत्त्व है। बलिके विषयमें भी शंका होसकती है। इसलिये समाधान किया जाता है। उपासनाके निमित्त त्यागविशेषको बलि कहते हैं। बलिका अध्यात्मरूप आत्मबलि, उसका अधिदैवस्वरूप सूक्ष्म और स्थूल सम्बन्धनीय त्याग तथा उसका अधिभूत रूप पशु बलि अथवा उसका अनुकल्प कूष्माण्डबलि आदि है। मनुष्य प्रवृत्तिके वश होकर मांस आदि भक्षणकी इच्छा रखता है। ऐसे अधिकारीके लिये पशुबलि विहित है। मध्यम अधिकारीके लिये अधिदैव बलि विहित है, जैसा कि इन दोनोंने किया था अथवा काम क्रोधादिकी बलि जो मानस पूजामें किया जाता है। उत्तम अधिकारीके लिये अध्यात्म बलि अर्थात् जैव अहंकारकी बलि देना शास्त्रसम्मत है ॥ १०-११ ॥

टीका—ऐशगतिका वर्णन पहले संक्षेपरूपसे आचुका है। मनुष्यलोकके उन्नत जीव जो कृष्ण-गतिके फंदेसे बच जाते हैं, दूसरी ओर उन्नत वासना रहनेसे उच्च देवपदके अधिकारी होते हैं, वे इस प्रकारसे मनुत्व, इन्द्रत्व आदि देवपदोंको प्राप्त करते हैं, और क्रमशः आगे बढ़ते बढ़ते ऐशगति द्वारा मुक्त होजाते हैं, जैसा कि, पहले कहा गया है। पुण्यात्मा मनुष्य साधारणतः पितृलोक, भुवर्लोक आदिमें जाकर स्वर्गसुखभोग करके पुनः आवागमनचक्रसे मृत्युलोकमें आजाते हैं। यह साधारण कृष्णगतिकी अवस्था है, परन्तु जो जीव उग्र तपस्याके बलसे उन्नत देवपदके अधिकारी बन जाते हैं, उन्हींकी गतिको ऐशगति कहते हैं और उनका पुनः मृत्युलोकमें लौटना प्रायः नहीं होता है। राजा सुरथको यही गति प्राप्त हुई है। वे मनुपद प्राप्त करेंगे और क्रमशः श्रीजगदम्बाकी कृपासे ऐशगतिके द्वारा अग्रसर होंगे। यह मनुष्यके लिये असाधारण गति है। बड़े शक्तिशाली तथा तपस्वी उपासक ही ऐसी श्रेष्ठगतिको प्राप्त कर सकते हैं ॥ २१-२२ ॥

टीका—समाधि नामक वैश्यका भविष्यत् भी बहुत प्रशंसनीय है। यद्यपि वैश्य जाति तृतीय श्रेणीमें है और वैश्यधर्म अर्थप्रधान होनेसे ये मुक्तिके अधिकारी नहीं होते हैं, परन्तु अपनी उग्र तपस्या

जिस वरकी प्रार्थनाकी है, सो मैंने प्रदान किया; तुमको आत्मज्ञान प्राप्त होगा ॥ २३-२४ ॥ मार्कण्डेय बोले,-इस प्रकारसे उन दोनोंको यथाभिलषित वर प्रदान करके एवं उनके द्वारा

तथा त्यागवृत्ति और उपासनाके बलसे एक जन्ममेंही समाधिने ऐसी उच्चगतिकी प्राप्त की, जो देवताओंको भी दुर्लभ है और वर्णगुरु ब्राह्मणके लिये भी सुलभ नहीं है, क्योंकि आत्मज्ञानका अधिकारी ब्राह्मण चतुर्थ आश्रम अवलम्बन करके अन्तमें मुक्त होता है। पूर्वजन्मार्जित जाति, आयु और भोगके प्राप्तिके द्वारा मनुष्य चाहे किसी वर्णमें जन्म ग्रहण करे, परन्तु कर्म और उपासना, तपस्या और ज्ञानार्जन आदिके द्वारा वह जन्मान्तरमें जैसा चाहे, वैसा ही उन्नत अधिकारोंको प्राप्त कर सकता है। विशेषतः भक्ति और उपासनाकी अलौकिक महाशक्तिका आश्रय लेनेसे किसीको भी निराश होनेकी सम्भावना नहीं रहती है। यही वेद और शास्त्रका सिद्धान्त है। और यही वर्णाश्रम धर्मका सार्वभौम और उदार विज्ञान है। केवल शरीरके विचारसे उस मनुष्यजन्ममें वैश्यवर समाधिने वैश्यजातिमें जन्मग्रहण करनेपर भी उग्र तपस्या और उपासना द्वारा ऐसी गति प्राप्तकी, जो ब्राह्मणों और देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। उग्रकर्मा तपस्विगण सूर्यमण्डल भेदन करके जो शुक्ल गतिके द्वारा निर्वाणपदको प्राप्त करते हैं, वैश्यवर समाधिको उससे भी अधिकतर सुबिधाकी अवस्था सहजगतिकी प्राप्ति हुई थी। इसी मृत्यु लोकमें गुरु कृपासे आत्मज्ञान प्राप्त करके जो जीवन्मुक्तदशा प्राप्त होती है, उसीको सहजगति कहते हैं। इस गतिको प्राप्तकर लेनेसे आत्माराम जीवन्मुक्तको पुनः स्थूल शरीरके पातके अनन्तर कहीं भी जाना नहीं पड़ता। जगज्जननी श्रीमहामयाकी कृपा ही इसका कारण है ॥ २३—२४ ॥

टीकाः—सप्तशती गीता कलियुगका सर्वोत्तम मन्त्र ग्रन्थ है। सर्वशक्तिप्रद और परमकल्याणदायी गीता ग्रन्थ है। इसके प्रत्येक शब्दकी शक्ति और सत्यता अवश्यसम्भावी है। इस मन्त्रगीतामें बहुधा एक शंका विद्वज्जन किया करते हैं। इस गीताग्रन्थके प्रारम्भमें "सावर्णिः सूर्यतनयो यो मनुः कथ्यतेऽष्टमः" और अन्तमें "सूर्याज्जन्म समासाद्य सावर्णिर्भविता मनुः" इस प्रकार परस्परविरोधी वचन हैं। यह परस्पर विरोधी वचन आस्तिक और नास्तिक दोनों प्रकारके विद्वानोंको सर्वदा खटकते हैं। वैदिक सिद्धान्तको न माननेवाले आधिभौतिक दृष्टियुक्त पण्डितगण तो ऐसे वचनोंपर स्वतः ही शङ्का किया करते हैं, किन्तु वैदिक सिद्धान्तके माननेवाले आस्तिक विद्वानोंके चित्तमें भी ये परस्परविरोधी वचन-समूह बहुत ही सन्देह उत्पन्न किया करते हैं। ऐसा होना भी स्वाभाविक है। क्योंकि दैवीजगत्का स्वरूप, दैवी जगत्की श्रृंखला और दैवीजगत्के रहस्यको जाननेवाले तत्त्वदर्शी और आन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगिराजोंका अभाव सभी समयमें हुआ करता है। विशेषतः इस घोर कलियुगमें भूगोलके दो चार पन्ने पढ़ लेनेसे ही और पृथ्वीका नकशा देख लेनेसे ही विद्वज्जन अपनेको यथेष्ट ज्ञानी और सृष्टिका पारदर्शी मानने लगते हैं। इस टीका ग्रन्थमें बार बार दिखाया गया है कि, अनन्त ब्रह्माण्ड भाण्डोदरी विश्वजननी महामायाके विराट् उदारमें अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड भासमान रहनेपर भी हम केवल हमारे ब्रह्माण्डका ही बहुत थोड़ा अंश जान सकते हैं। हमारे ब्रह्माण्डमें केवल एक चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा यह मृत्युलोक है और बाकी सब हिस्सा देवलोक है। जिस देवलोकको हम अपने स्थूल नेत्रों द्वारा न देख सकते हैं और न हमारी स्थूल बुद्धि उनका अस्तित्व समझ सकती है। परन्तु इस ब्रह्माण्डके भूर्भुव आदि सात ऊर्द्ध्वलोक और अतल वितल आदि सात अधोलोक और उनके अवान्तर अनेकानेक सूक्ष्म दिव्य-लोकोंका रहना शास्त्रोंसे प्रमाणित है और दार्शनिक दिव्य दृष्टिसे देखने योग्य भी है। उन्हीं दिव्यलोकोंका

भक्तिपूर्वक स्तुता हो देवी तत्क्षणात् अन्तर्हित हो गईं ॥ २५-२७ ॥ इस प्रकार क्षत्रियोंमें

प्रभाव और उनके देवपदधारियोंका आधिपत्य हमारे स्थूल मृत्युलोक पर सदा पड़ा करता है। जिसको स्थूलदर्शी साधारण मानवगण अपनी आधिभौतिक दृष्टिसे कदापि अनुभव करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। यही कारण है कि, इस आधिभौतिक युगमें सूक्ष्म दैवी राज्यपर विश्वास एकवार ही नहीं रहा है। इसका प्रधान कारण यथार्थ शिक्षाका अभाव है। पूज्यपाद महर्षियोंने शिक्षाके तीन प्रधान विभाग कहे हैं। एक शिल्प सम्बन्धी शिक्षा, दूसरी पदार्थ विद्या अर्थात् साइन्स सम्बन्धी शिक्षा और तीसरी दार्शनिक अथवा वैदिक शिक्षा। प्रकृतिके स्थूल साम्राज्यके अङ्गोंकी नकल करनेको शिल्प कहते हैं। प्राकृतिक शक्तिके अङ्गोंपर आधिपत्य करनेको पदार्थविद्या, साइन्स अथवा विज्ञान कहते हैं और अन्तरराज्य, दैवीसाम्राज्य और आत्मा-अनात्माकी गति तथा स्वरूपका स्वानुभव आदि अलौकिक योगदृष्टिसे ज्ञात करानेवाली दार्शनिक शिक्षा है। प्राचीन कालमें ये तीनों शिक्षाएँ भारतवर्षमें थीं। भेद इतना ही था कि, उस समय केवल जीवनयात्रा निर्वाहके लिये जितनी शिल्पशिक्षा या जितनी विज्ञानशिक्षाकी आवश्यकता थी, उतनी ही करके शेष पुरुषार्थ वे दार्शनिक शिक्षामें लगाते थे। इस समय वैदिक और दार्शनिक शिक्षा एकवार ही लुप्त हो गयी है और शेष दोनों शिक्षाओंपर ही सबकी दृष्टि आकृष्ट हो गयी है। इसी कारण आज-कलके विद्वज्जन सूक्ष्म अन्तरराज्य और दैवीशृंखलाको एकवार ही भूल रहे हैं। यही कारण है कि, हमारे वेदों और पुराणोंके स्वरूप और शास्त्रोंके वचनोंकी सत्यतापर सर्वदा लोगोंको सन्देह हुआ करता है। इससे पहिले ही अच्छी तरह दिखाया गया है कि, हम सृष्टि और उसके देवपदोंकी आयुको कैसा मानते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरमें कैसे कैसे देवपदधारी बदल जाते हैं और कैसा आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक परिवर्तन प्रत्येक मन्वन्तरमें हुआ करता है। जब एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरमें इतना परिवर्तन होता है, तो कल्पकल्पान्तरमें और भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवकी रात्रि और दिवसमें कितना परिवर्तन एक ब्रह्माण्डमें होना सम्भव है, इसका अनुमान मनुष्यकी साधारण बुद्धि कदापि नहीं कर सकती। पुराणोंमें जो गाथाएँ, जो चरित्र और जो ऐतिहासिक घटनाओंका वर्णन आता है, वह सब मन्वन्तर, मन्वन्तरान्तर और कल्पान्तरकी घटनाओंका यथासम्भव स्वरूप समाधिगम्य अलौकिक प्रत्यक्ष द्वारा अनुभव करके त्रिकालदर्शी महर्षिगण अथवा भगवान् व्यासजी लोककल्याणार्थ कहा करते हैं। इस विषयका हम बार बार इस टीकामें इंगित कर चुके हैं। इसी प्रकार पुराणोंमें वर्णित जो देवताओंकी गाथा, अवतारोंकी गाथा और देवपदोंकी गाथा पायी जाती है, वह भी सृष्टि सम्बन्धसे नित्यता रखती है। जैसे ब्रह्मपद आदि नित्य हैं, वैसे ही इन्द्रपद और मनुपद आदि भी नित्य हैं। इसी तरह इस मृत्युलोकमें प्रकट होनेवाले राम कृष्णादि अवतारोंके सामयिक पद और अन्तर्जगत्में गुरु दत्तात्रेय आदि अवतारपद भी नित्य हैं। इन्द्रादि नित्यपद नित्यरूपसे सर्वदा और रामकृष्णादि अवतारपद नैमित्तिक समयपर प्रकट होनेके विचारसे स्थायी पद हैं। अर्थात् इन्द्रादिपद तो सब समय स्थायी रहते हैं और जिस युगमें रामकृष्णादि अवतारोंके आविर्भावकी आवश्यकता होती है, उस समय उनका प्राकट्य होना भी निश्चित है। उसी अधिदैव कारणसे और उसी दैवीशृङ्खलाकी मर्यादाके अनुसार चतुर्दश मनुका बार बार होना और यथासमय होना स्वाभाविक है; और उनके चरित्रोंका भी सादृश्य रहना विभिन्न विभिन्न कालधर्मके संस्कारोंके अनुसार निश्चित ही रहता है। इन सब पदोंमें आत्माओंका परिवर्तन अवश्य होता रहता है, परन्तु कालकी घटनप्रणालीके अनुसार और कालके समष्टि संस्कारके अनुसार उनके पदधारियोंकी आयु और उनके जीवनकी घटनावलीमें सामञ्जस्य रहता है। इसी कारण सप्तशती-

श्रेष्ठ राजा सुरथ देवीके द्वारा वर प्राप्त करके सूर्य्यसे जन्म लेकर सावर्णि नामक मनु होंगे ॥ २८-२९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेयमहापुराणमें सावर्णि मन्वन्तरके देवी माहात्म्यका सुरथ तथा वैश्यको वर प्रदान नामक तिरानवेवां अध्याय समाप्त हुआ ।

दूसरा खण्ड समाप्त ।

गीतामें दोनों प्रकारके वचनोंका उल्लेख होनेसे दूषण नहीं, भूषण ही है। अधिकन्तु दैवी जगत्का रहस्य-प्रकाशक है। इसी विज्ञानके अनुसार अष्टम मनु सावर्णिके विषयमें जो दो प्रकारसे कहा गया है, वह युक्तियुक्त ही है। अष्टम मनु प्रतिकल्पमें वैसे ही प्रकट होते हैं जैसे कि, चतुर्दश मनु अलग अलग प्रकट होते हैं। मनुपद एक बड़ा भारी देवपद है। उसमें प्रति कल्पमें अलग अलग चौदह उन्नत आत्माएँ ऐश कर्मके प्रभावसे उन्नति लाभकरती हुई जगज्जननी श्रीजगदम्बाकी कृपासे पहुँचा करती हैं। परन्तु वह पद नित्य है। केवल आत्माएँ उस पदपर प्रत्येक कल्पमें अलग अलग पहुँचती हैं। दूसरी ओर सृष्टिकी शृंखला जब नियमित है, तो ऐसे पदधारियोंकी जीवनयात्राभी कालके यथानियमसे नियमित हुआ करती है। यही कारण है कि, अष्टम मनु सावर्णिके लिये 'हुऐ हैं' और 'होंगे' इन दोनों शब्दोंका प्रयोग हो सकता है, इसमें कोई आश्चर्य माननेकी बात नहीं है। श्रीभगवान व्यासने जब एक अष्टम मनुका चरित्र समाधिद्वारा देख लिया था, तो सभी अष्टम मनुओंका देख लियाथा, ऐसा समझना उचित है। पुराणोंके और वेदोंके व्यक्तियोंकी चरितावलीको लौकिक चरितावली न मानकर ऐसी ही अलौकिक चरितावली जो मानेंगे, वे कदापि विमोहित नहीं होंगे। इसी सिद्धान्तके अनुसार मानवधर्म-शास्त्र प्रणेता मनुको जो मनुष्य लोकका राजा समझते हैं, वे भी भ्रममें पतित होते हैं। मानवधर्मशास्त्र कालके रक्षक और नियन्ता, देवलोकके एक विशिष्ट पदधारी देवताकी प्रेरणासे इस मृत्युलोकमें प्रकट हुआ था, यही शास्त्रका सिद्धान्त है। मन्वन्तर समूह और जगज्जननी महामायाकी अलौकिक दिव्य चरितावलीको प्रकाशित करके मार्कण्डेयपुराण धन्य हुआ है ॥ २५-२९ ॥

इस प्रकार सप्तशती गीताकी "मातृमहिमा प्रकाशिनी" टीका समाप्त हुई ।

सूर्योदय ।

अखिल भारतवर्षीय-संस्कृतविश्वविद्यालयकी ओरसे निकलनेवाला यह एकमात्र संस्कृत मासिक पत्र है । इसकी लेखप्रणालीसे संतुष्ट होकर कितनेही स्वाधीन राजा महाराजा इसके संरक्षक हुए हैं और भारतके सब प्रान्तोंके लोगोंने इसे अपनाया है । इसके पाठसे जो संस्कृतका अभ्यास करना चाहते हैं उन्हें सहायता मिलेगी और इसमें प्रकाशित होनेवाले अपूर्व संस्कृत ग्रन्थोंसे उनके यहां एक पुस्तकालय बन जायगा । वार्षिक मूल्य ३)

मैनेजर, "सूर्योदय"
बनारस केण्ट ।

भारतधर्म ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बियोंकी एकमात्र विराट् धर्मसभा श्रीभारतधर्म महामण्डलका यह द्वैभाषिक (हिन्दी-अंग्रेजी) मासिक मुखपत्र है । धार्मिक जगत्में सनातनधर्मका पक्ष ग्रहण करनेवाला यही एक पुराना पत्र है । वार्षिक मूल्य ३) श्रीमहामण्डल के सभ्योंके लिये २) इसके ग्राहक समाजहितकारी कोषसे भरपूर आर्थिक लाभ उठा सकेंगे । इसके साथ एक अपूर्व हिन्दी ग्रन्थमाला भी निकलती है ।

मैनेजर "भारतधर्म"
महामण्डल भवन, बनारस केण्ट ।

अपने स्वजातीय "भारतधर्म प्रेस" में ही सुन्दरताके साथ काम छपाना हिन्दूमात्रका कर्त्तव्य है—पता :—

मैनेजर भारतधर्म प्रेस, स्टेशन रोड, बनारस (सिटी)

आर्यमहिला ।

अखिल भारतवर्षीय सनातनधर्मावलम्बिनी आर्यमहिलाओंकी एकमात्र प्रतिनिधि महासभा श्रीआर्यमहिलाहितकारिणी महापरिषद्की यह सर्वाङ्गसुन्दर सचित्र मासिक मुखपत्रिका है । प्रत्येक गृहस्थ और गृहिणीको इसे अपनाना चाहिये । वार्षिक मूल्य ५) सार्वजनिक संस्थाओं, विधवाओं और विद्यार्थियोंके लिये ४)

मैनेजर "आर्यमहिला"
बनारस (छावनी)

श्रीभारतधर्ममहामण्डलके सभ्य बनना सनातनधर्मावलम्बी मात्रका धर्म है—पताः—

सेक्रेटरी श्रीभारतधर्म महामण्डल, जगद्गुरुख, बनारस (छावनी)

निगमागम बुकडिपो ।

सब प्रकारकी धार्मिक, दार्शनिक, वैदिक, वैज्ञानिक, व्यावहारिक, शास्त्रीय आदि पुस्तकें मिल सकें, ऐसा यही एक मात्र बुकडिपो है । उक्त सब प्रकारकी पुस्तकोंके अतिरिक्त निगमागमग्रन्थमाला, वाणीपुस्तकमाला, आर्यमहिलापुस्तकमाला आदि मालाओंकी पुस्तकें भी इस डिपोमें मिलती हैं । विशेषता यह है कि, स्थायी ग्राहकोंको सब पुस्तकें पौने मूल्यमें दी जाती है। बड़ा सूचीपत्र मंगाइये । और उसके स्थायी ग्राहक बनिये ।

मैनेजर "निगमागम बुकडिपो",
भारतधर्म सिण्डिकेट, बनारस ।

समाजहितकारी कोष ।

जिनकी पर्याप्त आय नहीं है, ऐसे हिन्दु गृहस्थोंके कन्या-पुत्रोंके विवाह कार्य तथा आत्मीयोंकी गमीके अवसरपर आर्थिक सहायता पहुंचानेके अभिप्रायसे यह कोष खोलागया है । इसके मेंबर होनेवालोंको बहुत सुगमतासे उक्त अवसरोंपर १०००) तककी सहायता मिल सकती है और वे स्वाभाविक रूपसे ही श्रीभारतधर्ममहामण्डलके मेंबर होजाते हैं । विस्तृत नियमावली मंगाकर देखिये ।

सेक्रेटरी "समाजहितकारी कोष"
महामण्डल भवन, बनारस केण्ट ।

मार्कण्डेय पुराण ।

[तृतीय खण्ड]

श्रीः ।

मार्कण्डेय पुराण ।

[तृतीय खण्ड]

श्रीभारत-धर्म-महामण्डलके प्रधान व्यवस्थापक
पूज्यपाद श्रीस्वामीजी महाराजकी लिखायी
हुई 'रहस्योद्घाटिनी' टीका सहित ।

सम्पादकः—
गोविन्द शास्त्री दुगवेकर ।

प्रकाशकः—
आर्यमहिलाहितकारिणीमहापरिषद्,
बनारस ।

द्वितीय संस्करण] सन् १९३३ । [मूल्य एक रुपया

* ॐ तत्सत् *

दो शब्द ।

—:*:—

श्रीजगन्मङ्गलमयी जगदम्बाकी अपार कृपासे इस तृतीय खण्डके साथ "मार्कण्डेय महापुराण" का "रहस्योद्घाटिनी" टीका सहित सम्पूर्ण अनुवाद समाप्त हो रहा है। कोई छोटा ही सङ्कल्प क्यों न किया गया हो, वह सिद्ध हुआ देख, अन्तःकरणमें एक प्रकारका सात्त्विक आनन्द होता है। इस समग्र पुराणके यथाज्ञान किये हुए भाषान्तरको प्रकाशित करते हुए हम भी ऐसे ही आनन्दका अनुभव कर रहे हैं।

प्रथम खण्डकी प्रस्तावनामें हमने लिखा थाः—"सम्भवतः ऐसे ही तीन खण्डोंमें यह ग्रन्थ समाप्त हो जायगा।" तदनुसार तीन ही खण्डोंमें यह समाप्त हुआ है। साथ ही लिखा थाः—"इसके साथ प्रकाशित होनेवाली पूज्यपाद श्रीजी महाराजकी टिप्पणियोंमें ही इस "पुराणमाला" का प्राण है। इस एक पुराणकी ही सब टिप्पणियोंका यदि पाठकगण मनोयोगके साथ अध्ययन कर लें, तो इस पुराणमें वर्णित विषयोंमें तो कोई सन्देह रहना सम्भव ही नहीं है; किन्तु अन्य पुराणोंका पाठ करते समय ये टिप्पणियाँ पुराणोंके रहस्योद्घाटनमें कुञ्जीका काम देंगी। विशेषतः यह "रहस्योद्घाटिनी" टीका संस्कृत और हिन्दीके विद्वानों, सनातनधर्मरक्षक गुरुओं, पुरोहित-सम्प्रदायों, पुराणव्यवसायियों और सब श्रेणीके शिक्षित नर-नारियोंके लिये अत्यन्त उपयोगी है।" तीनों खण्डोंकी टिप्पणियाँ आज पाठकोंके सम्मुख हैं। इनका अभ्यास ध्यानपूर्वक जिन जिज्ञासुओंने किया होगा, वे हमारे कथनकी सत्यतापर कदापि सन्देह नहीं करेंगे। विवादग्रस्त और संशयको बढ़ानेवाले प्रायः सभी विषयोंपर उक्त टिप्पणियोंके द्वारा प्रकाश डाला गया है और वे सब उलझनें सुगमतापूर्वक सुलझा दी गयी हैं, जो प्रायः पुराणपाठकोंके हृदयोंमें पड़ जाया करती हैं। एक प्रकारसे श्रीस्वामीजी महाराजने टिप्पणियाँ क्या लिखायी हैं, ज्ञानपिपासुओंकी मनोमयी गागरमें विविध और व्यापक तत्वज्ञानका सागर भर दिया है। श्रीजीके इस पवित्र और त्रिलोककल्याणकारी पुरुषार्थसे लाभ उठाना बुद्धिमान् नर-नारियोंके हाथमें है।

यद्यपि समग्र पुराणके अनुवादका दायित्व हमपर ही है, तथापि यहां यह कह देना आवश्यक है कि, ५६वें अध्यायसे ८०वें अध्यायतकका अनुवाद काश्मीर राज्यके भूतपूर्व शिक्षामन्त्री, श्रीजीके परमभक्त और हमारे मित्र श्रीयुत पण्डित रमेशदत्त पाण्डेय बी० ए० के सम्पादकत्वमें श्रीजीके सुयोग्य विद्वान् शिष्योंने किया है और "सप्त-

शती गीता" का सम्पूर्ण भाषान्तर "आर्यमहिला-हितकारिणी-महापरिषद्" की प्रधान सञ्चालिका परमतपस्विनी श्रीमती विद्यादेवी महोदयाकी कुशल-लेखनीसे निकला है। सम्पूर्ण ग्रन्थकी भाषासरणी एक ही ढङ्गकी रखनेका विचार सभीने रक्खा है; परन्तु यह स्वीकार करना ही पड़ता है कि, ग्रन्थमें,—विशेषतया द्वितीय खण्डमें,—संशोधनकी कुछ अक्षम्य भूलें दृष्टिदोषसे रह गयी हैं; जिनके लिये पाठकोंसे क्षमा-प्रार्थना करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। यदि श्रीजगन्माताकी करुणासे हमें इस ग्रन्थके पुनर्मुद्रणका सुअवसर प्राप्त हुआ, तो द्वितीय संस्करणमें वे सब भूलें सुधार दी जायँगी।

"रहस्योद्घाटिनी" टीकामें प्रसङ्ग-विशेषसे जहाँ तहाँ अनेक विषयोंका ऊहापोह किया गया है। उनकी शृंखला बाँधनेके विचारसे हमने एक स्वतन्त्र सूची और उसका 'अ'कारादि क्रम तैयार कर इस खण्डके साथ प्रकाशित कर दिया है। इस सूची और क्रमसे पाठकोंको ज्ञात हो सकेगा कि, कौनसा विषय कहां है। इस व्यवस्थासे अन्य पुराणोंके पाठमें भी सहायता मिलेगी।

पूर्वप्रतिज्ञाके अनुसार इस ग्रन्थके समाप्त होनेपर दूसरा ग्रन्थ "श्रीदेवीभागवत" भाषान्तरके लिये हम हाथमें ले रहे हैं। वह भी इसी ग्रन्थकी तरह टीका-टिप्पणीसहित प्रथम क्रमशः "आर्यमहिला" में छपकर पीछे स्वतन्त्र पुस्तकाकार प्रकाशित किया जायगा। श्रीदेवीभागवत मार्कण्डेयपुराणसे ठीक दुगुना ग्रन्थ है। मार्कण्डेयपुराणके नौ सहस्र श्लोक हैं, तो श्रीदेवीभागवतके अठारह सहस्र। परन्तु मार्कण्डेयपुराण जितना सरल है, श्रीदेवीभागवत उतना ही कठिन है। उसकी भाषा इस पुराणसे अधिक प्रौढ़ और विषय भी अति निगूढ़ हैं। तो भी जब श्रीजीने इस कार्यको करनेकी आज्ञा दी है, तब हमें विश्वास है कि, वे ही इसको पार भी लगावेंगे। श्रीगुरुदेवके आशीर्वाद और श्रीजगदीश्वरीके कृपा-कटाक्षसे ही जगत्के सब महत्कार्य सम्पन्न होते हैं, यह हमारा दृढ़ विश्वास है और उसी विश्वासके आधारपर हम कह सकते हैं:—

"उन्हींके मतलबकी कह रहा हूं, ज़बान मेरी है बात उनकी।
उन्हींकी महफ़िल सम्हालता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी॥
फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है, उन्हींका मज़मूँ निकल रहा है।
उन्हींका मज़मूँ उन्हींका काग़ज़ क़लम उन्हींकी दवात उनकी॥"

विनीत—

वसन्त-पञ्चमी
संवत् १९८९ } गोविन्द शास्त्री दुगवेकर।

मार्कण्डेय पुराण

के

तृतीय-खण्डकी विषय-सूची।

—:※:—

तृतीय खण्ड समाप्त ।

भारतधर्म-वैभव

कैप्टन हिज-हाइनेस महाराजा श्रीमान् सर नरेन्द्रसाह वहादुर

के. सी. एस्. आई.

टेहरी (गढ़वाल)

विद्यापति प्रेस, लहेरियासराय

समर्पण

भारतधर्म-वैभव

कैप्टन हिज़हाईनेस महाराजा श्रीमान् सर नरेन्द्रशाह बहादुर

के. सी. एस्. आई.

टेहरी (गढ़वाल)

स्वस्ति श्रीभूपाल उत्तराखण्ड-अधीश्वर ।
केलि करैं लै मुक्ति-बदरि कर केदारेश्वर ॥
ज्ञान-खानि अघहानि-कारि जहँ सुर कवि बानी ।
बसैं निरन्तर गङ्गधारकी रचैं कहानी ॥
इडा पिङ्गला गङ्ग-जमुन बिच तुव रजधानी ।
मनो सुषुम्ना चित्स्वरूपिणी उई भवानी ॥
हिममय अचल जुड़ावत हिय करि अचला कमला ।
गोद गहे सकुटुम्ब भूप पाये मति विमला ॥
मार्कण्डेय पुराण भेट करि 'विद्या' गावे ।
मार्कण्डेय समान दीर्घ जीवन नृप पावैं ॥

——०*०——

मार्कण्डेय पुराण।

तृतीय खण्ड।

चौरानबेवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—यह सावर्णिक मन्वन्तरका विषय तुमसे कहा गया। उसी प्रसङ्गमें देवीमाहात्म्य, महिषासुरवध, महायुद्धमें मातृगण तथा देवीकी उत्पत्ति, चामुण्डादेवीकी उत्पत्ति, शिवदूतीका माहात्म्य, शुम्भ-निशुम्भवध तथा रक्तवीजवध इन सबका भी पूर्णरूपसे वर्णन किया गया है। हे मुनिश्रेष्ठ! अब आगामी नवम मनु दक्षपुत्र सावर्णिका मन्वन्तर कहता हूं, सुनो॥ १—४॥ उस मनुके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि एवं जो जो नरपतिगण होंगे, वह कहता हूं। पारामरीचि, भर्ग और सुधर्मा, देवगणमें ये त्रिविध गण और प्रत्येक गणमें बारह देवता होंगे। अब जो अग्निपुत्र षड़ानन कार्तिकेय वर्तमान हैं, वही उस भावी मन्वन्तरके अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्र आंखवाले इन्द्र होंगे। मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन, ये उस समय सप्तर्षि होंगे। धृष्टकेतु, वर्हकेतु, पंचहस्त, निरामय,

---

टीकाः—दैवीराज्यका एक मन्वन्तर उलट पुलट करनेवाला समय होता है। जैसे इस मृत्युलोकमें जहां कि, जीव मातृगर्भसे जन्मता और मर जाता है, वहां राजाओंके विशेष विशेष परिवर्तनके कालमें सभ्यताका घोर परिवर्तन होता है; जैसा कि, आर्य सभ्यता, महम्मदीय सभ्यता, रोमन सभ्यता, युरोपीय सभ्यता और चीन, जापान आदि अन्यान्य अनेक अनार्य सभ्यताका काल और ढंग अलग अलग दिखायी देता है; उसी उदाहरणके अनुसार समझना उचित है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें मृत्युलोक और देवलोककी सभ्यताका ढङ्ग, उसकी शृंखलाशैली और उसकी शासनप्रणाली संपूर्णरूपसे बदल जाया करती है। इस मृत्युलोकमें जो सौ, दो सौ, चार सौ बर्षोंमें सभ्यता आदि और आचार आदिका परिवर्तन लौकिक इतिहासमें पाया जाता है, उसी ढंगपर प्रत्येक मन्वन्तरमें एक ब्रह्माण्डकी सभ्यताका उलट पुलट हुआ करता है। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें भगवान् मनुके बदलनेके साथही साथ देवराज इन्द्रपदके पदधारी, अन्यान्य बड़े बड़े देवपदधारी, ऋषिपदधारी और पितृपदधारी सभी बदल जाते हैं। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरकी जीवशक्ति, जीवके आचार,

पृथुश्रवा, अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और वृहद्भय, ये दक्षात्मज मनुके पुत्र उस समय राजा होंगे। हे द्विज! इसके बाद दशम मनुका मन्वन्तर सुनो ॥ ५—१० ॥ श्रीमान् ब्रह्माका पुत्र जो दशम मनु होगा, उसके मन्वन्तरमें सुखासीन, निरुद्ध आदि तीन तरहके देवता होंगे, जिनकी सब मिलाकर संख्या सौ होगी। भावी मनुके मन्वन्तरमें प्राणियोंकी संख्या एकसौ होनेसे देवताओंकी संख्या भी सौ होगी। इन्द्रके सब गुणोंसे सम्पन्न शान्ति नामक तब इन्द्र होंगे। उस समय जो सप्तर्षि होंगे, उनको भी जान लो। आपोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम और वशिष्ठ, येही सप्तर्षि होंगे। सुक्षेत्र, उत्तमौजा, भूमिसेन, वीर्य्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ, भूरिद्युम्न और सुपर्वा, ये दशम मनुके पुत्र राजा होंगे। इसके बादके मनु धर्म्मपुत्र सावर्णिका मन्वन्तर सुनो ॥ ११–१६ ॥ विहङ्गम, कामग और निर्म्माणपति, देवताओंके ये त्रिविध गुट और प्रत्येक गुटमें तीन सौ देवता होंगे। जो मास, ऋतु और दिन हैं, वेही निर्माणपतियोंके; जो रात्रियाँ हैं, वे विहंगमोंके और मूहूर्त्तजात विषय कामगदेवताओंके गण होंगे। प्रसिद्ध पराक्रमी वृष नामक उनके इन्द्र होंगे। इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ऋष्टि, निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि और अग्निदेव, येही सप्तर्षि होंगे। सर्वत्रग, सुशर्मा, देवानीक, पुरुद्वह, हेमधन्वा और दृढ़ायु, ये उस भावी मनुके पुत्र नरपति होंगे। रुद्रपुत्र सावर्णि मनुके बारहवें मन्वन्तरमें जो देवता और मुनिगण होंगे, उनके विषयमें सुनो ॥ १७—२२ ॥ सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण,—उस मन्वन्तरमें ये पांच प्रकारके देवगण और प्रत्येक गणमें दश दश देवता होंगे। यावतीय इन्द्रगुणसे युक्त महाबल ऋतधामा उनके इन्द्र होंगे। अब सप्तर्षियोंके विषयमें सुनो।

जीवके ज्ञान, दैवी जगत्की श्रृंखला आदिमें उलट पुलट हो जाता है। वस्तुतः वैदिक विज्ञानके अनुसार सभ्यता आदिके बदलनेका समय एक मन्वन्तर माना गया है। इस दुर्ज्ञेय दैवी श्रृंखलाका रहस्य इस समयका जगत् समझनेमें प्रमादके कारण असमर्थ है। प्रत्येक मन्वन्तरके साथ जो देवसंघ, ऋषिसंघ और पितृसंघ बदलनेका वर्णन पाया जाता है, वह तो स्पष्ट ही है। देवतागण कर्मके चालक, ऋषिगण ज्ञानके चालक और पितृगण स्थूल भूतके चालक प्रत्येक मन्वन्तरमें होते हैं। उक्त पदधारियोंके नीचे अनेक छोटे छोटे देवपदधारी भी हुआ करते हैं। जिनका वर्णन पुराणोंमें आनेकी आवश्यकता नहीं है। इन वर्णनोंके साथ जो राजाओंका वर्णन आता है, वे भी दैवी राज्यके राजा हैं। जैसे एक साम्राज्यमें सम्राट् और माण्डलिक राजा अलग अलग होते हैं, वैसेही इन्द्र और उक्त राजाओंका सम्बन्ध समझना उचित है। उक्त दैवी जगत्के देवता, ऋषि, पितर और राजपदधारी आदिकी प्रेरणा मृत्युलोकमें काम करती है। मृत्युलोकके जिस जिस शरीरमें उनकी प्रेरणा काम करती है, वे उक्त देवता, ऋषि आदिके अवतार कहाते हैं। यही दैवी राज्यकी श्रृंखला और मन्वन्तरका संक्षिप्त रहस्यहै। भगवान् कार्तिकेयके भावी इन्द्र होनेका रहस्य यह है कि, दैवी जगत्की कर्मश्रृंखलाके अनुसार वहां भी पदोन्नति होती है। वह पदोन्नति भगवान् ब्रह्मा, भगवान् विष्णु और भगवान् शिवके पदोंतक पहुंचती है। जैसा कि, पुराणोंमें कहीं कहीं लिखा है कि, भगवान् हनूमान् भविष्यत्में भगवान् ब्रह्माके पदको प्राप्त करेंगे ॥ ९–१० ॥

द्युति, तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्त्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, येही सप्तर्षि होंगे। देववान्, उपदेव, देवश्रेष्ठ, विदुरथ, मित्रवान् और मित्रविन्द येही इस मनुके पुत्र भावी नृपति होंगे। रौच्य नामके तेरहवें मनुके समयमें जो सप्तर्षि और जो मनुपुत्रगण राजा होंगे, उनके विषयमें कहता हूं, सुनो ॥ २३-२७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस मन्वन्तरमें सुधर्मा, सुकर्मा और सुशर्मा, येही सब देवगण होंगे। महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे। अब भविष्यत्के सप्तर्षियोंके बारेमें कहता हूँ, सुनो। धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प, येही सात सप्तर्षि होंगे। चित्रसेन, विचित्र, नयति, निर्भय, दृढ़, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि और सुव्रत, येही उस रौच्य मनुके पुत्र राजा होंगे ॥२८-३१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नवम सावर्णि मनुसे त्रयोदश मनु रौच्य पर्यन्तके वर्णनका चौरानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

पंचानबेवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—पहिले प्रजापति रुचि निर्मम, निरहंकृत, भयविरहित और परिमितशायी होकर पृथिवीका परिभ्रमण करते थे। उनके पितृगणने उन्हें अग्निहीन,

---

टीकाः—यह पहिले अच्छी तरह कहा गया है, कि हमारा यह स्थूल मृत्युलोक सूक्ष्म दैवीलोकके आश्रयपर स्थायी रहता है और उन्नति तथा अवनतिको प्राप्त होकर सृष्टि, स्थिति और लयका साथ देता है। हमारा यह स्थूल मृत्युलोक प्रत्येक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक-चौथा हिस्सा मात्र है। हमारे मृत्युलोकके अतिरिक्त बाकी सब हिस्सा देवलोक कहाता है। उस देवलोकमें नाना प्रकारके देवतागण, ऋषिगण, पितृगण और असुरगण वास करते हैं और इस मृत्युलोकसे भी दैवी संबन्ध रखते हैं। देवलोकके जिन देवताओंका जितना संबन्ध इस मृत्युलोकसे साक्षात् रूपसे रहता है, उन्हीं का नाम आदि इस पुराणमें आया है। ये सब देवपद स्थायी होते हैं,परन्तु उनकी संख्यामें और देवपदोंके पदधारियोंमें प्रत्येक मन्वन्तरमें हेर-फेर हुआ करता है। कालके सम्हालनेवाले राजा मनु कहाते हैं। एक मन्वन्तर मनुष्यके कितने वर्षोंका होता है, सो पहिले कहा गया है। प्रत्येक मन्वन्तरकी दैवी शृङ्खला जब बदल जाती है, तो उस समय सृष्टिका बहुतसा अंश और दैवीराज्यकी बहुतसी व्यवस्था बदल जाया करती है। जब कालके सम्हालनेवाले देवता मनु बदल जाते हैं, तो सृष्टिशृङ्खलाके संभालनेवाले देवताओंके पदधारी भी बदल जाते हैं। इस कारण प्रत्येक मन्वन्तरके देवसंघोंमें हेर-फेर हुआ करता है और जब देवपदधारी बदल जाते हैं, तो सृष्टिक्रियाको संभालनेवाले देवताओंके राजा इन्द्र भी बदल जाते हैं और प्रत्येक मन्वन्तरमें जब ज्ञानका तारतम्य होना भी संभव है, तो उस समयके ऋषिपदके पदधारी भी बदल जाते हैं। इसी कारण प्रत्येक मन्वन्तरके देवता आदि और ऋषि आदिका नाम त्रिकालदर्शी भगवान् व्यासने अपनी समाधिके द्वारा जानकर इस पुराणमें प्रकाशित किया है। मन्वन्तरज्ञानके प्राप्त करनेके लिये सूत्ररूपसे इस पुराणमें भगवान् व्यासजीने बहुत कुछ कहा है ॥ ११—३१ ॥

गृहहीन, एकाहार, आश्रमवर्जित और सङ्गत्यागी मुनिव्रतचारी देखकर कहा,—हे वत्स! तुम दारपरिग्रह (विवाह) जैसा पवित्र कार्य क्यों नहीं करते? वह स्वर्ग और अपवर्गका कारण होनेसे उसमें सभी कुछ सम्बद्ध है। यावतीय देवता, पितृगण, पूज्यगण, ऋषिगण और अतिथिगणका अन्नदान द्वारा सत्कार कर गृहस्थ स्वर्गादि लोकोंकाभी भोग करते हैं। "स्वाहा" उच्चारण कर देवगणकी, "स्वधा" उच्चारण कर पितृगणकी और अन्नदान द्वारा अतिथिगणकी ऋणमुक्ति करते हैं; किन्तु तुम गृहस्थ न होकर देवगण, पितृगण, मनुष्य और यावतीय प्राणियोंके निकट बन्धनप्राप्त हो रहे हो। पुत्रोत्पादन न करके तथा देवतागण और पितृगणका सन्तर्पण न करके और अकृतकर्मा होकर मूर्खतावश किस तरह सुगति पानेकी इच्छा करते हो? हे पुत्र! तुम्हें जो जो क्लेश होगा, वह हम जानते हैं। मृत व्यक्तिके नरकभोगकी तरह तुम्हें दूसरे जन्ममें विभिन्न क्लेश होंगे ॥ १-५ ॥ रुचिने कहा,—दारपरिग्रह अत्यन्त दुःखप्रद और पापका कारणस्वरूप है। उससे अधोगति होती है। इसीलिये पहिले मैंने दारपरिग्रह (विवाह) नहीं किया। इन्द्रियदमनके लिये जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्तिका कारण है। परिग्रह करनेसे वह किसी प्रकार नहीं हो सकता। परिग्रहहीन होकर ममत्वरूपी पंकसे लिप्त आत्माको जो प्रतिदिन चिन्तनरूपी जलके द्वारा प्रक्षालित करते हैं, वेही उत्तम पुरुष हैं। अनेक जन्मार्जित कर्मरूपी पङ्कसे अनुलिप्त आत्माको सद्वासनारूपी सलिलसे जितेन्द्रिय होकर प्रक्षालन करना चाहिये ॥ ६-१२ ॥ पितृगण बोले,—जितेन्द्रियोंको आत्मप्रक्षालन करना तो उचित ही है, किन्तु हे पुत्र! तुमने जिस पथका अवलम्बन किया है, क्या वह मोक्षप्राप्तिका पथ है? कामनावर्ज्जित दानसे जैसे अशुभ नष्ट होता है, वैसे ही शुभाशुभ फल तथा उनके उपभोग द्वारा पूर्वजन्मार्जित कर्मका क्षय होता है। इसप्रकार निष्कामबुद्धिसे कर्म करनेवालोंको बन्धन नहीं होता। फलकी अनाकाङ्क्षा रखकर किया हुआ कर्म बन्धनका हेतु नहीं हो सकता। सुख-दुःखोंके उपभोगसे ही मनुष्यका पूर्वजन्मकृत पुण्य तथा पापसम्बन्धी कर्म क्षयको प्राप्त होता है। बुद्धिमान् लोग आत्माको इस प्रकार विशुद्ध करते रहते हैं और बन्धनसे

टीका :—घटाकाश, मठाकाश आदिकी तरह एक ही सर्वव्यापक आकाश नाना नामोंको धारण करता है; परन्तु वस्तुतः आकाश एक ही अद्वितीय है। केवल घट, मठ आदिकी उपाधिसे वह अलग अलग प्रतीत होता है। सर्वव्यापक आकाशकी तरह एक अद्वितीय आत्मा सबमें रहकर भी सबसे निर्लिप्त है। अतः प्रत्येक देहमें देही आत्मा निर्लिप्त रहनेपर भी उसे अज्ञानके कारण चित् जड़ ग्रंथि रूपी बन्धनदशाकी प्राप्ति होती है। देहीका देह चाहे स्थूल शरीररूपी हो चाहे सूक्ष्म शरीररूपी हो, सभी प्रकृतिसंजात हैं। और कर्मबन्धन भी प्राकृतिक ही हैं। केवल अज्ञानके कारण इन सब प्राकृतिक प्राणियोंका

उसकी रक्षा करते हैं; किन्तु अविवेकरूपी पापके पङ्कमें उसे लिप्त नहीं होने देते ॥ १३-१७ ॥ रुचिने कहा,—हे पितामहगण! वेदमें कर्ममार्गको अविद्या कहा है। तब किस प्रकार आप लोग मुझे कर्ममार्गमें प्रवर्त्तित करते हैं? पितृगण बोले,—यह सच है कि, कर्म अविद्यामूलक है, परन्तु कर्मसे अविद्याकी उत्पत्ति होती है, यह बात मिथ्या है; क्योंकि यह निःसन्दिग्ध है कि, कर्म ही विद्याप्राप्तिका हेतु है। समस्त कर्त्तव्यकर्मका अनुष्ठान न कर असाधुजन संयमपूर्वक मुक्तिके लिये जो प्रयत्न करते हैं, उससे अधोगति होती है। हे वत्स! "आत्माको विशुद्ध करेंगे" तुम ऐसा समझते हो, किन्तु विहित कर्मके अनुष्ठान न करनेसे जो पाप उत्पन्न होगा, उससे तुम दग्ध होगे। अपकारक विष जिस प्रकार मनुष्यका उपकारक भी हो सकता है, उसी प्रकार अविद्या भी मनुष्यकी उपकारिणी हो सकती है। अविद्याका स्वरूप भले ही भिन्न हो, किन्तु कर्त्तव्यबुद्धिसे अनुष्ठित कार्य हम लोगोंके लिये मंगलप्रद होते हैं। उनके करनेसे अविद्याका बन्धन नहीं होता। हे पुत्र! इसलिये तुम विधिवत् दार-परिग्रह (विवाह) करो। लौकिक कर्माचरण न करके तुम्हारा जन्म विफल न हो। रुचि बोला,—हे पितृगण! अब तो मैं वृद्ध हो गया; फिर कौन मुझे अपनी कन्या प्रदान करेगा? विशेषतः मेरे जैसे अकिञ्चनके लिये दारपरिग्रह अतीव दुष्कर है। पितृगण बोले,—हे वत्स! यह निश्चय समझो कि,

---

सम्बन्ध अन्तःकरण मनवा देता है। स्वच्छ आत्मामें प्रकृतिका इस प्रकार आभास-सम्बन्ध होनेसे भ्रमजनित बन्धनदशाका उदय होता है। कामना या वासनाके कारण हो इस प्रकारका संस्कारसंग्रह होता है। तात्पर्य यह है कि, आत्मा निर्लिप्त है। यावत् क्रियायें प्रकृतिमें ही होती हैं। प्रकृतिको अपने आपमें आरोप कर लेना अज्ञानका कारण है। निर्लिप्त आत्मामें जैसे—घटाकाश, मठाकाशमें जैसे आकाशका विशेषत्व बन जाता है, वैसे ही अज्ञानके कारण सर्वव्यापक निर्लिप्त आत्माका विशेषत्व अन्तःकरणमें समझा जानेसे चित् जड़ ग्रंथिरूपी जीवका उदय होता है। यही जीवका जीवत्व है। दूसरी ओर जीव जो जो कर्म करता है, शरीरसे, मनसे और बुद्धिसे करता है। उन सब कर्मोंका संस्कार वासनाके रहनेसे ही अन्तःकरणमें अंकित हो जाता है। येही वासनाद्वारा संगृहीत संस्कार-समूह बीज बनकर यथासमय अङ्कुरोत्पन्न करते हैं। वही अङ्कुर शरीर, शक्ति, प्रकृति, प्रवृत्ति, जाति, आयु और भोगसमूह उत्पन्न करके आवागमनचक्रको स्थायी करते हैं। ज्ञानके बलसे कामना अर्थात् वासनाका नाश कर देनेसे बन्धनदशाका नाश हो जाता है। यही निःश्रेयस पथका उदय कहाता है। आत्मज्ञानी महापुरुषगण तत्वज्ञान द्वारा वासनाका नाश करके जीवन्मुक्त पदको प्राप्त करते हैं। इसी प्रकारसे भोग द्वारा प्रारब्धका क्षय भी हो जाता है। तत्वज्ञान द्वारा वासनाका क्षय होकर कर्मका सम्बन्ध छूट जाता है और दूसरी ओर प्रारब्ध रूपसे जो कर्म अङ्कुरित हो चुके हैं, जिनके द्वारा शरीर, शक्ति, प्रकृति, प्रवृत्ति, जाति, आयु और भोग इन सातोंकी प्राप्ति हो चुकी है, वे प्रारब्धकर्मभोगसे नाश हो जाते हैं। जीवन्मुक्त दशामें भोगसे प्रारब्धनाश होता है और तत्वज्ञान द्वारा सञ्चित, क्रियमाणके फन्देसे महापुरुष बचकर ब्रह्मरूप ही बन जाता है ॥ १३—१७ ॥

यदि तुमने हम लोगोंकी बात न मानी, तो तुम्हारा पतन तथा अधोगति अवश्यंभावी है। मार्कण्डेय बोले,—हे मुनि श्रेष्ठ! यह कहकर उसके पितृगण देखते देखते वायुके झकोरेसे बुझे हुए दीपककी तरह सहसा अन्तर्हित हो गये ॥ १८–२५ ॥

इसप्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुचि-उपाख्यान सम्बन्धी पञ्चानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीका :—अज्ञानजननी अविद्या और ज्ञानजननी विद्या है। ब्रह्मप्रकृति महामायाके दो स्वरूप हैं। जो शक्ति आत्मासे विमुख करके अज्ञान बढ़ावे, वह अविद्या कहाती है और जो शक्ति आत्माकी ओर उन्मुख करके ज्ञान प्रदान करती है, वही विद्या कहाती है। यही कारण है कि, वासनामें युक्त होकर कर्मकाण्डके अनुष्ठानको अविद्याजनित कहा गया है। परन्तु यही कर्मकाण्ड जब वासनारहित होकर केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे अनुष्ठित होता है, तो वह विद्यासेवित माना गया है। अतः कर्मकाण्ड अविद्याका भी निलय कहा जा सकता है और विद्याका भी। यदि प्रमादसे कर्मकाण्डका त्याग किया जाय और वर्ण और आश्रमका उचित कर्म न किया जाय, तो जीवका घोर पतन होता है। दूसरी ओर सद्वासनासे कर्म करनेसे अभ्युदय होता है और केवल कर्त्तव्यबुद्धिसे कामका सेवन करनेसे निःश्रेयसपदकी प्राप्ति होती है। ब्रह्मकी शक्ति महामाया ही जगतकी उत्पत्ति, स्थिति और लयका कारण है। ऐसी ब्रह्मशक्तिरूपिणी, सर्वशक्तिमयी, सबकी मातृरूपा जगदम्बाका कोई अंग या कोई भाव अहितकारी नहीं हो सकता। इसका स्थूलसे स्थूल उदाहरण यह है कि, विष जैसे साधारण मनुष्यका प्राण नाश कर देता है, वैसेही पीड़ित मनुष्यको प्राण देता है। उसी शैलीपर अविद्या जीवके बन्धन और पतनकी कारण होनेपर भी नियमानुसार चलनेपर वही उसके अभ्युदयका कारण बन जाती है। माता कभी कुमाता नहीं हो सकती, कुपुत्र होनेपर भी माता प्रत्येक दशामें उसका कल्याण ही करती है। विश्वजननी भगवती महामायाका ही एक रूप विद्या है, दूसरा अविद्या है। अतः विद्या ज्ञानजननी होकर जीवको गोदमें उठाकर नियमित अभ्युदय कराती हुई निःश्रेयस भूमिमें पहुंचा देती है। परन्तु अविद्या भी जीवको गोदमें न लेकर उसको ठोकती, पीटती हुई घसीटकर आगे ही बढ़ा देती है। जिस प्रकार सकाम कर्म बन्धनका हेतु है, उसी प्रकार पाप और पुण्य दोनों ही बन्धनके हेतु हैं। जैसे लोहे और सोनेकी श्रृंखला दोनोंही जीवोंको बांधती है, वैसेही पाप और पुण्य दोनोंही जीवोंको बन्धन दशामें पहुंचाते हैं। परन्तु सूक्ष्म विज्ञान द्वारा कर्मपारदर्शी मुनिगण यह देखते हैं कि, पुण्यकर्म सीधा जीवको अभ्युदयके मार्गमें लेजाता है और पापकर्म भी उसको ठोक पीटकर सीधा रास्ता बताता है। पापी जीव भी बार बार प्रेतलोक, नरकलोक और इस मृत्युलोकमें सजा पा पाकर होशमें आता है। जैसे जेलखानेमें गये हुए कैदी प्रायः पापसे डरने लगते हैं, वैसेही पापफलभोगी जीव पुण्यकी ओर झुकने लगता है। यह तो पाप और पुण्यकी गतिका रहस्य है। इसके द्वारा अविद्यादेवी कृपामयी है, यह सिद्ध है। दूसरी ओर यह तो सिद्ध ही किया गया है कि, कर्म यदि कर्तव्य-बुद्धिसे किया जाय, तो वह कभी बन्धन नहीं कराता, किन्तु निष्कामकर्म निःश्रेयसका द्वार खोल देता है। और तीसरी बात यह है कि, कर्म किये बिना जब जीव रह नहीं सकता, तो यदि मनुष्य विहित कर्मोंका त्याग करने लगे, तो वह बलात् अविहित कर्म कर डालेगा। प्रकृति उससे कर्म कराये बिना छोड़ेगी नहीं। ऐसी दशामें विहित कर्म छड़कर अविहित कर्म करनेसे उसका घोर पतन होगा। यही पितरोंके उपदेशका सारांश है ॥१८–२५॥

छानबेवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—उस विप्रर्षि रुचिने इस प्रकार पितृवाक्य श्रवण कर अत्यन्त उद्विग्न तथा कन्याभिलाषी होकर पृथिवीकी परिक्रमा की। पितृवाक्यरूपी अग्निके द्वारा उद्दीपित होकर जब वह कन्यालाभ न कर सका, तब व्याकुलचित्त होकर प्रगाढ़ चिन्तामें निमग्न हो गया। "क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? किस प्रकारसे पितरोंका अभ्युदय करनेवाला मेरा विवाह सम्पन्न होगा?" इस तरह चिन्ता करते करते उस महात्मा रुचिके मनमें आया कि, मैं तपस्या द्वारा भगवान् कमलयोनि ब्रह्माकी आराधना करूँ। तदनन्तर उसने ब्रह्माकी आराधनाके लिये यथावत् दिव्य शतवर्ष तक तपस्या की। फिर लोकपितामह ब्रह्माने उसे अपना दर्शन देकर कहा,—मैं प्रसन्न हो गया। अब तुम क्या चाहते हो, सो कहो ॥ १-६ ॥ इसके बाद रुचिने विश्वके रचयिता ब्रह्माको प्रणाम करके पितृगणके वचनानुसार अपनी इच्छा प्रकट की। ब्रह्माने उस विप्रर्षि रुचिकी प्रिय बातें सुन कर कहा,—हे पुत्र! तुम प्रजापति होगे। तुमसे प्रजाकी सृष्टि होगी। प्रजासृष्टि तथा सन्तानोत्पादन द्वारा समस्त कार्य करते हुए जब तुम अपने अधिकार सन्तानको सौंप दोगे, तब सिद्धिप्राप्तिमें समर्थ होगे। इसीलिये पितृगणने तुम्हें विवाह करनेकी आज्ञा दी है। "वह अवश्य कर्त्तव्य है" ऐसा निश्चय करके तुम पितृपूजा करो। तब पितृगण सन्तुष्ट होकर तुम्हें अभीष्ट पत्नी तथा पुत्र प्रदान करेंगे। क्योंकि सन्तुष्ट होनेपर पितृगण विना वरदान दिये नहीं रहते। मार्कण्डेय बोले,—ब्रह्माके इस प्रकारके वाक्य सुनकर रुचिने नदीके निर्जन तटपर पितृतर्पण किया। हे विप्र! इस प्रकार उसने आदरके साथ एकाग्र तथा संयतचित्त होकर भक्तिभावसे नत मस्तक कर स्तुति द्वारा पितरोंको सन्तुष्ट किया ॥ ७-१२ ॥ रुचिने कहा,— श्राद्धमें जो अधिदेवतारूपमें वास करते हैं तथा देवतागण भी श्राद्धके समय 'स्वधा' कहकर जिनका तृप्ति-साधन करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। स्वर्गमें भुक्ति-मुक्तिके अभिलाषी महर्षिगण भक्तिसहित जिनका मनोमय श्राद्ध करके तृप्तिसाधन करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। स्वर्गमें सिद्धवर्ग श्राद्धकालमें अत्युत्तम यावतीय दिव्य उपहारसे जिनको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धिके अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयभावसे भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। मृत्युलोकमें मनुष्यगण श्राद्धके

समय अभीष्ट लोक प्रदान करनेवाले जिन पितृगणका श्रद्धापूर्वक पूजन करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। प्राजापत्य-पदको देनेवाले जिन पितृ-गणकी इष्ट लाभके निमित्त विप्रगण पृथ्वीमें पूजा करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं। परिमित भोजन करके तपस्यासे पापक्षय करते हुए वनवासीजन श्राद्धके द्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूँ। जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारी विप्रगण समाधि द्वारा जिन लोगोंको तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं ॥१३–२०॥ राजन्यगण जिन तीनों लोकोंके फल देनेवाले पितृगणको श्रद्धापूर्वक अशेष कव्य (श्राद्धान्न) द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। स्वकर्ममें रत वैश्यगण भूतलमें जिनको पुष्प, धूप, अन्न तथा जल द्वारा सन्तुष्ट करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। इस जगत्‌में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरोंको भक्तिपूर्वक श्राद्धके द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। पातालमें दम्भ और मदको त्याग किये हुए महान् असुरगण जिन पितरोंको स्वधाकारके साथ श्राद्धके द्वारा तृप्त करते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। रसातलमें कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष उपभोग्य पदार्थोंसे श्राद्ध द्वारा सर्वदा यथाविधि सन्तुष्ट करते रहते हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूँ। पातालमें मंत्र, उपभोग्य वस्तु तथा सम्पत्तियोंसे सर्पगण जिन पितृ-गणकी सर्वदा श्राद्ध द्वारा विधिवत् पूजा करते हैं, उन पितृ-गणको नमस्कार करता हूं॥२१–२६॥ जो देवलोकमें तथा अन्तरीक्षमें प्रत्यक्षरूपसे वास करते हैं और पृथ्वीमें देवता आदि द्वारा पूजित होते हैं, उन पितृगणको प्रणाम करता हूं। वे मेरी दी हुई पूजाको ग्रहण करें। जो योगीश्वर प्रत्यक्षरूपसे

टीकाः—पितृपूजाका रहस्य वैदिक मतावलम्बीजन ही अच्छी तरह समझते आये हैं। लौकिक पितृ-मातृ भक्ति तो सब अनार्य जातियोंमें प्रचलित है। जो मनुष्य जाति पिता माताकी पूजा नहीं करती, वह असभ्य और बर्बर समझी जाती है। परन्तु देवलोकवासी, देवपदधारी अर्यमा आदि नित्य पितर जिनके अवतार हमारे पिता माता बनकर उत्तम सृष्टि उत्पन्न करते हैं, ऐसे नित्य पितरोंका स्वरूप और ज्ञान केवल वेदमतानुयायी विद्वानोंको ही विदित है। जैसे देवलोकवासी ऋषिगण ज्ञानराज्यका सञ्चालन करते हैं और जैसे देवलोकवासी देवतागण कर्मराज्यका सञ्चालन करते हैं; ठीक वैसेही देवलोकवासी नित्य पितृगण आधिभौतिक स्थूल भौतिक राज्यका सञ्चालन करते हैं। देवतागण जीवको मातृगर्भमें पहुंचाते हैं; परन्तु उसके रहनेका घररूपी यह स्थूल शरीर मातृगर्भमें पितृगण बनाते हैं। एक पवित्र कुलकी रक्षा पितृगण करते हैं; यदि किसी कारणसे स्त्रीके व्यभिचारसे कोई जारज सन्तति किसी पवित्र कुलमें उत्पन्न हो जाती है, वह कुल यदि पितरोंका भक्त हो तो उस जारज व्यक्तिकी सन्तति आगे नहीं चलती है। उसके स्थलपर पितरोंकी कृपासे रजवीर्यसे शुद्ध उस कुलका कोई दूसरा व्यक्ति पहुंचकर उस पवित्र कुलकी विशुद्धताकी रक्षा नित्य पितरोंकी कृपासे करता है। उत्तम सन्ततिका होना पितरोंकी कृपापर ही निर्भर है। विशुद्ध वीर्य और विशुद्ध रजकी सुरक्षा होना पितरोंकी कृपासे ही होता है। किसी व्यक्तिमें स्वास्थ्य और वीर्यकी सुरक्षा पितरोंकी कृपासे ही हुआ करती है। क्योंकि पितृगण स्थूल भूतोंके सञ्चालक हैं।

विमानमें विराजमान होते हैं और क्लेशसे छुड़ानेके कारणस्वरूप और परमात्मतुल्य हैं, उन पितृगणको विशुद्ध अन्तःकरणसे मैं नमस्कार करता हूं। जो स्वर्गमें साक्षात् रूपसे निवास करते हैं और काम्य फलोंको देनेका अवसर आ पड़नेपर समस्त अभिलषितोंको देनेमें समर्थ होते हैं; इसी तरह जो निष्काम कर्म करनेवालोंको मुक्ति प्रदान करते हैं, स्वधाभोजी उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। जो प्रार्थियोंकी सब प्रार्थनाओंको पूर्ण करते हैं और सुरत्व, इन्द्रत्व अथवा उससे भी श्रेष्ठ पद प्रदान कर सकते हैं; तथा पुत्र, पशु, धन, बल, गृह आदि इच्छानुसार दिया करते हैं, वे मेरी चढ़ायी हुई पूजाकी वस्तुओंसे तृप्त हों। जो चन्द्रकिरणोंमें, सूर्यबिम्बमें और शुक्र विमानमें निवास करते हैं, वे पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और मेरे दिये हुए अन्न, जल और गन्ध आदिके द्वारा पुष्ट हों। जो अग्निमें घृताहुति देनेसे तृप्त होते हैं, जो ब्राह्मणोंके शरीरोंमें वसकर भोजन करते हैं और पिण्डदानसे जो सन्तुष्ट होते हैं, वे पितृगण मेरे दियेहुए अन्न-जलसे तृप्त हों ॥२७-३२॥ गैंडेके मांस और अभीष्ट दिव्य तथा मनोहर कृष्णतिलके द्वारा देवगण जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्षान्तमें कालशाक द्वारा जिन्हें तृप्त करते हैं, वे पितृगण मुझसे

यह स्थूल शरीर स्थूल भूतोंका ही परिणाम है। इस कारण सबसे पहिली कृपा मनुष्यजातिपर पितरोंकी होती है, यह मानना ही पड़ेगा। पितरोंकी कृपा असाधारण है। जैसी माताकी कृपा पुत्रपर अहैतुकी होती है, वैसीहीं पितरोंकी मनुष्योंपर कृपा अहैतुकी होती है। आर्य्यजाति पितरोंको मानती है और पृथ्वीकी अनेक अनार्य जातियां पितरोंके अस्तित्वतक को नहीं जानतीं। तौभी पितरोंकी कृपा अनार्य जातियोंपर भी बनी रहती है। पितृगण मनुष्यके ही होते हैं, अन्य चतुर्विध भूत-संघके नहीं होते। क्योंकि अन्य सब प्रकारके भूतसंघोंकी श्रेणियोंके एक अलग अलग संरक्षक देवता होते हैं। वे देवता चतुर्विध भूतसंघोंकी अलग अलग प्रकृतिके अनुसार उनको चलाते हुए उनको आगे बढ़ाते रहते हैं। इस विषयको और प्रकारसे भी समझा जा सकता है। मनुष्यके अतिरिक्त उद्भिज्ज, स्वेदज, अण्डज और जरायुज भूतसंघको अपने अपने मातृगर्भमें अथवा वीर्यगर्भमें एकही प्रकारका शरीर प्राप्त होता है। उनका कर्मवैचित्र्य न होनेसे शरीरवैचित्र्य नहीं होता। इसी कारण ऐसे भूत-संघोंको पितृसहायताकी आवश्यकता नहीं है। अब यह शंका होती है कि, अनार्य जातिको पितृसहायता क्यों, कैसी और कितनी होती है? ऐसी शङ्काका समाधान यह है कि, यद्यपि अनार्य जाति नित्य पितरोंको नहीं जानती, परन्तु नित्य पितरोंके अवताररूपी पिता माताकी वह सेवा करती है। दूसरी ओर अपने अपने अधिकारके अनुसार धर्माधर्मका भी विचार रखती है और साधारण विचारके अनुसार धर्मार्जन भी करती है। धर्मरूपी यज्ञसाधनसे जैसे देवता और ऋषिगण प्रसन्न होते हैं, वैसे पितृगण भी होते हैं। अतः अनार्य जातिके कुल, रज और वीर्यकी विशुद्धतामें पितृगण सहायक न बननेपर भी साधारणरूपसे उनके सहायक रहते हैं। इसी प्रकार पितृगण जैसे मनुष्यशरीर और कुलको सहायता देते हैं, उसी प्रकार ऋतु आदिके रूपमें मनुष्यवासोपयोगी कालको सहायता देते हैं। इसी तरह देशको भी सहायता देते हैं। क्योंकि स्थूल शरीरकी तरह देश और काल भी मनुष्यको आधिभौतिक सुविधा और असुविधा पहुंचाता है। यही कारण है कि, प्रत्येक मन्वन्तरमें पितृपदधारी देवगण भी बदल

सन्तुष्ट हों। देवपूजित उन पितृगणको जो अशेष कव्य अभीष्ट है, वह पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य आदि मैंने संगृहीत किया है; उनका वे स्वीकार करें। जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं, जो भूतलमें प्रतिमास तीन अष्टकाओंसे पूजित होते हैं और जो वर्षके अन्तमें उत्सवके दिनमें सन्तर्पित किये जाते हैं, वे पितृगण मेरी दी हुई पूजासे तृप्त हों। जो कुमुद और चन्द्रमाके समान गौरवर्ण और सन्तानयुक्त हैं तथा ब्राह्मणोंके द्वारा पूजित होते हैं; जो उदित सूर्यके समान रक्तवर्ण विशिष्ट होकर क्षत्रियोंके द्वारा पूजित होते हैं; जो सुवर्णके समान सुन्दर कान्तियुक्त होकर वैश्योंके द्वारा पूजित होते हैं और जो नीलवर्णके रूपमें शूद्रोंके द्वारा पूजित होते हैं; वे सब पितृगण मेरे दिये पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न, जलके द्वारा तथा अग्निहोमके द्वारा तृप्तिलाभ करें। मैं उन पितरोंको निरन्तर नमस्कार करता हूं। जो अत्यन्त तृप्तिके हेतु देवताओंके समक्ष लाये हुए शुभ कव्य द्रव्यका आहार करते हैं और तृप्त होकर जो अणिमादि अष्ट ऐश्वर्योंकी सृष्टि करते हैं, वे मुझसे सन्तुष्ट हों। मैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूं। जो रक्षोगण, भूतगण और उग्र असुरगणके विघातक हैं और प्रजागणकी जो रक्षा करते हैं, जो देवताओंके आदिपुरुष हैं और जो सुरेन्द्र शची-

---

जाते हैं। आर्यजातिका श्राद्धविज्ञान अति गम्भीर है। पितृगण ही अधिदैव बनकर श्राद्धके द्रव्यादि भावरूपसे लोक लोकान्तरमें जीवको पहुंचा देते हैं। जैसे पदार्थविद्याके यन्त्रविशेष द्वारा तुरन्त ही सहस्रों योजनका शब्द और रूप भी एक जगहसे दूसरी जगह पहुंच जाता है, उसी प्रकार पितृ-अधिदेवतागण श्राद्धकर्ताका अन्न पिण्ड आदि लोकलोकान्तरमें पहुंचा देते हैं। जैसे 'स्वाहा' उच्चार देवताओंके लिये, वैसेही 'स्वधा' उच्चार पितरोंके लिये वेदने कहा है। देवताओंके पितर भी अलग होते हैं, क्योंकि उनकी भी आधिभौतिक शुद्धि हमारे यहांकी चातुर्वर्ण्यकी रीतिपर सदा आवश्यक होती है। महर्षिगण आध्यात्मिक उन्नतिशील होनेसे वे मनोमय श्राद्ध करनेमें समर्थ हैं। इसीसे मानसपूजा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। जितेन्द्रिय नैष्ठिक ब्रह्मचारीगण पुत्रेषणासे रहित होनेके कारण जब आत्मचिन्तनसे समाधिस्थ होते हैं, तो उनके द्वारा स्थूल शरीरी होनेसे स्वाभाविक रूपसे उनकी पितृपूजा हो जाती है। यही कारण है कि, शास्त्रोंमें कहा है कि, ब्रह्मनिष्ठ व्यक्तिके चतुर्दश पुरुषोंका अपने आपही उद्धार हो जाता है। उसके पिता, पितामह आदि जो लोकान्तरसे उसकी ओर देखते हैं अथवा ऐसे महापुरुषका मन जिसकी ओर चला जाता है, उसको स्वाभाविक रूपसे उस समाधिस्थ अन्तःकरणकी सहायता मिलेगी। मनुष्यके अलग अलग अधिकारोंके अनुसार पितर भी अलग अलग होते हैं। जैसे कि, शूद्रोंके पितर सुकालीन कहाते हैं। पितृलोक जिसके राजा भगवान् यम धर्मराज हैं, उसमें ही नित्य पितरोंके वास करनेका विषय शास्त्रोंमें अधिक पाया जाता है। इसका कारण यह है कि, साधारण मनुष्य, जिनका मोह पुत्र-कलत्र आदिमें रहता है, वे सुखभोगके लिये पितृलोक तक ही प्रायः जाते हैं। इस कारण ऐसी प्रजासे सम्बन्धयुक्त पितर पितृलोकमें ही निवास करते हैं। परन्तु पितृगणका निवास चन्द्रलोकसे लेकर सूर्यलोकपर्यन्त रहनेका प्रमाण शास्त्रोंमें मिलता है। पितरोंकी तृप्ति हवनके द्वारा, तर्पणके द्वारा और पिण्डोंके द्वारा जिस प्रकारसे होती है, उसी प्रकार शास्त्रोक्त ब्राह्मणभोजनके द्वारा भी होती है, ऐसा वेद और शास्त्रोंका प्रमाण है। ब्राह्मणके शरीरमें प्रविष्ट होकर नित्य और नैमित्तिक पितृगण श्राद्धान्न ग्रहण करते हैं, इसके तो अनेक प्रमाण मिलते हैं।

पतिके पूज्य हैं, वे पितृगण मुझसे तृप्त हों। मैं उनको नमस्कार करता हूं॥ ३३-३८॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा पितृगण मुझसे सन्तर्पित होकर श्राद्धमें तृप्तिलाभ करें। अग्निष्वात्ता पितृगण मेरे पूर्वकी ओर, बर्हिषद पितृगण दक्षिणकी ओर, आज्यपा पितृगण पश्चिमकी ओर तथा इसी तरह सोमपा पितृगण उत्तरकी ओर राक्षसों, भूतों, पिशाचों और असुरोंसे होनेवाले अपायोंसे मेरी रक्षा करें। जिन पितरोंके विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति, ये नौ गण हैं और जिनके अधिपति साक्षात् यम हैं, वे मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। जिन पितृपुरुषोंके कल्याण, कल्याणकर्ता, कल्य, कल्यतराश्रय, कल्यताहेतु और अनघ, ये छः गण हैं; जिन पितृपुरुषोंके वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद, विश्वपाता और धाता, ये सात गण हैं; जिन पितरोंके महान्, महात्मा, महित, महिमावान् और महाबल नामक पांच पापनाशक गण हैं और जिन पितरोंके सुखद, धनद, धर्मद और भूतिद ये चार गण कहे गये हैं;—ये सब मिलाकर तीस पितृगण, जिनसे समस्त जगत् व्याप्त है, मुझसे तृप्त हों और मुझसे सन्तुष्ट होकर मेरा हितसाधन करें॥ ४०-४८॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रुचि-उपाख्यानके अन्तर्गत रुचि-कृत पितृपुरुषस्तोत्र-कथन नामक छानवेवां अध्याय समाप्त हुआ।

इसी कारण श्राद्धमें पवित्र और विद्वान् ब्राह्मणोंको भोजन करानेकी विधि है। अन्नके विषयमें ऐसा माना गया है कि, देवताओंके लिये प्रिय अन्न जैसा चावल है और जैसा ऋषियोंके लिये प्रिय अन्न यव है, उसी प्रकार पितरोंके लिये प्रिय अन्न तिल है। अन्नकी यह प्रियता विज्ञानानुमोदित है। पितरोंकी अनेक श्रेणियां हैं। जो उच्च जीवश्रेणियां सृष्टिमें विशेष विशेष अधिकारोंसे युक्त हैं, उनके पितृगण अलग अलग होते हैं। ऋषि और देवतागण भी पितरोंके द्वारा सुरक्षित रहते हैं। क्योंकि मृत्युलोकमें आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्यजातिकी रक्षा वर्णाश्रमके द्वारा होती है और वर्णाश्रमश्रृंखला दैवीजगत्की भी सहायक है। इस कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारोंके अलग अलग पितर होते हैं और चातुर्वर्ण्यके जो शुद्ध कुल हैं, उनपर उनकी कृपा नियमित रहती है। यही कारण है कि, चातुर्वर्ण्यके पितरोंका रंग अलग अलग होता है। अणिमादि ऐसी सिद्धियां जो योगियोंमें, अवतारोंमें और सिद्ध पुरुषोंमें जगत्के कल्याणके सम्बन्धसे प्रकट होती हैं, उनका प्रकट होना जैसा देवताओंके अधीन है, वैसा पितरोंके भी अधीन है। अधिभूत सम्बन्धयुक्त सिद्धियां पितरोंके अधीन, अधिदैव सम्बन्धयुक्त सिद्धियां देवताओंके अधीन और वेद, शास्त्र और ज्ञानके प्रकट होनेकी अध्यात्म सम्बन्धयुक्त सिद्धियां ऋषियोंके अधीन होती हैं। यही दैवी राज्यकी श्रृंखला है। दम्भ-दर्पादिसे युक्त, इन्द्रियपरायण, विषयासक्त दैवी सृष्टि असुर कहाती है। केवल पर-अहितमें रत, प्रमादसे सदा युक्त, इन्द्रियासक्त दैवीसृष्टि राक्षस कहाती है। पिशाच और भूत, दोनों प्रेतसृष्टि है। पिशाच भूतसे बलशाली होता है। ये चारोंही देवयोनि हैं। मृत्युलोकके आसपास और असुरलोकमें इनका निवास है। सकामी और नाना एषणाओंसे युक्त प्रजापर इनका प्रकोप प्रायः हुआ करता है पितृगण सन्तुष्ट रहनेपर वे अनायास इन दैवी बाधाओंसे प्रजाकी निरन्तर रक्षा किया करते हैं॥१३-४८॥

सत्तानबेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार रुचिके स्तवन करनेपर चारों ओर प्रकाशित करनेवाली और आकाशको व्याप्त करनेवाली एक तेजोराशि सहसा प्रादुर्भूत हुई। समस्त जगत्को आच्छन्न करके जगमगानेवाले उस तेजका दर्शन करके भूमिपर घुटने टेककर रुचिने इस प्रकार स्तुति करना प्रारम्भ किया:—रुचिने कहा,—मैं इस ध्याननिरत, दिव्यचक्षु, दीप्तिमान्, अर्चित और अमूर्त पितृतेजको प्रणाम करता हूं। जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी, सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूँ। दक्ष, मारीच, सप्तर्षिगण और इन्द्रादि समस्त देवताओंके जो नेता हैं, उन कामदाता पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो मनु प्रभृति मुनीन्द्रोंके तथा सूर्य और चन्द्रमाके नेता हैं, उन समुद्र और जलमें रहनेवाले कामदाता पितृगणको नमस्कार करता हूं। जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथिवीके नेता हैं, उन कामदाता पितृगणको हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूं। जो देवर्षियोंके जनक हैं, सर्वलोकोंके वन्दनीय हैं और अक्षय्यपद प्रदान करते हैं, उन पितृगणको मैं कृताञ्जलि होकर नमस्कार करता हूं। जो प्रजापतियोंमें कश्यप हैं और जो सोम, वरुण तथा योगेश्वरस्वरूप हैं, उन पितृगणको सर्वदा हाथ जोड़कर मैं नमस्कार करता हूं। जो सात लोकोंमें सात गणोंमें अवस्थित हैं और जो योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्माके स्वरूप हैं, उन पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी, सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितृगणको नमस्कार करता हूं। जिन समस्त पितरोंसे अग्निष्टोममय यह विश्व उत्पन्न हुआ है, उन अग्निरूपी अन्यान्य पितृगणको मैं नमस्कार करता हूं। जो तेजमें स्थित होकर सोम, सूर्य और अग्नि मूर्तिका अवलम्बन करनेसे जगत्स्वरूप तथा ब्रह्मस्वरूप हो रहे हैं, उन अखिलयोगी पितृगणको संयतमानस होकर मैं वारंवार नमस्कार करता हूं। वे स्वधाभोजी पितृगण मुझपर प्रसन्न हों ॥ १-१३ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुनिसत्तम! रुचिके द्वारा इस प्रकार स्तुत होनेके उपरान्त पितृगण अपने तेजसे चारों दिशाओंको आलोकित करते हुए वहांसे चले गये। फिर उस विप्रवर रुचिने पुष्प, गन्ध आदि जो कव्य द्रव्य उन्हें अर्पण किये थे, उनको सिर चढ़ाकर क्या देखा कि, वेही पितृगण पुनः उसके सामने आकर खड़े हुए हैं। रुचिने फिर हाथ जोड़कर भक्तिभावसे आदरके साथ प्रत्येकको पृथक् पृथक् "आपको नमस्कार करता हूं, आपको नमस्कार करता हूं" ऐसा कहते हुए नमस्कार किया। अनन्तर पित-

रोंने प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ रुचिसे कहा,—वर मांगो। तव विप्रवर रुचि सिर नीचा कर उनसे बोला,—सम्प्रति ब्रह्माने सृष्टि करनेका मुझे आदेश दिया है। इस कारण मैं चाहता हूं कि, मुझे धन्या, दिव्या और सन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ पत्नी प्राप्त हो ॥ १४-१८ ॥ पितृगणने कहा,—इस समय इसी स्थानमें तुमको मनोहारिणी पत्नीकी प्राप्ति होगी और उसके गर्भसे तुम्हें उत्तम पुत्र होगा, जो श्रेष्ठ मनुपदको प्राप्त करेगा। हे रुचे! वह मन्वन्तराधिपति होकर तुम्हारे नामके अनुसार विख्यात होगा। अर्थात् वह रौच्य नामसे विख्यात होगा। उस रौच्यसे महावली, पराक्रमी, महात्मा और पृथ्वीपालक अनेक पुत्र होंगे। तुम भी चतुर्विध प्रजाकी सृष्टि कर जव अपने अधिकार पुत्रोंको सौंप दोगे, तव हे धर्मज्ञ! सिद्धिलाभ करोगे। जो मनुष्य इस स्तोत्रके द्वारा भक्तिपूर्वक हमारा स्तवन करेंगे, उनसे हम सन्तुष्ट होकर समस्त भोग और उत्तम आत्मज्ञान प्रदान करेंगे। शारीरिक आरोग्य, धन और पुत्र-पौत्रादि चाहनेवालोंको इस स्तोत्रके द्वारा सर्वदा हमारा स्तवन करना चाहिये। श्राद्धके समयमें भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके सम्मुख खड़े होकर हमारे प्रीतिकर इस स्तोत्रका पाठ भक्तिपूर्वक करना चाहिये। इस स्तोत्रके श्रवणसे प्रसन्न होकर हम निकट ही उपस्थित हैं, ऐसी भावना करनेसे हमारा अक्षय्य श्राद्ध

टीकाः—पहिले ही बार बार कहा गया है कि, इस स्थूल मृत्युलोकके अतिरिक्त चतुर्दश भुवनोंका और सब हिस्सा दैवीलोक कहाता है। एक ब्रह्माण्डमें दैवीलोकका अंश बहुत अधिक होनेपर भी अज्ञानके कारण और स्थूल दृष्टि होनेके कारण इस मृत्युलोकमें दैवी जगत्का पता प्रायः नहीं लगता है। किसी कल्प अथवा किसी मन्वन्तरमें अथवा किसी मन्वन्तरके किसी किसी विभागमें मृत्युलोक और दैवीलोकका सम्बन्ध बढ़ जाता और किसीमें घट जाता है। इस समय वह सम्बन्ध घटा हुआ है। इस कारण देवता, ऋषि और पितरोंके दर्शन होनेकी तो वातही क्या है, उनपर विश्वास करनेवाले विद्वान् बहुत ही कम पाये जाते हैं। जीवका समष्टि कर्म ही इसका कारण है। आधिभौतिक अंशके रक्षक और चालक जो देवता प्रत्येक ब्रह्माण्डमें होते हैं, वे पितर कहाते हैं। उनके संघ अलग अलग रहते हैं और यद्यपि उनका घनिष्ठ सम्बन्ध इस मृत्युलोकमें वर्णाश्रमशृंखला माननेवाली और रजोवीर्यकी शुद्धिसे युक्त आर्यप्रजासे अधिक रहता है, परन्तु वे मनुष्यजातिमात्रपर कृपालु रहते हैं। दूसरी ओर देवलोक और असुरलोककी आधिभौतिक सृष्टिके रक्षक और चालक पितृगण अलग अलग होते हैं। इस कारण पितरोंका माहात्म्य बहुत अधिक है; क्योंकि आधिभौतिक सम्बन्ध सृष्टिमें सबसे अधिक आवश्यकीय होता है। स्थूल शरीर सब लोकोंमें बिना रहे भोगकी निष्पत्ति नहीं होती और सब लोकोंके स्थूल शरीरोंसे पितरोंका सम्बन्ध है; इस कारण पितरोंकी स्तुतिमें उनको देवताओंका नेता कहकर वर्णन किया है। यद्यपि प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंही ईश्वररूप हैं, परन्तु क्रियाशक्तिके विचारसे भगवान् शिव ऋषिसंघके प्रमुख नेता, भगवान् विष्णु देवसंघके नेता और भगवान् ब्रह्मा पितृसंघके नेता होनेसे उनको ब्रह्माके स्वरूप कहा गया है। यह पहिले ही बार बार कहा गया है कि, मनुपदके पदधारियोंका जन्मवृत्तान्त दैवीलोकसे सम्बन्ध रखता है। कहीं कहीं किसी मनुका जो पूर्वजन्मवृत्तान्त कहा गया है, वह मृत्युलोकका वर्णन है। परन्तु इस

सम्पन्न हो जाता है। यदि श्राद्धके लिये श्रोत्रिय ब्राह्मण न मिले, अथवा श्राद्ध दूषित हो जाय, अथवा अन्यायसे उपार्जित धनके द्वारा श्राद्ध किया जाय, अथवा सविधि श्राद्ध न हो, अथवा उचित काल और उचित देशमें श्राद्ध न किया जाय, अथवा विधिपूर्वक न किया जाय, अथवा श्राद्धके अयोग्य दूषित वस्तुओंसे श्राद्ध किया जाय, अथवा दम्भके साथ या अश्रद्धासे किया जाय, किन्तु श्राद्धकर्ता यदि इस स्तोत्रका पाठ कर ले, तो वही श्राद्ध हमारा तृप्तिकर हो जायगा ॥ १९-२९ ॥ जिस श्राद्धमें हमारा तृप्तिकर यह स्तोत्र पढ़ा जाता है, उस श्राद्धसे बारह वर्षतक हम तृप्त रहते हैं। हेमन्त ऋतुमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे हमारी बारह वर्षोंतक तृप्ति होती है। शीतकालमें इस शुभ स्तोत्रका पाठ करनेसे चौबीस वर्षोंतक हम तृप्त हो जाते हैं। वसन्त अथवा ग्रीष्मकालमें श्राद्धके समय यह स्तोत्र पढ़नेसे हम सोलह वर्षतक तृप्त रहते हैं। वर्षाकालमें श्राद्धके समय, चाहे वह श्राद्ध अङ्गहीन ही क्यों न हो, इस स्तोत्रके पाठ करनेसे हमारी अक्षय्य तृप्ति हो जाती है। शरत् कालके श्राद्धमें पुरुषके द्वारा यदि इस स्तोत्रका पाठ हो, तो पन्द्रह वर्षों तक हमारी तृप्ति होती है। हे रुचे! जिस घरमें यह स्तोत्र लिखा हुआ रक्खा रहता है, उस घरमें श्राद्धके समय हम उपस्थित होते हैं। हे महाभाग! श्राद्धके समय भोजन करनेवाले ब्राह्मणोंके

पुराणमें सब मनुजन्मवृत्तान्त प्रायः दैवीलोककी घटनावली समझना ही उचित है। ऋषियोंसे सम्बन्धयुक्त ब्रह्मयज्ञ है। देवताओंसे सम्बन्धयुक्त देवयज्ञ और सोम, चयन, आप्तोर्याम, वाजपेय आदि नाना वैदिकयज्ञ; रुद्रयाग, विष्णुयाग, विश्वधारकयाग, विश्वम्भरयाग, शक्तियाग आदि अनेक स्मार्तयज्ञ और शतचण्डी आदि अनेक तान्त्रिक यज्ञ हैं। इसी प्रकार पितरोंको प्रसन्न करनेके लिये नित्य पितृयज्ञ, नित्य-नैमित्तिक श्राद्ध, तर्पण आदि अनेक यज्ञ हैं। पितरोंके सम्बर्द्धनके विचारसे ही वेदोक्त और शास्त्रोक्त श्राद्ध-क्रियाकी इतनी महिमा वर्णाश्रमधर्मावलम्बी आर्यगणमें पायी जाती है। उच्च अधिकारी मानवगण, देव पदपर पहुंचे हुए जीवगण और आत्मज्ञानप्राप्त संन्यासी अथवा ज्ञानीगणकी संख्या बहुत कम होती है। वे स्वयं समर्थ होनेके कारण अभ्युदय और निःश्रेयस मार्गमें आगे बढ़ जाते हैं। इस कारण उनको दूसरोंकी सहायताकी इतनी अपेक्षा नहीं रहती। परन्तु साधारण नरनारीमात्रको परलोकमें चलते समय पदपदमें दैवी सहायताकी आवश्यकता होती है। परलोकगामी आत्माओंको इस प्रकारकी सहायता पितृगणकी कृपासे ही प्राप्त हो सकती है। पितृगण बड़े शक्तिशाली देवता हैं। उनकी कृपासे इस लोककी द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्ति प्रेतलोक, असुरलोक, देवलोक आदि सब दैवी लोकोंमें जाकर वहां गये हुए हमारे नैमित्तिक पितर पिता, माता, आत्मीय आदिकी विपत्तिसे रक्षा करती है। उन्हें तृप्त करती है, शान्ति देती है और आगे अभ्युदयके लिये सहायता देती है। इस प्रकारकी श्राद्धक्रियामें श्राद्धकर्ताकी श्रद्धाही प्रधान वस्तु है। श्रद्धा और क्रिया ठीक रहनेसे देवपदधारी पितरोंकी सहायता विशेष रूपसे मिलती है। इसी कारण वैदिक मतावलम्बी आर्यप्रजामें नित्य और नैमित्तिक श्राद्धकी इतनी महिमा है। श्राद्धविज्ञान विचारशक्ति, योगशक्ति और विज्ञानशक्तिसे सर्वदा परिपूर्ण है। केवल अश्रद्धालु नास्तिक प्रजा श्राद्धके महत्वको भूल जाती है। ऐसे नित्य पितररूपी देवतागण,

समक्ष हमारा पुष्टिकर यह स्तोत्र तुम श्रवण कराया करो। गया, पुष्कर, कुरुक्षेत्र और नैमिषारण्यमें श्राद्ध करनेसे जो फल होता है, इस स्तोत्रके पढ़ने और सुननेसे वही फल प्राप्त होता है। रुचिको इस प्रकार वरदान देकर पितृगणने अपना काम साध लिया। अर्थात् रुचि अब विवाह करेगा, यह जानकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई ॥ ३०–३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रौच्य मन्वन्तरान्तर्गत पितृवरप्रदान नामक सत्तानबेवां अध्याय समाप्त हुआ।

अट्ठानबेवाँ अध्याय।

—:*:—

मार्कण्डेयने कहा,—फिर नदीमेंसे एक क्षीण अंगोंवाली, मनको हरण करनेवाली, उच्चकोटिकी प्रम्लोचा नामकी अप्सरा निकलकर रुचिके सम्मुख उपस्थित हुई। उस सुन्दरीने वहाँ आकर अत्यन्त विनयके साथ सुमधुर शब्दोंसे महात्मा रुचिसे कहा,—हे तापसश्रेष्ठ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्करसे उत्पन्न हुई अत्यन्त सुन्दरी मेरी एक कन्या है। मैं उस वरवर्णिनीको दान करती हूं। आप उसको पत्नीरूपसे ग्रहण कीजिये। उसके गर्भसे तुम्हें जो पुत्र होगा, वह मनुपदको प्राप्त करेगा ॥ १–४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—"ठीक है" कहकर रुचिके स्वीकार कर लेनेपर प्रम्लोचा उसी जलमेंसे सुन्दर कान्तिसे युक्त मालिनी नामकी अपनी कन्याको ले आयी। मुनिवर रुचिने उसी नदीके पुलिनमें अनेक महामुनियोंको बुलाकर यथाविधि मालिनीका पाणिग्रहण किया। समय पाकर उसीके गर्भसे महात्मा रुचिके महावीर्यशाली और बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ, जो रुचिके नामके अनुसार रौच्य नामसे जगत्में विख्यात हुआ। उसके मन्वन्तरमें जो देवता, सप्तर्षि और मनुपुत्र राजन्यगण हुए, उनकी कथा मैं भलीभाँति सुना चुका हूं। इस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे श्रोता मानवोंकी धर्मवृद्धि होकर उन्हें आरोग्य, धन, धान्य और पुत्रकी प्राप्ति होती है। हे महामुने! पितरोंका स्तोत्र और पितृगणके गुण श्रवण करनेसे मनुष्योंकी सब कामनाएँ सिद्ध होती हैं ॥ ५–१० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका रौच्य मन्वन्तरके अन्तर्गत मालिनी-परिणय नामक अट्ठानबेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

जिनका वर्णन ऊपरके स्तोत्रोंमें आया है और जिनकी प्रसन्नताका अलौकिक लाभ ऊपरके स्तोत्रोंमें वर्णित है, पितृयज्ञ और श्राद्ध तथा तर्पणके द्वारा वे तो प्रसन्न होकर इस स्तोत्रमें वर्णित फल प्रदान करतेही हैं, अधिकन्तु श्राद्ध आदिके द्वारा हमारे परलोकगामी नैमित्तिक पितर पिता-माता-भ्राता-आत्मीय आदि विशेष सहायता, शान्ति और अभ्युदय प्राप्त करते हैं, इसमें कोई भी सन्देह नहीं है। अन्तर्दृष्टिसम्पन्न योगिगण इसका अनुभव करते हैं ॥ १—३७ ॥

निन्यानबेवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयने कहा,—अब भौत्य मनुकी उत्पत्ति और उसके मन्वन्तरके देवतागण, ऋषिगण तथा मनुपुत्र राजन्यगणका वर्णन करता हूँ, सुनो। मुनिश्रेष्ठ अङ्गिराके भूति नामक एक पुत्र था। वह बड़ा ही क्रोधी, बात बातमें शाप देनेके लिये उद्युक्त होनेवाला और निरपराध व्यक्तियोंको भी कटु उक्तियाँ सुनानेवाला था। उस अति कोपी और तेजस्वी ऋषिके भयसे उसके आश्रममें वायुदेव अति निष्ठुरतासे प्रवाहित नहीं होते थे। सूर्यदेव अपना प्रखर उत्ताप आश्रममें नहीं फैलाते थे। पर्जन्यदेव अति वर्षा कर आश्रममें काँदा-कोचड़ नहीं करते थे और परिपूर्ण चन्द्रमा अपने शीत किरणों द्वारा आश्रममें अधिक ठण्ढक नहीं होने देते थे। उस ऋषिके आज्ञानुसार सब ऋतु अपना क्रम छोड़कर सर्वदा वृक्षोंमें फल फूल उत्पन्न करते थे। आश्रमके निकटसे बहनेवाला जल महात्मा भूतिके भयसे उनकी इच्छा होते ही उनके कमण्डलुमें भर जाता था। हे विप्र! अत्यन्त क्रोधी वे मुनि बहुत क्लेश सहन नहीं कर सकते थे। यह सब होते हुए भी वे सन्तानहीन थे। इसलिये उन्होंने तपस्या करनेका निश्चय किया और वे पुत्रकी कामनासे परिमित आहार करते तथा शीत, उष्ण, वायु आदिके क्लेशोंको सहते हुए तपस्या करने लगे ॥ १-६ ॥ हे महामुने! उनकी तपस्याके समय न तो चन्द्रमा शीत किरणोंसे शीत फैलाता, न सूर्य प्रखर उत्तापसे उत्तापित होता और न वायु प्रबल वेगसे प्रवाहित ही होता था। वे श्रेष्ठ मुनि भूति शीतोष्णादि अनेक द्वन्द्वोंको सहन करके भी अभिलषितकी सिद्धिके विना ही तपस्यासे पराङ्मुख हो गये। उनका सुवर्चा नामक एक भाई था; जिसने अपने आरम्भ किये हुए यज्ञमें भूतिको निमन्त्रित किया। तब उन्होंने यज्ञमें सम्मिलित होनेका निश्चय कर अपने शान्ति नामक शिष्यको, जो परम बुद्धिमान्, प्रशान्त, अक्षके समान विनीत भावसे गुरुकार्यमें निरन्तर उद्यत, शुभाचारवान्, उदार और मुनिश्रेष्ठ था, बुलाकर कहा,—हे शान्ते! भाई सुवर्चाके निमन्त्रणसे मैं उसके यज्ञमें सम्मिलित होने जा रहा हूं। अब तुम्हें यहाँ रहकर क्या करना चाहिये, वह कहता हूं, सुनो। तुम मेरे आश्रममें अग्निको निरन्तर जगाये रहना और वह कभी शान्त न हो, इसकी सावधानी रखना ॥ ७-१४ ॥ मार्कण्डेय बोले,—गुरुकी आज्ञा सुनकर शान्तिने कहा,—ऐसा ही होगा। तत्पश्चात् भूति अपने छोटे भाईके आरम्भ किये हुए यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये चले गये। उनके चले जानेपर एक दिन महात्मा शान्ति गुरुके

अग्निका संवर्द्धन करनेके लिये वनमें समिधा तथा फल-फूल लाने चला गया और गुरु-भक्तिके वशवर्ती होकर गुरुके अन्य कार्य भी करता आया। वनसे लौट आकर वह क्या देखता है कि, आश्रमके कुण्डका अग्नि शान्त हो गया है। अब तो महामति शान्ति बहुत ही दुःखित हुआ और भूतिके भयसे भीत होकर बड़ी चिन्तामें पड़ गया। वह सोचने लगा कि, अब क्या करूँ? अब यहाँ गुरुदेवका आगमन कैसे होगा? इस समय मुझे क्या करना चाहिये और क्या करनेसे अच्छा होगा? यदि गुरुदेव अभी आकर यहाँ अग्निको शान्त हुआ देखेंगे, तो मुझे बड़े ही सङ्कटमें पड़ना होगा। यदि इस अग्निके स्थानमें मैं दूसरा अग्नि स्थापित कर दूँ, तो अन्तर्यामी गुरुदेव जान लेंगे और तब निःसन्देह मुझे भस्म कर देंगे। मैं ऐसा पापी हूं कि, गुरुका मुझपर कोप होगा और वे मुझे शाप देंगे, इसके लिये मैं अपने विषयमें शोक नहीं करता; किन्तु शोक इस बातका है कि, गुरुके निकट मैं पाप करूँगा। अपने अग्निको शान्त हुआ देखकर गुरुदेव मुझे अवश्य ही शाप देंगे अथवा अग्निदेव ही मुझपर क्रुद्ध हो जायंगे। अर्थात् मुनिके भयसे अग्निदेव ही मुझे शाप दे देंगे। क्योंकि गुरुदेवका प्रभाव ही असाधारण है। जब कि, देवता उनके प्रभावसे भयभीत होकर उनके शासनके अधीन हो रहे हैं, तब मुझे अपराधी देखकर वे कौनसा दण्ड न देंगे? मार्कण्डेयने कहा,—गुरुके भयसे भीत वह श्रेष्ठ बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार चिन्ता करता हुआ जातवेदा (जिससे वेदोंका आविर्भाव हुआ है) अग्निदेवके शरणापन्न हुआ। वह मनको काबूमें लाकर एकाग्र चित्तसे भूमिपर घुटने टेककर और हाथ जोड़कर सात शिखाओंसे युक्त अग्निदेवकी स्तुति करने लगा। शान्तिने कहा,—जो समस्त जीवोंके कारण स्वरूप हैं, महान् आत्मा हैं, एक, दो और पञ्च स्वरूप हैं और राजसूय यज्ञमें छः मूर्तियोंको धारण करते हैं, उन अग्निदेवको नमस्कार करता

टीका—नदीसे अप्सराका निकलना, वरुणदेवके द्वारा अप्सरासे सन्तति होना, यह सब दैवी सृष्टिका ही विषय है, इसमें सन्देह नहीं। अप्सराएं भी देवयोनि हैं। अप्सराओं और देवियोंमें भेद इतना है कि, देवियां देवताओंकी शक्ति होती हैं और जो देवी जिस देवताकी शक्ति होती है, वह उससे कदापि अलग नहीं रहती। धर्मविचारसे वे सती होती हैं और अपने देवमें तन्मय रहती हैं। परन्तु अप्सराएं ऐसी नहीं होतीं। वे दैवीशक्तिसम्पन्न होनेपर भी पुरुषान्तरसेविनी होती हैं। यहांतक कि, स्वर्गगामी आत्माओंको स्वर्गसुख भोगनेके निमित्त अप्सराएं मिलती हैं। येही दो भेद स्वर्गकी स्त्रियोंमें दो अलग अलग स्त्रीश्रेणियोंको सिद्ध करते हैं। अप्सराओंसे जो सन्तति होती है, वह पृथ्वीकी सृष्टिके ढंगपर नहीं होती। दैवी सृष्टिके लिये मृत्युलोककी तरह कालकी आवश्यकता नहीं होती। उस सृष्टिमें शरीरबलसे मनोबलकी अधिकता रहती है। दैवी सृष्टि तुरन्त हो जाती है। भूलोककी वेश्याओंकी तरह अप्सराएं अपवित्र और भ्रष्ट नहीं होतीं, क्योंकि वे दैवीशक्तिसम्पन्न होती हैं ॥ १—१७ ॥

अध्याय ९८।

हूं। जो समस्त देवताओंको वृत्ति (जीविका) देते हैं, जो अत्यन्त तेजस्वी हैं और जो सम्पूर्ण जगत्के स्थितिस्थापक हैं, शुक्ररूपी उन अग्निदेवको नमस्कार करता हूं। हे अग्निदेव! तुम देवताओंके मुखस्वरूप हो। तुम्हारे द्वारा भगवान् घृतपान करके समस्त देवताओंको सन्तुष्ट करते हैं। तुम सब देवताओंके प्राणस्वरूप हो। तुम्हारेमें हवनीय द्रव्य हुत होनेपर निर्मल मेघके रूपमें परिणत हो जाता है और फिर वह जल बन जाता है। हे वायुदेवके मित्र! उसी जलकी वर्षासे सब प्रकारकी औषधियाँ उत्पन्न होती हैं और उन्हीं औषधियोंसे जीव सुखपूर्वक जीवित रहते हैं ॥ २७-३१ ॥ हे पावक! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियोंसे यज्ञ करते हैं और उन्हीं यज्ञोंके द्वारा देवता, दैत्य और राक्षसगण तृप्त होते हैं। हे हुताशन! तुम उन सब यज्ञोंके आधार स्वरूप होनेसे, हे वह्ने! तुम सबके उत्पादक और सर्वमय हो। हे पावक! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृप आदि तुम्हारे द्वारा ही तृप्त होते हैं। वे सदा तुमसे सम्बन्धयुक्त होते हैं। तुम्हींसे उत्पन्न होते और अन्तमें तुम्हारेमें ही विलीन हो जाते हैं। हे देव! तुम जलकी सृष्टि करते हो और फिर उसको पी जाते हो। तुम उस पानीको पचा डालते हो, जिससे वह सब प्राणियोंके लिये पुष्टि-कारक होता है। हे भगवन् अग्ने! तुम देवगणमें तेजके रूपमें, सिद्धगणमें कान्तिके रूपमें, नागगणमें विषके रूपमें और पक्षियोंमें वायुके रूपमें रहा करते हो। हे देव! तुम मनुष्योंमें क्रोधके रूपमें, पृथ्वीमें काठिन्यके रूपमें और जलमें द्रवत्वके रूपमें अवस्थित होते हो। तुम वायुमें वेगके रूपमें और आकाशमें व्यापित्वके रूपमें निवास करते हो। हे अग्ने! तुम सब जीवोंका पालन करते हुए उनके अन्दर विचरण किया करते हो। मनीषी लोग तुम्हारा एक रूपमें वर्णन करते हैं और त्रिविध रूपमें भी ॥ ३२-४० ॥ कविगणने तुम्हारी आठ रूपोंमें कल्पना कर आद्य यज्ञकी कल्पना की है। महर्षिगणका कथन है कि, तुमसे ही समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है। हे हुताशन! तुम्हारे बिना सारी सृष्टिका क्षणभरमें विनाश हो जायगा। ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य-कव्य आदि द्वारा पूजा कर स्वधाकार और स्वाहाकार करते हैं, जिससे उन्हें स्वकर्मसे प्राप्त होनेवाली उत्तम गति मिलती है। हे देवपूजित अग्निदेव! प्राणियोंकी परिणामिनी अवस्थामें अर्थात् उनकी अन्तिम अवस्थामें तुमसे अत्युग्र अग्निशिखाएँ उत्पन्न होकर समस्त जीवोंको दग्ध कर देती हैं। हे महाद्युतिसम्पन्न जातवेदः! यह सब विश्व तुम्हारी ही सृष्टि है। हे अनल! समस्त वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारे अधीन है। हे पिङ्गाक्ष अनल! तुम्हें नमस्कार करता हूं। हे पावक! तुम्हें प्रणाम करता हूं। हे हव्यवाहन! तुमको प्रणिपात करता हूं। तुम ही खाये-पीये हुए द्रव्योंके पाचन करनेवाले विश्वपावक हो। तुम ही कृषिको परिपक्व

करनेवाले और जगत्को पुष्ट करनेवाले हो । तुम ही मेघ, वायु, शस्यके उत्पन्न करनेवाले बीज और सब भूतोंके पोषण करनेवाले भूत, भविष्यत् और वर्तमान स्वरूप हो । तुम ही सब भूतोंके ज्योतिःस्वरूप और तुमही आदित्य स्वरूप सूर्य हो । तुमही दिन, रात्रि और दोनोंके बीचकी संध्याएँ हो । हे वह्ने ! तुम ही हिरण्यरेता और सुवर्णको उत्पन्न करनेवाले हो । तुम हिरण्यगर्भ और सुवर्णके समान प्रभासे युक्त हो । तुमही मुहूर्त्त, क्षण, त्रुटि और लव हो । हे जगत्प्रभो ! तुम ही कला, काष्ठा, निमेष आदि रूपोंसे परिमाणात्मक अनन्त काल हो । हे प्रभो ! तुम्हारी जो कालको नियन्त्रण करनेवाली काली नामकी जिह्वा है, हे देव ! वह पापोंसे, भयसे और ऐहिक महाभयसे हमारी रक्षा करे । महाप्रलयकी कारणस्वरूप कराली नामकी जो तुम्हारी जिह्वा है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे ॥ ४१-५३ ॥ लघिमा नामक सिद्धिको देनेका जिसमें गुण है, वह तुम्हारी मनोजवा नामकी जिह्वा हमारी ऐहिक महाभय और पापोंसे रक्षा करे । तुम्हारी जो सुलोहित नामकी जिह्वा है, जो प्राणिमात्रकी कामनाओंको पूर्ण करती है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । जो सुधूम्रवर्णा नामकी तुम्हारी जिह्वा है, जिससे प्राणियोंके सब रोग दग्ध हो जाते हैं, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । तुम्हारी स्फुलिङ्गिनी नामकी जो जिह्वा है, जिससे सब मूल द्रव्य उत्पन्न होते हैं, वह हमारी ऐहिक महाभय और पापोंसे रक्षा करे । तुम्हारी विश्वा नामकी जिह्वा, जो प्राणियोंका मंगल साधन करती है, वह ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा करे । हे हुताशन ! तुम्हारे नेत्र पिङ्गलवर्ण, ग्रीवा लोहितवर्ण और देहावयव कृष्णवर्णके हैं । तुम हमें सब दोषोंसे बचाओ और इस संसारसे हमारा उद्धार करो । हे वह्ने ! तुम सप्तार्चि, हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि, पावक, शुक्र आदि नामोंसे वर्णित होते हो । तुम हमपर प्रसन्न हो । हे अग्ने ! तुम समस्त भूतोंके सामने समुद्भूत हुए हो; अतः हे विभावसो ! हे अव्यय ! हे हव्यवाह ! तुम्हारी हम स्तुति करते हैं । हमारी स्तुतिसे तुम प्रसन्न हो । हे वह्न ! तुम्हारा क्षय हो नहीं सकता । तुम्हारे स्वरूपका विचार करना असम्भव है । तुम समृद्धिशाली, असह्य और अतितीव्र हो । मूर्तिमान् होनेपर तुम ऐसे बलवान् हो जाते हो कि, अव्यय और भीमरूपी यह सब जगत् नाश हो जाता है । हे हुताशन ! तुम उत्तम सत्त्व और समस्त प्राणियोंके हृदयकमल हो । तुम सबके उपास्य और अनन्त ब्रह्मस्वरूप हो । तुम ही ब्रह्मस्वरूप होकर इस चराचर विश्वको व्याप्त करके स्थित हो । तुम एकही होकर अनेक रूपोंसे इस संसारमें अवस्थान कर रहे हो ॥५४—६३॥ हे अनल ! तुम अक्षय होकर भी पर्वतों और वनोंसे भरी हुई इस वसुन्धराके स्वरूप हो । तुम चन्द्र-सूर्य आदिसे युक्त नभःस्वरूप और दिन-रात्रिप्रभृति अखिल

कालस्वरूप हो। तुम ही महासमुद्रमें बड़वाग्नि हो और अपनी परम विभूतिद्वारा सब किरणोंमें रहा करते हो। हे हुताशन! तुम हुत हवनीय द्रव्यको भक्षण करते हो यह जानकर नियम परायण महर्षिगण महायज्ञमें तुम्हारी पूजा करते हैं। तुम उनसे स्तुत होकर जगत्‌के मंगलके लिये सोमरस और वषट्कार सहित सब हवनीय द्रव्योंका पान करते हो। सब वेदाङ्गोंमें तुम्हारा गान गाया गया है और यज्ञपरायण द्विजश्रेष्ठगण तुम्हारे लिये ही निरन्तर वेदाङ्गोंका अध्ययन किया करते हैं। तुम यजनपरायण ब्रह्मा हो, तुम महाविष्णु और तुम ही भूतनाथ महादेव हो। सुरपति इन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्र भी तुम ही हो। सुर और असुरगण सभी हव्यके द्वारा तुम्हें सन्तुष्ट कर अपने इच्छित फलको प्राप्त करते हैं। अशुद्ध मन्त्रोंसे दिये हुए दूषित द्रव्योंको भी तुम अपनी लौरसे पवित्र कर देते हो। सब स्नानोंमें भस्मस्नान श्रेष्ठ है। इस कारण मुनिगण

टीकाः—देवताओंमें भी वर्णव्यवस्था है। अग्निदेवता ब्राह्मण हैं और बड़े उच्चकोटिके देवता हैं। अग्निके आधिभौतिक स्वरूप अनेक हैं। क्रिया और शक्तिके भेदसे ये सब भेद माने गये हैं। स्थूल क्रिया और शक्तिके विचारसे पुनः अनेक अलग अलग भेद अग्निके होते हैं। स्थूल अग्निके भेद, यथाः—बड़वानल, दावानल, साधारण अग्नि, यज्ञका अग्नि इत्यादि। सूक्ष्म भेदके विचारसे वैद्युतिक अग्नि, जठराग्नि, इत्यादि। इसी प्रकार अग्निका अधिदैवस्वरूप समझनेके लिये अग्निलोकवासी अग्निदेवता ही समझने योग्य हैं। इस प्रकार अग्निका अधिदैवस्वरूप और अधिभूतस्वरूपका दिग्दर्शन किया गया। अग्निदेवका अध्यात्मस्वरूप बहुत ही गम्भीर विज्ञानसे युक्त है। यह अग्नि ही जगत्प्रतिष्ठाका कारण है। परमाणुसे लेकर प्रत्येक ब्रह्माण्डके ग्रह उपग्रहतक यही अग्नि सब शक्तियोंका समन्वय करके जगत्‌की प्रतिष्ठाका कारण बनता है। एक पत्थरका टुकड़ा जब पत्थर बना था, तब आकर्षण शक्तिद्वारा पत्थरके उपयोगी परमाणु आकर्षित हुए थे; वह जब पत्थर लयको प्राप्त होगा, तो विकर्षणशक्ति द्वारा वे परमाणु बिखर जायंगे। परन्तु पत्थरकी धर्म (अस्तित्व) रक्षक यही शक्ति आकर्षण-विकर्षणकी समता रखकर उस पत्थरके स्वरूपकी रक्षा करती है। उसी प्रकार अनन्त ग्रह-उपग्रहोंमें आकर्षण और विकर्षणके समन्वयकी रक्षा करनेवाली महाशक्ति जगत्‌की प्रतिष्ठा करती है। इसी प्रकार जीवोंके अन्तःकरणोंमें रागरूपी आकर्षण और द्वेषरूपी विकर्षण दोनों शक्तियोंके समन्वयद्वारा चित्तवृत्ति-निरोध होनेपर आत्मा अपने स्वरूपमें अधिष्ठित होता है। इस कारण वही अग्नि जगत्‌की प्रतिष्ठारूपी है। वस्तुतः ऐसे अग्निका स्वरूप वाणी, मन और बुद्धिसे अतीत होने पर भी केवल ज्ञानगम्य है। विश्वधारक अग्नि साधारण और विशेषरूप धारण करके साधारण और विशेष धर्मोपाधिको प्राप्तकर स्थावर-जङ्गमात्मक सृष्टिको धारण करता है। यही उस अग्निका अध्यात्मस्वरूप है। अग्निके स्वरूपको समझनेके लिये यह भी कह सकते हैं कि, वह महाशक्ति जो जीवमात्रको, जैसे सूर्यदेव वाष्पराशिको नियमित रूपसे अपनी ओर आकर्षित करते हैं, उसी प्रकार ब्रह्मस्वरूपकी ओर नित्य नियमपूर्वक आकर्षित करती है, उसीका नाम तेज है। वह भगवत्-तेज ही अग्निरूपसे अभिहित होता है। वही रूपान्तरसे विश्वधारक धर्म शब्द-वाच्य है और वही अग्निदेवताका अध्यात्मस्वरूप समझनेके लिये सूत्ररूप है। इस अध्यात्म

सन्ध्यावन्दनके समय भस्मस्नान किया करते हैं। हे वह्ने ! इसीसे तुम शुचि नामको धारण किये हो। उसी नामके नाते तुम हमपर प्रसन्न हो। तुम विमल और अतिप्रबल वायुस्वरूप हो; इस कारण उसी रूपमें मुझपर प्रसन्न हो। हे पावक ! तुम वैद्युताग्नि आदि नामोंसे कीर्तित होते हो; अतः उसी तरह तुम प्रसन्न हो। हे हव्याशन ! तुम प्रसन्न हो और हमारी रक्षा करो। हे वह्ने ! तुम्हारा जो मङ्गलमय रूप है और तुम्हारी जो सात जिह्वायें हैं, हे देव ! हमसे स्तुत होकर उनके द्वारा, पिता जिस तरह पुत्रकी रक्षा करता है, उसी तरह तुम हमारी रक्षा करो ॥ ६४—७० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भौत्यमन्वन्तरान्तर्गत अग्निस्तोत्र नामक निन्यानवेवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

विज्ञानमें बुद्धिभेद न हो, इस कारण कहा जाता है कि, जीवके धर्माधर्मके फलदाता होनेके कारण भगवान् यम धर्मराज कहाते हैं और धर्मकी धारिकाशक्तिके नियामक होनेसे भगवान् अग्निदेव कहाते हैं। कर्मके द्वारा ही जीवको शुभाशुभ फलप्राप्ति होती है। पुण्यकर्म शुभप्रद और पापकर्म अशुभप्रद होता है। ये ही दोनों कर्म धर्म और अधर्म बनजाते हैं। मनुष्योंके समष्टिधर्मके कार्यके अनुसार ही देशका शुभ होता है। धर्म और यज्ञ पर्यायवाचक शब्द हैं। इस कारण यज्ञके द्वारा ही देशमें उत्तम वृष्टि होती है। यही यज्ञसे वृष्टि होनेका रहस्य है। यज्ञके भी पुनः अनेक भेद हैं,—यथाः—दानयज्ञ, तपोयज्ञ, कर्मयज्ञ, योगयज्ञ, ज्ञानयज्ञ, वैदिकयज्ञ, स्मार्तयज्ञ, तान्त्रिकयज्ञ इत्यादि। यज्ञके इस विस्तृत स्वरूपके अनुसार अनार्य देशोंमें भी यज्ञ ही वृष्टिका कारण बनता है। अग्निदेवता उस यज्ञशक्तिको देवलोकमें पहुंचाते हैं और देवताओंको तृप्त करते हैं। वैदिक यज्ञमें अग्निदेवका प्राधान्य तो प्रत्यक्ष ही है। उसी यज्ञशक्तिसे संवर्द्धित होकर देवराज इन्द्र अपने माण्डलिक राजाओंके द्वारा यथायोग्य रूपसे पृथ्वीपर पर्जन्यकी वर्षा कराते हैं। यज्ञके इस अलौकिक स्वरूपके साथ अग्निदेवके मुखका भी अलौकिक सम्बन्ध विद्यमान है। वैदिक यज्ञमें आहुति उनके मुखमें ही दी जाती है। ऐसे देवताओंमें ब्राह्मणरूप अग्नि सृष्टिमात्रके रक्षक हैं, पालक हैं और सर्वमान्य हैं। अग्निदेवका अध्यात्मस्वरूप, अधिदैवस्वरूप और अधिभूतस्वरूप ये तीनों ही अलग अलग स्वरूप समझनेके लिये पदार्थ-विद्या-शक्ति, योगशक्ति और ज्ञानशक्तिकी कैसी आवश्यकता है, वह ऊपरके विज्ञान और इस अग्निस्तोत्रके अति चमत्कारपूर्ण रहस्योंसे प्रमाणित होता है। भगवान् अग्निके मुख और सप्त जिह्वाओंके मौलिक विज्ञानका अनुसन्धान करनेपर उनकी सर्वव्यापक शक्तिका पता लगता है। इस स्तोत्रोक्त विज्ञानका मनन करनेसे वेद और शास्त्रोक्त यज्ञके गुरुत्वका कुछ कुछ पता लग जाता है। यज्ञके सम्बन्धसे भस्मकी महिमा भी भगवान् अग्निदेवकी महिमाके साथ प्रमाणित होती है। स्नान आठ प्रकारके शास्त्रोंमें कहे गये हैं। यथाः—जलस्नान, मन्त्रस्नान, मानसस्नान, भस्मस्नान आदि। उनमेंसे यज्ञशेषका सम्बन्ध होनेके कारण भस्मस्नानकी महिमा इस स्तोत्रमें कही गयी है ॥ १—७० ॥

सौवाँ अध्याय ।

मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने ! शान्तिके इस प्रकार स्तवन करनेपर भगवान हव्यवाहन अग्नि ज्वालामालाओंसे परिवेष्टित होकर उसके सामने आविर्भूत हुए। हे द्विज ! अग्निदेव शान्तिकृत स्तोत्रसे प्रसन्न होकर उस विनम्र शान्तिसे मेघगम्भीर वाणीसे बोले,—हे विप्र ! तुमने भक्तिपूर्वक जो मेरी स्तुति की है, उससे मैं बड़ा प्रसन्न हुआ हूं। मैं तुम्हें वर प्रदान करता हूं, तुम जो चाहो, वह वर मांग लो। शान्तिने कहा,--हे भगवन् ! आपको मूर्तिमान देखकर कृतकृत्य हुआ हूं। अब मैं भक्तिसे विनम्र होकर निवेदन करता हूं, आप श्रवण कीजिये। हे देव ! हमारे आचार्य अपने भाईके यज्ञमें सम्मिलित होनेके लिये आश्रमसे चले गये हैं। अब वे लौट आकर आश्रमके अग्नि-कुण्डको आपसे शून्य देखेंगे। हे विभावसो ! मेरे अपराधसे आपने जो अग्निकुण्ड त्याग दिया है, गुरुदेवके आनेपर वे उसे पहिलेकी तरह आपसे युक्त देखें। हे देव ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि, मेरे सन्तानहीन गुरुदेवको विशिष्ट गुणशाली पुत्रकी प्राप्ति हो और उस पुत्रपर उनका जैसा मोह होगा, वैसा ही समस्त प्राणियोंपर भी हो। हे अव्यय ! आप मुझपर प्रसन्न हुए हैं यह जानकर जो कोई इस स्तोत्रका पाठ करेगा, मुझसे प्रसन्न हुए आप उसे इस स्तोत्रका पाठ करनेसे वरदान देवें ॥ १-६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—अग्निदेव द्विजश्रेष्ठ शान्तिकी गुरुभक्ति और स्तोत्रके पाठसे सन्तुष्ट होकर उससे बोले,—हे ब्रह्मन् ! तुमने अपने गुरुके लिये तो दो वर मांग लिये; किन्तु अपने लिये कोई याचना नहीं की, इससे मैं बड़ा ही प्रसन्न हुआ हूं। गुरुके लिये तुमने जो कुछ मांगा है, वह अवश्य सम्पन्न होगा। प्राणिमात्रके प्रति उनका प्रेम होगा और उन्हें पुत्रकी प्राप्ति भी होगी। तुम्हारे गुरुको परम बुद्धिमान्, बड़ा बलवान् और महावीर्यवान् भौत्य नामक पुत्र होगा, जो मन्वन्तराधिपति कहावेगा। इसी तरह भक्ति-भावसे जो इस स्तोत्रका पाठ करेगा, उसकी सब कामनायें सफल होंगी और वह पुण्य सञ्चय भी कर सकेगा। यज्ञमें, पर्वकालमें, तीर्थस्थानमें और होम करते समय धर्मप्राप्तिके हेतु जो इस स्तोत्रको पढ़ेगा, उसे ऐश्वर्य और आरोग्यकी प्राप्ति होगी तथा इसके श्रवणसे दिन और रात्रिके किये हुए पाप कट जायँगे। यह स्तव मेरे लिये अति सन्तोषप्रद है। होमकाल बीत जाने या अनधिकारीके द्वारा होम आदि कार्योंके होनेसे जो दोष होता है, वह इस स्तोत्रके सुननेसे उसी क्षण दूर हो जाता है। मेरे इस

श्रेष्ठ स्तवको पौर्णिमा, अमावास्या अथवा पर्वकालमें श्रवण करनेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट हो जाते हैं ॥ १०-१९ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! वायुके झखोरेसे दीपककी ज्योति जैसी सहसा निवृत्त हो जाती है, वैसे ही भगवान् अग्निदेव यह सब कहकर देखते-देखते वहाँ अन्तर्हित हो गये। अग्निके अन्तर्हित होनेपर शान्तिने हर्षसे रोमाञ्चित होकर गुरुके आश्रममें प्रवेश किया। वहाँ जाकर जब उसने गुरुके अग्निकुण्डमें अग्निको पहिलेकी तरह प्रज्वलित देखा, तब तो उसे बहुत ही प्रसन्नता हुई। इतनेमें उस महात्मा शान्तिके गुरु भी अपने कनिष्ठ भ्राताके यज्ञसे निवृत्त होकर आश्रममें लौट आये। शिष्यने आगे बढ़कर उनका पादवन्दन किया। गुरुने शिष्यकी पूजा ग्रहण कर और उसके बिछाये हुए आसनपर बैठकर कहा,—हे वत्स! तुम्हारे तथा अन्यान्य समस्त प्राणियोंके प्रति मेरे हृदयमें स्नेह उत्पन्न हो रहा है। यह क्यों हो रहा है, मैं समझ नहीं सकता। हे वत्स! यदि इसका रहस्य तुम जानते हो, तो मुझसे शीघ्र कहो। हे महामुने! तदनन्तर उस शान्ति नामक विप्रने अग्निलोप आदिकी समस्त घटना आचार्यसे निवेदन की। हे महामुने! वह सब वृत्तान्त श्रवण कर स्नेहार्द्रनयन होकर भूतिने शिष्यको आलिङ्गन किया और साङ्गोपाङ्ग वेद उसे प्रदान किये। फिर भूतिके भौत्य नामक पुत्र हुआ, जिसने मनुपदको प्राप्त किया। उस विख्यातकर्मा भावी मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, ऋषि, राजा और इन्द्र होंगे, उनके विषयमें मैं अब सब कुछ कहता हूं, सुनो। चाक्षु, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक, ये पांच प्रकारके उस समय देवगण होंगे। समस्त इन्द्रगुणोंसे युक्त, महाबली और महावीर्यशाली शुचि नामक इन्द्र होंगे ॥ २०-३० ॥ आग्नीध्र, अग्निबाहु, शुचि, मुक्त, माधव, शक्र और अजित नामक सात सप्तर्षि होंगे और गुरु, गभीरब्रध्न, भरत, अनुग्रह, स्त्रीमानी, प्रतीर, विष्णु, संक्रन्दन, तेजस्वी और सबल ये सब उस भौत्य मनुके पुत्र राजा होंगे। इस प्रकार मैंने तुमसे चौदह मनुओंका क्रमशः वर्णन किया है। हे मुनिसत्तम! इन मन्वन्तरोंका वृत्तान्त श्रवण करनेसे मनुष्य पुण्यसञ्चय करनेमें समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षयको प्राप्त नहीं होता। पहिले मन्वन्तर (स्वायम्भुव) की कथा सुननेसे मनुष्यको धर्मकी प्राप्ति होती है। द्वितीय स्वारोचिष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे सब कामनाओंकी सिद्धि होती है। तृतीय उत्तम मनुकी कथा सुननेसे धनकी प्राप्ति, चतुर्थ तामस मन्वन्तरकी कथा सुननेसे ज्ञानका लाभ, पञ्चम रैवत मन्वन्तरकी कथा सुननेसे बुद्धि और सुन्दरी

टीका:—अग्निदेवका अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत तीनोंरूपोंका स्वतन्त्र रूपसे पहिले दिग्दर्शन कराया गया है। इस समय जो रूप प्रकट हुआ था और जो अन्तर्हित हुआ, वह उनका अधिदैव रूप है। वैदिक विज्ञानकी यही पूर्णता है कि, वह इन तीनों विज्ञानोंसे पूर्ण है और उसमें सूक्ष्म दैवी जगत्की सत्यता और प्रधानता मानी गयी है ॥ २०-२१ ॥

स्त्रीकी प्राप्ति, छठे चाक्षुष मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्योंको आरोग्यका लाभ होता है। सातवें वैवस्वत मन्वन्तरकी कथा सुननेसे बलकी प्राप्ति, आठवें सूर्य्यसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे गुणवान् पुत्र-पौत्रका लाभ, नवम ब्रह्मसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे माहात्म्यवृद्धि, दशम धर्मसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मङ्गल और ग्यारहवें रुद्रसावर्णिक मन्वन्तरकी कथा सुननेसे सुमति और जयकी प्राप्ति होती है। हे नरोत्तम! बारहवें दक्षसावर्णिक मन्वन्तरकी कथाके श्रवणसे मनुष्य ज्ञातियोंमें श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है। तेरहवें रौच्य मन्वन्तरकी कथा सुननेसे मनुष्य शत्रुबलको जीतनेमें समर्थ होता है और चौदहवें भौत्य मन्वन्तरकी कथाके श्रवण करनेसे देवप्रसाद, अग्निहोत्रका फल और गुणयुक्त पुत्रकी प्राप्ति होती है ॥ ३१—४० ॥ हे मुनिसत्तम! जो मनुष्य स्वायम्भुव मन्वन्तरसे लेकर सब मन्वन्तरोंकी कथा क्रमशः सुनते हैं, उनको जो फल प्राप्त होता है, वह सुनो। हे विप्र! उस उस मन्वन्तरके देवगण, ऋषिगण, पितृगण, मनुपुत्र नृपतिगण और उनके वंशोंका वृत्तान्त श्रवण करनेसे मनुष्योंके सब पाप नष्ट होते हैं और देवगण, ऋषिगण, इन्द्र, नृपगण और अन्य जो मन्वन्तरके अधिपति हों, वे सब प्रसन्न होते हैं। उनके प्रसन्न होनेसे अच्छी बुद्धि प्राप्त होती है। अच्छी बुद्धि प्राप्त होनेपर उत्तम कर्म करनेसे जबतक चौदह इन्द्रोंका अस्तित्व रहेगा, तबतक मनुष्यको शुभगति प्राप्त होती रहेगी। क्रमशः मन्वन्तरोंकी स्थिति श्रवण करनेसे सब ऋतु कल्याणकर होते हैं और सब ग्रह सौम्य हो जाते हैं, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥ ४१—४५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका चतुर्दशमन्वन्तरकथन
नामक सौवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एकसौएकवां अध्याय।

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवन्! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिके सम्बन्धमें सब बातें अच्छी तरह समझा कर कहीं और मैंने भी क्रमशः विस्तृत रूपसे आपसे समझ ली हैं।

टीका:—वेद और पुराणादि शास्त्रोंमें फलश्रुतिके रहस्यके विषयमें अनेक प्रकारकी शंकाएं हुआ करती हैं। ऐसी शंकाओंका सुगम समाधान यह है कि, नित्य शब्दब्रह्मरूपी वेद अथवा उनके आश्रयसे प्रकट होनेवाले समाधिभाषा आदिके शास्त्रीय शब्द अन्तर्जगत्‌रूपी सूक्ष्म दैवीराज्यसे साक्षात् सम्बन्धयुक्त होते हैं। कार्य-कारणसम्बन्धसे उनमें दैवीशक्ति विद्यमान रहती है। उसी दैवीशक्तिकी श्रेणीको लक्ष्यमें रखकर रुचि उत्पादक फलश्रुति कही जाती है ॥ २६—४५ ॥

हे विप्रवर! अब ब्रह्मासे लेकर सब राजाओंके वंशका वृत्तान्त सुनना चाहता हूं; अतः हे भगवन्! उसका आप भलीभांति वर्णन कीजिये। मार्कण्डेय बोले,—हे वत्स! जगत्के मूल प्रजापति ब्रह्मासे लेकर समस्त राजाओंके जन्मवृत्तान्त और चरित मैं कहता हूं, तुम सुनो। अब तक जो राजवंश हुए, वे अनेक यज्ञ करनेवाले, रणमें विजय पाये हुए और धर्मात्मा सैंकड़ों राजाओंसे अलंकृत हुए हैं। उन महात्मा नरेन्द्रोंके जन्म-वृत्तान्त और चरित सुननेसे मनुष्योंके सब पाप कट जाते हैं ॥ १–५ ॥ जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और ऐसे ही अन्यान्य सैंकड़ों धर्मज्ञ, यज्ञ करनेवाले, शूर और परम ज्ञानी भूपालोंने जन्म ग्रहण कर उत्तम रीतिसे पृथ्वीका पालन किया, उसका वृत्तान्त सुननेसे मनुष्योंका पापसमूह नष्ट हो जाता है। अतः पहिले इसी वंशका विषय श्रवण करो। वटवृक्षकी जटाएँ (बरोह) लटककर भूमितक पहुंचते ही प्रत्येक जटाका जिस प्रकार एक एक स्वतन्त्र वटवृक्ष हो जाता है, उसी प्रकार इस वंशसे मनुष्योंके सहस्रों वंश उत्पन्न हुए हैं। हे द्विजश्रेष्ठ! प्रारम्भमें प्रजापति ब्रह्माने विविध प्रजाकी सृष्टि करनेकी इच्छा कर अपने दाहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया। फिर जगत्को उत्पन्न करनेवाले प्रभु भगवान् ब्रह्माने जगत्को उत्पन्न करनेके लिये अपने बाएँ अँगूठेसे दक्षकी पत्नीकी सृष्टि की ॥ ६–१० ॥ दक्ष और उस दक्ष-पत्नीसे अदिति नामक एक सुंदरी कन्या हुई। उसका कश्यपसे विवाह हुआ और उससे मार्तण्डदेवकी उत्पत्ति हुई। हे द्विज! जो ब्रह्मस्वरूप हैं, समस्त जगत्को वर देनेमें समर्थ हैं, सृष्टि-स्थिति-लयकार्यमें आदि-मध्य-अन्तस्वरूप हैं, जिनसे समस्त जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें अशेष जगत् अव-स्थित है, देव-असुर-मानवोंसे समन्वित यह जगत् ही जिनका स्वरूप है, जो सर्वभूत-स्वरूप हैं, सर्वात्मा और सनातन परमात्मा हैं, उन भास्वान् सूर्यदेवकी अदितिने आराधना की थी; इसीसे वे उसके गर्भसे पुत्ररूपमें आविर्भूत हुए थे। क्रौष्टुकिने कहा,—हे भगवन्! विवस्वान् सूर्यका स्वरूप क्या है? वे आदिदेव किस कारणसे कश्यपके पुत्र हुए? उनकी कश्यप और देवी अदितिने किस प्रकार आराधना की? आराधित होनेपर वे भास्करदेव क्या बोले? जिन्होंने जन्म ग्रहण किया है, उन दिवाकर भगवान्का प्रभाव क्या है? यह सब आपने जैसा कुछ पहिले कहा हो, हे मुनिसत्तम! वह मैं विस्तृतरूपसे सुनना चाहता हूं। मार्कण्डेय बोले—विस्पष्टा परमा विद्या, ज्योति, शास्वती, प्रकाशिता, दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित्, बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह सब सूर्यमूर्तिका स्वरूप है। हे महाभाग! तुमने पूछा है कि, सूर्यका आविर्भाव कैसे हुआ? इसका उत्तर विस्तारपूर्वक देता हूँ, सुनो। सृष्टिके आदिकालमें जब कहीं कुछ नहीं था, तब यह सब जगत् निष्प्रभ, प्रकाशरहित और सब प्रकारसे

अन्धकारमय था। इस समय परमकारण और क्षयरहित एक बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ ॥ ११—२१ ॥ उसके मध्यमें स्थित भगवान् प्रपितामह पद्मयोनि, जो जगत्के स्रष्टा हैं, उन प्रभु ब्रह्माने स्वयं उस अण्डका भेदन किया। हे महामुने! ब्रह्माके मुखसे तब "ॐ" यह महाशब्द निकला। उसी ॐकारसे प्रथम "भूः," फिर "भुवः" और अनन्तर "स्वः" उत्पन्न हुआ। ये तीन व्याहृतियां ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है। इस ॐ स्वरूपसे ही रविका परम सूक्ष्म स्वरूप हुआ है। उसके पश्चात् उसका स्थूल-रूप "महः", फिर उससे भी स्थूलरूप "जनः", फिर उससे भी स्थूलरूप "तपः" और

टीकाः—भगवत् ज्योतिरूप भगवान् सूर्यदेवके तीन रूप हैं। वह ज्योति षोडश कलाओंसे पूर्ण है। उन्हीं षोडश कलाओंका वर्णन ऊपर उनके अध्यात्मरूपके वर्णनमें आया है। उन सोलह नामोंके पढ़नेसे भगवान् सूर्यदेवका यह अध्यात्मरूप है, इसका पता लगता है। वेद और पुराण-शास्त्र आदिकी इसीप्रकार अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत विभिन्न विभिन्न वर्णनशैलीका रहस्य न समझनेसे साधारण पाठकगण प्रायः विमोहित हुआ करते हैं। इस कारण पूर्ववर्णित विज्ञानोंपर ध्यान रखकर वेद और शास्त्रोंका अनुशीलन करनेपर अनुकूल और प्रतिकूल किसी व्यक्तिको भी विमोहित होनेका अवसर नहीं रहेगा। सूर्यदेवके अधिदैवरूपके प्रकार तो शास्त्रोंमें बहुधा आते ही हैं और उनका अधिभूतरूप तो प्रत्यक्ष ही है। जो स्थूलदृष्टिसे इन्द्रियगम्य होनेपर भी अनेक शक्तियों और विभिन्न अधिकारोंकी क्रियाओंसे अनुभव करने योग्य है। जिसको दार्शनिकगण अन्य प्रकारसे और पदार्थविद्यासेवी अन्य प्रकारसे देखते हैं। ऊपरके सृष्टिप्रकरणमें जो अण्डा उत्पन्न होनेका वर्णन है, वह प्रथम प्राकृतिक सृष्टि समझनी चाहिये। अर्थात् एक महाप्रलयके अनन्तर जब पुनः उस ब्रह्माण्डकी सृष्टि होती है, तो पहिले जगज्जननी महामाया ब्रह्मप्रकृतिकी कृपासे बिखरेहुए परमाणुपुञ्ज एकत्र होकर वह प्रथम अण्ड बनता है। वही अण्ड ब्रह्माण्डगोलक है। इसी दशाको पदार्थविद्यासेवी बुधगण जीवसृष्टिके अनुपयुक्त पृथ्वी आदि वासस्थानकी आदि-अवस्था कहकर वर्णन करते हैं। शास्त्रोंमें जो ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और जगदम्बाके कालका वर्णन किया है, वह जगदम्बाका काल इसी प्राकृतिक सृष्टिके कालका द्योतक है। * यह अवस्था जीवोत्पत्ति अवस्थाकी पूर्व अवस्था है। इसी अवस्थातक पहुंचकर पदार्थवाद-दर्शनसमूह परमाणुओंकी नित्यता मानते रहते हैं। इस अवस्थाके अनन्तर ब्रह्माजी उत्पन्न होकर जो सृष्टि करते हैं, वह ब्राह्मीसृष्टि कहाती है। उसके अनन्तर तीसरी अवस्थामें जो प्रजापतिरूपी देवता उत्पन्न होकर सृष्टि करते हैं, वह मानस अथवा दैवीसृष्टि कहाती है और चतुर्थ अवस्थामें स्त्री-पुरुषजनित जो सृष्टि होती है, वह मिथुनी याबैजी सृष्टि कहाती है। यही सृष्टिका अलौकिक और दुर्ज्ञेय रहस्य है। इस सृष्टिप्रकरणमें एकसे बहुरूप होनेका जो क्रम है, उसी क्रममें त्रिगुणमयी ब्रह्मप्रकृति अपनी साम्यावस्थासे वैषम्यावस्थाको प्राप्त होती है। तब तीनों गुण एकसाथ हिलते हैं। जहां हिलना है, वहां कम्पन है और जहां कम्पन है, वहां शब्द होता है। यही प्रकृतिकी प्रथम हिल्लोल ॐकार है। अतः सूर्यदेवके साथ भी उसका सम्बन्ध है। उसका सम्बन्ध सब सृष्टियोंकी आदि अवस्थाके साथ होनेपर भी ज्योति और रूपके साथ जितना

* इसका प्रमाण इस ग्रंथमें सप्तशतीगीताकी प्रस्तावनामें उद्धृत किया जा चुका है।

फिर उससे भी स्थूलरूप "सत्य" उद्भूत हुआ। सूर्यका यह समस्त रूप मूर्त अर्थात् स्थूल है। ॐकारसे विवस्वान् सूर्यदेवके स्थूल-सूक्ष्म भेदसे सात रूप प्रकट हुए हैं। भगवान् भास्करके ये सब रूप कभी प्रकट होते हैं और कभी छिपे रहते हैं; क्योंकि स्वभाव और भाव दोनोंके भावमें परिणत होनेके कारण उनके विषयमें सन्देह उत्पन्न हो जाता है। हे विप्र! विश्वके आदि और अन्तमें जो परम सूक्ष्म परमात्मा विद्यमान रहता है, मैंने जो ॐकार कहा, वह वही है। हे द्विज! वह परमब्रह्म ही मार्तण्डदेवका शरीर है ॥ २२—२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वंशानुकीर्तन नामक
एकसौ एकवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ दोवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! उस अण्डके फटनेपर उसमें स्थित अव्यक्तजन्मा ब्रह्माके पहिले मुखसे उढौलके फूलके समान तेजोमयी रजोरूपधारिणी ऋचाएं (ऋक्)

सम्बन्ध है, वही सूर्यदेवका सम्बन्ध है और उसीके ज्योतिःसम्बन्धी सप्तभेद सात रङ्ग हैं और वेही सूर्यदेवके सात घोड़े हैं। अब यह शंका हो सकती है कि, सप्त ऊर्ध्वलोकोंमें भूसे लेकर सप्त-उत्तरोत्तर लोक स्थूल क्यों बताये हैं ? क्योंकि भूलोक ही देखनेमें सबसे स्थूल है। इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, जहाँ आधिभौतिक स्थूलता होगी, वहां आध्यात्मिक सूक्ष्मता होगी। जैसे कि, स्थूलकाय शारीरिक बलसम्पन्न जड़ मनुष्यकी बुद्धि स्थूल होती है। उसी प्रकार जहां आधिभौतिक सूक्ष्मता होगी, वहां आध्यात्मिक स्थूलता होती है। जैसा कि, भूलोकमें आध्यात्मिक सूक्ष्मता है और सप्तम उर्ध्वलोक सत्यलोकमें सबसे अधिक आध्यात्मिक स्थूलता है यही। कारण है कि, ऊपरके इस वर्णनमें भूसे भुवर्लोक और इसी तरह सत्यलोक तक एकसे दूसरेकी अधिक स्थूलता बतायी गयी है। स्वभाव अध्यात्म है। जैसे कि, गीतामें कहा है:—"स्वभावोऽध्यात्म उच्यते।" उस अवस्थामें प्रकृति विकृति नहीं बनती। उसी दशाकी प्रकृति विद्या नामधारिणी होती है। वही ब्रह्मदर्शन कराती है। उसी अवस्थाका नाम है, 'स्वस्वरूपावस्था।' तदनन्तर प्रथम अध्यात्म-अधिदैव-अधिभूतभाव और तदनन्तर नाना भाव प्रकट होते हैं। यह सब द्वैतावस्था है। जब द्वैतावस्था होती है, तब चित् और जड़, सत् और असत् आदिके भेद उत्पन्न होकर द्वैत प्रपञ्चमें अन्तःकरण फँस जाता है। तब सूर्यदेवका प्रकाश अन्तःकरणसे रहित हो जाता है। अविद्या देवी सूर्यदेवको छिपाती है। विद्यादेवी उस तेजको—अन्तःकरणको—जगाती है। इस तेजके जागृत करनेके लिये ही गायत्री मन्त्रका जप और गायत्रीकी उपासना की जाती है। यही गायत्रीजपका रहस्य है। ब्रह्मप्रकृति महामायाका विद्यारूप ही वेदजननी गायत्री देवी है और सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी आधिभौतिक प्रतिकृति ही सूर्यदेव हैं। वे ही ब्रह्मरूप हैं ॥ १-२७ ॥

उसी समय आविर्भूत हुईं, जो एक दूसरीसे भिन्न होने परभी अन्तमें सब सुसङ्गत थीं। फिर दक्षिण मुखसे स्वर्णके समान कान्तिवाली एक दूसरीसे न मिलने जुलनेवाली सब याजुष ऋचाएँ अनिरुद्ध रूपसे बहिर्गत हुईं। अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्माके पश्चिम मुखसे सब साम प्रकट हुए। ये सभी साम छन्दोमय थे। तत्पश्चात् ब्रह्माके उत्तर मुखसे मारण-उच्चाटनादि आभिचारिक, शान्तिकारक घोर स्वरूप, भौंरों और काजलके समान कृष्णवर्ण प्रजाओंसे युक्त, सुख, सत्व और तमस्-बलको धारण किये हुए, सौम्य और असौम्य रूपी अशेष अथर्वोंका प्रादुर्भाव हुआ ॥ १—६ ॥ हे मुने! समस्त ऋक् रजोगुणान्वित, समस्त यजु सत्वगुणान्वित, समस्त साम तमोगुणान्वित और समस्त अथर्व सत्व-तमोगुणान्वित हैं। ये सभी अप्रतिम तेजके द्वारा प्रकाशमान होते हुए पहिले की तरह पृथक् पृथक् भावसे स्थित हो गये। तदनन्तर वह पहिला तेज, जो 'ओ' कहा जाता है, अपने स्वभावसे उत्पन्न हुए तेजको आवृत करके स्थिर हो गया। फिर हे महामुने! उस तेजने साममय और यजुर्मय तेजको भी आवृत कर लिया। इस प्रकार समस्त तेजोराशि उस ॐकार रूपी परम तेजका आश्रय करके एकत्वको प्राप्त हुई। हे ब्रह्मन्! फिर ऋगादि वेदत्रयमें शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक त्रिविध अथर्ववेद लीन हो गया। हे विप्रर्षे! तदनन्तर अन्धकारका नाश हो जानेसे यह सब विश्व उसी क्षण सुनिर्मल हो गया और उससे उसका ऊपरी, नीचेका और दोनों ओरका सब भाग प्रकाशित हो गया ॥ ॥ ७—१२ ॥ हे ब्रह्मन्! उसके उपरान्त वह वैदिक उत्तम और श्रेष्ठ तेज गोलाकार होकर ॐकारमें मिल गया। इस प्रकार यह तेज सबके आदिमें उद्भूत होनेके कारण इसे आदित्य संज्ञा प्राप्त हुई। हे महाभाग! यही इस विश्वका अव्ययात्मक कारण है। ऋक्, यजु और साम नामकी यह त्रयी प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और सायंकालमें ताप (उष्णता) प्रदान किया करती है। हे मुनिश्रेष्ठ! इन तीनोंमें प्रातःकालमें ऋक्, मध्याह्नमें यजुः और अपराह्नमें साम उष्णता दिया करते हैं। पूर्वाह्नमें ऋक् शान्तिसम्बन्धी, मध्याह्नमें यजुः पुष्टिसम्बन्धी और सायाह्नमें साममन्त्र आभिचारिक कर्मोंका सम्पादन किया करते हैं। मध्याह्न और सायाह्नमें ही आभिचारिक कर्म किये जाते हैं और केवल अपराह्नमें साम मन्त्रोंके द्वारा पितरोंका काय करना चाहिये। सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋक्मय, स्थितिकालमें विष्णु यजुर्मय और संहारकालमें रुद्र साममय हो जाते हैं। इसीसे अपराह्न

टीका:—वेदों और शास्त्रोंमें पुस्तकें पांच तरहकी कही गयी हैं, यथा—ब्रह्माण्ड, पिण्ड, नाद, बिन्दु और अक्षर। इनमेंसे अक्षरमयी पुस्तक क्षणभंगुर है। प्रत्येकके कालविभागमें उनका नाश होना सम्भव है और चार पुस्तकें दैवी हैं, इस कारण चिरस्थायी हैं। उन चारोंमेंसे पुनः नादमयी पुस्तककी महिमा सर्वोपरि है। नादमयी पुस्तक ही वेद है। चार प्रकारकी दैवी पुस्तकोंमेंसे और तीनों

अशुचि कहा जाता है ॥ १३—१८ ॥ और यही कारण है कि, पूर्वोक्त प्रकारसे वेदात्मा, वेदमें निवास करनेवाले और वेद विद्यामयभगवान् भास्वान् परमपुरुष रूपसे वर्णित हुए हैं । सृष्टि-स्थिति-प्रलयकारी यही शाश्वत आदित्यदेव सत्व, रज और तमोगुणका आश्रय कर ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामको धारण किये हुए हैं । सर्वदा देवताओंद्वारा

तो प्रेरणाद्वारा अन्तःकरणमें भावरूपसे प्रकट होती हैं । परन्तु नादमयी वाणी-वेदका-प्राकट्य वैसा नहीं होता । सृष्टिके आदिमें वेदके मन्त्र ज्योंके त्यों ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें सुनायी देते हैं । यही वेदका सर्वोपरि महत्व है । ऊपरके वर्णनसे भगवान् ब्रह्माके द्वारा सृष्टिकी आदि अवस्थामें वेदका प्राकट्य कहा गया है, उसका रहस्य यही है । प्रेत आदिसे सम्बन्ध रखनेवाला साधक अथवा देवताओंके उपासक व्यक्तिमात्र इसको अनुभव करते हैं कि, प्रेतकी भाषा अथवा देवताओंकी देववाणी केवल उसीको सुनायी देती है, जिसके साथ उक्त प्रेत या देवताका सम्बन्ध हुआ हो । यदि दस मनुष्य इकट्ठे रहें और किसी एकके शरीरसे प्रेतका सम्बन्ध हो, तो उन दसोंमेंसे केवल वही व्यक्ति प्रेतकी बात सुनेगा, जिससे सम्बन्ध हुआ है और वह सुनायी देना बाहरसे नहीं, भीतरसे होगा । इस कारण उसको और कोई नहीं सुनेगा । इसी कारण किसी उपासकमण्डलीमें जब दैववाणी सुनायी देती है, तो इसी प्रकारसे उसीको सुनायी देती है, जिसपर दैवी कृपा हुई हो और वह दैवी वाणी भी बाहरसे नहीं, भीतरसे सुनायी देती है । वेदके प्राकव्यके लिये यह उदाहरण यथेष्ट होगा । जिनकी थोड़ी भी अन्तर्दृष्टि है और जो थोड़ा भी दैवी जगत्से सम्बन्ध रखते हों, वे अवश्य इस रहस्यका अनुभव कर सकेंगे । सृष्टिके आदिकालमें जब केवल ब्रह्मांण्डगोलक बना, उस समय जैव सृष्टि नहीं थी । वही प्राकृतिक सृष्टि कहाती है । तदनन्तर अनन्त-कोटिब्रह्माण्डभाण्डोदरी ब्रह्मशक्ति महामाया उस ब्रह्माण्डकी ब्रह्मा, विष्णु, महेशरूपी मूर्ति की जननी बनी । भगवान् विष्णु योगनिद्रामें विमोहित और सुप्त रहे । भगवान् ब्रह्मा उनके नाभिकमलसे प्रकट होकर सृष्टिक्रियाके लिये जागृत हुए । भगवान् शिव उन दोनोंके शरीरोंमें व्याप्त रहे । उस समय भगवान् ब्रह्माजीने ज्ञानमय तप किया । अर्थात् बहिर्ज्ञानसे प्रत्याहार करके अन्तरमें एकतत्वसे युक्त हुए । तब भगवान् ब्रह्माको पूर्वकल्पमें क्या था, इसकी स्मृति प्राप्त हुई । यही अवस्था ' यथापूर्वमकल्पयत् ' श्रुतिसंप्रतिपाद्य है । जब भगवान् ब्रह्माजीके अन्तःकरणसे सृष्टिका प्रवाह बाहरकी ओर चला, तब साम्यावस्थाकी प्रकृति वैषम्यावस्थाको प्राप्त हुई । त्रिगुण हिला । तीनों गुण एक साथ हिले । जहां हिलना है, वहां शब्द है । वही तीनों गुणोंके बराबर हिलनेका शब्द प्रणव है । शब्द आकाश तत्त्वका गुण है । आकाश तत्त्व सब तत्त्वोंसे सूक्ष्म है, । इस कारण आदि सृष्टिमें सबसे पहिले शब्दका ही आगे प्रकट होना स्वाभाविक है । यही कारण है कि, सृष्टिमें सबसे पहिले शब्द प्रकट हुआ और वही एक अद्वितीय शब्द प्रकट हुआ है । वही प्रणव है और वही भगवान्का सच्चा और स्वाभाविक नाम है । नामके अनन्तर रूपका प्राकव्य होता है । यह भी स्वाभाविक है । क्योंकि जहां नाम है वहां रूपका होना भी स्वाभा-विक है । इस कारण ब्रह्मप्रकृतिसे जैसा प्रणवका सम्बन्ध है, ब्रह्मज्योतिका उसी प्रकार मार्तण्डसे सम्बन्ध है । सच्चिदानन्दमय ब्रह्मकी चिन्मयी सत्ताने ही घनीभूत होकर ज्योतिरूपको धारण किया है । उसी ज्योतिसे अन्तर प्रकाशित हुआ और बहिः भी प्रकाशित हुआ । वही अन्तर्जगत्में ज्ञानाधार और बहिर्जगत्में सूर्यमण्डल बन गया । यही प्रकृतिसे प्रणव और चित्सत्तासे आदित्य भगवान्की उत्पत्तिका रहस्य है । सृष्टिके आदिमें जब जैव सृष्टि प्रारम्भ हुई और ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेयरूपी त्रिपुटी बनी, तो उस

पूजे जानेवाले ये वेदमूर्ति (सूर्य) निराकार होते हुए भी अखिल प्राणियोंकी मूर्तियोंके रूपमें मूर्तिमान् हो रहे हैं। येही ज्योतिःस्वरूप आदिपुरुष भगवान् आदित्यदेव विश्वके आश्रयस्वरूप हैं और येही अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य प्रभु श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं॥ २०—२२॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मार्तण्ड-माहात्म्य नामक एक सौ दोवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तीनवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर आदित्यके तेजसे ऊपर, नीचे और सब ओर उत्तप्त हो जानेपर सृष्टिको उत्पन्न करनेकी इच्छा करनेवाले भगवान् पद्मयोनि पितामह विचार करने लगे कि, यदि मैं सृष्टि करना प्रारम्भ कर दूं, तो सृष्टि-स्थिति-संहारकारी महात्मा भास्करके तीव्र तेजसे वह सब नष्ट हो जायगी। उनके तेजसे समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क हो रहा है। इसके अतिरिक्त जलके बिना विश्वकी सृष्टि हो भी नहीं सकती। लोकपितामह ब्रह्मा इस प्रकार विचार करते हुए तन्मय होकर भगवान् रविकी स्तुति करने लगे। ब्रह्मा बोले,—जो समस्त विश्वके आत्मा स्वरूप हैं और जो इस विश्वके रूपमें ही विद्यमान रहते हैं; विश्व ही जिनकी मूर्ति है और इन्द्रियोंसे अगोचर जिनकी ज्योतिका योगिगण ध्यान करते हैं, उन भगवान् सूर्यदेवको मैं नमस्कार करता

समय सबसे पहिले भगवान् ब्रह्माको प्रणव सुनायी दिया। उसी प्रणवसे पुनः वेदोत्पत्ति हुई। वे ही वेद श्रुतियोंसे ऋषियोंके अन्तःकरणोंमें पहुंचे और उनके द्वारा सृष्टिमें प्रचारित हुए और उसी समय त्रिपुटीके प्राकव्यके साथ ही साथ ज्योतिका प्राकव्य हुआ। उस समयके विश्वज्योति ही आदित्यदेव हैं। ये ही आदित्यदेव प्रणवयुक्त गायत्रीमन्त्रके द्वारा गायत्रीदेवीके रूपमें गायत्रीउपासनामें उपस्थित होते हैं। गायत्रीउपासना प्रणवयुक्त इसी तेजोमयी ब्रह्मसत्ताकी उपासना है। गायत्रीउपासनासे अधिक और कोई ब्रह्मोपासनाकी प्रणाली हो ही नहीं सकती। यही आदिसृष्टिके शब्दरूपकी उत्पत्तिका अतिगूढ़ रहस्य है। यही सृष्टिकी आदि अवस्था है। इस अवस्थामें उपासकका अन्तःकरण पहुंचते ही ब्रह्मसान्निध्यको पहुंचता है, इसमें सन्देह ही क्या है? इसी पुराणमें आदित्य देवकी उत्पत्ति जो अदिति देवीसे कही गयी है, उसके विषयमें शङ्का हो सकती है। उसका सुगम समाधान यह है कि, यहांके आदित्य-प्राकव्यका वर्णन आदित्यका अध्यात्म रूप है और अदितिसे जो आदित्यकी उत्पत्ति कही गयी है, वह उनका अधिदैव रूप है और जो देवताविशेष हैं॥ १—२२॥

हूं । १-५ ॥ जिनकी शक्ति अचिन्त्य है और जो ऋग्वेदमय हैं, जो यजुर्वेदके आधार हैं, जो सामवेदकी उत्पत्तिके कारण हैं, स्थूलताके कारण जो त्रयीमय हैं, जो अर्द्धमात्रा-स्वरूप हैं, जो परब्रह्मस्वरूप और गुणातीत हैं, आदिमें जो सबके कारणस्वरूप हैं, जो परमपूज्य और परमवेद्य हैं, अग्निके रूपमें न होते हुए भी जो परमज्योति हैं, देवात्मा होनेके कारण जो स्थूलरूपी और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर आदिपुरुष हैं, उन भगवान् भास्करदेवको मैं नमस्कार करता हूं। हे देव! तुम्हारी शक्ति ही आद्याशक्ति है; जिसकी प्रेरणासे मैं प्रेरित होकर जल, पृथ्वी, पवन, अग्नि आदि देवताओंके मूलभूत प्रणवादिकी समस्त सृष्टि किया करता हूं। इसी तरह मैं अपने आप स्थिति अथवा प्रलयकी इच्छा नहीं करता; किन्तु तुम्हारी शक्तिकी प्रेरणासे ही किया करता हूं। हे भगवन्! तुम वह्निरूपी हो। तुम्हारे पृथ्वीका जल शोषण करलेनेपर मैं जगत्की सृष्टि और आद्यपाक सम्पन्न किया करता हूं। तुम सर्वव्यापक आकाशस्वरूप हो। तुम पञ्चभूतात्मक इस विश्वका रक्षण किया करते हो। हे विवस्वन्! परम आत्मज्ञानी-लोग अखिल यज्ञमय विष्णुके रूपमें यज्ञके द्वारा तुम्हारी पूजा किया करते हैं। अपनी मुक्तिकी इच्छा करनेवाले और अपने मनको वशमें रखनेवाले यतिगण सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान किया करते हैं। तुम देवतास्वरूप हो इसलिये मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। तुम यज्ञस्वरूप और योगिगणके चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो। मैं तुमको नमस्कार करता हूं। हे विभो! तुम अपने तेजको संवरण करो। मैं सृष्टि करनेकी इच्छा कर रहा हूं। तुम्हारा यह तेजःपुञ्ज सृष्टि करनेमें विघ्नस्वरूप हो रहा है। मार्कण्डेय बोले,—सृष्टिकर्ता ब्रह्माके द्वारा इस प्रकार स्तुत होनेपर भगवान् भास्वान्ने अपने परम तेजको बटोर लिया। उन्होंने अपना बहुत ही थोड़ा तेज प्रकाशित किया। इसके अनन्तर महाभाग पद्मयोनि ब्रह्माने पूर्वकल्पान्तरके अनुसार उस कल्पमें भी जगत्की सृष्टि की। हे महामुने! फिर ब्रह्माने पहिलेकी तरह देवता, असुर, नर, पशु, वृक्ष, लता तथा नरक आदिका सृजन किया ॥ ६—१५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका आदित्यस्तव नामक एकसौतीनवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—यहां जो जलकी सृष्टिका वर्णन है, वह चतुर्थतत्व जलतत्व नहीं है। वह कारणवारिरूपी जल है। सृष्टिके आदिमें पूर्वकल्पकी सृष्टिसे उत्पन्न समस्त कर्मबीजरूपी संस्कारराशि विद्यमान रहती है। सबसे पहिले अन्तःकरणरूपी आकाशमें कारणवारिरूपी ब्रह्माण्डका संस्कारपुञ्ज प्रकट होता है। उसी पुञ्जीभूत संस्कारपुंजरूपी बीजसे संसाररूपी वृक्ष प्रकट होता है। अतः यह जल कारणवारि है। ज्योतिके प्रभावसे अन्तःकरणका उस संयम क्रियासे वहांसे हट जानाही जलका सूखना है ॥ १—५ ॥

टीकाः—इस अध्यायमें जो सूर्य्य भगवान्की स्तुति है, उसका रहस्य भगवान् आदित्यदेवके अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूतरूपोंका अध्ययन करनेसे ही अच्छी तरह समझमें आजायगा। यह कई वार पहिले कहा गया है ॥ ६—१५ ॥

एक सौ चारवां अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—ब्रह्माने सृष्टिकी रचना कर पहिलेकी तरह वर्ण, आश्रम, समुद्र, पर्वत और द्वीपोंका विभाग किया। भगवान् कमलयोनि ब्रह्मदेवने देव, दैत्य और उरगोंके रूप तथा स्थान पहिलेकी तरह निर्दिष्ट कर दिये। मरीचि नामक जो विख्यात् ब्रह्माका पुत्र था, उसका पुत्र कश्यप काश्यप नामसे ही प्रसिद्ध हुआ। हे ब्रह्मन्! दक्षकी तेरह कन्याएं उसकी पत्नियां हुईं। उनके गर्भसे देव, दैत्य और उरग आदि अनेक सन्तति हुई। अदितिने त्रिभुवनेश्वर देवगणको उत्पन्न किया। दितिसे दैत्यगण, दनुसे महा विक्रमशाली उग्र मानव, विनतासे गरुड़ और अरुण, खगासे यक्ष और राक्षस, कद्रूसे नागगण और मुनिसे गन्धर्वोंकी उत्पत्ति हुई। हे द्विज! क्रोधासे कुल्यगण, रिष्टासे अप्सराएं और इरासे ऐरावतादि मातङ्ग (हाथी) गण जन्मे। ताम्रासे श्येणी आदि कन्याओंकी सृष्टि हुई। इन्हीं कन्याओंसे श्येन (बाज), भास और शुक आदि पक्षियोंका जन्म हुआ। इलासे वृक्षसमूह और प्रधासे फतिङ्गे हुए। हे मुने! अदितिके गर्भसे कश्यपको जो पुत्र-कन्याएं हुईं, उनके पुत्रों, दौहित्रों, पुत्रियों, दौहित्रियों आदिसे यह जगत् व्याप्त हो गया ॥ १—१० ॥ हे मुने! उन कश्यपका सन्तानमें देवगण प्रधान थे। उनके सात्विक, राजस और तामस इस प्रकार त्रिविध गण हुए। ब्रह्मज्ञोंमें श्रेष्ठ परमेष्ठी प्रजापति ब्रह्माने देवोंको त्रिभुवनेश्वर और यज्ञभोजी बनाया। परन्तु सौतेले दैत्य, दानव और राक्षसगण मिलकर शत्रुताचरण करते हुए देवोंको विघ्न करने लगे। इस कारण उनसे देवोंका एक सहस्र दिव्यवर्षोंतक लगातार दारुण युद्ध होता रहा। हे विप्र! इस संग्राममें देवता हार गये और बल-शाली दैत्य-दानव विजयी हुए। हे मुनिसत्तम! तब दैत्य-दानवों द्वारा त्रिभुवन हरा जाने और अपने पुत्रोंको वहांसे निकाले जाने तथा यज्ञभागसे वञ्चित किये जानेके कारण अदितिको बड़ाही दुःख हुआ। इस आपत्तिको मिटानेके विचारसे उसने भगवान् सूर्यनारायणकी आराधना करना आरम्भ किया। वह श्रेष्ठ नियमोंका पालन और अल्पाहार करती हुई एकाग्र होकर आकाशमें विराजमान तेजोराशिस्वरूप दिवाकरका स्तवन करने लगी। अदिति बोली,—हे शाश्वत! तुम सुन्दर सूक्ष्म सुवर्णके समान शरीरको धारण किये हो, तुम ज्योतिःस्वरूप हो,

---

टीकाः—सृष्टिके आदिसे वर्णाश्रमधर्मकी श्रृंखला बांधी गयी है। क्योंकि वर्णाश्रमश्रृंखला स्वाभाविक है। उसका फल आध्यात्मिक उन्नतिशील एक मनुष्यजातिका चिरजीवी होना है ॥ १—१० ॥

चमकने वाले ग्रह-नक्षत्रोंमें तुम प्रधान हो, सब ज्योतियोंके तुम आधार हो, तुम्हें नमस्कार है। हे वाणी, बुद्धि और इन्द्रियोंके नायक! जगत्का उपकार करनेके लिये पानीको सोखते समय तुम्हारी जो तीव्र मूर्ति हो जाती है, उसको नमस्कार है। तुम आठ मासतक चन्द्रमासे रस ग्रहण करनेके लिये जिस तीव्र मूर्तिको धारण करते हो, उसे नमस्कार है ॥ १०—२० ॥ हे भगवन्! वह समस्त गृहीत रस वर्षाके बहाने परित्याग करते समय तुम जो तृप्ति करनेवाले मेघोंकी मूर्ति धारण करते हो, तुम्हारी उस मेघमूर्तिको नमस्कार है। जलवर्षासे उत्पन्न हुई समस्त औषधियोंको पकानेके लिये तुम जिस मूर्तिको धारण करते हो, तुम्हारी उस भास्करमूर्तिको नमस्कार है। हे देव तरणे! हेमन्तकालमें शस्यपोषणके लिये हिमवर्षण आदिके द्वारा तुम जो शीतल रूप धारण करते हो, उसको नमस्कार है। हे रवे! वसन्त ऋतुमें तुम्हारा रूप न तो बहुत शीतल होता है और न अति तीव्र; किन्तु सौम्य हो जाता है; हे देव! उस रूपको नमस्कार है। तुम्हारा जो रूप अशेष देववृन्दों और पितृगणको परम प्रीतिकर तथा शस्यसमूहको परिपक्व करनेवाला होता है, उसको नमस्कार है। तुम्हारा जो अमृतमय स्वरूप वृक्ष-लताओंके जीवनका कारण है और अमृतमय जानकर ही देवगण और पितृगण जिसका पान किया करते हैं, तुम्हारे उस सोमरूपको नमस्कार है। अग्नि और सोम ये दो अर्क-रूप मिलकर तुम्हारा जो विश्वमय रूप हो जाता है, उस गुणात्माको नमस्कार है। हे विभावसो! ऋक्, यजु और साम, ये तीनों वेद मिलकर तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्वको उष्णता प्रदान करता है, उस रूपको नमस्कार है। वेदोंसे भी श्रेष्ठ तुम्हारा जो सूक्ष्म, अनन्त और विमल रूप है, जिसे ॐकार कहते हैं, तुम्हारे उस नित्य रूपको नमस्कार है ॥ २१—२६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! इस प्रकार देवी अदिति नियमपूर्वक दिन रात विवस्वान् सूर्यदेवकी स्तुति करती हुई आराधना करने लगी। आगे चलकर उसने आहार करना भी छोड़ दिया। हे द्विजोत्तम! बहुत दिनोंके उपरान्त भगवान् सूर्यदेव दाक्षायणी अदितिपर प्रसन्न हुए और उन्होंने उसे आकाशमें ही दर्शन दिया। फिर जिनकी तेजःपुञ्ज किरणमालाओंसे युक्त मूर्तिको आकाशके रन्ध्रसे देखना कठिन हो जाता है, उन दीप्तिशाली रविको पृथ्वीपर आते हुए अदितिने देखा। इस प्रकार उन्हें आते देखकर वह देवी बड़ी भयभीत हुई और बोली,—हे गोपते! तुम मुझपर प्रसन्न हो, तुम्हें

टीकाः—इस स्तुतिमें जो ग्रह नक्षत्रसम्बन्धी और ऋतु आदि सम्बन्धकी बातें हैं, वे सब सूर्य भगवान्के आधिभौतिक रूपसे सम्बन्ध रखती हैं। जिनको स्थूलदर्शी पदार्थविद्यासेवी पंडितगण समझ सकते हैं। उनका अधिदैवरूप उपासकगण और उनका अध्यात्मरूप दार्शनिक योगिगण समझ सकते हैं ॥ २१—२६ ॥

मैं देख नहीं सकती। पहिले निराहार होकर आकाशमें विराजमान और देखनेमें कठिन सूर्यको जिस प्रकार ताप प्रदान करते हुए देखा था, इस समय उसी प्रकार भूतलमें तेजो-राशि तुम्हारी मूर्ति देख रही हूं। हे दिवाकर! तुम मुझपर प्रसन्न हो और अपने प्रकृत रूपका दर्शन कराओ। हे विभो! तुम भक्तोंपर दया किया करते हो और मैं तुम्हारी भक्त हूं, इस लिये तुम मेरे पुत्रोंकी रक्षा करो। तुम धात्री रूपसे इस विश्वका सृजन करते हो, स्थिति कार्यमें प्रवृत्त होकर इसका पालन करते हो और प्रलय कालमें सब तत्व तुममें विलीन हो जाते हैं। अतः सब लोकोंमें तुम्हारे बिना अन्य गति नहीं है। तुमही ब्रह्मा, विष्णु और अजन्मा महादेव हो। तुम इन्द्र, कुबेर, यम, वरुण और वायुदेव हो। तुम सोम, अग्नि, आकाश, पर्वत, समुद्र और समस्त तेजस पदार्थोंके आत्मा हो। तुम्हारी स्तुति मैं किस प्रकार करूँ? हे यज्ञेश! अपने कर्मोंमें अनुरक्त ब्राह्मणगण प्रतिदिन विविध वैदिक छन्दोंके द्वारा स्तुति कर तुम्हारी पूजा किया करते हैं। जिनका चित्त वशमें है, वे योगिगण तुम्हारा ध्यान करते करते योगमूर्तिके द्वारा परम पदको प्राप्त करते हैं। तुम विश्वको उष्णता दिया करते हो और तुमही उसको परिपक्व, रक्षित, अपने किरणोंसे प्रकाशित और भस्मीभूत करते हो। फिर उसको जलगर्भमें अपने मयूखोंसे आह्लादित कर पुनः सृजते हो। देवगण और मनुष्य तुमको प्रणाम करते हैं और पापी स्थिर भावना करके भी तुम्हें पा नहीं सकते॥ ३०—३४॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दिवाकरस्तुति नामक एक सौ चारवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पाँचवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर प्रभु विभावसु अपने उस तेजोमण्डलमेंसे तपे हुए ताँबेके समान कान्तिको धारण कर आविर्भूत हुए। हे मुने! तब अदितिके प्रणाम करने पर भास्वान् सूर्यदेव उससे बोले,—तुम्हारी जो इच्छा हो, तदनुसार तुम मुझसे वर मांग लो। देवी अदितिने घुटने टेककर और सिर झुकाकर वरदानके लिये उपस्थित हुए विवस्वानसे कहा, हे देव! आप प्रसन्न हों। अति प्रवल होनेके कारण दैत्यों और दान-वोंने मेरे पुत्रोंके त्रिभुवनपर और यज्ञभागपर अधिकार कर लिया है। हे त्विषांपते! इस लिये तुम मुझपर प्रसन्न हो और अंशरूपसे उनके भ्राता होकर शत्रुओंका विनाश करो। हे प्रभो दिवाकर! जिससे मेरे पुत्र फिर यज्ञभाग पाने लगें और पुनः त्रैलोक्यके

अधिपति हों, हे रवे! मेरे प्रति प्रसन्न होकर उनपर ऐसी कृपा करो। हे विपन्नोंके भयको दूर करनेवाले देव! संसारमें तुम पालन करनेवाले कहाते हो॥ १-७॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे विप्र! फिर जलसमूहोंको हरण करनेवाले भगवान् भास्कर प्रसन्न-वदन होकर विनयावनता उस अदितिसे बोले,—हे अदिते! मैं सहस्रांशसे तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रोंके शत्रुओंका समूल विनाश करूंगा। तुम्हारे पुत्र अब शीघ्र ही सुखी होंगे। यह कहकर भगवान् भास्वान् वहीं अन्तर्हित हो गये और देवी अदिति भी इच्छित वरको प्राप्त कर तपस्यासे निवृत्त हुई। हे विप्र! फिर सूर्यदेवका सौषुम्न नामक सहस्रवाँ अंश देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुआ। तब अदिति सावधान होकर कृच्छ्र चान्द्रायणादि व्रतोंका अनुष्ठान करती हुई पवित्र भावसे उस दिव्य गर्भका पोषण करने लगी। उसका कठोर व्रताचरण देखकर एक दिन कश्यप कुछ क्रुद्ध होकर उससे बोले कि, तू प्रतिदिन ही उपोषण करके क्या गर्भस्थ अण्डको मार डालना चाहती है? अदितिने उत्तर दिया,—आप क्रोध क्यों करते हैं? जिस गर्भके विषयमें आप क्रुद्ध हो रहे हैं, उसे मैं मारूंगी नहीं; किन्तु वही विपक्षियोंके विनाशका कारण होगा। मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर देवमाता अदितिने पतिके वचनसे रुष्ट होकर तेजसे जाज्वल्यमान उस गर्भका परित्याग कर दिया। कश्यपने नवोदित सूर्यके समान प्रभाशाली उस गर्भको देखकर प्रणामपूर्वक आद्य ऋग्वेदके मन्त्रोंसे उसकी स्तुति करना प्रारम्भ किया। कश्यपके द्वारा स्तुत होनेपर भगवान् भास्कर अपने तेजसे दिङ्मण्डलको व्याप्त करते हुए कमलके दलके समान वर्णको धारण कर उस अण्डसे बाहर

टीकाः—सृष्टिप्रकरणका रहस्य सबसे अतिगहन है। दूसरी ओर वेद और पुराणोंमें सृष्टिका मिश्रित भेद एकाधारमें कहनेकी शैली है। इससे भी समझनेमें जटिलता होती है। ऐसा मिश्रित वर्णन करनेका कारण यह है कि, दुर्ज्ञेय सृष्टिप्रकरण उसीकी समझमें आसकता है, जिसका अन्तःकरण समाधिभूमिमें पहुंचा हो और समाधिस्थ अन्तःकरण ही इसका वर्गीकरण करनेमें समर्थ हो सकता है। सृष्टिके प्रथम तो चार भेद हैं। प्राकृतिकसृष्टि, जो ब्रह्माजीसे पूर्वकी सृष्टि है। दूसरी ब्राह्मीसृष्टि, जो भगवान् ब्रह्माके द्वारा होती है। तीसरी मानससृष्टि, जो प्रजापतियों द्वारा होती है और चौथी बैजीसृष्टि, जो स्त्री-पुरुषोंके मैथुनसे होती है। ये सृष्टि-प्रकरणके चार स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्तर हैं। दूसरी ओर जीवसृष्टि प्रकट होते समय दैवी और मानुषी दो प्रकारकी सृष्टिका गाथारूपसे वर्णन आया करता है। उस समय कौनसी दैवी है और कौनसी मानवी है, इसका पृथक् वर्णन नहीं होता। इससे भी समझनेमें भ्रम होता है। ऊपर जो कुछ सृष्टिप्रकरण आया है, वह सब दैवी सृष्टिप्रकरण है। इस सृष्टिप्रकरणका लौकिक मनुष्यसृष्टिसे सम्बन्ध नहीं है। कश्यप, अदिति आदिके नाम दैवीराज्यके व्यक्तियोंके नाम हैं। यह बार बार कहा गया है कि, यह स्थूल मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा है।

निकल आये ॥ ८-१७ ॥ अनन्तर जलसे भरे हुए मेघोंकी गर्जनाके समान गम्भीर अशरीरिणी आकाशवाणी कश्यपको सम्बोधन करके हुई कि, हे मुने ! तुमने अदितिसे इस गर्भस्थ अण्डको मार डालनेकी बात कही थी, इस कारण तुम्हारे इस पुत्रका नाम "मार्तण्ड" होगा। यह विभु जगत्में सूर्यका कार्य करेगा और यज्ञभागको हरण करनेवाले देवोंके शत्रु असुरोंका विनाश करेगा। यह आकाशवाणी सुनते ही देवता बड़े प्रसन्न होकर आकाशसे वहां उतर आये और दानवगण हतप्रभ हो गये। फिर सब देवोंको साथ लेकर शतक्रतु इन्द्रने दैत्योंको युद्धके लिये ललकारा और दानव भी हर्षित होकर युद्धके लिये आ डँटे। उस समय देवों और दानवोंका घोरतर युद्ध छिड़ गया और समस्त भुवन देवों और दानवोंके शस्त्रास्त्रोंकी दीप्तिसे अच्छी तरह जगमगाने लगे। उस युद्धमें बड़े बड़े असुरगण भगवान् मार्तण्डदेवके द्वारा देखे जानेके कारण उनके तेजसे भस्मीभूत हो गये। तब सब देवोंको बड़ा ही आह्लाद प्राप्त हुआ और वे सब तेजोंके आकरस्वरूप मार्तण्ड देव और अदितिका स्तवन करने लगे। देवोंने पहिलेकी तरह अपने सब अधिकार प्राप्त कर लिये और उन्हें यज्ञभाग मिलने लगा। भगवान् मार्तण्ड भी अपने अधिकारके अनुरूप सूर्य्यका कार्य करने लगे। कदम्बके पुष्पके समान नीचे, ऊपर, सबओर वे अपनी रश्मियोंके द्वारा दीप्तशाली होकर गोलाकार अग्निपिण्डके समान देख पड़ने लगे और उन्होंने बहुत न हिलने-डोलनेवाला शरीर धारण किया ॥ १८-२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मार्तण्डोत्पत्ति नामक
एकसौ पांचवां अध्याय समाप्त हुआ।

———

और शेष सब दैवीलोक हैं। ब्रह्माण्डमें दैवीलोक ही प्रधान है। दैवीलोकके आधारपर ही यह स्थूल मृत्युलोक स्थित है। दैवीलोकसे ही यह सञ्चालित और सुरक्षित रहता है। नित्य पितृगण स्थूलसृष्टि, देवतागण कर्मराज्य और ऋषिगण ज्ञानराज्यके रक्षक हैं। इस मृत्युलोकमें कर्मके विगाड़नेवाले और आसुरी प्रवृत्ति करानेवाले असुरगण हैं। यह तो मानवपिण्डका विषय है। दूसरी ओर जो सहजपिण्डरूपी उद्भिज्ज, स्वेदज और जरायुजोंकी श्रेणियाँ हैं, उन चारोंकी प्रत्येक अलग श्रेणीके अलग अलग रक्षक और चालक एक अलग अलग देवता हैं। इन्हीं सब शृङ्खलाओंको बांधनेके लिये जो सबसे प्रथम दैवीसृष्टि हुई थी, उसीका संक्षिप्त वर्णन इस अध्यायमें आया है। देवासुरसंग्राम जो मानवपिण्डमें सदा होता है और नैमित्तिकरूपसे समय समयपर देवलोकमें हुआ करता है, उसका विस्तृत वर्णन और विशेषतः एक कल्पका वर्णन सप्तशतीगीतामें पहिले आ ही चुका है ॥ १—१० ॥

एक सौ छठा अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—फिर प्रजापति विश्वकर्माने बड़ी नम्रतासे भगवान् विवस्वानको सम्मानके साथ अपनी संज्ञा नामकी कन्या प्रदान की। इसी संज्ञाके गर्भसे विवस्वानको वैवस्वत मनु नामक जो पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका विस्तारपूर्वक वृत्तान्त मैं पहिले कह चुका हूं। हे मुनिवर! गोपति सूर्यको फिर संज्ञाके गर्भसे बड़े भाग्यशाली दो पुत्र और यमुना नामकी एक कन्या, इस प्रकार तीन सन्तान हुए। सब सन्ततिमें श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु श्रेष्ठ थे। तदनन्तर यम और यमी नामक जुड़वा बच्चे उत्पन्न हुए थे। (ग्रन्थकार वेदव्यासने 'जुड़वा दो बालकोंको एक ही माना है।) उस समय विवस्वान् मार्तण्डदेवका तेज इतना बढ़ गया कि, उससे चराचर तीनों लोक उत्तप्त हो गये ॥ १-५ ॥ विवस्वानके उस गोलाकार रूपको देखकर और उनके तेजको सहन करनेमें असमर्थ होकर संज्ञा अपनी छायाकी ओर देखकर उससे कहने लगी कि, हे शुभे! तुम्हारा कल्याण हो। अब मैं मायके जाती हूं। तुम मेरी आज्ञाका पालन करती हुई निर्विकार चित्तसे यहाँ रहो। मेरे इन दोनों बालकों और वरवर्णिनी इस कन्याके साथ तुम स्नेहका व्यवहार करो और यह (मेरे चले जानेकी) बात भगवानसे कदापि न कहो। छायाने कहा,—हे देवि! जब तक भगवान् आपके केशोंको नहीं पकड़ेंगे और जब तक मुझे शाप नहीं देंगे, तब तक मैं इस बातको छिपाये रहूंगी; तुम जहाँ चाहो, जा सकती हो। छायाके इस प्रकार कहनेपर संज्ञा अपने पिताके घर चली गयी और वहीं कुछ दिनों तक रही। हे विप्र! इसके उपरान्त संज्ञासे उसके पिता विश्वकर्मा बार-बार ससुराल जानेका अनुरोध करने लगे। तब वह वडवा (घोड़ी) का रूप धारणकर उत्तर कुरुदेशमें चली गयी और हे महामुने! वहीं वह साध्वी निराहार रहकर तपस्या करने लगी ॥ ६-१२ ॥ संज्ञाके मायके चले जानेके पश्चात् उसकी आज्ञाके अनुसार उसका रूप धारणकर छाया भास्करदेवकी सेवा-शुश्रुषा करने लगी। सूर्य भगवान्ने उसे अपनी पत्नी संज्ञा जानकर उसके गर्भसे भी दो पुत्र और एक कन्याको उत्पन्न किया। हे द्विजसत्तम! इन दोनों पुत्रोंमें जो श्रेष्ठ था, वह संज्ञाके पहिले पुत्र वैवस्वत मनुकी तरह सावर्णि

टीका:—यह सावर्णिक मनुकी जन्मकथा जो भगवान् सूर्यदेव और छायाके सम्बन्धसे कही गयी है, वह सावर्णिक मनुके परजन्मकी कथा है। यह देवलोककी कथा है और सप्तशती गीतामें जो कथा है, वह पूर्व जन्मकी कथा है और मृत्युलोककी है ॥ ६-१२ ॥

मनुके नामसे प्रसिद्ध हुआ और दूसरा शनैश्चर नामक ग्रह हो गया। कन्याका नाम तापती था; जिसका विवाह यथासमय संवरण नामक राजासे हुआ था। अब छाया जैसा अपने पुत्रों और कन्याओंके साथ स्नेहका व्यवहार करती, वैसा संज्ञाके वैवस्वत आदि सन्तानके साथ नहीं करती थी। छायाके इस प्रकारके पक्षपातपूर्ण व्यवहारको वैवस्वत चुप चाप सहते जाते थे; परन्तु यमसे वह सहा नहीं गया। इस दुर्व्यवहारसे वह बड़ा ही दुःखी हुआ। हे मुने! यमने क्रोध आ जानेसे, बाल्यभावसे अथवा भावी उत्कर्षके निमित्तसे छायाको बड़ी फिटकार सुनायी और उसपर लात उठायी। इससे छायाको बड़ा क्रोध हुआ और उसने यमको शाप दिया कि, जबकि, मैं तेरे पिताकी पत्नी और तेरी पूजनीया माता हूं और तैंने फिटकार सुनाकर मुझपर लात तानी है, तब अवश्य ही तेरा एक पैर टूट जायगा। धर्मात्मा यमको यह शाप सुनकर और भी अधिक दुःख हुआ। वह मनुको साथ लेकर पिताके पास गया और उसने यथावत् सब वृत्तान्त कह सुनाया। यमने कहा,—हे देव! माता हमपर अपने सब बच्चोंके समान प्रेम नहीं करती। यद्यपि हम उसके ज्येष्ठ पुत्र हैं, तथापि वह हमारी अवज्ञा करती और हमारे छोटे भाइयोंका अधिक दुलार करती है। इस कारण बाल्यचापल्यसे समझिये या अज्ञानसे, उसपर मैंने लात अवश्य उठायी, किन्तु चलायी नहीं। मेरे इस अपराधको आप क्षमा कर सकते हैं। तापदाताओंमें श्रेष्ठ हे पिताजी! पुत्रके दुराचरण करनेपर भी उसके साथ माता कदापि दुर्व्यवहार नहीं करती। मां कभी नहीं चाहेगी कि, अपने पुत्रका पैर टूट जाय। किन्तु जब मांने मुझपर क्रुद्ध होकर ऐसा शाप दिया है, तब मेरा अनुमान है कि, यह मेरी जननी नहीं है। हे भगवन्! माताके शापसे मेरा पैर टूट न जाय, अनुग्रहपूर्वक ऐसा उपाय सोचिये ॥ १३-२६ ॥ सूर्यने कहा,—हे पुत्र! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होते हुए जब क्रोधके वशीभूत हो गये, तब निःसन्देह तुम कहते हो, वैसा ही हुआ होगा। अन्यान्य सब शापोंकी शान्तिका उपाय हो सकता है, किन्तु माताके शापकी निवृत्तिका कोई उपाय ही नहीं है। अतः तुम्हारी माताके वचनको अन्यथा करनेमें मैं असमर्थ हूं। परन्तु पुत्रस्नेहके कारण कुछ अनुग्रह कर सकता हूं। अब कृमि तुम्हारे पैरके थोड़ेसे मांसको नोचकर पृथ्वीमें डाल देंगे। इससे तुम्हारी माताका वचन सत्य होगा और तुम्हारी रक्षा भी हो जायगी। मार्कण्डेयने कहा,—फिर आदित्यदेव छायासे कहने लगे कि, तुम्हारे सभी पुत्र समान स्नेहके पात्र

टीका—इस स्थल पर जो यमुना, यम, सावर्णि मनु, वैवस्वत मनु, शनैश्चर, तापती ये सब अधिदैव भावसे युक्त हैं। अर्थात् ये सब देव-देवियां हैं। यथाः—यमुना नदीका अधिदैव, शनैश्चर ग्रहका अधिदैव इत्यादि। इन सबका अध्यात्म और अधिभूत रूप और ही है ॥ १३-१५ ॥

होते हुए भी तुम एकसे प्यार करती हो और दूसरेसे नहीं, इसका क्या कारण है ? इससे तो यही जान पड़ता है कि, तुम इनकी मां संज्ञा नहीं, किन्तु कोई और ही संज्ञाके रूपमें मेरे साथ रहती हो। ऐसा न होता, तो पुत्रके दुर्व्यवहारसे कभी माता उसे शाप दे सकती है ? छायाने अबतककी सब बातें दिवाकरसे छिपा रक्खी थीं; किन्तु दिवसपति सूर्यने समाधिस्थ होकर सब वृत्तान्त जान लिया और वे छायाको शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। हे ब्रह्मन्! सूर्यके उस क्रुद्ध स्वरूपको देखकर छाया भयसे कांपने लगी और उसने आरम्भसे सब वृत्तान्त सूर्यदेवसे कह दिया। विवस्वान् सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधायमान होकर श्वसुरके घर पहुंचे। व्रतपरायण विश्वकर्माने उनको क्रुद्ध देखकर और उनके कोपानलसे सब कुछ दग्ध हो जायगा यह जानकर, उनकी यथाविधि अर्चना की और उन्हें समझा बुझाकर शान्त किया ॥२७-३५॥ विश्वकर्माने कहा,—संज्ञा आपके इस अतिरिक्त तेजसे भरेहुए दुःसह रूपको सह नहीं सकी, इसीसे बनमें जाकर तपस्या कर रही है। वह इसलिये तपस्या कर रही है कि, आपका रूप ऐसा हो जाय, जिससे वह सह सके। आज आप अरण्यमें जाकर उस परम तपस्विनी, शुभकार्यपरायणा अपनी भार्याको देखें। हे देव! मुझे ब्रह्माके वचनका स्मरण होता है। तदनुसार यदि आपकी अनुमति हो, तो हे दिवस्पते! मैं आपके इस रूपको बदलकर कान्त (सुन्दर) रूपमें परिवर्तित कर दूंगा। मार्कण्डेयने कहा,—तब भगवान् रविने त्वष्टा (विश्वकर्मा) को आज्ञा दी कि, ठीक है। पहिले जैसा मेरा मण्डलाकार रूप था, वैसा फिर बना दो। सूर्यकी यह आज्ञा पाते ही विश्वकर्मा उन्हें शाकद्वीपमें लेगया और वहाँ उनको भ्रमियन्त्र (सान) पर चढ़ाकर छील-छालकर गढ़ने लगा ॥ ३६-४० ॥ हे ब्रह्मन्! अखिलजगत्के नाभिस्वरूप आदित्यके सानपर घूमनेसे समुद्र-गिरि-वनोंसे वेष्टित महीतल आकाशमें उठ गया और हे महाभाग! चन्द्र-ग्रह-तारकादिसे भरा हुआ निखिल गगनमण्डल नीचेकी ओर फेंका जाकर उध्वस्त होने लगा। समुद्रोंका पानी छितरा गया, बड़े बड़े पर्वतोंके शिखर टूट फूटकर गिरने लगे और ध्रुवके आधारपर ठहरे हुए अशेष नक्षत्र ध्रुवके आधारकी डोरियां कट जानेसे पातालकी ओर बढ़ चले। चारों ओर महामेघोंके वेगसे घूमनेके कारण उत्पन्न हुए वायुसे आहत होकर घोर गर्जनाके साथ वे एक दूसरेपर टकरा टकराकर नष्ट होने लगे। हे मुनिसत्तम! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल तीनोंलोक सूर्यके भ्रमणसे भ्रमित होकर निरतिशय आकुल हो उठे। हे विप्र! इस प्रकार त्रैलोक्यके घूमनेसे देवर्षि और देवगण ब्रह्माको साथ लेकर सूर्यका स्तवन करने लगे। उन्होंने कहा,— तुम्हारे स्वरूपसे ही जाना गया है कि, सब देवोंमें तुम्हीं आदिदेव हो। सृष्टि,

स्थिति और प्रलयके कालभेदसे तुम त्रिधा भिन्न होकर अवस्थान करते हो। हे जगन्नाथ! हे ग्रीष्मवर्षाहिमाकर! तुम्हारा मङ्गल हो। हे देवदेव! हे दिवाकर! तुम तीनों लोकोंको शक्ति प्रदान करो। सूर्य बराबर घूम रहे हैं, यह देखकर वहाँ उपस्थित हुए इन्द्रने प्रार्थना की कि, हे देव! हे जगद्व्यापिन्! हे अशेष जगत्पते! तुम्हारी जय हो। फिर वसिष्ठ, अत्रि प्रभृति सप्तऋषियोंने स्वस्ति मन्त्रोंका उच्चारण कर विविध स्तोत्रोंसे उनकी स्तुति की। बालखिल्यगण गढ़े जाते हुए सूर्यको देखकर खिलखिला उठे और उन्होंने वेदोक्त आदि ऋचाओंसे उनका इस प्रकार स्तवन किया,—हे नाथ! तुम मुमुक्षुओंके मोक्ष, ध्यानियोंके एकमात्र ध्येय और कर्मकाण्डपरायण लोगोंकी अन्तिम गति हो। हे देवेश! हे जगन्नाथ! समस्त प्रजाओंका, हमारा और हमारे द्विपादों तथा चौपायोंका मङ्गल करो। फिर विद्याधर, यक्ष, राक्षस और पन्नगगण हाथ जोड़कर रविको प्रणाम करते हुए मन और श्रवणको सुख देनेवाला यह बचन बोले कि, हे भूतभावन! आपका तेज भूत (प्राणि) मात्रके लिये सहनीय हो ॥ ४१-५६ ॥ अनन्तर षड्ज, मध्यम और गन्धार इन तीनों ग्रामोंके विशारद हाहा, हूहू, नारद, तुम्बरु आदि संगीतविद्याको जाननेवालोंने मूर्छना और ताल आदिके उत्तम प्रयोगोंके साथ रविके सम्मुख सुखप्रद संगीत आरम्भ किया। विभावसु देव सानपर घूमते जाते थे। उन्हें प्रसन्न करनेके लिये विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका, रहजन्या, रम्भा प्रभृति प्रसिद्ध अप्सराएँ हाव-भाव-विलास आदिके साथ अनेक अभिनय करती हुई नाच रही थीं और वेणु (बाँसरी), वीणा, दर्दुर, पणव, पुष्कर, मृदङ्ग, पटह, आनक, देव-दुन्दुभि आदि सहस्रों बाजे साथ साथ बज रहे थे। उस समय गन्धर्वोंके गीतों, अप्सराओंके नृत्यों और तूर्यवादित्रोंके महाशब्दसे समस्त जगत् कोलाहलपूर्ण हो उठा। फिर देवोंने हाथ जोड़कर और भक्तिसे विनम्र होकर घूमते हुए सूर्यदेवको प्रणाम किया। देवता आदिके वहां उपस्थित होनेसे बड़ा कोलाहल हो रहा था

टीका:—पुराणोंमें समाधि भाषा, लौकिक भाषा और परकीय भाषा जिस प्रकार अलग-अलग साधारण बुद्धिसे भी समझमें आती है, वैसे भाषाके भावत्रय समझमें नहीं आते। क्योंकि अति निगूढ़ भावोंका एक तो साधारण तौरसे समझमें आना कठिन होता है और दूसरी ओर वेद और पुराण दोनोंकी यह शैली है कि, अध्यात्म, अधिभूत और अधिदैव भावत्रयका मिला जुला वर्णन प्रायः रहता है। इस कारण ऐसी शैलियां कभी असंबद्ध प्रतीत होती हैं और कभी समझनेमें नहीं आती हैं! जिनमें वैदिक दर्शनशास्त्रोंका परिपाक है अथवा जो समाधिस्थ हों, ऐसे तत्वज्ञानी विद्वान्‌गण ही ऐसी मिले जुले त्रिभावात्मक वर्णनशैलीका वर्गीकरण करनेमें समर्थ होते हैं। ऊपर जो वर्णनशैली थी, वह अधिदैवभावसे युक्त थी और यह अधिभूतभावसे युक्त है। ऊपरके वर्णनसे उपासकलोग और इस वर्णनसे वैज्ञानिक बुधजन लाभ उठा सकते हैं ॥ ४०-४५ ॥

और विश्वकर्मा धीरे धीरे सूर्यका तेज क्षीण कर रहा था। शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मके कारण स्वरूप तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिवके द्वारा संस्तुत भानुदेवके खरादे जानेकी यह कथा जो सुनेंगे, वे जीवनका अन्त होनेपर दिवाकरलोकको प्राप्त होंगे ॥ ५७–६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुतनुलिखन नामक
एक सौ छठां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सातवाँ अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—प्रजापति विश्वकर्मा सूर्यके शरीरको गढ़ता हुआ पुलकित होकर विवस्वानकी इस प्रकार स्तुति करने लगा,—हे प्रणतोंका हितसाधन करनेवाले और उनपर कृपा करनेवाले, वेगवान् सात घोड़ोंके रथपर आरूढ़ होनेवाले, कमल-कुलको विकसित करनेवाले, तमोराशिका विनाश करनेवाले, महान् तेजवाले, महात्मा विवस्वन्! तुम्हें नमस्कार करता हूं। अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक इच्छित फलोंके देनेवाले, धधकते हुए अग्निके समान मयूखशाली और सब लोकोंके हितकारी हे देव! तुम्हें नमस्कार है। स्वयं उत्पत्तिरहित होकर भी जो त्रैलोक्यकी उत्पत्तिके कारणस्वरूप हैं, जो भूतात्मा, रश्मिपति, साक्षात् धर्मस्वरूप, महाकारुणिकोंमें श्रेष्ठ और चाक्षुष विषयोंके आलयस्वरूप हैं, उन सूर्यदेवको नमस्कार है। ज्ञानियोंके जो अन्तरात्मास्वरूप हैं, जगत्के आधार हैं, जगत्के हितेच्छु हैं, स्वयम्भु हैं, समस्त लोकोंके चक्षुःस्वरूप हैं, सुरश्रेष्ठ हैं और अमिततेजा हैं, उन विवस्वान्को नमस्कार करता हूं। हे देव! तुम जगत्की हितकामनासे देवताओंके साथ क्षणकालपर्यन्त उदयाचलके शिरकी मालाके रूपमें उदित होकर अपने पहिले किरणसे ही सहस्रों शरीर धारण कर तमोराशिका विनाश करते हुए जगत्को प्रकाशित करते हो ॥ १–६ ॥ हे मिहिर! जागतिक तिमिररूपी मद्यका पान करनेसे उसके मदके कारण तुम्हारी लोहित मूर्ति हो गयी है और उस मूर्तिके किरण-निकरसे दीप्तिमान् होकर त्रिभुवन शोभा पा रहा है।

टीकाः—इसमें सूर्यभगवान्की सहस्रकलाओं का उल्लेख पहिले है। यह उनके अध्यात्म-रूपकी कला है। जिस अध्यात्मरूपका दिग्दर्शन पहिले किया गया है। अदितिके गर्भमें उसकी एक कला पहुंची। वह अधिदैवरूपसे संबद्ध है। तदनन्तर जो उसका षोडशांश अब कहा गया है, वह सूर्यगोलकस्थित अधिभूतरूपके साथ सम्बद्ध है। जिससे तीनों भूमियोंका तारतम्य लक्षित होता है और श्रीसूर्य्यभगवान्का यथार्थ रूप समझनेमें भी सहायता मिलती है ॥ १–६ ॥

हे भगवन्! तुम जगत्के हितके लिये निरन्तर समावयव, अतिमनोरम, ईषत् विकम्पित विस्तृत रथपर आरोहण कर अश्वोंकी सहायतासे विचरण करते हो। हे अरिनिषूदन! तुम सञ्जीवनी सुधाके द्वारा देवगण और पितृगणको एक साथ ही तृप्त कर देते हो। अतः जगत्के हितके लिये तुम्हें प्रणाम करता हुआ मैं तुम्हारा शरीर गढ़ रहा हूं और तुम्हारे तेजको घटा रहा हूं। हे प्रणतजनवत्सल! हे त्रिभुवनपावन भास्कर! मैं तुम्हारे तोतेके समान रङ्गवाले अश्वोंकी सृष्टि करनेके कारण विख्यात हुआ हूं और तुम्हारी चरणधूलिके प्रभावसे अपने गार्हस्थ्यको पवित्र कर रहा हूं। अतः मुझ प्रणत जनपर अनुग्रह कीजिये। समस्त जगत्के कारणस्वरूप, त्रिभुवन-पवित्रकारी, तेजःस्वरूप, समस्त जगत्के प्रदीपतुल्य, विश्वके उत्पन्नकरनेवाले हे रविदेव! तुम्हें नमस्कार है॥ ७-११॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सूर्यस्तवन नामक एकसौसातवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ आठवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—विश्वकर्माने इस प्रकार दिवस्पति सूर्यकी स्तुति करते और उनको गढ़ते हुए उनके तेजका केवल सोलहवाँ हिस्सा मण्डलमें रहने दिया, शेष सब छाँट दिया। मण्डलसे तेजके पंद्रह भाग निकल जानेसे सूर्यका शरीर बड़ा ही सुन्दर और कान्तिमान् हो गया। सूर्यमण्डलके तेजके पन्द्रह भाग, जो मण्डलसे पृथक् किये गये थे, उनसे शत्रुओंका विनाश करनेके लिये विश्वकर्माने विष्णुका चक्र, शिवका शूल, कुबेरकी पालकी, यमका दण्ड, कार्तिकेयकी शक्ति और अन्यान्य देवोंके अनेक प्रदीप्त अस्त्र बना डाले। मार्तण्डका तेज मर्यादित हो जानेसे उनकी शोभा बढ़ गयी और उनके सब अवयव सुडौल होगये। फिर उन्होंने समाधि लगाकर देखा कि, उनकी पत्नी घोड़ीका रूप धारण कर तप कर रही है और तप तथा नियमके प्रभावसे ऐसी तेजस्वी हो गयी है, जिसे जीवमात्र देखनेमें असमर्थ हो रहे हैं॥ १-६॥ उससे मिलनेके लिये भानुदेव घोड़ेका रूप धारण कर उत्तरकुरुदेशकी ओर चल पड़े। उनको दूरसे आते देख, घोड़ीका रूप धारण की हुई संज्ञाने पर-पुरुष जानकर सावधान हो, अपना पीछा बचाया और वह घोड़ीका रूप धारण किये हुए सूर्यके सामने आगई। दोनोंका आमने सामने मुंह होनेसे दोनोंकी नासिकाओंका संयोग हुआ; जिससे सूर्यकी नासिकासे निकला हुआ तेज संज्ञाकी नासिकामें प्रवेश कर उसके गर्भाशयमें स्थिर हो गया। उस गर्भसे दो पुत्र उत्पन्न हुए, जो अश्विनीकुमार कहाते

हैं और देवताओंके श्रेष्ठ वैद्य हैं। घोड़ेके मुखसे निकले हुए नासत्य और दस्र भी घोड़ेका रूप धारण किये हुए सूर्यके ही पुत्र हैं। वीर्यका जो शेष अंश बच रहा, उससे जिरह-बख्तर धारण किये, बाणोंसे भरा तरकस बाँधे, खड्ग-धनुधारी, अश्वारूढ़ रेवन्तकी उत्पत्ति हुई। फिर उनके अपना सुनिर्मल वास्तविक रूप धारण करनेपर उस शान्त रूपके दर्शनसे प्रसन्न होकर संज्ञाने भी अपना वास्तविक रूप धारण किया। तब जलको सोखनेवाले भास्कर-देव अपनी प्रेममयी पत्नीको घर ले आये। संज्ञाका ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनु मन्वन्तराधिप और दूसरा यम दण्ड तथा अनुग्रहके हेतु धर्मदृष्टिसम्पन्न हुआ ॥ ७-१४ ॥ यमको छायाने जो शाप दिया था, उससे वह बड़ा ही व्यथित और उसकी निवृत्तिके लिये सदा धर्माचरणमें प्रवृत्त रहता था; इसीसे 'धर्मराज' के नामसे प्रसिद्ध हुआ। पिताने भी उसे उःशाप दिया था कि, तेरे पैरका मांस कृमियों द्वारा नोचा जाकर जब पृथ्वीपर गिरेगा, तब मातृशापकी निवृत्ति हो जायगी। यमके धर्मदृष्टिसम्पन्न होनेसे वह शत्रु-मित्र सभीके साथ समान रूपसे व्यवहार करता था। इससे प्रसन्न होकर विवस्वान्‌ने उसे याम्य अधिकारपर नियुक्त किया। हे विप्र! भगवान् दिवाकरने उसे फिर लोकपालत्व और पितृगणका आधिपत्य प्रदान किया। महदाशय पिताने यमुनाको कलिन्ददेश-वाहिनी नदी और अश्विनीकुमारोंको देवताओंके वैद्य बना दिया। रेवन्त गुह्यकोंका अधिपति बना। उसे भूतभावन भगवान्‌ने आशीर्वाद दिया कि, हे वत्स! तुम सब लोकोंके पूज्य होगे। जो मनुष्य अरण्यमें, दावानलमें, शत्रु या चोरोंकी चंगुलमें फँस जाने-पर भयभीत होकर तुम्हारा स्मरण करेंगे, उनका तुम सब विपत्तियोंसे उद्धार करोगे और जो मनुष्य तुम्हारी पूजा करेंगे, उनसे प्रसन्न होकर तुम उन्हें मङ्गल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्त्ति और उन्नति प्रदान करोगे ॥ १५-२२ ॥ छायासे जो सावर्णि नामक पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह भविष्यत्‌में महायशा सावर्णिक नामक आठवाँ मनु होगा। इस समय वह मेरु पर्वतपर घोर तपस्या कर रहा है। उसका भाई शनैश्चर आदित्यकी आज्ञासे ग्रह बन गया है। हे द्विजोत्तम! आदित्यकी युवती कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ मानी गयी है। सूर्यदेवके ज्येष्ठ पुत्र वैवस्वत मनुकी सम्प्रति सृष्टि चल रही है। उसका जो वंशविस्तार हुआ, उसका वृत्तान्त आगे चल कर कहेंगे। इस सूर्यपुत्र देव-ताओंकी कथा और रविका माहात्म्य जो व्यक्ति सुनेंगे और पढ़ेंगे, वे उपस्थित विपदा-ओंसे मुक्त होकर महान् यशस्वी होंगे और आदिदेव महात्मा मार्तण्डका माहात्म्य सुननेसे दिन रातका किया हुआ सब पाप कट जायगा ॥ २३-२८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका सूर्य-सन्तति नामक एकसौआठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ नववां अध्याय ।

—:*:—

क्रौष्टकिने कहा,—हे भगवन्! आपने भानुदेवकी सन्ततिकी उत्पत्ति और आदिदेवके माहात्म्य तथा स्वरूपका विस्तारपूर्वक भलीभांति वर्णन किया सही, किन्तु हे मुनिसत्तम! भास्करदेवका सम्यक् माहात्म्य पुनः सुनना चाहता हूँ, आप प्रसन्न होकर वह सुनावें। मार्कण्डेयने कहा,—आदिदेव विवस्वानने पुराकालमें लोगोंके द्वारा आराधित होकर जो कुछ किया, वह सब माहात्म्यका विषय तुमसे कहता हूं। दमका विख्यात पुत्र राज्यवर्द्धन राजा होकर सब प्रकारसे पृथिवीका पालन करता था। उसके स्वधर्मानुसार राज्यशासन करते हुए समस्त राष्ट्र धन-जनके द्वारा प्रतिदिन वृद्धिको प्राप्त हो रहा था और उसके राजा होनेसे अन्यान्य राजन्यगण, समग्र पृथ्वी और पौरजन अतीव हृष्ट-पुष्ट थे ॥ १—६ ॥ उसके राजत्वकालमें किसी प्रकारके उपसर्ग, व्याधि, हिंसक जन्तु, अनावृष्टि या अतिवृष्टिसे भय नहीं था। वह बड़े-बड़े यज्ञकर याचकोंको दानके द्वारा सन्तुष्ट करता और अत्यन्त धर्मके अनुकूल विषयोंका उपभोग करता था। इस प्रकार राजकाज और प्रजापालन अच्छी तरहसे करते हुए उसने एक दिनकी तरह सात सहस्र वर्ष बिता दिये। विदूरथ नामक एक दाक्षिणात्य राजाकी मानिनी नामकी कन्यासे उसका विवाह हुआ था। एक दिन वह सुन्दर भौंहोंवाली मानिनी राजसेवकोंकी उपस्थितिमें राजाके सिरमें तेल मल रही थी। इसी अवसरपर उसकी आंखोंमें आंसू भर आये और वे धीरे धीरे राजाके शरीरपर ढुलक पड़े। अश्रुबिन्दुओंके शरीरपर गिरनेसे राज्यवर्द्धनने उसकी ओर देखा और पूछा कि, रोनेका कारण क्या है? परन्तु मानिनी कुछ उत्तर न देकर रोती ही गयी। राजाने फिर आग्रहपूर्वक रोनेका कारण पूछा। तब उस मनस्विनीने 'कुछ नहीं' कहकर बात टाल दी। इससे राजाको सन्तोष नहीं हुआ और बार-बार पूछकर रोनेका कारण बतानेके लिये उसे वह विवश करने लगा। इसपर राजाके सिरका एक सफेद बाल बताकर उस सुमध्यमाने कहा,—हे भूपाल! मुझ मन्दभागिनीके शोकका यह कारण देखिये। यह देख सुनकर राजा हँसने लगा। राजसेवकों और पौरजनके सामने ही उससे राजाने हंसते हुए कहा,—हे विशालाक्षि! हे कल्याणि! इसके लिये रोदन करना वृथा है। सभी जीवोंका जन्म होनेपर उनका बढ़ना और परिणामको पहुँचना स्वाभाविक है। जीव इन विकारोंसे छुटकारा पा नहीं सकते। इसके लिये किसीको शोक नहीं करना चाहिये। हे वरानने! मैंने सब वेदोंका अध्ययन किया है, सहस्रों यज्ञ किये हैं, ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके दान दिये हैं, सन्तान उत्पन्न किये हैं, तुम जैसी मनुष्योंके लिये अति दुर्लभ

भोगार्ह वस्तुको पाकर उसका उपभोग किया है, भली भाँति पृथ्वीका पालन किया है, न्यायसे अनेक युद्ध कर उनमें विजय पायी है, प्रिय मित्रोंके साथ हास-परिहास और वन-विहार किया है। भद्रे ! मैंने ऐसा कौनसा कार्य नहीं किया है, जिसके लिये मेरा पलित (पका हुआ) केश देखकर तुम्हें भय हुआ ? हे शुभे ! मेरे चाहे केश पक जायं, शरीरमें झुर्रियां पड़जायं, मैं कितनाही शिथिल क्यों न हो जाऊं, उससे मेरी कोई क्षति नहीं। क्योंकि हे मानिनि ! इस समय सब प्रकारसे मैं कृतकृत्य हो गया हूं। हे भद्रे ! मेरे सिरके जो तुमने श्वेत केश देखे हैं, उनकी चिकित्सा मैं वानप्रस्थ आश्रमको ग्रहणकर और वनमें जाकर करूँगा ॥ ७—२३ ॥ बाल्यावस्थामें खेल-खिलवाड़ और कौमार तथा युवा वस्थामें विद्याभ्यास, विषयभोगादि उन अवस्थाओंके योग्य कार्य सम्पादन कर वृद्धावस्थामें वनमें चले जानाही उचित है। हे भद्रे ! मेरे पूर्वज और उनके भी पूर्वज यही करते आये हैं। इस लिये तुम्हें रोनेका कोई प्रयोजन नहीं है। हे भद्रे ! तुम शोक न करो। मेरे केश पक चले हैं, यह मेरे अभ्युदयका चिह्न है। इसके लिये तुम रोदन मत करो। मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर समीपस्थ राजसेवकों और प्रजाओंने राजा राज्यवर्द्धनको प्रणाम कर कहा,—हे नराधिप ! आपकी पत्नीका रोना व्यर्थ है, यह बात सही है; किन्तु हमारे और सभी जीवोंके लिये रोदनका समय उपस्थित हो गया है। हे नाथ ! आप हमारे प्रतिपालक हैं। हे नृप ! आपने वानप्रस्थाश्रमकी जो बात कही, उससे हमारे प्राण व्याकुल हो उठे हैं ॥ २४—२६ ॥ यदि आप वनमें गमन करेंगे, तो हम लोग भी यहांसे आपके साथ चल देंगे। किन्तु हे नाथ ! आपके वनमें चले जानेपर निश्चय ही भूलोकमें श्रौत-स्मार्त कर्मोंकी बड़ी हानि होगी। अतः यदि आप धर्मोपघातका विचार करें, तो अपने इस सङ्कल्पका त्याग करदें। हे नराधिप ! आपने जो इस पृथ्वीका लगातार सात सहस्र वर्षोंतक शासन किया है, उससे कैसे महापुण्यका उद्भव हुआ है, उसे अवलोकन करें। हे महाराज ! आप वनमें जाकर जो तपस्या करेंगे, वह इस पृथ्वी-पालनके सोलहवें हिस्सेके भी बराबर नहीं है। राजाने कहा,—मैंने इस पृथ्वीका सात सहस्र वर्ष राज्य किया है। अब मेरे वनगमनका समय उपस्थित हुआ है। मेरे पुत्र-पौत्र भी हैं। उनकी वंशपरम्परा मैं देखता बैठूं, यह यमराज कदापि सहन नहीं करेंगे। हे नागरिको ! मेरे मस्तकका जो पका हुआ केश तुमने देखा है, इसीको अनार्य और उग्रकर्मा लोग मृत्युका दूत समझेंगे। अतः मैं पुत्रको राज्याभिषेक कर समस्त भोगोंसे चित्तको हटाकर वनवासी होकर जबतक यमराजकी सेना उपस्थित न हो, तबतक

टीका:—पुराणशास्त्रमें त्रिविध भाषाओं और त्रिविध भावोंके वर्णनके साथही साथ कल्पकल्पान्तरका दैवीलोकोंका इतिहास और मृत्युलोकका इतिहास भी मिला जुला वर्णित होता है। इसको पुराणपाठकोंको

तपाचरण करता रहूंगा ॥ ३०—३७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—फिर राजाने वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करनेका निश्चय कर पुत्रको राज्याभिषेक करनेका शुभ मुहूर्त बतानेके लिये ज्योतिषियोंको बुलाया। यद्यपि सभी दैवज्ञ अच्छे शास्त्रज्ञ थे, तथापि राजाके वनगमनका निश्चय सुनकर व्याकुल हो उठे और दिन, लग्न, होरा आदि स्थिर करनेमें असमर्थ हो गये। उन्होंने रुँधे हुए कण्ठसे राजासे कहा,—हे नृप! आपका निश्चय सुनकर हमारी बुद्धि चकरा गयी है। मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने!- तब अन्यान्य नगरों, अधीनस्थ राष्ट्रों और उस राजधानीके अनेक वृद्ध ब्राह्मण वहां उपस्थित हुए और सिर हिलाकर कहने लगे,—हे राजन्! आप प्रसन्न हों और कृपा करके पहलेकी तरह हमारा प्रतिपालन करते रहें। हे भूपाल! आपके वनमें चले जानेसे सभी लोग बड़े दुःखित हो जांयगे। अतः हे राजन्! जिससे समस्त जगत् व्यथित न हो, ऐसा आचरण आप कीजिये। अब हम थोड़ेही दिन जीयेंगे। हमारे जीते जी आपसे शून्य सिंहासनको हम देखना नहीं चाहते ॥ ३८—४४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार उन तथा अन्यान्य ब्राह्मणों, प्रजाओं, भूपालों, अमात्यों, भृत्यों आदिके पुनः पुनः अनुरोध करनेपर भी राजाने वनवासका विचार नहीं बदला और केवल इतना ही कहा कि, कुछ भी हो, यमराज कदापि मुझे क्षमा नहीं करेंगे। तब सब विद्वान् ब्राह्मण, अनुभवी प्रजागण, अमात्य और राजसेवक एकत्र होकर परामर्श करने लगे कि, अब क्या करना चाहिये? हे विप्र! धार्मिकप्रवर उस राजापर प्रेम करनेवाले उन सब ब्राह्मण आदि लोगोंने अन्तमें निश्चय किया कि, हम लोग अच्छी तरह ध्याननिमग्न होकर तपस्याके द्वारा भगवान् भास्करकी आराधना करें और उन्हें प्रसन्न कर महीपतिकी दीर्घायुके लिये प्रार्थना करें। उन सबने इस प्रकार निश्चय कर किसीने तो घरमें ही अर्घ-उपचार आदिके द्वारा भास्करकी पूजा करना आरम्भ किया और कोई मौन होकर ऋग्वेदके मन्त्रों, कोई यजुर्वेदके मन्त्रों और कोई सामवेदके मन्त्रोंका जप करते हुए रविको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करने लगे। कितने ह लोगोंने नदीके पुलिनमें निराहार रहकर तपाचरण करते हुए बड़े परिश्रमसे भास्करकी आराधना करनी प्रारम्भ की ॥ ४५–५२ ॥ कुछ जो अग्निहोत्री थे, उन्होंने दिनरात रविसूक्तका जप करना आरम्भ किया और कोई सूर्यकी ओर अखण्ड दृष्टि लगाकर खड़े ही रह गये। इस प्रकार वे सब सुप्रसिद्ध शास्त्रीय विधिके अनुसार नाना रूपसे सूर्याराधना करने लगे। उनकी सूर्याराधनाका यह अतिशय प्रयत्न देखकर सुदामा नामक

अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये। भगवान् सूर्यदेवकी सन्ततिका वर्णन दैवीलोकसे सम्बन्ध रखता है और इस अध्यायके महाराजा राज्यबर्धनका इतिहास मृत्युलोकका है, ऐसा समझना उचित है। ॥ ३०—३७ ॥

एक गन्धर्व वहाँ उपस्थित हुआ और बोला,—हे द्विजगण! यदि आपको भास्करकी आराधना ही करनी है, तो वह ऐसी कीजिये, जिससे वे प्रसन्न हों। कामरूप महापर्वत-पर सिद्धवृन्दसे घिरा हुआ जो गुरुविशाल नामक अरण्य है, वहाँ शीघ्र जाकर सावधान होकर आप लोग भानुदेवकी आराधना करें। इससे आपका अभीष्ट सिद्ध होगा; क्योंकि इस कार्यके लिये वही सिद्धक्षेत्र अधिक फलदायक है। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विज! गन्धर्वका यह वचन सुनकर वे ब्राह्मण उस अरण्यमें गये और वहाँ उन्होंने सूर्यदेवका एक पवित्र मन्दिर देखा। ब्राह्मणों और अन्य सब वर्णके लोगोंने मन्दिरमें जाकर निर-लस और नियताहार होकर धूप, पुष्प आदिसे भास्करकी पूजा की। हे ब्रह्मन्! अनुले-पन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम, नैवेद्य आदिके द्वारा संयतचित्तसे सूर्यदेवकी पूजा करते हुए सब वर्णके लोग सूर्यदेवकी स्तुति करने लगे ॥ ५३-६१ ॥ ब्राह्मणोंने कहा,—देव, दानव, यक्ष और चमकनेवाले ग्रहोंमें अधिक तेजस्वी सूर्यदेवके हम शरणापन्न हुए हैं। जो देवेश्वर अन्तरिक्षमें अवस्थित होकर सब दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, जो किरणोंके द्वारा वसुधा और अन्तरिक्षको व्याप्त किये हुए हैं, जो चारों युगोंके अन्तकालमें दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं, जो प्रलयके अनन्तर भी स्थित रहते हैं, जो भास्कर, सविता, दिवाकर, पूषा, अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्तदीधिति, योगीश्वर आदि नामोंसे अभिहित होते हैं, जो ऋषियोंके अग्निहोत्रके समयमें यज्ञदेवके अधिष्ठाता हैं, जो अक्षर, परमगुह्य, अत्युत्तम मोक्षद्वार और ब्रह्मस्वरूप हैं, जो तुरन्त जोड़े हुए छन्दोरूपी अश्वोंके द्वारा गगनमें सञ्चार करते हैं, जो उदयास्त और सुमेरुकी प्रदक्षिणा करनेमें सदा नियुक्त रहते हैं, जो रक्त, पीत और सितासित वर्णके हैं और मिथ्या, सत्य, पुण्यतीर्थ तथा पृथग्विध विश्वस्थितिस्वरूप हैं, उन अदितिगर्भ-सम्भूत, अनन्त, अचिन्त्य, आदिदेव प्रभाकरका हम आश्रय करते हैं ॥ ६२-६८ ॥ जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव, प्रजापति, वायु, आकाश, सलिल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र, ग्रह-नक्षत्र-चन्द्र आदि, वनस्पति, वृक्ष और ओषधिस्वरूप हैं, जो व्यक्ताव्यक्त भूतवर्गके धर्माधर्म-प्रवर्तक हैं और जिन्होंने ब्राह्मी, वैष्णवी, और माहेश्वरीके रूपमें त्रिधा विभिन्नरूप धारण किये हैं, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों। जिनका अद्वितीय तेजस्वी प्रभामण्डल देखा नहीं जा सकता, ऐसे जो दिवाकर और सौम्यरूप सुधाकर भी हैं, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों। जिनके इन दोनों सुप्रसिद्ध रूपोंके द्वारा अग्निसोममय यह विश्व विनिर्मित हुआ

टीका:—भगवान् भास्करदेवका अध्यात्म, अधिदैव, अधिभूत इन तीनों रूपोंका पृथक् पृथक् वर्णन पहिले आचुका है। उन्हीं तीनों रूपोंको ध्यानमें रखकर इस सूर्यस्तुतिका मनन करनेसे इसका रहस्य ठीक समझमें आवेगा। क्योंकि इस स्तुतिमें त्रिविध रूपोंका ही लक्ष्य कराया गया है ॥ ६५-७३ ॥

है, वे भास्करदेव हमपर प्रसन्न हों ॥ ६९-७४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विजोत्तम! इस प्रकार उन्होंने अत्यन्त भक्तिके साथ तीन मासतक स्तोत्रपाठ कर भगवान् भास्करको सन्तुष्ट कर लिया। भास्करदेव स्वयं दुर्निरीक्ष्य होते हुए भी अपने दिव्यमण्डलसे निकलकर और उदयकालीन मण्डल-प्रभासे युक्त होकर उन आराधकोंके दृग्गोचर हुए। उनके स्पष्ट दर्शनसे सब लोगोंने पुलकित और भक्तिसे विनम्र होकर, उन अनादि सविताको यह कहकर प्रणाम किया कि,—हे सहस्ररश्मे! तुम्हें नमस्कार है। तुम समस्त भूतोंके कारण और निखिल जगत्‌के हेतुस्वरूप हो। हे अखिलयज्ञेश्वर! तुम पूज्य हो, निखिल यज्ञोंके आधार हो और योगियोंके ध्यानके विषय हो। तुम हमपर प्रसन्न हो ॥ ७५-७८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुस्तव नामक
एक सौ नववाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ दशवां अध्याय।

—०:❀:०—

मार्कण्डेय बोले,—तदनन्तर भगवान् भानु प्रसन्न होकर उन आराधकोंसे कहने लगे,—हे द्विजादि वर्णोंके आराधको! तुम लोग मुझसे जो कुछ पानेकी अपेक्षा रखते हो, उसको माँग लो। अशीतांशु जगदीश्वर वर देनेके लिये प्रस्तुत रविदेवको उन द्विजादि वर्णोंके लोगोंने आगे खड़े देखा; तब हे विप्र! आश्चर्यसे चकित हो, सबने उन्हें प्रणाम किया और कहा,—हे तिमिरनाशक भगवन्! यदि हमारी भक्तिसे आप प्रसन्न हुए हैं, तो हम लोगोंका राजा राज्यवर्द्धन नीरोग, विजितशत्रु, पूर्णकोष और स्थिरयौवन होकर दश सहस्र वर्षतक जीवित रहे। मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने! फिर तथास्तु कहकर भगवान् वहीं अन्तर्हित हो गये और सब प्रजाजन भी वरलाभसे संतुष्ट होकर राजाके पास चले आये। हे द्विज! सहस्रांशुकी आराधना और उनसे वरलाभकी जो कुछ घटना हुई थी, प्रजाओंने वह सब राजासे कह सुनायी ॥ १-६ ॥ हे द्विज! वह सब सुनकर नरेन्द्रपत्नी मानिनी बहुत ही प्रसन्न हुई। परन्तु राजाने इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं कहा और वह बहुत देरतक विचार करता रहा। फिर मानिनीने हृष्ट अन्तःकरणसे पतिसे कहा,—हे महीपाल! आप बढ़ी हुई आयुसे अब सब प्रकारकी वृद्धि प्राप्त करें। हे विप्र! आनन्दित मानिनीके द्वारा इस प्रकार सत्कृत होनेपर भी राजा चिन्तामें ही पड़ा रहा और उसने रानीको कुछ उत्तर नहीं दिया। तब फिर मानिनीने नीचे मुंह

किये हुए चिन्ताकुल राजासे इस प्रकार कहना आरम्भ किया,—हे नृप! ऐसे आनन्दके अवसरपर भी आपको आनन्द क्यों नहीं होता? आप नीरोग और स्थिरयौवन होकर आजसे दश सहस्र वर्ष जीयेंगे, क्या यह आनन्दका विषय नहीं है? हे पृथिवीपते! ऐसे आनन्दके अवसरपर आप चिन्ताकुल क्यों हो रहे हैं, इसका कारण कहिये ॥ ७-१२ ॥ राजाने कहा,—भद्रे! मेरा क्या अभ्युदय हुआ? तुम मेरा अभिनन्दन क्यों करती हो? सहस्रों दुःखोंकी प्राप्ति होनेपर मैं क्या आनन्दका उपभोग करूँगा? मैं अकेला दश सहस्र वर्ष तक जीऊँगा, किन्तु तुम नहीं जीयोगी। तब क्या तुम्हारे वियोगसे मुझे दुःख नहीं होगा? पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रिय बान्धवोंकी मृत्युको देखकर क्या मेरे दुःखकी कम सम्भावना है? हे भद्रे! अति भक्त मेरे भृत्यों और मित्रोंके मर जानेसे मुझे निरन्तर दुःखका ही अनुभव करना पड़ेगा। जिन्होंने मेरे लिये अपनी शिराओंको जलाकर तपस्या की, वह मर जायँगे और मैं जीवित रहकर सुखभोग करूँगा, क्या यह मेरे लिये धिःक्कारकी बात नहीं है? हे वरारोहे! मुझे जो दश सहस्र वर्षोंकी आयु मिली है, यह मेरे लिये आपत्ति है। इससे मेरा कुछ भी अभ्युदय नहीं हुआ है। इन सब बातोंका विचार न कर तुम मेरा सत्कार क्यों करती हो? ॥१३-१८॥ मानिनीने कहा,—हे महाराज! आपने जो कहा, वह दुःखकर है, इसमें सन्देह नहीं है। हम प्रजावर्ग हैं, हमारा आपपर प्रेम है, इसीसे हम यह सब दोष देख नहीं सके। हे नरनाथ! यदि ऐसा ही है, तो इस समय क्या करना चाहिये, इसका विचार कीजिये। भगवान् रविने प्रसन्न होकर जो कहा है, वह अन्यथा हो नहीं सकता। राजाने कहा,—पौरों और भृत्योंने प्रसन्न चित्तसे मेरा जो उपकार किया है, उससे निष्कृति पाये बिना मैं किस प्रकार भोगोंका अनुभव करूँगा? अतः मैं आजसे उसी पर्वतपर जाकर संयत-चित्तसे निराहार रहकर भानुदेवको प्रसन्न करनेके लिये तपस्या करूँगा। जिस प्रकार मैं उनके प्रसादसे स्थिरयौवन और निरामय होकर दश सहस्र वर्ष जीऊँगा, हे वरानने! उसी प्रकार मेरी समस्त प्रजा, भृत्य, तुम, कन्या, पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, सुहृद आदि जीवित रहें। यदि भगवान् भास्कर ऐसा अनुग्रह करें, तो मैं प्रसन्नचित्तसे इस राज्यमें राजा रहकर समस्त राजसुखोंका उपभोग करूँगा। यदि अर्कदेवने ऐसा अनुग्रह न किया, तो हे मानिनी! जब तक मेरे प्राण निकल न जायँ, तब तक उसी पर्वतपर रह कर निराहार हो, तपाचरण करूँगा ॥ १९-२६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाके वचन सुनकर मानिनीने तथास्तु कहा और वह भी पतिके साथ उसी पर्वतपर चली गयी। हे द्विज! सपत्नीक नरपतिने पूर्वोक्त पर्वतस्थित मन्दिरमें जाकर भास्करदेवकी आराधना करना आरम्भ किया। निराहार रहनेसे दिन दिन जैसा राजा कृश होने लगा, वैसी मानिनी

भी हो चली। शीत, वायु और धूपको सहनेका दोनोंको अभ्यास हो गया और दोनों उग्र तपस्यामें निरत हो गये। हे द्विजोत्तम! इस प्रकार भानुदेवकी आराधना और तपस्या करते हुए एक वर्षसे भी अधिक काल उन दोनोंने बिता दिया। अन्तमें भानुदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने दोनोंकी अभिलाषाके अनुसार समस्त भृत्य, पुत्र, पौत्र आदिके लिये दश सहस्र वर्षोंकी आयुका वर प्रदान किया। वरप्राप्त हो जानेके उपरान्त राजा रानीके साथ राजधानीमें लौट आया और प्रसन्नचित्तसे धर्मानुकूल प्रजापालन करता हुआ राज्यशासन करने लगा। उस धर्मात्माने अनेक यज्ञ किये, अहोरात्र सत्पात्रोंको दान किया और महिषी मानिनीके साथ नानाप्रकारके भोग-विलास किये। इसी तरह उसने पुत्र, पौत्र, भृत्य, पुरजन आदिके साथ स्थिरयौवन होकर प्रसन्नताके साथ दश सहस्र वर्ष बिता दिये। उस समय भृगुवंशमें उत्पन्न हुए प्रमति नामक ऋषिने राजाके इस चरित्रको देखकर विस्मयके साथ इस गाथाका गान किया,— सूर्योपासनामें क्या ही अपूर्व शक्ति है? जिसके प्रतापसे राजा राज्यवर्द्धनने अपनी तथा अपने आत्मीयोंकी आयु बढ़ा ली॥ २७-३६॥ हे विप्र! तुमने आदिदेव विवस्वान् आदित्यके माहात्म्यके विषयमें जो जिज्ञासा की, वह मैंने कह सुनाया है। भानुदेवके इस माहात्म्यको जो मनुष्य ब्राह्मणके द्वारा सुनेंगे अथवा स्वयं पढ़ेंगे, उनका सात दिनोंका किया हुआ पाप कट जायगा। जो व्यक्ति इस भानुमाहात्म्यको बुद्धिमें जमा लेगा, वह बुद्धिमानोंके बड़े कुलमें धनवान्, नीरोग और महाप्राज्ञ होकर जन्म ग्रहण

टीका:—मूर्त्तिपूजा और देवमन्दिरप्रतिष्ठा आदिका अधिदैवविज्ञान अति गम्भीर रहस्यसे पूर्ण है। इस कारण इस भगवान् सूर्यदेवके चरित्रपाठकी फलश्रुतिमें ऐसा माहात्म्य कहा गया है कि, जहां यह चरित्र पाठ होगा, भगवान् सूर्यदेव वहां निरन्तर वास करेंगे। मन्दिरका शुद्धाशुद्धि विवेक बहुतही गम्भीर अधिदैवविज्ञानसे पूर्ण है। सनातनधर्मी पत्थर, अन्यान्य प्रतिमा, यन्त्र, जल, अग्नि आदि जड़ पदार्थोंकी पूजा नहीं करते। वे सोलह प्रकारके दिव्यदेशोंमें अधिदैवपीठ स्थापन करके उसमें देवताकी पूजा किया करते हैं। यह मृत्युलोक एक ब्रह्माण्डके चौदहवें हिस्सेका एक चौथा हिस्सा माना गया है। बाकी सब दैवीलोक हैं। प्राणमयकोष ही अन्नमयरूपी स्थूल शरीरको छोड़कर मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषको साथ लेकर परलोकमें चला जाता है। इसलिये लोग कहते हैं कि, अमुकका "प्राण" निकल गया। अतः प्राणमयकोष ही स्थूल राज्य और सूक्ष्म दैवीराज्यको मिलानेवाला है और परस्परको अलग करनेवाला भी है। उसी प्राणमयकोषकी सहायतासे और सर्वव्यापक महाप्राणकी सहयोगितासे मूर्ति, यन्त्र आदिमें अधिदैवपीठ स्थापन किया जाता है। जिस अधिदैवपीठमें हम सर्वव्यापक भगवान् और देवदेवियोंकी पूजा किया करते हैं। यही मूर्तिपूजाका रहस्य है। मूर्ति आदिमें प्राणप्रतिष्ठा करनेकी शास्त्रमें जो शैली है, उसके समझनेसे ही इस विज्ञानका रहस्य अनुभवमें आ सकेगा। अपने शरीरमें भूतशुद्धि करके, अपने शरीरमें देवताको लाकर, तब मूर्तिमें उसकी प्रतिष्ठा की जाती है। यही कारण है कि, प्रतिष्ठित विग्रहमें प्रतिष्ठाताकी सत्ता और प्रतिष्ठाताका संस्कार विद्यमान

करेगा। हे मुनिसत्तम! मूर्ख और पापी मनुष्य भी इस भास्करके माहात्म्यका दैनिक पूजाके साथ तीनों बेला यदि पाठ करेगा, तो उसके सब पाप नष्ट हो जायंगे। जिस देवमन्दिरमें सूर्यके इस सम्पूर्ण माहात्म्यका पाठ होगा, भगवान् उसमें निरन्तर वास करेंगे, उस स्थानको कदापि नहीं छोड़ेंगे। हे ब्रह्मन्! तुम भी महत् पुण्यकी अभिलाषासे सूर्यदेवका यह उत्कृष्ट महा माहात्म्य अन्तःकरणमें जमा लो और इसका पाठ किया करो। हे द्विजश्रेष्ठ! सोनेसे मढ़े सींगवाली सुन्दर पयस्विनी (विपुल दूध देनेवाली) गौका दान करने और संयत होकर इस माहात्म्यका श्रवण करनेका पुण्यफल समान है, ऐसा समझो॥ ३७-४३॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भानुमाहात्म्य नामक एक सौ दशवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

रहता है और यही कारण है कि, शूद्रके प्रतिष्ठित देवताको ब्राह्मणका प्रणाम करना निषेध है। ऐसे प्रणामसे सत्त्वगुणसम्पन्न ब्राह्मणको क्षति नहीं पहुंचती, किन्तु उस शूद्रप्रतिष्ठित पीठको क्षति पहुंचती है। जिसमें खास दैवीकला पीठके रूपमें रहती है और उसी कलामें कमी आ जाया करती है। अतः जिस देवालयमें जो संस्कार और मर्यादा तथा सदासे शुद्धाशुद्धिविवेक चला आ रहा है, उसको हानि पहुंचानेसे पीठकी शक्ति नष्ट हो जाती है अथवा कम हो जाती है और ऐसा करनेपर पुजारी और पीठकी ही केवल क्षति नहीं होती, बल्कि पीठशक्तिका अपमान करनेवाले और उसको अशुद्ध करनेवाले व्यक्तियोंको भी हानि पहुंचती है। शुद्धाशुद्धिविवेक, जिसका वर्णन वेदों और शास्त्रोंमें है, वह काल्पनिक नहीं है। सनातन वैदिक दर्शनसमूहसे यह सिद्ध है कि, सनातनधर्मका शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्श विवेक पांच कोषोंसे सम्बन्ध रखता है, जिन पांच कोषोंसे आत्मा आच्छादित रहता है। यह विज्ञान बहुत गम्भीर है। परन्तु संक्षेपमें इतना ही कहा जा सकता है कि, इन पांचों कोषोंमें शुद्धाशुद्धि और स्पर्शास्पर्शका अच्छा-बुरा परिणाम हुआ करता है। अन्नमय कोषके बुरे परिणामको दर्शनशास्त्रमें मल कहा है। प्राणमय कोषके बुरे परिणामको विकार कहते हैं। मनोमय कोषके बुरे परिणामको विक्षेप कहते हैं। विज्ञानमय कोषके बुरे परिणामको आवरण कहते हैं और आनन्दमय कोषके बुरे परिणामको अस्मिता कहते हैं। जैसे विष्ठा आदि द्वारा अन्नमय कोषपर बुरा प्रभाव पड़ता है, वैसे ही दैवपीठसम्बन्धसे प्राणमय कोष कलुषित होता है। उसी प्रकार जननाशौच, मरणाशौच और सूर्य-चन्द्रके ग्रहणाशौचका असर मनोमय कोषपर पड़ता है। वैसे ही अन्य शुद्धाशुद्धिका विवेक अन्य दो कोषोंके साथ भी है, ऐसा मीमांसाशास्त्रने सिद्ध किया है। इस कारण विना दैवी सूक्ष्मराज्यकी पर्यालोचना किये और विना अन्तर्जगत्को दिखानेवाले दर्शनशास्त्रका श्रवण मनन किये ऐसे अतिगहन विषय समझमें नहीं आ सकते। इस अधिदैव-विज्ञानके अनुसार जिस देवमन्दिरमें शुद्धाशुद्धिविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेकका पूरा विचार रखकर ऊपर लिखित सूर्यमाहात्म्यका संस्कार नित्य किसी देवमन्दिरके पीठमें अङ्कित किया जाय, तो वह देवपीठ उस पवित्रता और उस विशेष संस्कारके प्रभावसे जैसी चाहे वैसी उपयोगिता प्राप्त कर सकता है॥ १—४३॥

एक सौ ग्यारहवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—हे क्रौष्टुके ! तुमने भक्तिपूर्वक मुझसे जिनका माहात्म्य पूछा, वे अनादिनिधन भगवान् रवि इस प्रकार प्रभावशाली हैं। संयतचित्त योगियोंके वे परमात्मा हैं, सांख्य-योगियोंके क्षेत्रज्ञ हैं और याज्ञिकोंके यज्ञेश्वर हैं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरके सूर्याधिकारोंसे सम्पन्न मनु नामक पुत्र इन्हीं मार्तण्डदेवसे उत्पन्न हुआ था। जिस सातवें मनुका मन्वन्तर इस समय चल रहा है। इसी मनुके महाबली और पराक्रमी इक्ष्वाकु, नाभाग, रिष्ट, नरिष्यन्त, नाभाग, पृषध्र और धृष्ट नामक पुत्र हुए, जो पृथक् पृथक् राज्योंके परिपालक और विख्यातकीर्ति, शास्त्रपारग तथा विशेष अस्त्राभिज्ञ थे। फिर कृतिश्रेष्ठ मनुने अतिविशिष्ट पुत्रकी कामनासे मित्राव-रुणका यज्ञ किया। हे महामुने ! उस यज्ञमें अपचार हो जाने अर्थात् उसमें दोष आजानेसे वह अपहृत अर्थात् दूषित अथवा अङ्गहीन हो गया और उससे इला नामकी सुमध्यमा मनुकन्याकी उत्पत्ति हुई ॥ १—७ ॥ यज्ञसे उत्पन्न हुई उस कन्याको देखकर मनु मित्रा-वरुणकी स्तुति करने लगे और बोले,—आपके अनुग्रहसे मैं असाधारण पुत्र प्राप्त करूंगा, इस अभिलाषासे मैंने यज्ञ किया, किन्तु देखता हूं कि, यह कन्या प्राप्त हुई है। हे वरद-गण ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं, तो आपके अनुग्रहसे यही कन्या अति गुणवान् पुत्र हो जाय। मित्रावरुणने तथास्तु कहा और उसी क्षण वह इला सुद्युम्न नामक पुत्र हो गयी। एकवार वह बुद्धिमान् मनुपुत्र वनमें मृगया करता हुआ ईश्वरके कोपसे फिरसे स्त्रीत्वको प्राप्त हुआ ॥ ८—१२ ॥ उस अवस्थामें सोमपुत्र बुधने उसके गर्भसे पुरूरवा नामक तेजस्वी चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न किया। पुत्रोत्पत्तिके पश्चात् अश्वमेध यज्ञके प्रभावसे सुद्युम्नने फिर पुरुषत्व प्राप्त किया और वह राजा हुआ। सुद्युम्नके पुरुष हो जानेपर उसे उत्कल, विनय और गय नामक महावीर, याज्ञिक और परम तेजस्वी तीन पुत्र उत्पन्न हुए। उसकी पुरुष-अवस्थामें जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए, उन्होंने ही राज्य लाभ किया और उत्तम प्रकारसे धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया। सुद्युम्नकी स्त्री अवस्थामें जो पुरूरवा

टीका:—पुराणशास्त्रमें जो ऐतिहासिक गाथाएं और वंशवर्णन आता है और वंशके विस्तारका इतिहास आता है, उन सबके समझने और समझानेके लिये पुराण-पाठक और पुराण-वक्ताको पूर्वकथित समाधि भाषा, परकीय भाषा और लौकिक भाषा तथा आध्यात्मिक वर्णन, आधिदैविक वर्णन और आधि-भौतिक वर्णन इन छहों विषयों और सिद्धान्तोंका जैसे प्रतिमुहूर्त्त विचार रखना चाहिये, उसी प्रकार यह भी अवश्य ध्यानमें रखना चाहिये कि, पौराणिक गाथाओं और इतिहासोंमें दैवीसृष्टि और मानुषीसृष्टि इन

नामक पुत्र उत्पन्न हुआ, वह बुधपुत्र होनेके कारण भू-भाग प्राप्त नहीं कर सका। किन्तु वशिष्ठके आदेशसे उसे प्रतिष्ठान नामक उत्तम नगर दिया गया। उसी मनोहर देशका वह राजा बना ॥ १३—१८ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वंशानुक्रम नामक एक सौ ग्यारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बारहवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—पूर्वोक्त मनुका पृषध्र नामक जो पुत्र था, वह एक दिन मृगयाकी इच्छासे वनमें गया था। उस निर्जन वनमें इधर उधर बहुत भटका, परन्तु कोई मृग उसके हाथ नहीं लगा। वह सूर्यके किरणोंसे सन्तप्त और भूख-प्याससे पीडित

दोनोंका मिला जुला वर्णन आया करता है। इसका प्रधान कारण यह है कि, वैदिक विज्ञानके अनुसार दैवीजगत् मुख्य है और यह स्थूल मृत्युलोक गौण है। दैवीजगत्के आश्रयसे ही इस मृत्युलोकके सब काम चलते हैं। वस्तुतः सनातनधर्मावलम्बियोंके सब कार्य और सब चिन्ताप्रणालियां दैवीजगत्को मुख्य मानकर चलायी जातीहै। यहां तक कि, वर्णाश्रमधर्मी हिन्दु प्रजाका चलना, फिरना, उठना, बैठना, सोचना, समझना, उनकी शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया और बौद्धिक क्रिया जो कुछ होती है, वह दैवी जगत्को मुख्य समझकर ही होती है। यही कारण है कि, पृथ्वीकी अन्य शिक्षित जातियां सनातनधर्मके आचार-व्यवहार और चिन्ताप्रणालीको ठीक समझ नहीं सकते और उनको असम्बद्ध तथा मिथ्या समझा करते हैं। दूसरी ओर पुराणोंकी गाथाओंके समझनेमें बड़ी भारी कठिनता इसलिये रहा करती है कि, इस मृत्युलोकके इस कल्पकी अथवा कल्पान्तरकी गाथा और इतिहासवर्णनके साथ ही साथ वेद और पुराणोंमें मृत्युलोक और देवलोक दोनोंके साथ ही साथ अथवा परस्पर सम्बन्धयुक्त गुम्फित वर्णन आया करते हैं। इससे भी आधिभौतिकदृष्टिसम्पन्न जनगण विमोहित हुआ करते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि, त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी समाधि-सुलभ ज्ञानदृष्टिके सम्मुख सूक्ष्म दैवीलोक और स्थूल मृत्युलोक दोनों एकसे ही दिखायी दिया करते हैं। जैसे हम अपने घरमें बैठकर घरके आकाशको और घरके बाहरके आकाशको एक दृष्टिसे देख सकते हैं, वैसे ही वे स्थूल मृत्युलोक और उसके आधारभूत सूक्ष्म दैवीलोकको समदृष्टिसे देखनेमें समर्थ हुआ करते हैं। शंका-समाधानरूपसे कुछ उदाहरण दिये जाते हैं। क्षत्रियोंके सूर्यवंश अथवा चन्द्रवंशका वर्णन जब शास्त्रमें आवेगा और उसके साथ मिला जुला पृथिवीके इस मृत्युलोकके लौकिक राजवंशोंका वर्णन आवेगा, तो समझना चाहिये कि, उस वंशके ऊपरके कुछ लोगोंके नाम देवताओंके हैं और पीछेके नाम मनुष्योंके हैं। सूर्यवंशमें सूर्य आदि देवशरीर हैं और दशरथ आदि मनुष्यशरीरधारी हैं। उसीके अनुसार दैवीसृष्टिमें नाना प्रकारकी विचित्रता रहेगी और मनुष्यसृष्टिमें उस प्रकारकी विचित्रता नहीं रहेगी। अतः पूर्वकथित छः सिद्धान्तोंके साथ ही साथ इस सिद्धान्तको भी ध्यानमें रखना उचित है ॥ १३—१८ ॥

होकर इतस्ततः घूम रहा था कि, इतनेमें उसे किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी कभी न देखी हुई और अनिर्बन्ध विचरण करनेवाली मनोहर होमधेनु देखपड़ी। उसने यह सोचकर कि, यह नीलगाय है, उसपर तीर चलाया और उस तीरसे आहत होकर वह गाय गिर पड़ी। हे मुने! उस गायकी रक्षाके लिये उस अग्निहोत्री ऋषिने अपने एक ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्य नामक पुत्रको नियुक्त किया था। उसने जब अपने पिताकी गायको गिरी हुई देखा, तब उसे बड़ा क्रोध हुआ और उसीके आवेशमें उसकी चित्तवृत्ति क्षुब्ध हो गयी। उसके शरीरसे पसीना चूने लगा और आंखोंसे आंसू बहने लगे। उसने राजाको घूरकर देखा और उसे वह शाप देनेके लिये उद्यत हो गया॥ १—६॥ मुनिकुमारको इस प्रकार क्रुद्ध देखकर राजाने उससे कहा,—आप प्रसन्न हों। शूद्रकी तरह ऐसा क्रोध क्यों करते हैं? विशिष्ट ब्राह्मणकुलमें जन्मग्रहण करने परभी आपका जैसा आचरण देख रहा हूं, वैसा क्रोधपरवश होते हुए कभी किसी क्षत्रिय या वैश्यको भी देखनेमें नहीं आया। मार्कण्डेयने कहा,—राजाने अग्निहोत्री मौलि ऋषिके उस पुत्रको 'शूद्रकी तरह' कहकर तिरस्कार किया था, इस कारण उस दुर्मति राजाको मुनिकुमारने शाप दिया कि, तू अवश्य शूद्र होगा और जब कि, मेरे पितृदेवकी कामधेनुकी तूने हिंसा की है, तब तू उस ब्रह्मविद्याको भूल जायगा, जो तुझे गुरुने पढ़ायी है। हे विप्र! राजाको इस प्रकार शाप मिलनेपर वह बहुतही व्यथित हुआ और क्रुद्ध होकर मुनिकुमारको प्रतिशाप देनेके अभिप्रायसे उसने हाथमें जल ले लिया। राजाका यह भाव देखकर द्विजोत्तम मुनिकुमार और भी क्रुद्ध हुआ और राजाके विनाशकी इच्छा करने लगा। इतनेमें उसके पिता शीघ्रतासे वहाँ आ पहुंचे और उन्होंने पुत्रको रोकते हुए कहा,—हे वत्स! तुम्हारा यह कोप भविष्यतके लिये अहितकर होगा, इसलिये क्रोध न करो, कोपका परित्याग करो। ब्राह्मणोंके लिये शम ही इह-परलोकमें कल्याणकारी हुआ करता है॥ ७-१३॥ क्रोध तपस्याको नष्ट कर देता है। क्रोधसे आयु क्षीण होती है, ज्ञानका लोप हो जाता है और अर्थहीनता (दरिद्रता) आ जाती है। क्रोधी लोग धर्म और अर्थका सञ्चय नहीं कर सकते और जिनका चित्त क्रोधके वशीभूत हो जाता है, वे कामप्राप्ति और सुखसम्पादनमें समर्थ हो नहीं सकते। यदि राजा जानबूझकर इस धेनुकी हत्या करता, तो भी अपना हित चाहनेवालेको उसपर दया ही करनी चाहिये थी। यदि इसने विना जाने गोहत्या की है, तो यह किस प्रकार शापयोग्य हो सकता है? क्योंकि इसका अन्तःकरण निर्दोष है। जो व्यक्ति अपने स्वार्थके लिये परपीड़न करता है, उस मूढ़के प्रति भी दयालुओंको दया ही करनी चाहिये। अज्ञानतः किसीके अपराध करनेपर यदि कोई उसे दण्ड दे, तो उसकी अपेक्षा मैं उस अबोधको ही श्रेष्ठ समझूंगा।

अतः हे पुत्र ! इस समय तुम राजाको शाप न दो। गाय तो अपने कर्मानुसार ही दुःख पाकर मृत्युके मुखमें जा पड़ी है ॥ १४-२० ॥ मार्कण्डेय बोले,—पृषध्रने नत-मस्तक होकर मुनिपुत्रको प्रणाम करते हुए कहा,—आप प्रसन्न हों। मैंने जानबूझकर इस गायकी हत्या नहीं की है। हे मुने ! मैंने नीलगाय जानकर इस अवध्या आपकी होम-धेनुका वध कर डाला है। अतः हे मुने! आप मुझपर रोष न करें। ऋषिपुत्रने कहा,—हे महीपाल ! मैं जन्मसे कभी झूठ नहीं बोला हूं। अतः हे महाभाग ! मेरा यह क्रोध भी कदापि मिथ्या हो नहीं सकता। अन्ततः मेरा शाप भी अन्यथा हो नहीं सकता। फिर भी तुम्हें जो दूसरा शाप देनेको उद्यत हुआ, उसे वापस ले लेता हूं। बालकके इस प्रकार कहनेपर उसके पिता उसे अपने आश्रममें ले गये और तत्पश्चात् वह राजा पृषध्र भी शूद्रत्वको प्राप्त हुआ ॥ २१-२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पृषध्रोपाख्यान सम्बन्धी
एक सौ बारहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तेरहवाँ अध्याय।

—:*:—

मार्कण्डेयने कहा,—नृपात करुषके जो अनेक पुत्र हुए, वे कारुष क्षत्रिय कहलाये और वे सभी बड़े शूर थे। संख्यामें वे सात सौ थे और उनसे भी सहस्रों वीर उत्पन्न हुए थे। दिष्टके पुत्र नाभागने अपने यौवनके प्रारम्भमें किसी दिन एक मनोहर वैश्य कन्याको देखा। उसको देखते ही राजपुत्र कामसे विमोहित हो गया और दीर्घ निःश्वास परित्याग करते हुए कन्याके पिताके पास गया और अपने लिये उसने उस कन्याकी याचना की। हे विप्र ! राजपुत्रकी बात सुनकर कन्याका पिता महाराज दिष्टके भयसे भीत होकर हाथ जोड़कर उस कामपीड़ित राजपुत्रसे बोला,—हम आपको कर देनेवाले भृत्य मात्र हैं। आप मुझ जैसे असमान व्यक्तिके साथ सम्बन्ध स्थापन करनेकी क्योंकर अभिलाषा करते हैं ? ॥ १-५ ॥ राजपुत्रने कहा,—समस्त मानवोंके शरीरोंमें काम, मोह

टीका—वर देनेकी शक्ति और शाप देनेकी शक्ति मनोबलसे सम्बन्ध रखती है। जो व्यक्ति जन्मभरमें कभी मिथ्या न बोला हो, उसमें ऐसा मनोबल होगा, इसमें सन्देह ही क्या है। दूसरी ओर कलिकल्मषदूषित मनुष्योंके अन्तःकरण स्वभावसे ही विषयोंमें लगे रहते हैं। उनमें मनोबल कैसे उत्पन्न हो सकता है ? यही कारण है कि, तमःप्रधान कालमें यह शक्ति प्रायः देखनेमें नहीं आती। अन्य युगोंमें मनुष्योंका मनोबल स्वभावसे ही अधिक हुआ करता था। तब यह शक्ति प्रायः दिखायी देती थी ॥ २१-२५ ॥

आदि समान रूपसे ही होते हैं। परन्तु वे सर्वदा जागृत नहीं रहते, समयके अनुसार उनका दौरा हुआ करता है। भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग उन्हींको चरितार्थ करते हुए एक दूसरेका आश्रय करके जीते हैं। इनसे कभी उपकार भी हो जाता है। और जो योग्यताकी बात कहते हो, उसका उत्तर यह है कि, योग्यता कालपर अवलम्बित रहती है। क्योंकि काल पाकर योग्य भी अयोग्य हो जाता और अयोग्य योग्यताको प्राप्त होता है। इच्छित आहारादिके द्वारा जो शरीर पोसा जाता है, वह यदि समयका ध्यान रखकर पोसा जाय, तो वही बच रहता है। और संसारमें है ही क्या ? इसी विचारसे मैं आपकी कन्याकी अभिलाषा करता हूं, मुझे उसको दे डालिये। यदि ऐसा आप नहीं करेंगे, तो मेरा यह शरीर विपत्तिमें पड़ा हुआ देखेंगे। वैश्यने कहा,—हे कुमार! महाराजके जैसे आप अधीन हैं, वैसा मैं भी हूं। हम दोनों पराधीन हैं। अतः आप पितृदेवकी आज्ञा ले लें, तो मैं आपको कन्यादान करनेको प्रस्तुत हो जाऊँगा। राजपुत्रने कहा,—जो लोग गुरुजनकी आज्ञाके वशवर्ती रहते हैं, उन्हें सभी बातोंके सम्बन्धमें उनसे आज्ञा ले लेना उचित है। परन्तु यह कार्य ऐसा है कि, उसके विषयमें गुरुजनसे न पूछना ही अच्छा है। मदनपीड़ाका प्रसङ्ग और गुरुजनकी आज्ञा, इनमें बड़ा अन्तर है। दोनों एक दूसरेके विरुद्ध हैं। ऐसी बातोंके अतिरिक्त जितनी बातें हैं, उनके सम्बन्धमें गुरुजनसे आज्ञा लेना आवश्यक है। वैश्यने कहा,—आप सत्य कहते हैं। आप यदि गुरुजनसे आज्ञा लेने जायंगे, तो कामपीड़ासम्बन्धी बातें अवश्य ही छिड़ेंगी, जो मर्यादाके विरुद्ध होंगीं। अतः यह बात उनसे मैं ही पूछता हूं, जिससे कामालापकी सम्भावना नहीं रहेगी। मार्कण्डेयने कहा,—वैश्यके इस प्रकार कहनेपर राजपुत्र निरुत्तर हो गया। फिर उस वैश्यने राजपुत्र जो कुछ चाहता था, वह सब राजासे साद्यन्त कहा ॥ ७-१६ ॥ राजाने वह सब सुनकर ऋचीक आदि श्रेष्ठ ब्राह्मणों और अपने पुत्रको बुलाकर सबके सामने प्रकट रूपसे विचारार्थ यह प्रश्न उपस्थित किया और मुनिगणसे कहा,—हे द्विजश्रेष्ठो! इस विषयमें मुझे क्या करना चाहिये, वह आप सुझाइये। ऋषियोंने कहा,—हे राजकुमार! आप यदि इस वैश्यकन्यापर अनुरक्त हुए हैं, तो कोई अधर्मकी बात नहीं है; परन्तु यह कार्य न्यायक्रमके अनुसार होना चाहिये। पहिले आप मूर्द्धाभिषिक्त (क्षत्रिय) की कन्यासे विवाह कर फिर वैश्यकन्यासे परिणय कीजिये। इस रीतिसे आप इस वैश्यकन्याका उपभोग करें, तो किसी प्रकारके दोषकी सम्भावना नहीं रहेगी। नहीं तो बालिकाहरणके दोषके कारण आपको जातिसे च्युत होना पड़ेगा। मार्कण्डेयने कहा,—उन सब महात्माओंकी बात राजपुत्रने नहीं मानी। वह उठकर राजमहलसे निकल गया और वैश्यके घर जाकर उसकी कन्याको पकड़ लाया तथा

खड्ग खींचकर गरजकर बोला,—इस वैश्यकन्याको मैं राक्षस-विवाहविधिसे हरण करके लाया हूँ। जिसकी सामर्थ्य हो, वह मेरे सामने आकर इसे मुझसे छुड़ा ले ॥ १७-२३ ॥ हे द्विज! वैश्यने जब देखा कि, राजपुत्र कन्याको पकड़कर ले गया है, तब वह दौड़ा हुआ राजाके पास गया और बोला,—हे महाराज! मेरी रक्षा कीजिये। राजाने भी क्रुद्ध होकर तुरन्त अपनी सेनाको आज्ञा दी कि, धर्मदूषक दुष्ट नाभागका शीघ्र वध करो। राजाज्ञा पाकर सेनाने राजपुत्रके साथ युद्ध प्रारम्भ कर दिया। राजपुत्रने शस्त्रास्त्रोंके द्वारा अधिकांश सैनिकोंको मार गिराया। यह समाचार पाकर राजा स्वयं अन्यान्य सैनिकोंको साथ लेकर युद्धके लिये उपस्थित हुआ। अपने पुत्रके साथ युद्ध करते हुए अस्त्रशस्त्रोंके प्रभावसे राजाकी विजयकी ही अधिक सम्भावना देख पड़ने लगी। इतनेमें सहसा आकाशसे परिव्राजक मुनि नारद वहाँ उतर आये और बोले,—हे महीपाल! युद्धसे निवृत्त होइये। हे नृप! आपका पुत्र विजातीय हो गया है; अर्थात् वह वैश्य हो गया है; उसके साथ युद्ध करना धर्मसंगत नहीं है ॥ २४-३० ॥ ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणकन्यासे विवाह कर फिर यदि अन्य त्रिवर्णकी कन्यासे विवाह करे, तो उसके ब्राह्मण्यकी हानि नहीं होती। इसी तरह क्षत्रिय पहिले क्षत्रियकन्यासे विवाह कर फिर यदि वैश्य-शूद्र-कन्यासे विवाह करे, तो वह धर्मच्युत नहीं होता। वैश्य भी पहिले वैश्यकन्यासे विवाह कर फिर यदि शूद्रकन्यासे विवाह करे, तो वह वैश्यकुलसे नहीं गिरता। इसी तरह क्रमानुरूप नीतिका व्यवहार चला आया है। हे नृप! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रथम अपने वर्णकी कन्याका पाणिग्रहण न कर यदि अन्यवर्णके कन्यासे विवाह करें, तो वे उसीके वर्णके हो जाते हैं, जिस वर्णकी वह कन्या हो। इसके अतिरिक्त प्रथम असवर्ण कन्याके साथ विवाह करनेसे वह दायका भी अधिकारी नहीं रह जाता। आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र वैश्यत्वको प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं। आपके साथ युद्ध करनेका यह अधिकारी नहीं है। हे नृपनन्दन! इस युद्धसे कौनसा कारण उत्पन्न होगा, यह हम नहीं जानते। इस समय इस युद्धसे आप मुंह मोड़ लीजिये ॥ ३१-४२ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नाभागचरित नामक एकसौ तेरहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—यह वर्णाश्रमशृंखलाका बहुत उत्तम उदाहरण है। वर्णाश्रमशृंखलामें रजोवीर्य दोनोंकी शुद्धि सबसे मुख्य मानी गयी है और तदनन्तर रजकी अशुद्धता होनेपर भी वीर्यका प्राधान्य माना गया है। इसी कारण प्राचीन कालमें सवर्णविवाह मुख्य और धर्मसङ्गत माना जाता था। नीचेके वर्णोंकी कन्याओंके साथ विवाह करना तभी सम्भव होता, जब सवर्ण कन्याके साथ विवाह हो गया हो। वह विवाह धर्मविरुद्ध न होनेपर भी कामज कहाता था और ऊंची जातिकी कन्यासे विवाह करना तो पाप समझा जाता था ॥ १७-२३ ॥

एक सौ चौदहवाँ अध्याय।

—०:❀:०—

मार्कण्डेयने कहा,—फिर पुत्रके साथ युद्ध करना राजाने बन्द कर दिया और उस वैश्यकन्याके साथ विवाह कर नाभाग भी वैश्यत्वको प्राप्त हुआ। अनन्तर पुत्रने पिताके पास आकर पूछा,—हे भूपाल! अब मेरा कर्तव्य क्या है, वह कहिये। राजाने उत्तर दिया,—ये ब्राभ्रव्यादि सब तपस्वी धर्माधिकरणमें नियुक्त हैं; येही धर्मके अनुकूल जिस प्रकारका कर्म करनेको कहें, वही करो। मार्कण्डेयने कहा,—तब सब सभासद मुनिगण बोले,—पशुपालन, कृषि और वाणिज्य करना ही इनके लिये उत्कृष्ट धर्म है। राजपुत्र भी स्वधर्मच्युत हो, राजाज्ञाके अनुसार उन धर्मवादियोंके बताये हुए धर्मका आचरण करने लगा॥ १-५॥ समय पाकर उस युग्मको एक पुत्र हुआ, जिसका नाम भनन्दन रक्खा गया। उसके अवस्था सम्हालनेपर माताने उससे कहा,—हे वत्स! तुम गोपाल बनो। माताकी आज्ञा पाकर और माताको प्रणाम कर वह हिमालय-पर्वतपर नीप नामक राजर्षिके पास पहुँचा और उनकी चरणवन्दना करके बोला,—हे भगवन्! माताने मुझे गोपालन करनेकी आज्ञा दी है; अतः पृथ्वीपालन करना मेरा कर्तव्य हो गया है। परन्तु इस आज्ञाका स्वीकार मैं कैसे करूँ? क्योंकि इस समय समस्त पृथ्वी मेरे बलवान् सम्बन्धियों (दायादों) ने आक्रान्त कर ली है। अतः हे विभो! आपके अनुग्रहसे जिस तरह पृथ्वी पा जाऊँ, मुझ प्रणतको वह उपाय बताइये। वही उपाय मैं करूँगा॥ ६-११॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे ब्रह्मन्! तब राजर्षि नीपने महात्मा भनन्दन-को समस्त अस्त्र-विद्या प्रदान की। हे द्विज! भनन्दन अस्त्रविद्याको प्राप्त कर और राजर्षिकी आज्ञा लेकर अपने चचेरे भाई वसुरात आदिके पास चला गया और अपने पितृ-पितामहादिके राज्यका आधा भाग मांगने लगा। उन्होंने उत्तर दिया,—तुम वैश्य-पुत्र हो, पृथ्वीपालन करना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है। इसपर भनन्दनको बड़ा क्रोध हुआ और वह वसुरात आदिके साथ युद्ध करने लगा। उसे अस्त्रविद्या भलीभाँति अवगत थी, इस कारण उसने युद्ध करते हुए विपक्षियोंकी सेनाको क्षत-विक्षत कर दिया और सबको हराकर पृथ्वीपर अधिकार कर लिया॥ १२-१६॥ भनन्दनने विजितशत्रु होकर प्राप्त किया हुआ सब पृथ्वीका राज्य पितृचरणोंमें अर्पण कर दिया। परन्तु पिताने उसको स्वीकार नहीं किया और पत्नीके सामने ही पुत्रसे कहा,—वत्स भनन्दन! पूर्वपुरुषों द्वारा शासित इस राज्यका तुम ही उपभोग करो। यह बात नहीं है कि, मैं राज्यपालनमें असमर्थ हूं; किन्तु पहिले पिताकी आज्ञाके अनुवर्ती होकर भी मैंने

उनकी आज्ञाको न मानकर वैश्यकन्यासे विवाह कर वैश्यत्वको प्राप्त किया है। इस कारण मैं राज्यका उपभोग करनेका अधिकारी नहीं रह गया हूं। यदि मैं फिर पिताकी आज्ञाका उल्लंघन कर पृथ्वीपालन करने लगूँ, तो राजाकी आज्ञा मिथ्या होगी और वे प्रलयकाल पर्यन्त पुण्यलोकके भागी नहीं बनेंगे तथा सौ कल्पमें भी मेरी मुक्तिकी सम्भावना नहीं रहेगी। इसके अतिरिक्त मेरे जैसे निराकाङ्क्ष मानी पुरुषोंके लिये, जिस प्रकार असमर्थ मनुष्य विषयभोगको त्याग देता है, उस प्रकार तुम्हारे बाहुबलसे उपार्जित राज्यका उपभोग करना भी उचित नहीं है। तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा अपने बान्धवोंको पुनः लौटा दो। मेरे लिये पिताकी आज्ञा पालन करना ही प्रशस्त है। क्षितिपालन करना मेरा काम नहीं है ॥ १७-२३ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—नाभागकी बात सुनकर उसकी पत्नी सुप्रभा हँसती हुई बोली,—हे भूप! इस समृद्धिशाली राज्यको आप ग्रहण कीजिये। वास्तवमें न आप वैश्य हैं और न मैंने ही वैश्यकुलमें जन्म ग्रहण किया है। आप क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रियकुलमें जन्मी हूं। पहिले सुदेव नामक एक राजा हुआ। राजा धूम्राश्वका पुत्र नल उसका सखा था। हे पार्थिव! एक वार वैशाख मासमें सुदेव अपने सखा नल और पत्नियों सहित आम्रवनमें वनविहारके लिये गया था। वहाँ सबने नाना प्रकारके खाद्य-पेय पदार्थोंका उपभोग किया। फिर सब निकटकी पुष्करिणीकी शोभा देखते हुए इधर-उधर टहलने लगे। निकट ही च्यवनके पुत्र महर्षि प्रमतिका आश्रम था। प्रमतिकी पत्नी किसी राजाकी कन्या थी और बड़ी ही सुन्दरी थी। कार्यवश वह पुष्करिणीके तटपर उपस्थित हुई थी। उसे देखते ही सुदेवका सखा नल बुरी बुद्धिसे उन्मत्त होगया। वह अपने आपको सम्हाल न सका और उसने उस ऋषिपत्नीको पकड़ लिया। ऋषिपत्नी बेबस होकर रोने-चिल्लाने लगी और निकट खड़े हुए सुदेवसे चिरौरी करने लगी कि, महाराज! मेरी रक्षा कीजिये ॥ २५-३० ॥ पत्नीके रोनेका शब्द आश्रममें प्रमति ऋषिको सुनायी पड़ा और वे "यह क्या है! क्या है?" कहते हुए त्वरासे वहाँ उपस्थित हुए। राजा सुदेव बैठा तमाशा देख रहा है और दुरात्मा नल ऋषिपत्नीको सता रहा है, यह देखकर प्रमतिने राजासे कहा कि, राजन्! इस पतिव्रताको इस दुष्टसे छुड़ाइये। आप राजा हैं, शासन करना आपका काम है, अतः इस दुष्ट नलको दण्ड देना आपको उचित है। मार्कण्डेयने कहा,—प्रमतिकी यह व्यथित होकर कही हुई बात सुनकर राजा सुदेवने अपने सखा नलके गौरवकी रक्षा करने, उसके प्राण बचानेके लिये, झूठ ही कह दिया कि, हे विप्र! मैं वैश्य हूं, अपनी पत्नीकी रक्षाके निमित्त किसी क्षत्रियके पास जाइये। सुदेवकी बात सुनकर प्रमति ऐसे क्रुद्ध होकर, मानों अपने तेजसे राजाको दग्ध कर रहे

हाँ, बाले,—ठीक है। राजा! तू अपनेको वैश्य कहता है, तो सचमुच अब तुझे वैश्यत्व प्राप्त होगा। क्योंकि आर्त व्यक्तियोंकी रक्षा करनेसे ही क्षत्रिय संज्ञाकी उत्पत्ति हुई है। आर्त शब्द भी सुनायी न दे, इसी अभिप्रायसे क्षत्रियगण शस्त्र धारण करते हैं। इस विचारसे तू कदापि क्षत्रिय नहीं हो सकता। तू कुलाधम बनियाँ ही हो जायगा॥ ३१-३६॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नाभागचरित सम्बन्धी
एक सौ चौदहवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीका:—सनातनधर्मकी उदारता और सर्वव्यापकता, वर्णाश्रमशृंखलाकी दूरदर्शिता और शक्तिमत्ता, इस गाथासे सिद्ध होती है। दूसरी ओर राजधर्म और प्रजाधर्मकी मौलिकता और परस्परकी घनिष्ठता सिद्ध होती है। केवल जातिमर्यादा और जातिगौरव न रखनेसे ही और वर्णाश्रमशृंखलाके सिद्धान्तकी उपेक्षा करनेसे ही क्षत्रिय होनेपर भी महाराजकुमार नाभाग वैश्यत्वको प्राप्त हुआ था। पिताके परलोकगामी होनेपर भी वर्णाश्रमधर्मी पुत्रको परलोकगामी पिताकी पारलौकिक उन्नतिका कैसा विचार रखना चाहिये, यह वर्णाश्रमधर्मका सिद्धान्त इस गाथासे उज्ज्वल हो रहा है। दूसरी ओर स्वभावसे ही राजभक्त वर्णाश्रमधर्मी प्रजा अपने राजाका परलोकगमन हो जानेपर भी कैसा व्यवहार रखते हैं और राजाज्ञाका मूल्य सनातनधर्मावलम्बियोंके निकट कैसा है, वह इस गाथासे प्रकट होता है। अब शंका यह हो सकती है कि, क्षत्रिय जातिके रजोवीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति वैश्य कैसे हो सकता है? इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, प्रथम तो त्रिविधशुद्धिके अनुसार जन्मद्वारा अधिभूतशुद्धि, कर्मद्वारा अधिदैवशुद्धि और ज्ञानद्वारा अध्यात्मशुद्धि जातिकी हुआ करती है। इसका उदाहरण यह है कि, ब्रह्मचिन्तन, ब्रह्मधारणा, ब्रह्मोपासना और स्वस्वरूपोपलब्धिके द्वारा ब्राह्मण अपना अध्यात्मशुद्धिलाभ करता है। अर्थात् वह आध्यात्मिकरूपसे ब्राह्मण होता है। इसीप्रकार यजन-याजन आदि षट्कर्म, वेदपाठ, गायत्री आदिकी सेवासे ब्राह्मणवीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति अधिदैवरूपसे ब्राह्मण बनता है और धर्मविवाहसे युक्त ब्राह्मणी माताके रज और ब्राह्मण पिताके वीर्यसे उत्पन्न व्यक्ति आधिभौतिकशुद्धियुक्त ब्राह्मण कहाता है। आधिभौतिकशुद्धि अपरिवर्तनीय है। इस कारण जाति-निर्णयमें इसकी प्रधानता मानी गयी है। परन्तु यह निश्चित है कि, तीनों प्रकारकी जब शुद्धि होती है, तभी जातिकी पूर्णता मानी जाती है। यही वर्णधर्मका मौलिक तथा दार्शनिक रहस्य है। इसी सिद्धान्तको अवलम्बन करके वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति इस नाशमान् संसारमें चिरञ्जीवी बनी हुई है। इस रहस्यको प्राचीन इतिहासवाले और नवीन इतिहासवाले दोनोंको ही स्वीकार करना होगा। राजपुत्र नाभाग शापग्रस्त होनेसे उसकी अध्यात्मशुद्धि और अधिदैवशुद्धि तुरन्त ही नष्ट हो गई थी और पातित्यहेतु उसकी अधिभूतशुद्धि भी मलिन हो गयी थी। जैसे,—ब्राह्मण यदि अधिभूतशुद्धिसे उत्पन्न भी हुआ हो, तो भी चाण्डालादिके अन्नग्रहण और नीचसंसर्ग और नीचचिन्ता आदिसे जैसा पतित होकर नीचताको प्राप्त करता है और वह ब्राह्मण नहीं कहाता है, उसी प्रकार शापग्रस्त होकर राजकुमार भी वैश्यत्वको प्राप्त हुआ था। इससे यह भी समझना चाहिये कि, इस विज्ञानके अनुसार उच्च जातिका व्यक्ति नीच जातिका बन सकता है, परन्तु नीच जातिका व्यक्ति उच्च जातिका नहीं बन सकता। क्योंकि अधिभूतशुद्धिका होना अपने हाथ नहीं है॥ १७-३६॥

एक सौ पन्द्रहवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले,—हे द्विज! भृगुवंशमें उत्पन्न हुए प्रमति इस प्रकार सुदेवको शाप देकर, क्रोधसे मानों त्रैलोक्यको भस्म करनेको उद्यत हो गये हों, नलसे बोले,—जब कि, तूने मदोन्मत्त होकर मेरे आश्रममें आकर मेरी पत्नीपर बलात्कार किया है, तब तू इसी समय भस्म हो जायगा। ऋषिका वाक्य समाप्त भी नहीं हो पाया था कि, नलके देहसे अग्नि प्रकट होकर उससे वह उसी क्षण भस्म हो गया। सुदेवने जब प्रमतिका यह प्रभाव देखा, तब उन्मत्तता छोड़कर प्रणाम करके विनीत भावसे वह प्रमतिसे बोला,—भगवन्! क्षमा करें, क्षमा करें। सुरापान करनेसे मैं उन्मत्त हो गया था। उस अवस्थामें मैंने जो कुछ कहा, आप प्रसन्न होकर उसे क्षमा करें और अपने दिये शापको लौटा लें॥ १-५॥ राजाके इस प्रकार प्रसादित करने और नलको दग्ध कर देनेसे भार्गव प्रमतिका क्रोध शान्त हुआ। फिर वे अनासक्त चित्तसे बोले,—यद्यपि मेरा वचन अन्यथा नहीं हो सकता, तथापि प्रसन्नचित्तसे मैं तुमपर अनुग्रह करता हूं। कुछ दिन तो तुम्हें अवश्य ही वैश्य जातीय होना होगा, किन्तु इसी जन्ममें फिर तुम क्षत्रिय हो जाओगे। जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक तुम्हारी कन्यासे विवाह करेगा, तब हे वैश्य! तुम आपही क्षत्रिय हो जाओगे। हे भूपाल! इसी तरह मेरे पिता सुदेव वैश्य हुए थे। हे महाभाग! अब मैं भी अपना सब परिचय देती हूँ, श्रवण करिये॥ ६-१०॥ पुराकालमें सुरथ नामक राजर्षि गन्धमादन पर्वतके अरण्यमें नियताहार और त्यक्तसङ्ग होकर तपस्या करता था। एकबार एक बाजके मुखसे आकाशसे गिरी हुई मैनाको देखकर दयाके कारण उसे मूर्छा आगयी। हे प्रभो! उसकी मूर्छा जब जाती रही, तब उसके शरीरसे मैं उत्पन्न हो गयी। उसने भी स्नेहार्द्र चित्तसे मुझे उठा लिया और कहा;—जब कि, मेरे कृपाभिभूत होनेसे इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है, तब मैं इसका नाम कृपावती रखता हूं। फिर मैं उसीके आश्रममें रहकर धीरे धीरे बढ़ने लगी और समवयस्का सखियोंके साथ वन-वन विचरने लगी॥ ११-१५॥ एकदा अगस्तिके समान ही प्रभावशाली अगस्ति मुनिके भाई वनमें पुष्पादिको चुन रहे थे; इसी अवसरमें मेरी सखियोंने बात बातमें उन्हें बनियां कहकर चिढ़ा दिया। इससे उन्होंने क्रोधके वशीभूत होकर मुझे शाप दिया कि, जब कि, तूने मुझे बनियां कहा है, तब तू वैश्य-कन्या हो जायगी। उनका वह दारुण शाप सुनकर मैंने उनसे कहा,—हे द्विजसत्तम! मैंने तो आपका कोई अपराध नहीं किया है; दूसरोंके अपराधसे आप मुझे क्यों शाप दे रहे हैं? ऋषि बोले,—

मद्यकी एक बूँद गिरनेसे ही जिस प्रकार पञ्चगव्यसे भरा हुआ घड़ा दूषित हो जाता है, उसी प्रकार निर्दोष व्यक्ति भी दुष्टोंके संसर्गसे दुष्ट हो जाता है। हे बालिके! तूने बड़े विनयसे अपनेको निर्दोष बताकर मुझे प्रसन्न किया है, इस कारण मैं तुझपर जो अनुग्रह करता हूं, उसे सुन ॥१६-२०॥ तू वैश्ययोनिमें जाकर जब अपने पुत्रको राज्यलाभके लिये नियुक्त करेगी, तभी तुझे अपनी वास्तविक जातिका स्मरण हो जायगा और पतिके सहित तू पुनः क्षत्रियत्वको पाकर दिव्य भोगोंकी अधिकारिणी बनेगी। अतः इस समय तू आश्रममें जा और भय छोड़ दे। हे राजेन्द्र! इस प्रकार मैं उस महर्षिके द्वारा अभिशप्त हुई थी और प्रमतिने पहिले मेरे पिताको भी इसी तरहका शाप दिया था। अतः हे राजन्! आप या मेरे पिता इनमेंसे कोई वैश्य नहीं है। मैं इस तरह निर्दोष हूं। मेरे संसर्गसे आप क्योंकर दूषित हो सकते हैं? यह कभी हो नहीं सकता। आप सर्वदा निर्दोष हैं ॥ २१-२४॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका एक सौ पन्द्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सोलहवां अध्याय।

—०:❀:०—

मार्कण्डेयने कहा,—धर्मज्ञ राजाने पत्नी और पुत्रकी सब बातें सुनकर उनको पृथक् पृथक् उत्तर दिया। पत्नीसे कहा,—मैंने पिताकी आज्ञासे एकबार राज्यका त्याग कर दिया है, उसे अब फिर नहीं ग्रहण करूंगा। तुम अपने मुंहकी भाफ गंवाकर क्यों वृथा कष्ट पा रही हो? पुत्रसे कहा,—मैं वैश्यवृत्तिमें ही रहकर तुम्हें कर दिया करूंगा। तुम इस समस्त राज्यका उपभोग करो और यदि राज्य करनेकी तुम्हारी इच्छा न हो, तो इसका त्याग कर दो। राजपुत्र भनन्दन इस प्रकार पिताकी आज्ञा पाकर धर्मानुसार राज्यकार्य करने लगा। यथासमय उसने विवाह भी किया। हे द्विज! पृथ्वीके सब स्थानोंमें उसका रथचक्र घूमा करता था। अधर्मकी ओर उसका मन कभी अग्रसर नहीं होता था। इस कारण सभी भूपाल उसके वशीभूत हो गये थे। वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुन्धराका यथोचित रीतिसे प्रतिपालन किया करता था। धीरे धीरे समग्र पृथ्वीमें उसका शासन फैल जानेसे वह पृथ्वीका अद्वितीय अधीश्वर बन गया। फिर उसे वत्सप्री नामक एक पुत्र हुआ। उस महात्माने अपने गुणोंसे पिताके नामको और भी बढ़ाया। उसे विदूरथ राजाने अपनी सौनन्दा नामकी कन्या व्याह दी थी। उसने इन्द्रशत्रु कुजृम्भ नामक दैत्येश्वरका विनाश करनेके कारण इस कन्याको प्राप्त किया

था ॥ १-८ ॥ कौष्टुकिने कहा,—हे भगवन् ! वत्सप्रीने किस प्रकार कुजृम्भको मारकर सौनन्दाको प्राप्त किया था, वह आख्यान आप प्रसन्नचित्तसे कहिये । मार्कण्डेयने कहा,—भूमण्डलमें विदूरथ नामक विख्यातकीर्ति एक राजा हुआ । उसे सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र हुए । एक समय विदूरथ मृगयाके लिये वनमें गया था । वहाँ उसे एक ऐसा बड़ा भारी गड़हा दिखायी दिया, मानों वह पृथ्वीका मुँह हो । उसे देखकर वह सोचने लगा कि, यह भीषण गुहा कैसी ? उसने फिर सोचा, यह चिरन्तन भूमिविवर हो नहीं सकता । मैं समझता हूं, यह पातालका विवर है । वह इस प्रकार सोच रहा था कि, इतनेमें उस निर्जन अरण्यमें उसे सुव्रत नामक एक तपस्वी ब्राह्मण आता हुआ देख पड़ा । राजाने आश्चर्यसे उसे वह भूमिका गभीर गह्वर दिखाकर पूछा कि, यह क्या है ? ॥ ९-१५ ॥ ऋषिने कहा,—हे महिपाल ! क्या इसे आप नहीं जानते ? जब कि, पृथ्वीका समस्त वृत्तान्त राजाको ज्ञात रहना आवश्यक है, तब मेरी समझमें इस विवरके वृत्तान्तको जाननेके आप योग्य पात्र हैं । महावीर्यशाली उग्र नामक एक दानव रसातलमें वास किया करता है । हे नराधिप ! इस भूमण्डल तथा स्वर्गराज्यमें प्रत्येक प्राणी जँभाई लेने लगता है, यह उसीका कार्य है । समस्त पृथ्वीमें लोगोंको जँभाई लेनेके लिये वह प्रवृत्त करता है, इस कारण उसका नाम कुजृम्भ पड़ गया है; क्या इस बातको आप नहीं जानते ? बहुत पहिले विश्वकर्माने सुनन्द नामक जो मूशल बनाया था, वह दुरात्मा उसे हरण कर लाया और उसीका युद्धके समयमें उपयोग कर शत्रुओंका पराजय करता और उसीसे रसातलसे पृथ्वीको फोड़कर अन्यान्य असुरोंको पृथ्वीमें आनेके लिये द्वार बना देता है । उसी सुनन्द नामक मूशलके आघातसे यहाँकी भूमि भेदी जानेके कारण यह गह्वर बन गया है । आप उसको विना पराजित किये कैसे पृथ्वीका उपभोग कर सकेंगे ? उग्रकर्मा वह दैत्य मूशलायुधके पा जानेसे बड़ा बलशाली होकर यज्ञकर्मोंका विनाश तथा देवताओंको व्यथित करता और दैत्योंको परितृप्त करता रहता है । यदि आप उस पातालमें स्थित शत्रुको पराजित कर दें, तो समग्र पृथ्वीके अधीश्वर और

टीकाः—वैदिक विज्ञानके अनुसार प्रत्येक पदार्थके तीन तीन स्वरूप होते हैं और यह भी वैदिक दर्शनका सिद्धान्त है कि, कोई जड़ क्रिया बिना चेतनकी सहायताके नियोजित नहीं हो सकती । जँभाई रूपी जड़ क्रिया जो वायुका असत् तथा तमोमय परिणाम है और वह क्रिया चतुर्विध भूतसंघसे लेकर मनुष्य पर्यन्त दिखायी पड़ती है, ऐसी सर्वव्यापक बलशाली क्रियाका अधिदैव अवश्य है । क्योंकि यह निश्चित है कि; प्रत्येक पदार्थके अधिदैव, अधिभूत और अध्यात्म रूप अवश्य होते हैं । अतः जँभाई रूपी व्यापक प्रकृतिकी क्रियाका अधिदैव यह असुर है । सनातनधर्मके अनुयायी जो तैंतीस कोटि देवताओंका होना मानते हैं, उसका मौलिक रहस्य यही है कि, जितनी क्रियाएँ और जितने

परमेश्वर (सम्राट्) बन जायंगे ॥ १६–२२ ॥ उस मूशलको लोग सौनन्द कहते हैं । विचक्षण लोग उसके बलाबलके सम्बन्धमें कहा करते हैं कि, जिस दिन उसको कोई स्त्री छू लेती है, उस दिन वह निर्वीर्य हो जाता और फिर दूसरे ही दिन पहिलेकी तरह बलशाली हो जाता है । किन्तु वह दुराचारी दैत्य मूशलका यह प्रभाव और स्त्रियोंके हस्तस्पर्शसे होती हुई उसकी बलहानिकी दोषपूर्ण बात नहीं जानता । हे राजन् ! दुरात्मा दानवकी और मूशलके बलकी कथा मैंने आपसे कही है । अब जो उचित समझिये, वह कार्य आप कीजिये । हे महीपते ! आपके नगरके निकट ही जब कि, यह खोह बनायी गयी है, तब आप इससे निश्चिन्त क्यों हो रहे हैं ? इतना कहकर ऋषि चल दिये । फिर राजा अपने नगरमें लौट आया और मन्त्रज्ञ मन्त्रियोंसे परामर्श करने लगा । मूशलके प्रभाव और उसकी बलहानिकी जो बातें राजाने सुनी थीं, वे सब उसने मन्त्रियोंसे कह सुनायीं । जब राजा मन्त्रियोंको सब वृत्तान्त सुना रहा था, तब उसकी कन्या मुदावती पासमें बैठी-बैठी सुन रही थी । इस घटनाके कुछ दिन पश्चात् मुदावती अपनी सखियोंके साथ एक दिन उपवनमें टहल रही थी, इतनेमें वह कुजृम्भ दैत्य वहाँ आ धमका और युवती मुदावतीको उठाकर ले भागा ॥ २३–३१ ॥ राजाको इस समाचारका पता लगते ही क्रोधसे उसकी आँखें लाल हो गयीं । उसने वनप्रान्तके जाननेवाले अपने दोनों कुमारोंको बुलाकर आज्ञा दी कि, तुम वनोंकी सब बातें जानते हो, इसलिये शीघ्र जाओ और निर्विध्या नदीके तटपर जो गह्वर है, उसके द्वारा रसातलमें पहुंचकर मुदावतीके अपहर्ता उस दुर्मतिका विनाश करो । मार्कण्डेयने कहा,—तदनन्तर दोनों राजकुमार उस गर्तके पास गये और दैत्यके पैरके चिह्नोंका अनुसरण करते हुए सेनासहित गर्तके भीतर जाकर क्रोधावेशके साथ कुजृम्भपर टूट पड़े । दोनों दलोंमें परिघ, निस्त्रिंश, शक्ति, शूल, परश्वध, बाण आदि शस्त्रोंके द्वारा घमासान युद्ध होने लगा । किन्तु मायाजालसे बलशाली दैत्योंके आगे दोनों राजकुमार ठहर नहीं सके । दैत्योंने कुमारके सैनिकोंको पछाड़ मारा और दोनों कुमारोंको बद्ध कर लिया । हे मुनिसत्तम ! यह समाचार जब राजाने सुना, तब हृदयमें अत्यन्त व्यथित होकर सैनिकोंको बुलाकर कहा,—तुममेंसे जो कोई उस दैत्यको मारकर दोनों कुमारों और मुदावतीको छुड़ा लावेगा, उसे मैं विशाल नेत्रोंवाली अपनी कन्या प्रदान करूँगा । हे मुने ! राजाने पुत्रों और कन्याके बन्धमुक्त होनेके सम्बन्धमें निराश होकर ही यह घोषणा की थी । बलवान्, शौर्यशाली और अस्त्र-शस्त्रोंको जाननेवाले भनन्दनके पुत्र वत्सप्रीने जब यह घोषणा सुनी, तब वह वहाँ आकर

विभाग प्रकृतिराज्यके हैं, उनका चेतन चालक या तो कोई असुर होगा, या देवता । यही देवलोक और असुरलोकके वासियोंके अस्तित्वका अनुभव करनेका एक प्रधान निशान है ॥ १६–२२ ॥

विनयावनत होकर बोला,—महाराज ! मुझे आज्ञा दीजिये । मैं बिना विलम्बके आपके ही तेजोबलसे उस दैत्यका विनाश कर आपकी कन्या और कुमारोंको छुड़ा ला सकूंगा ॥ ३२-४२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाने अपने मित्रके पुत्र वत्सप्रीको सहर्ष आलिङ्गन करके कहा,—वत्स ! कार्यसिद्धिके लिये तुम प्रस्थान करो । यदि यह कार्य तुम कर सको, तो यथार्थ ही तुम्हारे द्वारा मित्रपुत्रके योग्य कार्य हो जायगा । हे वत्स ! इस कार्यके करनेमें तुम्हारा मन यदि नितान्त उत्साहित हुआ हो, तो यह कार्य तुम शीघ्रतासे करो । मार्कण्डेयने कहा,—तदुपरान्त वत्सप्री खड्ग, धनु, गोधा, अङ्गुलित्र आदिसे सज्ज हो, उस गर्तके द्वारा पैर बढ़ाता हुआ पातालमें चला गया । राजपुत्रकी प्रत्यञ्चाके घोर टणत्कारके शब्दसे समस्त पाताल गूँज उठा । दानवपति कुजृम्भ उस ज्या-शब्दको सुनते ही अत्यन्त क्रुद्ध हो, सेनाको साथ लेकर वहाँ आ पहुंचा, जहां राजकुमार था । तब बलशाली सेनासे घिरे हुए राजपुत्रके साथ विपुल बली दैत्य-सैन्यसे घिरे हुए विजृम्भका युद्ध होने लगा । दानवोंने राजपुत्रके साथ लगातार तीन दिनोंतक संग्राम किया, किन्तु जब उससे पार न पाया, तब वे क्षुब्धचित्तसे मूशल लानेके लिये दौड़ पड़े । हे महाभाग ! प्रजापतिका निर्माण किया हुआ वह मूशल गन्ध, माल्य, धूप आदिसे पूजित होकर अन्तःपुरमें धरा रहता था । मुदावती मूशलका प्रभाव जानती थी । उसने नतमस्तक होकर उसे स्पर्श किया और पूजाके बहाने वह उसे तबतक बराबर छूती रही, जबतक दानव उसे उठा नहीं ले गये थे ॥ ४३-५२ ॥ उसे लेकर दानव रणाङ्गणमें उतर आये और उसी मूशलसे युद्ध करने लगे । किन्तु जब शत्रुओंपर उसका आघात किया किया जाता, तब वह व्यर्थ हो जाता था । हे मुने ! परम अस्त्र सौनन्दके निर्वीर्य हो जानेपर दैत्यगण अन्य शस्त्रास्त्रोंसे युद्ध करने लगे, परन्तु राजपुत्रकी तरह वे शस्त्रास्त्र-सञ्चालनमें कुशल नहीं थे । उनका जो मूशलबल था, वह भी बुद्धिबलके सामने फीका पड़ गया । अन्ततः राजपुत्रने घड़ीभरमें दैत्योंके शस्त्रास्त्र व्यर्थ कर दिये और सबको रथविहीन कर डाला । दैत्य फिर खड्ग और चर्म लेकर दौड़ आये । जब वह इन्द्र-शत्रु कुजृम्भ स्वयं क्रुद्ध हो, वेगसे राजपुत्रपर झपटा, तब कालाग्निके तुल्य आग्न्यस्त्रके द्वारा राजपुत्रने उसका वध कर डाला । देवशत्रु कुजृम्भके उस आग्न्यस्त्रके द्वारा क्षत-हृदय होकर प्राणविसर्जन करते ही पातालके उरगोंने बड़ा उत्सव मनाया । राजपुत्रपर पुष्पवृष्टि हुई, गन्धर्वोंने सङ्गीत आरम्भ किया और देववाद्य बजने लगे । राजपुत्र वत्सप्रीने उस दैत्यका नाश कर सुनीति और सुमति नामक दोनों राजकुमारों और क्षीणाङ्गी राजकन्या मुदावतीको बन्धमुक्त कर दिया । कुजृम्भके मारे जानेपर शेष नामक नागराज अनन्तने वह मूशल ले लिया । हे द्विज ! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावतीके अभि

प्रायको समझकर उससे बड़ा सन्तुष्ट हुवा ॥ ५३-६२ ॥ स्त्रियोंके स्पर्शसे मूशल हतवीर्य हो जाता है, यह बात मुदावती जानती थी और इसीसे उस दिन उसने उसे वारंवार छुआ था। इस कारण बड़े आनन्दसे नागराजने मुदावतीका नाम,—सौनन्द मूशलका गुण जानती थी इसलिये,—सुनन्दा रक्खा। राजपुत्र दोनों राजकुमारों और उस राजकन्याको तुरन्त राजाके पास ले आया और प्रणाम करके बोला,—हे तात! आपकी आज्ञाके अनुसार आपके दोनों कुमारों और मुदावतीको मैं छुड़ा लाया हूं, अब मुझे और क्या करना चाहिये, आज्ञा प्रदान कीजिये। मार्कण्डेयने कहा,—तब महीपतिने प्रेमपूर्वक हृदयसे उच्चस्वरसे मधुर वचन कहा,—साधु, वत्स! साधु, आज मैं तीन कारणोंसे देवताओंके द्वारा प्रशंसित हो रहा हूं। प्रथम तो तुम मेरे जामाता हो रहे हो, द्वितीयतः शत्रु विनष्ट हो गया और तृतीयतः विना आहत हुए मेरे दोनों पुत्र तथा कन्या लौटकर आगयी है। अतः हे राजपुत्र! आजके शुभ दिनमें मेरी आज्ञाके अनुसार कल्याणलक्षणोंसे युक्त और सुन्दर अङ्गोंवाली इस मेरी दुहिता मुदावतीका हर्षपूर्वक पाणिग्रहण करो। इससे तुम मुझे सत्यवादी बनाओगे ॥ ६३-७० ॥ राजपुत्रने कहा,—हे तात! आपकी आज्ञा अवश्य ही पालनीय होनेसे जो आप आदेश करेंगे, वही मैं करूंगा। हे तात! आप जानते ही हैं कि, पूज्य पुरुषोंकी आज्ञाके पालन करनेमें मैं कभी पराङ्मुख नहीं हुआ हूं। मार्कण्डेय बोले,—इसके अनन्तर राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भनन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाह बड़ी धूमधामसे कर दिया। विवाह हो जानेपर नवयुवक वत्सप्री और नवयुवती मुदावती रमणीय देशोंके प्रासादोंमें विहार करने लगे। कालक्रमसे वत्सप्री राजा होकर अनेक यज्ञानुष्ठान करता हुआ धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगा। प्रजा भी उस महात्माके द्वारा पुत्रके समान प्रतिपालित होकर उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी। उसके राज्यमें कभी वर्णसंकरोंकी उत्पत्ति नहीं होती और चोर, हिंस्र पशु, दुर्वृत्त तथा अन्यान्य किसी उपसर्गका किसीको भय नहीं रहा ॥ ७१-७६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका भनन्दन-वत्सप्री-चरित नामक एक सौ सोलहवां अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—वर्णाश्रमश्रृंखला जबतक ठीक ठीक रहती है, तबतक आध्यात्मिक उन्नतिशील मनुष्य-जातिकी पवित्रता बनी रहती है। इस वर्णाश्रमश्रृंखलाके अभावसे और उसे माननेवाली आर्यजातिके आचरणके प्रभावसे जैसा देवलोकका अभ्युदय बना रहता है, वैसा इस मृत्युलोककी मनुष्यजातिका धन-बल, बाहुबल, बुद्धिबल, और विद्याबल पूर्ण रहता है। इस कारण वर्णाश्रमश्रृंखला माननेवाली और उस-

एक सौ सत्रहवां अध्याय।

मार्कण्डेय बोले,—उसी सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीको बारह पुत्र उत्पन्न हुए। उनके नाम इस प्रकार हैं,—प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक्र, विक्रम, क्रम, बल, बलाक, चण्ड, प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। वे सभी महाभाग और संग्रामविजेता थे। उनमेंसे बड़ा भाई महावीर प्रांशु नरपति हुआ और शेष ग्यारह भ्राता भृत्यकी तरह उसके वशवर्ती हो रहे। उसके यज्ञकालमें ब्राह्मणों और अन्य जातिके लोगोंको विपुल अर्थ प्राप्त होनेसे पृथ्वीने 'वसुन्धरा' यह अन्वर्थ ही नाम धारण किया था। औरस पुत्रकी तरह प्रजापालन करनेसे उसके राजकोषमें जो धनसञ्चय होता था और जिस धनसे अनन्त यज्ञकार्य सम्पन्न होते थे, उस धनकी अयुत, कोटि, पद्म आदि संख्याओंसे गणना नहीं की जा सकती थी। प्रांशुके प्रजापति नामक एक पुत्र हुआ। उसके यज्ञमें बलिश्रेष्ठ, शतक्रतु इन्द्रने देवगणसहित यज्ञभागके द्वारा अतुलतृप्ति प्राप्त कर महावीर्यशाली निन्यानबे दानवों, बल और जम्भ नामक असुरराजों तथा अन्यान्य महाबली देवशत्रुओंको मारडाला था ॥ १–६ ॥ प्रजापतिके खनित्र आदि पांच पुत्र हुए थे। उनमें खनित्र ही अपने पराक्रमसे विख्यात राजा हुआ था। वह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंका हितैषी, स्वधर्म-परायण, सर्वदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्रदर्शी, वाग्मी, विनयी, निरहङ्कार, अस्त्रज्ञ और सर्व-लोकप्रिय था। वह सदा यही कहा करता कि, सब प्राणी आनन्दका उपभोग करें, निर्जन स्थानमें भी प्रसन्न रहें, सब जीवोंका मङ्गल हो और सभी नीरोगताका अनुभव करें। प्राणियोंकी व्याधियां मिट जांय, किसीको मनोव्यथा न हो और सब लोग एक दूसरेके प्रतिमित्र भावको प्रकट करते रहें। द्विजातियोंमें परस्पर प्रेम बढ़े और उनका मङ्गल हो, सर्ववर्णोंकी समृद्धि हो और सब कर्मोंकी सिद्धि हो ॥ ७–१५ ॥ हे लोगों! तुम सब प्राणियोंमें सर्वदा मङ्गलमयी बुद्धि प्रवर्त्तित होती रहे। तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्रोंकी हितकामना किया करते हो, वैसेही सब जीवोंके हितकारी बनो। यही तुम्हारे

पर ठीक ठीक चलनेवाली आर्यजाति त्रिलोकका मङ्गल करती रहती है। यही वैदिक दर्शनका निश्चित सिद्धान्त है। प्रजाके वर्णसंकर हो जानेसे यह पवित्र श्रृंखला नष्ट हो जाती है। इसी कारण आ नारियोंमें सती-धर्मका सर्वोपरि आदर रक्खा गया है। इसी कारण एकपतिव्रतरूपी तपस्याको ही वर्णाश्रमधर्मका मूल माना गया है। राजाही अपनी प्रजाको धर्मपर चलानेके लिये जिम्मेवार है। यही कारण है कि, राजा कालका कारण होता है। जो राजा वर्णाश्रमश्रृंखलाको ठीक ठीक चलावे और बिगड़ने न देवे, वही राजा त्रिलोकपूजित होता है ॥ ७१–७६ ॥

लिये अत्यन्त हितकर है। क्यों किसीके निकट कोई अपराधी बने ? यदि कोई मन्द-बुद्धि किसीका अहित करे, तो स्वयं उसका अहित हो जायगा। क्योंकि कर्मफलोंका उसके कर्ताका ही उपभोग करना पड़ता है। हे मानवगण ! इन बातोंकी विवेचना कर तुम दृढ़-निश्चय कर लो। हे बुधगण ! तुम लौकिक पापोंमें प्रवृत्त मत हो। ऐसा करनेसे ही तुम पुण्यलोकोंको प्राप्त कर सकोगे। जो इस समय मुझसे स्नेह करते हैं, पृथ्वीमें उनका सदा मङ्गल हो और जो द्वेष करते हैं, वे भी सदा मङ्गलका उपभोग करें ॥ १५—१६ ॥ समस्त गुणसम्पन्न, पद्मपत्रके समान नेत्रोंवाला, भूपतिपुत्र वह श्रीमान् खनित्र इस प्रकारका था। उसने प्रेमपूर्वक अपने भाइयोंको पृथक् पृथक् राज्योंमें नियुक्त कर दिया था और वह स्वयं सागररूपी साड़ी पहिनी हुई इस पृथ्वीका पालन करने लगा। उसने शौरीको पूर्वदेशोंके, उदावसुको दक्षिणदेशोंके, सुनयको पश्चिमीयदेशोंके और महारथको उत्तरीयदेशोंके राजपदोंपर अधिष्ठित किया था। खनित्र और उसके भाइयोंके वे ही विभिन्नगोत्री मुनिगण पुरोहित नियुक्त हुए, जो वंशानुक्रमसे इस राजकुलको अच्छी मन्त्रणा दिया करते थे। तदनुसार अत्रिकुलोद्भव सुहोत्र शौरीका, गौतमवंशज कुशावर्त्त उदावसुका, काश्यपगोत्रज प्रमति सुनयका और वशिष्ठकुलोत्पन्न ब्राह्मण महारथका पुरोहित हुआ। उक्त चारों भ्राता राजा होकर अपने अपने राज्यका उपभोग करते और समस्त वसुधाधीश खनित्र उनका अधीश्वर था। महाराजा खनित्र उन भाइयों और प्रजाके प्रति वैसा ही हितकर व्यवहार करता था, जैसा पिता पुत्रके प्रति किया करता है ॥ २०—२६ ॥ एकवार शौरीके मन्त्री विश्ववेदीने उससे कहा,—हे महीपाल ! इस समय एकान्त है, इसलिये मैं कुछ कहना चाहता हूं। यह समस्त पृथ्वी और भूपालवृन्द जिसके वशीभूत हैं, वह और उसके पुत्र-पौत्रादि वंशधर ही सदा महाराजा होंगे। उसके अन्य भ्राताओंके अधिकारमें छोटे छोटे राज्य हैं। अब उनके पुत्रोंमें बंटकर वे बहुत छोटे हो जायंगे और उनके भी पुत्र-पौत्रोंमें बंट जानेसे अत्यल्प टुकड़े होंगे तथा इसी क्रमसे

टीकाः—राजकुलके लिये पुरोहितकुलकी बड़ी आवश्यकता है। राजकुलकी पवित्रता और राजकुलके व्यक्तियोंकी सत्‌शिक्षा और सदाचारकी जैसी आवश्यकता है, उसके साथ ही साथ उस राजकुलके ब्राह्मण पुरोहितकुलकी पवित्रता, सत्‌शिक्षा, सदाचार, अभिज्ञता और तपस्याके बढ़ानेकी भी उतनी ही आवश्यकता है। शुद्ध राजकुलोंमें पुरोहितकुलोंकी सुरक्षा न होनेसे ही राजवंश नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं। यही क्षत्रिय और ब्राह्मणकी क्रियाशक्ति और ज्ञानशक्तिकी सहयोगिता है। क्षत्रियोंको उदार, दानशील, लोभरहित, निर्भय और स्वधर्म-परायण होना उचित है। उसी प्रकार पुरोहितकुलके लोगोंको धनत्यागी, तपस्वी, विद्यासेवी, दूरदर्शी और धर्मोपदेश देनेमें निर्भीक होना उचित है। तभी क्षत्रिय और ब्राह्मणकी सहयोगिता संभव होती है ॥ २०—२६ ॥

अन्तमें उनके वंशधरोंको कृषिसे जीविका निर्वाह करनी होगी। हे पृथिवीपाल! भ्रातृ-स्नेहमें आबद्ध होकर भाई कदापि भाईका उद्धार नहीं करता। उन भाइयोंके पुत्र तो एक दूसरेको पराया समझने लगते हैं। हे पार्थिव! और उनको भी जो पुत्र-पौत्र होते हैं, वे अपने ही पुत्रोंकी हितकामना करते हैं। केवल सन्तोष कर लेना ही यदि राजाका कर्तव्य हो, तो वे मन्त्रियोंको क्यों नियुक्त करते हैं? मैं जब कि, मन्त्रीके पदपर नियुक्त हूं, तब यही चाहूंगा कि, समग्र राज्य ही आपका उपभोग्य हो। इसी तरहका मैं उद्योग भी करता रहता हूं। तब आप वृथा सन्तोष किये क्यों बैठे हुए हैं? राज्यकर्ताके कार्यका सम्पादन करनेके लिये करणकी आवश्यकता होती है। राज्यलाभ करना कार्य है, आप कर्ता हैं और मैं करण हूं। अतः करणके द्वारा आप पितृ-पितामहादिके राज्यका शासन कीजिये। इहलोकमें ही आपके लिये मैं फलप्रद हो सकता हूं, परलोकमें नहीं ॥ २७-३७ ॥ राजाने कहा,—वर्तमान महीपाल हमारे जेठे भाई हैं और हम उनके अनुज हैं। इसीसे वे समस्त पृथ्वीका शासन करते हैं और हम छोटी छोटी भूमियोंका उपभोग करते हैं। हे महामते! हम पांच भाई हैं और पृथिवी तो एकही है। फिर समग्र पृथिवीके ऐश्वर्यका स्वतन्त्ररूपसे उपभोग करनेमें हम सभी कैसे समर्थ हो सकेंगे? विश्ववेदीने कहा,—हे नृप! आप जो कहते हैं, वह यथार्थ है। पृथिवी एकही है, यह मैं मानता हूं; किन्तु मेरा अभिप्राय यह है कि, उस पृथ्वीका स्वीकार आपही करें और सबके प्रधान बनकर उसका शासन करें। सर्वाधिकारको प्राप्त कर सब भाइयोंमें आपही अखिलेश्वर हों। उनके नियुक्त किये हुए मेरे जैसे मन्त्री भी ऐसी ही चेष्टा करते रहते हैं। राजाने कहा,—मेरे ज्येष्ठ भ्राता महाराजा हैं और वे हम लोगोंका पुत्रोंके समान स्नेहपूर्वक प्रतिपालन किया करते हैं। फिर मैं क्योंकर उनके राज्यका लोभ करूँ? विश्ववेदी बोला,—वे ज्येष्ठ हैं, तो क्या चिन्ता है? आप जब सब राज्यके पूर्ण अधिकारी हो जायंगे, तब राजाके योग्य उपहारोंसे उनका सम्मान करें। जो राज्यका अभिलाष करते हैं, उन्हें ज्येष्ठ-कनिष्ठका विचार करना ही व्यर्थ है ॥ ३८-४३ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे सत्तम! इसी तरह राजा और मन्त्रीमें बातचीत होते होते अन्तमें मन्त्रीकी बात राजाने मान ली। फिर मन्त्री विश्ववेदीने उसके अन्यान्य भाइयोंको वशीभूत कर लिया और उसके पुरोहितोंको अपने यहांके शान्तिकर्ममें नियुक्त कर खनित्रके अनिष्टके लिये अत्यन्त उग्र आभिचारिक (मन्त्र-तन्त्रादि) कर्मोंके अनुष्ठान बैठा दिये। खनित्रके अन्तरङ्ग विश्वासपात्र सेवकोंको अपनी ओर मिला लिया और ऐसी चालें चलीं, जिनसे शौरीका राजदण्ड अबाधित हो जाय। परन्तु चारों पुरोहितोंके आभिचारिक प्रयोगसे बड़ी भयानक चार कृत्याएँ उत्पन्न हुईं। उन सबके देह अतिविशाल, विकराल और मुंह विकट थे; जिनको देखकर ही छाती दहल

जाती थी। वे चारों दारुण कृत्याएं हाथमें बड़े बड़े शूल ताने हुई थीं। दौड़ी हुई वे पार्थिव खनित्रके पास गयीं सही, किन्तु निष्पाप राजाके पुण्यबलसे तुरन्त ही हतप्रभ हो गयीं। तब वे चारों उन चारों राजपुरोहितों और विश्ववेदीके निकट आ धमकीं।

टीकाः—मीमांसादर्शनका सिद्धान्त यह है कि, जब कोई क्रिया होती है, तो उसकी प्रतिक्रिया होना अवश्यम्भावी है। क्रियाके भी पुनः तीन भेद त्रिभावात्मक अधिकारसे माने गये हैं। यथा,—शारीरिक क्रिया, मानसिक क्रिया और बौद्धिक क्रिया। इन तीनोंमेंसे मानसिक क्रियाका बल सर्वप्रधान है। क्योंकि संकल्पशक्तिका केन्द्र मन ही है। और वह शक्ति बाधारहित होनेपर सर्वव्यापक अधिकारको प्राप्त करती है। दूसरी ओर तप, मन्त्र आदिके द्वारा बल-संचय करनेपर यह शक्ति असम्भवको भी सम्भव कर डालती है। जिस साधकका मनोबल जितना अधिक हो, वह उतना ही अपनी संकल्पशक्तिसे बड़ेसे बड़ा कार्य कर सकता है। उस मनोबलकी वृद्धिके लिये और उसको उपयोगी बनानेके लिये द्रव्यशक्ति, क्रियाशक्ति और मन्त्रशक्तिकी आवश्यकता होती है। द्रव्यगुण और क्रियाकी योग्यताका अधिकसे अधिक होना सम्भव ही है। यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है कि, द्रव्यविशेषसे और क्रियाविशेषसे जैसा कुछ फल उत्पन्न होता है। उसको समझानेकी आवश्यकता नहीं है। दैवीजगत्‌से सम्बन्धयुक्त शब्दको मन्त्र कहते हैं। जिस मन्त्र-विशेषका दैवीराज्यसे जितना अधिक सम्बन्ध हो, अधिक उपयुक्त कालसे सम्बन्ध हो और अधिक सिद्धक्रियासे सम्बन्ध हो, वह मन्त्र उतना ही बलशाली समझा जाता है। यही कारण है कि, सप्तशती आदि स्मार्तमन्त्र और गायत्री आदि वैदिकमन्त्रकी इतनी अलौकिक महिमा पायी जाती है। इसी मन्त्रशक्तिके बलसे ही प्रायश्चित्त, अनुष्ठान आदि द्वारा पूर्व-अर्जित कर्मवेग जैसे कि, एक मत्त हाथी अन्य साधारण हाथीको भगा देता है, उसी प्रकार कर्मके प्रबल धक्के हट जाया करते हैं। अवश्य ही योग्य अनुष्ठानकर्ता, योग्य मन्त्रादि और सुश्रृङ्खलायुक्त क्रिया, इन तीनोंका एकाधारमें समावेश होना ऐसे कर्मोंमें सफलताका कारण हुआ करता है। ये सब कार्य मन्त्र और क्रियाकी सहायतासे दैवीजगत्‌की यथायोग्य दैवीशक्तियोंके द्वारा ही सम्पादित हुआ करते हैं। मन्त्र और यथायोग्य क्रिया सङ्कल्पशक्तिसे नियोजित होकर प्राणकी सहायतासे दैवीजगत्‌में पहुंचती है। और उससे दैवीजगत्‌में प्रभाव उत्पन्न करके नूतन दैवी प्रतिक्रिया प्रकट कराती है। इस दैवीक्रियाके भी तीन भेद हैं। यदि प्रारब्ध अनुकूल हो, तो मृत्युलोकमें बहुत सुगमतासे उसकी प्रतिक्रिया उत्पन्न हो जाती है। यदि प्रारब्ध समान बलशाली हो, तो दैवीजगत्‌की प्रेरणा मनुष्यपिण्डमें उत्पन्न होकर फल उत्पन्न करती है। और यदि अनुष्ठानादि क्रिया प्रारब्धके प्रतिकूल हो, और साथही साथ वह क्रिया किसी अति बलवान् कार्यके लिये नियोजित हो, तो ऐसी दशामें दैवीशक्तियोंको यथायोग्य कार्यके निमित्त कार्यक्षेत्रमें उपस्थित होकर कार्य करना पड़ता है। यदि वह कार्य सत् हो, तो भयकी सम्भावना नहीं है और यदि वह कार्य असत् हो, तो ऐसी दशामें उससे हानिकी भी सम्भावना होती है। जैसा कि, विश्ववेदीके उदाहरणमें पाया जाता है। इस प्रकारके अनुष्ठानोंको कई श्रेणीमें विभक्त कर सकते हैं। यथा—रोग, विपत्ति आदिके दूर करनेके लिये अनुष्ठान, पापके दूर करनेके लिये प्रायश्चित्त आदि, इष्ट, ऐश्वर्य आदि प्राप्तिके निमित्त तपस्या आदि और परपीडाजनित स्वार्थसिद्धिके लिये अभिचारादि। इनमेंसे चौथे अभिचारादिका पूर्वोक्त उदाहरण है, जो सिद्धकर्ता, सिद्धमन्त्र और सिद्धक्रियाके एकाधारमें समावेश होनेसे सिद्ध होना सम्भव है। दैवीजगत् और मन्त्रादिपर विश्वास रखनेवाले आस्तिकजन इसको मानते और योगिगण इसका अनुभव करते हैं।

उन्होंने पहिले तो शौरीको दुष्ट परामर्श देनेवाले विश्ववेदीको और फिर चारों पुरोहितों-को मार गिराया और सबको जलाकर भस्म कर डाला ॥ ४४—५१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनित्र-चरित्र सम्बन्धी एक सौ सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ अठारहवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—उस समय सबको इस बातका बड़ा ही विस्मय हुआ कि, पृथक् पृथक् नगरोंके अधिवासी होते हुए सबके सब एक साथ कैसे नष्ट हो गये! हे मुनिसत्तम! महाराज खनित्रने अपने भाइयोंके पुरोहितों और एक भाईके मन्त्री विश्ववेदीके एकाएक भस्म हो जानेका जब समाचार सुना, तब उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसे इसका कारण ज्ञात नहीं था, इसलिये वह चिन्तामें पड़ गया कि, यह कैसे और क्यों हुआ? इतनेमें वहां महामुनि वशिष्ठ पधारे। उनके पधारनेपर महाराज खनित्रने इस घटनाका उनसे कारण पूछा। तब वशिष्ठने अन्तर्दृष्टिसे ज्ञात कर शौरी और उसके मन्त्रीमें जो बातचीत हुई थी, उस दुष्ट मन्त्रीके द्वारा भाई-भाइयोंमें वैमनस्य होनेके लिये जो जो कार्य किये गये थे, पुरोहितोंने जो कुछ किया था और शत्रुके प्रति भी दया करनेवाले वे पुरोहित जिस कारणसे निरपराधीका अपकार करनेके लिये उद्यत होकर विनष्ट हो गये थे, वह सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ १—७ ॥ हे द्विज! राजाने वह सुनकर कहा,—"हा! हतोऽस्मि"। फिर वशिष्ठके सम्मुख वह अपनी ही निन्दा करने लगा। राजा बोला,—मुने! मेरे पास पुण्यका सञ्चय नहीं है। मैं हतभागी और बड़ा ही अयोग्य हूं। दैव मेरे प्रतिकूल है और मैं सब लोकोंमें निन्दित और पापी हूं। मुझे धिःकार है। क्योंकि मेरे कारण ही चार ब्राह्मणोंका विनाश हुआ। अतः

अब शङ्का-समाधानके लिये कहा जाता है कि, ऐसी क्रियाओंमें जो विफलता देखी जाती है, उसके अनेक कारण हैं। यथा,—कालशुद्धि न होना, अनुष्ठानकर्ता योग्य न होना, अनुष्ठानका ज्ञाता होनेपर भी ब्रह्मचर्य और सत्य आदिके अभावसे कर्ताका मनोबल नष्ट हो जाना, मन्त्रशुद्धि न होना, यदि सिद्ध मन्त्र भी हो, तो उस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त न करना, अनुष्ठानमें द्रव्यशुद्धि न होना, उसमें क्रियाभंग हो जाना, जिसके लिये अनुष्ठान हो रहा है, उसका प्रारब्ध अतिबलवान् होना, दैवीकृपा और गुरुकृपा प्राप्त करनेसे विरुद्ध क्रियाका अवरोध होना इत्यादि। इन सब मौलिक रहस्योंको सामने रखकर ही ऐसे साधन होने चाहिये ॥ ४४—५१ ॥

मुझसे बढ़कर भूमण्डलमें दूसरा पापी कौन हो सकता है? यदि मैं पृथिवीमें पुरुष होकर जन्म ग्रहण न करता, तो मेरे भाइयोंके पुरोहितोंका नाश क्यों होता? मैं ही उन ब्राह्मणोंके विनाशका कारण हुआ हूँ; अतः मेरे इस राज्यको तथा महत् राजकुलमें हुए मेरे जन्मको धिःकार है। मेरे भ्राताओंके याजक अपने प्रभुका कार्य-साधन करते हुए विनष्ट हुए हैं, अतः वे दोषी हो नहीं सकते। उनके विनाशका कारण मैं हुआ हूं, अतः मैं हो दोषी हूं। इस समय मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ब्राह्मण-हत्याका कारण बना हुआ मुझ जैसा पापकारी पृथ्वीमें दूसरा नहीं है॥ ८—१४॥ इस प्रकार महिपाल खनित्रने उद्विग्न होकर वनमें चले जानेकी इच्छासे अपने क्षुप नामक पुत्रको राज्याभिषेक कर दिया और तीनों पत्नियोंको साथमें लेकर तपस्याके लिये वनमें गमन किया। उस नृपश्रेष्ठने वनमें जाकर वानप्रस्थ विधानके अनुसार साढ़ेतीन सौ वर्षोंतक उत्तम तपस्या की। फिर हे द्विजोत्तम! राजकुलतिलक उस वनवासी राजाने तपस्याद्वारा अपने शरीरको क्षीण कर, सब इन्द्रियोंका निरोध करते हुए प्राणोंका विसर्जन कर दिया। अन्यान्य नृपति सैकड़ों अश्वमेध करके भी जिस लोकको प्राप्त नहीं कर सकते, खनित्रने मृत्युके पश्चात् उस सर्वाभीष्टप्रद अक्षय्य पुण्यलोकको प्राप्त किया। उसकी तीनों पत्नियोंने भी स्वामीके साथ प्राणोंका परित्याग कर उसी लोकमें गमन किया, जिस लोककी प्राप्ति उस महात्माको हुई थी। हे महाभाग! मैंने यह खनित्रका चरित कह सुनाया है। इसका श्रवण या पाठ करनेसे सब पापसमूह नष्ट हो जाते हैं। अब मैं क्षुपका चरित कहता हूं, वह सुनो॥ १५—२१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनित्र-चरित नामक एक सौ अठारहवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ उन्नीसवां अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—खनित्र-पुत्र क्षुपके राज्य प्राप्त करनेपर वह भी पिताकी तरह प्रजाका मनोरञ्जन करता हुआ धर्मानुसार पालन करने लगा। राजा क्षुप भी अनेक यज्ञोंका कर्ता, दाता और व्यवहारादि मार्गसे शत्रु-मित्रको समान समझनेवाला था। हे मुने! एक दिन राजा सिंहासनपर विराजमान था। उससे सूतों (स्तुति-पाठकों) ने कहा,—महाराज! आप पूर्ववर्ती क्षुपकी तरह शोभा पा रहे हैं। ब्रह्माके पुत्र क्षुप जिस प्रकारके पृथिवीपति थे, उनका जैसा चरित्र और जैसी चेष्टा थी, ठीक उसी प्रकार

की आपकी भी है। राजा बोला,—महात्मा क्षूपका चरित्र मैं सुनाना चाहता हूँ। मैं ऐसी चेष्टा करूँगा, जिससे उनके जैसा आचरण करनेमें समर्थ हो सकूँ ॥ १—५ ॥ सूतोंने कहा,—हे राजन्! वह क्षूप राजा गौ-ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें कर नहीं लेता था और जो प्रजासे षष्ठांश भूमि-कर मिलता था; उसीसे यज्ञादि कार्य सम्पन्न करता था। राजाने कहा,—मेरे जैसे व्यक्ति भला उन जैसे महात्माओंके कार्योंका कैसे अनुकरण कर सकते हैं? यह तो सम्भव नहीं प्रतीत होता। तथापि उन महापुरुषोंका आचरण जैसा उत्कृष्ट था, उसका अनुकरण करनेकी चेष्टा करना उचित है। अतः अब मैं जो प्रतिज्ञा करता हूं, उसे सुनो। आजसे मैं महाराज क्षूपके कार्योंका अनुकरण करूँगा और भूत, वर्तमान तथा भविष्यकालमें कृषिसे जो कर मैंने लिया है, लेता हूं और लूँगा, उससे तीन तीन यज्ञ करूंगा। चार समुद्रोंसे घिरी हुई पृथ्वीमें मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि, इससे पहिले मैंने जो गो-ब्राह्मणोंके सम्बन्धमें राज-कर ग्रहण किया है, वह सब गो-ब्राह्मणोंके ही काममें लगा दूंगा ॥ ६–१० ॥ मार्कण्डेयने कहा,—याज्ञिक-श्रेष्ठ क्षूपने जैसी यह प्रतिज्ञा की, वैसी वह निबाही भी। यज्ञ करनेमें प्रवीण उस राजाने प्रत्येक कृषिके समयमें तीन तीन यज्ञ किये और गो-ब्राह्मणोंसे पहिले जो राज-कर ग्रहण किया था, वह गो-ब्राह्मणोंके ही काममें लगा दिया। क्षूपकी प्रमथा नामकी पटरानीके गर्भसे एक सुन्दर और महा-वीर पुत्र उत्पन्न हुआ। उस पुत्रने शूरता, वीरता और बल आदि गुणोंसे अनेक मही-पालोंको वशीभूत कर लिया। विदर्भराजकी नन्दिनी नामक कुमारीसे उसका विवाह हुआ था। उस प्रधान पत्नीसे उसे विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ११—१४ ॥ महावीर विविंशके शासनकालमें पृथ्वी प्रजावृन्दके द्वारा ऐसी व्याप्त हो गयी थी कि, कहीं किसीको रहनेके लिये कोई स्थान नहीं बच रहा था। तब मेघ यथासमय वर्षा करते और वसुन्धरा भी उसी तरह शस्य-सम्पन्ना हुआ करती थी। सभी शस्य फल-शाली होते, सब फल रसीले होते, सब रस पुष्टिकारी होते और और सब पुष्टि उन्मादको न बढ़ानेवाली हुआ करती थी। सब मनुष्य विपुल-सम्पत्तिशाली होते हुए भी उन्मत्त नहीं थे। हे महामुने! शत्रुगण उसके प्रतापसे डरा करते कभी निश्चिन्त नहीं होते थे। उसके सुहृद्वर्ग सन्तुष्ट-चित्तसे कालयापन करते थे। इस प्रकार विविंश राजाने अनेक यज्ञानुष्ठान कर और उत्तम प्रकारसे राज्यशासन कर संग्राममें मारे जाकर इन्द्रलोकको प्राप्त किया ॥ १५—२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका विविंशचरित नामक एक सौ उन्नीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बीसवां अध्याय ।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—महाबली विक्रमशाली खनीनेत्र विविंशका पुत्र था। उसके यज्ञानुष्ठानोंको देखकर गन्धर्वोंने विस्मित होकर यह गान गाया था,—खनीनेत्रके समान यज्ञ करनेवाला इस भूमण्डलमें कोई न होगा। क्योंकि इसने अयुत (दश सहस्र) यज्ञ किये हैं और ससागरा पृथ्वी तक दान कर दी है। महाराज खनीनेत्रने महात्मा ब्राह्मणोंको समस्त पृथ्वी दान देकर तपस्याके द्वारा नाना द्रव्योंको प्राप्त कर उनकी सहायतासे फिरसे छुड़ा ली थी। हे विप्र! दाताओंमें श्रेष्ठ उस राजासे दानमें विपुल वित्त प्राप्त कर ब्राह्मणोंका अन्यत्र प्रतिग्रह करना नहीं पड़ता था। उसने तिहत्तर हजार सात सौ सड़सठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञमें प्रभूत दक्षिणा प्रदानकी थी ॥ १-५ ॥ हे महामुने! एकदा महीपाल खनीनेत्र अपुत्र होनेके कारण पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करनेकी इच्छासे मांसका अभिलाषी हुआ और उसी समय शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित होकर सैनिकोंको साथमें न लेकर अकेला ही घोड़पर सवार हो, वनमें मृगयाके लिये चल पड़ा। एक वनसे जब वह दूसरे वनमें दौड़कर प्रवेश कर रहा था, इतनेमें एक मृग बाहर निकल आकर बोला,—हे महाराज! आप मेरा वध कर अपना काम बना लीजिये। राजाने उत्तर दिया,—अन्यान्य मृग मुझे देखते ही महाभीत होकर भाग निकलते हैं, फिर तुम ही क्योंकर मृत्युके लिये आत्मप्रदान करनेकी इच्छा कर रहे हो? मृगने कहा,—महाराज! मैं सन्तानहीन हूं, इस कारण सोचता हूं कि, मेरा जीना वृथा है ॥ ६-१० ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह बातचीत हो ही रही थी कि, इतनेमें वहीं एक दूसरा मृग निकल आकर बोला,—हे पार्थिव! इस मृगको लेकर आप क्या करेंगे? मुझे मारकर मेरे मांसके द्वारा आप अपना कार्य सम्पादन कीजिये। ऐसा करनेसे आपका काम बन जायगा और मुझपर भी बड़ा उपकार होगा। महाराज! आप पुत्रकी कामनासे पितरोंके

टीका:—पशुओंमें मनुष्योंकी तरह वाक्शक्ति, बुद्धितत्वका विकाश और वैराग्यादि उच्च वृत्तियां कैसे रहती हैं, इन शङ्काओंका समाधान यद्यपि पहिले कुछ किया गया है, तथापि यहां पुनः कहा जाता है कि, आरूढ़पतित जीव जो पशुयोनिमें आते हैं, अर्थात् मानवपिण्ड और दैवपिण्डके जीव जो पापभोगके निमित्त थोड़े समयके लिये आरूढ़पतित होकर सहजपिण्डरूपी पशुयोनिमें आजाते हैं, उनमें इन सब बातोंका या इनमेंसे कुछ बातोंका होना सम्भव होता है। दूसरा वैज्ञानिक कारण यह है कि, एक कल्प जो लाखों वर्षोंका होता है, इस कारण कल्पान्तरकी सृष्टिके जीवोंकी शक्तिमें भी न्यूनाधिक होना स्वतःसिद्ध है ॥ ६-१० ॥

उद्देश्यसे यज्ञ करने जा रहे हैं, फिर इस सन्तानहीनके मांससे आपका उद्देश्य कैसे सिद्ध होगा ? क्योंकि जो कर्म जिस प्रकारका हो, उसके लिये उसी प्रकारके द्रव्याका जुटाना भी आवश्यक होता है। देखिये, दुर्गन्धके द्वारा सुगन्धित वस्तुओंके गन्ध-ज्ञानका निर्णय हो नहीं सकता। राजाने कहा,—पहिले मृगके वैराग्यका कारण उसने अपुत्रता बताया है, किन्तु तुम्हारे प्राणत्याग-विषयक वैराग्यका क्या कारण है ? वह कहो ॥ ११—१५ ॥ मृगने कहा,—हे राजन्! मेरे पुत्र-कन्याएं बहुत हैं। उनकी चिन्तासे ही मुझे दुःख-दावानलमें जलना पड़ता है। हे नरेन्द्र! मृगजाति स्वाभाविकरूपसे ही कातर होती है। सभी हिंस्र पशु हमारे भक्षक हैं और अपनी सन्तानके प्रति हमारी अपार ममता होती है। इसीसे हमें सदा दुःख भोग करना पड़ता है। मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, भेड़िया, अधिक तो क्या, सब प्राणियोंमें अत्यन्त निकृष्ट सियार-कुत्तोंसे भी हमें भय करना पड़ता है। इस कारण हम सदा यही इच्छा किया करते हैं कि, यह पृथिवी मनुष्य, सिंह आदिके भयसे शून्य हो जाय; जिससे यहां हम निर्विघ्न होकर रह सकें। गो, मेष, छाग, अश्व प्रभृति पशु घास खाते हैं। वे जीवित रहकर यदि पृथ्वीका सब तृण खा जायंगे, तो मेरी पुत्र-कन्याओंको खानेके लिये क्या बच रहेगा ? इसीसे उनके

टीका:—राजा और पशु दोनोंके निःसन्तान होनेका जो दुःख और सन्तानरहित व्यक्तिको नरकका भय होना पाया जाता है, इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, सन्तति ही प्रजातन्तुकी रक्षा करती है। पुत्र पिताका प्रतिकृति होकर जन्मता है और धार्मिक-पुत्र पिताके सब धर्म और कर्तव्यानुष्ठानोंको सम्हाल लेता है। मृत्युलोक अन्य सब लोकोंका केन्द्र है। अन्य सब लोकोंमें आवागमनचक्र द्वारा घूमकर जीव बार बार इस मृत्युलोकमें आया करता है। यह मृत्युलोक कर्मभूमि होनेके कारण यहां पुनः अच्छे कर्म करके जीवको आध्यात्मिक उन्नति करनेका अवसर मिलता है। स्थूलदेहको बनाने और उसको ठीक रखनेका काम अर्यमा आदि नित्य-पितृगण करते हैं। उनको नियमित तृप्त करना तभी संभव है, जब प्रजातन्तुकी रक्षा हो और संततिकी धारा चलती रहे। दूसरी ओर परलोकगामी आत्माको उसके पुत्रपौत्रादिगण श्राद्ध-तर्पणादि कर्म द्वारा परलोकमें सहायता पहुंचा सकते हैं। तीसरी ओर आध्यात्मिक उन्नतिशील वंशपरम्पराकी सृष्टि ऋषि, देवता, पितृ तीनोंके ही संवर्धनका कारण बनती है, जिससे समग्र दैवलोक संवर्द्धित होता रहता है। यही कारण है कि, प्रवृत्तिमार्गके व्यक्तियोंके लिये सन्तानका होना सबसे परम आवश्यकीय माना गया है। चौथी ओर ऋषि, देवता और विशेषतः पितृगणके सम्वर्द्धित करनेकी जो शृंखला है, उस शृंखलाके छिन्न होनेसे ऐसे पुत्रहीन व्यक्तिको प्रत्यवायी होना पड़ता है। इस प्रत्यवायसे उसको नरक-यन्त्रणा भोगना भी सम्भव है। क्योंकि जो मनुष्य अपना कर्तव्य पालन नहीं करता वह अवश्य नरकगामी होता है। जैसे कि, नित्यकर्मके न करनेसे मनुष्यको नरकभोग करना पड़ता है। ये ही चारों बातें अपुत्रकके नरक होनेकी कारण हैं। यद्यपि यह नियम पशुके लिये लागू नहीं होता, तथापि आरूढ़पतित होनेसे यही नियम पशुके लिये भी लागू है ॥ ११–१५ ॥

पोषणके निमित्त हम घास खानेवाले पशुओंके निधनकी इच्छा करते हैं ॥१६—२०॥ हमारी पुत्र-कन्याएं यदि कभी बिछड़ जाती हैं, तो स्नेहके कारण हमें बड़ी चिन्ता हो जाती है। हम सोचने लगते हैं कि, कोई बच्चा कहीं कूटपाशमें फंसकर या वज्र अथवा अन्य आयुधसे मारा तो नहीं गयाहै, या सिंहादिके द्वारा भक्षित तो नहीं हुआ है? इसी समय जो बच्चे महारण्यमें चरने गये हैं, कहा नहीं जा सकता कि, उनकी क्या अवस्था होगी। हे नृप! पुत्रगण जब पास रहते हैं, तब उन्हें देखकर कुछ भरोसा हो जाता है। किन्तु सारी रात उनके मङ्गलके लिये चिन्ता करनी पड़ती है। सबेरा हो जाता है, तो सारा दिन और सूर्यास्त हो जानेपर सारी रात हमें चिंतामें ही बितानी पड़ती है। अन्ततः सब समय हम निरापद रहें, ऐसे विचारमें ही प्रतिक्षण पड़े रहते हैं। हे भूप! यही हमारे उद्वेगका कारण है। अब आप कृपाकर मुझपर बाण चलाइये ॥ २१—२५॥ हे पार्थिव! किस कारणसे मैं सैकड़ों दुःखोंसे पछाड़ा जाकर प्राणत्यागकी इच्छा करता हूँ, यह आप समझ लीजिये। जो आत्महत्या करते हैं, वे असूर्य नामक नरकमें जा गिरते हैं और जो पशु यज्ञके काममें आते हैं, उन्हें सद्गति प्राप्त होती है। पूर्व्वकालमें अग्नि, वरुण और सूर्य पशुत्वको प्राप्त कर यज्ञकार्यमें नियुक्त हुए थे और उन्हें सद्गति प्राप्त हुई थी। अतः हे नृप! मेरे प्रति अनुग्रह कर मुझे सद्गति प्रदान करें। इससे आपको पुत्र लाभ होकर आपका अभीष्ट सिद्ध हो जायगा ॥ २६—३०॥ पहिले मृगने कहा,—हे राजेन्द्र! यह मृग हत्याके योग्य नहीं है, क्योंकि जिसे बहुत सन्तति होती है, वह सुकृति और धन्य है। मैं पुत्रहीन हूं, अतः मेरा वध करना उचित है। दूसरे मृगने कहा,—अकेले देहके लिये ही जिसे कष्ट सहना पड़ता है, ऐसे तुम जैसे जीव धन्य हैं। जिनके अनेक देह हैं, उनके कष्ट भी नानाविध हुआ करते हैं। पहले मैं अकेला था, तब मेरा दुःख भी एक देहजन्य था, किन्तु जब मेरी पत्नी आयी, तो स्नेहके कारण वह दुःख भी दो भागोंमें विभक्त हो गया। अब तो जितनी सन्तति उत्पन्न हुई है, देह भी उतने ही भागोंमें विभक्त हो गया है और उतने देहोंका दुःख सहना पड़ता है। जब कि, तुम्हें अधिक दुःख भोगना नहीं पड़ता, तब तुम कृतार्थ क्यों कर नहीं हो? मेरी सन्तति इस लोकमें दुःखकी कारण है और परलोक सम्बन्धमें भी विरोधी है। देखो, मैं अपत्यके रक्षण और पोषणके लिये जो कुछ करता हूं और विचार करता हूं, वह निःसन्देह नरक-गमनका कारण है ॥ ३१-३६॥ राजाने कहा,—हे मृग! सपुत्रक और अपुत्रकमें कौन

टीकाः—द्वितीय मृगकी चिन्ता एक ओर मृगसन्तति नष्ट होनेकी और दूसरी ओर व्याघ्रादि हिंस्र तथा अन्य शाकाहारी प्राणियोंके नाशकी केवल भयमूलक है। परन्तु उसकी जो कथा वरुण, सूर्य और अग्निके विषयमें है, वह अध्यात्मभावमूलक है। वह आधिभौतिक वर्णन नहीं है ॥२६-३०॥

धन्य है, इसका निश्चय मैं नहीं कर सकता। मेरा जो कुछ उद्योग है, वह पुत्रके ही लिये है। अतः मेरा मन बड़ा डांवाडोल हो रहा है। यह बात सही है कि, सन्ततिके कारण इहलोक और परलोकमें दुःख भोगना पड़ता है, किन्तु यह भी सुनता हूं कि, अपुत्रक व्यक्ति निरन्तर ऋणी रहता है। अतः, हे मृग! मैं प्राणिवध न कर पहिलेके महीपतियांकी तरह प्रचण्ड तपस्याके द्वारा पुत्रप्राप्तिकी चेष्टा करूंगा ॥ ३७-३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका खनीनेत्र चरित नामक
एक सौ बीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ इकीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—अनन्तर खनीनेत्र नृपति पापनाशिनी गोमतीके तटपर जाकर संयतेन्द्रिय होकर देव-पुरन्दरका स्तवन करने लगा। हे महामुने! राजाने काया, वाणी और मनको संयत कर पुत्रकी इच्छासे जब इन्द्रका स्तवन किया, तब उसके स्तवनसे सन्तुष्ट होकर सुरेश्वरने कहा,—हे भूप! तुम्हारी भक्ति और स्तुतिवाक्योंसे मैं परितुष्ट हुआ हूं; इस कारण जो मांगना हो, वह वर मांगलो। राजा बोला,—मैं पुत्रहीन हूं; अतः यह वर दीजिये कि, मुझे सब शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ, सर्वदा अव्याहत ऐश्वर्यसम्पन्न, धर्मज्ञ, धर्माचरणपरायण और कृती पुत्र हो ॥ १-५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजाकी प्रार्थना सुनकर इन्द्रके 'तथास्तु' कहने पर राजा प्रजापालनके हेतु अपने नगरमें लौट आया। उसे फिर यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करते हुए इन्द्रकी कृपासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। भूपतिने उसका नाम बलाश्व रक्खा और उसे समस्त अस्त्रविद्या सिखायी। हे विप्र! पिताकी मृत्युके पश्चात् बलाश्व साम्राज्येश्वर राजा हुआ और उसने पृथ्वीके समस्त राजमण्डलको वशीभूत कर लिया। फिर उसने विवाह किया

टीकाः—राजाका पहिले प्रवृत्तिधर्मके अनुसार अभ्युदयमूलक विचार था। इस कारण पितृयज्ञ, श्राद्धादिके करने और मांसादि संग्रह करनेकी उसमें रुचि थी। जो गृहस्थके लिये स्वाभाविक धर्म है। परन्तु अन्तमें दोनों आरूढ़पतित मृगोंके कथोपकथनसे विषय-वैराग्यकी वृद्धि होनेपर उसे निवृत्तिधर्मका अधिकार प्राप्त हुआ। तब वह नृपवर दृष्ट और आनुश्रविक विषयोंकी इच्छासे रहित होनेसे उसको निवृत्तिधर्मका अधिकार प्राप्त हुआ और तब वह अभ्युदयमार्गको छोड़कर निःश्रेयस मार्गका पथिक बन गया और उसने तपस्या आदि जो की, वह निःश्रेयसके लिये ही की थी। अतः इस गाथासे श्राद्ध आदिकी निन्दा नहीं है। बल्कि निवृत्तिधर्मकी श्रेष्ठता पायी जाती है ॥३०-३५॥

और प्रजाओंसे कर लेकर उनका वह उत्तम रीतिसे प्रतिपालन करने लगा ॥ ६–१० ॥ अनन्तर वे सब नरपति, जो बलाश्वके अधीन थे, उन्मत्त होकर बिगड़ खड़े हुए और उनका साथ बलाश्वके बन्धु-बान्धवोंने दिया। उन सबने कर देना बन्द कर दिया और स्वाधीनभावसे अपने अपने राज्योंका शासन वे करने लगे। इतनेसे ही सन्तुष्ट न होकर उन्होंने नरेन्द्र बलाश्वकी अधिकृत भूमिपर भी अधिकार कर लिया। हे मुने! पृथ्वीश्वर बलाश्वने उन विरोधी राजाओंसे युद्ध किया, परन्तु पर्याप्त बल न होनेसे वह हार गया और अपने ही छोटेसे राज्यका अधिकारी बनकर अपनी राजधानीमें रहने लगा। युद्धके सब साधनों और धनबलसे सम्पन्न उन राजाओंने फिर उसकी राजधानीको ही घेर लिया। इससे महीपति बहुत क्रुद्ध हुआ, परन्तु बलशाली होते हुए भी उसका कोष, क्षीण हो जाने और दण्डाधिकारके शिथिल होनेसे आत्मरक्षाका उसे कोई उपाय नहीं सूझ पड़ा। अन्तमें कातर और व्यथित-हृदय होकर उसने अपने दोनों हाथ मुंहके सामने कर, दीर्घ निःश्वास परित्याग किया। उसके हाथोंमें मुंहकी हवा लगनेसे अंगुलियोंके बीचके छिद्रोंमेंसे सैकड़ों योधा, हाथी, रथ, घोड़े आदि निकल पड़े ॥ ११—१७ ॥ हे मुने! थोड़ेही समयमें बलशाली उस सर्वोत्कृष्ट सैन्यसमूहने समस्त नगरको व्याप्त कर डाला। उस महासेनाको साथ लेकर बलाश्व राजधानीके बाहर निकल आया और उसी सेनाकी सहायतासे उसने समस्त शत्रुदलको छार-खार कर दिया। हे महाभाग! इस प्रकार बलाश्वने सबको हराकर पहिलेकी तरह उन्हें कर देनेके लिये विवश किया और वह सब लोगोंमें सौभाग्यशाली माना जाने लगा। बलाश्वके 'धूत' अर्थात् कम्पित करोंमेंसे अरिनिशूदन सेना उत्पन्न हुई थी, इस कारण वह 'करन्धम' नामसे विख्यात हुआ। करन्धम त्रिलोकमें विख्यात, धर्मात्मा, महात्मा और सब प्राणियोंके साथ मित्रभावापन्न था। उस राजाने धर्मके दिये हुए बलको प्राप्त कर परम दुःखित प्रजावृन्दके शत्रुओंका विनाश किया था ॥ १८—२३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका करन्धम-चरित नामक एक सौ इक्कीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बाईसवां अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—वीर्यचन्द्र राजाकी सुन्दर भौंहोंवाली और शुभ व्रतोंका आचरण करनेवाली वीरा नामकी कन्याने महाराज करन्धमको स्वयंवरमें पति रूपसे

वरण किया था। उसीके गर्भसे उस राजेन्द्रने अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया था। पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने दैवज्ञोंको बुलाकर पूछा कि, इस कुमार-का जन्म शुभलग्न और शुभनक्षत्रमें तो हुआ है? इसके जन्मलग्नपर सब शुभ ग्रहोंकी शुभ दृष्टि तो है? बुरे ग्रहोंकी तो उसपर दृष्टि नहीं पड़ी है? राजाके इस प्रकार पूछने पर दैवज्ञोंने उत्तर दिया कि, हे महाराज! आपका यह कुमार प्रशस्त मुहूर्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्नमें उत्पन्न हुआ है। इससे यह महाभाग्यवान, महावीर्यवान् और महाबलशाली महाराजा होगा ॥ १—६ ॥ यह देखिये, आपके इस पुत्रको सप्तमस्थ बृह-स्पति और शुक्र, चतुर्थस्थ चन्द्रमा तथा एकादशस्थ बुध देख रहा है। इस पुत्रके प्रति रवि, मङ्गल और शनिकी दृष्टि नहीं है। अतः हे महाराज! आपका पुत्र धन्य और सब कल्याणकारी सम्पदाओंसे युक्त होगा। मार्कण्डेयने कहा,—देवज्ञोंके उक्त वाक्य श्रवण कर वसुधेश्वर प्रीतिपूर्ण अन्तःकरणसे अपने सिंहासनपर बैठे बैठे कहने लगा, इस पुत्रको बृहस्पति और बुध तो देख रहे हैं, किन्तु रवि, शनि और मङ्गल नहीं देखते। आप लोगोंने बार बार 'अवेक्षत' (देखिये) शब्दका उपयोग किया है, इस कारण यह पुत्र 'अवीक्षित' नामसे विख्यात होगा ॥ ७-१२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—वेद-वेदाङ्गपारग उस राजपुत्र अवीक्षितने महर्षि कण्वके पुत्रसे निखिल अस्त्रविद्याकी शिक्षा प्राप्तकी थी। वह रूपमें देववैद्य अश्विनीकुमारोंसे, बुद्धिमें वाचस्पतिसे, कान्तिमें चन्द्रमासे, तेजमें सूर्यसे, धैर्यमें समुद्रसे और सहिष्णुतामें पृथिवीसे भी बढ़कर था और कोई भी व्यक्ति उस महात्माके समान शौर्यशाली नहीं था। स्वयंवरमें उसे हेमधर्मकी कन्या वरा, सुदेवकी कन्या गौरी, बलिकी पुत्री सुभद्रा, वीरभद्रकी कन्या लिभा, वीरकी कन्या लीला-वती, भीमकी पुत्री मान्यवती और दम्भकन्या कुमुद्वतीने वरण किया था। अन्य जिन राजकन्याओंने उसे स्वयंवरमें सम्मानित नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त वह राजपुत्र अपने पराक्रमसे उनके पितृकुलके राजवृन्दको पराजित कर उन्हें बलप्रयोगके द्वारा हरण कर लाया ॥ १३—१८ ॥ हे विप्रर्षे! एक बार विदिशाधिपति विशालराजकी कन्या सुदती वैशालिनीने स्वयंवरमें उसे नहीं वरा, इससे असन्तुष्ट होकर बलके गर्वमें भरकर अन्यान्य राजकन्याओंको जिस प्रकार वह हरण कर लाया था, उसी प्रकार समस्त भूपालोंको हराकर उसको भी हर लाया। इस कारण समस्त राजवृन्द मानी अवीक्षितके द्वारा वारंवार पराजित होनेके कारण दुःखित चित्तसे व्याकुल होकर आपसमें कहने लगे,—एकजातीय बलशाली संघटित राजाओंके रहते हुए अकेला वीर इस ललनाको उठाकर लेजाय और हम उसे देखते हुए सहते जांय, यह हमारे लिये बड़ी ही धिःकारकी बात है। दुष्टोंके द्वारा मारे जाते हुए व्यक्तिको जो बचाता है, उसीका नाम सचा

क्षत्रिय है; अन्य लोगोंने तो क्षत्रिय नाम वृथा ही धारणकर रक्खा है। औरोंकी तो बात ही क्या है, हम लोग स्वयं इस दुष्टसे अपनी ही रक्षा करनेका उद्योग नहीं करते, इस प्रकार हमारा क्षत्रिय कुलमें जन्मग्रहण करना कहांतक ठीक है? हे वीरवृन्द! सूत, मागध और वन्दिजन अपनी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो और शत्रुका विनाश कर उसे हम सत्यके रूपमें परिणत करें ॥ २०-२५ ॥ अपने नामके साथ जोड़ा जानेवाला 'भूप' शब्द दिग्दिगन्तमें वृथा प्रचारित न होने पावे। हम सभी विशिष्ट कुलोंमें उत्पन्न हुए हैं, इस कारण सभी पौरुषशाली हैं। कौन व्यक्ति मृत्युका भय नहीं करता और युद्धपरित्याग करके भी कौन अमर हुआ है? यह सब विवेचना कर, शस्त्रधारीमात्रको पौरुषका त्याग करना उचित नहीं है। परस्परकी इन बातोंसे सब भूपाल बहुत क्रुद्ध होकर सभी आपसमें उत्साहपूर्ण बातचीत करने लगे और शस्त्र तानकर उठ खड़े हुए। कोई रथपर, कोई हाथीपर और कोई घोड़ेपर आरूढ़ हुए तथा कोई क्रुद्धचित्तसे पैदल सवार बनकर अवीक्षितसे सामना करनेके लिये चल पड़े ॥ २६-३० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी एक सौ बाईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तेईसवाँ अध्याय।

—:०*०:—

मार्कण्डेयने कहा,—इस प्रकार अवीक्षितके द्वारा अनेक वार पराजित हुए वे राजपुत्र और राजन्यगण सुसज्जित होकर संग्राममें उतर आये। हे मुने! तब बहुसंख्यक भूपालों और राजपुत्रोंके साथ अकेले अवीक्षितका घनघोर संग्राम प्रारम्भ हुआ। वे सब रणमदमें भरे हुए राजन्यगण तलवार, शक्ति, गदा, बाण आदि आयुधोंके द्वारा अवीक्षित पर आघात करने लगे और वह भी अकेला उन सबसे सामना करता जाता था। अस्त्रज्ञ बलवान् राजपुत्र अवीक्षितने उनपर सैकड़ों तीक्ष्ण बाण छोड़े और वे भी सब उन बाणोंसे विद्ध हो गये। राजपुत्र अवीक्षितने किसीके हाथ तो किसीके सिर काट डाले, किसीका हृदय छेद डाला और किसीकी छातीपर आघात किया। उसने किसीकी हाथीकी शुण्डा और किसीके घोड़ेका सिर काट डाला तथा किसीके रथके घोड़ों और किसीके सारथीको ही मार डाला ॥ १-६ ॥ वह शत्रुओंके बाणोंको सामने आते देखकर अपने बाणोंसे आधे रास्तेमें ही काट डालता और अपूर्व हस्तकौशलसे किसीके खड्ग और किसीके धनुष्यको ही तोड़ डालता था। जब अवीक्षित किसी

राजपुत्रके वर्म (ज़िरह-बख़तर) को काट डालता, तो उस राजपुत्रका प्राणान्त हो जाता और किसी पदातिको आहत करता, तो वह रणसे भाग निकलता था। इस प्रकार समस्त राजमण्डलको आकुलित कर देने और हारे हुए सैनिकोंके भाग निकलनेके उपरान्त केवल सात सौ वीर अपने कौलीन्य, वयस और शूरताका विचार करने तथा लज्जाके कारण मृत्युकी उपेक्षा कर रणक्षेत्रमें डँटे रहे। राजपुत्र अतिकुपित हो गया था। वह प्रत्येक राजा और राजपुत्रके सम्मुख उपस्थित होकर यथाविधि धर्मयुद्ध करने लगा। हे महामुने! महाबली अवीक्षितने जब उन लोगोंके अस्त्र-कवचादि छिन्न-भिन्न कर देनेका सङ्कल्प कर लिया, तो पसीनेसे तराबोर हुए वे नरेन्द्रपुत्रगण धर्म-विचारको छोड़कर उस धर्मयोद्धाके साथ युद्ध करने लगे। किसीने अवीक्षितको बाणोंसे विद्ध किया और किसीने उसके धनुषको ही तोड़ डाला। किसीने तो उसकी ध्वजा ही तोड़कर पृथ्वी पर गिरा दी॥ ७-१४॥ कोई उसके घोड़ोंको काटता, कोई गदासे रथको चकनाचूर करनेकी चेष्टा करता और कोई पीछेसे ही बाणोंकी वर्षा करता था। उसके धनुषके टूट जानेपर उसने असिचर्म ग्रहण किया, किन्तु वह भी किसी वीरने तोड़ डाला। फिर गदायुद्ध करनेवालोंमें श्रेष्ठ अवीक्षितने युद्धके लिये गदा तान ली। उसे भी किसी वीरने क्षुरप्र नामक आयुधसे छिन्न कर दिया। अनन्तर धर्मयुद्धपराङ्मुख नरपतियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया और कोई सहस्र तथा कोई शत बाणोंसे विद्ध करने लगे। अकेले राजकुमारपर इस प्रकार चारों ओरसे अनेक वीरों द्वारा घोर आक्रमण होनेके कारण वह विह्वल होकर भूमिपर गिर पड़ा। तब अनेक महाभाग राजकुमारोंने उसे बाँध लिया और अधर्मयुद्धमें बाँधकर लाये हुए उस राजपुत्रको साथमें लेकर विशालराज-सहित वैदिशपुरमें प्रवेश किया॥ १५-२०॥ राज-पुत्र अवीक्षितको बाँध लानेपर सब राजा और राजकुमार हृष्ट और आह्लादित हुए। तदनन्तर उन्होंने उस कन्याको, जिसने स्वयंवर रचा था और उन सब राजकुमारोंको, जिन्होंने अवीक्षितको बाँधा था, विशाल-नरपतिके सम्मुख लाकर खड़ा किया। हे महामुने! फिर कन्याके पिता और पुरोहितने कन्यासे वार-वार कहा कि, इन राजाओं-मेंसे जिसे तुम चाहो, उसे वरण करलो। परन्तु कन्याने किसीको वरण नहीं किया। तब राजाने दैवज्ञोंको बुलाकर विवाह-सम्बन्धमें आज्ञा दी कि, आज तो विवाहमें विघ्नो-त्पादक इस प्रकारका युद्ध छिड़ गया, इसलिये इसके विवाहके लिये कोई दूसरा अच्छा दिन ढूंढ़ निकालो। मार्कण्डेयने कहा,—नरेन्द्रके द्वारा इस प्रकार पूछे जानेपर दैवज्ञोंने विचार किया और सब भावी ज्ञात कर दुःखित चित्तसे महीपालसे कहा,— हे पृथ्वीनाथ! इस विवाहके लिये प्रशस्त लग्नयुक्त दूसरा कोई अच्छा दिन हम शीघ्र ही

चुन देंगे। वह दिन जब उपस्थित होगा, तभी आप विवाहकार्य करें, अन्यथा विवाह करना उचित नहीं है। क्योंकि आज इस प्रकारका महाविघ्न उपस्थित हुआ है ॥ २१-२७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षित-चरितसम्बन्धी
एक सौ तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौबीसवां अध्याय।

—०:॥:०—

मार्कण्डेयने कहा,—महाराज करन्धम, महारानी वीरा और अन्यान्य राजाओंने जब राजपुत्र अवीक्षितको शत्रुओंने अधर्म-युद्धमें बद्ध कर लिया है यह समाचार सुना, तब हे महामुने! समस्त सामन्तोंको बुलाकर राजा उनके साथ बहुत देरतक विचार करता रहा। किसीने कहा,—जिन बहुतसे राजाओंने एकसाथ मिलकर अकेले राजपुत्रके साथ अधर्मयुद्ध किया और उसे बाँध डाला, वे सभी वध्य हैं। किसीने कहा,—अब निश्चिन्त होकर क्यों बैठे हैं? शीघ्र ही सेनाको सुसज्जित कर विशालराज तथा वहाँ आये हुए अन्यान्य राजाओंको बांध लाना चाहिये। किसीने कहा,—पहिले ही आपने राजपुत्रने उन्हें न चाहनेवाली कन्याको अन्याय तथा बलपूर्वक हरण कर अधर्म किया है और इसी तरह सभी स्वयंवरोंमें अनेक राजपूतोंको उन्होंने शत्रु बना लिया है, इसीसे अब उन शत्रुओंने उन्हें बद्ध किया है ॥ १-६ ॥ वीर-कन्या, वीर-पत्नी और वीर-माता वीरा उन लोगोंकी बातें सुनकर प्रसन्न चित्तसे पति और उपस्थित राजाओंके सम्मुख कहने कहने लगी,—हे पार्थिवगण! सब राजाओंको हराकर मेरे कल्याणास्पद पुत्रने बलपूर्वक कन्याको हरण किया, यह उत्तम ही हुआ। इस कारण अकेले मेरे पुत्रके साथ अनेक राजाओंने अधर्मयुद्ध किया,—मेरी समझमें मेरे पुत्रके लिये यह भी हानिकारक नहीं हुआ है। मनुष्योंकी अधर्ममूलक इस प्रकारकी नीतिको, हत्यारेको वीरकेसरीकी तरह महत्व देना ही पुरुषका पुरुषार्थ है! अनेक माननीय राजाओंके देखते हुए बलप्रयोगके द्वारा मेरा पुत्र स्वयंवरमें अनेक कन्याओंको हर लाया है। कहां तो क्षत्रिय कुलमें जन्म और कहां हीन जनोचित-भीरुता! दोनोंमें बड़ा ही अन्तर है। बलवान् क्षत्रियोंके सामने बल प्रकाश करके ही शूर लोग कन्याहरण किया करते हैं। धार्मिक राजन्यगण लोहश्रृङ्खलामें आबद्ध होनेपर भी कातरभावसे किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं करते। पहिले वे वीरता दिखानेसे मुंह नहीं मोड़ते और संयोगवश बन्धनमें पड़

जायं, तो बुरा भी नहीं मानते। फिर हमें भी इस विषयमें बुरा नहीं मानना चाहिये। मेरी समझमें तो मेरे पुत्रका यह बन्धन प्रतिष्ठाका विषय है। इससे यदि आप लोगोंके सिरपर वज्र घहराया हो, तो वह भी श्लाघाका विषय है ॥ ८–१४ ॥ राजन्यगण पृथिवी, पुत्र, धन, भार्या आदि सज्जनोंसे ही प्राप्त कर अपना गौरव बढ़ाया करते हैं। अब आप लोग युद्धके लिये शीघ्रता कीजिये। अपने रथ, हाथी, घोड़े आदि सारथियोंके सहित सजा लीजिये। बहुतसे महीपालोंके साथ अकेले युद्ध करना आप कैसा समझते हैं? शूर लोग थोड़ा ही युद्ध कर बहुतसा काम बना लेते और सन्तुष्ट हो जाते हैं। थोड़ेसे शत्रु-राजाओं और ऐसे कातर शत्रुओं, जिनसे भयकी सम्भावना नहीं है, उनके सम्मुख अपने बलका प्रदर्शन कौन नहीं करता? सूर्य जिस प्रकार दिगन्तमें परिव्याप्त तमोराशिका नाश करता है, उसी प्रकार शूर लोग बल-वीर्य आदिके द्वारा समस्त भुवनोंमें व्याप्त शत्रुओंको पराभूत करके शोभा पाते हैं और ऐसे ही लोग सच्चे शूर कहाते हैं ॥ १५–१९ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! इस प्रकार पत्नीके द्वारा उत्तेजित किया जानेपर राजा करन्धम पुत्रके शत्रुओंके विनाशके अभिप्रायसे सेना सजाने लगा। उधर राजकुमार बन्धनमें ही पड़ा था और इधर करन्धमका विशालराज तथा अन्यान्य राजवृन्दसे घनघोर युद्ध छिड़ गया। विशालराजके सहकारियोंके साथ करन्धमका लगातार तीन दिनतक युद्ध होता रहा। जब देखा गया कि, विशालराजकी ओरके सब राजा बराबर हारते जाते हैं और करन्धमसे पार नहीं पा सकते, तब स्वयं विशालराज करन्धम राजाको प्रसन्न करनेके लिये हाथमें अर्घ लेकर उसके सम्मुख उपस्थित हुआ। करन्धम विशालराजके द्वारा पूजित होकर और पुत्रको बन्धनमुक्त कर प्रसन्न हुआ और उसने वह रात वहीं सुखपूर्वक वितायी ॥ २०–२४ ॥ हे विप्रर्षे! फिर विशालराज अवीक्षितको दान करनेके लिये अपनी कन्याको वहां ले आया; परन्तु अवीक्षितने उसका स्वीकार न कर पिताके सम्मुख ही कहा कि, हे नृप! जिस कन्याके समक्ष मैं शत्रुओंके द्वारा पराजित हुआ, उसको कदापि ग्रहण नहीं कर सकता और ऐसे अवसर पर अन्य किसी कामिनीका भी स्वीकार नहीं करूँगा। अतः जो शत्रुओंसे कभी पराजित न हुआ हो और अखण्डित यशोवीर्यशाली हो, ऐसे किसी व्यक्तिको आप कन्यादान करिये। और यह कन्या भी ऐसे ही किसी व्यक्तिको पतिरूपसे वरण करे। मैं कातरा अबलाकी तरह शत्रुओंसे हराया गया हूं, तब मेरा मनुष्यत्व ही कहां रहा? इस कन्यामें और मुझमें भेद ही क्या है? पुरुष चिरकालसे स्वतन्त्र रहते आये हैं और ललनाएँ सदा पराधीन हुआ करती हैं। पुरुष होकर जो पराधीन होते हैं, उनकी मनुष्यता कहां रह जाती है? जिनके सामने राजाओंके द्वारा मैं हारा, उनको अब मैं यह मुख कैसे दिखाऊँ?

॥ २५-३० ॥ राजपुत्रकी ये बातें सुनकर पृथ्वीपति विशालराजने कन्यासे कहा,—वत्से ! इस महात्माने जो कुछ कहा, वह तूने सुन ही लिया है। अतः हे कल्याणि ! यदि तेरी इच्छा हो, तो स्वयं अन्य किसीको पतिरूपसे वरण करले, अथवा तुझपर मेरा असीम प्रेम होनेसे मैं जिसे मनोनीत करूँ, उसीको दान कर दूं। हे रुचिरानने ! दोनोंमेंसे जो पसन्द हो, वही कर। कन्याने कहा,—हे पार्थिव ! ये राजकुमार युद्धमें धर्मविमुख नहीं हुए और बहुसंख्यकोंके साथ संग्राम करते हुए भलीभांति पराजित भी नहीं हुए, जिससे कि, इनके यशोवीर्यकी हानि हुई हो। युद्धार्थ आये हुए अनेक राजाओंके साथ सिंहकी तरह इन्होंने अकेले युद्ध किया और विशेष शौर्य प्रकट किया था। ये केवल युद्धमें डँटे ही नहीं रहे, किन्तु इन्होंने निखिल नृपतिमण्डलको पराजित कर अपूर्व विक्रम दिखाया था। शौर्यविक्रमशाली, धर्मयुद्धपरायण इन अकेले राजकुमारको बहुसंख्यक नृपतियोंने मिलकर अधर्माचरणके द्वारा पराजित किया, इससे बढ़कर लज्जाकी बात क्या हो सकती है ? ॥ ३१-३६ ॥ हे पिताजी ! मैं केवल इनका रूप देखकर ही मोहित नहीं हुई हूं, किन्तु इनके शौर्य, विक्रम और धैर्यने भी मेरे मनपर अधिकार कर लिया है। मैं अधिक क्या कहूं ? हे नृप ! आप मेरे लिये इन्हीं महानुभावसे अनुरोध करिये। इनके सिवा मेरा कोई अन्य पति हो नहीं सकता। विशालराजने कहा,—हे राजपुत्र ! मेरी कन्या जो कुछ कहती है, वह युक्तियुक्त जान पड़ता है। तुम जैसा और कोई राजकुमार पृथ्वीमें देख नहीं पड़ता। तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रम भरपूर है; अतः तुम ही इस कन्याका परिग्रह कर मेरे कुलको पवित्र करो ॥ ३७-४० ॥ राजपुत्र बोला,—हे नृप ! मैं इसको या दूसरी किसी कामिनीको ग्रहण नहीं करूँगा। हे मनुजेश्वर ! मैं तो अपने आपको ही अबला समझ रहा हूं। मार्कण्डेयने कहा,—तब करन्धम राजपुत्रको समझाने लगा कि, हे राजपुत्र ! तुम इस राजकन्याको ग्रहण कर लो; क्योंकि यह सुन्दर भौंहों और विशाल नेत्रोंवाली कन्या तुम्हारे प्रति प्रगाढ़ अनुरागिणी हो रही है। राजपुत्रने कहा,—हे प्रभो ! मैंने आजतक कभी आपकी आज्ञाका भङ्ग नहीं किया है। इस समय भी आप मुझे ऐसी आज्ञा दें, जिसका प्रतिपालन करनेमें मैं समर्थ हो सकूँ। मार्कण्डेयने कहा,—जब विशालराजने देखा कि, राजपुत्रका निश्चय दृढ़ है, तब व्याकुल-चित्तसे कन्यासे कहा,—पुत्रि ! अब तू इस राजकुमारसे अपने चित्तको हटा ले। अनेक राजपुत्र विद्यमान हैं, उनमेंसे किसीको वरण कर ले ॥ ४१-४५ ॥ कन्या बोली,—हे तात ! यदि ये राजकुमार मुझसे विवाह नहीं करना चाहते, तो मैं यही वर चाहती हूं कि, तपके सिवा इस जन्ममें मेरा कोई दूसरा पति न हो। मार्कण्डेयने कहा,—फिर करन्धम तीन दिनतक विशालराजके यहां प्रसन्न चित्तसे रहकर अपनी नगरीमें लौट आया। पिता तथा अन्यान्य नरेशोंके अनेक प्राचीन दृष्टान्तोंके द्वारा

सान्त्वना करनेपर अवीक्षित भी राजधानीमें चला आया। विशालराजकी कन्या भी आत्मीयोंसे विदा होकर वनमें चली गयी और परम वैराग्यके साथ निराहार रहकर तपस्या करने लगी। तीन मासतक इस प्रकार निराहार रहनेके कारण वह सूखकर काँटा हो गयी। अति मुमूर्षु अवस्थाको प्राप्त हुई वह कृशाङ्गी राजबालिका अन्तमें व्यथित और हतोत्साह होकर प्राणविसर्जन करनेका दृढ़ निश्चय करने लगीं। इधर उसे प्राणत्यागके लिये सचेष्ट देखकर सब देवता एकत्र हुए और उन्होंने अपने एक दूतको उसके पास भेजा ॥ ४६-५२ ॥ वहां दूतने उपस्थित होकर उससे कहा,—हे नृपात्मजे ! मैं देवताओंका भेजा हुआ उनका दूत हूं। जिस कामके लिये देवताओंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है, वह सुनो। इस दुर्लभ शरीरका तुम त्याग न करो; क्योंकि हे कल्याणि ! तुम चक्रवर्ती राजाकी जननी होनेवाली हो। हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र समस्त शत्रुओंका विनाश कर अपने अप्रतिहत प्रभावसे दीर्घकालतक इस सप्त-द्वीपा वसुन्धराका उपभोग करेगा। देवशत्रु तरुजित और क्रूर अयःशंकु देवताओंके सामने ही उसके द्वारा मारे जायंगे। वह प्रजाओंको धर्माचरणमें प्रवृत्त करेगा और स्वयं वर्णाश्रमधर्मका उत्तम रीतिसे प्रतिपालन करेगा। म्लेच्छ, दस्यु आदि दुराचारी उसके द्वारा विनाशित होंगे और हे भद्रे ! वह विपुल दक्षिणाओंके साथ अश्वमेधादि अनेक प्रकारके छः सहस्र यज्ञ करेगा। मार्कण्डेयने कहा,—दिव्य माल्य और अनुलेपन धारण किये हुए अन्तरीक्षस्थ उस देवदूतको देखकर राजकन्याने मृदु स्वरसे कहा,—आप अवश्य ही देवदूत हैं और स्वर्गसे पधारे हैं, इसमें सन्देह नहीं; किन्तु विना पतिके मुझे पुत्र कैसे उत्पन्न होगा ? अवीक्षितके अतिरिक्त इस जन्ममें मेरा कोई दूसरा पति हो नहीं सकता। मैंने पिताके सामने यह प्रतिज्ञा की है। परन्तु अवीक्षित मेरे, मेरे पिताके और उनके पिताके अनुरोधसे भी मेरा स्वीकार करनेके लिये प्रस्तुत नहीं हो रहे हैं। देवदूत बोला,— हे महाभागे ! अधिक कुछ कहनेका प्रयोजन नहीं है। तुम्हें अवश्य ही पुत्र उत्पन्न होगा; अतः आत्महत्यारूपी अधर्माचरण मत करो। इसी बनमें रहकर इस क्षीण शरीरको पुष्ट करो। तपस्याके प्रभावसे तुम्हारा सब प्रकार मङ्गल होगा। मार्कण्डेयने कहा,— इस प्रकार आश्वासन देकर देवदूत यथास्थान चला गया और सुभ्रू राजकन्या प्रतिदिन शरीरका पोषण करने लगी ॥ ५३-६५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरितसम्बन्धी
एक सौ चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ पचीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—एक वार किसी पुण्य दिनके उपस्थित होनेपर अवीक्षितको वीरप्रसू माता वीराने उसे बुलाकर कहा,—मैं 'किमिच्छक' नामक उपवासयुक्त एक दुष्कर व्रत करना चाहती हूं। तुम्हारे महात्मा पिताने इसके लिये मुझे अनुज्ञा देदी है। परन्तु हे पुत्र! यह व्रत तुम, तुम्हारे पिता और मेरे मिलकर करनेसे ही सम्पन्न हो सकता है। अतः यदि तुम इसमें योगदान करनेको प्रस्तुत हो जाओ, तो मैं व्रताचरणका प्रयत्न करूं। तुम्हारे पिताके राजकोषसे लगभग आधा धन इस व्रतमें व्यय हो जायगा। यह बात उनके हाथकी है; इसलिये उनकी मैंने अनुज्ञा लेली है। कष्टसाध्य जो इस व्रतकी बातें हैं, मेरे द्वारा वे उत्तम रीतिसे सम्पन्न हो जायंगी। रहीं बल और पराक्रमसे साध्य होनेवाली बातें; जो तुम्हारे हाथ हैं। वे सुसाध्य, दुःसाध्य और असाध्य भी हो सकती हैं। हे पुत्र! ऐसी बातोंमेंसे जो तुम्हारे लिये साध्य प्रतीत हों, उनको करना तुम अङ्गीकार करो, तो मैं इस व्रतको करनेका उद्योग करूँ। इस विषयमें तुम्हारा क्या अभिप्राय है, वह प्रकट करो ॥ १-६ ॥ अवीक्षितने कहा,—धन तो पिताके अधिकारमें है, उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं है। मेरे शरीरसे जो सम्पन्न होना सम्भव हो, आपकी आज्ञाके अनुसार उसका सम्पादन करनेको मैं प्रस्तुत हूं। यदि धनपति पिताजीने अनुज्ञा देदी है, तो हे मातः! आप निश्चिन्त होकर प्रसन्न चित्तसे इस किमिच्छक व्रतका अवलम्बन कीजिये। मार्कण्डेयने कहा,—फिर संयमपरायणा राजेन्द्रमहिषीने उपोषित रहकर और काया, वाणी तथा मनको संयत कर, भक्तिपूर्वक यथोक्त विधानके अनुसार निधिसमूह, निधिपालगण और लक्ष्मीदेवीकी पूजा की। इधर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद सचिवोंके साथ मन्त्रणागृहमें बैठकर विचार कर रहा था। राजासे सचिवोंने कहा,— राजन! पृथ्वीपालन करते हुए आजतक आपका वंश अविच्छिन्न रहा है। आपके एक ही कुमार अवीक्षित हैं, जिन्होंने विवाह न करनेका निश्चय कर लिया है। हे भूप! यदि उनका अपुत्रक रहनेका यही निश्चय दृढ़ बना रहा, तो निःसन्देह यह पृथ्वी आपके शत्रुओंके अधिकारमें चली जायगी। आपका भी वंशक्षय होकर पितरोंके श्राद्ध-

---

टीका:—इस व्रतमें जो याचक जो कुछ मांगे, वह उसे देकर संतुष्ट करना पड़ता है; तभी यह व्रत सफल होता है। इसी प्रकारके वैदिक यज्ञोंमें दान-सम्बन्धी विश्वजित आदि अनेक यज्ञ हैं। परन्तु यह व्रत और ऐसे यज्ञ राजाओंके करने योग्य हैं, साधारण मनुष्योंके करने योग्य नहीं हैं। यज्ञ पुरुषके लिये और व्रत स्त्रियोंके लिये विहित हैं ॥ १-६ ॥

तर्पणादिका कार्य विनष्ट हो जायगा। क्रियाहानिके कारण बड़ा ही शत्रुभय उपस्थित होगा। अतः हे भूपाल ! आपके कुमार फिर जिससे सदा पितरोंका उपकार साधन करनेवाली बुद्धिका अवलम्बन करें, ऐसा उपाय कीजिये ॥ ७-१५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,— इसी समय राजमहिषी वीराकी ओरसे अर्थियों (याचकों) के प्रति पुरोहितने जो घोषणा की, उसके शब्द राजाने सुन लिये। पुरोहितकी घोषणा इस प्रकार थी,— "महाराज करन्धमकी महिषीने किमिच्छकव्रत प्रारम्भ किया है। अतः हे लोगों ! किसकी क्या इच्छा है और किसका कौनसा दुःसाध्य कार्य साधना है, वह प्रकट करो।" पुरोहित-की घोषणा सुनकर राजपुत्र अवीक्षित भी राजद्वारमें चला आया और याचकोंसे बोला,— "हे याचकों ! मेरी प्रतिज्ञा तुम लोग सुन लो। मेरी भाग्यवती माताने किमिच्छक नामक व्रतसम्बन्धी उपोषण करना आरम्भ किया है। इस अवसरपर मेरे शरीरके द्वारा जिसे जो कुछ साध लेना हो, वह कहो। इस किमिच्छक व्रतकी कालमर्यादाके अन्दर जो कोई जो कुछ मुझे करनेको कहे, उसे करनेके लिये मैं प्रस्तुत हूं" ॥ १६-२० ॥ मार्कण्डेयने कहा,—राजा करन्धम पुत्रके मुखसे निकले हुए इस वाक्यको सुनते ही उसके समीप उपस्थित होकर कहने लगा,—हे तात ! तुम्हारा पहिला याचक तो मैं ही हूं। मुझे मेरा अभीष्ट प्रदान करो। अवीक्षित बोला,—हे पिताजी ! मैं आपको क्या

टीका:—पुराणोंमें चतुर्विध सृष्टिप्रकरण, खण्डसृष्टिप्रकरण,—जिसमें दैवीसृष्टि आदिका वर्णन हो,—वंशवर्णन,—जिसमें मृत्युलोकके ऋषिवंश और राजवंश, अर्थात् पुण्यशाली ब्राह्मण और क्षत्रिय वंशोंका वर्णन हो,—कालवर्णन अर्थात् मन्वन्तरवर्णन हो,—जिससे सृष्टिशृंखला और सभ्यताके विभागोंका हाल पाया जाय,—और ऋषि और राजाओंके वंशोंकी सन्तति अर्थात् प्रजातन्तुका वर्णन हो, ये ही पांचों पुराणोंके लक्षण पाये जाते हैं। प्रत्येक पुराण, महापुराण, उपपुराण और औपपुराणमें इन पांचोंका थोड़ा बहुत समावेश होना अवश्यसम्भावी है। भेद इतना ही है कि, किसी पुराणमें इन पांचोंमेंसे किसीका वर्णन अधिक आता है और किसीका कम आता है। दूसरा भेद यह है कि, किसी किसी पुराणमें इन पांचोंमेंसे किसी विषयका वर्णन बहुत अधिक आता है और उसीकी उसमें प्रधानता रहती है; जैसी कि, इस पुराणमें मन्वन्तरोंके वर्णनकी प्रधानता है। तीसरा भेद पुराण और इतिहासका यह है कि, जिसमें मृत्युलोकका लौकिक इतिहास अधिक हो, उसको इतिहास कहते हैं और जिसमें दोनों सम-समान हों, उसे पुराण कहते हैं। उदाहरण रूपसे समझ सकते हैं कि, महाभारतमें कौरव-पाण्डवा-दिका लौकिक इतिहास अधिक होनेसे और रामायणमें श्रीरामचरितका इतिहास अधिक होनेसे दोनों ही इतिहास कहाये हैं। दूसरी ओर श्रीदेवीभागवत, श्रीविष्णुभागवत और श्रीमार्कण्डेयपुराण आदिमें सबकी समानता रहनेसे अथवा इनमें लौकिक इतिहासोंका आधिक्य न होनेसे ये सब पुराण कहाये हैं। चतुर्विध सृष्टिप्रकरण, जिसका वर्णन पहिले कई वार आ चुका है, यथा:—प्राकृत सृष्टि, ब्राह्मी सृष्टि, मानस सृष्टि और वैजी सृष्टि, इनका भी वर्णन मिलाजुला पुराणोंमें आता है। परन्तु किसी किसी पुराणमें इन चारोंमेंसे किसी किसीको विशेषता दी गयी है। दूसरी ओर सृष्टिप्रकरणके विषयमें किसी पुराणमें मन्वन्तर

प्रदान करूं ? आप आदेश कीजिये। आपका आदिष्ट कार्य चाहे साध्य हो, दुःसाध्य हो अथवा असाध्य हो, वह सम्पन्न करनेसे मैं मुंह नहीं मोड़ूंगा। राजाने कहा,—यदि तुम किमिच्छक देनेमें सत्यप्रतिज्ञ हुए हो, तो मेरी गोदमें खेलनेवाला मुझे पौत्र प्रदान करो। अवीक्षितने उत्तर दिया,—हे नरनाथ! मैं आपका अकेला पुत्र हूं; मुझे पुत्र नहीं है और मैंने ब्रह्मचर्यव्रतका अवलम्बन किया है। तब मैं किस प्रकार आपको पौत्रमुख दिखानेमें समर्थ हो सकूंगा ? राजा बोला,—तुमने जो यह ब्रह्मचर्यव्रत ग्रहण किया है, यही तुम्हारे पापका कारण है। अतः इसे त्यागकर तुम अपने आपको मुक्त कर लो और मुझे भी पौत्रमुख दिखानेमें समर्थ हो जाओ। अवीक्षितने कहा,—यह काम तो बड़ा कठिन है। महाराज! मैंने वैराग्यके कारण ही स्त्री-सम्भोगका त्याग किया है। वह मेरा वैराग्य जिससे अक्षुण्ण बना रहे, ऐसे किसी दूसरे कार्यके करनेका मुझे आदेश दीजिये ॥२१-२६॥ राजाने कहा,—अनेक सैनिकोंसे घिरे हुए वैरियोंको युद्धमें तुमने हराया है, यह मैंने स्वयं देखा है। फिर भी तुम वैराग्यका अवलम्बन करनेका निश्चय कर रहे हो,

---

आदिके विचारसे सृष्टिलीलाका विस्तृत वर्णन अधिक किया गया है। किसीमें दैवी सृष्टि अथवा मानुषी सृष्टिका विस्तार अधिक किया गया है। इसी प्रकार सर्ग और प्रतिसर्गके वर्णनमें पुराणोंमें कहीं कहीं मतभेदसा प्रतीत होता है और किसी किसीमें एक विषयका आधिक्य और अन्य विषयोंका स्वल्पत्व पाया जाता है। यही कारण है कि, सब पुराणोंका अध्ययन किये विना अथवा अधिक संख्यक पुराणोंका अध्ययन किये विना न पुराणोंका आध्यात्मिक रहस्य समझमें आता है और न उसके समझनेकी श्रृंखला ही ठीक ठीक बैठती है। वंशवर्णन और वंशानुचरितवर्णनके विषयमें भी बहुत कुछ समझने योग्य है। प्रायः इतिहासोंमें लौकिक वंशका वर्णन अधिक आता है और अन्य पुराणोंमें दैवीवंशका वर्णन अधिक आता है। दूसरी ओर त्रिकालदर्शी पूज्यपाद महर्षियोंकी योगदृष्टिके सम्मुख मठाकाश और महाकाशके समान स्थूल मृत्युलोक और सूक्ष्म दैवीलोक समान दृष्टिसे ही देखे जाते हैं। इन दोनोंके देखनेमें कोई बाधा नहीं होती। इस कारण वंशवर्णनमें दैवीसृष्टि और लौकिकसृष्टि, दैवीवंश और लौकिकवंश, दोनोंका मिला जुला वर्णन आता है। उदाहरणरूपसे समझ सकते हैं कि, सूर्यवंशमें मनु आदिसे जो उत्पत्ति मानी गयी है, वह दैवीवर्णन और जो दशरथ आदिसे मानी गयी है, वह लौकिक वर्णन समझना उचित है। इस प्रकारसे दैवी और मानुषी वंशपरम्पराकी श्रृंखला मिला लेनेसे और मिलाकर समझनेसे पुराणपाठकोंको भ्रममें नहीं पड़ना पड़ेगा और इस रहस्यको अच्छी तरह समझनेसे ही इस मृत्युलोकके लौकिक ऐतिहासिक लोग विपथगामी नहीं हो सकेंगे। वंशवर्णन और वंशानुचरित-वर्णन, दोनों वर्णनोंके समझनेमें पुराणपाठकोंको यह स्थिररूपसे ध्यानमें रखने योग्य है कि, पुराण लिखते समय पूज्यपाद त्रिकालदर्शी महर्षियोंने अपनी योगयुक्त समाधिदृष्टिद्वारा अनेक मन्वन्तर अथवा अनेक कल्पोंके पूर्वकी गाथाएं प्राप्त की हैं। पुराण लिखते समय पुराण लिखनेकी अवस्थामें वे जब अपनी स्वरूप अवस्थासे व्युत्थान अवस्थाको प्राप्त होते थे, तो उस सविकल्प समाधिकी विचारानुगत अवस्थामें कल्पकल्पान्तरके उपयोगी वंशानुचरित गाथारूपसे उनके अन्तःकरण-पटलमें उपस्थित हुआ करते थे। अतः ये सब गाथाएं न कल्पना-प्रसूत हैं और न लौकिक रीतिसे प्राप्त की गयी हैं। मन्वन्तर और कल्प

यह बुद्धिमानी नहीं है। मेरे अधिक कहनेका प्रयोजन ही क्या है ? तुम अपनी माताके इच्छानुसार ब्रह्मचर्यका त्याग करो और हमें पौत्रमुख दिखाओ। मार्कण्डेय बोले,—राजपुत्रके बारम्बार अनुरोध करनेपर भी जब राजाने और कुछ नहीं चाहा, तब राजपुत्र बोला,—पितृदेव ! आपको किमिच्छक प्रदान करना स्वीकार कर मैं बड़े सङ्कटमें पड़ गया हूं। अब मुझे निर्लज्ज होकर फिरसे दारपरिग्रह करना होगा। स्त्रीके सामने पराजित होकर मेरी पीठ भूमिमें लग गयी थी; अतः अब स्त्री मेरे लिये पतिके समान हो रहेगी। हे पितः ! यह बड़ा ही दुष्कर कार्य है। परन्तु क्या किया जाय ? जब कि, मैं सत्यके पाशमें आबद्ध हो गया हूं, तब जो कुछ आप आज्ञा कर रहे हैं, उसीका पालन करूंगा। आप निश्चिन्त होकर राज्यशासन कीजिये ॥ २७-३० ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी
एक सौ पचीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छब्बीसवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेय बोले,—एक बार राजपुत्र वनमें मृगया कर रहा था। उसने बहुतसे मृगों, सूअरों, शेरों आदि हिंस्र जीवोंको मार गिराया। इतनेमें किसी भयभीत कामिनीका अत्युच्च रोदन-स्वर उसे सुनाई दिया। स्त्रीका 'त्राहि त्राहि' शब्द सुनते ही जिस

आदिकी वर्ष संख्या कई बार कही गई है। वर्तमान वंशानुचरित, अति दुर्ज्ञेय धर्मसिद्धान्त और मधुर वर्णाश्रमशृङ्खलाके रहस्योंसे पूर्ण है। ऋषियोंकी दैवीशक्ति, क्षत्रिय राजाका क्षात्रपन, पिता और माताका स्नेहसुलभ वर्ताव, पुत्र राजकुमारकी क्षत्रियोचित वीरता आदि गुणावलीके साथही साथ इन्द्रियसंयम और ब्रह्मचर्य्यकी अलौकिकता, स्त्रीके सतीत्वधर्म और विशेषतः क्षत्रिय स्त्रीकी सतीत्व-मर्यादाका उज्वल दृष्टान्त, वर्णाश्रम मर्यादाका पालन, मातृ पितृ भक्ति, दैवी-जगत्पर अटल विश्वास आदि इस गाथामें प्रकट हुआ है। राजकुमारका अलौकिक ब्रह्मचर्य्य भी इस गाथाका महत्वप्रतिपादक है। पितामह भीष्म आदिका ब्रह्मचर्य्य सकारण था, परन्तु राजकुमारका ब्रह्मचर्य्य व्रतमूलक था। इस कारण इसमें विशेष स्वारस्य है। इस गाथामें प्राचीन राजकुलोंका, राजा-रानियोंका और राजकुमारोंके परस्पर मर्यादायुक्त सम्बन्धका भी अच्छा दिग्दर्शन है। राजपुरोहितोंका धर्मसम्बन्ध और व्रतसम्बन्धमें कैसा अधिकार होता था, इसका भी दिग्दर्शन है। दूसरी ओर गृहस्थ अपुत्र होनेपर गृहस्थाश्रममें रहते हुए ब्रह्मचर्य सदाचार नहीं है, वह एक प्रकारका पाप है। क्योंकि गृहस्थके लिये वर्णाश्रमशृंखला रखना और पितरोंके संवर्द्धनका कार्यक्षेत्र बना रखना ही पुण्यकार्य है। इसका यहां दिग्दर्शन है। ब्रह्मचर्यव्रत सबसे प्रधान विषय होनेपर भी खेलका विषय नहीं है। इसका दिग्दर्शन भी इस गाथामें है ॥ १-३० ॥

ओरसे शब्द आ रहा था, उसी ओर 'डरो मत, डरो मत' कहते हुए राजपुत्रने अपना घोड़ा दौड़ाया। वहां उसने क्या देखा कि, दनुके पुत्र दृढ़केशने निर्जन वनमें विशाल-राजकी वसी मानिनी नामक कन्याको पकड़ लिया है और वह यह कहकर विलाप कर रही है कि, मैं महाराज करन्धमके पुत्र धीमान् पृथ्वीश्वर अवीक्षितकी भार्या हूँ, और इस वनमें यह दुराचारी दानव मेरा हरण कर रहा है। जिनके सामने समस्त महीपाल और गुह्यक, गन्धर्व आदि भी नहीं ठहर सकते, उनकी भार्या होती हुई मैं हरी जा रही हूँ। जिनका क्रोध मृत्युकी तरह और पराक्रम इन्द्रके समान है, मैं उन्हीं करन्धमकुमारकी पत्नी हूं और हरी जा रही हूँ ॥ १-७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—धनुर्धर राजकुमारने ये वचन सुने, तब वह विचार करने लगा कि, इस अरण्यमें यह मेरी भार्या कैसी? मैं समझता हूं कि, यह सब वनमें सञ्चार करनेवाले राक्षसोंकी माया है। जो हो, पासमें जानेसे ही सब वृत्तान्त विदित होगा। मार्कण्डेय कहने लगे,—तब राजपुत्रने तुरन्त हीं आगे बढ़कर क्या देखा कि, घोर अरण्यमें सब अलङ्कारोंसे सजी हुई और अत्यन्त सुन्दरी एक कन्याको हाथमें लट्ठ लिया हुआ दानव दृढ़केश पकड़कर खींच रहा है तथा वह 'त्राहि त्राहि' पुकारती हुई रोदन कर रही है। उस कन्यासे राजपुत्रने कहा,—भय न करो। फिर दानवसे कहा,—अरे, तेरा काल तेरे सिरपर नाच रहा है। देख, जिन महाराज करन्धमके प्रतापसे पृथ्वीके समस्त महीपाल अवनत हो रहे हैं, उनके शासनकालमें कौन दुष्ट व्यक्ति जीवित रह सकता है? प्रचण्ड धनुर्धारी राजपुत्रको आते देख, वह कृशाङ्गी राजकन्या उससे बारम्बार कहने लगी कि, मेरी रक्षा कीजिये। देखिये, यह मुझे हरण कर रहा है। मैं महाराज करन्धमकी पुत्र-वधू और राजकुमार अवीक्षितकी भार्या हूं। फिर भी सनाथा होती हुई अनाथिनीकी तरह इस वनमें इस दुष्टके द्वारा हरी जा रही हूं ॥ ८-१४ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—उसके वचन सुनकर राजपुत्र सोचने लगा कि, यह कन्या मेरी भार्या और मेरे पिताकी पुत्रवधू कैसी हुई? जो हो, पहिले इस कन्याको इस दुष्टसे छुड़ा लेना चाहिये; फिर सभी बातें खुल जायंगी। पीड़ित लोगोंकी रक्षा करनेके लिये ही क्षत्रियगण शस्त्र धारण करते हैं। अनन्तर महावीर राजकुमारने क्रुद्ध होकर उस दुर्दान्त दानवसे कहा,—यदि तुझे जीवनकी आकांक्षा हो, तो इसे तुरन्त छोड़कर यहांसे भाग जा; नहीं, तेरी मृत्यु अवश्य हो जायगी। राजपुत्रका वचन सुनकर दानवने कन्याको तो छोड़ दिया, किन्तु वह डण्डा लेकर राजपुत्रपर झपटा। राजपुत्रने भी उसे बाणोंसे घेर दिया। राजपुत्रके बाणोंको बचाकर दानवने बड़े अहङ्कारके साथ उसपर सैकड़ों कीलोंसे जड़े हुए डण्डे बरसाना आरम्भ किया। राजपुत्रने उन डण्डोंको बीचमें ही बाणोंसे काट डाला। फिर

दानवने पासका ही एक पेड़ उखाड़ लिया और वह बाणोंकी वर्षा करनेवाले राजपुत्रकी ओर फेंका । राजपुत्रने उसे भी अपने धनुषसे भाले फेंककर तिल-तिलके बराबर टुकड़े टुकड़े कर डाला ॥ १५-२० ॥ तब दानव राजपुत्र पर बड़ी बड़ी शिलाएँ बरसाने लगा। राजपुत्रने उन्हें भी शरकौशलसे खण्ड-विखण्ड कर दिया। इस प्रकार दानवने जिन जिन आयुधोंका प्रहार करना चाहा, राजपुत्रने उन सबको अपने बाणोंसे व्यर्थ कर दिया। दानवके दण्ड और सब अस्त्र-शस्त्र विफल हो जानेपर वह अतिक्रुद्ध होकर घूंसा जमानेके लिये राजपुत्रकी ओर दौड़ा। वह पासमें पहुँचने भी नहीं पाया था कि, करन्धम-कुमारने वेतसपत्र बाणके द्वारा उसका सिर काटकर भूमि पर गिरा दिया। दुराचारी दानवका इस प्रकार अन्त हुआ देखकर देवगण राजपुत्रको साधुवाद सुनाने लगे और बोले कि, वर मांगो। देवताओंके इस प्रकार आदेश करने पर राजकुमारने पिताका प्रिय-साधनके उद्देश्यसे महावीर पुत्र मांग लिया। देवताओंने कहा,—हे निष्पाप ! तुमने जिसका स्वीकार नहीं किया, उसी कन्याके गर्भसे तुम्हें महाबली चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१-२८ ॥ राजपुत्रने कहा,—मैं पिताके निकट सत्यके पाशमें आबद्ध होनेके कारण ही पुत्रकी इच्छा करता हूं। नहीं, मैंने तो युद्धस्थलमें राजाओंके द्वारा पराजित होकर दारपरिग्रहकी इच्छा ही त्याग दी थी। मैंने जब विशालराजकी कन्याका परित्याग किया, तब उसने भी मेरे अतिरिक्त अन्य किसी पुरुषसे शरीरसम्बन्ध न करनेका दृढ़ निश्चय कर लिया है। अब मैं विशालराजकी उस कन्याको छोड़कर कैसे नृशंसकी तरह किसी अन्य स्त्रीका पाणिग्रहण करूँ ? देवगण बोले,—तुम सर्वदा जिसकी प्रशंसा किया करते हो, वही यह विशालराज-तनया तुम्हारी भार्या है। यह तुम्हारे लिये ही तपस्या कर रही है। इसीके गर्भसे तुम्हें सप्तद्वीपोंका शासन करनेवाला, सहस्रों यज्ञोंका करनेवाला, चक्रवर्ती वीर पुत्र उत्पन्न होगा। मार्कण्डेयने कहा,—हे द्विज ! करन्धम-पुत्रको इस प्रकार आश्वासन देकर देवगण अन्तर्हित हो गये। फिर राजपुत्रने अपनी भावी पत्नीसे पूछा कि, हे भीरु ! यह सब घटना कैसे हुई ? कहो ॥ २९-३४ ॥ कन्याने यों घटनावाली सुनाना आरम्भ किया,—जब आप मेरा अस्वीकार कर चले गये, तब मैं अत्यन्त दुःखित होकर कुटुम्बियोंको छोड़कर इस वनमें चली आयी। यहां आकर तपस्या करनेपर कुछ दिनोंमें मैं बहुत क्षीण हो गयी और एक दिन प्राण त्याग करनेको उद्यत हुई। उसी समय यहां एक देवदूत आ गया और उसने मुझे प्राणत्याग करनेसे रोका। उसने कहा,—तुम्हें एक महाबलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा। वह पुत्र असुरोंका विनाश और देवताओंका प्रेम सम्पादन करेगा। अतः देवोंकी आज्ञा है कि, तुम प्राणत्याग न करो। इस प्रकार रोकी जानेपर आपके मिलनकी अभिलाषासे देह

त्याग न कर सकी। परसोंकी बात है। मैं श्रीगङ्गाजीकी दहमें स्नान करनेके लिये उतरी थी। उस समय कोई वृद्ध नाग मुझे खींचकर पातालमें ले गया ॥ ३५-३६ ॥ वहाँ सहस्रों नाग, नागपत्नियां और नागकुमार मेरे आगे खड़े होकर कोई तो मेरी स्तुति और कोई पूजा करने लगे। फिर नागों और नागपत्नियोंने मुझसे सविनय प्रार्थना की,—आप हम सब पर अनुग्रह करें और यह अभिवचन दें कि, यदि हम लोग आपके पुत्रका कुछ अपराध करें और वह हमें विनष्ट करनेका उद्योग करे, तो उस समय आप उसे उस उद्योगसे रोक दें। मेरे 'यही होगा' कहने पर उन वायुभक्षक नागोंने पातालके दिव्य आभूषणों और मनोरम गन्ध, पुष्प, वस्त्र आदिसे मेरा सत्कार कर मुझे फिर पृथ्वी-पर पहुंचा दिया। यहाँ आकर मैंने क्या देखा कि, मैं फिर पहिलेकी तरह कान्तिमती और रूपवती हो गयी हूं। इस प्रकार सब अलङ्कारोंसे भूषित और रूपसे सम्पन्न देखकर दुर्मति दृढ़केशने हरणकी इच्छासे मुझे पकड़ लिया। हे राजपुत्र! मैंने आपके ही बाहुबलसे इस समय छुटकारा पाया है, अतः हे महाबाहो! अनुग्रह करके मेरा स्वीकार कीजिये। मैं सचमुच कहती हूं कि, समस्त भूमण्डलमें आप जैसा गुणशाली दूसरा कोई राजपुत्र नहीं है ॥ ४०-४७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित सम्बन्धी
एक सौ छब्बीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सत्ताईसवां अध्याय।

—:※:—

मार्कण्डेयने कहा,—राजकुमारीकी ये सब बातें सुनकर राजपुत्रको अपनी उस प्रतिज्ञाका स्मरण हो आया, जो माताके किमिच्छक व्रत ग्रहण करनेके अवसरपर महाराज करन्धमके सामने उसने की थी। उसपर राजाने जो उत्तर दिया था, उसका भी उसे स्मरण हुआ। इसीसे भोगकी अनिच्छा दिखाते हुए उसने नृपतिनन्दिनीसे प्रेम-

---

टीका:—यह वंशानुक्रमवर्णनकी गाथा मृत्युलोकके किसी कल्पकल्पान्तरकी है। इसमें जो देवताओंका प्रकट होना, दैवी सहायता पहुंचाना, अन्यलोकसे मनुष्यलोकका सम्बन्ध होना आदि वर्तमान समयके अनुसार अलौकिक और असम्भव बात प्रतीत होती है। ऐसी शङ्काओंका समाधान यह है कि, प्रथम तो एक युगसे दूसरे युगकी शक्तिमें बड़ा अन्तर हो जाता है और फिर एक मन्वन्तरसे दूसरे मन्वन्तरमें तो जीवोंकी शक्ति और अधिकारमें बड़ा अन्तर होना सम्भव है। कल्पकल्पान्तरकी तो बात ही क्या है। इस कारण इस मधुर गाथाकी अलौकिकतापर सन्देह करना उचित नहीं है ॥ ४०-४७ ॥

पूर्वक कहा,—हे कृशाङ्गि ! मैंने शत्रुओंसे पराजित होनेके कारण तुम्हारा परित्याग किया था और शत्रुका नाश करके ही तुम्हारे सम्मुख उपस्थित हो रहा हूं। अब तुम ही कहो कि, इस समय मेरा कर्त्तव्य क्या है ? कन्याने उत्तर दिया,—इस रमणीय काननमें आप मेरा पाणिग्रहण करें। ऐसा होनेसे सकाम कामिनीका सकाम पुरुषके साथ सङ्गम गुण-पूर्ण अर्थात् सुख-शान्तिकारक ही होगा। राजपुत्र बोला,—ठीक है, ऐसा ही हो। तुम्हारा भगवान् मङ्गल करें। दैव ही इस घटनाका कारण है। नहीं तो भिन्न-भिन्न स्थानोंसे आकर हम आज यहाँ कैसे एकत्रित होते ? मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने ! इसी समय तुनय नामक गन्धर्व बहुतसे गन्धर्वों और अप्सराओंको साथमें लेकर वहाँ उपस्थित हो गया ॥ १–६ ॥ गन्धर्वने कहा,—हे राजकुमार ! यह मानिनी मेरी ही कन्या है। इसका नाम है, भामिनी। अगस्ति मुनिके शापसे यह विशालराजकी कन्या हुई थी। एकवार बाल्यावस्थामें इसने खेलते हुए महर्षि अगस्तिको क्रुद्ध कर दिया था। तब ऋषिने इसे अभिशाप दिया था कि, तू मानुषी होगी। फिर हम लोगोंने मुनिसे यह प्रार्थना की कि, हे विप्रर्षे ! यह बालिका है। इसने बालचापल्यके कारण ही आपका अपराध किया है। अतः इसके अपराधकी उपेक्षा कर आप इसपर प्रसन्न हों। अगस्त्य हमारी प्रार्थनासे प्रसन्न होकर बोले,—इसे बालिका जानकर ही मैंने सामान्य अभिशाप दिया है, वह अन्यथा हो नहीं सकता। मेरी इस सुन्दर भौंहोंवाली कल्याणी कन्याने इस प्रकार अगस्त्यके अभिशापसे विशालराजके घर जन्म ग्रहण किया है। इसी कारण हम यहाँ आये हैं। वास्तवमें यह मेरी और इस समय विशालराजकी कन्या है। इसका आप पाणिग्रहण करें। इसीके गर्भसे आपको चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ ७–१२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—गन्धर्वकी बातें सुनकर राजपुत्रने "ठीक है" कहकर स्वीकार कर लिया और प्रसन्नतासे उस राजपुत्रीका पाणिग्रहण किया। उस समय गन्धर्वोंके पुरोहित तुम्बरुने यथाविधि होमकार्य सम्पन्न किया। देव-गन्धर्वगण गाने लगे और अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। मेघोंने पुष्पवृष्टि की और देवदुन्दुभि बजने लगी। हे मुने ! फिर समग्र पृथ्वीमण्डलके पालनकर्त्ताकी जनयित्री उस कुमारीके साथ राजपुत्रका विवाह हो जानेपर उस शुभ अवसर पर आये हुए समस्त गन्धर्व और उक्त वर-वधू महात्मा तुनयके साथ गन्धर्वलोकमें चले गये। तब नृपतनय अवीक्षित भामिनीको पाकर जिस प्रकार आनन्दित हुआ, उसी प्रकार भोगसम्पत्शालिनी भामिनी भी अवीक्षितको पाकर परितुष्ट हुई। तन्वी भामिनी और महानुभाव अवीक्षित दोनों दिन रात कभी नगरके उपवनमें, कभी पर्वतोंके शिखरपोंर, कभी हंस-सारस-शोभित नदियोंके पुलिनोंमें, कभी भवनोंमें, कभी मनोरम प्रासादोंमें और कभी विभिन्न विहार-प्रदेशोंमें रमण और क्रीड़ा करने

लगे ॥ १६-२० ॥ उन्हें मुनियों, गन्धर्वों और किन्नरोंने उत्तम उत्तम खाद्य, पेय, वस्त्र, माल्य, अपटन आदि उपहार प्रदान किये । इस प्रकार उस दुर्लभ गन्धर्वलोकमें भामिनी-के साथ राजकुमारके हास-परिहास, विहार आदि करते हुए समय पाकर कल्याणी भामिनीके एक पुत्र उत्पन्न हुआ । हे मानवश्रेष्ठ ! महावीर्यशाली उस पुत्रके जन्मग्रहण करनेपर उसके द्वारा भावी प्रयोजनकी सिद्धि होगी, इस आशासे गन्धर्वोंने महोत्सव मनाया । उनमेंसे कोई गाने लगे और कोई मृदङ्ग पटह (चौघड़ा), सहनाई, बाँसरी, बीन आदि बाजे बजाने लगे । अप्सराएँ नाचने लगीं और समस्त मेघ फूल बरसाते हुए मृदु-मन्द शब्दोंसे गर्जना करने लगे । हे मुने ! इधर यह आनन्दमङ्गल हो रहा था कि, महात्मा तुनयके स्मरण करते ही तुम्बरु वहाँ उपस्थित हुए और उन्होंने बालकका जातकर्म संस्कार उत्तम रीतिसे सम्पन्न किया है । हे द्विजोत्तम ! क्रमशः समग्र देवगण, निष्पाप देवर्षिगण, पातालसे शेष, वासुकी, तक्षक प्रभृति पन्नगराजगण, समस्त वायु दल तथा देवों, दानवों, यक्षों और गुह्यकोंमेंसे प्रधान प्रधान व्यक्ति वहाँ आकर उत्सवमें सम्मिलित हो गये ॥ २१-२८ ॥ उस प्रसङ्गमें उपस्थित सब ऋषियों, देवों, दानवों, पन्नगों, मुनियोंसे गन्धर्वोंका वह महानगर व्याप्त हो गया । जातकर्मादि कार्य समाप्त होनेपर तुम्बरुने स्तुतिपूर्वक बालकका इस प्रकार स्वस्तिवाचन (पुण्याहवाचन) करना प्रारम्भ किया,—हे वीर ! तुम महावली, महावीर्यशाली, महाबाहु और सार्वभौम होकर दीर्घकाल तक समग्र पृथिवीका आधिपत्य करोगे । ये समस्त इन्द्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मङ्गल करें और तुम्हें ऐसा वीर्य प्रदान करें, जिससे तुम शत्रुओंका विनाश कर सको । पूर्व दिशामें प्रवाहित होनेवाला धूलिरहित मरुत् (वायु) तुम्हारा मङ्गल करे । अक्षीण और विमल दक्षिण-मरुद् तुम्हारी विषमता (मनोमालिन्य) दूर करे । पश्चिम-मरुत् तुम्हें महावीर्य और उत्तर-मरुत् उत्कृष्ट बल प्रदान करे । इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्यके समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई कि, गुरुजीने जब कि, वार-वार 'मरुत् मरुत्' शब्दका उच्चारण किया है, तब मरुत्त नामसे ही यह बालक भूमण्डलमें विख्यात् होगा। समस्त महीपाल इसके आज्ञाधीन रहेंगे, सब राजाओंका यह शिरोमणि होगा और महा-वीर्यशाली तथा चक्रवर्ती होकर अनेक भूपालोंको अधीन करता हुआ सप्तद्वीपवती इस पृथ्वीका उपभोग करेगा । यह बालक पृथ्वीश्वरों और बड़े बड़े यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ होगा तथा सब राजाओंकी अपेक्षा शूरता-वीरतामें भी अलौकिक कीर्ति प्राप्त करेगा। मार्कण्डेय बोले,—उक्त देववाणी सुनकर वहाँ उपस्थित हुए सब विप्र, गन्धर्व और बालकके माता पिता बहुत ही प्रसन्न हुए ॥ २९-३९ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्तजन्मकथन नामक
एक सौ सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

एक सौ अट्ठाईसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—हे विप्र! तदुपरान्त राजपुत्र अपने नवजात प्रियतम पुत्र और पत्नीको साथ लेकर पिताकी राजधानीमें लौट आया। उसे विदा करते समय राजधानी तक गन्धर्वगण पैदल ही पहुंचाने आये थे। पिताके पास पहुंचकर राजपुत्रने उन्हें भक्तिपूर्वक प्रथम प्रणाम किया और फिर कृशाङ्गी राजकन्याने भी लज्जासे नीचा सिर कर प्रणाम किया। अनन्तर जब कि, महाराज करन्धम धर्मासनपर विराजमान हो रहे थे, सब सामन्त राजाओंके सामने राजपुत्र नवजात कुमारको उठा लाकर महाराजसे कहने लगा,—इससे पहिले मांके किमिच्छकव्रत ग्रहण करते समय आपके समीप मैंने जो प्रतिज्ञाकी थी, उसके अनुसार हे पिताजी! इस अपने पौत्रको गोदमें लेकर इसका मुख अवलोकन कीजिये। यह कहकर राजपुत्रने अपने कुमारको पिताकी गोदमें रख दिया और उनसे सारा वृत्तान्त विस्तृत रूपसे निवेदन किया॥१–५॥ राजाकी आंखोंमें आनन्दाश्रु छलकने लगे। पौत्रको उसने छातीसे लगा लिया और "मैं सौभाग्यमान् हुआ हूँ" यह कहते हुए वह अपनी आप ही प्रशंसा करने लगा। फिर आनन्दोच्छ्वासके कारण अन्यान्य सब कार्योंको भुलाकर उसने आये हुए गन्धर्वोंको अर्घ आदिके द्वारा सम्मानित किया। हे महामुने! राजाको पौत्रका लाभ हुआ है, यह समाचार नगरमें फैलते ही जनताने यह कहते हुए कि, हमारी रक्षा करनेवाला पौत्र राजाको हुआ है, घर घर आनन्दोत्सव मनाया। उस आनन्दपूर्ण नगरके विशाल आंगनोंमें अनेक सुन्दरी विलासिनी स्त्रियां एकत्र होकर गाने, बजाने और नाचने लगीं॥६–८॥ राजाने प्रसन्न चित्तसे अनेक प्रमुख ब्राह्मणोंको बहुतसे रत्न, धन, वस्त्र, अलङ्कार और गायें दान कीं। क्रमशः वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़ता हुआ माता-पिताको आनन्दित करने लगा तथा जनसाधारणका प्यारा हो गया। हे मुने! उस बालकने यथासमय आचार्योंके पास जाकर प्रथम वेद, फिर सब शास्त्र और अनन्तर धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण की। फिर वह वीर बालक कष्टसहिष्णु होकर खड्ग, धनु तथा अन्यान्य शस्त्रोंके प्रयोगोंकी शिक्षाके लिये उद्योगी हुआ। हे विप्र! वह बड़ा ही विनयशील और गुरुकी प्रीति सम्पादन करनेवाला था। उसने भृगुवंशीय भार्गवसे समस्त अस्त्र ग्रहण कर लिये थे। थोड़े ही दिनोंमें वह सकल अस्त्रोंमें कुशल, धनुर्विद्यापारग, वेदोक्त कर्म करनेवाला और सब विद्याओंका पारदर्शी हो गया। उस समय उसके समान इन सब गुणोंमें कोई भी श्रेष्ठ नहीं था।

अपनी कन्याकी सब बातें और नातीकी योग्यताको जानकर विशालराजका हृदय भी प्रसन्नतासे फूल उठा ॥ १०-१६ ॥ पौत्रका मुख अवलोकन करनेसे सफलमनोरथ होकर समरविजयी, बल और बुद्धिसम्पन्न राजा करन्धमने अनेक यज्ञ किये, याचकोंको विपुल दान दिया और बहुतसे सत्कर्मोंका साधन किया। फिर समाधान पूर्वक धर्मानुसार पृथ्वी-पालन करनेपर कुछ कालके उपरान्त वन जानेकी इच्छासे उसने अपने पुत्र अवीक्षितसे कहा,—हे पुत्र! मैं वृद्ध हो गया हूं और अब मैं वनमें जाना चाहता हूं, इस कारण तुम इस राज्यको सम्हाल लो। मैं सब विषयोंमें कृतार्थ हो गया हूं; अब तुम्हें अभिषेक करना ही शेष रह गया है। अतः मेरे दिये और अच्छी तरह निष्पन्न किये हुए इस राज्यके भारको तुम उठा लो। राजपुत्र अवीक्षितने पिताके वचनको सुनकर तपस्या तथा वनगमनकी इच्छासे विनयके साथ कहा,—हे पितृदेव! मैं राज्यशासन करना नहीं चाहता; क्योंकि मेरी वह लज्जा छूटी नहीं है। अतः आप अन्य किसीको पृथ्वीपालनके लिये नियुक्त कीजिये। मेरे बद्ध होनेपर पिताके द्वारा छुटकारा हुआ था, अपने पराक्रमसे मैं बन्धनमुक्त नहीं हो सका। ऐसी अवस्थामें मेरा पौरुष ही क्या रहा? पुरुष ही पृथ्वीपालन किया करते हैं। मैं अपनी ही रक्षा करनेमें जब असमर्थ हूं, तब समस्त भूमण्डलकी रक्षा कैसे कर सकूंगा? अतः किसी अन्यको ही आप राज्यका भार सौंपिये। अच्छा परामर्श देनेवाला और धर्मशील होनेके कारण जिसे मोहके वशीभूत नहीं होना चाहिये, वह आत्मा (मैं) जब शत्रुओंसे पराजित होता है और आपके द्वारा बन्धनमुक्त किया जाता है, तब वह स्त्री जातिका समानधर्मा होनेसे महीपति कैसे हो सकता है? ॥ १७-२५ ॥ पिताने कहा,—हे वीर! पिता पुत्रसे और पुत्र पितासे स्वतन्त्र नहीं होता। अतः मेरे द्वारा बन्धनमुक्त होनेसे ही यह नहीं कहा जा सकता कि, तुम किसी परायेके द्वारा बन्धनमुक्त किये गये हो। पुत्र बोला,—हे नरेश्वर! मैं अपने हृदयके आवेगको रोक नहीं सकता। आपके द्वारा बन्धनमुक्त होनेके कारण मेरे हृदयमें निरतिशय लज्जा जाग उठी है। जो व्यक्ति पिताकी कमायी हुई सम्पत्तिका उपभोग करता है, विपत्तिके समय पिताके द्वारा उद्धार पाता है और पिताके नामसे ही परिचित होता है, वंशमें उसके जैसा पुत्रका जन्मग्रहण न करना ही उत्तम है। जो स्वयं धन कमाता है, स्वयं प्रसिद्धि पाता है और स्वयं दुःखको पार कर जाता है, उसकी जो गति होती है, वही मुझे अभीष्ट है ॥ २६-२९ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुने! पिताके बारम्बार अनुरोध करनेपर भी जब राजपुत्रने यही उत्तर दिया, तब विवश होकर राजा करन्धमने अपने पौत्र मरुत्तको राज्यासनपर अधिष्ठित किया। मरुत्त पिताकी अनुमतिसे पितामहके द्वारा राज्य प्राप्त कर सुहृद्गणको प्रसन्न

रखता हुआ उत्तम रीतिसे शासन कार्य करने लगा। राजा करन्धम भी अपनी पत्नी वीराको साथ लेकर काया, मन और वाणीको संयत कर तपस्याके लिये वनमें चला गया। नृपति करन्धमने वहां सहस्र वर्षोंतक घोर तपस्या की और जब उसका देह छूट गया, तब उसे इन्द्रलोककी प्राप्ति हुई। उसके देहान्तके पश्चात् पत्नी वीराने महर्षि भार्गवके आश्रममें आश्रय पाया। वहीं वह मुनिपत्नियोंके साथ रहकर उनकी सेवा-शुश्रुषा करने लगी। फिर उसने स्वर्गगत अपने महात्मा पतिदेवकी समलोकताप्राप्तिके निमित्त केवल फल-मूलही खाना आरंभ किया। तपकी कठोरतासे उसके केशोंकी जटायें बध गयी थीं और शरीर मलिन हो गया था। पतिके पश्चात् दिव्य सौ वर्षोंतक वह तपाचरणमें ही निमग्न रही ॥ ३०-३५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका अवीक्षितचरित नामक
एकसौ अट्ठाईसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ उनतीसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

क्रौष्टुकिने कहा,—भगवन्! आपने करन्धम और अवीक्षितका समग्र चरित विस्तारपूर्वक कह सुनाया है। अब अवीक्षितपुत्र महात्मा मरुत्त नृपतिका चरित्र सुनना चाहता हूं। सुना है कि, वह राजा बड़ा ही उद्यमी, चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, सुन्दर, परम बुद्धिमान्, धर्मज्ञ, धर्माचरणशील और अच्छा पृथ्वीपालक था। मार्कण्डेय बोले,—पितासे अनुमोदित और पितामहसे प्राप्त राज्यको पाकर मरुत्त जिस प्रकार पिता पुत्रका प्रतिपालन करता है, उसी प्रकार समस्त प्रजाका धर्मानुसार पालन करने लगा। याज्ञिकों और पुरोहितोंके आदेशसे प्रजापालनमें मनोयोग करते हुए उस राजाने अपर्याप्त दक्षिणासे युक्त अनेक यज्ञ यथाविधि किये थे। सातों द्वीपोंमें उसका रथ अप्रतिहत-गतिसे दौड़ा करता था और आकाश, पाताल तथा जलमें कहीं भी उसकी गतिमें बाधा नहीं होती थी ॥ १-६ ॥ हे विप्र! उस स्वधर्मपरायण मरुत्तने विपुल धन पाकर बड़े बड़े यज्ञोंके द्वारा इन्द्रादि देवोंकी पूजा की थी। अन्यान्य सब वर्णोंके लोग अपने अपने कर्मोंमें तत्पर रहकर राजासे प्राप्त धनके द्वारा इष्टापूर्तादि कर्म किया करते थे। हे द्विजश्रेष्ठ! महात्मा मरुत्त पृथिवीका पालन करता हुआ स्वर्गवासी देवताओंके साथ स्पर्द्धा करने लगा। वह केवल सब राजाओंका ही अधीश्वर नहीं हुआ, किन्तु सैंकड़ों यज्ञ करके देवराज-इन्द्रसे भी बढ़ गया था। हे विप्र! अङ्गिराके पुत्र और बृहस्पतिके भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त उसके ऋत्विज

थे । हे द्विज ! सुरगणसे सेवित मुञ्जवान् नामक एक सुवर्णमय पर्वत है । संवर्तने तपोबलसे उसके एक शिखरको गिरा दिया और उसे उठाकर वे राजाके लिये ले आये । राजाकी समस्त यज्ञभूमि और सब प्रासाद उन्होंने उस शिखरके द्वारा तपोबलसे सुवर्ण-मय बना डाले ॥ ७-१३ ॥ ऋषियोंने जब यह मरुत्त-चरित देखा, तब वे उसका इस प्रकार गुणगान करने लगे,—जिसके यज्ञका समस्त मण्डप तथा प्रासाद काञ्चनमय बनाया गया, जिसके यज्ञमें सुरेन्द्र सोमपान कर और ब्राह्मण दक्षिणा लाभ कर आनन्दसे उछलने लगे और इन्द्रादि प्रधान प्रधान देवता ब्राह्मणोंके परोसनेवाले बने, उस मरुत्तके समान पृथ्वी-में कोई भी यजनशील राजा आजतक नहीं हुआ । महीपति मरुत्तके अतिरिक्त अन्य किस राजाके रत्नजटित यज्ञमण्डपसे सोनेके ढ़ेर ब्राह्मणोंने ढोये हैं ? इसके यज्ञमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तीनों वर्णोंने जैसी सुवर्णमय प्रासादादि अनेक वस्तुएँ प्राप्त कीं, वैसी अब-तक किसने प्रदान की थीं ? इसीके यज्ञमें जो सकल शिष्ट व्यक्ति विपुल धन पाकर पूर्ण-मनोरथ हुए, उन्होंने उसी धनसे विभिन्न देशोंमें जाकर नाना प्रकारके यज्ञ किये ॥१४-१९॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार उसके उत्तम राज्यशासन और प्रजापालन करते हुए, एकबार किसी तपस्वीने आकर उससे कहा,—हे नरेश्वर ! कुछ तपस्वियोंको मदोन्मत्त उरगों (सर्पों) के विषसे अभिभूत हुए देखकर आपकी दादीने आपको यह कहला भेजा है कि,—तुम्हारे पितामहने भलीभाँति पृथ्वीका पालन कर स्वर्गमें गमन किया है और मैं तपस्या करती हुई ऊरु ऋषिके आश्रममें निवास करती हूँ । हे नृप ! तुम्हारे पितामह और अन्यान्य पूर्वपुरुषोंके राज्यकालमें जो विकलता कभी नहीं देखी गयी थी, वह तुम्हारे शासनकालमें देख रही हूं । तुम निश्चित ही प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोगमें आसक्त हो रहे हो और तुम्हारी चारान्धता* भी देखी जाती है । इसीसे उन (चारों)के दुष्ट-अदुष्ट होनेकी पहिचान करनेमें तुम असमर्थ जान पड़ते हो । डसनेवाले भुजङ्गोंने पातालसे आकर सात मुनिकुमारोंको डस लिया है और अपने पसीने, मूत्र तथा पुरीषसे सब जलाशयों और हवनीय द्रव्योंको दूषित कर डाला है । इसीसे मुनिगण 'अपराध हुआ है' यह जानकर नागोंको बलिप्रदान कर रहे हैं ॥ २०-२६ ॥ यों वे मुनिगण भुजङ्गोंको भस्मीभूत करनेमें समर्थ हैं; किन्तु यह (शासन करना) उनका विषय न होनेसे तुम ही इस कार्यके अधिकारी हो । हे नृप ! राजपूत लोग तभीतक भोग-जनित सुखका लाभ कर सकते हैं, जबतक उनके ऊपर अभिषेकके जलका सिञ्चन न किया गया हो । कौन

---

* राजाको 'चारचक्षु' कहते हैं । अर्थात् वह चारों (जासूसों) द्वारा राज्यभरको देखा करता है । जासूस ही उसकी आंखें हैं । वे बिगड़ जानेपर राजा 'चारान्ध' होकर राज्यकी भलाई-बुराई देख नहीं सकता ।

मित्र है, कौन शत्रु है, शत्रुके बलका परिमाण क्या है, मैं कौन हूं, मन्त्री कौन हैं, अपने पक्षमें कौन कौन राजा हैं, कौन अपनेसे विरक्त है, किस शत्रुने अपना भेद जान लिया है, शत्रुओंमें कौन कैसा है, अपने नगर अथवा राज्यमें कौन सब प्रकारसे धर्म-कर्ममें निरत है और कौन मूर्ख बस रहा है, दण्ड देनेयोग्य कौन है और कौन पालन करनेयोग्य है, सन्धि-विग्रहके भयसे देश-कालकी विवेचना कर किसके प्रति दृष्टि रखनी चाहिये ? इन सब बातोंको जाननेके लिये राजा अपने जासूसोंसे अपरिचित अन्य जासूसोंकी नियुक्ति करता है। राजा अपने सचिव आदिपर भी चरोंको नियुक्त करता है। ऐसे कामोंमें सदा ही दत्तचित्तसे राजाको दिन रात लगे रहना चाहिये। भोगपरायण होना कदापि उसका कर्तव्य नहीं ॥ २७-३४ ॥ हे महीपते ! राजाओंका शरीरधारण भोगके निमित्त नहीं होता। पृथिवी तथा स्वधर्मपरिपालनके लिये महान् क्लेश सहना ही उसका सुख-भोग है। स्वधर्म और पृथ्वीका पालन करते हुए इस जन्ममें निरतिशय क्लेश सहनेसे ही राजाको परलोकमें स्वर्ग आदिका अक्षय्य सुख प्राप्त होता है। हे नरेश्वर ! इन बातोंका विचार कर भोगका परित्याग करते हुए पृथ्वीपालनके लिये, कष्ट सहनेके लिये, प्रस्तुत हो जाना ही तुम्हें उचित है। हे भूप ! तुम्हारे शासनकालमें ऋषियोंको यह जो भुज-ङ्गोंका सङ्कट प्राप्त हुआ है, चारान्धताके कारण उसे तुम जान नहीं पाये। अधिक क्या कहूं ? राजन् ! तुम दुष्टोंको दण्ड दो और शिष्टोंका पालन करो। इसीसे तुम्हें धर्मफल-का षष्ठ भाग प्राप्त होगा। दुष्टजन औद्धत्यके कारण जो कुछ करें, उनको यदि तुम दंड न दो, तो अवश्य ही पापभागी होगे। इस समय तुम जो अपना कर्तव्य ठीक समझो, वही करो। हे वसुधाधिपति ! मैं तुम्हारी पितामही हूं, इसीसे ये सब बातें कह रही हूं। अब जैसा आचरण करनेकी तुम्हारी अभिरुचि हो, वही करो ॥ ३५-४१ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्त-चरित नामक
एक सौ उनतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

टीकाः—राजकुमार-अवस्थामें यौवनसुलभ चञ्चलता और भोगसंस्कार रहनेके कारण राज-कुलोद्भव व्यक्ति भोगपरायण हो सकता है, परन्तु जब राजा राजसिंहासनपर बैठ जाता है और राज्या-भिषेक-यज्ञके द्वारा उसके शरीरमें देवताओंके पीठ स्थापित हो जाते हैं, उस समय वह दैवीराज्यका साक्षात् प्रतिनिधि बन जाता है। तब उसके लिये भोगपरायण होना पाप है। भोगोंको रोककर धर्म-स्थापन और पुत्रके समान प्रजापालन करना ही उसका एकमात्र जीवनलक्ष्य हो जाना उचित है। आर्य जातिके राजधर्मका यह बीजमन्त्र है। इसी कारण राजाके लिये इस स्थलपर भोगसे बचनेकी आज्ञा इस गाथामें आर्य राजमहिलासे दिलायी गयी है ॥ २७-३४ ॥

एक सौ तीसवाँ अध्याय ।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—तापससे दादीका सन्देश सुनकर राजा बड़ा ही लज्जित हुआ और लम्बी साँस भरकर बोला,—मैं यदि चारान्ध हूं, तो मुझे धिःकार है। फिर अपना धनुष सजाकर उसी पैर वह ऊरु ऋषिके आश्रममें गया और वहाँ उसने सिर नवाकर पितामही वीरा तथा अन्य तपस्वियोंको यथाविधि प्रणाम किया। उन लोगोंके द्वारा आशीर्वचन प्राप्त होनेपर राजाने उन साँपके काटे हुए सात तपस्वियोंको, जिनका समाचार तापससे मिला था, भूमिपर पड़े हुए देखकर, मुनियोंके समक्ष ही अपनी वारम्वार निन्दा करते हुए रोषसे कहा,—जब कि, सभी साँप मेरे पराक्रमकी अवमानना करके ब्राह्मणोंका द्वेष कर रहे हैं, तब मैं आज उनकी क्या दशा करूँगा, उसे समस्त जगत्के देव, दैत्य और मनुष्य अवलोकन करें ॥ १–५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—यह कहकर भूपतिने पाताल और भूतलके यावतीय नागकुलोंके विनाशके उद्देश्यसे क्रोधपूर्वक संवर्तक नामक अस्त्र चलाया। हे विप्र! तब उस अस्त्रके तेजसे सारा नागलोक सहसा जलने लगा और उस अग्निकाण्डसे दग्ध होनेवाले भयभीत नागगण 'हा मातः! हा तात! हा वत्स!' कहते हुए आर्तनाद करने लगे। किसीकी पोंछ और किसीकी फणा जल गयी। कोई कोई तो वस्त्र-आभरणादिको वहीं फेंककर स्त्री-पुत्रोंके साथ पाताल छोड़कर मरुत्त-माता भामिनीके पास भागे। क्योंकि उन्हें उसने पहिले अभय दान किया था। भयातुर सब उरग उसके पास जाकर और उसे प्रणाम कर गद्गद होकर बोले,—पहिले पातालमें प्रणाम और पूजा कर आपसे जो हमने प्रार्थना की थी, उसका स्मरण कीजिये। हे वीरप्रसू! वही समय अब उपस्थित हो गया है। इस समय आप हमारी रक्षा कीजिये। हे राज्ञि! आप अपने पुत्रको रोककर हमें प्राणदान करिये। समस्त नागलोक इस समय अस्त्रकी आगसे दग्ध हुआ जा रहा है। हे यशस्विनी! आपका पुत्र हमें ऐसा जला रहा है कि, आपके अतिरिक्त हमारी रक्षा करनेमें कोई समर्थ नहीं है। अतः आप ही हमपर कृपा कीजिये ॥ ६–१४ ॥ मार्कण्डेय बोले,—साध्वी भामिनीने नागोंके वचनोंको सुनकर और अपने पहिले दिये हुए अभय-वचनको स्मरण कर पतिसे आदरके साथ इस प्रकार कहा,—पातालमें नागोंने प्रार्थना-पूर्वक मेरे पुत्रके सम्बन्धमें मुझसे जो कुछ कहा था, वह मैं पहिले ही निवेदन कर चुकी हूं। वे ही नाग इस समय अपने पुत्रके तेजसे दग्ध हो रहे हैं। इसीसे वे डरकर मेरे शरणापन्न हुए हैं। मैंने पहिले उन्हें अभयदान किया है। देखिये, जो मेरे शरणागत हैं, वे आपके भी हैं। क्योंकि मैं पातिव्रत्य-पूर्वक आपकी

शरणमें रही आयी हूं। अतः पुत्र मरुत्तको रोकिये। वह आपके वचन और मेरे अनुरोधसे अवश्य ही मान जायगा। अवीक्षितने कहा,—इन नागोंके महान् अपराधोंके कारण ही मरुत्त क्रुद्ध हो गया है, यह निश्चित है। अतः तुम्हारे पुत्रका क्रोध सहज ही शान्त हो जायगा, ऐसा प्रतीत नहीं होता ॥ १५-२० ॥ नागोंने कहा,—हे नृप! हम आपके शरणागत हैं, हमपर आप अनुग्रह कीजिये। क्षत्रिय लोग आर्त व्यक्तियोंकी रक्षाके लिये ही अस्त्रधारण किया करते हैं। मार्कण्डेय बोले,—महायशा अवीक्षितने शरणेच्छु उन नागोंकी प्रार्थना और पत्नीके अनुरोधको सुनकर कहा,—हे भद्रे! मैं शीघ्र ही तुम्हारे पुत्रके पास जाकर नागोंकी रक्षाके लिये उससे कहता हूं। शरणागतकी उपेक्षा करना कदापि उचित नहीं है। यदि तुम्हारे पुत्र मरुत्त राजाने मेरे कहनेसे अपने अस्त्रोंको नहीं रोका, तो मैं अपने अस्त्रोंसे उसके अस्त्रोंका निवारण करूँगा। मार्कण्डेयने कहा,—अनन्तर क्षत्रिय-श्रेष्ठ अवीक्षितने अपने धनुषको सजाकर पत्नीके साथ शीघ्रताके साथ भार्गवाश्रमकी ओर प्रस्थान किया ॥ २१-२५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्त-चरित सम्बन्धी
एक सौ तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ इकतीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—अवीक्षितने वहां जाकर क्या देखा कि, भामिनीपुत्र मरुत्त प्रचण्ड धनुष धारण कर उससे अति भीषण, उग्र और अग्निमय बाण बरसा रहा है। उस महावह्निकी ज्वालाओंसे दिगन्तर व्याप्त हो गया है, पृथ्वी धधक रही है और उस अग्निके पातालमें प्रवेश करनेसे वह पातालवासियोंको भी असह्य हो उठा है। उदारचेता अवीक्षितने राजाकी भौंहें चढ़ी हुई देखकर हँसते हुए शीघ्रतासे आगे बढ़कर कहा,—हे मरुत्त! क्रोध न करो और अपने अस्त्रको रोक लो। मरुत्तने पिताकी वाणी सुनकर और उनकी ओर बारंवार देखकर, धनुष ताने हुए ही माता पिताको प्रणाम कर सम्मानके साथ कहा,—हे पिताजी! इन पन्नगोंने मेरा बड़ा अपराध किया है। मेरे शासनकालमें मेरे बलकी अवज्ञा कर इन्होंने इस आश्रममें आकर सात मुनिकुमारोंको डसा है। हे अवनीश्वर! मेरे शासनकालमें इन दुर्वृत्तोंने इस आश्रमके ऋषियोंके हवि तथा जलाशयोंको दूषित कर दिया है। अतः हे पितः! इस सम्बन्धमें कुछ न बोलें और इन ब्रह्मघाती पन्नगोंके विनाशकार्यमें बाधा न डालें। अवीक्षितने कहा,—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या की है,

तो इन्हें मृत्युके पश्चात् नरक प्राप्त होगा। तुम अस्त्र-प्रयोगको रोककर मेरे वचनकी रक्षा करो। मरुत्त बोला,—यदि मैं इनको दण्ड देनेका प्रयत्न न करूँ, तो मुझे नरकमें जाना होगा। अतः हे पिताजी! मुझे न रोकिये। अवीक्षितने कहा,—ये सब नाग मेरे शरणागत हुए हैं। अतः हे नृप! मेरी गौरव-रक्षाके लिये तुम क्रोधको संवरण कर अस्त्रको रोक लो॥ १-६॥ मरुत्त बोला,—मैं इन अपराधियोंको क्षमा नहीं करूँगा। मैं अपने धर्मका उल्लंघन कर आपके वचनकी कैसे रक्षा करूँ? दण्ड देने योग्य व्यक्तियोंको दण्ड देकर और शिष्टोंका प्रतिपालन कर भूपति अनेक पुण्यलोकोंको प्राप्त करते हैं और इसकी उपेक्षा करनेसे उन्हें नरक भोगना पड़ता है। मार्कण्डेयने कहा,—पिताके बारबार समझाने पर भी जब पुत्र मरुत्तने नहीं माना, तब अवीक्षितने फिर उससे कहा,—ये पन्नगगण भयभीत होकर मेरे शरणापन्न हुए हैं। मेरे बारबार कहनेपर भी जब तुम इनका संहार कर रहे हो, तब इसका प्रतीकार मैं अवश्य करूँगा। भूमण्डलमें अकेले तुम ही अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अस्त्रसमूहोंका लाभ किया है। हे दुर्वृत्त! मेरे सामने तेरा पुरुषार्थ ही क्या है? ॥ १०-१६॥ मार्कण्डेयने कहा,—हे मुनिपुङ्गव! यह कहकर अवीक्षितने क्रोधसे लाल लाल आँखें कर धनुषपर प्रत्यञ्चा चढ़ायी और कालास्त्र निकालकर उसपर योजित किया; जो ज्वालाओंसे व्याप्त महान् शक्तिशाली और शत्रुविनाशक था। हे विप्र! मरुत्तके संवर्तकास्त्रसे तपा हुआ गिरि-सागरोंसे युक्त सारा जगत् उस कालास्त्रके निकलते ही क्षुब्ध हो उठा। उस कालास्त्रको धनुषसे जोड़ा हुआ देखकर मरुत्तने उच्च स्वरसे कहा,—मेरा संवर्तकास्त्र दुष्टोंकी शान्तिके लिये समुद्यत हुआ है, आपके वधके लिये नहीं; फिर सत्पथावलम्बी और सर्वदा आपकी आज्ञाका पालन करनेवाले पुत्रपर आप कालास्त्र क्यों छोड़ रहे हैं? हे महाभाग! प्रजापालन करना ही मेरा कर्तव्य है। आप मेरे विनाशके लिये ऐसे कठोर अस्त्रका क्यों प्रयोग करते हैं? ॥ १७-२२॥ अवीक्षितने कहा,—मैंने शरणागतकी रक्षा करनेका सङ्कल्प कर लिया है। तुम उस कार्यमें बाधा डाल रहे हो। तुम्हारे जीवित रहते हुए मैं शरणागतोंकी रक्षा नहीं कर सकता, अतः या तो तुम अपने अस्त्रबलसे मेरा विनाश करके दुष्ट उरगकुलोंका वध करो, या मैं ही अपने अस्त्रकी सहायतासे तुम्हारा विनाश कर उरगोंकी रक्षा करूँगा। शत्रुपक्षीय व्यक्तिके भी विपन्न होकर शरणमें आ जानेपर जो उसकी रक्षा नहीं करता, उस पुरुषके जीवनको धिःकार है। मैं क्षत्रिय हूं। भीत होकर ये मेरी शरणमें आये हुए हैं और तुम इनके अपकर्ता हो रहे हो। फिर तुम कैसे अवध्य हो सकते हो? मरुत्तने कहा,—मित्र, बान्धव, पिता अथवा गुरु, जो कोई प्रजापालनमें बाधा देंगे, राजाके लिये वे अवश्य ही वध्य हैं। अतः हे पिताजी! मैं आपपर प्रहार करूँगा, परन्तु इससे आप

रुष्ट न हों । स्वधर्मपालन करना ही मेरा उद्देश्य है। आपपर मेरा किसी प्रकारका क्रोध नहीं है। मार्कण्डेयने कहा,—उन दोनोंको परस्परको मारडालनेके लिये तुले हुए देखकर भार्गवादि मुनिगण शीघ्रतासे वहाँ आकर उपस्थित हुए और दोनोंके बीचमें खड़े

टीकाः—इस गाथामें नागलोकके जीवोंकी जो अलौकिकता देखी जाती है, इससे सन्दिग्ध होकर विचलित होनेकी आवश्यकता नहीं है। यह तो लौकिक इतिहाससे भी प्रतीत होता है कि, कितने ही प्रकारकी जीवश्रेणियां और कितने ही महान् शक्ति और रूपधारी जीवसमूह इस मृत्युलोकमें पहिले दिखायी देते थे, अब दिखायी नहीं देते। और भी सृष्टिमें कितना ही परिवर्तन लौकिक इतिहासके युगमें देखा जाता है। लाखों लाखों वर्षोंके मन्वन्तरों और करोड़ों वर्षोंके कल्पोंमें सर्पादि योनियोंके रूप, शक्ति और अधिकारके विषयमें इस प्रकार वैचित्र्यपूर्ण वर्णन होना असम्भव नहीं है। इस मधुर गाथामें पितामही, माता, पिता और राजधर्मपालक राजपुत्रके अपने अपने ढङ्गपर धर्ममर्यादा पालनका इतिहास बहुत ही चमत्कृतिजनक है। प्रत्येक मन्वन्तरमें एक ब्रह्माण्डकी सृष्टिकी सभ्यता और अनुशासनकी श्रृंखला बदल जाया करती है। दैवीजगत्के अधीन ही यह स्थूल मृत्युलोक सुरक्षित और चालित होता है। इसी कारण प्रत्येक मन्वन्तरमें मनुदेवता, इन्द्रदेवता आदिके परिवर्तनके साथ ही साथ ब्रह्माण्डकी दैवी श्रृंखला बदल जाती है और दैवी श्रृंखलाके बदलनेके साथ ही साथ सब श्रेणीके उन्नत जीवमात्रकी शक्ति और सभ्यतामें भी हेर फेर हुआ करता है। जैसे इस मृत्युलोकमें राजानुशासनके परिवर्तनके साथ ही साथ मनुष्य-सभ्यताकी दशा बदल जाती है। इसी कारण विज्ञजन कहते हैं कि, राजाही कालका कारण होता है। ठीक उसी प्रकार दैवीजगत्में जब मनु-पदपर एक मनुके ब्रह्मीभूत होनेपर दूसरे मनु आकर कालका अनुशासन करते हैं। तब समस्त ब्रह्माण्डकी सभ्यतामें हेर फेर हो जाता है। सब पुराणशास्त्रमें जो जो नाना प्रकारकी वैचित्र्यपूर्ण कथाएं पायी जाती हैं और उनके पढ़नेसे नाना प्रकारकी शंकाएँ हुआ करती हैं, ऐसी वर्णनवैचित्र्यताके जितने दार्शनिक कारण हों, उनमेंसे नाना मन्वन्तरोंकी विभिन्न विभिन्न श्रृंखला और शक्तिके अनुसार सृष्टि-वैचित्र्य और सभ्यतावैचित्र्य होना एक प्रधान कारण है। मार्कण्डेयपुराणमें मन्वन्तरोंके विचारसे विभिन्न विभिन्न दैवीश्रृंखलाका सूत्ररूपसे दिग्दर्शन कराया गया है। इस कारण इस पुराणशास्त्रमें वर्णाश्रम माननेवाली आर्यजातिकी दिव्य सभ्यताके मौलिक सिद्धान्तसमूह गाथारूपसे स्थान स्थानपर अच्छी तरह दिखाये गये हैं। धर्मत्व रूपसे धर्म सर्वव्यापक और सर्वजीवहितकारी है। सर्वजीवहित-कारी ही नहीं, किन्तु प्रत्येक ब्रह्माण्डसे लेकर प्रत्येक पिण्ड और यहां तक कि, प्रत्येक परमाणुमें धर्मकी धारिकाशक्ति सबका कल्याण कर रही है। रजोमूलक आकर्षणशक्ति और तमसूमूलक विकर्षणशक्तिके समन्वयसे धर्मकी उत्पत्तिके द्वारा ब्रह्माण्डके ग्रहोपग्रहसमूह अपनी मर्यादाकी रक्षा कर रहे हैं। उसी प्रकार इसी विज्ञानके अनुसार पाषाणमें पाषाणत्व, अग्निमें अग्नित्व आदिरूपसे छोटे बड़े सब जड़ पदार्थोंका धर्म ही धारण करके उनके अस्तित्वकी रक्षा कर रहा है। उदाहरण यह है कि, पत्थरकी धर्मशक्ति यदि नष्ट हो जायगी, तो रजोमूलक आकर्षणशक्तिके नाश और तमोमूलक विकर्षणशक्तिके प्रबल होनेसे पत्थरके अणुपुञ्ज बिखरकर मिट्टी हो जायंगे और पत्थरका अस्तित्व नष्ट हो जायगा। इसी सर्वव्यापक अकाट्य दैवी व्यवस्थाके अनुसार प्रत्येक जीवपिण्डमें प्रमाद और जड़तामूलक तमोगुण तथा क्रिया और भोगेच्छा-मूलक रजोगुणका जितना समन्वय होगा, उतना ही सत्वगुणका उदय होगा और उतना ही उन्नत जीवोंमें धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, न्याय, प्रेम, सत्य आदि धर्मवृत्तियोंका अधिकार बढ़ता जायगा और

होकर मरुत्तसे बोले,—पितापर अस्त्र चलाना तुम्हें उचित नहीं है। फिर अवीक्षितसे बोले,—तुम्हारा भी अपने इस विख्यातकर्मा पुत्रको मार डालना योग्य नहीं है ॥२३-३०॥

वह पिण्ड धर्मजगत्में अग्रसर होता जायगा। यही मनुष्यका मनुष्यत्व है। आगे बढ़कर वही धर्मशक्ति पुरुषमें यज्ञधर्मरूपसे और नारीमें जपोधर्मरूपसे दोनोंके स्वतन्त्र स्वतन्त्र स्वधर्मका संरक्षण करके दोनोंको अपने अपने अधिकारके अनुसार अभ्युदय और निःश्रेयसकी ओर अग्रसर कराती रहती है। वही धर्मशक्ति पुनः आध्यात्मिक उन्नतिशील दैवीजगत्को सहायता देनेवाली, शुद्धाशुद्धिविवेक रखनेवाली और वर्णाश्रमशृंखलापर चलनेवाली मृत्युलोककी आर्यजातिकी इस नाशमान लोकमें चिरजीवी बनाये रखती है। यही कारण है कि, वर्णाश्रमी आर्यजातिके आचार और विचार पृथ्वीभरकी अन्य सब जातियोंसे अपूर्व और विचित्र हैं और चिरजीवी तथा आध्यात्मिक उन्नतिशील होनेसे मनुष्यजातिकी सभ्यताके विस्तारकी जितनी ज्ञानराशि है, उस सब ज्ञानप्रणालीकी आदिगुरु और जगद्गुरु यही वर्णाश्रमधर्मी आर्यजाति है। इस विषयमें तो जगत्के किसी विद्वानका मतभेद हो ही नहीं सकता। आर्यजातिके विशेष धर्म और उसकी विशेष सभ्यताके सब बड़े बड़े मौलिक सिद्धान्तोंका दिग्दर्शन इस पुराणशास्त्रमें कराया गया है। नारीजातिमें अतुलनीय त्याग और तपस्या-मूलक सतीत्वधर्मकी पूर्णता एक ओर और दूसरी ओर साधारणतः स्त्रियां आत्मज्ञानकी अधिकारिणी न होते हुए भी त्रिलोकपवित्रकारी सतीत्वधर्मके पालनके साथ ही साथ नारीजातिमें आत्मज्ञानकी पूर्णता कैसे हो सकती है, इसका भी दिग्दर्शन कराया गया है। आर्यजातिका यह एक विशेष धर्म है। वर्णमर्यादाकी पराकाष्ठा, वर्णविज्ञानके अतुलनीय उदाहरण और वर्णधर्म किस प्रकार आर्यजातिका प्राणरूप है, वह इस पुराणके अनेक स्थानोंमें भलीभांति दरशाया गया है। आश्रममर्यादा और विशेषतः सब आश्रमोंके आश्रयरूपी गृहस्थाश्रमकी विज्ञान-सहायक गाथाओं और अनुकरणीय जीवनियों तथा इतिहासोंने इस महापुराणको अति मधुर बनाया है। परलोकवाद, दैवीजगत्-सिद्धान्तवादका एक ओर और दूसरी ओर दैवीजगत्की शृंखलाके रहस्योंका दिग्दर्शन कराकर और सप्तशतीगीतारूपी चण्डीका आविर्भाव कराकर यह महापुराण जगन्मान्य ही नहीं हुआ है, किन्तु सब जीवोंका परम सहायक बन गया है। वर्णाश्रम-धर्मका मूल रजोवीर्यकी शुद्धि है। रजोवीर्यकी शुद्धिके द्वारा ही अनादिकालसे यह आर्यजाति अपनी अनोखी सभ्यता और अपने अपरिवर्तनीय आध्यात्मिक लक्ष्यकी रक्षा करती हुई चिरजीविनी बनी है। इस रजोवीर्यशुद्धिविज्ञानकी भली प्रकारसे प्रतिष्ठा इस महापुराणमें देखी जाती है। शुद्धाशुद्धिविवेक और स्पर्शास्पर्शविवेक आर्यजातिकी विशेषत्वरक्षाका प्रधान अवलम्बन है। आचारशुद्धि और विचार-शुद्धि इस जातिकी जीवनरूप है। दूसरी ओर अध्यात्मलक्ष्य, अधिदैवलक्ष्य और अधिभूतलक्ष्य इन त्रिविध लक्ष्योंको सामने रखते हुए त्रिविधशुद्धिके लिये आचरण करना ही सनातनधर्मियोंका मुख्य उद्देश्य है। इन सब वर्णाश्रमके मौलिक सिद्धान्तोंका बीज इस महापुराणमें प्रतिष्ठित है। अनार्य-जीवन जैसे इन्द्रिय विषयभोग मूलक होता है, वैसे ही आर्यजातिका जीवन सर्वदा पारलौकिक लक्ष्य-मूलक और धर्म तथा मोक्षलक्ष्यमूलक होता है। दूसरी ओर प्रवृत्तिकी गतिको रोककर क्रमशः निवृत्ति और शान्तिकी ओर आर्यजातिका जीवनस्रोत प्रवाहित होता रहता है। इसका भलीभांति दिग्दर्शन इस पुराणमें किया गया है। तपःस्वाध्यायनिरत ब्राह्मणजातिकी तो बात ही क्या है, अतुलनीय ऐश्वर्य, शक्ति और प्रभुत्वके अधिकारी होनेपर भी आर्यजातिके राजा कैसे त्यागी, धार्मिक, प्रजावत्सल, अध्यात्मलक्ष्ययुक्त और दान, तप और परोपकारकी मूर्ति होते थे और राजैश्वर्यको तुच्छ

मरुत्त बोला,—हे द्विजों ! मैं राजा हूं। दुष्टोंका दमन और शिष्टोंका पालन करना मेरा कर्तव्य है। ये भुजङ्गम दुष्ट हैं, इनको मैं मारता हूं तो क्या अपराध करता हूं ? अवीक्षितने कहा,—हे विप्रो ! शरणागतकी रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। जो पुत्र मेरे शरणागतोंका नाश करता है, वह मेरे निकट अपराधी क्यों नहीं है ? ऋषियोंने कहा,—हे राजन् ! हे नरेश्वर ! जिनके नेत्र भयसे चञ्चल हो रहे हैं, देखिये, वे भुजगगन क्या कह रहे हैं ? ये कहते हैं कि, सांपके काटनेसे जो मुनिकुमार मर गये हैं, उन्हें हम फिर जिला देते हैं। अतः अब युद्ध करनेका कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता है। आप दोनों प्रसन्न हों। आप दोनों ही राजश्रेष्ठ, धर्मके रहस्यको जाननेवाले और प्रतिज्ञाको निवाहने वाले हैं। मार्कण्डेयने कहा,—इसी समय वीरा वहाँ उपस्थित होकर अवीक्षितसे बोली,—मेरे ही कहे अनुसार तुम्हारा पुत्र सर्पोंका विनाश करनेको उद्यत हुआ था। जब विप्रगण पुनः जीवित हो रहे हैं, तो सभी काम बन गया और तुम्हारे इन शरणागतोंके प्राण भी बच गये ॥ ३१-३८ ॥ भामिनीने कहा,—इन पातालनिवासी सर्पोंने पहिले मुझसे अभय वचन लेलिया था, इसीसे मैंने पतिदेवसे इनको बचानेके लिये अनुरोध किया था। इस समय मेरे स्वामी और पुत्र तथा आपके पुत्र और पौत्रका कार्य सुचारु रूपसे सम्पन्न हो गया है। मार्कण्डेय बोले,—अनन्तर भुजङ्गोंने दिव्य औषधोंको लाकर मृत ब्राह्मणोंका सारा विष खींच लिया और उन्हें पुनः जिला दिया। फिर महीपति मरुत्तने माता-पिताके चरणोंमें विनयपूर्वक प्रणाम किया और अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रेमपूर्वक छातीसे लगाकर आशीर्वाद दिया कि,—तुम शत्रुओंके गर्वका दमन करनेवाले होगे, चिरकालतक पृथ्वीका पालन करोगे, पुत्र-पौत्रोंके साथ सुखसे समय व्यतीत करोगे और तुम्हारे शत्रुओंका विनाश हो जायगा। फिर मुनियों और वीरासे अनुज्ञा प्राप्त कर दोनों, राजा तथा भामिनी, रथपर चढ़कर अपने अपने नगरमें चले गये। काल पाकर धार्मिकोंमें श्रेष्ठ और महान् भाग्यवती पतिव्रता वीरा घोर तपश्चर्या करती हुई पतिदेवके सालोक्यको प्राप्त हुई। नृपति मरुत्त भी अरिषड्वर्गको पराजित कर धर्मानुसार पृथ्वीका पालन और नानाप्रकारके भोग-सुखोंका उपभोग करने लगा। विदर्भकन्या महाभागा प्रभावती, सुवीरसुता सौवीरी, मगधेश्वर केतुवीर्यकी कन्या सुकेशी, मद्रराज सिंधुवीर्यकी सुता केकयात्मजा केकयी, सिंधुराजकी

समझकर केवल धर्मपालनके लिये ही जीवित रहते थे, इसके ज्वलन्त उदाहरणोंकी अति ज्वलन्त गाथाओंसे यह पुराण परिपूर्ण है। इन सब विषयोंपर दृष्टि डालनेसे आर्यजातिकी प्राचीन और त्रिलोकपवित्रकारी सभ्यताका परिचय बुद्धिमान्‌मात्रको मिल सकेगा और वे यथासम्भव इन पुनीत चरित्रोंका अनुकरण करके कृतकृत्य हो सकेंगे।

पुत्री सैरन्ध्री और चेदिराजकी कुमारी वपुष्मती, ये सब सुन्दरी स्त्रियां मरुत्तकी पत्नियां थीं। हे द्विज! इन सब पत्नियोंसे भूपतिके अठारह पुत्र हुए, जिनमें नरिष्यन्त नामक पुत्र ज्येष्ठ और सर्वप्रधान था। महाराज महाबली मरुत्त ऐसा पराक्रमी था कि, सातों द्वीपोंमें उसका रथचक्र अप्रतिहत रहता था। बलविक्रमशाली, अमिततेजा उस राजर्षिके समान अन्य कोई राजा नहीं हुआ और न भविष्यत्में होगा ही। हे द्विजश्रेष्ठ! महात्मा मरुत्तके इस चरित्रको श्रवण करनेसे सब पापोंसे छुटकारा हो जाता है और देहान्तके पश्चात् श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है॥ ३९-५१॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका मरुत्तचरित नामक
एक सौ इकतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

कौष्टुकीने कहा,—भगवन्! आपने सम्पूर्ण मरुत्तचरित कह सुनाया है। अब उसकी सन्तानका वृत्तान्त विस्तृतरूपसे श्रवण करनेकी इच्छा है। हे महामुने! विशेषरूपसे उसके वंशके उन राजाओंका वृत्तान्त मैं आपसे सुनना चाहता हूं, जो राज्य करनेके योग्य और वीर्यशाली हुए थे। मार्कण्डेयने कहा,—मरुत्तके अठारह पुत्रोंमेंसे नरिष्यन्त सर्वज्येष्ठ और श्रेष्ठ था। क्षत्रियश्रेष्ठ मरुत्तने सात हज़ार पन्द्रह वर्षोंतक समग्र पृथ्वीका उपभोग किया था। उसने धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम यज्ञानुष्ठान कर अन्तमें पुत्र नरिष्यन्तको राज्याभिषिक्त कर बनमें गमन किया था॥ १-५॥ हे विप्र! वनमें जाकर नरपति मरुत्तने एकाग्रचित्तसे दीर्घकालतक तपस्या की और फिर मृत्युलोक तथा स्वर्गलोकमें यशको फैलाकर स्वर्गारोहण किया। मरुत्तके स्वर्ग सिधार जानेपर उसका बुद्धिमान् पुत्र नरिष्यन्त अपने पिता तथा पूर्ववर्ती नरेशोंके आचरण और व्यवहारपर विचार करने लगा कि, इस वंशके सभी पूर्वपुरुष महात्मा नरेश अनेक यज्ञोंके अनुष्ठाता, प्रबल पराक्रमी, धनदाता, संग्राममें पीछा न देखनेवाले और धर्मानुसार पृथ्वी पालन करनेवाले हुए हैं। उन महात्माओंके चरित्रका अनुकरण करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? हवन आदिके द्वारा उन्होंने कौनसा धर्म-कर्म सम्पन्न नहीं किया? उन्हींका अनुसरण करनेकी मेरी इच्छा है सही, परन्तु यह सहज बात नहीं है। तब मैं क्या करूँ? राजा यदि धर्मानुसार पृथ्वीपालन करे, तो इसमें विशेषता

क्या है ? यह उसका कोई विशिष्ट गुण नहीं है। क्योंकि नरेन्द्र यदि भलिभाँति प्रजा पालन न करे, तो वह पापभागी होकर नरकमें जाता है। धन रहते हुए महायज्ञोंका सम्पादन और विपुल दान करना राजाका कर्तव्य ही है। इसमें उसकी व्यक्तिगत विचित्रता क्या है ? यदि नरपति ऐसा न करे, तो प्रजाके लिये ईश्वरके अतिरिक्त दूसरी कौनसी गति रह जाती है ? राजा जब तक अपने धर्मपर अटल रहता है, तभी तक उसमें स्वाभाविकता, लज्जा, शत्रुके प्रति क्रोध और युद्धसे न भागनेके गुण विद्यमान रहते हैं। इन सब कार्योंको मेरे पूर्वपुरुष तथा पितृदेव मरुत्तने जिस प्रकार सम्पन्न किया, उस प्रकार दूसरा और कौन करनेमें समर्थ हो सकता है ? मेरे सभी पूर्वपुरुष श्रेष्ठ यज्ञोंके करनेवाले, दम गुणसे युक्त, संग्राममें निडर और बेजोड़ रणधुरन्धर हुए हैं। मैं ऐसा कौनसा कार्य करूँ, जो उन्होंने न किया हो ? मैं तो यही समझता हूँ कि, मैं कर्मके द्वारा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूँ। मेरे पूर्वजोंने अविरतरूपसे स्वयं ऐसे अनेक यज्ञ किये हैं, जैसे अन्य किसीने नहीं किये। वैसे ही महायज्ञ मैं निष्काम बुद्धिसे करूँगा ॥ ६–१६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—यह सब सोच विचार कर नरेश्वरने विपुल धन लगाकर

टीका:—कर्मके द्वारा ही मनुष्य निष्काम हो सकता है। कर्मत्यागके द्वारा नहीं हो सकता। यह सिद्धान्त सब उपनिषदोंकी सारभूत श्रीमद्भगवद्गीतामें पूर्णावतार श्रीभगवान् कृष्णचन्द्रने पूर्णरूपसे सिद्ध कर दिया है। कर्ममीमांसादर्शनका यह सिद्धान्त है कि, प्रकृतिके स्पन्दनको कर्म कहते हैं। जहां द्वैत प्रपञ्च है, जहां सृष्टि है, वहां सब जगज्जननी ब्रह्मप्रकृतिका ही विलास है। अतः प्रकृतिराज्यसे अतीत सिवाय स्वस्वरूपके और कुछ हो ही नहीं सकता। जहांतक सृष्टि है, जहां तक द्वैत है, वह सब प्राकृतिक है। जहां प्रकृति है, वहां त्रिगुण हैं। क्योंकि त्रिगुण प्रकृतिका स्वरूप है। जहां त्रिगुण हैं, वहां त्रिगुणविलासजनित स्पन्दन होना अवश्यसम्भावी है। इसीसे क्रिया होना भी निश्चित है। अतः जड़ और चेतन सबमें नित्यरूपसे कर्मका होते रहना नित्य है। यही कारण है कि, मनुष्यमें उन्मेषण-निमेषण चलना-फिरना, श्वास-प्रश्वास आदि शारीरिक क्रियाएँ और नाना वैषयिक सदसत्-चिन्तारूपी मानसिक क्रियाओंका सदा होते रहना स्वाभाविक है। इस कारण चाहे स्त्री हो या पुरुष, चाहे ज्ञानी हो या अज्ञानी, चाहे मनुष्य हो या देवता, सबमें कर्मका होते रहना अवश्यसम्भावी है और उसका अभाव होना असम्भव है। दूसरी ओर बिना कर्मत्यागके न चिरशान्ति मिल सकती न मुक्ति हो सकती है। अतः एक ओर कर्मका न होना यह जैसा असम्भव है, वैसा ही कर्मत्यागसे मुक्तिका होना भी असम्भव है। अर्थात् जब कर्मका त्याग हो ही नहीं सकता, तब कर्मत्याग करके मुक्त होना कैसे सम्भव है ? इसी गहन, अति जटिल और अति चमत्कारपूर्ण शङ्काका श्रीमद्भगवद्गीताने भलीभांति समाधान किया है। वह सरल समाधान यह है कि, जैसा जिसका अधिकार, प्रकृति और प्रवृत्ति हो, साधक वैसा कर्म अवश्य करता रहा। परन्तु कर्तव्यबुद्धिसे करे और उसके फलकी इच्छा छोड़कर करे। तभी वह कर्म करना न करनेके बराबर हो जाता है। यह कर्मके द्वारा निष्कामकर्मका अनुष्ठान कहाता है। इस अति गहन विषयको इस प्रकारसे समझ सकते हैं कि, कर्म ही समष्टि और व्यष्टि सृष्टिका मूल है। कर्मपर ही सब कुछ निर्भर है। पिण्ड और ब्रह्माण्डका सृष्टिस्थितिलय कर्मके द्वारा ही

ऐसा एक महायज्ञ किया, जैसा पहिले कोई कर नहीं सका था। इस यज्ञमें उसने द्विजातिमात्रको जीविकानिर्वाहार्थ अमोघ धन और उससे भी सैंकड़ों गुना अधिक अन्न प्रदान किया। पृथ्वीके ब्राह्मणोंमेंसे प्रत्येकको उसने गाय, वस्त्र, अलङ्कार, धान्य, घर आदि प्रचुर वस्तुएँ दानमें दीं। इस यज्ञके समाप्त होनेपर राजाने फिर जब दूसरा यज्ञ करना चाहा, तो उसे यज्ञ करानेवाला कोई ब्राह्मण ही नहीं मिला। जिस जिस ब्राह्मणको उसने यज्ञके पौरोहित्यकार्यमें वरण करनेकी इच्छा की, वही कहने लगा कि, मैं अन्यके यज्ञमें दीक्षित हो चुका हूं, आप किसी दूसरे ब्राह्मणको वरण कीजिये। हे नरेश! आपने यज्ञके समय सङ्कल्प कर हमें इतना धन दिया है कि, अनेक यज्ञ करनेपर भी वह समाप्त नहीं हुआ है ॥ १७-२२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—निखिल पृथ्वीके अधीश्वर होते हुए भी जब उसे यज्ञके लिये कोई ऋत्विक् नहीं मिला, तब बहिर्वेदीमें दान करनेका उसने उपक्रम किया। फिर भी ब्राह्मणोंके घर धनसे परिपूर्ण होनेसे किसीने वह धन नहीं उठाया। द्विजोंको दान करनेमें प्रवृत्त राजा जब विफलप्रयास हुआ, तब अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगा,—पृथ्वीके किसी स्थानमें कोई ब्राह्मण इस समय निर्धन नहीं

हुआ करता है। दूसरी ओर जैसे बीजसे वृक्ष और वृक्षसे पुनः बीज और पुनः वृक्ष होता हुआ सृष्टिका अनादि अनन्त कर्म प्रवाह बहता रहता है, वह कर्म न बन्द हो सकता है, न छूट सकता है; परंतु दार्शनिक दृष्टिसे देखनेपर यही सिद्ध होता है कि, कर्मका एक बार संस्काररूपसे बीज बनना और दूसरी बार वृक्षरूपसे भोग उत्पन्न करना, इन दो अवस्थाओंके उत्पन्न होनेका कारण वासनाजाल है। कर्म तो जड़राज्यरूपी पत्थर आदिमें होता रहता और चेतनराज्यरूपी मनुष्यादिमें भी नियमित होता रहता है। परन्तु पत्थरमें वासनाजाल न होनेसे उस कर्मका संस्कार उसमें पकड़ा नहीं जाता। मनुष्य-अन्तःकरणमें वासनाका जाल सदा बना रहता है; इस कारण वह सब शारीरिक मानसिक और बौद्धिक कर्मके बीजरूपी संस्कारको अपने चित्ताकाशमें वासनाजाल द्वारा पकड़ लेता है। वही वासनाजालसे पकड़ा हुआ संस्काररूपीबीज पुनः देश और काल ठीक ठीक मिल जानेसे वृक्षरूपी कर्म उत्पन्न कर देता है। इस प्रकारसे वासनाजालमें जकड़ा हुआ अन्तःकरण संस्कारसे कर्मकी उत्पत्ति और कर्मसे पुनः संस्कारकी उत्पत्ति करता हुआ कर्मकी धारामें पड़ा रहता है। परन्तु यदि वासनाके जालको काट डाला जाय, तो कर्मका संस्कारसंग्रह करना रुक जायगा और जब कर्मका संस्कार ही जीव-अन्तःकरणमें रुकने नहीं पावेगा, तो जीव स्वतः ही कर्मके बन्धनसे मुक्त हो जायगा। इस अति गहन विषयको समझनेके लिये और भी कुछ कहनेकी आवश्यकता है। अनादि-अनन्त आकाशके मीमांसाशास्त्रने तीन विभाग किये हैं। एक चित्ताकाश, दूसरा चिदाकाश और तीसरा महाकाश। मनुष्यके अन्तःकरणके आकाशको चित्ताकाश कहते हैं, ब्रह्माण्डके समष्टि अन्तः-करणके आकाशको चिदाकाश कहते हैं और अनन्तकोटि ब्रह्माण्डोंके अनादि-अनन्त आकाशको महाकाश कहते हैं। ये तीनों आकाश कर्मके संस्कारोंको जमा रखनेके लिये अलग अलग खलियान हैं। कर्म नष्ट नहीं होता। कर्मबीज किसी न किसी तरहसे इन तीनों आकाशोंमें सुरक्षित रहता है। इसीसे सृष्टिका अनादि और अनन्त प्रवाह निरन्तर बहता ही रहता है। केवल निष्कामकर्मयोग द्वारा वासनाजालको छिन्न करके आवागमनचक्रके आवर्तसे बचकर साधक कर्मके बन्धनसे बच सकता है। अब यह शंका हो सकती

है, यह सन्तोषका विषय है; किन्तु विना यज्ञके मेरा राजकोष विफल हो रहा है, यह महान् कष्टकी बात है। द्विजोंमें सभी लोग इस समय स्वयं याग करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण मेरा पौरोहित्य करनेको कोई प्रस्तुत नहीं होते और वे स्वयं प्रभूत दान दे रहे हैं, इस कारण कोई मेरे दिये दानका स्वीकार करनेको सम्मत नहीं होते ॥ २३-२७ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—फिर राजाने बड़े विनय और भक्तिसे वारम्वार प्रार्थना कर कुछ ब्राह्मणोंको ऋत्विक् कार्यके लिये जुटा लिया और उन्हींके द्वारा अपना महायज्ञ सम्पन्न किया। तब यह एक बड़े ही आश्चर्यकी बात हुई कि, राजाका यज्ञ आरम्भ होनेपर पृथ्वीके सभी द्विज अपने अपने यज्ञमें स्वयं यजमान हो रहे थे, इस कारण इस यज्ञमें कोई भी सदस्य नहीं बना। द्विजोंमें कोई तो स्वयं यजमान बने थे और कोई उनके याजक थे। नरपति नरिष्यन्तने जो यज्ञ किये थे और उनमें ब्राह्मणोंको जो धन दिया था, उसी धनसे पृथ्वीके द्विजगण विविध यज्ञोंके करनेमें प्रवृत्त हुए थे। हे मुने! महाराज नरिष्यन्त जब यज्ञ कर रहा था, तब पूर्वमें अठारह करोड़, पश्चिममें सात करोड़, दक्षिणमें चौदह करोड़ और उत्तरमें पचास करोड़से भी अधिक यज्ञ हो रहे थे। विशेषता यह

है कि, कर्म जब नष्ट नहीं होता और कर्मबीज जब किसी न किसी आकाशमें बना रहता है, तो मुक्तिका होना कैसे सम्भव है? इस श्रेणीकी शंकाका समाधान यह है कि, जब वासनाजाल ही संस्काररूपी कर्म-बीजको जमा करनेवाला और पकड़ रखनेवाला होता है, तो जीवन्मुक्त महापुरुष जब सांख्ययोग और कर्मयोग रूपी शस्त्रके द्वारा वासनाजालको छिन्न कर देता है, तब उस जीवकेन्द्रका चित्ताकाश उसके किये हुए कर्मबीजरूपी संस्कारोंको जमा करनेमें असमर्थ हो जाता है। तब उक्त जीवन्मुक्तका अन्तःकरण कर्मके बन्धनसे बच जाता है। दूसरी ओर प्रकृतिमाताका नियम भी भङ्ग नहीं होता। एक ओर जैसे वासनाजालके छिन्न हो जानेसे जीवन्मुक्तका अन्तःकरण योगयुक्त होकर बन्धनसे रहित हो जाता है, वैसे ही दूसरी ओर कर्मके करने पर भी निष्काम होकर कर्म करते हुए वह कर्मसे ही निष्कामकर्मी हो जाता है। उसका न पूर्व किया हुआ कर्म और न अब किया हुआ कर्म उसको बांध सकता है। क्योंकि उसके बांधनेका जाल जो वासना था, वह नहीं रहता। परन्तु प्रकृतिमाताका जो अकाट्य नियम है कि, बीजसे वृक्ष और वृक्षसे बीज हो, कर्मसे संस्कार और संस्कारसे कर्म हो और कर्मका प्रवाह तथा सृष्टिका प्रवाह सदा बना रहे, वह प्राकृतिक नियम भी भङ्ग नहीं होता है। जीवन्मुक्त महापुरुषके कर्म जब उसके अन्तःकरणमें बीज नहीं रख सकते और उसके चित्ताकाशको खाली कर देते हैं, तो वे सब बीज दूसरे खलियान रूपी चित्ताकाशमें पहुंच जाते हैं और वहां रहकर पुनः अनुकूल देश काल प्राप्त करके अंकुरित होते रहते हैं। सृष्टिका और कर्मका नित्य प्रवाह बहता ही रहता है। केवल जिस जीवन्मुक्तके अन्तःकरणमें वासनाका जाल छिन्न हो जाय, वह संस्कार और कर्मके फन्देसे अपना बचाव करके भाग निकलता है। यही कर्मके राज्यसे जीवका छुटकारा कहाता है, यही अविद्याके बन्धनसे जीवका मुक्त होना कहाता है, यही आवागमनचक्रके फंसावसे जीवका बचना कहाता है यही मुक्तिका रहस्य है और यही कर्मके द्वारा निष्कामकर्माचरणका फल है ॥६-१६॥

टीका:—कर्मयोगी चाहे ब्राह्मण हो, चाहे नृप, चाहे संन्यासी हो, चाहे गृहस्थ। चाहे उसकी स्वाभाविक मृत्यु हो चाहे अकालमृत्यु, वह जीवित अवस्थामें मुक्त है और शरीरान्तमें भी मुक्तिका अधिकारी है

थी कि, ब्राह्मणोंके द्वारा उक्त सभी यज्ञ एक साथ ही सम्पादित हुए थे। हे विप्र! पुराकालमें विख्यात बली और पुरुषार्थी मरुत्तपुत्र राजा नरिष्यन्य इस प्रकार धर्मात्मा हुआ था ॥ २८-३४ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका नरिष्यन्तचरित-सम्बन्धी
एक सौ बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय।

—०:*:०—

मार्कण्डेयने कहा,—नरिष्यन्तका पुत्र दम था। वह दुराचारी शत्रुओंका दमन किया करता था। उसमें इन्द्रके समान बल और मुनियोंके समान दया तथा शीलता थी। बभ्रुसुता इंद्रसेना, जो नरिष्यन्तसे ब्याही थी, उसीके गर्भसे दमने जन्म ग्रहण किया था। वह महायशा नौ वर्षतक माताके ही गर्भमें ही रहा। वह राजकुमार जब माताके गर्भमें था, तब उसकी माताको बहुत ही दमका अवलम्बन करना पड़ा था। वह नृपात्मज स्वयं अच्छा दमशील होगा, त्रिकालज्ञ राजपुरोहितोंने यह जानकर उस नरिष्यन्तपुत्रका नाम 'दम' ही रक्खा। राजपुत्र दमने नरराज वृषपर्वासे समस्त धनुर्वेदकी शिक्षा प्राप्त की थी। तपोवनमें निवास करनेवाले दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभिसे उसने भलीभाँति सीख लिया था कि, नाना प्रकारके अस्त्र कैसे छोड़े जाते और कैसे लौटा लिये जाते हैं। शक्ति मुनिसे वेद-वेदाङ्ग और आत्मज्ञान तथा आर्ष्टिषेणसे उसने योगका अभ्यास किया था। दशार्ण देशके राजा महाबली चारुकर्माकी कन्या सुमनाने, पिताके द्वारा स्वयंवरमें नियोजित होनेपर, उसकी अभिलाषासे आये हुए राजाओंके समक्ष ही महाबली, शस्त्रास्त्रकुशल, अपने अनुरूप महात्मा दमको ही पतिके रूपमें वरण किया था ॥ १-६ ॥ मद्रराजकुमार महाबली महानन्द, विदर्भाधिपति संक्रनन्दका पुत्र वपुष्मान्

इसमें सन्देह नहीं। कर्मकी गति अति विचित्र है। पूर्व कर्मके अनुसार ही आयुका अन्त और मृत्युका संघटन होता है। इस कारण अति पुण्यशाली कर्मयोगी नरिष्यन्त राजाकी मृत्युकी घटनाके विषयमें कोई शङ्का करनेका अवसर नहीं है ॥ २८-३३ ॥

टीका:—प्रथम तो साधारण तौरपर भी सन्ततिका अधिक दिनतक गर्भमें रहने और असाधारण तौरपर बाहर निकलने आदिके अनेक उदाहरण लौकिक इतिहासमें मिलते हैं। दूसरी ओर अलग-अलग मन्वन्तरमें सृष्टिश्रृंखलामें भेद हो जानेसे पुरुषशक्ति और स्त्रीशक्तिमें भी भेद पड़ जाता है। इन सब कारणोंसे गर्भस्थ शिशुके अधिक दिनों तक गर्भमें रहनेके सम्बन्धमें कोई सन्देह करनेका प्रयोजन नहीं है ॥ १-९ ॥

और उदारचेता राजपुत्र महाधनु सुमनाके प्रति अनुरक्त थे। दुष्ट वैरियोंका दमन करनेवाले दमको राजकन्याने वरा है, यह देखकर काममोहित चित्तसे वे आपसमें परामर्श करने लगे कि, हम इस रूपवती कन्याको इससे बलपूर्वक खींचकर अपने घर ले चलें। फिर यह वरारोहा स्वयम्वरके विधानानुसार हमारेमेंसे जिसे चाहे, स्वामिबुद्धिसे ग्रहण कर ले। जिसका यह अङ्गीकार करे, उसीकी यह धर्मानुमोदित भार्या समझी जायगी और यदि यह मदिरेक्षणा स्वेच्छासे हमारेमेंसे किसीको स्वीकार न करे, तो जो हमारेमेंसे दमका विनाश करे, यह कन्या उसीकी पत्नी मानी जायगी। मार्कण्डेय बोले,—उन तीनों राजपुत्रोंने इस प्रकारकी मन्त्रणा कर दमके पास खड़ी हुई उस सुन्दरीको वे उठा ले चले। उस समय उपस्थित राजाओंमें जो दमके पक्षमें थे, वे उसकी ओरसे और जो विरुद्ध पक्षमें थे, वे उस ओरसे क्रुद्ध होकर गरजने लगे। कुछ तटस्थ राजा दोनों पक्षोंमें बिचवईका काम करने लगे ॥ १०-१७ ॥ हे महामुने! दम उस समय चारों ओर खड़े हुए सब राजाओंको देखकर निर्भयचित्तसे कहने लगा,—हे भूपालगण! सभीलोग स्वयंवरकी धर्मकार्यमें गणना करते हैं सही, परन्तु आप ही कहें कि, यह वास्तवमें धर्म है या अधर्म? स्वयंवरमें मुझे प्राप्त हुई इस कन्याको ये जो लोग बलपूर्वक हरण करके ले जा रहे हैं, यदि स्वयंवर अधर्ममें गिना जाता हो, तो इस सम्बन्धमें मेरा कुछ कहना नहीं है, वह अन्य किसीकी भी भार्या हो सकती है। परन्तु स्वयंवरको यदि आप धर्म समझते हों, तो शत्रुओंसे लाञ्छित हुए इन प्राणोंको धारण करनेका प्रयोजन ही क्या रह जाता है? हे महामुने! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराजा चारुकर्मा सभास्थलको निःशब्द करते हुए बोले,—हे नृपवर! दमने धर्माधर्मके सम्बन्धमें जो प्रश्न उठाया है, इस सम्बन्धमें आप सब ऐसा अभिमत प्रकट करें, जिससे मेरे धर्मका लोप न हो ॥ १८-२२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—तब कुछ महीपालोंने महाराजसे कहा, परस्पर अनुराग होनेपर ही गान्धर्वविवाह हो सकता है। ऐसा विवाह क्षत्रियोंके लिये ही प्रशस्त है, ब्राह्मण वैश्य या शूद्रके लिये उचित नहीं है। आपकी इस कन्याका दमके साथ इसी तरहका गान्धर्वविवाह हुआ है। अतः हे पार्थिव! धर्मानुसार यह कन्या दमकी भार्या हो चुकी है। जो कामुक हैं, वे ही मोहके वशीभूत होकर इसका विरोध कर रहे हैं। हे विप्र! तदुपरान्त जो राजा विपक्षमें थे, वे दशार्णाधिपतिसे कहने लगे,–ये इन्हें 'मोहके वशीभूत' क्यों कहते हैं? गान्धर्वविवाह तो क्षत्रियोंके लिये कभी प्रशस्त होही नहीं सकता। यही नहीं, अन्य प्रकारके विवाह भी क्षत्रियोंके लिये प्रशस्त नहीं हैं। शस्त्रजीवियोंके लिये एकमात्र राक्षसविवाह प्रशस्त हो सकता है। हे भूपालवृन्द! जो व्यक्ति विपक्षियोंका विनाश कर बलपूर्वक इस

कन्याका ग्रहण करेगा, राक्षसविवाहके विधानानुसार उसीकी यह पत्नी होगी। क्षत्रियोंके लिये सब विवाहोंमें राक्षसविवाह ही श्रेष्ठतर है। अतः महानन्द आदि राजपूतोंने जो आचरण किया है, वह अधर्म नहीं कहा जा सकता ॥ २३-२६ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—पहिले जिन राजाओंने परस्पर-अनुराग और जातिधर्मविषयक बातें कही थीं, उन्होंने फिर कहा,—यह ठीक है कि, क्षत्रियोंके लिये राक्षसविवाह ही प्रशस्त और श्रेष्ठ है। इस राजकन्याने पिताके अधीन रहकर कुमारी अवस्थामें दमको पतिरूपसे स्वीकार किया है। पितृपक्षको हत या आहत कर यदि कन्याका हरण किया जाय, तो वह राक्षसविवाह कहाता है। परन्तु पतिके हाथसे झटककर यदि कन्या लायी जाय, तो वह राक्षसविवाह हो नहीं सकता। समस्त भूपालोंके सामने जब यह सुमना दमको वरण कर चुकी है, तब उसका गान्धर्वविवाह हो चुका। अब राक्षसविवाह-विधिको अवसर कहां रहा ? विवाहिता कन्याका कन्यापन नहीं रह जाता। हे नृपवृन्द ! विवाहतक ही कन्याका कन्यापन है। जो बलपूर्वक इसे दमसे छीननेको उद्यत हुए हैं, वे बलके गर्वमें भरकर भले ही ऐसा करें, किंतु यह सत्कार्य नहीं है ॥ ३०-३५ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—इन सब बातोंको सुनते सुनते दमकी आंखें क्रोधसे लाल हो गयीं। उसने धनुषपर रोंदा चढ़ाते हुए कहा,—मेरी आंखोंके आछत मेरी भार्याका यदि कोई बलपूर्वक अपहरण करे, तो समझना होगा कि, क्लीव होकर मैं जन्मा हूं। मेरे कुल गौरव और दोनों भुजाओंका हो महत्व फिर क्या रह जाता है ? मेरे जीते जी ये मूढ़ लोग बलोन्मत्त होकर मुझसे यदि मेरी भार्याको छीन ले जायँ, तो मेरे सब अस्त्र, शौर्य, शर और शरासनको धिःकार है ! महात्मा मरुत्तके वंशमें मेरे जन्मग्रहण करनेको धिःकार है !! और मेरी धनुर्धरताको भी धिःकार है !!! इस प्रकार गरज कर कहने पर महारिदमन बलवान् दमने महानन्द आदि राजाओंसे कहा,—हे सम्मानित भूपालो ! तुम प्रतिज्ञा कर लो कि, इस अति मनोरमा, मदिरेक्षणा, सत्कुलोद्भवा, सुन्दरी बालिका-को जो अपनी पत्नी न कर ले, उसका जन्म ही व्यर्थ है और फिर संग्राममें ऐसा प्रयत्न करो, जिससे मुझे पराजित कर तुम इसे ले जा सको ॥ ३६-४२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दमने उन राजाओंपर ऐसी शरवर्षा करना आरम्भ किया कि, अन्धकारसे जैसे वृक्षसमूह आच्छन्न हो जाते हैं, वैसे उसके शरजालसे सब राजा ढँक गये। उन महावीर महीपालोंने भी बाण, शक्ति, ऋष्टि, मुद्गर आदि चलाये, परन्तु उनके वे सभी शस्त्र दमने लीलामात्रसे छिन्न-भिन्न कर डाले। हे मुने ! विपक्षी राजा जिस प्रकार दमके चलाये शस्त्रोंको तोड़ते जाते थे, उसी प्रकार नरिष्यन्तपुत्र दम भी उनके चलाये शस्त्रास्त्रोंको विफल कर दिया करता था। राजपूतोंके साथ दमका इस प्रकार युद्ध हो

रहा था कि, इतनेमें महानन्द हाथमें तलवार लेकर दमके सामने आ धमका। महारणक्षेत्रमें खड्ग खींचकर महानन्द अपनी ओर आ रहा है, यह देखते ही, इन्द्र जैसे मेह बरसाते हैं, वैसे दमने भी उसपर बाणोंका ताँता बाँध दिया। महानन्दने उसके सब बाणों और शस्त्रोंको क्षणभरमें काट डाला। महानन्दने हस्तलाघवसे यह कार्य इतनी सफाईसे किया कि, अन्यान्य राजा उसे जान भी नहीं सके। फिर महावीर महानन्द आवेशके साथ दमके रथपर ही चढ़कर उससे जूझने लगा ॥४३-४६॥ बहुत देरतक दोनोंका गुत्थम-गुत्था होनेपर दमने बड़ी चतुरतासे कालाग्निके समान एक बाण महानन्दके हृदयमें वेध दिया। महानन्दने उस बाणको अपने हाथसे उखाड़ कर फेंक दिया और भिन्न-हृदयसे ही अपने उज्वल खड्गका दमपर प्रहार किया। उल्काके समान उस खड्गका प्रहार होता है, न होता है, इतनेमें दमने उसे शक्ति नामक आयुधसे दो टूक कर डाला और उसी क्षण वेतसपत्र-बाणके द्वारा महानन्दका सिर काट डाला। महानन्दके मारे जाते ही अधिकांश नरपति युद्धसे पराङ्मुख हो गये; केवल कुण्डिणा-धिपति वपुष्मान ही रणक्षेत्रमें डँटा रहा। वह बल-गर्वसे उन्मत्त दाक्षिणात्य भूपाल वपुष्मान् संग्राममें अटल रहकर दमसे युद्ध करने लगा। उस युद्धयमान वपुष्मान्का खड्ग, उसके सारथीका मस्तक और रथका ध्वज दमने अपनी उग्र तलवारसे क्षणभरमें काट गिराया। खड्गके टूट जानेपर बहुतसे कीलोंसे जड़ीहुई गदा वपुष्मान्ने तान ली। दमने उस गदाको भी ऊपर ही ऊपर तोड़ डाला। फिर जबतक वपुष्मान् कोई उत्कृष्ट शस्त्र ग्रहण करना चाहता है, तबतक दमने उसे बाणोंसे विद्ध कर, भूमिपर गिरा दिया ॥ ५०-५७ ॥ राजपुत्र वपुष्मान्के भूमिपर गिरनेपर उसके सब अङ्ग कांप रहे थे और वह छटपटा रहा था। अब उसने युद्धकी इच्छा त्याग दी थी। मनस्वी दमने उसे युद्धसे विरत देखकर उसी अवस्थामें छोड़ दिया और सुमनाको साथ लेकर प्रसन्न चित्तसे वहांसे प्रस्थान किया। अनन्तर दशार्णाधिपतिने प्रीतिपूर्वक सुमना और दमका विवाह यथाविधि सम्पन्न किया। विवाह हो जानेपर कुछ दिन तक दम दशार्णाधिपतिके नगरमें ठहरा रहा और फिर नवपरिणीता पत्नीके साथ अपनी राजधानीमें चला गया। उसे बिदा करते समय दशार्णाधिपतिने उसे बहुतसे हाथी, तरह तरहके घोड़े, रथ, गायें, खच्चर, ऊँट, दास, दासी, वस्त्र, अलङ्कार, धनुष आदि नानाविध बहुमूल्य सामग्री दहेजमें दी और वर-वधू दोनोंको धन-रत्न आदिसे पूर्ण कर बिदा किया ॥ ५८-६३ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरितान्तर्गत सुमनास्वयंवर नामक
एक सौ तैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ चौंतीसवां अध्याय ।

—o:*:o—

मार्कण्डेयने कहा,—हे महामुने ! राजपुत्र दमने सुमनाको पत्नीरूपसे प्राप्तकर पिता-माताकी चरणवन्दना की और फिर सुभ्रू सुमनाने भी सास-ससुरको वन्दन किया । हे विप्र ! उन्होंने भी दोनोंका आशीर्वचनोंसे अभिनन्दन किया । विवाह करके दशार्णाधिपतिके नगरसे दमके लौट आने पर नरिष्यन्तपुरमें महोत्सव प्रारम्भ हुआ । दशार्णेश्वरके साथ हुए वैवाहिक सम्बन्ध तथा अपने पुत्रके द्वारा हुए अनेक नृपतियोंके पराजयकी वार्ता सुनकर महीपति नरिष्यन्तको बड़ी ही प्रसन्नता हुई । फिर राजपुत्र दम विचित्र उद्यानों, वनप्रदेशों, प्रासादों और पर्वतशिखरों जैसे स्थानोंमें सुमनाके साथ विहार करने लगा । दमके साथ विहार करते हुए कुछ समय बीतनेपर दशार्णराजकी कन्या सुमनाके गर्भ रहा ॥ १–६ ॥ तब महीपति नरिष्यन्तने अनेक भोगोंका उपभोग करनेके पश्चात् अपनी उतरती अवस्थाको देखकर दमको राज्याभिषिक्त किया और स्वयं यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेनाको साथ लेकर वनमें गमन किया । वहीं वे दोनों वानप्रस्थ धर्मका पालन करते हुए निवास करने लगे । एक वार दाक्षिणात्य राजा संक्रन्दनका पुत्र दुराचारी वपुष्मान् कुछ सेवकोंके साथ मृगया करता हुआ उस वनमें उपस्थित हुआ । वहां उसने देहमें भस्म लेपन किये हुए तपस्वी नरिष्यन्त और उसकी तपसे कृश हुई इन्द्रसेनाको देखकर जिज्ञासा की कि, आप कौन हैं ? और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य इन त्रिवर्णोंमेंसे कौन हैं, जो वानप्रस्थको अवलम्बन करके वनवासी हो रहे हैं ? भूपतिने मौनव्रत ग्रहण किया था, इस कारण उसने तो कोई उत्तर नहीं दिया; किन्तु इन्द्रसेनाने उसे अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया ॥ ७–१२ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—वपुष्मान्ने, उसे अपने शत्रुका पिता नरिष्यन्त यही है यह जानकर, "अब कहां जाता है ?—पा गया" कहते हुए क्रोधसे उसकी जटाएं पकड़ लीं । तब इन्द्रसेना हाहाकार करती हुई रुंधे कण्ठसे रोने लगी । परन्तु उस दुराचारीने उधर ध्यान न देकर म्यानसे तलवार खींचकर कड़ककर कहा,—जिसने मुझे समराङ्गणमें पराजित किया था, उसी दमके पिताका आज मैं वध करता हूं; दम आकर मुझसे इसको बचावे । कन्या-प्राप्तिके लिये आये हुए सभी राजपूतोंको जिसने अपमानित किया था, उस दुर्मति दमके पिताको आज मैं मार रहा हूं । जो दुरात्मा स्वभावतः योधाओंका दमन करने वाला है, आज उसी शत्रुके पिताका मैं संहार कर रहा हूं; दम आकर इसकी रक्षा करे । मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मान्ने रोती हुई इन्द्रसेनाके सामने ही तलवारसे नरिष्यन्तका सिर उतार लिया । तब सब

मुनिगण और अन्यान्य वनवासी लोग उस हत्यारेको धिःकारने लगे । नरिष्यन्तका इस प्रकार निधन कर वपुष्मान् अपने नगरको लौट गया । उसके चले जानेपर इन्द्रसेनाने गहरी सांस भरकर एक शूद्र तापसको अपने पुत्रके पास भेजा । उससे उसने कहा कि, मेरे पुत्र दमसे यहांका सब समाचार कहना । मेरे स्वामीका सब वृत्तान्त तुम जानते हो; अतः इस सम्बन्धमें अधिक कुछ समझानेका प्रयोजन नहीं है । फिर भी महीपतिकी यह अपमानजनक अवस्था देखकर मैं अत्यन्त दुःखित होकर जो कुछ कहती हूं, वह तुम मेरी ओरसे मेरे पुत्रसे कहना कि, वत्स ! तुम राजा हो । चारों आश्रमोंके लोगोंके प्रतिपालक-रूपसे तुम नियुक्त हुए हो । परन्तु तुम तपस्वियोंकी रक्षा नहीं कर पाते, क्या यह तुम्हें योग्य है ? मेरे पतिदेव नरिष्यन्त पतस्वी होकर तपस्या कर रहे थे । रक्षाकर्तारूपसे तुम्हारे विद्यमान रहते हुए अनाथकी तरह बिना अपराधके उनके केश पकड़कर मेरा विलाप सुनते हुए वपुष्माानने उनका वध कर डाला है । तुम्हारे सम्बन्धमें यही प्रसिद्धि होगी कि, तुम्हारे राजा होते हुए यह कार्य हुआ ! ऐसी अवस्थामें जिससे धर्मका लोप न हो, ऐसा उपयुक्त कार्य करो । मैं तपस्विनी हूं, इससे अधिक कुछ कहना मेरे लिये उचित नहीं है । तुम्हारे पिता प्रथम तो वृद्ध थे, दूसरे वे तपाचरण कर रहे थे; अतः किसी अपराधसे भी किसीके निकट अपराधी नहीं थे । फिर भी जिसने उनका प्राणनाश किया, उसके सम्बन्धमें इस समय तुम्हें क्या करना चाहिये, इसका विशेषरूपसे तुम विचार करो । तुम्हारे मन्त्रिगण शास्त्रवेत्ता और वीर हैं । उनसे इस विषयमें परामर्श कर अब जो कुछ करना हो, सो करो ॥ १३–२७ ॥ तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यन्तने अन्त समयमें कहा कि,—"मैं तापस हूं, मुझे इस विषयमें कुछ भी कहनेका अधिकार नहीं है, तुम ही इसका-प्रतीकार करो ।" हे पुत्र ! विदूरथका पिता जिस प्रकार यवनोंके द्वारा मारा गया था, उसी प्रकार तुम्हारे पिताको मारकर वपुष्मान्‌ने तुम्हारे कुलका विनाश किया है । असुर-राज जम्भका पिता सर्पके काटनेसे मरा था, इस कारण जम्भने समस्त पातालवासी पन्नगोंको मार डाला था । पराशरका पिता शक्ति राक्षसके द्वारा मारा गया था, इस कारण पराशरने समस्त राक्षसकुलोंको आगमें जला दिया था । स्ववंशीय किसी अन्य व्यक्तिका अपमान होनेपर भी क्षत्रिय उसे सह नहीं सकते, फिर साक्षात् पिताके वधके सम्बन्धमें कहना ही क्या है ? ॥ २८–३३ ॥ मेरी समझमें तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं और न उनपर शस्त्राघात ही हुआ है । यह तो तुम ही मारे गये हो और तुम्हींपर शस्त्रप्रहार किया गया है । जो व्यक्ति वनवासियोंपर शस्त्र चलाता है, उससे कौन डरता है ? उसका पौरुष ही क्या है ? वह पापी है । तुम अपने पिताके सुपुत्र और राजा हो । तुम यदि शत्रुओंको नष्ट करो, तो सभी तुमसे डरने लगेंगे । यदि ऐसा नहीं हुआ, तो

तुमसे कोई नहीं डरेगा और तुम्हारे राज्यशासनकार्यमें भी बाधा पड़ेगी। तुम्हारा ही यह अपमान हुआ है। अतः हे महाराज! वपुष्मान्‌के सम्बन्धमें भृत्य, जाति और बान्धवोंके साथ जो कुछ करना हो, करो। मार्कण्डेय बोले,—मनस्विनी इन्द्रसेनाने इन्द्रदाससे यह सब कहकर उसे विदा किया और फिर पतिके शरीरको आलिङ्गन कर अग्निमें प्रवेश किया ॥ ३४-३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरित सम्बन्धी
एक सौ चौंतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय।

—०:※:०—

मार्कण्डेयने कहा,—इन्द्रसेनाका सँदेसा लेकर शूद्र तापस दमके पास गया और उसे पिताके निधनका समाचार तथा राज्ञी इन्द्रसेनाका सँदेसा उसने कह सुनाया। तपस्वी पिताके वधका वृत्तान्त आद्योपान्त सुनकर घृताहुतिसे अग्नि जैसा अधिक प्रज्वलित हो जाता है, वैसा दम भी क्रोधसे जल उठा। हे महामुने! उसके स्वभावतः वीर होते हुए भी क्रोधानलसे जल उठनेके कारण हाथपर हाथ रगड़कर वह बोला,—

टीकाः—पतिके कर्मयोगी और जीवन्मुक्त होनेके कारण उसके शरीरान्तकी दशाकी अशुभ घटनापर विचार करनेका ही कोई अवसर नहीं है। परन्तु आर्य-राजकुलललनाएँ जब राजवैभवको छोड़कर अन्तमें वानप्रस्थ आश्रममें पतिसेवामें तपश्चर्यापूर्वक निरत रहती हैं, उस समयकी यह गाथा अतिशय हृदयग्राहिणी है। सनातनधर्मके अनुसार ब्राह्मणके लिये ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चारों आश्रम विहित हैं। क्षत्रियके लिये संन्यासाश्रम छोड़कर अन्य तीन विहित हैं। वैश्यके लिये अन्तके दो आश्रम विहित नहीं हैं। शूद्रके लिये केवल गृहस्थाश्रम विहित है। इसी अध्यात्मलक्ष्ययुक्त आश्रमशृंखलाके अनुसार प्राचीन क्षत्रिय राजन्यगण आत्मज्ञानी होनेपर भी और अतुलनीय ऐश्वर्य और शक्तिके अधिकारी होनेपर भी अन्तमें अपने राजवैभवको छोड़कर और वानप्रस्थाश्रममें रहकर तपश्चर्या करते थे। यह उदाहरण तथा तपस्वीको अन्ततक किस प्रकार संयतेन्द्रिय, रागद्वेषशून्य होना उचित है, यह सब अलौकिक दृष्टान्त महाराज नरिष्यन्तके जीवनमें जाज्वल्यमान हैं। दूसरी ओर राजमहिषी महारानियां किस प्रकार पतिकी सहधर्मिणी होती थीं और तपश्चर्या करती हुई अन्त तक शरीर, मन और वाणीके द्वारा किस प्रकार तपकी रक्षा करती थीं, यह महारानीके जीवनमें ज्वलंत उदाहरण है। आर्यराजा और आर्यराजमहिषी उन्नत अधिकारी होकर किस प्रकारसे त्रिलोकपवित्रकारी धार्मिक जीवन निर्वाह करते हुए अपने तीनों आश्रमोंका कैसा पालन करते थे, वह इस मधुर गाथासे प्रकाशित हो जाता है। ऐसा क्षत्रिय राजाका आचरण सब क्षत्रिय राजाओंके लिये अनुकरणीय है ॥ ३४-३७ ॥

मुझ पुत्रके जीवित रहते हुए मेरे वंशके लिये अपमान-जनक अनाथकी तरह मेरे पिताका उस नृशंसने वध कर डाला है? मैं अवश्य ही दुष्टोंका दमन तथा शिष्टोंका पालन करनेके लिये नियुक्त हुआ हूं। परन्तु जब कि, मेरे पिता निहत हो गये हैं और यह जानते हुए भी मेरे शत्रु जी रहे हैं, तब नपुंसककी तरह मैं उन्हें क्षमा कर रहा हूं, यही लोग कहेंगे और यह जनापवाद ठीक भी होगा। अन्ततः अधिक बकवाद करने अथवा 'हा तात!' कहकर विलाप करनेसे ही क्या होना है? इस समय मेरा जो कर्त्तव्य है, वही मैं करूँगा। यदि मैं वपुष्मान्‌के शरीरके रक्तसे पिताका तर्पण न करूँ, तो अवश्य ही अग्निमें प्रवेश करूँगा। युद्धमें उसे मारकर, उसके शोणितसे मृत पिताका तर्पण कर, उसका मांस यदि चील-कौओंको न खिला दूँ, तो मैं आगमें जलकर मर जाऊँगा। असुर, देव, गन्धर्व, यक्ष, विद्याधर और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करें, तो उन्हें भी उसी क्षण क्रोधपूर्वक अस्त्रकी अग्निसे भस्मीभूत कर दूँगा। उस शौर्यहीन, अधार्मिक और निन्दित दाक्षिणात्यको समरमें मारकर ही समग्र पृथिवीका उपभोग करूँगा और यदि उसे न मार सका, तो अग्निमें प्रवेश करूँगा ॥ १-१० ॥ मेरे वनवासी, मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिताके उद्विग्न होकर शान्त वचन कहनेपर भी जिस दुर्मतिने उनकी हत्या की है, मैं आज अपने सब बन्धुओं, मित्रों, पदातियों, हाथियों, घोड़ों और सेनाको साथ लेकर उसे रणमें मार गिराऊँगा। आज मैं खड्ग और धनुष हाथमें लेकर, रथमें सवार होकर और शत्रुसैन्यमें उपस्थित होकर उनका जैसा संहार करूँगा, उसे समस्त देवगण अवलोकन करें। जब उससे मेरा युद्ध छिड़ जायगा, तब उसके जो सहायक होंगे, उनका भी इन बाहुरूपी सेनाओं द्वारा उसी क्षण निःशेषरूपसे वंशक्षय करनेपर मैं तुल गया हूं। इस युद्धस्थलमें हाथमें वज्र लेकर इन्द्र, उग्र दण्ड लेकर क्रुद्ध यम, कुबेर, वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करने आवें, तो भी तीखे बाणोंके द्वारा मैं उस वपुष्मान्‌का विनाश किये विना न रहूंगा। मुझ प्रतापशाली पुत्रके जीवित रहते हुए जिसने मेरे संयतचित्त, निर्दोष, वनवासी, वृक्षसे स्वाभाविक रूपसे गिरे हुए फल खाकर जीवन धारण करनेवाले और सब प्राणियोंसे प्रेम करनेवाले पिताकी हत्या की है, आज उसके रक्त और मांससे गीधोंके झुण्ड तृप्ति लाभ करें ॥ ११-१५ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका दमचरित सम्बन्धी
एक सौ पैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय।

मार्कण्डेयने कहा,—नरिष्यन्तपुत्र दम इस प्रकार प्रतिज्ञा कर क्रोधसे आँखें तरेर कर मोछोंपर हाथ फेरता हुआ 'हा हतोस्मि !' कहकर पिताके विषयमें खेद और अपने भाग्यकी निन्दा करने लगा। फिर पुरोहितों और मन्त्रियोंको बुलाकर उनसे बोला,—पिताजी स्वर्ग सिधार गये हैं। शूद्र तापसने जो कुछ कहा, वह तुम्हें ज्ञात हो गया है। अब मुझे क्या करना चाहिये, कहो। सब लोकोंके शास्ता उस नृपवरने वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत ग्रहण कर तपश्चर्या करते हुए मौनव्रतका अवलम्बन किया था और वपुष्मान्के पूछनेपर माता इन्द्रसेनाने उसे अपना सारा सच्चा परिचय दिया था। तब उस दुरात्माने तलवार खींचकर बायें हाथसे उनके केश पकड़ कर अनाथकी तरह उनको काट डाला ! मैं नितान्त तेजोहीन और अभागा हूं। मेरी सती माताने मुझे धिःकार करते हुए पिता नरिष्यन्तको गोदमें लेकर चितापर आरोहण कर स्वर्गमें गमन किया है। माताने मेरे पास जैसा सँदेसा कहला भेजा है, मैं वैसा ही करूँगा। हाथी, घोड़े, रथ और पदातियोंकी चतुरङ्गिणी सेना सुसज्जित हो। पिताके वैरका बदला बिना चुकाये, पिताके हत्यारेका विनाश बिना किये और माताकी आज्ञाका पालन बिना किये मुझे जीनेका अधिकार ही क्या है ? ॥ १-८ ॥ मार्कण्डेयने कहा,—दमकी बातें सुनकर मन्त्रियोंने हाहाकार करते हुए शोक प्रकाश किया और विमनस्क भावसे राजाकी आज्ञाके अनुसार कार्य सम्पादन किया। राजा भी भृत्य, सैन्य, वाहन, खड्ग, शक्ति, ऋष्टि आदिसे सुसज्ज हो, सपरिवार युद्धके लिये चल पड़ा। चलते समय उसने त्रिकालज्ञ ब्राह्मण पुरोहितोंसे आशीर्वाद ग्रहण किये थे। राजप्रासादसे निकलकर शेष-नागकी तरह निःश्वास परित्याग करता और सीमापालादि सामन्तोंको मारता काटता, दम वपुष्मान्के राज्यमें घुस गया। सायुध, सशस्त्र, सपरिवार मन्त्रियोंके साथ योधाके रूपमें दम दाक्षिणात्य राज्यपर चढ़ आया है, यह समाचार पाकर संक्रन्दनपुत्र वपुष्मान् विचलित नहीं हुआ। उसने अपनी सेनाको युद्धके लिये प्रस्तुत हो जानेका आदेश दिया और राजधानीके बाहर आकर दमके पास दूत भेजकर कहलाया कि, रे क्षत्रिया-धम ! आ, शीघ्रतासे चला आ ! नरिष्यन्त अपनी भार्याके साथ तेरी प्रतीक्षा कर रहा है। इसलिये तू मेरे पास त्वरासे दौड़ आ ! कितने ही वीरोंका जिन्होंने रुधिर पान किया है, ऐसे ये सानपर चढ़ाकर तीव्र किये हुए बाण रणाङ्गणमें मेरे हाथोंसे छूटकर तेरे शरीरको फाड़कर तेरा रक्त पान करेंगे। मार्कण्डेयने कहा,—दमने दूतका वचन सुनकर अपनी

पूर्वप्रतिज्ञाका स्मरण किया और उरगकी तरह साँसें भरता हुआ वह शीघ्रतासे पैर बढ़ाकर वपुष्मान्‌को संग्रामके लिये ललकारकर बोला,—जो सच्चा पुरुष है, वह आत्मश्लाघा कभी नहीं करता। तदनन्तर दम और वपुष्मान्‌का घोर युद्ध आरम्भ हो गया। रथीसे रथी, हाथीसे हाथी और घुड़सवारोंसे घुड़सवार भिड़ने लगे। हे विप्रर्षे! सब देवगण, सिद्ध, गन्धर्व और याज्ञिक लोग देख रहे थे और उन्हींके सामने यह युद्ध हो रहा था। हे ब्रह्मन्! दम जब क्रोधपूर्वक युद्धमें प्रवृत्त हुआ, तब वसुन्धरा काँपने लगी ॥ १०-२० ॥ ऐसा कोई हाथी, घोड़ा या रथी नहीं था, जो उसके बाणको सह सकता। वपुष्मान्‌का सेनापति दमके साथ युद्ध कर रहा था, किन्तु दमने बाणसे उसका हृदय छेद डाला। सेनापतिके आहत होते ही वपुष्मान् और उसका सब सैन्य रणभूमिसे भाग निकला। यह देखकर शत्रुओंकी शान्तिका भङ्ग करनेवाला दम बोला,—रे दुष्ट! तैंने मेरे शस्त्रविहीन, तपस्वी पिताकी हत्या की है; अब कहाँ भागा जा रहा है? तू यदि क्षत्रिय है, तो लौट आ। मार्कण्डेय बोले,—फिर वपुष्मान्‌ने अनुज, पुत्र, सम्बन्धी और बान्धवोंके साथ लौट आकर रथमें चढ़कर फिर युद्ध आरम्भ किया। उस समय वपुष्मान्‌ने धनुषसे बाणोंका ताँता बाँधकर आकाश और दिशाओंको आच्छन्न कर दिया और दमको अश्वों तथा रथों सहित शरजालसे घेर लिया ॥ २१-२५ ॥ पितृवधसे क्रुद्ध हुए दमने अपने बाणोंसे शत्रुके शरजालको काट डाला और शत्रुओंके अङ्ग-प्रत्यङ्ग विच्छिन्न कर दिये। फिर उसने एक एक बाणसे उसके सातों पुत्रों, अनुजों, सम्बन्धियों और मित्रोंको काट काट कर यमसदनमें भेज दिया। पुत्रों-मित्रोंके हत होनेके कारण वपुष्मान् और भी अधिक क्रुद्ध हो गया और साँपोंकी तरह बाणोंकी वर्षा करता हुआ दमके साथ युद्ध करने लगा। उसके बाणोंको दम और दमके बाणोंको वह बराबर काटता जाता था। हे

टीकाः—सतीचरित्र त्रिलोक पवित्रकारी है। और सतीत्वधर्म त्रिलोकके अभ्युदयका कारण है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तपस्याके बलसे देहाध्याससे रहित होना, सात्त्विक वृत्तिके द्वारा स्थूलदेहसे सम्बन्ध छोड़ देना, धर्मके अवलम्बनसे यावत् इन्द्रियसुखोंको भूल जाना और पतितन्मयतासे समाधियुक्त हो जाना, इन सब बातोंके बिना कोई स्त्री सतीत्वव्रतपालनके द्वारा पतिके साथ जल नहीं मर सकती। सती जो योगशक्ति प्रकट करती है, वह बड़े बड़े योगी भी नहीं कर सकते। सतीकी तपस्याकी तुलना नहीं हो सकती। यद्यपि सतीके लिये दो मार्ग हैं, एक आजीवन ब्रह्मचर्यव्रत पालनकरना और दूसरा, पतिके साथ चितामें सहगमन करना। परन्तु दूसरा मार्ग, सहगमनकी तपस्या, इस मृत्युलोकमें अतुलनीय है और सतीधर्मका सर्वोत्तम ज्वलन्त दृष्टान्त है। सतीधर्म वर्णाश्रमधर्मकी भित्ति है। वर्णाश्रमधर्म देवलोकका अभ्युदयकारी है और दैवी शृंखला चतुर्दश भुवनोंकी रक्षक है। इस कारण सतीत्वधर्म त्रिलोकरक्षक और ब्रह्माण्डको पवित्र करनेवाला है, इसमें संदेह नहीं। इस मृत्युलोकमें सतीधर्मकी आदर्श पुण्यमयी ललनाएं भारतवर्षमें ही प्रकट होती हैं ॥ २१-२५ ॥

महामुने! इस प्रकार अतिशय क्रोधमें भरकर दोनों एक दूसरेके वधकी इच्छासे दारुण युद्ध कर रहे थे। दोनों महाबली थे। लड़ते लड़ते एक दूसरेके बाणोंसे दोनोंके धनुष टूट गये। तब दोनोंने तलवारें खींचकर युद्धक्रीड़ा करना आरम्भ किया। वनमें मारे गये पिताका क्षणभर विचार कर दमने वपुष्मान्के केश पकड़ लिये और उसे भूमिपर पटककर तथा उसकी छातीपर घुटना धरकर हाथ उठाकर उच्च स्वरसे कहा,—देखें, इस क्षत्रियाधम वपुष्मान्का हृदय मैं विदारण कर रहा हूं; इसे समस्त देवगण, मनुष्यगण, सिद्ध और पन्नगगण देखें ॥ २९–३२ ॥ मार्कण्डेय बोले,—यह कहकर दमने तलवारसे वपुष्मान्की छाती चीर दी। उसके रक्तसे जब वह स्नान करनेको उद्यत हुआ, तब देवताओंने उसे रोक दिया। फिर उसीके रक्तसे दमने पिताकी उदकक्रिया की, उसके मांसका पिताको पिण्ड प्रदान किया और शेष मांस राक्षसकुलमें उत्पन्न हुए ब्राह्मणोंको खिला दिया। इस प्रकार पिताके ऋणसे मुक्त होकर दम अपनी राजधानीमें लौट आया। सूर्यवंशमें ऐसे अनेक बुद्धिमान्, शौर्यशाली, यागपरायण, धर्मवेत्ता और वेदान्तपारग भूपति हुए हैं, जिनकी गणना करना सहज नहीं है। उनके चरित्र सुननेसे मनुष्योंके सब पाप कट जाते हैं ॥ ३३–३७ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका वपुष्मान्-निधन नामक
एक सौ छत्तीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय।

—:०*०:—

पक्षियोंने कहा,—महातपा मार्कण्डेय मुनिने इस प्रकार कथा सुनाकर कौष्टुकिको बिदा किया और फिर माध्याह्नकी क्रिया समाप्त की। हे महामुने! मैंने जो आपसे निवेदन किया, यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयम्भूने मार्कण्डेय मुनिको सुनाया था और हमने मार्कण्डेयसे ही सुना है। हमने यह जो मनोज्ञ, पुण्यकर और पवित्र पुराण सुनाया, इसके पाठ या श्रवणसे आयुकी वृद्धि, सब कामनाओंकी सिद्धि और मनुष्योंकी सब पापोंसे मुक्ति होती है। आपने हमसे जो चार प्रश्न किये थे, उनके उत्तर हमने दे दिये हैं और पिता-पुत्र-संवाद, स्वयम्भूकी सृष्टि, मनुओंकी उत्पत्ति तथा राजाओंके चरित्र भलीभांति सुना दिये हैं। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? जो मैंने तुमको सुनाया, उसके सुनने और सभास्थलमें सुनानेसे श्रोता और पाठक दोनों सब पापोंसे विमुक्त होकर ब्रह्ममें लीन हो जाते हैं ॥ १–६ ॥ पितामह ब्रह्माने अठारह पुराण

सुनाये थे, उनमेंसे यह सुविख्यात मार्कण्डेयपुराण सातवां है। १—ब्रह्म, २—पद्म, ३—विष्णु, ४—शिव, ५—भागवत, ६—नारदीय, ७—मार्कण्डेय, ८—अग्नि, ९—भविष्य, १०—ब्रह्मवैवर्त, ११—नृसिंह, १२—वराह, १३—स्कन्द, १४—वामन, १५—कूर्म, १६—मत्स्य, १७—गरुड़ और १८—ब्रह्माण्ड, इन अठारह पुराणोंका जो व्यक्ति प्रतिदिन एक बार या तीनों बेला पाठ करता है, उसे अश्वमेधके समान फल प्राप्त होता है। चार प्रश्नोंसे युक्त इस मार्कण्डेयपुराणके सुननेसे सौ करोड़ कल्पोंका किया पाप कट जाता है और ब्रह्महत्यादि समस्त महापाप तथा अमङ्गल आदि वायुके झकोरेसे उड़नेवाले तिनकेके समान उड़ जाते हैं॥ ७-१४॥ पुष्करमें स्नान करनेसे जो पुण्य होता है, वही इस पुराणके श्रवणसे प्राप्त होता है। वन्ध्या अथवा मृतवत्सा मनोयोगपूर्वक इसको सुने, तो उसे सर्वलक्षणयुक्त पुत्र प्राप्त होगा। इसके श्रवणसे इस लोकमें धन, धान्य तथा परलोकमें अक्षय्य स्वर्गका लाभ होता है। सुरापान करनेवाले तथा अन्यान्य उग्र कर्म करनेवाले मनुष्य यदि इस पुराणको आद्योपान्त सुनें, तो वे सब पापोंसे छुटकारा पाकर स्वर्गलोकमें पूजित होते हैं। हे द्विजोत्तम! इसके सुननेसे आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, धान्य, पुत्र आदिकी प्राप्ति होती है और सुननेवालेका वंश अविच्छिन्न बना रहता है। हे विप्र! इस पुराणको श्रवण करनेपर जो करना पड़ता है, वह मैं कहता हूँ। समग्र पुराण सुन लेनेपर विचक्षण व्यक्तिको अग्निस्थापन कर होम करना चाहिये। हे मुनिसत्तम! हृदयकमलमें पुराणरूपी गोविन्दका ध्यान कर और 'वपुष्मत' वेदमन्त्रोंसे गन्ध, माल्य, वस्त्र आदिसे उनकी पूजा कर, फिर पुराणपाठकका सत्कार करना चाहिये॥ १५-१९॥ हे विप्र! उसे सवत्सा गौ, उपजाऊ भूमि, सोना और चांदी यथाशक्ति दान करनी चाहिये। राजा श्रोता हो, तो वह गाँव-वाहनादि प्रदान करे। इस प्रकार कथावाचकको संतुष्ट कर उससे 'स्वस्ति' वाचन श्रवण करे। जो व्यक्ति वाचकका सत्कार न कर एक श्लोक भी सुन लेता है, उसको कोई पुण्य नहीं होता। ऐसे श्रोताओंको विद्वान् लोग शास्त्रचोर कहते हैं, देवता उनसे अप्रसन्न रहते हैं और पितृगण संतुष्ट नहीं होते। उनका किया श्राद्ध पितर नहीं पाते और वेदपाठकोंके द्वारा निन्दित उन शास्त्रचोरोंको स्नान, तीर्थ आदिका भी फल नहीं मिलता॥ २०-२४॥ मार्कण्डेयपुराणका पाठ समाप्त होनेपर बुधगण उत्सव करें और सब पापोंसे छुटकारा पानेके लिये सपत्नीक ब्राह्मणोंको दूध देनेवाली गाय, वस्त्र, रत्न, कुण्डल, चोली, पगड़ी, बिछौनेके साथ पलङ्ग, जूते, कमण्डलु, सोनेकी मुद्रा, सप्तधान्य, भोजनके लिये घृतपात्र और काँसेकी थाल प्रदान करें। हे द्विजश्रेष्ठ! ऐसा करनेसे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। यह पुराण जो विधिपूर्वक अच्छी तरह सुनते हैं, उन्हें सहस्र अश्वमेधों तथा

सौ राजसूय यज्ञोंका फल होता है। उनका यम-भय दूर हो जाता है, नरक-भय छूट जाता है, सब पापोंसे निवृत्ति होती है और एक ही साथ समग्र कुल पवित्र हो जाता है। निःसंदेह उनका वंश अविच्छिन्न रहता है और अन्तमें उन्हें इन्द्रलोक तथा सनातन ब्रह्मलोक प्राप्त होनेपर फिर वहाँसे गिरकर मनुष्यका चोला चढ़ाना नहीं पड़ता। इस एक मात्र पुराणके सुननेसे मनुष्यको उत्कृष्ट योगकी प्राप्ति होती है। परन्तु यह पुराण कण्ठगत प्राण होनेपर भी नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक, गुरुद्वेष्टा, व्रतको भङ्ग करनेवाला, माता-पिताका त्याग करनेवाला, सोना चुरानेवाला, मर्यादाको तोड़नेवाला और ज्ञातिदूषक जो व्यक्ति हो, उसे कदापि नहीं देना चाहिये, न सुनाना ही चाहिये। ऐसे व्यक्तियोंमेंसे यदि कोई लोभ, मोह अथवा भयके वशीभूत होकर इस पुराणका पाठ करे, या किसीसे पाठ कराके सुने, किंवा इन्हीं कारणोंसे ऐसे व्यक्तियोंको कोई यह पुराण सुनावे, तो वह अवश्यही नरकमें चला जायगा। जैमिनिने कहा,—हे पक्षियों! महाभारतके अध्ययनसे हमारे जो संदेह नहीं मिटे, वे तुमने सख्यभावसे मिटा दिये हैं। यह कार्य और कोई कदापि नहीं कर सकता। तुम बहुत दीर्घायु और नीरोग होकर फूलो और फलो। तुम्हारी बुद्धि सांख्ययोगमें अव्यभिचारिणी हो और पितृ-शापसे उत्पन्न हुए दौर्मनस्यसे तुम्हारा छुटकारा हो। महाभाग जैमिनि यह कहकर और पक्षिरूपी द्विजोंकी पूजाकर, उनकी सुनायी हुई उदार पुराण-कथापर विचार करते हुए अपने आश्रमकी ओर गमन करते भये ॥ २५–३६ ॥

इस प्रकार मार्कण्डेय महापुराणका पुराणमाहात्म्यकीर्तन नामक
एक सौ सैंतीसवाँ अध्याय समाप्त हुआ।

मार्कण्डेय पुराण समाप्त।

टीकाः—इस पुराणकी फलश्रुतिको पढ़कर साधारण पाठकोंको शङ्का न हो, इस लिये संक्षेपसे कहा जाता है कि, पुराणशास्त्र पूर्णज्ञानमय वेदके भाष्यरूप हैं। आत्मज्ञानप्राप्ति, कर्मकी योग्यताप्राप्ति और उपासनाकी लक्ष्यसिद्धिके निमित्त पुराणशास्त्र सबसे अधिक अवलम्बनीय हैं और दूसरी ओर पुराणशास्त्र सर्वजीवहितकारी हैं। तीसरी ओर श्रद्धालु पुराण-पाठकों अथवा पुराण-श्रोताओंको आत्मसाक्षात्कार करने और सात्त्विकबुद्धिसम्पन्न होकर दैवीजगत्‌से सम्बन्ध स्थापित करनेमें जैसी सुगमता होती है, वैसी अन्य शास्त्रोंसे नहीं होती। इस कारण पुराणशास्त्रकी फलश्रुतिमें जितना कुछ कहा जाय, थोड़ा है। आत्मसाक्षात्कार यदि एक क्षणके लिये कोई कर सके, तो कोटि कोटि जन्मोंके उसके पाप कट जानेकी तो बात ही क्या है, वह आत्मज्ञानी सब पापोंसे मुक्त होकर तुरन्त ब्रह्मरूपही हो जाता है। ऐसी आत्मज्ञानप्राप्तिका बीज पुराणशास्त्रमें स्थल स्थलपर निहित है। विभिन्न धर्मों और उनके क्रियासिद्धांशका तो पुराण आकर ही है। दैवीजगतसे सम्बन्ध होते ही साधक दैवीशक्तिसम्पन्न हो जाता है। उसके स्वरूपका वर्णन पुराणोंमें कैसा है, उसका ज्वलन्त दृष्टान्त श्रीमत्सप्तशतीगीता है ॥ १—३६ ॥

श्रीः ।

रहस्योद्घाटिनी टीकाकी

विषय-सूची ।

विषय | पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

रहस्योद्घाटिनी टीकाके विषयोंका

'अ'कारादि क्रम ।

विषय — पृष्ठ

विषय	पृष्ठ

विषय — पृष्ठ

विषय			पृष्ठ

विषय		पृष्ठ